## प्रयागकी विज्ञानपरिषत्‌का मुखपत्र

Vijnana, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

---

अवैतनिक सम्पादक

प्रोफ़ेसर गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.

---

भाग—१७

मेष—कन्या १९८०

April – 1923 September 1923

प्रकाशक

विज्ञान–परिषत् प्रयाग

वार्षिक मूल्य तीन रुपये

# विषयानुक्रमणिका

### दर्शन (Philosophy)



### रसायन शास्त्र ( Chemistry )



### विद्युत् शास्त्र ( Electricity )



### शारीर शास्त्र (Physiology)



### समाज शास्त्र (Sociology)



### स्वास्थ्य विज्ञान ( Hygiene & medicine )

## साधारण (General)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १७ | मेष, संवत् १९८० । अप्रैल, सन् १९२३ | संख्या १

## धन्यवाद

परमात्माके अनुग्रहसे "विज्ञान" इस अंकसे ९वें वर्षमें पदार्पण कर रहा है। जब विज्ञानका जन्म हुआ था तब संचालकोंको बड़ी बड़ी आशायें थीं; यद्यपि वह आशायें आजतक पूरी नहीं हुई हैं, तथापि विज्ञानका इतने दिन तक निरन्तर प्रकाशित होते रहना ही कम गौरवका विषय नहीं है। इस शुभ कार्यका श्रेय हमारे लेखकोंको मुख्यतः प्राप्त है। उन्हींकी सहायता और सहानुभूतिसे विज्ञानका संचालन हो सका है। उनके विज्ञान प्रेम और साहित्यानुरागकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी है। अवैतनिक रूप और निस्वार्थ भावसे साहित्य सेवाका जो उच्च आदर्श विज्ञानके लेखकों ने हिन्दी संसारके सामने रखा है वह अत्यन्त अनुकरणीय है।

लेखकोंके साथ ही साथ अनुग्राहक ग्राहकोंको भी हम धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते, जिनके साहित्यानुराग और विज्ञान-प्रेम ने ही विज्ञानको इतने दिन जीवित रखा है। हमें पूर्ण आशा है कि विज्ञान परिषद्ने जिस कामका बीड़ा उठाया है, उसमें ग्राहक महोदय भविष्यमें भी पूर्ववत सहायता देते रहेंगे।

परिषद्को विज्ञानके संचालनमें प्रतिवर्ष घाटा होता है। यदि प्रत्येक विज्ञान-प्रेमी एक नया ग्राहक बनानेकी कृपा करें तो ग्राहक संख्या दुगुनी हो जाय और घाटेमें भी बहुत कुछ कमी हो जाय।

इस अवसर पर हम संयुक्तप्रान्तके शिक्षा विभागको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। ६००) प्रतिवर्षकी सहायता यदि उक्त विभाग न देता तो विज्ञानकी अत्यन्त शोचनीय दशा हो जाती।

इन्सपेक्ट्रेस गर्ल्स स्कूल्सने भी ६० प्रति स्कूलों के लिए मंगाई हैं, इसके लिए भी उन्हें धन्यवाद है। देशी राज्योंके शिक्षा विभागोंको उनका अनुकरण करना चाहिये।

—मन्त्री

## पांच हज़ार रुपये सेरकी शकर

[ ले०—प्रो० रतनलाल, एम. ए. ]
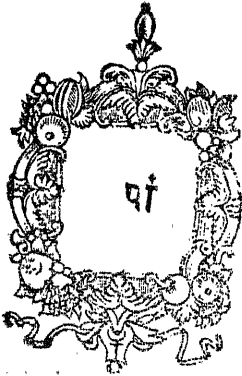
पांच हज़ार रुपये सेरकी शकर! यह बात सुन कर हमारे बहुत से पाठक चौंकेंगे; किन्तु यह सच्ची बात है। आंगारक रसायन-शास्त्रमें शर्कराओं का एक कुल है, जिसका सबसे साधारण सदस्य नित्यके काममें आनेवाली चीनी या खांड है।

साधारणतया लोग कहा करते हैं कि शाहजहांपुरी शकर नैनीकी चीनीसे अधिक मीठी होती है; पर जब दोनों चीनी हैं तो कम और ज्यादा मीठी कैसे हो सकती हैं। अक्सर लोग मन समझानेके लिए यह मान लेते हैं कि बेसन, खड़िया आदि पदार्थ मिला देनेसे मिठासमें कमी बेशी हो जाती है। परन्तु असली बात कुछ और ही है। चीनी कई प्रकारसे शनैः शनैः बदल कर दो अन्य शर्कराओंके मिश्रणका रूप धारण कर लेती है। इन शर्कराओंके नाम हैं ग्लुकोज और फलोज (Fructose and glucose)। इस क्रिया को इनवर्ज़न (Inversion) कहते हैं। गुड़में ग्लुकोजकी अधिक मात्रा रहती है। चीनी बनानेकी किस बिधिमें न्यूनाधिक इनवर्ज़न होता है, इसी बात पर उस बिधि से बनी चीनीका मिठास न्यूनाधिक होता है।

इस प्रकार तीन प्रकारकी शर्कराओंसे हमें नित्य काम पड़ता रहता है। साधारणतया चीनी ।≡) सेर बिकती है; किन्तु यदि विशुद्ध चीनी चाहिये तो वह १८॥।) रु० सेर मिलेगी—मूल्य लगभग ३८ गुनेसे भी अधिक बढ़ जायगा। कुछ कम मूल्यवान शर्कराओंके नाम और दाम नीचे दिये जाते हैं :—

| नाम | | | |
|---|---|---|---|
| गैलेकटोज़ (Galactose) | १८७५ | रु० | सेर |
| मालटोज (Maltose) | १७५ | ” | ” |
| मैनाइट (Mannite) | ११२·५ | ” | ” |
| दुग्धोज (Lactose) | १२·५ | ” | ” |
| ग्लुकोज (Glucose) | ४५·५ | ” | ” |

यही शर्कराएं कुछ दिन पहले तक बड़े पैमानेपर बनाकर बेची जाती थीं। इनमें से गैलेकटोज़ १९१३ वि० में पाश्चर ने बनायी थी। दुग्ध शर्करा को अम्लोंके साथ उबाल कर यह बनायी गयी थी और आजकल स्फोटकोंके बनानेमें काम आती है।

मालटोज या यवोज़ोज प्रकृतिमें विद्यमान तो बहुत बड़ी मात्रामें हैं, किन्तु उसका संशोधन करना कठिन है। आमातिसार और डिफथीरियाके जीवाणुओंके पहचाननेमें यह काम आती है।

ग्लुकोज अथवा डेक्सट्रोज अथवा अंगूरोज श्वेतसार अथवा कागज़से बनायी जासकती है, परन्तु उसका संशोधन भी बड़ा कठिन है।

दुग्ध शर्कराकी गोलियां होमियोपेथीमें काम आती हैं। इसीका नाम दुग्धोज है। संशोधन इसका भी मुश्किल है; इसी कारण विशुद्ध शर्करा मँहगी होती है। विशुद्ध चीनीका भी यही हाल है।*

* इस सम्बन्ध में पृष्ठ ४८ पर निम्न लिखित तीन नोट पढ़िये:—सबसे मीठी सर्करा; १०१२॥) रु० सेर की शकर; ६२५ रु० सेर की शर्करा।

खमीर न उठनेवाली शर्करा

जाइलोज (xylose) काष्ठमें मिलती है; अतएव शायद यह खयाल हो कि यह बड़ी सस्ती होगी; किन्तु इसका मूल्य ११२५) रु० फी सेर है। सं० १६७४ तक यह बहुत थोड़ी मात्रामें मिलती थी। एक बार में एक ग्राम (१, तोला) से अधिक नहीं बन सकती थी। हडसन और हार्डिञ्ज बाबुओंने उस वर्ष इस काममें हाथ लगाया और एक बारमें एक पौण्ड बनाना सम्भव कर दिया।

जीवाणु शास्त्रियोंके यह बड़े काम की हैं। मोती ज्वर, विशूचिका, आंतकेरोग और एंटेरिटिस रोगों के जीवाणुओंका इसकी सहायतासे बहुत सुगमतासे पता लग जाता है।

१२४०) सेरकी शर्करा

इसका नाम है रेमनोज (Rhamnose)। रिगौ (Rigaud) महोदयने इसे १६१२ वि० में बनाया था। अब हार्डिञ्ज विधिसे यह काले ओक की छाल (black oak bark) से बनायी जाती है।

१८७०) सेरकी शर्करा

रेफीनोज (raffinose) का पहले पहल मडी (Mudie) ने १८८६ वि०में पता लगाया। १६०० वि०में जानसन (Johnston) ने इसे बनाया और यूकेलिप्टस शर्करा नाम दिया। लोइसो (Loiseau) ने इसके रवे बनाये और रेफीनोज नाम दिया। १६०१ वि० में टौरलेंसने बतलाया कि दोनों पदार्थ एक ही हैं। १६७१ वि० में हडसन और हार्डिञ्जने इसे बिनौले की खली से बनाया।

कड़वी शर्करा

शर्करा और कड़वापन। इन बेमेल वस्तुओंमें भी मेल है। मैनोज (mannose) नामकी शर्करा यदि खायी जाय तो पहले कड़वी लगेगी पर बादमें मीठापन भी मालूम होगा। १८६३ वि० में प्रौटने इसे बनाया था। एकंस्टीन (von Ekenstein) ने १६६३ में इसके रवे बनाये। हार्डिञ्जने १६७६ वि० में बदनकी कतरन (vegetable ivory) से बनानेकी सस्ती विधि निकाली। इसका मूल्य १५६२॥) सेर है।

३१२४) सेर की शर्करा

सोने से ड्योढ़े मूल्यवाली यह शर्करा ट्रिहेलोज नाम की है।

प्रकृतिको मात कर दिया

नयी नयी शर्कराओंके आविष्कृत होनेकी भविष्यमें संभावना है। इनमें से अधिकांश कृत्रिम रीतिसे बनायी जाती हैं; कुछ ऐसी भी हैं, जिनका पता प्रकृतिमें नहीं लगता।

पारसाल जिस नायाब शर्कराका आविष्कार हुआ था वह सब से ज्यादा गिरां है। यह सम्भवतः ५००० रु० सेर बिकेगी।

यह सोनेसे ढाई गुने अधिक मूल्यकी होगी।

---

## २४०० वर्ष पुरानी रोटी

एक फ्राँसीसी खोजिया को २४०० वर्ष पुरानी रोटी मिली है। अनुमानतः वह सं० ५०३ विक्रम से पूर्वमें पकायी गयी होगी। उसकी आकृति साधारण डबल रोटीकी सी है। एक कपड़ेमें लिपटी हुई और चूनेकेसे पदार्थके बने खोलमें बन्द मिली है। उसकी दशा बहुत अच्छी है, अभी तक वह किसी भाँति बिगड़ी नहीं है।

---

## इथिलीन गैसका एक नया गुण

हालमें ही चिकेगो विश्वविद्यालयमें इथिलीनके बेहोश करनेवाले गुणकी परिक्षा की गयी है। (Dr. A. B. Luckhardt and Mr. J. B. Carter) डा० लुकार्ट और श्री० कार्टरको यह बतलाया गया था कि चिकागो ग्रीन हौसमें कारनेशन नामक फूल देनेवाले पौधोंमें सोनेकी असाधारण चेष्टा दिखाई पड़ रही है। जांच करनेपर पता चला कि जलानेकी गैसके एक अवयव इथिलीनका ही यह प्रभाव है। वनस्पति विभागके इस

आविष्कारके अनन्तर शारीर-विभाग ने निश्चय कर लिया कि इथिलीन का पशुओंपर जो प्रभाव पड़ता है उसका भी पता लगाना चाहिये। फिर क्या था मेंढक, चूहे, चूही, खरगोश, गिनी-पिग और बिल्लीके बच्चोंकी शामत आ गई! ९० भाग इथिलीनके १० भाग ओषजनके साथ मिला कर परीक्षा हुई। परिणाम यह निकला कि नत्रस ओषिद (हँसाने वाली वायु) के वैसे ही मिश्रणकी अपेक्षा इथिलीनका मिश्रण दुगनी तेजीसे काम करता है—आधे ही समयमें बेहोश कर देता है।

कुत्तोंपर भी प्रयोग हुआ। पता चला कि ४५ मिनट तक उन्हें बेहोश रखा जा सकता है। रक्त दबावपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गैस देना बन्द करनेपर होश भी जल्दी और पूरा पूरा आ जाता है। अन्तमें दोनों प्रयोग-कर्ताओंने आपसमें एक दूसरेपर प्रयोग करनेकी ठान ली। वही परिणाम निकला जो कुत्तोंपर प्रयोग करनेसे निकला था। फिर तो बहुत से वौलनटियर भी अपने ऊपर प्रयोग करानेके लिए उपस्थिति हो गये। उन पर भी प्रयोग किये गये। परिणाम यह निकला कि इथिलीन बहुत जल्द बेहोश कर देती है; बेहोश होनेमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता; रुधिर दबाव पर प्रभाव नहीं पड़ता और होश आने पर थोड़ा सा जी मिचलाता है और थोड़ी देर तक तबीयत परेशान रहती है। ( Lancet )

## दांत के दर्द की दवा

बेंज़िल मद्यसार (Benzyl alcohol) और क्लोरोफार्मको बराबर मात्राओंमें मिलाइये। इस मिश्रणके थोड़े से क़तरे एक रुईके टुकड़ेपर डाल कर दाँतके खोखलमें लगा दीजिये। ऐसा करनेसे दर्द बहुत जल्द जाता रहेगा। कोकेनके सिवा किसी अन्य ओषधिसे इतनी जल्दी आराम नहीं होता।

## क्या वैद्युतिक तरङ्ग ही अदृश्य आलोकको उत्पन्न करनेवाली आकाश तरङ्ग हैं?

पिछले लेखमें दिखलाया जा चुका है कि अध्यापक बसुने अपने यन्त्रकी सहायतासे वैद्युतिक तरङ्ग उत्पन्न करके उसके अस्तित्वका सहज प्रमाण प्रदर्शित कर दिया है। अब यहाँ पर प्रश्न हो सकता है कि—यह वैद्युतिक तरङ्ग ही धीर ईथर-स्पन्दन-सम्भूत तरङ्ग है इसका क्या प्रमाण? बसु महोदयका अदम्य उत्साह केवल वैद्युतिक तरङ्ग-उत्पन्न करके ही ठण्डा नहीं पड़ गया; किन्तु उन्होंने बहुत से प्रमाणोंका संग्रह किया, जिनकी सहायतासे प्रतिपन्न होता है कि अदृश्यालोक तरङ्ग और वैद्युतिक हिल्लोल दोनोंकी उत्पत्ति एक ही श्रेणीके आकाश-स्पन्दन से होती है।

श्रेणी-विभाग विज्ञानका एक प्रधान अङ्ग है। विधाताने अनेक प्रकारके सजीव और निर्जीव पदार्थ उत्पन्न करके दुनियामें फैला दिये हैं; विज्ञान वेत्ताओंने उन्हें बड़े यत्नसे लाकर उनके गुण, धर्म और पारस्परिक सादृश्यका आविष्कार करके श्रेणी-विभाग कर दिया है। बाहरी अनेकता विज्ञान-वेत्ताओंकी दृष्टिमें बहुत ही मामूली काम है। रसायनशास्त्र, प्राणितत्व और उद्भिद-विज्ञान प्रभृतिमें इस श्रेणी-विभागके पचासों उदाहरण देख पड़ते हैं। हरिन (Chlorine) एक वायवीय पदार्थ है और आयोडीन ( Iodine ) एक ठोस वस्तु है। इन दोनों मौलिक पदार्थोंमें यद्यपि बाहरी अनैक्य है, फिर भी इनके आणविक गठन और रासायनिक धर्मकी अभिन्नता देखकर विज्ञान-वेत्ताओंने उल्लिखित दोनों पदार्थोंको एक ही श्रेणीमें रखा है। हमारी आँखोंकी असमर्थताके

कारण वैद्युतिक तरङ्ग यद्यपि हमारी इन्द्रियोंके लिए ग्राह्य नहीं तथापि अध्यापक वसुके यन्त्रकी सहायतासे सहज ही प्रमाणित हो जाता है कि यह वही ईथर-स्पन्दन है, जिससे कि साधारण आलोक (प्रकाश) उत्पन्न होता है।

पाठकोंको यह तो ज्ञात हो ही चुका है कि मनुष्यकी दर्शनेन्द्रियकी शक्ति बहुत ही सङ्कीर्ण है; लाल, पीले आदि कुछ ही किस्मके रङ्गोंके आलोकको हमारी आँखें देख सकती हैं; फलतः उन्हीं असमर्थ नेत्रोंके सहारे उस स्पन्दनका अनुभव करना हमारी सामर्थ्यसे बाहर है; जो कि लाल रङ्गको उपजानेवाले ईथर-स्पन्दनकी अपेक्षा हलका है। इसलिए किसी अन्य निर्जीव पदार्थपर वैद्युतिक तरङ्गके कार्यका पता लगा कर और उनके साथ तद्वत्‌ दृश्यमान प्रकाशके कार्यकी सदृशताका विचार करके फिर देखना चाहिये कि नई आविष्कृत वैद्युतिक-तरङ्ग सचमुच ईथर तरङ्ग हैं या नहीं।

साधारण आलोकके, मोटे तौर पर, हम लोग चार प्रधान कार्य सहज ही देख सकते हैं।

पहला, रङ्गोंको उत्पन्न करना; दूसरा, दर्पण आदिमें पड़ी हुई किरणका प्रतिफलन; तीसरा, वर्त्तन अर्थात्‌ असमघन पदार्थमें प्रवेश करते समय प्रकाश-किरणोंका पथ-परिवर्त्तन; और चौथा, कई किस्मके साफ़ रवेदार ( Crystals ) पदार्थमें साधारण प्रकाश-किरणोंका समतली-भवन ( polarisation )। दृश्यमान प्रकाश-मात्रके यह कई एक विशेष धर्म हैं। इसके सिवा आलोक यानी आकाश-स्पन्दनमें एक और विशेष गुण है; किन्तु उसका हमें बहुत ही थोड़ा सा ज्ञान है। इसी प्रभाव के बलसे प्राणी जीवित हैं, सजीव और निर्जीव एक ही बलसे सदा स्पन्दित होते हैं।

अध्यापक हर्ट्‌ज़ने जिन वैद्युतिक तरङ्गोंको उत्पन्न किया था वह एक गज़से भी लम्बी थीं। इन लम्बी लम्बी तरङ्गोंकी जाँच पड़ताल करना और इनके द्वारा पदार्थके अनेकानेक धर्मोंका (जैसे प्रकाशके सम्बन्धमें हैं) परिमाण प्राप्त कर लेना अत्यन्त कष्ट साध्य है तथा किसी किसी गुणका निर्णय करना तो, अधिक अवसरों पर, असम्भव है। इसी कारण वसु महाशयने अनेक उपायों द्वारा बहुत ही छोटी छोटी तरंगें, उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया था। इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हो गई। वसु महाशयके यन्त्रकी तरङ्ग हर सेकेण्डमें, आकाश-सागरमें ५०० करोड़ वार स्पन्दित हुई हैं। इस छोटी सी तरङ्गके सहारे उन्हें सहज ही परीक्षा करने का सुभीता हो गया था। जो हो, आचार्य वसु ने प्रथम प्रस्तावमें उल्लिखित यन्त्रकी सहायतासे वैद्युतिक तरङ्ग उत्पन्न की, और फिर उसे तरङ्ग परिज्ञापक दूसरे यन्त्रमें, रीतिके अनुसार, प्रविष्ट करा दिया; इसके पश्चात्‌ यन्त्रमें स्थित दर्पणको वैद्युतिक तरङ्ग द्वारा आन्दोलित करके सामनेके परदे पर चञ्चल प्रकाशको प्रतिफलित कर दिया। इस प्रकार उन्होंने निर्णय कर दिया है कि कौन कौन पदार्थोंके द्वारा वैद्युतिक तरङ्गोंकी गति रुक जाती है और किन किन पदार्थोंके बीच होकर तरङ्ग बिना किसी रुकावटके बाहिर निकल सकती है।

धातुके एक टुकड़ेसे तरङ्गका मार्ग रोका गया था। साधारण प्रकाशके मार्गमें एक अस्वच्छ पदार्थ यदि कर दिया जाय तो जिस प्रकार उसे भेद करके प्रकाश बाहर नहीं जा सकता वही दशा यहाँ पर भी देख पड़ी थी। स्थूल धातु-फलक द्वारा वैद्युतिक-तरङ्ग रुक गई थी, इस कारण तरंगका अभाव हो जानेपर तरङ्ग-परिज्ञापक यन्त्रका आलोक विम्ब परदेपर स्थिर ही रहा था। उसका हिलना डुलना बन्द होगया था।

एक ईंटके द्वारा तरंगका मार्ग रोका गया। पाठक जानते हैं कि साधारण उजेलेमें ईंट बिलकुल ही अस्वच्छ है; दृश्यमान प्रकाश किसी भी तरह ईंटको भेद करके निकल नहीं सकता; किन्तु आश्चर्यकी बात है कि वैद्युतिक तरंगने इस मोट-

को सहज ही भेद करके परिज्ञापक यन्त्रस्थ दर्पण-को जोर से हिला दिया।

यहां पर प्रश्न किया जा सकता है कि यदि वैद्युतिक तरङ्गें उसी श्रेणी की हैं, जिसकी कि प्रकाश उत्पन्न करनेवाली ईथरीय तरङ्गें, तो क्या ऐसा एक बेमेल काम होना सम्भव है? जो पदार्थ साधारण प्रकाशमें अस्वच्छ है, वह एक ही किस्म-की ईथर कम्पन-जात वैद्युतिक तरङ्गमें अथवा अदृश्य प्रकाशमें स्वच्छ क्योंकर हो सकता है?

एकाएक तो इस बातमें सन्देह अवश्य उत्पन्न हो जाता है; किन्तु प्रकाश-विज्ञानमें ऐसा कोई नियम नहीं है कि एक निर्दिष्ट संख्यक आकाश-कम्पन-जात आलोक किसी विशेष पदार्थ-के बीच होकर बेरोक टोक चला जाता है इस-लिए ऐसा प्रकाश भी उस पदार्थके मध्य होकर निकल जायगा जो कि आकाश-कम्पन-जात आलोक की अपेक्षा द्रुततर अथवा धीरतर कम्पनसे उत्पन्न हुआ हो; बल्कि इससे उलटा काम देखा जाता है। किसी निर्दिष्ट पदार्थके बीच होकर विशेष प्रकारके आलोकका बेरोकटोक निकल जाना और फिर उसीके द्वारा अन्य आलोकके रुक जानेका उदाहरण साधारण दृश्यमान प्रकाशमें भी कुछ दुर्लभ नहीं है।

एक सहज साध्य परीक्षाकी बात लिखनेसे ही विषय स्पष्ट हो सकता है। किसी तरकीबसे हरे और लाल आलोकको उत्पन्न * किया जाय और फिर उक्त दोनों रङ्गके प्रकाशोंको एक परदे-पर अलग अलग हिस्सोंमें डालकर लाल रङ्गके एक काँचके टुकड़े द्वारा दोनों प्रकारके आलो-कका मार्ग रोका जाय तो एक अभावनीय कार्य देख पड़ता है। लाल रङ्गका आलोक तो उक्त लाल रङ्गके काँचके बीचसे पार होकर बिना किसी रोक टोकके परदेपर पड़ता है; किन्तु हरे रंगका आलोक किसी भी तरह काँचको पार करके बाहर नहीं निकल सकता। इससे देख पड़ता है कि वही एक लाल रङ्गका काँच हरे आलोकमें तो अस्वच्छ रहता है; किन्तु लाल रङ्गके आलोकमें स्वच्छ हो जाता है। अतएव आचार्य बसुकी परीक्षामें, साधा-रण आलोकमें अस्वच्छ, ईंटका वैद्युतिक तरङ्गके समीप स्वच्छ हो जाना कुछ आश्चर्यजनक नहीं; दूसरे पक्षमें साधारण आलोककी विशेष तरङ्ग जिस प्रकार किसी पदार्थके बीच होकर तो बिना किसी रुकावटके पार हो जाती है, और किसी किसी पदार्थमें अटक रहती है, ठीक वैसी ही घटना वैद्युतिक तरङ्गमें भी देख पड़ती है; इसलिए सिद्धान्त कर लिया गया था कि वैद्युतिक तरङ्ग उस ईथर कम्पन-जात अदृश्य आलोक-तरङ्गके सिवा और कुछ नहीं।

पाठकोंने अवश्य ही देखा होगा कि साधारण आईने अथवा चिकने धातु-फलक पर आलोक-रश्मियोंको वक्र भावमें डालनेसे समीपकी दीवार या अन्य किसी पदार्थ पर आलोक प्रतिफलित हो जाता है। इस प्रतिफलनका एक निर्दिष्ट नियम है:—आईनेके जिस स्थानमें आलोकरेखा गिरती है उस स्थानसे इसकी तलीके साथ एक लम्बरेखा-की कल्पना करनेसे आपतित और प्रतिफलित रेखाएँ सभी क्षेत्रोंमें उक्त कल्पित लम्ब-रेखाके साथ समान समान कोण उत्पन्न करती हैं। वैद्युतिक तरङ्ग भी पूर्वोक्त नियमके अनुसार प्रतिफलित हुआ करती है। इस प्रतिफलन-सम्बन्धी परीक्षामें बसु महाशयने पहले अपने उत्पादक यन्त्र द्वारा तरङ्ग उत्पन्न की और उसे एक धातुके दर्पणपर डाला। यहाँ धातुका व्यवधान रहनेसे तरङ्ग रुक गई और इस कारण दर्पणके पीछे लगे हुए उस विज्ञापक यन्त्रमें तरङ्गके अस्तित्वका कुछ भी चिह्न नहीं देख पड़ा; किन्तु ऐसी अवस्थामें दर्पणमें जाने-से साधारण आलोक जिस ओर प्रतिफलित होता

* लाल रंगके कांचके बीच होकर जब सूर्य किरण आती है तब उसका प्रकाश लाल हो जाता है; पूर्वोक्त रीतिसे हरे कांचके द्वारा सहज ही हरे रंग का आलोक उत्पन्न किया जा सकता है।

है उसी ओर तरङ्गविज्ञापक यन्त्र रख देनेसे तरङ्ग-का अस्तित्व-लक्षण स्पष्ट ही देख पड़ा। इसके पश्चात् तरङ्गके आपत ( Angle of incidence ) और प्रतिफलन (Angle of reflection) दोनों कोणोंके नापने पर दोनों ही कोनोंका परिमाण एकसा पाया गया।

यह तो हुई प्रतिफलनकी बात; अब देखना चाहिये कि वर्त्तन यानी किसी पदार्थसे असमघन पदार्थमें प्रवेश करते समय आलोक-मार्गका जो परिवर्तन (Refraction) देख पड़ता है वह वैद्युतिक तरङ्गमें भी लक्षित होता है या नहीं।

इस विषयको समझनेसे प्रथम आलोक-वर्तन-कार्यके साथ हमारा थोड़ा सा परिचय हो जाना आवश्यक है। कदाचित् पाठकोंने देखा होगा कि एक बिलकुल सीधे दण्डका कुछ अंश वक्रभावसे पानीमें डुबाया जाय तो फिर वह दण्ड बिलकुल सीधा नहीं जँचता, पानीमें उसका जो अंश डूबा रहता है वह साफ़ ही टेढा देख पड़ता है। आलोक-वर्तनके कारण ही यह दृष्टि-विभ्रम हुआ करता है। जलमें डूबे हुए दण्डके अंशसे एक निर्दिष्ट सीधे मार्गमें आकर, दर्शकके नयनगोचर होनेसे प्रथम, आलोक रश्मि असमघन वायुमें पड़ जाती है और जलके ऊपरी भागसे एक नये मार्गको ग्रहण करके वह दर्शन देती है। किन्तु आलोक-रश्मिका आँखोंसे सम्बन्ध होनेसे कुछ पहले वह जिस रेखा-क्रमसे आती है उसी रेखाके बढ़े हुए अंशमें दर्शक उस आलोकके उत्पादक पदार्थको देखता है।* इस कारण पूर्वावलम्बित मार्गसे हटी हुई किरण द्वारा दण्डका डूबा हुआ हिस्सा अपने स्थानसे हटा हुआ देख पड़ता है।

आलोक-वर्तनका एक और उदाहरण हमें "आतिशी" शीशेके कार्यमें मिलता है। वायुसे उक्त स्थूलमध्य (Convex) काँचमें प्रवेश करते समय यहाँ पर भी आलोक-किरणोंको मार्ग-परिवर्तन करना पड़ता है। वायुमें जिस सरल मार्गपर किरणें चली आ रही थीं, काँचमें प्रविष्ट होते ही वह उस मार्गसे अलग हो गईं; इसके पश्चात् फिर काँचसे निकल कर वायुमें प्रवेश करते समय वह उस मार्गको भी त्याग कर फिर एक नये तीसरे मार्गपर चलने लगती हैं। काँचके गठन-चातुर्यसे आलोकवाही किरणोंके यह दोनों वर्त्तन एक ही ओर होते हैं और पहलेकी सरल तथा समान्तर किरणें एक निर्दिष्ट विन्दुपर एकत्रित होकर उस स्थानपर ताप और आलोक बढ़ा देती हैं। इसी कारण "आतिशी" शीशेको सूर्यकी किरणके आगे रखनेसे उस पर गिरनेवाली किरणें एक विन्दुपर सञ्चित होती देखी जाती हैं।

आतिशी शीशे अथवा स्थूल-मध्य काँचमें एक और भी काम होता है। इसके पूर्व-वर्णित किरण केन्द्रमें (Focus) एक तेज़ दीपशिखा रखनेके, दीपकी अनेक दिशाओंमें जानेवाली किरणें काँचके बीच होकर निकलते ही उल्लिखित प्रक्रियाके बिलकुल विपरीत रीति द्वारा एक समान्तर मार्गपर चलने लगती हैं। "बुल्स आई" (Bullseye) लालटेनके सामने ऐसा स्थूलमध्य काँच लगा रहनेके कारण आलोक-केन्द्रमें स्थित दीपककी किरणें काँचसे निकलते ही समान्तर मार्गपर चलकर बहुत दूर तक जा सकती हैं। अस्वच्छ पिच् और गन्धक प्रभृति कुछ पदार्थोंके द्वारा स्थूल-मध्य फलक बनाकर अध्यापक वसुने परीक्षा करके देख लिया है कि साधारण आलोकतरङ्गकी भाँति वैद्युतिक तरङ्ग भी, पूर्व वर्णित वर्तन-प्रथासे पुञ्जीभूत और समान्तर पथावलम्बी हो जाती हैं।

साधारण आलोकके किरण-पथ-परिवर्तन सम्बन्धमें परीक्षाके समय, कई विशेषताएँ होते हुए भी, इसकी एक विशेषता सदा हमारी दृष्टिको

---

* इसी कारण सूर्यकी किरण आईनेसे प्रतिफलित होकर जब आँखोंपर पड़ती हैं तब आलोकोत्पादक सौर छवि उसी प्रतिफलित किरणके वर्द्धित अंशमें अर्थात आईनेके पीछे देख पड़ती है।

आकर्षित किया करती है; निर्दिष्ट पदार्थमें प्रवेश करते समय आलोक मार्गमें जितना परिवर्तन होता है उतना परिवर्तन अन्य पदार्थमें प्रवेश करते समय उसमें किसी भी तरह नहीं देखा जाता। प्रत्येक भिन्न-जातीय पदार्थमें आलोक-मार्गके परिवर्तनका परिमाण सदासे निर्दिष्ट है। वैद्युतिक तरङ्गमें भी आलोक रश्मिका यह साधारण धर्म स्पष्ट देख पड़ता है। प्रत्येक विजातीय पदार्थमें प्रवेश करते समय वैद्युतिक तरङ्गका मार्ग भी एक निर्दिष्ट परिमाणमें बदलता रहता है।

कुछ जातियोंके साफ़ रवेदार पदार्थोंमें प्रविष्ट होनेसे साधारण आलोक रश्मिका जो प्रकृतिगत परिवर्तन (Polarisation) देख पड़ता है, उस अवस्थामें वैद्युतिक तरङ्गके परिवर्तन आदि का निर्णय करनेके लिए वसु महोदयने बहुत कुछ गवेषणा की है। अब, अगली संख्यामें, उसका विशेष विवरण और वैद्युतिक तरङ्ग सम्बन्धी अन्य ज्ञातव्य बातें लिखी जायगी।†

—लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय

## सबसे अद्भुत् प्राणी

जितने अद्भुत, कुरूप और असाधारण प्राणी प्रकृति ने बनाये हैं, उनकी गणनामें प्रथम स्थानका अधिकारी वह प्राणी है जिसे बतख-चोंची प्लेटीपस ( duckbilled platypus ) कहते हैं। इसका वैज्ञानिक नाम है ओरनिथोरहिनकस पैरेडोक्सस ( ornithorhynchus paradoxus )। ऐसा प्रतीत होता है कि विधाताने इस जीवकी उस समय रचना की थी जब उसे मज़ाक सूझ रहा था। जलचर और थलचर प्राणियोंके स्वभावों तथा पक्षियों और स्तनपायी प्राणियोंकी शरीर रचनाओंका एक यह अद्भुत मिश्रण है।

इस जीवकी लम्बाई एक हाथ होती है। जलचरोंकी नाईं इसके झिल्लीदार पैर होते हैं, जिनसे वह तैर सकता है। थलचरोंकी तरह इसके नाखूनदार उंगलियां होती हैं, जिनसे यह चढ़ सकता है, खरोंच सकता है और खोद सकता है। उसकी दुम बीवरकी* सी होती है; परन्तु उसकेसे दांत नहीं होते। बतखकी सी चपटी, लम्बी और फैली हुई चोंच अवश्य होती है। पक्षियोंकी नाईं यह अण्डे देता है; परन्तु स्तनपायी जानवरोंकी तरह बच्चे मांका दूध पीते हैं।

क्या अद्भुत माया है कि अण्डेसे बच्चे पैदा हों और दूध पीकर परवरिश पावें। इससे भी यह आश्चर्य जनक बात है कि माताके स्तन होते ही नहीं।

बिना स्तनोंके माता दूध कैसे पिलाती है और बच्चा दूध कैसे पीता है! बच्चा माताके शरीर पर जहां चाहता है चोंचसे पपोलता है, वहां ही दूध निकल पड़ता है।

बतखकी सी चोंच, पर खाल ऊनदार; परोंका नामोनिशान तक नहीं; बीवरकी सी दुम, पर दांत ला पता; परिन्दोंकी नाईं अंडोंसे उत्पत्ति, परन्तु चरिन्दोंकी तरह दूध पीकर पुष्ट होना, और चार पैरों पर चलना—यह सब अद्भुत बातोंका एकत्र होना, कितना आश्चर्य जनक है।

ऊपर कहा जा चुका है कि पैर झिल्लीदार होते हैं। इससे तैरनेमें बड़ी सहायता मिलती है; परन्तु आवश्यकता पड़ने पर झिल्ली सिमट कर ऊपरको चढ़ जाती है और नख बाहरको निकल आते हैं। झिल्ली नखोंके सिरोंसे ½ इंच आगे तक फैल सकती है।

आस्ट्रेलियामें यह प्राणी पाया जाता है। यह महाद्वीपकी मध्यस्थ नदियोंमें शिकार करके अपना उदर पालन करता है। नदियोंके किनारे बिल बना कर यह रहता है। बिलका एक द्वार पानीमें और दूसरा पानीके बाहर होता है। बिलका अन्तिम भाग एक बड़े आरामका स्थान होता है, जिसमें सूखी पत्तियोंका मुलायम फर्श रहता है।

† श्री० जगदानन्द राय प्रणीत पुस्तक से अनुवादित।

* एक प्राणी विशेष

# भारतीय वेधशाला (Indian Observatory)

१—वेध परम्परा
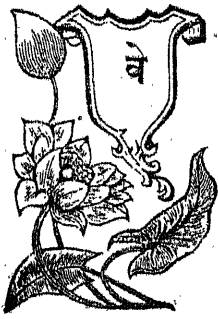
वेध शब्दकी उत्पत्ति व्यध् धातुसे है। शलाका, चक्र अथवा और किसी वस्तुसे सूर्य्य आदि खगोलीय पिंडोंके पर्यवेक्षणको वेध कहते हैं। उन शलाकादि उपकरणोंसे सूर्य्यादि ग्रहोंके बिम्ब विद्ध होते हैं; अतएव उनको वेध यंत्र (Transit Instrument) संज्ञा प्राप्त हुई। खाली दृष्टिसे आकाशस्थ पिंडोंका निरीक्षण अवलोकन कहलाता है। इसे भी वेध कह सकते हैं। तथापि व्याख्यामें शलाकादि उपकरणोंसे जो वेध किया जाता है उसे यंत्र-वेध और जो खाली आँखों से वेध किया जाता है उसे दृष्टि-वेध ( Naked eye observation ) कहा करते हैं। वह स्थान या गृह विशेष जहां विविध प्रकारके वेधयंत्र स्थापित रहते हैं और जहाँ वैज्ञानिक प्रणालीसे आकाशस्थ पिंडोंका पर्यवेक्षण करके उनकी गति, स्थिति आदिका ज्ञान प्राप्त किया जाता है वेध शाला ( observatory ) कहाता है।

हमारे यहाँके सिद्धांतग्रंथोंमें जो ग्रहोंकी गति-स्थिति आदिके सूक्ष्म मान दिये हुए हैं उनको देख कर बड़े बड़े यूरोपीय विज्ञानी चकरा जाते हैं और उनको बहुधा यह शंका होती है कि हमारे यहाँ यंत्र-निर्माण संबंधी शिल्प तथा प्राकृतिक चमत्कारों के अवलोकन की ओर लोगोंकी रुचि नहीं थी और न हमारे यहाँ वेधपरंपराका प्रचार ही था; तो फिर हमको वह पूर्ण स्थितिको पहुंचा हुआ ज्योतिष शास्त्र विषयक ज्ञान ( क्योंकि हमारे ज्योतिषके ग्रंथ सर्वत्र सिद्ध अंकोंसे भरे हुए हैं) क्यों कर प्राप्त हुआ है। इन अंकोंको किस किसने किस किस समयमें किस वैज्ञानिक प्रणालीसे और कितने वर्षोंके वेधोंके अनंतर सिद्ध किया—इस विषयपर किसीने प्रकाश नहीं डाला; किन्तु इस प्रकार की शंका करनेवालों को हमारी प्राचीन स्थिति और नैसर्गिक रुचिका ज्ञान नहीं है। जिस समय छापेखानोंकी बात तो दूर रही, लिपिका प्रचार भी नहीं था और न लिखनेके साधन ही सुलभ थे—कहाँ तक कहें अतीव प्राचीन समयमें तो लिपिका अस्तित्व भी नहीं था—ऐसे समयमें भी गुरुशिष्य परंपरासे संपूर्ण ज्ञान मौखिक रूपमें था। उस समय शोध द्वारा जो सिद्धान्त निष्पन्न हुए वह तो संक्षिप्त रूपमें कंठस्थ होकर बच रहे; किन्तु उनकी उपपत्ति और साधन कालान्तरमें नष्ट हो गये। एक बात यह भी है कि उन दिनों सर्वसाधारण लोग श्रद्धालु होते थे, जिससे सूर्यादि ग्रहोंके ग्रहण और उनके उदय अस्तादि चमत्कारोंकी भावी परिस्थिति बता देनेवाले दैवज्ञ माने जाते थे और उनके ज्ञानको लोग अलौकिक मानते थे। अतएव उस समयके विद्वान् लोग अपने ग्रंथोंमें जिन सिद्धांतोंका वर्णन करते थे वह सब परिणाम रूपमें होते थे। उनकी उपपत्ति, उनके पूर्व रूप और उनके साधनोंको गुप्त रखते थे। अनेक ग्रंथोंपर देवताओं या महर्षियोंके नामकी छाप भी लगा दी जाती थी, जिससे कालांतरमें उन ग्रंथोंको अपौरुषत्व प्राप्त हो जाता था।

हमारे साहित्यमें ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं, जिनसे सिद्ध हो जाता है कि हम लोगोंमें वेधपरंपराका प्रचार था। ऋग्वेदमें २७ नक्षत्रों, सप्तर्षि आदि तारों और ग्रहोंकी परिस्थिके विषयमें अनेक वर्णन हैं तथा शनिकृत रोहिणी शकटके भेदका उल्लेख है। रोहिणीपर चंद्रमाकी अतिशय प्रीतिका और १८ वर्षोंमें ६ वार उसकी निकट युतिका वर्णन यजुर्वेद तथा तैत्तिरीय संहितामें मिलता है। आश्वलायन सूत्रमें ध्रुव और अरुन्धतीका वर्णन है। वाल्मीकि रामायण और महाभारतमें कई जगह ग्रहों और धूमकेतुओंके उदय अस्तादिका तथा उनसे होनेवाले फलाफलका वर्णन

है। गर्गादि प्राचीन संहिताओंमें ग्रहचारका विवेचन है। बाराह मिहिरने बृहत् संहितामें केतुचार नामक एक विस्तृत अध्यायमें अनेक धूम केतुओंके उदय अस्तादि तथा उनके भगण काल आदिका वर्णन किया है। उसपर भटोत्पलने जो टीका की है उससे कुछ प्रमाण उद्धृतकर देना अप्रासंगिक न होगा।

पैतामहश्चल केतुः पञ्चवर्षशतं प्रोष्य उदितः। अथोद्दालकः श्वेत केतुर्दशोत्तरं वर्षशतं प्रोष्यः दृश्य॥ काश्यप श्वेत केतुः पञ्चदशं वर्षशतं प्रोष्य ध्रुवं ब्रह्मराशि। सप्तर्षीन संस्पृत्यापसव्यं निवृत्यार्धं प्रदक्षिण जयकार शिख···सुभिक्ष मावहति। रश्मिकेतुः प्रोष्य शतमावर्त केतो सुदितश्चारांते कृतिकासु धूमाशिखः।

इसका भावार्थ यह है:—पैतामह केतु पांच सौ वर्ष प्रवासमें, अर्थात् सौर चक्रसे बाहर गुप्त अवस्थामें, रहकर फिर उदय होता है। उद्दालक श्वेतकेतु ११० वर्ष प्रवासमें रहकर उदय होता है। काश्यपका श्वेतकेतु १५०० वर्ष प्रवास दशामें रहकर उदय होता है और अपसव्य क्रमसे गमन करता हुआ और ध्रुव, अभिजित, सप्तर्षि पुञ्जोंको स्पर्श करता हुआ अर्द्धप्रदक्षिणाकार पथसे आकाशका आक्रमण करता है; इसकी शिखा धूम्र वर्णकी होती है और उसके उदय कालमें सुभिक्ष होता है। विभावसु रश्मिकेतु १०० वर्ष लुप्त रहकर भावर्त नामक केतुके पीछेसे कृत्तिका नक्षत्रके पास उदय होता है। इसकी शिखा धूम्राकार होती है।

इन वाक्योंमें पितामह, उद्दालक, कश्यप आदि जो नाम हैं वह धूमकेतुओंके लिए प्रयुक्त हुए हैं; कारण यह है कि जिस ऋषिने या ऋषिकुलने जिस धूमकेतुका पता लगाया वह धूमकेतु उसी ऋषिके नामसे निर्देशित किया गया। आजकल यूरोपीय ज्योतिषियोंमें भी ऐसी ही प्रथा है। उन लोगोंने भी अपने खोजे हुये धूमकेतुओंके नाम हाले, एनकी आदि अपने अपने नामोंपर कल्पित कर लिये हैं।

पूर्वोक्त वर्णनसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि हमारे यहां वेधपरंपराका हज़ारों वर्षों तक अबाधित रूपमें नियम पूर्वक प्रचार रहा है। अन्यथा डेढ डेढ हजार वर्षोंमें जिनके चक्रकी पुनरावृत्ति होती है उन धूमकेतुओंका क्योंकर पता लगता। हमारे ऋषि लोग एकान्तमें रहकर आकाशका नित्य अवलोकन करते थे। उस समयकी लोक परिस्थिति और आवश्यकताके अनुसार नाना प्रकारके वेध-यन्त्र और वेधशाला भी थीं। उन वेधशालाओंमें राज्य-प्रबंधसे वेधका काम भी चलता रहता था। हमारे ज्योतिषियोंने अपने ग्रंथोंमें जगह जगह ग्रहोंकी गति, परिस्थिति आदि के बीज संस्कार दिये हैं। वह किसी न किसी वेधके ही आधारसे सिद्ध हुए होंगे। केशवने स्वकृत ग्रहकौतुक और उसकी मिताक्षरा टीकामें अपने वेधोंका वर्णन किया है। कमलाकरने अपने सिद्धांततत्वविवेकमें ध्रुव तारेका चलना सिद्ध किया है। इन बातोंसे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हमारे ज्योतिषशास्त्रकी उत्पत्ति भी नैसर्गिक वेधपरंपरासे हुई है। ग्रह नक्षत्रादिकी गति और परिस्थितिका सूक्ष्म ज्ञान बिना वेधपरंपराके नहीं हो सकता और सूक्ष्म वेध बिना वेध-यंत्रोंके नहीं किया जा सकता।

इस प्रकरणमें हम अपने वेध-यंत्रोंकी निर्माणविधि उनकी रचना और उपपत्ति तथा उपयोगके विषयमें भी चर्चा करेंगे, जिससे ज्योतिषशास्त्रमें जिन विषयोंका निरूपण किया गया है, उनका प्रयोगात्मक (Practical) अनुभव प्राप्त हो सकेगा। हमारे ज्योतिष शास्त्रमें निम्नलिखित यन्त्रोंका वर्णन है।

( १ ) गोलयंत्र, जिसके लिए अंग्रेजीमें सिलेश्चियल ग्लोब ( Celestial globe ) संज्ञा प्रयुक्त होती है।

( २ ) कपाल यंत्र, जो हैमिस्फेयरिक डायल ( Hemispherical dial ) कहलाता है।

( ३ ) नाडीवलय, जो ( Equatorial dial ) इक्वेटोरियल डायल कहलाता है।

( ४ ) पलभा यंत्र, जो ( Horizontal dial ) होरिज़ंटल डायल कहलाता है।

( ५ ) क्षितिज-शंकु-यंत्र ( Transit Rod ट्रांज़िट रौड )।

( ६ ) सम-मंडल-यंत्र ( Vertical dial वरटिकल डायल )।

( ७ ) सम-मंडल-शंकु ( Transit rack ट्रांज़िट रैक )।

( ८ ) चक्र-यंत्र ( Transit Circle ट्रांज़िट सरकिल )।

( ९ ) चाप-यंत्र ( Semicircle सेमी सरकिल )।

( १० ) तुरीय-यंत्र ( Quadrant क्वाड्रेंट )।

( ११ ) फलक-यंत्र ( Protractor Circle प्रोट्रेक्टर )।

( १२ ) यष्टि-यंत्र ( Transit Stick ट्रांज़िट स्टिक )।

प्रत्येककी निर्माण विधि पृथक् पृथक् कही जायगी। प्रसंगके अनुसार पहले हम गोलयंत्रको ही लेते हैं। इसकी उपपत्ति समझ लेनेसे और यंत्रोंकी उपपत्ति समझनेमें कठिनता नहीं होती; क्योंकि अन्य सब यंत्र गोलयंत्रके ही रूपांतर या उसके किसी न किसी अंगके प्रतीक मात्र हैं।

### २—गोल यंत्र

गोलयंत्र ज्योतिर्विज्ञानका मुख्य यंत्र है। यह प्राकृतिक खगोलकी आकृतिका दर्शक है। ग्रह नक्षत्रादिकी गोलीय परिस्थिति, क्रांतिवृत्त, विषुव वृत्त, याम्योत्तर वृत्त, उन्मंडल, सममंडल, अहोरात्र वृत्त, लग्न, होरा, कदंब, ध्रुव, खस्वस्तिक आदि पारिभाषिक शब्दोंकी व्याख्या, लग्नमान, दिन रातकी घटा बढ़ीकी उपपत्ति नक्षत्रोंके उदय अस्त, विषुवांश और क्रांतिका ज्ञान, ग्रहोंके भोग तथा शरका ज्ञान इत्यादि अनेक बातें इस यंत्रके उपयोगसे स्पष्ट हो जाती हैं।

यह यंत्र तीन भागोंमें विभक्त होता है। प्रथम भागमें खगोल और ध्रुव यष्टिकी योजना है; दूसरेमें नाड़ीवलय, उन्मंडल, ध्रुव यष्टिके आधार स्थान और स्वयंवह यंत्रादिकी रचना रहती है और तृतीय भागमें—जो सबसे बाहर रहता है—स्थानीय क्षितिज वृत्त, सममंडल और मध्यान्ह याम्योत्तर-वृत्त तथा गोल सहित उन्मंडलादिके पूर्वापर आधार स्थान रहते हैं।

#### खगोलीय भागकी रचना

किसी लोचदार हलकी लकड़ीका पोला और जहां तक हो सके हलका खरादवां १२ अंगुल व्यासका एक पोला गोला बनवाओ। पाश्चात्य पदार्थ वैज्ञानियोंने सींगके सदृश लोचदार और बहुत हलका सेलुलाइड ( Celluloid ) नामक एक कृत्रिम पदार्थ तैयार किया है। उसका गोल मिल जाय तो अति उत्तम है। ऐसे गोलेको आकाशके रंगका नीला रङ्गवाकर उसके बीचों बीच लोहेकी सूक्ष्म ध्रुव यष्टि ( Axis ) लगा कर स्थिर कर दो, जिससे गोला यष्टिके साथ घूमे। यह यष्टि खगोलकी अक्षरेखाका काम देगी और उसके दोनों सिरे दोनों ध्रुव स्थानोंकी जगह होंगे।

दोनों ध्रुव स्थानोंसे बराबरके अंतरसे एक मध्य परिधि खींचो जो गोलको दो समान भागोंमें विभक्त करे। इसको निरक्षवृत्त या विषुववृत्त कहते हैं। इस वृत्तको पूर्वापर बराबरके चार भागोंमें विभक्त करनेवाले दो याम्योत्तर वृत्त खींचो जो इसपर नब्बे नब्बे अंशके अंतरसे लम्बरूप सम्पात करते हुए दोनों ध्रुव स्थानोंको बेधें। इन वृत्तोंको ३६० अंशात्मक भागोंमें विभक्त करके प्रति पंद्रह अंशोंके अंतरसे निरक्षवृत्तके समानांतर पूर्वापर एक एक वृत्त खींचो। यह वृत्त खगोलकी पंद्रह पंद्रह अंशकी अंतरवाली स्पष्टपरिधि कहलायेंगी। इनमें से ६ वृत्त तो विषुववृत्त और उत्तर ध्रुवके बीचमें और ६ विषुववृत्त और दक्षिण ध्रुवके बीचमें होंगे। इस प्रकार सम्पूर्ण गोलके तलेऊपर १२ खंड हो जायंगे।

पूर्वोक्त याम्योत्तर वृत्तोंसे विषुववृत्तके ४ समान भाग हो गये थे। उन प्रत्येक भागमें पंद्रह पंद्रह अंशके छः छः विभाग और करो और प्रत्येक विभाग चिन्हपर एक एक याम्योत्तर वृत्त खींच दो, जो उक्त चार याम्योत्तर वृत्तोंकी तरह विषुव वृत्त और स्पष्ट-परिधि-वृत्तोंपर लम्बरूप सम्पात करते हुए दोनों ध्रुव स्थानोंपर परस्पर मिल जायंगे। इन याम्योत्तर वृत्तोंको—जो २४ होंगे- विषुवांश संज्ञा प्राप्त होगी।

फिर विषुववृत्त और किन्हीं भी दो याम्योत्तर वृत्तोंके संपात स्थानोंपर जो एक दूसरे से बारह होरा या १८० अंशके अंतरपर हों २३° २८के विक्षेप कोण उत्पन्न करता हुआ एक वृत्त खींचो। यह क्राँतिवृत्त होगा। इसके और विषुववृत्तके पूर्व संपातको मेष विषुव स्थान या वसन्त सम्पात कहते हैं। यहांसे ६ राशि वा १८० अंश चलकर जो दूसरा संपात है उसको तुला विषुव स्थान या शरद सम्पात कहते हैं। इन विषुव स्थानोंसे ६० अंशके अंतर पर जो याम्योत्तर वृत्त हैं उनके और क्रांतिवृत्तके ऊर्ध्व संपातको जो उत्तर ध्रुवकी ओर २३° २८′ झुका हुआ है कर्कादि या दक्षिणायन संधि कहते हैं। और जो उक्त संपातोंके बीचमें दक्षिणकी ओरको याम्योत्तर वृत्त है उसके और क्रांति वृत्तके अधः संपातको मकरादि या उत्तरायण संधि कहते हैं। इन संपातों और अयन सन्धियोंसे क्रांतिवृत्तके चार समान भाग होते हैं। इन भागोंको तीन तीन विभागोंमें और विभक्त करो। इस प्रकार सम्पूर्ण क्रांतिवृत्त बारह समान भागोंमें विभक्त हो जायगा; जिसका प्रत्येक भाग तीस अंशोंका होगा। उन्हीं विभागोंको सायन मेष, सायन वृष आदि संज्ञा प्राप्त है। इन राशि चिन्होंसे एक एक याम्योत्तरवृत्त क्रांतिवृत्तपर लम्बरूपक संपात करते हुए खींचे जायँ तो यह पूर्वोक्त ध्रुव स्थानों-पर न मिलकर ऐसे दो विन्दुओं पर मिलेंगे जो ध्रुव स्थानोंसे २३° २८′ हटे हुए एक दूसरेसे १८०° अंतरपर एक ही सूत्र रेखा या वृत्तपर होंगे। यह विन्दु कदंब या क्रांतिवृत्तके केन्द्र कहलाते हैं। उत्तर कदंब उत्तर ध्रुवसे २३° २८′ विषुव वृत्तकी ओर हटा हुआ १८ वीं होरा पर होगा और दक्षिण कदंब दक्षिण ध्रुवसे २३° २८′ हटा हुआ ६ होरा पर होगा।

वसंत संपातसे पूर्वकी ओर ३० अंश चलकर क्रांति वृत्तपर जो राशि चिन्ह है उसे मेषान्त स्थान कहते हैं। इसका क्रांति या निरक्षवृत्तसे याम्योत्तर अंतर ११° ०′ है। इस स्थानसे फिर पूर्वकी ओर ३० अंश चल कर क्रांतिवृत्त पर जो दूसरा राशिचिन्ह है उसको वृषभांत स्थान कहते हैं। इसकी क्रांति या ध्रुवोन्मुख अंशात्मक अंतर १६° ३०′ है। यहां से ३० अंश और हटकर जो राशि चिन्ह है उसे मिथुनांत स्थान कहते हैं और उसकी क्रांति २३° २८′ है। यहांसे दक्षिणायन अर्थात् क्रांति वृत्तका घुमाव दक्षिणको आरम्भ होता है। यहांसे ज्यों ज्यों क्रांतिपातकी ओर को हटेंगे त्यों त्यों क्रांति घटती जायगी। अतएव कर्क राशिकी क्रांति १६° ३०′ सिंहकी ११° ०′ और कन्यान्तकी ०° होगी। यह स्थान विषुव वृत्त पर होगा जैसा कि पहले कहा जा चुका है। यहांसे क्रांतिवृत्तके दक्षिणगोलमें चलना आरंभ होगा। फिर तुला राशिकी क्रांति ११° ०′ वृश्चिककी १६° ३०′ और धनकी २३° २८′ होगी। इस स्थानसे उत्तरायणका आरम्भ होगा, जिससे मकरकी क्रांति ११° कुम्भकी १६° ३०′ और मीनकी होगी। यह स्थान भी विषुव वृत्तपर होगा।

अब यदि क्रांतिपात स्थानोंसे उत्तर और दक्षिण एक एक पूर्वापर वृत्त-विषुववृत्तके समानान्तर, ११°०′ हटकर, एक एक १६° ३०′ हटकर और एक एक २३° २८′ हटकर खींचे जायँ तो इन प्रत्येक वृत्तों पर दो दो राशि चिन्ह पड़ेंगे। केवल उत्तर तथा दक्षिण के परम क्रांति-अर्थात् २३° २८′ वाले वृत्तोंपर एक एक राशि चिन्ह होगा। मीनांत और कन्यान्त स्थान तो विषुववृत्त और क्रांतिवृत्तके सम्पात स्थानोंपर होंगे। मेषान्त और सिंहान्त

स्थान उत्तर गोल ( Northern hemisphere ) में विषुव वृत्तसे चलकर पहले वृत्तपर होंगे, वृष-भान्त और कर्कान्त स्थान दूसरे वृत्तपर मिथुनांत स्थान अकेला ही तीसरे वृत्तपर होगा। इसी प्रकार दक्षिण गोलमें पहले वृत्तपर तुला और कुम्भके स्थान होंगे, दूसरे वृत्तपर वृश्चिक और मकर स्थान होंगे और तीसरे वृत्तपर धनु स्थान होगा। यह वृत्त पूर्वोक्त राशियोंके अहोरात्र वृत्त कहलाते हैं। सूर्य्य क्रान्तिवृत्तमें अपनी स्वाभाविक गति-अर्थात् पश्चिमसे पूर्वकी भोगगति-से गमन करता हुआ जब जिस राशिके अहोरात्र वृत्तपर रहता है तो उस समय उसका उदय अस्त उसी वृत्तपर होता है।

फिर जिस प्रकार ध्रुव स्थानोंको केन्द्र मानकर विषुववृत्तके समानान्तर उत्तर और दक्षिण दोनों ओर छः छः स्पष्ट परिधि खींची गई थीं उसी प्रकार कदम्ब बिन्दुओंको केन्द्र मानकर क्रान्तिवृत्तके समानान्तर भी उत्तर दक्षिण दोनों गोलोंमें छः छः पूर्वापर वृत्त खींचो। इन वृत्तोंसे ग्रह नक्षत्रादिके शरांशका ज्ञान होता है।

विषुवांश होरा आदि वृत्त काले रंगके और क्रान्ति वृत्त सम्बन्धी रेखाएँ और राश्यादि चिन्ह लाल रङ्गकी होनी चाहिये। कदम्ब बिन्दुओं ( क्रांतिवृत्तके केन्द्रों ) से २३°२८' की त्रिज्यासे क्रांति वृत्तके समानान्तर एक वृत्त उत्तरमें और एक दक्षिणमें खींचो। इन वृत्तोंपर ध्रुव चलते हैं। इनको ध्रुव कक्षा कहते हैं।

इस प्रकार गोले पर पूर्वापर और याम्योत्तर वृत्तों और संपात ध्रुव कदंबादि बिन्दुओं के अंकित हो जाने पर, नक्षत्र परिचयमें बताई हुई विधिके अनुसार उसपर अश्वनी आदि २७ नक्षत्र, सप्तर्षि, कालीय, शर्मिष्ठा, लघुऋक्ष, ध्रुव, ध्रुवमत्स्य, अभिजित, ब्रह्म हृदय, अगस्त्य, मित्र, ब्रह्मा, त्रिशंकु, गर्ग, कपि, मनु, नल, गौतम, इन्द्र, लुब्धक, प्रश्वा, अग्नि आदि तारकापुंजोंको उनके ध्रुवक और विक्षेप भागों पर छोटे बड़े, जो जैसे हैं उसी प्रमाण से अंकित करो। आवश्यकताके विचारसे भौम आदि ग्रहोंकी कक्षाएं भी अंकित करदो। यह सब रचना हो जाने पर दृष्टांत खगोल संपूर्ण हो जायगा।

ध्रुव-यष्टि-आधार-भाग

अब पूर्वोक्त गोलेको धारण करनेवाले वृत्तोंकी योजनाका प्रकार कहा जायगा। पीतलके पत्रके दो कुंडल ऐसे बनाओ जिनके भीतरी व्यास उस दृष्टान्त खगोलसे कुछ बड़े हों और ऐसे कि उनमें गोलेके घूमनेमें रुकावट न हो। फिर इन कुंडलों या वृत्तोंको अंश कलादि मानोंसे अंकित करके परस्पर लंब भावसे बीचों बीच स्थिर कर दो। इनमेंसे एक तो नाड़ी वलय ( विषुवमंडल ) के स्थानमें और दूसरा उन्मंडलके स्थानमें रहेगा। नाड़ीवलय-को घटी पलादि काल मापक चिन्होंसे भी अंकित करो। नाड़ी वलय और उन्मंडलके पूर्व संपात स्थान पर ०० अंश, १५ घटी, और ६ घंटोंके चिन्ह होने चाहियें। यहांसे विषुव वृत्त पर ऊर्ध्व स्थान तक उन्नतांश और उन्नत कालके चिन्ह और वहांसे पश्चिम संपात तक नतांश और नतकालके चिन्ह होने चाहियें। ऊर्ध्व स्थान पर, जो मध्य कालीन याम्योतर वृत्त के धरातल में होगा, ९० अंश, ३० घटी, और १२ घंटेके चिन्ह अंकित होने चाहियें। विषुव वृत्त और उन्मंडलके पश्चिम संपात पर भी ०० अंश १५ घटी और ६ घंटेके अंक होने चाहियें। नाड़ी वृत्तके अधोभागमें भी ऊर्ध्व भागके सदृश चिन्होंकी योजना होनी चाहिये। वहां मध्याह्नकी जगह मध्य रात्रिके चिन्ह होंगे। चित्र १ में दिखलाई हुई विधिके अनुसार खगोल सहित ध्रुव यष्टिके सिरोंको उन्मंडलके उत्तर और दक्षिण ध्रुव स्थानों पर प्रतिष्ठित करो और दक्षिणवाले आधार स्थान पर पूर्वोक्त ध्रुव शलाकाके सिरेमें स्वयंवह ( Automatic motion ) यंत्र-शक्तिकी योजना कर दो और उत्तर वाले सिरे पर एक ऐसा पेच ( Screw ) लगा दो जिससे गोलको चाहे जिस अक्षांश पर स्थिर रखा जा सके और स्वयंवाहक शक्तिसे शलाका सहित गोल पूर्वसे पश्चिमको सर-

लता पूर्वक घूम सके। पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता शिल्पियोंने एक नाक्षत्र काल दर्शक ( Sidorial Clock ) यंत्रका निर्माण किया है। उस यंत्रका प्रधान अक्ष एक नाक्षत्र अहोरात्रमें एक चक्र पूरा करता है। हमने अपने गोलको इसी यंत्रसे घुमानेकी योजना की है। सूर्य्य सिद्धांत तथा सिद्धांत शिरोमणिमें गोलके घुमानेमें जल और पारेके संयोगसे स्वयंवह शक्ति उत्पन्न करनेकी विधि बताई है। किन्तु पारे और जलका ठीक ठीक परिमाण तथा उनके संयुक्त करनेकी विधिका स्पष्ट रूपसे वर्णन नहीं किया। उन आचार्य्योंने स्वयंवह करनेकी विधिको गोप्य वस्तु बताया है। जैसे,

तुङ्गबीज समायुक्तं गोल यन्त्रं प्रसादयेत्।
गोप्यमेतत् प्रकाशोक्तं सर्वगम्यं भवेदिह॥

पारे और जलके संयोगसे गोल यन्त्रको स्वयंवह करनेकी विधि गोप्य वस्तु है, इसलिए स्पष्ट नहीं कही गई; क्योंकि स्पष्ट कह देनेसे विषय सर्व गम्य हो जाता है। एक अमूल्य वैज्ञानिक तत्त्व इस गोप्य परम्पराके अन्धकूपमें लुप्त होगया।

स्थानीय आधार भाग

फिर चित्रमें दिखाई हुई आकृतिके अनुसार पीतलके तीन कुन्डल तैयार करवाओ, जो पूर्वोक्त उन्मण्डलादिसे कुछ बड़े हों। इन कुण्डलोंमें से एकको क्षितिजके धरातलमें, दूसरेको सममण्डलमें और तीसरेको मध्यान्ह याम्योत्तर मण्डलमें स्थित करो। क्षितिज वृत्तपर पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओंके चिन्ह करो तथा दिगंश भी अंकित कर दो। याम्योत्तर वृत्त तथा सममण्डलको भी अंशादि से अङ्कित कर दो। क्षितिज वृत्त और सममण्डलके पूर्वापर सम्पात स्थानोंमें उन्मण्डलादि सहित गोल यन्त्रके स्थापित करनेके आधारोंकी योजना करो, इन साधारण स्थानोंसे गोलको याम्योत्तर वृत्तमें चाहे जितना घुमाया जा सकता है और पूर्वोक्त पेच (Screw) के सहारे ध्रुव शलाकाको चाहे जिस अक्षांश पर ठहराया जा सकता है।

दिक शोधन करके यंत्रको ऐसे सुरक्षित स्थान में स्थापित करो जहांसे नभोमंडलका दृश्य ठीक ठीक दिखाई देता हो। स्थानीय अक्षांशके अनुसार यंत्रकी ध्रुव यष्टिको ध्रुवोन्मुख सूत्रमें कर लो। फिर ग्रह स्थान स्पष्ट करके ग्रहोंको यंत्रगोलमें भोग और शरके अनुसार अंकित करो और रोहिणी, आर्द्रा, मघा, चित्रा, ज्येष्ठा और श्रवण आदि किसी भी नक्षत्रका योग तारा यंत्रके संचालन कालमें जब स्थानीय मध्यान्ह या मध्यरात्रिके याम्योत्तर वृत्त पर आरूढ़ हो उसी समय यंत्रगोलगत उसी योग तारेको यंत्रके याम्योत्तर वृत पर पहुंचा दो तथा स्वयंवह यंत्रको भी चालू करदो। यह दृष्टान्त गोल प्राकृतिक खगोलके अनुसार भ्रमण करेगा।

पूर्वोक्त योजनाके अनुसार क्षितिज वृत्तके पूर्वार्द्धमें ग्रह नक्षत्रोंकी उदयकालीन (rising) परिस्थिति तथा उसीके पश्चिमार्द्धमें उनकी अस्त कालीन व्यवस्था और उनके दिगंश पास होंगे। सूर्यके दैनिक स्पष्ट स्थानसे नाडीवलय और अहोरात्र वृत्तोंपर दिनरात की घटा बढ़ी तथा समयका ज्ञान होगा। उन्मंडल और क्षितिज मंडलके बीचमें अहोरात्र-वृत्तोंके चाप खंडोंसे लग्नोंके अंशात्मक तथा घटि पलात्मक मान ज्ञात होंगे। विषुववृत्त और याम्योत्तर वृत्तोंसे ग्रह नक्षत्रादिके विषुवांश और क्रांति ज्ञात होंगी। क्रांति वृत्त और कदंब प्रोत वृत्तोंसे ग्रहोंके योग और शरका ज्ञान होगा। ध्रुव-प्रोत-वृत्तों और कदंब-प्रोत-वृत्तोंके नाड़ीवृत्त और क्रांतिवृत्त पर परस्पर संपात स्थानोंसे ग्रहोंके उदयांतर ( Equation of time ) निष्पन्न होंगे। सममंडल और याम्योत्तर वृत्तसे ग्रहोंके उन्नतांश ज्ञात होंगे और नाड़ी वलयसे समयका सूक्ष्म ज्ञान होगा। योजना और प्रयोग भेदसे और भी अनेक बातोंकी उपपत्ति इस यंत्रसे ज्ञात हो सकती है। हमने इस यंत्रकी उपयोगविधि बहुत संक्षेपसे कही है।
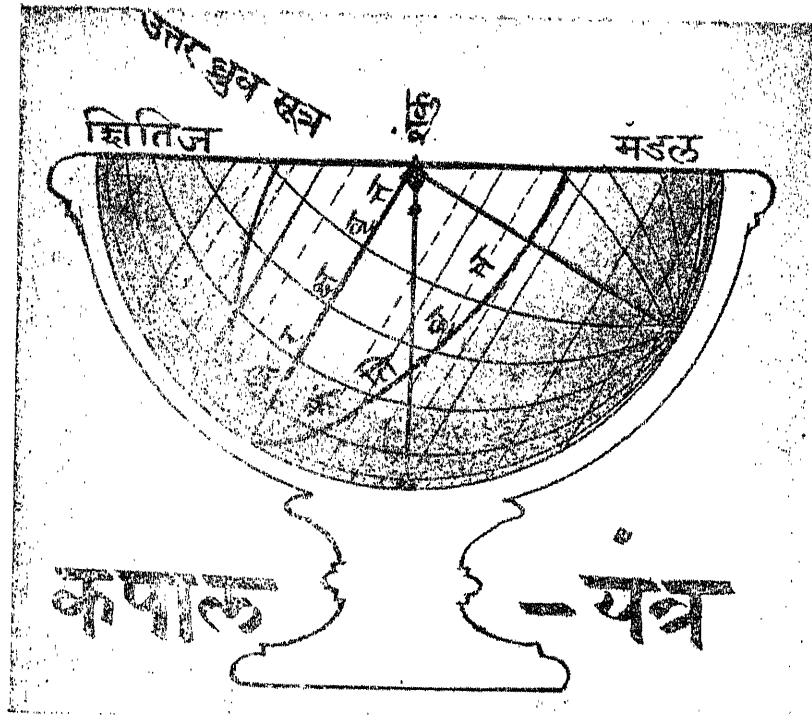
चित्र २
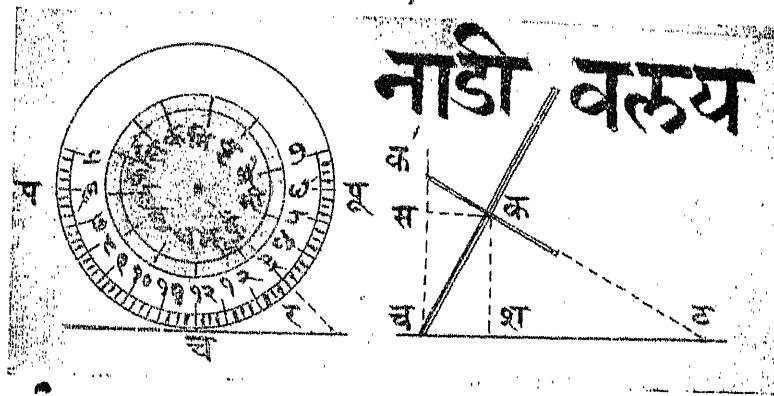
चित्र ३

३—स्थायी वेध यंत्र

( १ ) कपाल यंत्र ( Hemispherical dial )

मानलो कि हमने पूर्वोक्त खगोलकी रचनामें काठके गोलेके स्थानपर कांच या अभ्रक सरीखे किसी पारदर्शक ( Transparent ) गोलेका उपयोग किया है, जिससे उसकी बाहरी रेखाएँ उसके भीतरी धरातलपर ज्योंकी त्यों दिखाई देती हैं। गोलेके उदरगत जो केन्द्र स्थान है उसमें एक विन्दुकी कल्पना करो और पूर्वोक्त विधिके अनुसार इसको भी कहीं ऐसे स्थानमें स्थापित करो जहां दिनभर इसपर सूर्यकी किरणें पड़ती रहें। अब यद्यपि इस खोखले गोलेका मध्यविन्दु भूकेन्द्रमें नहीं, भूपृष्ठपर है तथापि उसकी छाया पृथिवीकी दैनिक गतिके कारण पश्चिमसे पूर्वको समान गतिसे घूमती हुई गोलेकी भीतरी परिधिमें अहोरात्रमें एक वृत्त पूरा करेगी जिसका धरातल विषुववृत्तके धरातलमें होगा। इस छायावृत्तके प्रत्येक भागकी दिक, देश और काल सम्बन्धी परिस्थितिका ज्ञान गोल गत रेखाओंसे प्राप्त हो सकता है।

यदि हम इस गोलेको क्षितिजवृत्त या उन्मण्डलके धरातलसे दो समान भागोंमें विभक्त कर दें तो उसके दो कपाल बन जायँगे। इन्हीं कपालोंको रूपान्तरसे कपाल-यन्त्रकी उत्पत्ति होती है। यह यन्त्र दो प्रकार से बनता है। एक तो क्षितिज मंडलमें और दूसरा उन्मण्डलमें बनाया जाता है। क्षितिज मंडलके कपालका ध्रुवस्थान स्थानीय अक्षांशकी ऊंचाई पर उत्तरकी ओर कपाल से बाहर छुट जाता है। अतएव ध्रुव-प्रोत-वृत्तउत्तरकी ओर क्षितिज वृत्तमें लगकर समाप्त हो जाते हैं। उन्मण्डलवाले कपालकी अंकन विधि ठीक गोल यन्त्रके ही अनुसार होती हैं। क्षितिज वृत्त या उन्मण्डलके पूर्वापर और याम्योत्तर सूत्रोंके सम्पात कपाल गत केन्द्रमें वेध विन्दुकी योजना की जाती है। वेध-विन्दुका काम ऊर्ध्व शंकु से भी लिया जाता है। शंकुका शिरोभाग कपालके मध्यस्थानमें रखना पड़ता है। इस विन्दुकी छाया से कपाल गत ध्रुव प्रोत वृत्तों और अहोरात्र वृत्तों के संयोगसे सूर्यादि ग्रहोंके भोग, शर, क्रान्ति और विषुवांशादि अनेक बातें ज्ञात होती हैं। हमने इस यन्त्रकी उपपत्तिके निरूपणमें पारदर्शक गोलेका नाम लिया है, किन्तु कपाल पाषाणादि चाहे जिस पदार्थ का भी बनाया जाता है।

( २ ) नाडी वलय यंत्र ( Equatorial dial )

गोल यंत्रमेंसे नाड़ी वलयको अलग करके उसे चक्रका रूप दिया जाय और उसे ऊर्ध्व रेखासे स्थानीय अक्षांशकी बराबर दक्षिणकी ओर झुकाकर क्षितिजपर पूर्वापर सूत्रमें स्थापित कर दिया जाय। नाडी वृत्तका धरातल विषुववृत्तके धरातलमें रहेगा। फिर इसके केन्द्रमें एक ध्रुवाभिमुख शलाका या त्रिभुज स्थापित किया जाय। अब क्योंकि यह वलय भूगोलके निरक्ष वृत्तके या उसके समानांतर धरातलमें है और इसकी शंकुरेखा ध्रुवोन्मुख सूत्रमें, अतएव शंकुकी छाया सूर्यकी दृश्य गतिके अनुसार-किन्तु विलोम क्रमसे ( अर्थात् पश्चिमसे पूर्वको )-समान गति से चलती हुई वलयके मुख पर अहोरात्रमें एक चक्र पूरा करती है जिससे कालमापक भागोंकी समानता निष्पन्न हो जाती है। इसमें घड़ीका मान $\frac{३६०}{६०}$ =६° और घण्टेका $\frac{३६०}{२४}$=१५° निश्चित होता है। गोलयंत्रके प्रयोग अथवा गणितसे इसपर स्वदेशीय उदय अस्त, लग्न, होरा, द्रेष्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश आदि षड्वर्गोंकी भी योजना की जा सकती है।

संगमरमर पत्थर या अन्य किसी पदार्थके चक्र पर चित्र नं० ३ में दिखाई गई विधिसे पूर्वोक्त समय और षड्वर्गमापक चिन्ह अंकित करो। कालमापक विषुवांश आदि चिन्ह चक्रके अचल भागमें, जो बाहरकी ओर रहेगा, अंकित करो और स्थानीय राशि आदि चिन्ह, जिनका सम्बन्ध क्रांति वृत्तसे है, चक्रके मध्य गत चल भागमें बनाओ। चक्रके केन्द्रमें कलईदार लोहेकी सूक्ष्म शलाका,

अथवा त्रिभुज जिसकी सूत्र रेखा ध्रुवाभिमुख हो और जो चक्रके व्यासकी बराबर हो तथा उसके दोनों मुखोंपर बराबर निकली रहे ठीक गुनिएमें स्थिर कर दो। फिर शंकु सहित इस चक्रको किसी चोरस स्थानमें उक्त चित्रमें पसवोड वाली आकृतिमें दिखाई गई विधिसे स्थापित करो। चक्रका धरातल पूर्वापर सूत्रमें स्थानीय लम्बांशकी बराबर दक्षिणकी ओर क्षितिजसे उठा रहेगा।

क्योंकि यह चक्र नाडी वृत्तके धरातल में है अतएव विषुव दिनोंमें चक्रके दोनों मुखों पर शंकुकी सूक्ष्म छाया पड़ती है। सूर्य जब दक्षिण गोलमें रहता है उन दिनो उत्तर वाले मुख पर छाया रहती है और दक्षिणवाले मुख पर घाम रहती है, किन्तु जब सूर्य उत्तर गोलमें रहता है तो दक्षिण वाला मुख छायामें डूबा रहता है और उत्तर वाले मुख पर घाम रहता है। इसलिए चिन्ह दोनों मुखों पर देने चाहियें। किन्तु उत्तर वाले मुख पर जो अंकन क्रम होगा उससे उल्टा क्रम दक्षिण वाले मुख पर होना चाहिये। उत्तरवाले मुख पर जहां दिनके पूर्वार्द्धके चिन्ह हैं ठीक उन्हींके नीचे दक्षिणवाले मुख पर दिनके परार्द्धके चिन्ह होंगे। यह यंत्र चल भी बन सकता है। चल बनाना हो तो क्षितिज पर जो चक्रके स्थापन करनेका स्थान है वहां एक कवजा ( Hinge ) लगा देना चाहिये जिससे चक्र स्थानीय अक्षांशके अनुसार घटा बढ़ा कर स्थापित किया जा सके। अक्षांश भेदसे राशि आदि मानोंमें अंतर पड़ जाता है अतएव चल नाड़ीवलयमें राशि आदि षड्वर्गकी योजना करनेमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है।

<चतफ=<चकत=खमध्य लंब रेखासे नाड़ीवृत्त के नतांश=ध्रुवोन्नति=अक्षांश।

<कतच=९०°—अक्षांश=क्षितिजसे नाड़ीवृत्तके उन्नतांश=लंबांश।

भास्करा चार्य ने इस यंत्रकी निर्माण विधिका इस प्रकार वर्णन किया है।

अपहृते कुज लग्ने लग्नं चाथो खगोल नलिकांत।
भूस्थं ध्रुव यष्टिस्थं चक्र विजोदये श्चांक्यं॥
व्यस्ते यष्टिभाया मुदयेर्के न्यस्य नाड़िका ज्ञेयाः।
इष्ट छाया सूर्यांतरेय लग्न प्रभायां च॥
केन चिदाधारेण ध्रुवाभिमुख कीलकेन घृते।
अथवा कीलछाया तल मध्ये स्युर्नता नाड्याः॥

इसका तात्पर्य पूर्वोक्त उपपत्तिमें आ गया है।

(असमाप्त)

............मिश्र।

---

# घृणा

( गतांकसे आगे )

णाके सम्बन्धमें हम चार मोटी मोटी बातें बतला चुके हैं। स्वार्थका संघर्ष, सत्य-धर्म-सम्बन्धी अभिरुचिके कारण अनुचित कर्म्मके दृश्य, योग्यता अथवा क्षमताके विद्यमान रहते हुए भी दुर्बलता विशेष, तथा सौन्दर्य्यको भिन्न भिन्न कालमें भिन्न भिन्न रूपमें देखनेकी मानव-हृदयकी इच्छा आदिसे किस प्रकार घृणाके भावोंका उदय होता है, यह हम गताङ्कमें समझा चुके हैं। इनमें से पहलेके विषयमें कुछ और निवेदन करके हम आगे बढ़ेंगे।

सच पूछिये तो घृणाका जो कुछ भी कारण बतलाया गया है वह सब स्वार्थके अन्तर्गत कहा जा सकता है; क्योंकि किसीका भला आचरण देखना, किसीसे किसी प्रकारके स्वार्थत्यागकी आशा करना अथवा किसीको अपने मनके अनुकूल सौन्दर्य-मय देखनेकी इच्छा करना भी तो वैसा ही स्वार्थ है जैसा स्वार्थ किसीसे रुपये माँगना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सब प्रकारको घृणा का कारण स्वार्थ ही है, निस्स्वार्थ-हृदयमें घृणाका उत्पन्न होना उतना ही असम्भव है जितना सूर्यके सामने कुहरेका टिका रहना। इस तरह यह जान

पड़ता है कि मानव-हृदय अधिकतर स्वार्थी ही होता है। स्वार्थ शब्दसे आज कल क्या सदासे लोग चिढ़ते आये हैं, जिसका कारण, जैसा कि हम पहले कह आये हैं, मनुष्यकी वह प्रवृत्ति है जिससे वह स्वयं भी स्वार्थी होता हुआ औरोंको स्वार्थी देख कर उन्हें बुरा भला कहता है और खिन्न होता है। परन्तु स्वार्थ शब्द अथवा उसके द्वारा व्यक्त किया जानेवाला भाव अवांछनीय भले ही हो, वह ऐसा निन्दनीय नहीं है कि लोगोंके सहृदय दृष्टि-पातका भी वह पात्र न हो सके। स्वार्थसे ही यह सारा संसार चल रहा है; उसीके कारण घृणा होती है, लड़ाइयां होती हैं और वह आघात-प्रत्याघात होता है, जिसके कारण मानव-जीवन-रसका परिपाक होता है, अस्तु।

हम कह आये हैं कि मनुष्यकी इच्छाओं और पशुकी इच्छाओंमें थोड़ा ही अन्तर होता है। पशु केवल आहार, निद्रा, मैथुन आदिसे ही परितृप्त हो जाता है, परन्तु मनुष्य इन सबके अतिरिक्त अन्य अनेक आकांक्षाओंमें भी रत होता है। मनुष्यके हृदयकी सबसे बड़ी दुर्बलता यह है कि वह चाहता है कि और लोग उस की चाटुकारी करें। साधारणसे भी साधारण ग्रामीण सेवकसे लेकर बड़ेसे बड़े महापुरुषोंके जीवनमें यह कमज़ोरी पायी गयी है। दूसरी बात जो जानवरोंमें नहीं पायी जाती किन्तु मनुष्यमें पायी जाती है वह यह है कि वह एक दिन के भोजनसे तृप्त न होकर अरबों खरबों सम्पत्ति जुटाना चाहता है। पेड़ोंके तले विश्रामसे सन्तुष्ट न होकर वह गगन-चुम्बी प्रासादोंके निर्माणका स्वप्न देखता है। तीसरी बात जो पशु और मनुष्यके जीवनमें स्पष्ट अन्तर दिखलाती है यह है कि मनुष्य जातिमें पुरुष और स्त्रीके सम्बन्धके स्थायी होजानेकी प्रवृत्ति होती है, जो पशु-जीवनमें सर्वथा नहीं देखी जाती। यह कहा ही जा चुका है कि मनुष्य स्वच्छन्द विचरनेवाला जीव है। साथ ही वह गम्भीर भी है, वह विश्राम-प्रिय भी है और शान्ति प्राप्तिके लिए वह अपनेको नियमों द्वारा नियन्त्रित भी करता है। पशु-जातिमें नर मादा प्रायः मैथुनके पश्चात् एक दूसरेकी परवाह नहीं करते, परन्तु मनुष्य-जातिमें पुरुष जिस स्त्रीका हाथ पकड़ता है उसके सुख-दुखका वह भागी बन जाता है। अतः पुरुषकी यह इच्छा होना स्वाभाविक ही है कि कोई दूसरा पुरुष उसकी प्रेम पात्रीके साथ सुख और शान्तिसे बीतनेवाले उसके जीवनमें बाधा न डाले; परन्तु इतना ध्यान बना रहना चाहिये कि हर हालतमें हमारा मतलब ऐसे व्यक्तिसे है जो किसी प्रकारको आत्मिक विकास-विशेषकी अवस्थाको नहीं प्राप्त हुआ है, जो दुख पड़नेपर दुखी होता है और सुख पड़नेपर सुखी। ऐसा ही आदमी घृणा कर सकता है तथा घृणाका पात्र हो सकता है। तीनों इच्छाओंके कारण किये जानेवाले प्रयत्नोंमें जो आघात-प्रत्याघात होता है, उसकी लीला-भूमिमें घृणा कहांसे फूट पड़ती है, इसे एक एक करके हम बतलाने की चेष्टा करेंगे।

लड़कपनमें, युवावस्थामें, सभीकी इच्छा होती है कि किसी तरह चारों ओर नाम फैले। इस लालसाकी पूर्त्तिके निमित्त समाजमें जिस गुणका विशेष आदर दिखलाई पड़ता है उसीकी ओर नवयुवकोंका चित्त आकृष्ट होता है। जब हम सभा-समाजमें कभी जाते हैं और वहां किसी व्यक्ति-विशेषका विशिष्ट सम्मान होते देखते हैं तो हममें से सबकी यह इच्छा होती है कि उसी प्रतिष्ठा प्राप्त सज्जनके से ही हम भी सर्व-साधारण के सम्मानके पात्र हों। इस कीर्तिकी कामनाके कारण बहुत से ऐसे ढंगोंका सहारा लेना पड़ता है जिससे समझनेवाले हमारे कीर्ति-लोलुप 'महाशय' के दिलकी बात ताड़ जाते हैं, और उनका मज़ाक उड़ाने लगते हैं। हमें हालमें ही एक ऐसे ही महोदयका दर्शन होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सभा-समाजमें वह किसी न किसी बहाने स्वयंको सबके सामने प्रकट करनेकी विशेष चिन्ता रखते हैं, फल यह होता है कि उनका उपहास

होता है। बराबरवालों की दिल्लगी और हँसीसे इस प्रकारके उपहासकी तुलना न करनी चाहिये। जो एक दूसरेको जानते हैं, तथा एक दूसरेको प्यार करते हैं, वह कितनी भी स्वतंत्रता-ग्रहण करें, उनका हास्य सभ्य होनेके साथ ही साथ आनन्द-दायक भी होता है, किन्तु जिस प्रकारके उपहासका उदाहरण हमने ऊपर दिया है वह घृणा उत्पन्न होनेके मार्गमें पहला कदम है। जब हम देखते हैं कि व्यक्ति-विशेष इतना अनाहत होनेपर भी अपने ढङ्गोंको नहीं छोड़ता और जब हमें यह ध्यान आता है कि स्वार्थ-साधनके निमित्त मनुष्य छिप छिप कर कितने प्रकारके नाच नाचता है, जब उसके कहने और करनेमें हमें आकाश और पातालका अन्तर दिखायी पड़ता है तथा जब उसकी अनाचार-शीलताके हमें एकाध उदाहरण मिल जाते हैं, तब हमारे-हृदयमें उसके प्रति श्रद्धा नहीं रह जाती, तब घृणाका उदय हो जाता है। कीर्तिकी कामना करना बुरा नहीं है, सच पूछिये तो यश-लालसाके आधारपर ही संसारको आश्चर्यमें डालनेवाले अनेक कार्य किये जाते हैं। नैषध, कादम्बरी, और Paradise lost जैसे सत्काव्य, ताज महल जैसी इमारतें, तथा भारतवर्षके सम्राटोंमें श्री रामचन्द्र, अशोक आदि तथा पाश्चात्य-जगत्के प्रसिद्ध सिकन्दर बादशाहकी विश्व-विजय-यात्रा जैसे महान् कार्य इसी कीर्ति-कामना द्वारा ही तो प्रेरित हुए हैं। परन्तु इतना तो अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये कि यशकी प्राप्तिके लिए महान् परिश्रमकी आवश्यकता है और जिसे वह इष्ट है उसे कष्ट भी स्वीकार करना चाहिये, अन्यथा लोगोंकी उपेक्षा और घृणा ही हाथ आवेगी।

नामके लिए मरनेवाले आदमीको अनेक स्वार्थत्याग करने पड़ते हैं। कभी कभी उसे रुपया पानीकी तरह बहाना पड़ता है और जब रुपया पास नहीं होता तब तो उसे और भी कष्ट भोगने पड़ते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि अगर धनवान आदमी कीर्ति-लोलुपता प्रकट करे तो देखनेवाले उसकी दुर्बलताको बहुत कुछ तरह भी दे जाते हैं, परन्तु जो मनुष्य धन-लोलुपताका शिकार होता है, उसके साथ लोग उतनी सहृदयता नहीं दिखलाते हैं। अब यदि धनवान होनेकी इच्छा रखनेवालेके पास ऐसे कारण वर्त्तमान हैं जिनसे वह वैसा करनेके लिए विवश होता है, तथा अवकाशानुसार लोकोपकारी कार्योंमें भी थोड़ा बहुत उत्साह प्रदर्शित करता है, तब तो लोग उसे स्नेहकी दृष्टिसे देखेंगे। यदि ऐसा नहीं हुआ, उदाहरणार्थ गोविन्दके पास लाखों रुपये वर्त्तमान हैं, उसके घर सुखकी सभी सामग्रियाँ मौजूद हैं, फिर भी वह दिन रात 'हाय रुपया' 'हाय रुपया' ही कहता रहता है, रुपये मिलनेके निमित्त अनुचित साधनोंका आश्रय भी लेता है, तो यह सम्भव नहीं कि गोविन्द हमारा स्नेह-पात्र हो सके।

भारतवर्षमें इस समय कीर्त्ति-प्राप्ति तथा धनार्जनके कितने ही उपायोंका ह्रास हो रहा है। प्राचीन कालमें जो सबसे अच्छा लड़का होता था, उसके साथ चाहे वह धन-हीन ही क्यों न हो, स्वयम्वर प्रथाके द्वारा राजा अपनी कन्याका विवाह कर देते थे। उसके समान और क्या हो सकता है? राज-कुमारीके पाणिग्रहणकी आशासे दूर दूरके युवक अपनेको अनेक प्रकारके कला-कौशलसे सम्पन्न करते थे। हमारे देशकी इस समय ऐसी स्थिति है कि जीवन भर परिश्रम करने पर भी महान्से महान् पुरुषोंकी पूछ सरकारमें नहीं होती। इस अवस्थामें नाम पैदा करनेका प्रायः एक मात्र साधन मस्तिष्क-विकाससे सम्बन्ध रखनेवाली कुछ परीक्षाएँ हैं। साथ ही रोटी मिलनेका साधन भी वकील होना, मास्टर बनना या क्लर्क होना हो गया है। नामके लिए प्रायः लोगोंको परीक्षाओंके निमित्त सिर तोड़ परिश्रम करके स्वास्थ्यसे हाथ धोना पड़ता है और पैसेके लिए अपने अफसरोंकी गुलामीमें ज़िन्दगी खपानी पड़ती है। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि जिन परीक्षाओंकी ओर हम सङ्केत कर रहे हैं, वह भी सब

पूछिये तो लोग पेटके कारण ही प्रायः पास करते हैं। कितने ही लोग अपने जीवनको सुन्दर बनानेकी चिन्तामें कभी कभी बहुत दूर बढ़ जाते हैं और अनुचित ढङ्गोंसे काम लेते हैं, धीरे धीरे वही अनुचित बातें उन्हें उचित ही नहीं सराहनीय समझ पड़ने लगती हैं। ऐसे महाशयोंके माता-पिता, मित्र आदि चाहे उनकी ग़लतियोंको कितनी ही सहृदयतासे क्यों न देखें, एक ऐसा मनुष्य, जो उनका सम्बन्धी नहीं है, साधारण अवस्थाओंमें उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखे बिना रह नहीं सकता। अनाचारकी मात्रा अधिक हो जानेपर माता पिता और बन्धु-बान्धव भी घृणा करने लगेंगे। सदाचार, सत्य, धर्म्म और सौन्दर्य्य के प्रति मनुष्यकी ऐसी ही श्रद्धा है।

हमारे देशमें ब्रिटिश गवर्नमेन्टके पधारनेसे नाम पैदा करने तथा धन पैदा करनेके एक और साधनका जन्म हुआ है। किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वह साधन हमें तब भी उपलब्ध होता या न होता जब हमारी सम्पत्ति घटनेकी जगह बढ़ती ही गई होती। क्योंकि जिस साधनकी चर्चा हम करेंगे वह अधिकांशमें हमारी गरीबीके कारण प्राप्त हुआ है। शायद और किसी राजाके समयमें भी वह प्राप्त हो जाता पर, हाँ अगर कोई अन्तर पड़ सकता था तो यही कि उसका यह रूप ज्योंका त्यों न होता और शायद उसके मिलनेमें भी विलम्ब होता। यहां यह भी कहा जा सकता है कि सम्भव है किसी दूसरे राजाके राजत्वकालमें हम इतने ग़रीब ही न हुए होते। अस्तु। वह सम्पादक बन जाना और देश-सेवककी पदवीको स्वीकार करना है। हम सम्पादक-जाति अथवा सम्पादक कलाके ऊपर कोई आक्रमण कर रहे हों, सो बात नहीं; हमारा मतलब केवल इतना कहनेका है कि मनुष्य अपनी लालसाओंकी पूर्त्तिके लिए, नाम पैदा करने, अथवा धन पैदा करनेकी इच्छा पूरी करनेके लिए इस देशमें, स्थानीय अवस्था-विशेषमें पड़कर जिन कई साधनोंका अवलम्बन करता है उनमें अख़बार-नवीसी भी शामिल की जा सकती है।

यदि सम्पादक महोदय देशमें घटित किसी दुःख घटनाके ऊपर निबन्ध लिख रहे हैं, करुणाकी धारा बहा रहे हैं तो इससे यह न समझना चाहिये कि सचमुच वह कोई महात्मा हैं और स्वार्थसे परे हैं। साथ ही यदि कोई कसाई पशु बध कर रहा है तो हमें यह न निर्णय कर लेना चाहिये कि वह क्रूर ही है। बात यह है कि अभ्यास बड़ी चीज़ है। अभ्यास विशेष दुःखानुभवके बिना भी खेद प्रकट किया जा सकता है। अभ्यास द्वारा बकरेका बध किया जा सकता है और फिर भी मनुष्य ज्यों का त्यों बना रह सकता है। परन्तु यहाँ यह सब लिखनेका क्या कारण और क्या आशय? घृणासे और सम्पादकोंसे क्या सम्बन्ध? इसका उत्तर यह है कि भारतकी वर्त्तमान दशा ऐसी संकटपूर्ण है कि जब कोई सम्पादक या पत्र इस नीतिको लक्ष्य में रख कर अग्रसर होता है कि उसका मुख्य काम देश-सेवा करना है और आत्मत्याग उसका पहला सिद्धान्त है तब वह अपनेको बड़ी उत्तरदायित्वपूर्ण स्थितिमें डाल देता है। उसे जनताको अपनी ओर आकृष्ट करनेके निमित्त उच्च आदर्शोंका ढोल पीटनी ही पड़ती है। फल यह होता है कि जनताकी श्रद्धा सम्पादकके ऊपर जम जाती है और उसको यह आशा लग जाती है कि जब आवश्यकता पड़ेगी सम्पादक महोदय उच्च आत्म-त्याग का नमूना दिखलाएँगे। उधर सम्पादक जी मन ही मन सोचते रहते हैं कि किस ढंगसे आलोचना की जाय कि जनता समझे कि गवर्नमेन्टको खूब खरी खोटी सुनाई, साथ ही गवर्नमेन्ट भी क़ानूनके पंजेमें न डाल सके, और दोनोंका फल स्वरूप उनकी रोटी दालका प्रबन्ध सुचारु बना रहे।

उच्चादर्शोंकी दुहाई देनेवाले ऐसे महाशयोंका रहस्य जब किसी सरल-चित्त भारतवासीको प्रकट होता है, तब घृणाका उत्पन्न होना

ठीक ही है । हम सम्पादन-कलाकी सार्थकताको मानते हैं और यह भी मानते हैं कि उसके बिना अख़बार-नवीसी चल नहीं सकती, क्योंकि मानव-प्रकृति और मानव-दुर्बलता उसके पक्षमें हैं। हमने यहां पर जो कुछ लिखा है, वह इस ख़यालसे लिखा है कि भारतवर्षकी विचित्र परिस्थिति में, देशकी शोचनीय अधोगति तथा हिन्दुस्थानियोंकी धार्मिक अभिरुचि और विश्वासशीलताकी निराली अवस्थामें वह अपने अनुयायियोंको कभी कभी घृणाका पात्र भी बना दे सकती है। अतएव वाञ्छनीय यही होगा कि जो लोग इस पेशेको स्वीकार करें वह नाम और रुपयेको गौण समझें और अधिक महत्व दें सचाई इमानदारी और देश-सेवाको। नाम और रुपया अगर मिलते हों तो उन्हें लौटालनेकी आवश्यकता भी नहीं, वह बुरे नहीं हैं, बुरे वह तभी होते हैं जब इनका साथ अधर्मके साथ होता है। अन्य देशोंमें सम्पादन कला या यों कहिये कि सम्पादन-चातुरीका बड़ा आदर है; क्योंकि समृद्धावस्थामें हमें हास्य और अन्य प्रकारकी कला-कुशलता पसन्द आती ही है किन्तु विपत्तिके समयमें, आवश्यकताके समयमें, हम यह नहीं पसन्द कर सकते कि सम्पादक हमें खुश करनेके लिए तीखा लिखे, साथ ही गवर्नमेंटको भी खुश रखनेका ढंग निकालले।

कीर्त्ति और धनके अर्जनमें किस प्रकारके आचरणसे मनुष्यके हृदयमें घृणाका सञ्चार हो सकता है, इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन हमने करा दिया। अब यहां हमें केवल एक बात और लिखनी है। वह यह है कि आचरण विशेषसे उत्पन्न होनेवाली घृणाका विस्तार कितना होगा। उदाहरणके लिए कल्पना कीजिये कि गोविन्द ने रामको धोखा देकर उससे १०००) एंठ लिये। अब हमारे सामने प्रश्न यह है कि कितने आदमी गोविन्दसे इस दुष्कर्मके कारण घृणा करेंगे। इसका उत्तर जाननेके लिए सबसे पहले यह आवश्यक है कि हम गोविन्दके उन सम्बन्धियों, कुटुम्बियों तथा साथियोंका पता लगावें जो सम्भवतः गोविन्दकी कमाईसे लाभ उठाते हैं। इसके अनन्तर हमें उन आदमियोंकी संख्या जाननी होगी जो किसी दुर्बलता-विशेषसे धोखेका रुपया हज़म करना बुरा नहीं समझते तथा जिनकी आत्माके सामने ऐसे धनके उपयोगके सम्बन्धमें कोई प्रश्न ही नहीं। बस इतने लोगोंको छोड़ कर, साथ ही उन लोगोंको भी छोड़ कर जिनको धोखा देना वीरता और चालाकीका काम समझ पड़ता है, शेष समस्त ऐसे सज्जनोंको जिनके हृदयमें सौन्दर्य्य और सदाचारके प्रति भक्ति भाव है; अथवा जिनका सम्बन्ध किसी प्रकार रामसे है, गोविन्दसे घृणा होगी ही। एक दूसरा उदाहरण देनेसे यह बात पूर्णतया स्पष्ट हो जायगी। लार्ड क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स ने भारतवर्षमें ब्रिटिश साम्राज्यकी जड़ जमानेके लिए जिन उपायों और साधनोंका अवलम्बन किया, वह कदापि अनिन्दनीय नहीं कहे जा सकते। यह ठीक है कि इन दोनोंमें से किसीसे भी भारतीय विद्यार्थी घृणा नहीं करता, परन्तु इतना निर्विवाद है कि यदि इतिहास-लेखक सम्पूर्ण रूपसे भारतीय दृष्टि-कोणसे इतिहास लिखे तो इसमें सन्देह नहीं कि वह उक्त महाशयोंके कार्योंकी आलोचना सम्भवतः इस ढंगसे करे जिससे पढ़नेवालोंके मनमें घृणाका उदय निश्चित रूपसे हो जाय, और इतनेसे ही हमारा मतलब है। हमारा कहनेका आशय यह है कि कार्य्य विशेषके कारण लार्ड क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स देश-विशेषके प्रेम-पात्र और देश विशेषके घृणा-पात्र भी बन सकते हैं। जिस जातिसे, जिस देशसे, उनका सम्बन्ध है वह चाहे उन्हें क्षमा कर दे, तथा जिनके हृदयमें सदाचारके प्रति अधिक प्रेम नहीं है वह उनके कार्योंको निरपेक्ष भावसे देखें, परन्तु शेष संसार, यदि उसे सब बातें समझाई जायँ तो, विरक्त हुए बिना न रहेगा। इसी प्रकार सन् १८५७ के बलवेमें हमारे जिन-देशवासियोंने अंग्रेज़ों-

के साथ अत्याचार किये थे, उन्हें सम्भव है उनके दो चार साथी घृणाकी दृष्टिसे न देखें हों, परन्तु शेष विश्व तो उन्हें अपराधी समझेगा ही और एक बार उनसे घृणा करने ही लगेगा, यह दूसरी बात है कि उनकी उत्तेजना और उनके पागलपन का खयाल करके बादको वह उनसे घृणा करनेकी जगह उन पर तरस खाय।

( अपूर्ण )

—गिरजादत्त शुक्ल गिरीश

---

## एक अमेरिकन कहानी

"Stories are the natural soul-food of children, their native air and vital breath; but our children are too often either story-starved or charged with ill-chosen or ill-adapted twaddle tales."

—G. Stanley Hall.

क प्रसिद्ध विद्वान् (Seumas Mc Manus) का वचन है कि अच्छी कहानियां सुननेसे बच्चा सहृदय, सजीव और आदर्श पुरुष बन सकता है। संसारमें कहानी प्रेमी जातियें ही अधिक तर प्रसन्न, सुशील, जीवनमय और सदाचारी होती हैं; क्योंकि कहानी सुननेसे समस्त सद्गुण उदित हो जाते हैं। अन्य दो ग्रन्थकार ( E. N. and G. E. Partridge ) कहते हैं कि कहानियों द्वारा दूसरे लोगोंके कठिन-प्रयत्न, और जीवनकी अनेक अवस्थाओंका वृत्तान्त बतलानेसे बच्चोंके सज्जन और सदाचारी बननेमें बड़ी सहायता मिलती है। इसी प्रकार यूरोप तथा अमेरिकाके और भी अनेक विद्वान् इस विषयमें अपना मत प्रकट करते हैं। कोई ( Edward Porter St. John ) कहता है कि चरित्र-सङ्गठनके लिए देवताओंकी कहानियां पूजासे किसी भाँति कम नहीं है। कोई (Friedrich W. A. Froebel) बतलाता है कि कहानी कहनेसे मनुष्यका मन वैसा ही प्रसन्न होता है जैसा कि स्नानसे। किसी ( Carolyn Sherwin Bailey ) का कथन है कि भली भाँति लिखी हुई वा कही गई कहानीका बच्चोंके मनपर वैसा ही प्रभाव होता है जैसा कि दर्शकों पर किसी उत्कृष्ट श्रेणीके नाटक का। आशय यह है कि प्रायः पाश्चात्य देशोंके सभी बड़े बड़े लेखक इस विषयमें एक मत हैं कि कहानियाँ बच्चोंके लिए अत्यन्त लाभदायक होती हैं और जिन देशोंमें इस साधनका सदुपयोग किया जाता है वह शीघ्र उन्नत हो जाते हैं।

शोकके साथ कहना पड़ता है कि भारतमें आजकल बालकोंकी कहानियोंका कुछ भी विचार नहीं किया जाता। यदि कहानियां सुनाई भी जाती हैं तो भूत प्रेतोंकी या ऐसी कि जिनसे भलाईकी अपेक्षा हानिकी अधिक सम्भावना होती है। आज हमारा विचार पाठकोंको एक ऐसी कहानी सुनानेका है जो अमेरिका देशके बच्चोंमें बहुत प्रचलित है। इसके पढ़नेसे यह भली भाँति ज्ञात हो जायगा कि उन्नत देशोंमें बच्चोंको प्राकृतिक विज्ञान ( Natural Science ) की शिक्षा किस रोचकतासे दी जाती है। यह कहानी 'Children's Stories and How to tell them' नामक पुस्तकमें 'अद्भुत परिवर्त्तन' 'A Wondrous Change' के नामसे छपी थी। इसके पढ़नेसे टामस मूर (Thomas Moore) की यह उक्ति याद आ जाती है—

"For him there's a Story in every breeze
And a picture in every wave."

इस कहानीके विषयमें उपर्युक्त ग्रन्थमें लिखा है कि "गोभी ( Cabbage ) पर बहुधा पाई जाने वाली तितलीकी जन्म कथाके आधार पर इसकी रचना हुई है। फ्रौयबेल् ( Froebel ) की "Mother Play Songs' नामक पुस्तकके कैटर पिलर (Caterpillar) गीतका भाव इसमें पूरी तरह दर्शाया गया है। मिसेज़ गैटी ( M. Gatty ) ने यही कहानी

अपनी 'Parables of Nature' में लिखी है। मिस हैरिसन (Miss Harrison) ने अपने 'In Story Land' में इस कहानीका एक रूपान्तर दिया है। मेरा लिखा रूपान्तर जो नीचे दिया गया है तितलीकी उत्पत्तिके अध्ययन तथा उसपर अवलम्बित खेलको देख कर ही बनाया गया है। सब ही बाल-शिक्षकों (Kindergartners) ने प्रायः फ्रौयबेलियन (Froebelian) खेलका प्रयोग किया है; परन्तु बालकोंका कोई भी ऐसा समूह नहीं जिसने प्राकृतिक बातें, गीत और कहानी सुन कर खेल स्वयं ही न गढ़ लिया हो। यह कहानी बच्चोंको जीवनकी जाग्रति और नित्यताका रहस्य बतलाती है और प्राकृतिक कहानियोंमें सबसे अच्छी है।

इस ही सम्बन्धमें 'Children's Stories and How to Tell them' पुस्तकके लेखकोंने यह कविता उद्धृत की है—

Once I was a baby and
Knew only baby talk,
You were once a caterpillar,
On our garden walk.
Now I wonder,—maybe you
Could tell me, if you try—
Do you talk in Caterpillar
Or in butterfly"

कहानी इस प्रकार है—

बहुत समय हुआ कि किसी बाग़में भांति भांतिकी तरकारियां बोई हुई थीं। एक ओर चमेलीके फूलोंकी सुन्दर क्यारी थी, तो दूसरी ओर आलू, मटर, लोभिये और गोभीके पौदे लहराते थे। बाड़ेके पास कुछ बेरके पेड़ खड़े थे, जिन पर सफ़ेद सफ़ेद कलियां अजब बहार दिखा रही थीं।

बाग़के बीचमें, गोभीके पत्तेपर हरे रङ्गका एक कीड़ा रहता था, जो दिन भर रेंगता फिरता—न कभी धूपकी ओर देखता, न बाग़के बाहर जानेका विचार ही करता। सारा दिन गोभीके पत्ते खानेमें ही गँवा दिया करता था—संसार इसके लिए गोभीमय था।

एक दिन कोई सुन्दर सुफ़ेद तितली बाग़से उड़ती हुई आई और कीड़ेके बिलकुल पास गोभीके पत्ते पर बैठ गई। कीड़े ने सर उठा कर उसकी ओर देखा, और कहा—'कैसा आश्चर्य है!' तितली उड़ कर बेरके पेड़ोंकी ओर चली गई। परन्तु कीड़ेके मनमें विविध तर्कनाएं उठने लगीं। 'कैसा अच्छा होता, यदि मेरे भी ऐसे ही पर होते और मैं भी पेटके बल घिसट कर चलनेकी जगह इसी प्रकार वायुमें उड़ता फिरता!'

इसी समय उसकी नज़र बारह छोटे, गोल हरे अंडों पर पड़ी, जो पास ही गोभीके पत्ते पर पड़े थे। कीड़ा बड़े सोच में पड़ा। बोला—'क्या करूं? तितली अंडे दे कर भाग गई है। शीघ्र ही अण्डोंमें से बच्चे निकलेंगे। उनकी खबर कौन लेगा। मैं तो यह भी नहीं जानता कि वह खायंगे क्या—उड़ना सिखाना तो दूर रहा। मैं क्या करूं, मेरे राम?' कीड़ा इसी चिन्तामें डूबा हुआ था।

अंडे एक दिन फूटे और उनमें से निकले—भला क्या? छोटे छोटे तितली जैसे बच्चे नहीं, पर बारह सूक्ष्म हरे कीड़े जो बूढ़े कीड़ेके ही समान थे। बूढ़ा कीड़ा प्रसन्न हो कर चिल्ला उठा—'वाह वाह! मुझे यह मालूम होता तो मैं इतनी चिन्ता ही काहेको करता? इन्हें तो मैं खाना, पीना रेंगना सब सिखा सकता हूं।

कुछ समय बीतने पर बूढ़े कीड़ेको नींद सी आने लगी। साथ ही उसे यह भी पता चला कि मैं अपने शरीरसे रेशमके तागे निकाल सकता हूं। निदान उसने तागे अपने चारों ओर लपेटने आरम्भ किये और जब इस प्रकार अपने लिए मकान तैयार कर लिया तो उसके अन्दर सो गया। एक दिन बीता, दो दिन बीते, तीन दिन बीते, परन्तु बूढ़े कीड़ेकी नींद न खुली।

अन्तमें बहुत दिन पीछे जब वह जागा, तो उसने सोचा कि चलो मकानसे बाहर निकल चलें। परन्तु तागोंका मकान उसके चारों तरफ़ इस तरह जकड़ा था कि बहुत परिश्रम करने पर कहीं वह उसमें छेद कर सका। छेदकी राह जब बाहर गोभीके पत्ते पर आया तो उसे पता चला कि दाहिने और बाएं, दोनों ओर, कुछ गीली मुलायम चीज़ चपटी है। कीड़ा सोचने लगा कि सोनेके समय तो मेरे ऐसी कोई चीज़ न लगी थी।

धूप निकली और वह सुफ़ेद चीज़ सूखने लगी। कीड़ेने इन्हें सीधा किया और तभी हवाके झोकेने उसे उड़ा कर आलूकी क्यारीमें ला फेंका। कीड़ा फूला न समाया। लम्बी सांस भर कर बोला—'कहीं सचमुच पङ्ख ही न निकल आये हों।'

"पङ्खोंको सीधा कर फिर उड़ा और चमेलीकी क्यारीमें जा बैठा। वास्तवमें अब उसे दुनिया "गोभी-मय" न थी! बेरकी सुन्दर कलियोंको देख कर उसके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि इनमें कोई वस्तु मेरे काम की है। कलियोंमें जा कर शहद पिया और पीकर मोटा हो गया। बाग़की परली ओर खेतमें कुछ सुन्दर सुगन्धमय फूल हवामें अठखेलियां कर रहे थे। उसके मनमें वहां जानेकी इच्छा उत्पन्न हुई; परन्तु अकस्मात तितली बच्चोंका ध्यान आने पर कीड़ा फिर गोभीके पत्ते पर उड़ कर जा बैठा और हंस कर तितलीके बच्चोंसे बोला—खूब खाओ। खूब खाओ। एक दिन तुम भी सोओगे। और जागोगे तो अपनेको तितली बना पाओगे। संसार आश्चर्यमय है, आश्चर्य!' यह कह कर वह बेरोंके पास होता हुआ अन्य खेतमें उड़ कर चला गया।

पाठक, देखा आपने। अमेरिकन लोग किस चतुरतासे अपने बच्चोंको प्राकृतिक विषयों की शिक्षा देते हैं। उक्त कहानीमें जहां कला (Art) की दृष्टि से भी महत्वकी कमी नहीं। गोभी के कुरूप, रेंगने-वाले कीड़ेका मनोहर तितलीको देखकर आश्चर्य करना बिल्कुल स्वाभाविक प्रतीत होता है। अण्डोंसे कीड़े निकलने पर जो प्रसन्नता बूढ़े कीड़ेको होती है वह भी वास्तविक होनेके अतिरिक्त और क्या है? कीड़ेके पंख निकल आना और उसका पहिली बार उड़ना जिस निपुणतासे अङ्कित किया है वह सराहनीय है। शहद पीनेके लिए कीड़ेकी प्रकृति-सिद्ध (Instinctive) इच्छा भी अनुपम कौशलके साथ वर्णित है। इसी प्रकार की अन्य अनेक कहानियां—उदाहरणार्थ Five Peas in the Pod, Picciola, Prosarpina, Sleeping Beauty इत्यादि—अमेरिकामें प्रचलित हैं।

यदि हम बच्चोंकी कहानियोंके विषयमें अमेरिकन विद्वानोंके विचारों को याद रखें तो ऐसी कहानियों पर आश्चर्य करने के लिये कोई स्थान नहीं रहता। कारण, वह लोग कहानी कहने वालों को ऐसा चित्रकार समझते हैं जो शब्दोंकी सहायतासे वास्तविक दृश्य वा घटनाको पूरी तरहसे दरसा दें। जाने भारतीय लोग अविद्याकी गहरी नींदको छोड़ कर कब जागेंगे और अपने बच्चोंको अच्छी कहानियों द्वारा सुशिक्षाप्रदान कर साहस, बुद्धि, बल, विद्या, आदिके अमूल्य बीज बोवेंगे।

—भ्रमर

## श्रीचरणकी कथा*

चीनकालसे कवियोंमें "नख-शिख" के वर्णन करनेकी पद्धति चली आई है। उन्हींका अनुकरणकर आज विज्ञानका एक सेवक श्रीचरणकी कथा सुनानेके लिए उद्यत हुआ है। लेखक आज २५ वर्षसे लक्ष्मण की तरह भिन्न भिन्न जातियोंके स्त्री चरणोंका वैज्ञानिक उपासक बना हुआ है। "गुरुकुल" में रहनेकी दशामें भी वह सहपाठिकाओंकी चलन भङ्गीका लक्ष्य करता रहा। पाठिकायें इस धृष्टताको क्षमा करें। कोई चट्टी पहनकर एड़ियोंको रगड़ती हुई हंस गतिसे चलती थी, कोई ऊंचे एड़ीका शू (जूती) पहन कर मोरकी तरह नाचती हुई फिरती थी, कोई कोई गजेन्द्र गामिनी अपने दामनको इतना ऊंचा करके चलती थीं कि निम्नांगोंकी शोभासे, मानो वैज्ञानिक दर्शकके हृत् पिण्डको भी साथ ही पददलित कर देती थीं।

* यह लेख होलिकांकके लिए आया था, किन्तु ब्लाक बननेमें देर होनेके कारण इस नव वर्षमें प्रथम अङ्कमें दिया जाता है। —सं०।

पाठकोंका अमूल्य समय मैं शृङ्गाररसकी इन अठखेलियोंमें नष्ट करना नहीं चाहता। भय है कि सम्पादक जी मर्यादाके विचारसे, होलिकाङ्कमें भी इसे स्थान न दें। फिर भी हम आशा करते हैं कि इस चरण बन्दनामें बहुतसे पाठक हमारे दिलसे सहयोगी ही बने रहेंगे, यद्यपि कालकी धार्मिक रुचि इसके विरुद्ध ही क्यों न हो।

पाठको! क्या आपने इस बातको लक्ष्य नहीं किया कि श्वेताङ्गनाओंकी पिण्डलीकी पेशी जो कि जंघास्थिके पश्चात् भागमें रहती है, भारतीय ललनाओंकी अपेक्षा अधिक परिपुष्ट और सुन्दर होती है। सम्भवतः इसीकी मनोहारिणी शोभाको प्रकटित करनेके लिए ही, "वौलशविज़्म-वाद"के अनेक पूर्व से ही सौन्दर्य भोगको सार्वजनिक करनेके सत्साहसने, दामनको उत्तरोत्तर उच्चीकृत् करनेमें, क्रम-

चित्र १—गौराङ्गनाकी पिण्डली और पैर
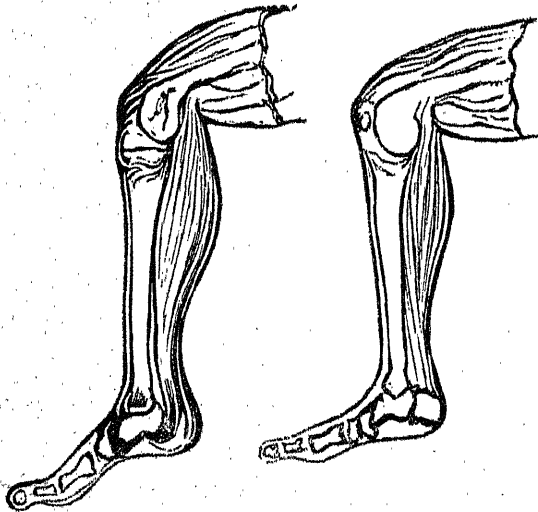
चित्र २—श्यामवर्णवाली महिलाकी पिण्डली और पैर

विकाशवादकी सहायता ली है। न जाने "परामानुषी" दशामें उसकी आवश्यकता रहेगी या नहीं। कहावत है कि—Extremes meet!

यदि आपको उपर्युक्त वैज्ञानिक घटना पर पर्य्यवेक्षण करनेका सौभाग्य न हुआ हो, तो मेरे अशिक्षित हाथके बने हुए दो चित्रों पर ज़रा ध्यान दीजिये, और देखिये कि दोनों जातियोंकी पिण्डलियोंमें क्या फ़र्क़ है। इसी एक पिण्डलीकी गवाही इस बातके लिए पर्याप्त है कि हम लोगोंके (जो आर्य्य जाति होनेका घमण्ड करते हैं) शरीरमें बहुत सा अनार्य्य शोणित मिला हुआ है। इस समय हमारा ध्येय केवल श्वेत और कृष्ण ललनाओंकी पिण्डली है। क्योंकि, पुरुषोंमें यद्यपि यह फ़र्क़ मौजूद भी है तो वह स्त्रियोंमें अधिक विकसित हुआ है; यहां तक कि, सभ्य जातिकी ललनायें उसको अन्य लिङ्गात्मक अवयवोंकी तरह (यथा वक्ष शोणी आदि) ऊंचे दामनसे "सुप्रज-जनन शास्त्र" (Eugenics) का जीवन्त विज्ञापन दे रही हैं।

वैज्ञानिकका लक्ष्य केवल इस सृष्टि वैचित्र्यके निदानकी तरफ़ होनी चाहिये। क्या कारण है, कि ब्रह्माने एकको ऐसी सुन्दर पिण्डलियां दीं, कि वह पाशुपथ महास्त्रके द्वारा दिग्विजयी होकर धरणी कम्पायमान करती हुई चले, और दूसरी आभूमिलम्बित साड़ीसे अपने पैरोंको ढांक कर गृह प्राङ्गणके अन्दर भी मृदुमन्द गतिसे चलनेमें संकोच करे। मोर, कहावत है कि अपने पैरोंको देखकर, रोता है। सम्भवतः यह कहावत भारतीय स्त्रियोंके मनोभाव से ही ली गयी हो।

बहुत दिनों तक लेखक यह समझता रहा, कि इसी प्राङ्गण विहारने ही भारतीय स्त्रियोंकी पिण्डलियोंकी यह दुर्दशा की है; परन्तु जब श्रमजीवी स्त्रियोंकी पिण्डलियोंपर पर्यवेक्षण किया गया, तो वहां भी वही सूखी लकड़ीकी तरह टांगें मिलीं। हाय दुर्भाग्य! ब्रह्माका क्या अविचार!!

ढूंढते ढूंढते एक आशाकी रश्मि दिखाई दी कि मारवाड़ी स्त्रियोंकी पिण्डलियां अपेक्षतया परिपुष्ट होती हैं। शायद इसका कारण अनेक पैरोंके तक ज़ेवरोंसे सम्बन्ध रखता है, सम्भवतः इस पेशीकी लम्बी कण्डरा (Tendo achilles) पर धात्वादिके घर्षणसे या रासायनिक क्रियासे ऐसा वैद्युतिक प्रवाह उत्पन्न होता है कि जो उपर्युक्त पेशीकी

पुष्टाईमें सहायता करता रहता है। परन्तु यह युक्ति भी ठीक नहीं मालूम होती, कारण कि भारतके तो सभी श्रीचरण अलङ्कारोंसे विभूषित रहते हैं। इसके विरुद्ध, गौराङ्गना चन्द्रमुखियों ने तो "बिन गहने" ही अपनी शोभाका विस्तार किया है।

इसका समाधान एक शारीरवित् वैज्ञानिकने, जो हालमें हन्टेरियन म्यूज़ियमके क्यूरेटर थे, अपनी पुस्तकमें जो कुछ किया है वह विज्ञानके पाठक-पाठिकाओंके सामने उपस्थित करता हूं:—

पिण्डलोकी परिपुष्टता उसके कार्य पर अवलम्बित है। अधिक कार्यसे व्यायामको तरह अङ्गोंका उत्कर्ष साधन होता है। सब पेशियोंका कार्य उनके यान्त्रिक बलपर अवलम्बित है। अतएव इसके 'उत्थान,' 'सन्निवेश' तथा 'क्रिया' पर ज़रा ध्यान दीजिये।

इसका उत्थान उर्वस्थिके निम्न अर्बुदोंके पश्चात् भागसे दो कण्डराओं द्वारा होता है; और यह पार्ष्णि ( एड़ी ) के पश्चात् भागमें अपनी लम्बी कण्डरा ( Tendo achilles ) द्वारा सन्निवेशित है; और इसका कार्य एड़ीको ऊपर खींचना है, जिससे कि पैरका तलवा सारे शरीरके बोझको लेकर जमीनसे ऊँचा हो जाता है। अतएव इसकी यान्त्रिक क्रिया द्वितीय श्रेणीके 'दाँड़ी यन्त्र' (lever) की तरह हुई। ( देखो चित्र १ )। पेशीकी शक्ति दाँड़ीके बाहुकी लम्बाईपर अवलम्बित है। यदि एड़ीकी हड्डी लम्बी हो, जैसी कि कृष्णजातियोंमें होती है, तो दाँड़ीकी लम्बाई बढ़ जानेके कारण अधिक पैशिक शक्तिकी आवश्यकता नहीं होती। अतएव पेशीतन्तु इतनी उत्कृष्टतालाभ नहीं कर

चित्र—१
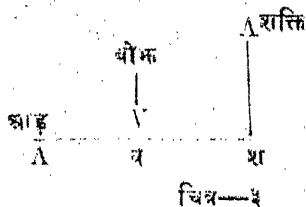
दाँड़ीके दो बाहु 'A व', और 'A श' असमान हैं। अतः थोड़ी शक्तिसे अधिक बोझ उठाया जा सकता है।

सकते। फल यह होता है कि टाँग पतली रह जाती हैं; पर इससे लाभ यह है कि सामनेकी पेशी जो कि पैरके तलवेको ऊपरको मोड़ती है उसके साथ इसकी प्रतिद्वन्दिता ( antagonism ) समान हो जाती है। अतएव कृष्णजातियोंकी चालमें वह झटकेदार गति देखनेमें नहीं आती, जिससे कि हमारे इङ्गलेण्ड-निवृत्त नवसभ्य मयूर पुच्छधारी काकवत् चलनेमें अप्राकृतिक रूपसे श्वेताङ्गोंकी नकल उतार कर झटकेदार गतिसे अपनेको हास्यास्पद करते हैं। लेखकके मतमें एड़ीकी प्राकृतिक लम्बाईके अतिरिक्त श्वेताङ्गनाओंका उच्च पादुकामूल ( highheel ) भी एड़ीको ऊँची रखकर पिण्डलीकी पेशी पर अधिक कार्य डाल देता है; और सम्भवतः इससे भी पेशीका अधिक उत्कर्ष साधन होता है।

यदि उपर्युक्त युक्ति भूयपर्यवेक्षण तथा पाठिकाओंके फलित समर्थनसे सिद्ध हो जाय, तो क्या ही एक अपूर्व वैज्ञानिक आविष्कार होगा। एकमात्र पादुकामूलकी उच्चतासे विज्ञान पाठिकायें भी दिग्विजयी हो सकेंगी।

—एक "भक्त"

## उल्का

( १ )

नोहर और घनश्यामराव दोनों गेशुपुर ग्राममें पास ही पास रहते थे। मनोहर जवान था और देशी भाषाके मिडिल स्कूलके आठवें दर्जेमें पढ़ता था। वह गाँवके प्रधानका पुत्र था। मदर्सा इस गाँवसे कई कोसकी दूरी पर एक दूसरे ग्राममें था। मनोहर कभी कभी इतवारको घर आया करता था। जब वह घरपर आता

तब उसकी आवभगत भी खूब होती थी। घनश्यामराव निर्धन और अपढ़ तो थे ही पर उम्र भी उनकी साठ वर्षसे कम न थी। यात्राओंके प्रसङ्गसे बहुत कुछ भ्रमण भी कर चुके थे। उनके देखते देखते इस परिवर्तनशील संसारमें बड़े बड़े हेर-फेर हो चुके थे और संसार भी उनमें यथोचित परिवर्तन देख रहा था। उनके केश श्वेत हो रहे थे, माथेमें जो बल पड़ चुके थे उनका महत्व भी कम नहीं था। यह अवस्था वैसे ही आदर योग्य होती है, परन्तु घनश्यामराव बड़े अनुभवी थे। यही कारण था कि प्रत्येक छोटी मोटी बातमें उनकी सम्मति लेना गांववाले आवश्यक समझते थे। गांवमें उनकी प्रतिष्ठा भी यथेष्ट थी।

बूढ़े अनुभवी सज्जनोंसे पूछ कर किसी भी काममें हाथ डालनेका फल कभी बुरा नहीं हो सकता। यदि असफलता ही हुई तब उस संतोषको कौन छीन सकता है, जो दो भले बुरे आदमियोंसे सम्मति लेकर काम करनेवालेको अनायास ही प्राप्त हो जाता है। घनश्यामरावको चाहे अपने विचारोंका घमन्ड न हो, पर उनपर विश्वास तो उन्हें पूरा पूरा था; तभी तो वह जो कुछ भी कहते थे दृढता से कहते थे। चाहे उनके बहुत से सिद्धान्त नव शिक्षित युवाओंके आगे हास्यास्पद ठहरते थे; पर वह भी उनके विचारोंका कम आदर नहीं करते थे। क्या यह कम गौरवकी बात है कि उनके समकालीन उनके प्रत्येक विचारसे सोलहों आना सम्मत थे। जिस बातको उनका मन मानता ही नहीं था उसे वह सुनना भी नहीं चाहते थे। जब कोई उन्हें ऐसे ऐसे विषयों पर समझानेका निष्फल प्रयत्न करता तब उन्हें समझानेवालेकी समझ पर कुछ कुछ क्रोध भी हो आता था। किन्तु उस क्रोधको वह खुले शब्दोंमें प्रकट नहीं कर सकते थे। ऐसे अवसरोंपर उनकी यह हिचकिचाहट झुंझलाहटमें बदल जाती थी। परन्तु ऐसी बातों से न उनके व्यवहारिक सिद्धान्तोंको कुछ हानि ही पहुँचती थी और न उनके सम्मानमें बट्टा ही आता था।

( २ )

इस प्रान्तके पहाड़ों पर इन्द्रियोंके धूसर (ताराओंके) रङ्ग के कोष कभी कभी इधर उधर घास फूसमें पड़े हुए पाये जाते हैं, और बहुधा औषधिमें काम आते हैं। इसीसे इन्हें प्रायः सभी जानते हैं। यह कोष 'तारा-गू' के नामसे पुकारे जाते हैं। जब कभी रात्रिके समय कोई उल्का गिरता देखा जाता है, तब अपने पंडित कहा करते हैं कि पुण्य क्षय होनेसे स्वर्ग लोकसे पुण्यात्माओंका पतन होता है, पर बच्चे और ग्रामीण ही नहीं बल्कि इस अञ्चलके बहुत से पढ़े लिखे मनुष्य तक इस अन्धविश्वासको ही ठीक समझते हैं कि तारे जब मल त्याग करते हैं वही उल्काके रूपमें गिरता हुआ दिखलाई पड़ता है। घनश्यामरावका भी यही विश्वास है। जब कहीं उन्हें ऊपर लिखे धूसर रङ्गके कोष मिलते हैं तब वह समझते हैं कि यह आकाशसे आये होंगे। वह यह भी जानते थे कि धर्म-क्षय होनेसे धर्मात्मा गिरते हैं। यह बात भी उन्हें उचित और धर्मसङ्गत जान पड़ती थी। इस विचारसे उनके पहले मतका पूर्णतया खंडन होता था; परन्तु उन्होंने इस बात पर कभी गौर ही नहीं किया कि दोनोंमें कौन ठीक है। घनश्यामराव जैसे अपने अन्य विचारोंको अकाट्य समझते थे, वैसे ही एक विषयके इन दो मतोंको भी अभेद्य मानते थे।

( ३ )

आज इतवार था। मनोहर भी अपने गांवके सहपाठियों सहित घर आया था। रात्रिको खाने पीनेके पश्चात्, सोनेसे प्रथम किसीके चौक या सहनमें एकत्र हो हुक्के तम्बाकूके साथ गप्पें लड़ा कर मन बहलानेकी टेव इस गांववालोंमें भी कम नहीं थी। कुछ पड़ौसी आज मनोहरके यहां जमा हुए ही थे कि एक प्रकाशमान उल्का गिरता हुआ वृक्षोंके कुछ ऊपर तक पहुँच अदृश्य हो गया।

इसे देख कर घनश्यामराव ने कहा—देखिये ! देखिये ! तारा गू गिरा।

मनोहर—नहीं चचा, यह उल्का पिण्ड उन्हीं चीज़ोंसे बने होते हैं, जिनसे हमारी पृथ्वी बनी है। यह भी पृथ्वीकी तरह चक्कर काटा करते हैं। इनमेंसे जो हमारे वायुमण्डलमें प्रवेश करते हैं, वह जल उठते हैं।

अविश्वाससे सिर हिलाते हुए पं० गोकुल प्रसादने कहा—और कुछ नहीं, धर्म क्षीण होनेपर धर्मात्मा फिर मर्त्यलोकमें भेज दिये जाते हैं।

घनश्यामराव—यह भी ठीक है।

मनोहरको उलकाओंको भूजातीय पदार्थ सिद्ध कर सकनेका उपाय तो उस समय न सूझा; पर 'यह भी ठीक है, वह भी ठीक है,' कह कर घनश्यामरावकी तरफ देख वह हँस पड़ा। घनश्यामराव चमक उठे। मनोहरके सहपाठी यदुनाथने बीच बचाव करते हुए कहा—

"मिट्टी पत्थरका उलका पिण्ड आकाशमें जल उठा या कोई बड़े महात्मा स्वर्गसे गिर ही गये, फल तो दोनोंका एक ही हुआ। इसमें धरा ही क्या है? वहाँ गया ही कौन है? जो कुछ किताबोंमें आपने पढ़ा आपने कहा। जो कुछ शास्त्रोंमें पंडित जीने देखा उन्होंने कहा। जैसा कुछ घनश्याम काका सुनते चले आये उन्होंने सुनाया।" यदुनाथने मज़ाकके ढङ्गसे वहीं पर बैठे हुए एक मुसलमान मित्रसे पूछा—"हाँ जी नजीर अहमद आप इस बारेमें क्या कहते हैं?"

नज़ीर अहमद—जैसा आप कहते हैं ठीक है; वहां गया ही कौन है। जितने मुंह उतनी बातें हैं। कहा जाता है कि इनके गिरनेसे बहुत बुराइयाँ पैदा होती हैं। हम लोगोंका यह खयाल है कि शैतान जब बहिश्तमें घुसने लगता है तब फरिश्ते उसे ज़मीन की तर्फ ढकेल देते हैं।

पं० गोकुलप्रसाद और नज़ीर अहमदकी बात भी मनोहरके लिए मिथ्या थी। परन्तु घनश्यामरावकी बातको वह अत्यन्त मूर्खतापूर्ण समझता था। उसके पिता तथा चचा आदि भी घनश्यामरावके से ही विचार रखते थे। यदि कोई व्यक्ति इस विषयमें उनका उपहास करता तो कदाचित् मनोहर बुरा भी मान जाता, परन्तु इस समय घनश्यामरावके चिढ़ जानेसे वह एक प्रकारका सुख अनुभव कर रहा था। उसने कहा—"धर्मक्षयकी बात या फरिश्तों द्वारा शैतानके ढकेले जानेकी बात वैज्ञानिक मतके विपरीत होने पर भी उतनी उपहास योग्य नहीं है। किन्तु इस मूर्खता पूर्ण बातका क्या ठिकाना है कि तारे मलोत्सर्ग करते हैं। अजीब समझ है।"

मनोहरकी इस बातसे घनश्यामराव और भी जल उठे। उन्होंने ऊंचे और तीखे स्वरमें कहा—'यह कलके छोकड़े क्या जानते...।' इस बात पर गोकुलप्रसाद, यदुनाथ आदि एक साथ खिलखिलाकर हँस पड़े; तब तो घनश्यामरावने उस समय मनोहरको अयोग्य, असभ्य, अशिक्षित आदि अनेक उपाधि दे डालीं।

( ४ )

दोपहरका समय है। बड़ी तेज धूप है। पृथ्वी गरम तवे सी तप रही है। मरनेवालेका इन बातोंसे क्या बनता बिगड़ता है। मरघटमें चिता धांय धांय जल रही है। शव फूंकनेवाले किनारे पर एक सघन वृक्षकी छायामें बैठे बातें कर रहे हैं।

यदुनाथ—गत दो तीन वर्षमें बहुत से मनुष्य मर गये, युद्ध ज्वरने तो हाहाकार ही मचा दिया।

श्रीनिवास—भाई, जितने मरते हैं उससे कहीं अधिक जन्म भी लेते हैं?

मनोहर—हमारे गांवमें तो अब लड़के ही लड़के रह गये हैं।

यदुनाथ—बुड्ढे अब रह ही कहां गये हैं? लो मैं उँगलियोंपर गिनाये देता हूं—घनश्याम चचा, देवीदीन, प्रतापसिंह और कौन हैं? हां, हां, हरमल!

श्रीनिवास—इनका नाम मत लो, इनकी भी कहीं बूढ़ोंमें गिन्ती है; यमराजके दरवाजेपर तो

पहुँच चुके हैं, बाल फुल कर कांस हो रहे हैं। फिर भी नियतका हाल देखो...

पं० गोकुलप्रसादने बात काट कर कहा—अरे भाई कैसी बात कहने लगे? वह आखिर वृद्ध तो हैं ही। यहां वृद्धोंकी गिनती हो रही है न कि कर्मोंकी। "जैसी करनी वैसी भरनी"—जैसा करेंगे फल पावेंगे।

पासमें ही बैठे हुए बूढ़े घनश्यामरावने कहा—

"लड़को! क्या हिसाब लगा रहे हो, जब मैं अपनी जवानीके दिनोंकी याद करता हूं, तब मेरी अजीब दशा हो जाती है। अजीब दशा इसलिए नहीं होती कि अब मैं वृद्ध हो गया हूं। उसका कारण दूसरा ही है। उन दिनों जब कभी दो चार साथी भी किसी कारण वश गांवसे बाहर चले जाते थे तो मैं उदास रहने लगता था। यथार्थमें गांवकी बहार ही फीकी पड़ जाती थी। आज वह साथी कहां हैं? समूचा संसार बदल गया और उनके स्थानमें तुम लोग आ गये हो; वह सब एक साथ न जा कर एक एक करके निकल गये, जाते मालूम भी न पड़े। गांव वही है; नदी, पहाड़ वही हैं; किन्तु उन बालकपनके साथियोंमें से दो तीन ही शेष रह गये हैं।" यदुनाथ घनश्याम रावकी बातको ध्यान पूर्वक सुन रहा था। अपने हृदयमें उठनेवाले विचारोंसे और भी चकित होकर उसने कहा—

यह संसारका विचित्र नियम है। ईश्वरकी अद्भुत माया है, जिसके द्वारा प्रत्येक पदार्थकी पूर्ति अपने आप होती रहती है। मनुष्य निर्मित बोलनेवाला बाजा, जिसके शब्द सुन कर आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता, जब टूट जाता है तो टूट ही जाता है। परन्तु ईश्वरके रचे हुए लाखों प्रकारके बाजे, जिन्हें देखकर हम प्रायः कुछ भी आश्चर्य नहीं करते, बिगड़ते बिगड़ते एकके स्थानमें अनेक छोड़ जाते हैं।

घनश्यामराव—ठीक कह रहे हो बेटा।

श्रीनिवास—यह तो ईश्वरकी बातें हुईं। मुझे तो इसमें बड़ा विस्मय है कि यह जो चीज़ोंका भाव एक बार बढ़ जाता है फिर उतरता ही नहीं। क्या इस संसार चक्रसे इसका सम्बन्ध ही नहीं? मैं अपने ही यादकी कहता हूं, जब रुपयेमें १६ सेर गेहूं, उतने ही चावल, दो सेर कपूर सा घी बिकता था।

घनश्यामरावने कुछ उत्साहित होते हुए कहा—

रुपयेमें २० सेर गेहूं तो परसों तक बिकते थे। २० साल पहले रुपयेके २६ सेर चावल अपने कंधेपर लाद बाजार पहुँचा आते थे, फिर भी लेनेवाले नाक भौं सिकोड़ते थे। एक साल काल पड़ गया हजारों आदमी भूखों मर गये। हजारों दाने दानेको भटकने लगे। पेड़ोंमें पत्ते रहे, न धरतीमें कन्द मूल। किसानोंके हल बैल बिक गये। गरीबोंके थाली लोटे न रहे। कहां तक कहें; अच्छे अच्छे गृहस्थ हिल गये। धुनेरके यशवन्तसिंहने गेहूं खोल दिये थे; भाव भी था १४ सेर; पर रुपया कहां था। हजारोंके प्राणोंपर बीत गई। उस ही साल कुछ महीने पहले खग्रास सूर्य्य ग्रहण हुआ था; दिनमें ही तारे निकल आये थे।

मनोहर जो बहुत समयसे चुप बैठा हुआ था बोला—

"घनश्याम चचा यदि आप बुरा न मानें तो कुछ मैं भी पूछ लूँ।"

घनश्याम राव—बुरा माननेका क्या कारण है? जो पूछना है पूछ लो, जो कुछ कहना है कह डालो।

मनोहरने नम्रतासे कहा—"आप बहुत कुछ संसार देख चुके हैं। बड़े बड़े हेर फेर भी झेल चुके हैं। पर आपने क्या कभी अपनी यादमें सूर्य्य या चन्द्रको भी मल-मूत्र त्याग करते देखा है। यदि नहीं तो मैं अवश्य कहूंगा कि उस दिन मैंने जो कुछ भी अनुचित बक दिया हो उसे आप क्षमा कर देंगे।" लज्जित होते हुए घनश्यामराव ने कहा—

"उस दिन भी मैंने क्या बुरा मान लिया था। बेटा तुम होनहार हो, पढ़े लिखे हो, मनुष्य सयाना नहीं होता समझ सयानी होती है।" संयोगकी बात है कि जब घनश्याम राव यह कह ही रहे थे पूर्वकी ओर आकाशमें गड़गड़ाहटका शब्द हुआ। सब कोई चौंक कर उधर ही देखने लगे। सरसराती हुई एक नील वर्णकी बड़ी उल्का ऊपर ही ऊपर कुछ देर दिखलाई दी और थोड़ी देरमें उनके सामने एक सेर भरका पत्थर, उनसे १० गज़की दूरी पर आ गिरा। यह सब लोग पहले तो हतचेष्टसे देखते रहे, तदनन्तर दौड़ कर उसके पास जा पहुँचे। उस पिण्डको साहस पूर्वक छूनेका प्रयत्न किया तो पता चला कि वह अत्यन्त गर्म था।

मनोहरने कहा, "बाबा, अब तो यह परमात्मा-का भेजा हुआ प्रमाण है। क्या इसे भी असत्य मानोगे? दो वर्ष हुए दिनके लगभग बारह बजे होंगे कि प्रयागकी कलक्टरीके पास ऐसे ही दो पिण्ड वज्रका सा नाद करते आ पड़े थे।"

घनश्यामरावने सिर झुका कर परमात्मा-को तीन बार नमस्कार किया और कहा, "प्रभो! तेरी लीला अपरम्पार है। हम मूढ़ मत उसका पार नहीं पा सकते।"

—गोपाल साह

## घरेलू-विज्ञान

### (१) गिलास

ह एक साधारण पात्र है, इसलिए इसके दोष गुण पर कोई विचार नहीं करता। ज़रासा गौर करने-पर मालूम होगा कि यह कैसी ख़तरनाक चीज़ है। पानी पीते समय मुँहका थोड़ा थोड़ा ओवम भी इसके अन्दर आता जाता रहता है, और साधारण रीतिसे खँगालनेपर भी साफ नहीं होता। इस लिए हर एकका गिलास अलहदा ही होना चाहिये, विशेष कर रोगीका। लोगोंको प्राचीन रीतिपर अधरसे पीनेका अभ्यास करना
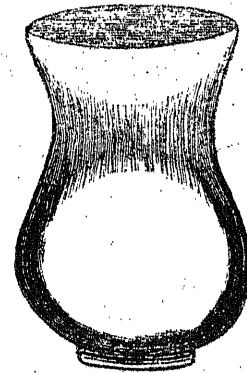
चित्र ७—तुम्बी; गिलासके स्थानपर इसका ही प्रयोग श्रेयस्कर है।

चाहिये। गिलासकी जगह चौड़े मुँहकी लुटियाका व्यवहार करना अच्छा है, जैसा कि बङ्गालमें होता है। इससे अच्छी धार गिर सकती है। (चित्र ७)
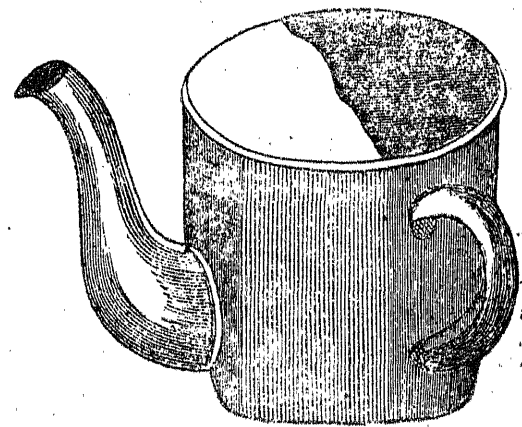
चित्र ८—फीडिंग कप

सब प्रकारके गिलासोंमें अन्दर-बाहर कहीं नक्काशी न होनी चाहिये; क्योंकि रेखाओंमें मैल जमा हो जाता है।

(२) फ़ीडिंग कप

यह एक विशेष प्रकारका पात्र है, जिससे लोग लेटे लेटे ही तरल पदार्थ पी सकते हैं। साधारण
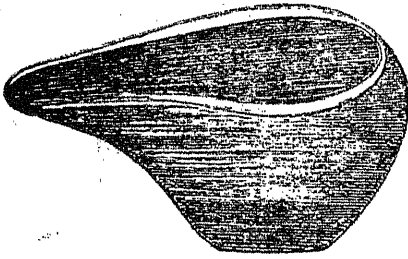
चित्र ६—फ़ीडिंग कप

तुतईके द्वारा भी यह काम हो सकता है। परन्तु आजकल बाजारोंमें तुतई ऐसी बन रही हैं कि टोंटीके जोड़पर मैल रह जाता है और टोंटी भी
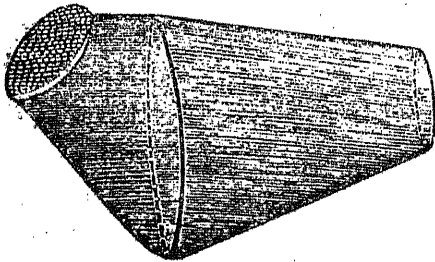
चित्र १०—फ़ीडिंग कप

साफ़ नहीं हो सकती। पुराने ढंगके फ़ीडिंग कपोंके अन्दर भी जाली होती थी, जिसमें मैल जमा हो जाता था। इसीलिए बे जालीके फ़ीडिंग कपोंका व्यवहार करना चाहिये। इन सबमें आइडियल ( Ideal ) और मौ ( Maw ) नामक फ़ीडिंग कप सबसे अच्छे होते हैं, कि जिनमें टोंटी ही नहीं होती। ( चित्र ८, ६, १०, )

(३) लोटा

यह भी ख़तरेसे खाली नहीं; क्योंकि अक्सर ज़मीन पर रखा जाता है, जिससे इसके तलेमें मैल मिट्टी लग जाती है और यही घड़ेके अन्दर डुबोया जाता है। फिर पकड़नेको कोई दस्ता नहीं, इसीलिए प्रायः लोटेके अन्दर उँगली डाल कर पकड़ते हैं, जिससे अन्दरका पदार्थ दूषित हो जाता है। इसके अतिरिक्त, प्रायः मुँह इतना छोटा होता है कि ठीकसे साफ नहीं हो सकता। इससे तो टीनका तामलोट ही अच्छा—मुँह खुला, स्वच्छ, दस्तेदार, जिससे कीलपर टाँग दीजिये, 'सस्ता और बालानशीन'!

(४) घड़ा और बाल्टी

क्या भद्दा पात्र है कि लोटेके सारे दोष इसमें और भी बढ़ चढ़ कर पाये जाते हैं। केवल गुण यह है कि बड़ा है और आसानी से कन्धे पर लादा जा सकता है। मुँह पर कोई ढकना नहीं कि धूल मिट्टी से सुरक्षित रहसके। पनिहारे जब पानी भर कर लाते हैं तो बरसातके दिनोंमें अक्सर ओलाती और मोरियोंका मैला पानी भी उसमें शामिल हो जाता है; अतएव घरोंमें पानी रखनेके लिए 'समावार' की तरह कोई टोंटीदार बर्तन होना चाहिये कि पानी ढका रहे, लेते समय उसके अन्दर कोई चीज़ न डाली जाय और काम पड़ने पर थोड़े ही ईंधनसे पानी गरम किया जा सके। हैज़ेके दिनोंमें तो यह बहुत ज़रूरी है। इसके अतिरिक्त हाथ धोते समय आजकलके ततपर महराजिओंको पुकार पुकार कर गले फाड़नेके सुखसे भी बचा देता है; पानी भी कम खर्च होता है। ( चित्र ११ )

जो दोष घड़ेमें हैं वह सबके सब बाल्टीमें भी पाये जाते हैं, बल्कि ज्यादती यह कि इसको लोग कन्धेपर तो ला ही नहीं सकते और लटका कर लानेमें भी बहुत सा पानी छलक जाता है। अतएव लेखकके मतमें बाल्टियां उल्टी बननी चाहियें कि मुँह छोटा और पेंदा बड़ा हो। इससे पानी छलकता नहीं है। साधारण बाल्टियोंमें भी यदि पानी भर कर रेलमें ले जाना हो तो जलकी पीठ पर चकलेके आकारका एक काठका टुकड़ा तैरा दीजिये कि जिससे छलकना बन्द हो जाय।

(५) साधारण चूल्हा

यह बाबाआदमके ज़मानेकी चीज़ है, जिसमें ईंधन ज्यादा फुँके, बहुत धुआँ हो और प्रायः ज़मीन ही पर बनाये जानेके कारण खाने पीनेकी चीज़ोंमें स्वच्छता नहीं रह सकती। यदि इन्हींको ज़रा ऊँचेपर बनाया जाय और धुँआँ खींचनेका रास्ता रखा जाय, जैसे कि कोठियोंमें होता है, तो कितना लाभ हो। किसी प्रदर्शनीमें एक चूल्हेका नमूना देखा कि मामूली चूल्हेकी बगलमें या पीछे एक घड़ा लगा रखा है, और घड़ेके अन्दर 'दोला यंत्र' की तरह एक तारका छींका है कि जिसमें

बच्चेके लायक दूधका बर्तन लटका दिया जा सकता है। भोजन बनाते समय बराबरके घड़ेमें हाथ मुँह धोनेका गरम पानी भी तैयार हो जाता है, और उसमें रखा हुआ बच्चेका दूध भी देरतक गरम और मक्खियोंसे सुरक्षित रहता है। इसका बहु-प्रचार वाञ्छनीय है। (चित्र १२.)

चित्र १२—श्रमाधार

(६) अग्न्याधार तथा धूम मार्ग

पाकशालाके अतिरिक्त और कमरोंमें भी चिमनियाँ रहनी चाहियें। इस गर्म देशमें लोग इनकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते। इसीलिए साधारण मकानोंमें चिमनियाँ नहीं होतीं। इसके लिए एक टीनका नलका ५।६ इञ्च व्यासका बनवाकर दीवारोंके साथ जड़वा लें (जैसा कि बाहरकी तरफ पनालेके नलकेके होते हैं) और उसका नीचेका सिरा कीपकी शकलका बना कर फ़र्श वा चूल्हेके स्थानसे दो फ़ुट उँचाई पर क़ायम कर दें। ऊपरका सिरा बाहरको निकाल दें कि जहाँसे धुआँ निकल कर हवामें मिल सके। चिमनीके अनेक लाभ हैं। एक तो धुँआँ नहीं होता; लकड़ी सुगमतासे जलती है। दूसरे कमरेके अन्दर वायु परिवर्तन होता रहता है, और यह क्रिया आग न जलनेपर भी जारी रहती है। (चित्र १३) रातको सोते समय यदि लैम्प रखनेकी आवश्यकता हो तो वह भी चिमनीके नीचे ही रखना चाहिये कि जिससे उसकी बदबू न फैले।

( ७ ) मकान और कमरे

यह यथासम्भव बड़े और ऊंचे होने चाहिएँ; और इनके दरवाजे वा खिड़कियाँ आमने सामने होनी चाहियें, जिसमें कि हवाके आने जानेका रास्ता रहे। पर गुञ्जान आबादीमें ऐसा होना असम्भव है, जहां कि मकान एकके पीछे एक लगे रहते हैं। ऐसी दशामें मेरे एक मित्रने * मकानकी एक सम्पूर्ण दीवारको ही रोशनदानके तौर पर बना दिया है। उसकी तरकीब यह है कि कड़ियां सामनेकी दीवार पर ( कि जिसमें दर-वाजे होते हैं) साधारण तरीके पर रखी रहें, पर उनको पिछली दीवारपर न टिकाकर, एक लोहे वा लकड़ीके लट्ठे-पर टिकायें, जिसका फासला पिछली दीवारसे लगभग फुट भर हो। उससे दीवार और लट्ठेके बीचमें एक लम्बा रोशनदान बन जाता है, जिसकी चौड़ाई करीब फुटभर के होती है। स्पष्ट है कि ऐसे मकानकी छतपर भारी कमरा नहीं डाला जा सकता ( [illegible] १४ )
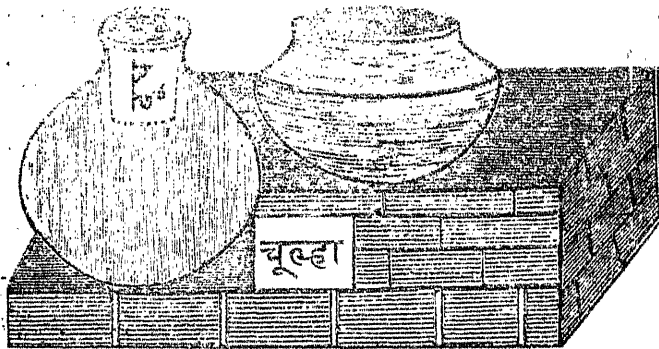
चित्र १२—चूल्हा

चित्र १३—चिमनी

चित्र १४—[illegible] ढंगका रोशनदान

* राय साहब ला० विशम्भर दयाल, रिटायर्ड इंजी-नियर, देहली।

सामान्य मकानोंके दरवाज़ों पर जो अकसर महराब होती हैं, वह खपरैलोंकी जाली से भर

चित्र १५—गुलम्बर या महराबोंके भरनेकी विधि

देनी चाहिएँ ( चित्र १५ ), जिससे दरवाज़ा बन्द कर देने पर भी हवाके आने जानेका रास्ता रहे। पौलीबन्द मकानोंमें सहन चौखूंटा होता है। इसके कोनोंमें ऐसे कोठे होते हैं, कि जिनके दरवाजे सहनमें नहीं खुल सकते। अतएव यदि सहन अठखूँटे बनाये जायँ तो कोठे भी बड़े, हवादार और स्वास्थ्य कर बन जायं (चित्र १६)।

बड़े बड़े मकानोंमें भी शौचागार ( पाखाना ) बहुत सङ्कीर्ण और अँधेरे देखनेमें आये हैं। यह पक्के रोशन और अच्छे बनने चाहियें। घरमें खोबा ( सण्डास ) रखना न चाहिये, जो कभी साफ नहीं रहता। साधारण खुड्डियोंमें भी बैठने और शौचके लिए अलहदा अलहदा स्थान होने चाहियें; नहीं तो मैला और शौचका जल मिल कर बहुत बदबू फैलाता है। आजकल कोई कोई नवसभ्य तथा म्युनिसिपलटीके डाकूर पाखानोंमें बाल्टी रख-वाते हैं, जिसमें मूत्र पुरीष आदि एकत्रित होकर न केवल दुर्गन्ध ही फैलती है बल्कि ऐसे पात्र ठीक तरह पर साफ न होनेके कारण अस्वास्थ्यकर होते हैं। इसके अति-रिक्त हमारे स्वास्थ्य विभागके वरपुत्र 'हला-लखोर' नामधारी कर्मचारी लोग ऐसे अर्द्ध-तरल मलको प्रायः रास्तेकी मोरियोंमें बहा कर स्वच्छताकी पराकाष्ठा कर दिखाते हैं। अतएव यदि 'धुलने पाखाने' ( W. C. ) न हों, तो पुरीषको मूत्रादिसे अलहदा ही रखना चाहिये।

( ङ ) पोशाक

यह भी सुधारके लायक है। देशी जूते-को देखिये कि दायें बायेंमें कुछ फर्क ही नहीं। चलते समय रेत मिट्टी इसके अन्दर इतनी घुस आती है और एड़ीके पीछेसे इतनी दबाती है कि चलना दुश्वार हो जाता है। इससे तो 'कलकतिया चट्टी' ही

चित्र १६

भली कि घरपर भी पहन लो और बाहर भी। बूटका तो कहना ही क्या है—पहन भी लो, पा भी लो।

पाजामेको देखिये कि सामने बटन नहीं। कुरतेको देखिये कि उसमें न तो कालर है न लगानेकी जगह। अचकन और चुगे इतने लटकते हुये होते हैं कि चलनेमें बाधा देते हैं और ज़रा सी असावधानीसे पल्लोंमें खोंच लग जाती है, और मुड़ कर बद शकल हो जाते हैं। खैर इन बातोंको स्वास्थ्यसे कुछ सम्बन्ध नहीं। अब मुड़ासेको लीजिये कि सिरको गरम करे, कानोंसे सुनने न दे और फिर चेहरे और गुद्दीका धूपसे बचाव नहीं कि जहां बहुत ज़रूरत है। यदि हमारे लिए कोई चीज़ विदेशी उपकारी है तो हैट, जिसको हम साधारणतः नहीं पहनते हैं।

सारांश यह कि यदि विचार किया जाय तो हमारे रस्म-रिवाजोंके अन्दर भी इसी तरह की अनेक वैज्ञानिक त्रुटियां मिल सकेंगी। पर, भारत वह 'अचलायतन' है कि जिसका सुधार न विद्यासागर[1] कर सके और न अचलायतनके लेखक[2] कर सकते हैं; फिर भी 'यत्नेकृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः'।

—बी० के० मित्र।

---

## पारद ( Mercury, Hydrargyrum. )

पारा खनिज हींगलूसे निकाला जाता है। देखने में यह श्वेत चान्दी के समान, द्रव, वजनदार और छोटे छोटे दानेके रूपमें आसानीसे सुख पूर्वक विभक्त होनेवाला होता है। ६७४° फारनहैटकी गर्मी पर उड़ने लगता है और - ३८° फारनहैटपर जम जाता है। व्यापारी लोग इसके अन्दर सीसा, टीन अथवा अन्य धातु मिला देते हैं। आयुर्वेद शास्त्रमें यह अनेक प्रकार से प्रयुक्त होता है। सम्पूर्ण रस-शास्त्रका इसीपर आधार है। उक्त धातु मिश्रण दोषोंको मिटानेके लिए अनेक प्रयोग किये जाते हैं। उन प्रयोगोंसे सिद्ध कर लेनेपर इसकी विषात्मक शक्ति नष्ट हो जाती है। इसकी अति अल्प मात्रा भी विशेष रोगोंमें अत्यन्त लाभदायक होती है। आयुर्वेदमें इससे सिद्ध प्रयोग, चन्द्रोदय, मकरध्वज, रस सिन्दूर, रस भस्म, कज्जलि ( पारागन्धक-मिश्रित रासायनिक योग ) तथा रसकर्पूर हैं। इन सब प्रयोगोंमें केवल रसकर्पूर और कज्जलिका ही विषात्मक प्रभाव अत्यन्त उग्र है। इस कारण यह वैद्य व्यवसायवालोंके लिए जानना अत्यन्त आवश्यक है।

### पारदका शरीरपर प्रभाव

त्वचापर लगाकर मलने और धूनी देनेसे भी यह शरीरमें प्रवेश कर जाता है। त्वचामें बालोंके मूल तथा स्वेद ग्रन्थियोंके छेदोंसे प्रवेश करता है और नीचे लिखे अनुसार अपना निश्चित प्रभाव उत्पन्न करता है। पारदके सब प्रयोग कृमिनाशक तथा संक्रामक-शक्तिनाशक हैं। विशेषकर रसकर्पूरका प्रयोग इस कामके लिए अधिक उपयुक्त है। उसका प्रयोग इस विधिसे करना चाहिये। एक भाग रसकर्पूर पांच लाख भाग पानीमें मिलाकर प्रयोग करनेसे (धोनेमें) प्लेगके कीड़ोंकी वृद्धि रुक जाती है। एक हिस्सा रसकर्पूर पचीस हज़ार हिस्सा जलमें मिलाकर प्रयोग करनेसे साधरण कीड़े तुरन्त ही मर जाते हैं। प्लेगके समयमें जर्मन डाक्टरोंका एक कमीशन बम्बईमें आया था। उसका कहना था कि एक हिस्सा रसकर्पूर सौ हिस्सा जलमें मिलाकर प्रयोग करनेसे भी प्लेगके कीड़े तुरन्त ही मर जाते हैं। इस प्रकार पारदके प्रयोग जीवोंपर पलनेवाले अनेक प्रकारके कीड़ोंको मार डालते हैं। रसकर्पूरका हलका घोल ( आधे चावलसे दो चावल तक एक औंस पानीमें मिलाकर ) शोथहर, संकोचक, शक्तिप्रद और अभिद्रा-

---

[1] ईश्वरचन्द्र। [2] रवीन्द्रनाथ।

वक होता है। अधिक उपयोग शोथकारक तथा व्रणोत्पादक होता है।

आन्तरिक प्रभाव

शरीरमें शोषण होनेके उपरान्त वही प्रभाव होता है जो प्रथम लिखा जा चुका है।

महास्रोत—पारदके प्रयोग मुखके मसूड़ोंपर और लाला उत्पादक ग्रन्थियोंपर विषात्मक प्रभाव करते हैं, जिससे लालास्राव अधिक होता है और मुखके अन्दर शोथ होता है। यह प्रभाव केवल स्पर्शसे ही नहीं होता, परन्तु पारद शरीरमें प्रवेश करनेके पश्चात् जब फिर शरीरसे बाहर निकलता है उसी समय वह लाला ग्रन्थियोंके द्वारा निकलता है और तभी यह रोग उत्पन्न करता है। आमाशयिक रसके द्वारा अनेक यौगिकोंमें परिवर्तित होकर पारा आमाशयके अन्दर शरीरमें शोषित होता है। ग्रहणी या क्षुद्र अन्त्रके ऊपरके हिस्सेमें, इच्छा-भेदी, नाराचरस, सूतभस्म ( Colomel ) और रस-कर्पूर, आँतोंकी और यकृतकी गति बढ़ाकर उनका अधिक रस चुआते हैं। इस कारण जो पित्त शरीरमें स्वभाविक दशामें शोषित होता है वह अन्य आँतोंके मलके साथ बाहर निकल आता है। इसी कारण पारदके यौगिक विरेचक होते हैं और हरे काले और पतले दस्त लाते हैं। क्षारीय विरेचक ओषधियों-की सहायतासे इन ओषधियोंका विरेचक प्रभाव अधिक बढ़ाया जा सकता है। यदि इनका अल्प मात्रामें प्रयोग किया जाय तो रेचन न करके शरीरमें शोषित होजाती हैं; फिर पारद गन्धिदके रूपमें बाहर निकलता है। पारदके प्रयोग ग्रहणी और क्षुद्र अन्त्रमें अन्नकी सड़नको बन्द करते हैं। इस कारण आयुर्वेद शास्त्र ग्रहणी रोगमें, ताम्र, स्वर्ण, पंचामृतपर्पटी, का प्रयोग करता है; जिसके सेवनसे आंतकी सड़न बन्द होकर मल निर्गन्ध होने लगता है।

यकृत—पारदके विषयमें यह भ्रम है कि यह यकृतमें पित्तकी वृद्धि करता है, किन्तु जैसा ऊपर लिख चुके हैं यह पित्त बढ़ाता नहीं वरन् उसको अधिक मात्रामें शरीरके बाहर निकालनेकी कोशिश करता है और पित्ताशय तथा पित्त प्रणालीको उत्तेजित करता है।

रक्त—पारदके परिवर्त्तित योग आमाशयिक रस द्वारा आमाशयसे रक्तमें प्रवेश करते हैं। वहां जाते ही रक्तस्थ ओषजन और ओज मिलकर पारदका नवीन योग बनाते हैं। प्रतिदिन सूक्ष्ममात्रामें दारुचिक-नेका प्रयोग करानेसे, रक्तमें लालकण बढ़ते हैं, और उसका धातु अंशभी अधिक बढ़ता है, इसीसे शरीरका भार बढ़ जाता है। अतः पारदके प्रयोग शक्ति उत्पादक हैं। आयुर्वेदमें इसके लिए रस-सिन्दूर, मकरध्वज आदि योग काममें लाये जाते हैं। इसके प्रयोगोंके अधिक मात्रामें दिये जानेसे पाण्डु रोग होजाता है; परन्तु इसका कारण अभीतक विदित नहीं हुआ कि यह रोग पाचन शक्तिके विकृत होनेपर होता है या ठीक होनेपर भी हो जाता है अथवा रक्तके अन्दर प्रभाव होनेसे ही होता है। इसके योग रक्तके श्वेतकणोंकी गतिको रोकते हैं।

वृक्क—एकसे दो रत्तीकी मात्रामें सूतभस्म ( Colomel ) या इच्छा-भेदी मूत्रोत्पादक प्रभाव अधिक उत्पन्न करते हैं। हृदयकी दुर्बलतासे जो सर्वांग शोथ होता है उसमें इसके प्रयोगसे यह प्रभाव विशेष देखा आता है। यदि वृक्करुग्ण हो तो इसका प्रयोग बड़ी सावधानीसे करना चाहिये।

संशोधन ( शरीरसे दूषित पदार्थोंका निका-लना)—पारद धीरे धीरे मूत्र, पित्त, दुध, स्वेद और लालाके द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है। वृक्क की बीमारी होनेपर यह काम कम होता है। पारद-मलके द्वारा गन्धिदके रूपमें निकलता है। यह शरीरमें जमा भी रहता है और हरएक अवयवमें मिल सकता है। यकृत और अस्थिके सुधांशुभाग ( चूनेका सा भाग ) इसके रहनेके विशेष स्थान हैं। जब यह लालाके द्वारा बाहर निकलता है तो लाला ग्रन्थियों पर प्रभाव पड़ता है, जिससे लाला स्राव अधिक होकर, लाला बनानेवाले कोषोंपर या बाल नाड़ियोंके अन्तिम किनारोंपर प्रभाव पड़ता है।

विशेष प्रभाव—फिरंग रोग ( Syphilis ) की पारद विशेष औषध है। प्रथम और द्वितीय अवस्थामें विशेष उपयोगी है। सब चिकित्सक इस रोगमें रसकपूर न्यूनाधिक मात्रामें अवश्य काममें लाते हैं। इससे फिरंग रोगोत्पादक जीवाणुओंका नाश होता है, क्योंकि यह रोग विशेष जातियोंके जीवाणुओं से उत्पन्न होता है। अवस्था, लिंग और स्वभाव भेद औषधिके प्रभावको न्यूनाधिक कर देता है। इसीसे पारदके प्रयोग बच्चे युवा पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक सहन कर सकते हैं, और स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष अधिक सहन कर सकते हैं। जिन रोगियोंको वृक्कशोथ, गण्डमाला, रक्त पित्त और मलेरिया ज्वर होता है उनपर यह औषध विशेष प्रभाव करती है।

कुछ मनुष्यों पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि छोटी मात्रामें ही प्रयोग करनेसे लाला स्राव प्रारंभ हो जाता है। लेखकको एक रोगीकी दशाका वृत्तान्त विदित है कि जिसको डेढ़ रत्ती सूतभस्म त्रिवृतादि चूर्णके साथ दी गई थी, विरेचन हो जानेपर भी दीर्घकाल तक भयंकर लालास्राव जारी रहा। गर्भवती स्त्रियोंपर प्रयोग करनेसे इससे कोई विशेष हानि नहीं होती।

तात्कालिक विष लक्षण—इसका तात्कालिक विषैला प्रभाव बहुत कम देखनेमें आता है। रसकपूर, दालचिकनाका ही विष प्रायः तत्क्षण होता है जिससे आमाशय और आन्तोंमें भयंकर प्रदाह होकर, वमन, विरेचन, शूल, रक्तातिसार और मूर्च्छा हो कर मृत्यु हो जाती है।

प्रतिविष ( Antidotes )—प्रारम्भके समयमें सावधानीसे वामक औषधियों द्वारा आमाशयकी शुद्धि कर स्नेह पान, दूध अन्डेकी सुफैदी या बादाम रोगनका प्रयोग करे।

अच्छा व्यवहार यह है कि प्रथम स्नेह पान करा कर, आमाशयको पम्प द्वारा धोकर सूची द्वारा अफीमका सत ( Morphine ) और मद्यसार चर्ममें प्रवेश करे।

चिरकालिक विष लक्षण—यह इस समय कम देखा जाता है। किन्तु, कभी कभी आकस्मिक घटना वश मिल भी जाता है; इस प्रकारके विषके पूर्व लक्षण यह होते हैं। श्वास दुर्गन्ध युक्त, मसूड़ोंका सूज जाना, मुखमें अरुचिकर स्वादोत्पत्ति, मसूड़ोंका शिथिल पड़ जाना, थोड़े स्पर्शसे भी रक्त-स्राव होना, लाला स्राव बढ़ जाना, लक्षणोंके बढ़नेसे जीभ फटकर सूज जाना, कण्ठ शालूक (Tonsils) और कौवेका फूलना, लाला ग्रन्थियोंका सूज कर कोमल होना, दान्त ढीले पड़ना, मसूड़ोंमें व्यथा होना, लालाका मुखमें आना और चिकना होकर झड़ते रहना, ज्वर और दुर्बलताका बढ़ना। उक्त लक्षणोंके प्रकट होते ही पारद युक्त औषधि तुरन्त बन्द कर देनी चाहिये। यदि बड़ी मात्रामें औषध बराबर सेवन कराई जाय तो लक्षण भयङ्कर होकर दान्त गिर जाते हैं, मुखमें घाव होकर, फोड़े निकल कर, मुखके जबड़ेकी हड्डीके जोड़ कठोर हो, पाण्डु रोग हो जाता है और इस भांति बारबार रक्त परिस्राव होनेसे मनुष्य मर जाता है। पारदकी धूनी देनेसे जब विषात्मक प्रभाव होता है तो उक्त लक्षणोंसे भिन्न लक्षण दृष्टि पड़ते हैं। वह यह हैं—मांस कम्पन ( यह मुख मण्डलसे प्रारम्भ होकर हाथोंपर प्रभाव करता हुआ पुनः पैरों पर प्रभाव करता है। जिन भागों पर इसका प्रभाव पड़ता है वह भाग अत्यन्त दुर्बल हो जाते हैं)। इसके प्रभावको पारदीय कम्प कहते हैं। यह कम्प साधारण वातजन्य कम्प ( Paralysis ) से भिन्न होता है। क्योंकि यह मानसिक विचारके साथ बढ़ता घटता है। इसमें मस्तिष्क और ज्ञानेन्द्रियोंकी दुर्बलता होती है। साधारण उष्णता पर अखनिज पारद वाष्प रूपमें परिणत हो जाता है। और विषात्मक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। बहुत से मनुष्य जो शीशों पर पारा चढ़ानेका काम करते हैं उनमें पारदके विष लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह बात विद्यार्थियोंको भली भांति स्मरण रखनी चाहिये। वायु-

वेद शास्त्रमें पारदके मुख्य तीन दोष माने हैं—विष, अग्नि और मल। इन तीनों दोषोंके रहते हुए यदि यह सेवन कराया जाय तो क्रमशः मरण, सन्ताप और मूर्च्छा होती है।

नाग और वंगके संयोगसे जो योग बनता है उसके सेवनसे, जड़ता आध्मान और कुष्ठ होता है। स्थान पर्वत और जल विशेषके संयोगसे औपाधिक दोष होते हैं; उसमें स्थानिक दोष कुष्ठ उत्पन्न करते हैं। पर्वतके दोष जड़ता उत्पादक हैं और जल-दोषोंसे वायु रोग उत्पन्न होते हैं। इसके अतिरिक्त सप्तकंचुक दोष और माने हैं जिनका विस्तार रस शास्त्रोंमें लिखा है। इनके शोधन करनेकी विधि भी रस शास्त्रोंमें विस्तार सहित लिखी है। आयुर्वेद शास्त्रमें पारदकी मात्रा एकसे दो रत्ती तक है और यह भी लिखा है कि विशेष पथ्यके सेवन करनेसे ही यह अधिक लाभ करता है अन्यथा हानिकारक है।

पारद सेवन समय पथ्य—घृत, सैन्धव, ज़ीरा, धनियां, अदरकके साथ पका हुआ चौलाईका शाक, परवल, आलू, लौकी, गेहूं, पुराने चांवल, गाय का घी दूध, दही, वर्षाका जल, मूंगका यूष।

पारद सेवन समय अपथ्य—बैंगन, बेल, काशीफल, पेठा, करेला, उड़द, मसूर, मोठ, कुलथी, सरसों, तिल, उपवास करना, उबटन करना, स्नान करना, मुरगेका मांस, मद्य, आसव, अरिष्ट जल, मच्छीका मांस, कांजी, केले, के पत्तोंपर रख कर भोजन, कांसीके पात्रका उपयोग विबन्ध कारक तथा उष्ण पदार्थ राई, नीबू, निर्मली, इन्द्रजो, ककड़ी, ककौड़ा, कैथ, मोरका मांस, कङ्गणी कोदा, बेर, सूठार सरसोंका तेल, कछुएका मांस, मटर और पीपल।

पारदीय विकारों पर आयुर्वेदकी चिकित्सा—डकारें अधिक आवें तो दही चावल, और काली मच्छी भून कर जीरेके साथ खावे।

कम्प होता हो तो नारायण तैलकी मालिश करे।

शिरमें दर्द होनेपर शीतल जलकी धार शिरपर छोड़े, प्यास बहुत हो तो नरियलका पानी, मूंगके यूषमें खाण्ड मिलाकर पिये अथवा अंगूर, अनार, खजूर, केले आदि फल खाय।

—"वैद्य"

---

## स्वस्थ-जीवन

( ले०—भिषग्रत्न वैद्य गोपीनाथ गुप्त हल्दौरा )

( १ )

वायु और श्वासोच्छ्वास

क दीर्घकाल तक अति कोमल किन्तु दुर्भेद्य चहार दीवारीके भीतर अतीव संकीर्ण, घोर तमाच्छादित काल कोठरीमें, कमल—नालके सहारे जल शैयापर विश्रान्ति लेनेके बाद संसारमें अवतीर्ण होते ही हज़रते इन्सानका सबसे पहिला काम श्वास लेना है। बच्चा बाहर आते ही सबसे पहले श्वास लेता है, और बस इसी प्रथम श्वाससे उसका जीवन-काल आरम्भ हो जाता है।

चिर-रुग्ण, शीर्ण देह, अस्थि-पञ्जरावशिष्ट वृद्ध मृत्यु शैय्या पर लेटा है, पासही डाक्टर साहेब विचार-निमग्न बैठे हैं, वैद्यराज नाड़ी टटोल रहे हैं। अंगुष्ठ मूल में, पहुँचेमें, कोहनीके पास, कहीं पता नहीं। यह लो, वृद्धने एक गम्भीर श्वास छोड़ी, डाक्टर साहबने आशा छोड़ी, वैद्यराजने गरदन हिलाई, अड़ौसी पड़ौसी गुन गुनाने लगे, घरवाले चीख उठे 'हाय......'।

यह श्वास अन्तिम श्वास थी। इसीके साथ वृद्धकी संसार-लीला समाप्त होती है, जीवन-दीप शान्त होता है।

ओह! बस! श्वास से श्वास तक ही जीवन की पहुँच है? एक श्वाससे जीवनका आरम्भ

होता है और दूसरे पर अन्त। श्वास ही जीवनका परिचायक है और इसीका अभाव मृत्युका चिन्ह। जीवनके आरम्भसे लेकर मृत्यु पर्यन्त उठते बैठते, चलते फिरते, खेलते कूदते, हंसते रोते, सोते जागते, सभी अवस्थाओंमें श्वास-क्रिया निरन्तर जारी रहती है; हां योगियोंकी बात कुछ निराली है, यह सृष्टि ही अलौकिक है।

श्वास-क्रियाका अर्थ है नासिका द्वारा बाहरकी वायुको अन्दर खींचना और भीतरकी वायुको बाहर निकालना।

वायुके बिना श्वास-क्रिया नहीं हो सकती और श्वास नहीं तो जीवन भी नहीं। इससे स्पष्ट है कि वायु हमारे लिए कितनी उपयोगी चीज़ है। आहारके बिना कुछ काल तक जीवित रहना सम्भव है, पानी के बिना भी कुछ समय तक जीवन रह सकता है, परन्तु वायुके बिना कुछ मिनटोंमें ही प्राणान्त हो जाता है।

वायु जितनी आवश्यक वस्तु है उतने ही प्रचुर परिमाणमें हमें प्राप्त भी है। हमारे चारों तरफ ५०—१०० मील तक गहरा[1] वायुका सागर फैला हुआ है और हम उसकी तलीमें जल-जन्तुओंकी भांति विचरते हैं।

हमें प्रत्येक श्वासपर अंग्रेज सरकार का उपकार मानना चाहिये कि उसने हवापर टैक्स नहीं लगाया, नहीं तो जो सरकार पानीपर टैक्स लगा सकती है उसके लिए वायुपर टैक्स लगाना कुछ असम्भव नहीं है! सचमुच यदि वायुपर टैक्स लगा दिया जाय तो सोचिये फिर हमारी क्या दशा हो?

वायु एक मिश्रित पदार्थ है, जिसके १००० भागमें निम्नलिखित पदार्थ पाये जाते हैं—

ओषजन २०८.६ भाग, नत्रजन ७८० भाग, कार्बोनिक एसिड गैस ०.४ भाग, पानीकी भाप-गरमीके परिमाणानुसार।

इनके अतिरिक्त थोड़े थोड़े परिमाणमें अमोनिया, प्राणिज और वनस्पति-जन्य तथा खनिज पदार्थ भी पाये जाते हैं।*

यद्यपि साधारण वायुमें सबसे अधिक भाग नत्रजनका ही होता है; परन्तु हमारे जीवनका आधार प्रधानतः ओषजन पर ही है, परन्तु ओषजन इतनी तीव्र वायु है कि केवल उसीमें श्वास लेकर हम जीवित नहीं रह सकते। नत्रजनके मेलसे इसकी तीव्रता घट कर श्वासोपयोगी हो जाती है। इसके सिवाय नत्रजनका जीवनके लिए कोई दूसरा उपयोग मालूम नहीं होता।

वायुमें पानीकी भाप होनेके कारण हमारा शरीर सूर्यके तापको सहन कर सकता है। यदि वायुमें पानीकी भाप न हो तो हमारे शरीर सूर्यके तापसे झुलस जायं और हम जीवित न रह सकें।

कार्बोनिक एसिड गैस एक ज़हरीली गैस है, जीवोंके लिए यह प्राण घातक है; परन्तु साधारण वायुमें यह इतनी कम होती है कि उससे हमें कोई विशेष हानि नहीं पहुंचती। हां यदि इसका परिमाण अधिक हो जाय तो अवश्य हानिकारक है। यह गैस अग्नि जलनेसे उत्पन्न होती है। हमारे शरीरमें भी एक प्रकारकी अग्नि प्रतिक्षण जला

[1]—कोई ग्रन्थकार वायुकी गम्भीरता ४५ मील लिखते हैं, कोई १०० मील और कोई २०० मील तक लिखते हैं।

* प्राच्याचार्योंने पञ्च महातत्वोंमें वायुकी भी गणनाकी है, यह देखकर अनेक विज्ञान-विज्ञ प्राचीन सूक्ष्म विज्ञानकी हँसी उड़ाते नहीं हिचकते; परन्तु यह याद रखना चाहिये कि जिस प्रकार 'अग्नि तत्व' का अर्थ जलती हुई लकड़ी या अंगारक आदि नहीं है उसी प्रकार 'वायु तत्व' का अर्थ आपकी यह मिश्रित वायु नहीं है। यथावकाश किसी आगामी लेखमें इस विषय पर अपने विचार प्रकट करनेका प्रयत्न करूंगा।

करती है* । इससे तथा शरीरके भीतर होनेवाली अन्य रासायनिक क्रियाओंके कारण शरीरके भीतर सदैव कार्बोनिक एसिड गैसकी उत्पत्ति होती रहती है। इसके प्रभावसे रक्त दूषित और काला हो जाता है। दूषित रक्तसे शरीरका पोषण नहीं हो सकता। यदि रक्त एक बार दूषित होकर फिर शुद्ध न हो तो हम जीवित नहीं रह सकते, परन्तु जिस प्रकार रक्त प्रतिक्षण दूषित होता रहता है उसी प्रकार प्रतिक्षण शुद्ध भी होता रहता है। रक्त-शुद्धि प्रधानतः श्वास-क्रियापर ही अवलम्बित है। श्वास-क्रियाके प्रधान अवयव फुप्फुस (फेफड़े) श्वास पथ और वायुकी नालियां हैं।

फुप्फुस दो हैं जो छातीके भीतर, पसलियों के बीचमें दोनों ओर उदरके आरम्भ तक फैले हुये हैं। बायें फेफड़ेकी अपेक्षा दहिना फेफड़ा कुछ अधिक चौड़ा और भारी होता है। परन्तु लम्बाई-में कुछ कम होता है। दोनों फुप्फुस ऊपर (गरदन-की तरफ़) से कम चौड़े और नीचेसे अधिक चौड़े होते हैं। नीचेका चौड़ा भाग 'वक्षोदर मध्यस्थ पेशी†' से मिला रहता है।

फुप्फुसकी बनावट स्पंज (बादली) के समान होती है। स्पंजके समान ही उसमें हज़ारों छोटी छोटी कोठरियां (वायुकोष) होती हैं तथा उसके समान ही स्थिति-स्थापक गुण भी होता है। स्थिति-स्थापकता होनेके कारण फुप्फुस हवा भरने पर फूल जाते हैं और फिर अपनी पूर्वावस्थामें आ जाते हैं। यदि फुप्फुस स्पंजके समान न होकर थैलीके समान होते तो उनमें बहुत सी वायु समा सकती। परन्तु वायु कोषोंके कारण उनमें बहुत सी वायु समा सकती है। हिसाब लगाया गया है कि फु-प्फुसोंमें १६ से १८ करोड़ तक वायु कोष होते हैं।

दोनों फुप्फुस एक बारीक झिल्लीमें लिपटे रहते हैं, इस झिल्लीके बाहरी पृष्ठ सदैव एक प्रकार-के तरल से भीगे रहते हैं जिसके कारण फुप्फुसोंके फैलने और सिकुड़नेके समय घर्षण नहीं होता।

वायु नासिकासे होती हुई कंठमें, वहांसे टेंटु-वेमें और टेंटुवेसे फुप्फुसोंमें चली जाती है। ना-सिकासे फुप्फुस तक वायु जानेके मार्गका नाम "श्वास-पथ" है।

कण्ठमें श्वास-पथके पीछे आहार-नल रहता है। इस स्थान पर श्वास-पथ और आहार-पथ मिले रहते हैं, परन्तु भोजन करते समय एक ढकना श्वास पथके द्वारको बन्द कर देता है और खाद्य पदार्थ श्वास पथमें न जाकर इस ढकनेके ऊपर से होता हुआ आहार-पथमें चला जाता है। कभी कभी हंसते हंसते या बातचीत करते हुए भोजन करते रहने से धांस या फँदा लग जाया करता है। उसका कारण खाद्य पदार्थ या जलके सूक्ष्म कणोंका श्वास-पथमें चला जाना ही है। जब तक वह वहाँ से निकल नहीं जाते बराबर खांसी आती रहती है।

श्वास पथका कण्ठसे फुप्फुस तकका भाग नलीके समान होता है। फुप्फुसमें पहुंचकर इसके दो भाग हो जाते हैं, एक दाहिनी ओर जाता है और दूसरा बाईं ओर। फिर यह नलियां ज्यों ज्यों फुप्फुसमें आगे प्रवेश करती हैं त्यों त्यों वृक्षकी शाखाओंके समान अनेक भागों में विभक्त होती जाती हैं। अन्तमें बाल जैसी बारीक सूक्ष्म नालियोंमें विभक्त हो जाती हैं।

फुप्फुसमें इन हवाकी नालियों से मिली हुई ही रक्तकी अति सूक्ष्म नालियां होती हैं। इन

* यह अग्नि साधारण अग्निकी भांति नहीं जलती, न इससे लपट निकलती है और न प्रकाश ही। प्रत्युत जब ओषजन शरीरके प्रोटीन, शर्करा और वसासे मिलती है तो एक प्रकारकी रासायनिक क्रिया होती है जिससे गरमी उत्पन्न होती है।

† यह वह महराबके आकारका पर्दा है कि जिसके द्वारा उदर और छातीकी कोठरियां पृथक् पृथक् होती हैं। ऊपरके पसलियोंसे घिरे हुए भागका नाम "उरः" या छाती है और नीचेके पसली रहित भागका नाम उदर है।

दोनों नालियों के बीचमें केवल एक ही बारीक परदा होता है।

जब हम श्वास लेते हैं तो 'वक्षोदर मध्यस्थ पेशी' नीचेको सिकुड़ती है। इसके दबावसे आमाशय, यकृत अन्त्र आदि भी नीचेको दब जाते हैं। साथ ही पसलियां और छातीके सामनेकी हड्डी (वक्षास्थि) भी सामनेको और ऊपरको उभर जाती हैं। इन क्रियाओंसे फुप्फुसोंको फैलनेके लिए पर्याप्त स्थान मिल जाता है और उनमें हवा अच्छी तरह भर जाती है।

बाहरसे श्वासके साथ जो ओषजन जाती है वह वायुकी नालियोंमें से रक्तकी नालियोंमें आ जाती है, साथ ही रक्तकी कार्बोनिक एसिड गैस वायुकी नालियोंमें चली आती है, परिणामतः रक्त ओषजनके मेलसे शुद्ध और लाल हो जाता है।

वायुकी नालियोंमें आई हुई कार्बोनिक एसिड गैस प्रश्वासके साथ बाहर निकल जाती है। प्रश्वास वायुमें यह गैस इतनी अधिक होती है कि इसकी प्रतीति सहजमें ही हो सकती है।

साधारण वायुमें किसी प्रकारकी गन्ध नहीं होती परन्तु प्रश्वास वायुमें गन्ध होती है। यह गन्ध कार्बोनिक एसिड गैस* और उसके साथ बाहर निकलने वाले आन्तव पदार्थोंके कारण होती है। प्रश्वासमें कार्बोनिक एसिड गैस जितनी अधिक होती है, उतने ही अधिक आन्तव पदार्थ भी होते हैं; अतएव गन्ध भी अधिक होती है। बड़े बड़े मेलों और तंग मकानोंमें होनेवाले बड़े बड़े जलसोंमें इस गन्धका अनुभव अधिकांश पाठकोंको हुआ होगा।

यदि हम शीशेके ग्लासमें चूनेका स्वच्छ पानी भर कर उसमें एक नली द्वारा मुंहकी भाप पहुंचाएं तो थोड़ी देरमें इस पानीका रंग दूधके समान सफ़ेद हो जायगा। इसका कारण कार्बोनिक एसिड गैस ही है, क्योंकि इस गैसके प्रभावसे चूना चाक मिट्टीमें परिणत हो जाता है।

यदि किसी मक्खी या अन्य क्षुद्र जीवको कांचकी शीशीमें डालकर उसमें नली द्वारा प्रश्वास वायु पहुंचायी जाय तो देखते ही देखते उसके प्राण पखेरू कूंचकर जांयगे, क्योंकि नत्रजन और कार्बोनिक एसिड गैसमें श्वास लेकर कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता।

इन सब बातोंसे प्रकट है कि हमारे प्रश्वासमें कार्बोनिक एसिड गैसका भाग बहुत अधिक होता है। हिसाब लगाया गया है कि प्रति १४ घंटे में एक मनुष्यके श्वासके साथ ८० तोला अथवा १६ घनफुट कार्बोनिक एसिड गैस बाहर निकलती है।

(अपूर्ण)

* कार्बोनिक ऐसिडमें किसी प्रकार की गन्ध नहीं होती। —सं०

---

## स्वप्न

### (२)

पीछे कह आया हूं कि रुद्ध इच्छा ही स्वप्नमें काल्पनिक परितृप्ति लाभ करनेकी चेष्टा करती है। आज आलोचना करूंगा कि वह रुद्ध इच्छा क्या है और उसकी उत्पत्ति किस प्रकार होती है। दैनिक कार्य्योंकी आलोचना करने से जान पड़ेगा कि उनमें से अधिकांश की उत्पत्ति हमारी इच्छाके कारण होती है। ऐसे कामों में हमारी इच्छाका अस्तित्व परिस्फुट भावसे वर्तमान रहता है। जैसे भूख लगने पर खानेकी इच्छा हुई और खाना आरम्भ किया। ऐसे कामों के अलावा हम लोग कुछ ऐसे कामोंको भी करते हैं जिनमें हमारी इच्छाका अस्तित्व स्पष्ट भाव से नहीं जाना जाता। पैर पर मच्छड़ बैठा, अन्यमनस्क भाव से हाथ से उसे उड़ा दिया। यह काम

हमने अपनी इच्छाके वशीभूत होकर किया ऐसा नहीं कहा जा सकता।

आंखमें धूल पड़ी आंख बन्द कर ली। यहां आंख बन्द करना हमारे इच्छाधीन नहीं है। धूल पड़ने से आँख आप ही आप बन्द हो गई। अन्यमनस्क भाव से हम लोग जो काम करते हैं उसमें इच्छा परिस्फुटित नहीं होती। साधारण लोगोंका विश्वास है कि पहले इच्छा उत्पन्न होती है; पीछे उसके अनुसार काम किया जाता है। बात ठीक होने पर भी कभी कभी यह जानना कठिन हो जाता है कि उस इच्छाके अनुरूप कौन काम हुआ। इसे जाननेके लिए मन का विश्लेषण करना आवश्यक है। हमें किसीने भला बुरा कहा। हमने फौरन उसके गाल पर एक चपत जड़ दी। चपत मारना हमारे इच्छाधीन अवश्य है। मारनेके समय हमारे मन में उस इच्छाका उद्रेक हुआ था; किन्तु हम उसे समझ नहीं सके। ऐसे काम—जैसे मच्छड़ उड़ाना, आंख बन्द करना, चपत मारना आदि, जो अन्यमनस्क भाव से किये जाते हैं, किस इच्छाके कारण हुए, यह जानने के लिए मानसिक विश्लेषणका आश्रय लेना पड़ता है। इसलिए जान पड़ता है कि इच्छा कई प्रकारकी होती हैं।

१—जो इच्छाएं परिस्फुट हैं; जिनके समझनेमें कोई भी कष्ट नहीं होता। मान लीजिये, मनमें एक बार बनारस जानेकी इच्छा हुई और दूसरी बार मथुरा जानेकी; किन्तु पीछे विचार ठीक किया कि मथुरा ही जायंगे। यहां मथुरा जानेकी इच्छा परिस्फुट रूपसे मनमें उठी।

२—जो इच्छाएं मनमें उठी नहीं; किन्तु उनके अस्तित्वके विषयमें सन्देह नहीं हो सकता। जैसे नित्य के कार्य्य—सुबह उठकर मुंह धोना; इसकी इच्छा मनमें नहीं उठती; किन्तु आप ही आप हम मुँह धोने बैठ जाते हैं। सभी प्रकारके समस्त कार्य्योंमें इसी प्रकारकी इच्छाका अस्तित्व होता है। जब कोई उसके विषयमें पूछता है तब हमें उसका ज्ञान होता है।

३—जो इच्छाएं अपरिस्फुट हैं; किन्तु उनका अस्तित्व सहज में ही समझा जाता है। जैसे क्रोधमें चपत मारना; इस इच्छाको चेतनाके एकदम बाहर नहीं कहा जा सकता। इस प्रकारकी इच्छाका अस्तित्व समझनेके लिए मनका विश्लेषण करना आवश्यक है।

४—जिन इच्छाओंका अस्तित्व केवल अनुमानसे किया जा सकता है। मनका विश्लेषण करनेपर भी इस श्रेणीकी इच्छाओंके अस्तित्वका पता नहीं लगता। केवल कामको देख कर पहले इस प्रकार की इच्छा उठी थी या नहीं, यह जानकर उसके अस्तित्वका अनुमान किया जाता है। मान लीजिये, मैं सिगरेटका आदी हूं। अपने मित्र के कहने से ठीक किया कि अब सिगरेट न पीऊँगा। मैं एकाग्र चित्त से पुस्तक पढ़ने लगा, पासमें ही सिगरेटका केस रखा हुआ है। पढ़ते पढ़ते अन्यमनस्क भावसे कब सिगरेट जलाकर पीने लगा मालूम नहीं। खयाल पड़नेपर देखा सिगरेट पी रहा हूं। इस अवस्थामें सिगरेट जलाना इच्छा कृत होने पर भी उस इच्छाका अस्तित्व मैं नहीं समझ सका। कब इस इच्छाका मनमें उद्रेक हुआ; चेष्टा करने पर भी जाना नहीं जा सकता। हां, कार्य्य करते हुए, अर्थात् सिगरेट पीते हुए, देख कर मनमें कुछ भी सन्देह नहीं रहता कि कभी सिगरेट पीनेकी इच्छा हुई थी।

खयाल रखना होगा कि यह इच्छा अनुमान सापेक्ष होने पर भी उसके अस्तित्व अथवा सत्यताके विषयमें कोई भी सन्देह नहीं रह जाता। इस प्रकार की इच्छा अपरिस्फुट होने पर भी परिस्फुट इच्छा के विरुद्ध कार्य करा सकती है। ठीक किया था—सिगरेट नहीं पीऊंगा; किन्तु सिगरेट पीने की इच्छा ने हमें अन्यमनस्क अवस्थामें पाकर विवश किया।

५—जिन इच्छाओंका अस्तित्व केवल आनुमानिक है। विश्लेषणकी सहायता से उनका

अस्तित्व जानने पर भी मनमें ऐसी इच्छा है, इस बात पर आसानी से विश्वास नहीं किया जा सकता। मान लीजिये, मैं एक व्यापारी हूं। महाजनने रुपयेका बिल भेजा है। मुझे अभिमान है कि मैं एक सच्चा आदमी हूँ, तो भी महाजनका रुपया भेजना मैं प्रति दिन भूल जाता हूँ। लोग अनुमान कर सकते हैं कि मेरी इच्छा महाजनको रुपया देने की नहीं है। मेरे महाजन ने ऐसा अनुमान कर लिया है और इसके लिए दो तीन बार खरी खोटी सुना भी दी है। हमने उन्हें समझाया कि कामके झंझटके कारण रुपया देना भूल जाता हूँ। इस पर उन्होंने कहा—"तुम अपना कर्ज अपने कर्जदारोंसे वसूल करना तो नहीं भूलते हो? इसलिए कामका झंझट केवल एक बहाना मात्र है।" महाजन कभी यह विश्वास नहीं कर सकता कि रुपया अदा कर देनेकी इच्छा रहनेपर भी मैं भूल जानेके कारण ऐसा नहीं करता।

महाजन का ऐसा अनुमान करना ठीक है या नहीं? केवल एक घटनाके ऊपरसे ही यदि ऐसा अनुमान करना हो तो ठीक नहीं भी हो सकता है; किन्तु यदि देखा जाय कि बार बार रुपया देनेमें भूल हो रही है और रुपया न देनेकी इच्छा हमारे अन्यान्य आचरणों से भी प्रकट होती है तो ऐसा विचार लेनेमें अधिक भूल नहीं हागी कि रुपया देनेकी हमारी इच्छा नहीं है। किस प्रकारका प्रमाण होने से इस प्रकारकी इच्छाका अस्तित्व माना जासकता है—इसपर पीछे विचार करूंगा। इस प्रकारकी इच्छा अज्ञात तो हैं ही; किन्तु इसके अतिरिक्त यदि कोई उसका अस्तित्व दिखा भी दे तो हम आसानीसे माननेवाले नहीं। पाठक लक्ष्य कर सकते हैं कि इस प्रकारकी इच्छाके वशीभूत हो हम लोग जो काम करते हैं उसका एक और ही कारण दिखाते हैं। इस प्रकारका कारण दिखलाना इतना स्वाभाविक है कि मनो-विज्ञान-विदों ने उसका नाम करण भी किया है और नाम दिया है—Rationalisation; हिन्दीमें उसे युक्त्याभाष कह सकते हैं। यह युक्त्याभाष अहठात् सुनने से न्याय संगत युक्ति ही के ऐसा जान पड़ेगा; किन्तु युक्त्याभाष प्रदर्शनकारी इसे स्वीकार करना नहीं चाहते; बिलका रुपया न देनेका कारण कामका झंझट दिखलाना है: किन्तु अपना रुपया अदा करनेके समय कामका झंझट नहीं रहना। तर्कमें परास्त होने पर भी युक्त्याभाष प्रदर्शनकारी कहेंगे—भूल हुई है, अन्यमनस्क होकर की है, इस प्रकार सब कोई करता है, इत्यादि। इस भूल तथा अन्यमनस्कतामें एक विशेषता है।

अन्नभाम

---

## श्यामकी विजय

डा० थेडियस बोलटन नामक एक मनोविज्ञानके अध्यापकने कई वर्षों तक अपने निरीक्षणोंके बाद यह एक बड़ा विस्मय जनक परिणाम निकाला है कि नर और नारी दोनों श्याम रंगको बड़ी प्रसन्नतासे देखते हैं। बच्चे अपने शिक्षाके प्रारम्भिक कालमें लालको बहुत पसन्द करते हैं। फिर उनकी भी प्रवृत्ति नीलेकी तरफ़ हो जाती है।

अध्यापक महोदयकी सम्मतिमें रेलवे के महकमेमें जो संकेत लाल और हरी झण्डियों या लालटैनोंका दिया जाता है वह भी पीले और नीले में बदल जाना चाहिये; क्योंकि ३ प्रति सैकड़ा पुरुष हरे और लाल रंगके लिए अंधे ही होते हैं। नीले और पीलेका हरेक की आंख विवेक कर लेती हैं।

प्रायः देखा गया है कि कुछ लोग नीला ही पसन्द करते हैं और कुछ लोग पीला। वह अपने पसन्दपर ही कपड़े भी चुना करते हैं। लालरंग प्रथम तो आंखको खैंचता है; पर बादमें नीरस जान पड़ता है। आंख जल्दी थक जाती है। फलतः प्रकृतिने भी अपना बहुत सा चमत्कार नीले पीलेमें ही गूंथ रखा है। यदि यह वातावरण

नीलेरंगका भूखा न होता और नीलप्रकाश इस वातावरणमें ही शोषित न होजाता तो सूर्यनारायण भी नीलमणिके बने हुए प्रतीत होते। तोभी पीत रूप तो उनका किसीसे छिपा नहीं है। कदाचित नीलनारायणका साक्षात् दर्शन हमें नहीं होता; बल्कि हमें तो केवल भगवानका पीताम्बर ही देखते हैं। इसीसे उपनिषद् कहती है।

'हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापि हितंमुखम्' सचाईका मुख सुनहरी ढकनेसे ढका है।

योगियोंको अन्तर्ज्योतिके दर्शन होनेके समय प्रथम प्रथम पीतज्वाला दीखती है और ज्यों ज्यों अभ्यास बढ़ता है त्यों त्यों उसकी उज्ज्वलता बढ़ती जाती है और नीली अधूम ज्वालाका दर्शन होता है। उसीमें योगीका शरीर स्वयं बिना चिताके जल जाता है। उसकी चित्त शक्ति ही चिता बन जाती है।

इसके अतिरिक्त भारतमें श्रीकृष्ण की श्याम-कान्तिपर भक्त मोहित हैं। लक्ष्मी उनके सामने उनकी सेवामें लगी हैं; वह स्वतः सुवर्ण वर्ण हैं। नीले पीलेका जोड़ा वहां भी नहीं छूटता। स्वयं कृष्ण भगवान पीताम्बर नहीं छोड़ सके।

श्रीरामको घनश्याम कहा जाता है जिनके वामांग में श्रीजानकी भी मेघमें दामिनीके समान सोहती हैं।

मुसलमानोंमें "काबा" का पत्थर बड़े आदर और मान से पूजा जाता है। वह भी नीला है। उसीके अनुकरणमें यह लोग नीला कपड़ा बहुत पसन्द करते हैं। भगवानकी वानस्पतिक सृष्टिमें हरयावल भी नील-पीतका सम्मिश्रण है। समुद्र नीला है। सब आकाश नीला है; दूरसे पर्वत भी नीले देख पड़ते हैं। रात्रिमें चन्द्रकी चान्दनी भी आनील है।

लाल वहीं है जहां तापकी अधिकता है। गर्मी-का चिन्ह लाल है। क्रोधमें आंख लाल रहती है। खूनके जोष से देह लाल रहती है। परन्तु प्राणि संसारकी अन्तरात्मा शान्तिका अभिलाषी है। वह सब प्रकारसे तप कर भी शान्तिदायक वस्तुओंपर स्वभावसे ही रीझ जाता है। यही कारण है कि वह अपने इष्टदेवोंको भी शान्तिदायक नीले रंगमें ही रंगा पाता है। फलतः श्याम की विजय है।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

---

## अतिशयोक्ति

आज कल हिन्दी साहित्य की दिनोंदिन उन्नति हो रही है। पत्र तथा पत्रिकायें गवेषणापूर्ण लेखों और समालोचनाओं से भरी रहती हैं। यदि एक ओर देवदत्त हैं तो दूसरी ओर बिहारीलाल जी विराजमान हैं। कहीं केशव हैं तो दूसरी ओर पद्माकरकी चर्चा हो रही है। कहनेका मतलब यह कि प्रत्येक दूसरोंसे बढ़ जानेका प्रयत्न कर रहा है। अच्छी बात है, यह तो होना ही चाहिये; क्योंकि इसी प्रकारका निर्णय होना भी ठीक है। प्रतिदिन ऐसे चटपटे वादाविवादको पढ़कर मेरा भी मन बहक गया और ऐसा समझा कि कुछ लिखकर ही दम लूं। आज यहाँ कुछ शृङ्गारी कवियोंकी अतिशयोक्तियोंका वर्णन किया जाता है।

हिन्दी साहित्यमें व्रजभाषाकी कविता बड़े मार्केकी हुई है। कवियोंने सुखमा और सौन्दर्य-का अति सजीव वर्णन किया है। साधारणतः उस समयके कवि दो भागोंमें विभक्त किये जा सकते हैं—( १ ) भक्तिरसके कवि—( २ ) विशुद्ध शृङ्गारी कवि। प्रथम श्रेणीवालोंमें सूर, तुलसी, कबीरका नाम उल्लेखनीय है। इन लोगोंने भक्तिरसको ऐसा अपनाया है कि उसीमें लीन होगये और कितने ही उत्कृष्ट ग्रन्थोंकी रचना करडाली, जिसका कि आज भी ज्वलन्त प्रमाण मौजूद है। इन लोगोंने

विशुद्ध प्रेमका वर्णन किया है। दूसरी श्रेणीवाले विशुद्ध श्रृङ्गारी कवि थे; जिनमेंसे केशव, देव और बिहारीका नाम उल्लेखनीय है। इन लोगोंने तो श्रृङ्गार रसको ऐसा अपनाया कि जिसका कुछ ठिकाना ही नहीं। यद्यपि भक्तिरसवालोंने भी श्रृङ्गार रसका वर्णन किया है; किन्तु वह सदाचार-की सीमासे बाहर नहीं गये और अपनी मान मर्य्यादाका उल्लंघन नहीं किया। परन्तु दूसरी श्रेणीवालोंने तो श्रृङ्गारका अंत कर दिया। उन लोगोंने तो सदाचारको कुछ समझा ही नहीं। वह अपनी धुनमें मस्त रहे, यदि कोई एक क़दम चलता तो दूसरा दो क़दम चलनेको तैयार रहता। नायक नायिकाओंके न जाने कितने भेद हो गये। यहाँ बेचारे नायक नायिकाओंको पता ही नहीं। उन लोगोंने अपनी पुस्तकोंमें ऐसे भाव भर दिये हैं कि कुछ कहनेकी बात नहीं। अतिशयोक्तियोंकी तो भरमार है। यदि कहीं कवियोंको किसी नायिकाकी नाक टेढ़ी जान पड़ी तो उन लोगोंने उसकी तोतेकी सी टेढ़ी नाक बनाकर दम लिया। यदि किसी नायिकाकी कमर पतली जान पड़ी तो फिर क्या था; उसके पीछे पड़ गये और दुनियांमें पतलीसे पतली चीज़ सोचकर उसकी उपमा दी गई। यदि किसीका कुच बड़ा जान पड़ा तो उसे पहाड़के समान बना डाला।

विरह वर्णनमें तो कवियों ने कमाल किया है। यह तो सभी जानते हैं कि विरहकी ज्वाला अति भयंकर होती है; उससे पुरुष क्या और स्त्री क्या सभीका जीवन नष्ट हो जाता है। किन्तु कवियोंने अपनी क़लमकी कुव्वतको ऐसे ढंगसे दिखलाया है कि दंग रह जाना पड़ता है। विरहकी ज्वाला न ठहरी बम्मके गोले ठहर गये। इस विषयमें विहारीलालने लिखा है।

दोहा।

आड़े दै आले बसन, जाड़े हू की राति।
साहस कै कै नेह बस, सखी सबै ढिंग जाति॥

अर्थात् जाड़ेके दिनोंमें भी सखियाँ पानीसे भीगे कपड़ेकी आड़ लगाकर और साहस करके उस बिरहिणी नायिकाके पास जाती हैं।

इतनी भयंकर ज्वाला? सखियाँ जाड़ेके दिनों-में तो भीगे कपड़ेका आड़ लगाती थीं, गर्मियोंमें क्या करती होंगी? और देखिये—

दोहा।

इत आवत चलि जात उत, चली छसातिक हाथ।
चढ़ी हिंडोले सी रहे, लगी उसासनि साथ॥

अर्थात् जब बिरहिणी सांस लेती है तो छः सात हाथ आगेकी ओर, और जब सांस बाहर निकालती है तो छः सात हाथ पीछेको ओर चली जाती है, यानी वह इतनी हल्की दुबली हो गई है कि हिंडोलेकी तरह इधर उधर झूलती रहती है।

यदि विरहिणी इतनी हल्की हो गई थी कि इधर उधर आती जाती थी तो वह तितिलीके पर लगाकर अपने पतिके पास क्यों न उड़गई। धन्य है अतिशयोक्तिकी पराकाष्ठा। और देखिये महा-कवि गंगने लिखा है कि—

कवित्त।

बैठी है सखिन संग पियको गमन सुन्यो,
सुखके समूहमें वियोग आग भरकी।
'गंग' कहै त्रिविधि सुगंध लै बह्यो समीर,
लागत ही ताके तन भई बिथा ज्वर की॥
प्यारीको परसि पौन गयो मानसर पै सु,
लागत ही औरे गति भई मानसर की।
जलचर जरे औ सेवारि जरि छार भई,
जल जरि गयो पंक सूख्यो भूमि दरकी॥

अर्थात्—नायिकाने जब यह सुना कि नायक (पति) परदेश जानेवाले हैं तो उसके शरीरमें ऐसी वियोग ज्वाला भड़की कि उसे छूकर जो हवा मानसरोवर पर पहुँची तो मानसरोवरके जीव, जन्तु सब मरगये और पानी जलगया; कीचड़ सूख गयी और पृथ्वी दरार खाकर फट गई।

पद्माकर ने भी लिखा है—

कवित्त ।

दूरही ते देखत बिथा में वा वियोगिनि कि,
आई भले भाजि ह्यां इलाज मढ़ि आवेगी ॥
कहै पद्माकर सुनो हो घनश्याम जाहि,
चेतत कहूँ जो एक आह कढ़ि आवेगी ॥
सर सरितान को न सूखत लगेगी देर,
एती कछु जुलमिनि ज्वाला बढ़ि आवेगी ॥
ताके तन ताप की कहों मैं कहा बात मेरे,
गात ही छुवेते तुम्हें ताप चढ़ि आवेगी ॥

अर्थात्—एक नायिका है वह घनश्यामसे कह रही है कि मैं उस वियोगिनीकी दशा देखकर यहाँ भाग आई हूं। यदि मैं उसके पास जाती तो अवश्य ही जल जाती। तुम मेरे शरीरको छू कर देखो, यदि तुम्हें ताप न चढ़ जाय तो कहना। वह बेहोश पड़ी हुई है, यदि उसके मुंह से आह निकल गई तो नदियों तालाबोंके सूखनेमें देर न लगेगी।

धन्य है, यह बिरहकी ज्वाला है या ज्वालामुखी पहाड़की भाप। गज़बकी वह स्त्रियाँ हैं, जिनके हृदय में ऐसी भयंकर ज्वाला बास करती थी। समझमें नहीं आता कि वह गांवमें कैसे रहती थीं, उनके पास कोई जाता था या नहीं! अतिशयोक्ति की पराकाष्ठा है और देखिये ग्वाल कविने लिखा है।

कवित्त

ससि मुखी सूक गई तब तै व्याकुल भई,
बालम बिदेशहु को चलिबो जबै कयो।
दूध दही श्री फल रुपैया धरि थार माहिं,
माता सुत-भाल जबै रोलि कै टीको दयो।
तांदुर बिसरि गयो बधु से कह्यो लै आउ,
तब तैं पसीनो छुट्यो मन तन को तयो।
ताँदुर लै आई तिया आगनमें ठाढ़ी रही,
करके पसारवेमें भात हाथमें भयो।

अर्थात्—ग्वाल कवि कहते हैं कि और चीज़ें सब आ गई थीं। केवल टीका लगानेके लिये चावल रह गये थे। सास की आज्ञानुसार बहू चावल भी लाई। किन्तु वह सासके हाथ तक न पहुंच सके। विरहिणीकी इतनी भयंकर ज्वाला बाहर निकली कि चावल का हाथमें ही भात हो गया।

धन्य है, मालूम होता है कि उस समय भात रोटी भोजन तैयार करनेके लिए आग नहीं जलती थी, क्योंकि जब इसी प्रकार भोजन तय्यार होता था तो आगकी क्या आवश्यकता थी!

आज वर्त्तमान समयमें तो भारतमें एक भी वियोगी और वियोगिनी ऐसी नहीं दिखलाई पड़ती, जिनके मुख से ऐसी भयंकर ज्वाला निकलती हो; यद्यपि इस समय वियोगी और वियोगिनियों की संख्या उस समयसे कहीं अधिक है।

यह तो मैंने आपको बहुत थोड़े में विरह वर्णन सुनाया। अब जरा कमर की अकथ कहानी भी सुन लीजिये।

विहारीने लिखा है।

दोहा

लगी अनलगी सी जु विधि करी खरी कटि छीन।
किये मनो वाही कसरि कुच नितंब अति पीन ॥

अर्थात्—ब्रह्माने उसकी कमर अत्यंत पतली बनाई है कि लगी हुई भी न लगी हुई सी जान पड़ती है यानी होते हुये भी नहींके समान है; मानों इसीका बदला देनेके लिए उसके कुच और नितम्ब बहुत बड़े कर दिये हैं।

कमर क्या है, बाल है। भला बालके समान पतली कमर वाली स्त्री कब हुई, इतिहाससे भी तो इसका कुछ प्रमाण नहीं मिलता। जिस स्त्री को कमर इतनी पतली थी उसके शरीरकी बनावट तो न्यारी ही होगी।

भला बिहारीने तो इतना ही लिखा किन्तु केशवदासने तो इसका अस्तित्व ही मिटा दिया, चलो छुट्टी हुई; जो चीज है ही नहीं इसके लिए क्या करोगे। यथा

कवित्त

भूतकी मिठाई कैसी साधुकी कुडाई जैसी,
स्यारकी ढिठाई ऐसी छीण छह ऋतु है।
धीरा कैसो हास केसोदास दासी कैसो सुख,
सूर कीसी संक अंक रंक कैसो पितु है॥
सूम कैसो दान महामूढ़ कैसो ज्ञान गौरी
गौरा कैसो मान मेरे जान समुदित है।
कौने है सँवारी वृषभानुकी कुमारी
यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है॥

भला ऐसी कुठाईका भी कुछ ठिकाना है। चाहे उन लोगोंकी स्त्रियां कटिहीन न रही हों, परन्तु वहाँ तो भेड़िया धसान थी; जिधर एक पिल पड़ा उधर सब चलनेको तैयार हो गये। भारतवर्षमें तो इन बातों पर अधिक ध्यान नहीं है, हाँ अँग्रेजों में अवश्य है। परन्तु अँग्रेज लेडियाँ भी तो कटि हीन नहीं होतीं। कैसा तमाशा है कवि लोग तो ऐसे अतिशयोक्तिके पीछे पड़े कि असली चीज़को भूल ही गये। एक दम अनोखा संसार ही रच डाला।

यह तो हुआ कटि वर्णन; अब कुच वर्णन देखिये—देव कविजी अपने भवानी विलासमें संखिनी नामका लक्षण लिखते हैं यथा—

सवैया

सौंचि सरूप विरंचि सोनार ज्यों,
सांचे में दैभरि काढ़ि है कोऊ।
'देव' उचीठे न ओठ सुधा भरे,
आठहु याम मिठास समोऊ॥
दै छुतिया पर पार परे पिय,
प्रेम अपार समुद्र में सोऊ॥
काम की सागरि नागरि के उर-
गागरि से उचके कुच दोऊ॥

ज़रा अन्तिम पद को देखिये, काम की सागरि नायिकाके वक्षस्थलमें घड़ेके समान दोनों कुच उठे हुये हैं। धन्य है, जिस नायिकाके कुच घड़ेके समान थे वह नायिका कितनी बड़ी होगी। क्या आज से दो ढाई सौ वर्ष पहले घड़ेके समान कुचवाली स्त्रियां होती थीं। इतने ही समयमें इस प्रकार सृष्टिका उलट फेर! अत्युक्तिकी पराकाष्ठा। उपमा हद से पार हो गई।

यों तो व्रजभाषाके कवियों की पुस्तकोंमें बहुत सी आतिशयोक्तियाँ भरी पड़ी हैं, मैंने तो यहां पर नमूनेके बतौर कुछ दिखला दिया है।

—ज्योतिप्रसाद मिश्र "निर्मल"

---

## अंग्रेजीका मद भंग

देवनागरीकी विजय

अंग्रेजीमें २६ अक्षर हैं। इसमें संदेह नहीं कि २६ अक्षर सीखकर याद करलेना कोई बहुत कठिन काम नहीं है। पर क्या २६ अक्षर सीख लेने से ही सब पढ़नेकी समस्याएं हल हो जांयगी? मनुष्य वाणीमें तो व्यक्ताक्षरोंकी संख्या २६ से कहीं अधिक है। फिर एक दूसरेके मिलने से उन अक्षरोंकी संख्या और भी बढ़ जाती है। इसी प्रकार जो सुगमता २६ अक्षर सीखलेनेमें विद्यार्थीको होती है उसकी कसर उनके मेल से उत्पन्न होनेवाले अन्य अक्षर तथा अंग्रेज़ी शब्दोंके विचित्र स्पेलिंग या शब्द-रचनाके ज्ञानमें निकल जाती है।

एक कठिनता यह भी उपस्थित होती है कि उसे २६ के स्थान पर १०४ अक्षर सीखने पड़ते हैं; तब कहीं छात्र अपने पढ़ने लिखनेका काम चला सकता है। लेखन प्रकारका अभ्यास वह जिन अक्षरोंमें करता है उनसे पर्याप्त भिन्न अक्षरोंमें उसको पढ़नेका अभ्यास करना होता है। फल यह होता है कि विद्यार्थी धारा-लेखनमें जिस बात को स्वयं अपनी कलमसे लिख लेते हैं उसके फिर पढ़नेके लिए वह असमर्थ होते हैं। इसका कारण यह होता

है कि उनको लेखनाक्षरोंके लिखनेका ही अधिक अभ्यास होता है, पढ़नेका नहीं।

अबतक इतनी शिक्षाकी उन्नति होने पर भी यूरोपके विज्ञ इस दोषको दूर नहीं कर सके। अब कुछ एक विद्वानोंका ध्यान इस ओर भी खिंचा है। इंग्लैण्डके कई स्कूलोंमें अब यह विधि चलाई गयी है कि विद्यार्थी जिन अक्षरोंका पठन करें उन्हीं अक्षरोंका वह लेखमें भी प्रयोग करें। इसके बहुत उत्तम फल हुए हैं। विद्यार्थियोंको अधिक अक्षर याद नहीं करने पड़ते। सब अक्षर पृथक् पृथक् स्पष्ट लिखनेसे उनमें वर्णविन्यासकी अशुद्धि भी शीघ्र प्रतीत हो जाती है। जो वह स्वयं लिखते हैं, उसके फिर पढ़नेमें भी कठिनता नहीं होती और लिखनेमें भी अक्षर सुन्दर प्रतीत होते हैं।

देवनागरीमें यह सब सुगमताएं उपस्थित हैं। भारतवर्षमें कभी भी लेखन और पठनकी शैली भिन्न भिन्न नहीं हुई। उर्दूमें भी घसीट या शिकस्ता-का पढ़ लेना एक समस्या है। भारतमें मराठीमें लेखनाक्षर कुछ भिन्न भी प्रयुक्त होते हैं, जिसे मोड़ी कहते हैं, परन्तु अब यह रिवाज उठता जाता है।

हमें पूरी आशा है कि यूरोप अपनी सब तरह की कमजोरियां और त्रुटियां शनैः शनैः मानेगा और उनको सुधार करके आखिर कहीं आकर अटकेगा, जिसपर ऋषिमुनियोंने अपनी छाप लगादी है।

—जयदेव शर्मा विद्यालंकार

---

## रसना

यदि किसी व्यक्तिसे पूछाजाय कि स्वाद किस इन्द्रियके आश्रित है तो वह निस्संकोच होकर उत्तर देगा—जिह्वा। परन्तु सौन्दर्य रसका आस्वादन करनेके लिए चक्षुकी आवश्यकता है। इसीलिए साहित्यिकोंमें यह झगड़ा चल रहा है कि रसनाका अर्थ जिह्वा है कि चक्षु। बेताब जी की बेताबी और दीनजी की अदीनताका लुत्फ इस विषयमें थोड़े दिन हुए हम उठा चुके हैं। सौन्दर्य-का विवेचन तो हम कवियों और साहित्यिकोंके लिए छोड़े देते हैं; हम तो मोटीसी बात पदार्थोंके स्वादसे ही यह निर्णय करेंगे कि रसना नाम किस इन्द्रियको देना चाहिये।

जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं जन साधारण समझते हैं कि स्वाद जिह्वाका विषय है; परन्तु यह बात सर्वांशमें सत्य नहीं है। जिह्वासे केवल छः रसों (मीठा, चरपरा, कसैला, खट्टा, कड़वा, नमकीन) का ही अनुभव हो सकता है। परन्तु अन्य सूक्ष्म रसोंका ज्ञान हमें नाककी सहायतासे होता है। इसका एक अत्यन्त सरल प्रमाण है। किसी मनुष्यको कई प्रकारके मुरब्बे खिलाइये, पर उससे कह दीजिये कि खाते समय नाक बन्द कर ले। ऐसा करनेसे खानेवालेको यह ठीक ठीक पता न चल सकेगा कि वह किसका मुरब्बा खा रहा है।

इसी प्रकार स्वादका पूरा पूरा अनुभव करनेके लिए आंखकी भी बड़ी भारी आवश्यकता है। यदि आंख बन्द करके कोई आदमी बीअर (bear) और स्टौट (stout) नामक मादक द्रव पिये तो उसे दोनोंमें भेद न प्रतीत होगा। कुछ लोग ऐसे भी हैं जिन्हें यदि आंख बन्द करके कहवा और चाय पिलायी जाय तो उन्हें स्वादमें कुछ भी भेद प्रतीत न होगा। गत यूरोपीय महायुद्धमें जो सिपाही अंधे हो गये थे उन्हें तम्बाकू पीनेमें स्वाद ही न आता था। जब उन्हें और तेज़ तम्बाकू दी गयी तब कहीं स्वादका अनुभव होने लगा। साधारण आदमी भी यदि आंख बन्द करके तम्बाकू पियें तो उन्हें मज़ा आधा ही आयेगा। इसी बातसे अनुमान होता है कि धुआंके पेचीले पथको देखनेमें ही तम्बाकू पीनेवालोंको मज़ा आता है।

उपरोक्त प्रयोगोंसे विदित है कि स्वादके लिए जिह्वाके साथही साथ चक्षु और घ्राणका होना भी परमावश्यक है; अतएव रसना शब्द इन तीनों ज्ञानेन्द्रियोंका द्योतक होना चाहिये।

## अमोनियम कर्बनेत

अमोनियाके लवण खादके काममें आते हैं। अब तक अमोनिया गंधेत (Ammonium sulphate) खादके काममें लाया जाता था। परन्तु गंधेतके बनानेमें गंधकाम्लका व्यय होता है। इसीलिए हालमें ही गंधेतके स्थानपर कर्बनेतका प्रयोग होना आरम्भ हुआ है। कर्बनेतके बनानेमें कर्बन द्विओषिद पानीकी क्रिया अमोनियापर कराई जाती है। कर्बन द्विओषिद चूनेके भट्ठोंसे बिना मूल्य मिल सकती है, अतएव अमोनियम कर्बनेत गंधेतसे सस्ता पड़ेगा।

## कुकेनका प्रति विष

केलसियम हरिद (Calcium chloride) के दस प्रतिशत घोलके २ घनशतांशमीटर त्वक भेद करके शरीरके भीतर पहुँचानेसे अधिक मात्रामें कुकेन खा जानेवालेके शरीरमेंसे विषैला प्रभाव दूर किया जा सकता है।

## सबसे मीठी शर्करा

सबसे अधिक मीठी होनेका श्रेय लेव्युलोजको प्राप्त है। यह मामूली चीनीसे पंच गुनी मीठी है। यह शहद, फलों और वनस्पतियोंमे पायी जाती है। परन्तु इसके रवे बनाना अत्यन्त कठिन है; बहुत दिन तक तो यह शर्बतके रूपमें ही मिलती थी।

## १०१२॥ रु० सेरकी शकर

इस शकर का नाम एरिबिनोज (Arabinose) है। यह गमएरेबिक से बनायी जाती है। इसका आविष्कारक फिलिपनी था। सं० १६३७ में पहले पहल यह बनी थी। जीवाणु शास्त्रियोंके यह बड़े कामकी चीज़ है। १६७२ वि० में ही यह पर्याप्त मात्रामें मिलने लगी है।

## ६२५ रु० सेरकी शर्करा

तीन शर्कराओंका यह भाव है। इनके नाम हैं मैलिजिटोज (Melezitose) लैव्युलोज (levulose) और इन्यूलिन (Inulin)। पहली शर्करा तुर्किस्तानमें पाये जानेवाले एक प्रकारके मन्नासे बनायी जाती है। इसका आविष्कार बौनेस्तर (Bonastre) ने सं० १८६० वि० में किया था। इस पर और अन्तिम शर्करापर प्रयाग हो रहे हैं।

## शुद्धि पत्र

कई कारणों से 'भारतीय वेधशाला' शीर्षक लेखमें कुछ अशुद्धियां रह गई हैं; उन्हें पाठक कृपया सुधार लें।

| पृष्ठ | पंक्ति | कालम | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|---|
| १० | १० | १ | सप्तर्षीन | सप्तर्षीन् |
| " | ११ | " | तिकुत्यार्घ | निवृत्यार्घ |
| " | " | " | जयकार | जटाकार |
| " | १२ | " | सुदितः | उदितः |
| " | २५ | " | भावर्त | आवर्त |
| ११ | १८ | " | षष्ठियंत्र | यष्ठियंत्र |
| १२ | १२ | " | २३'२८ | २३°२८' |
| १४ | ३२ | " | साधारण | आधार |
| " | १८ | २ | पास | ज्ञात |
| " | २६ | " | योग | भोग |
| १५ | १३ | " | जायके आगे पढ़िये "तो नाड़ीवलय यंत्रकी उत्पत्ति हो जाती है।" | |
| " | १६ | २ | वृत्तके | वृत्तमें |
| १६ | ५ | १ | पसवांड | पसवाड़े |
| १६ | ८ | २ | सूर्यातरेय | सूर्यातरेथ |
| " | ५ | " | धृते | भृते |
| " | ६ | " | नाड़याः | नाड्यः |

उक्त लेखके लेखकका पूरा नाम पं० विन्धेश्वरी प्रसाद मिश्र है।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १७ | वृष, संवत् १९८० । मई, सन् १९२३ | संख्या २


## जनताके मुखपर पशु-विज्ञान

पशु विषयक कहावतें

हुत सी बातें हम लोकसे ही सीखते हैं। सर्व साधारण भी सदा आंख मींचे नहीं रहता। वह भी विधाताकी सृष्टिको उन्हीं आंखोंसे देखता है जिन आंखोंसे विज्ञानका पिपासु विद्यार्थी देखा करता है। भेद इतना ही है कि विद्यार्थी बहुत मनन और विचारके पश्चात् ज्ञान संचय कर उसको विशेष रूपसे ग्रथित करता है और शास्त्रका रूप दे देता है। परन्तु सर्व साधारण भी उस सत्यताको देखता है और जानता है; परन्तु संग्रह नहीं करता; प्रत्युत उसको अपने व्यवहारानुकूल जैसे तैसे समय पर योंही प्रकाशित किया करता है। वही बात आदर पाकर सत्यका रूप पकड़ लेती है। उसको शास्त्र न कह कर हम जन-श्रुति कहा करते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि उसमें भी बहुत अंशमें सत्य कूट कूट कर भरा होता है; क्योंकि उसकी व्यवहारिक सत्यताको जांच परख कर ही लोक उसको बहुत आदर देता है। बड़े बड़े वैज्ञानिक सत्य लुप्त हो जाते हैं, चाहे उनका कुछ भी मूल्य क्यों न हो; क्योंकि सर्व साधारणके व्यवहारिक उपयोगके न होनेके कारण लोकमें उन सत्योंका कोई आदर नहीं होता; परन्तु जिन सत्य बातोंको लोक अपने मुखसे एक मनोहरसा रूप देकर श्रुति रूपमें प्रसिद्ध कर देता है वह सत्य सदाके लिए अमर हो जाता है। वास्तविक श्रुति वही है जिसको लोक अपनाता है। लोक जनश्रुति ही प्रभुकी वाणी है। वह सत्य ही की महिमा है, जिसे लोक विना तर्कके स्वीकार कर लेता है। अस्तु इसी लोक श्रुतिको

जनश्रुति, जनरव, लोकोक्ति कहा जाता है। लोकोक्ति सचमुच सार्वजनिक सत्य है कि जिसमें एककी बात और बहुतोंकी स्वीकृति है।

हम इस लेखमें पशु-पक्षियोंके सम्बन्धमें कुछ लोकोक्तियोंका उल्लेख करेंगे। आशा है कि पाठकगण अवश्य मनोविनोद अनुभव करेंगे।

१—यह आम तौर पर देखा जाता है कि बछड़ा गायके पीछे जाता है और बछेरा अपनी मां घोड़ीके आगे चलता है; परन्तु तो भी गुण और शरीरकी विशेषताओंमें प्रायः देखा जाता है कि गायका बछड़ा बिलकुल अपनी मांके स्वभाव पर और बछेरा सदा अपने बापके स्वभाव पर जाता है। जन श्रुति है—

मां गुन बाछ पोता गुन घोर।
नाहीं कुछ तो थोरो थोर॥

२—यह देखा जाता है कि सावनमें बहुत अधिक घास होती है। गाय भैंस उस ऋतुमें खूब पेट भर कर खाती हैं और उनकी पुष्टि भी होती है, परन्तु गधा उस मासमें भी कृश रहता है। पता नहीं सावन भादोंकी घास उसके क्यों अनुकूल नहीं होती? लोकोक्ति है।

"गदहा दूबर सावन मास।"

यह लोकोक्ति तभी कही जाती है जब सब सुख सम्पत्ति होनेपर भी कोई दरिद्र ही रह जाय।

इसी प्रकारकी एक उक्ति संस्कृतमें भी बड़ी शिक्षाप्रद है। एक कविने भोजराजके हाथों बहुत दान लेनेकी अभिलाषासे उसकी प्रशंसा करते हुए कहा—"राजन्!

त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविताः द्रुमाः।
अस्माकं त्वर्क वृक्षाणां पूर्वं पत्रेऽपि संशयः॥

"जब तुम पर्जन्य, मेघ, होकर बरसने लगे तो और सब वृक्ष तो खूब पनप गये पर हम आकके पौधोंके तो पहले पत्तोंमें भी संदेह है कि बचेंगे या नहीं।"

आकका पौधा बरसातके मौसममें छितरा जाता है; उसके पत्ते सूख सूख कर गिरने लगते हैं।

३—जब पशु थक जाता है तब उसको अपने ऊपर लदा थोड़ा सा भी भार असह्य हो जाता है।

"थाकल बरदसे पेआर भारी"

अर्थात् थके हुए बैलको अपने पीठ पर रखी गून भी भारी होती है।

"थाके बैल गौन भई भारी।
तब अब का लादे बेपारी॥"

थके बैलके सिर तो खाली गूनियां भी भारी हैं फिर ब्यापारी उस पर भार क्या लादता है।

इन दोनों कहावतों में बैलका मनोविज्ञान कितनी सूक्ष्मतासे देखा गया है।

४—प्रतीत होता है कि गायोंके बीचमें काली लंगड़ी लूली आदि गाय बांधनेसे उसका प्रभाव और गायें पर भी बुरा पड़ता है। जैसे सरकार पागल, अन्धों और कोढ़ियोंके लिए अलग ही प्रबन्ध करती है, उनके बीचमें रहने से साधारणको बहुत कष्ट होता है और साथ ही उसको भी बहुत कष्ट रहता है; इसी प्रकार पशुओंमें हीनांगको औरोंसे इसी विचार से पृथक् रखा जाता है। जनरव है "कानी गैयाके अलगे थान।"

५—मनुने लिखा है कि यदि गाय किसीके खेतमें चर रही है तो उसकी सूचना खेतवाले को न देनी चाहिये। क्योंकि खेतवाला उसको डण्डेसे मारकर भगा देगा। इधर उसे पेट भर चारा भी न मिला और डण्डे लगे सो अलग। इसी भावसे एक कहावत भी है।

"केकर खेती केकर गाय; पापी होय जे हांके जाय।"

वह खेत भी किसी औरका है और गाय भी किसी औरकी है; फिर योंही शोर मचा कर गायको हाँकनेवाला पापी ही है।

गौको प्राचीन कालमें बहुत ही पवित्र समझा जाता था। उसका मारना महा पाप था। यदि गायके गलेमें रस्सा बांधनेसे उसका प्राण निकल जाता था तो बांधनेवालेको गोहत्याका दण्ड मिलता

था। तभीसे लोगोंमें प्रथा है कि संकट पड़नेपर गायका रस्सा तुरन्त खोल दिया जाता है।

६—गाय जो दुधारी नहीं होती यों ही बाहर छोड़ दी जाती है, परन्तु तिसपर भी उसका रखवाला तो कोई है ही। परमात्मा या सामाजिक धर्म ही ऐसे असहाय जन्तुओंका रक्षक है। लोकोक्ति है—

"आंधरी गाय धर्म रखवार।"

७—बैल बिचारा व्यापारके बड़े काममें आता था। मालिक व्यापारी बैल लाद कर ही बड़ा खुश हो जाता था।

इसी बातपर एक कहावत है—

"बैल न कूदे कूदे गोन, ई तमाशा देखे कौन"

या "बैल न कूदे कूदे तंगी।"

८—पराधीनता यद्यपि सभीको कष्ट देती है तो भी अपने बन्धनको तुड़ानेके प्रयत्नमें सभीको एक आनन्द आता है। अपने बलकी परीक्षा हो जाती है। जैसे जन-श्रुति है—

"खूंटा के बल बछड़ा कूदे।"

९—बैलोंकी परीक्षा करनेके विषयमें हम गावोंमें प्रचलित कुछ विशेष छन्द और लोकोक्तियां लिखते हैं। एक स्त्री कहती है—

बैल बेसाहे चल लह कन्त, बैल बेसाहिह दुइ दन्त।
काछकलौरी सांवर-वान, ईछाड़ि क्निहि मति आन॥
जबै देखहि रूपा धौर, टका चारि दीह उपरौर।
ओहपार जबदेखिह मैना, एही पारसे दीह बैना॥
जबदेखिह बैरिया गोल, उठ बैठ के करिह मोल।
जबदेखिह करियवाकन्त, कै लगो ला लेख जनु दन्त॥
सरग पताली भौंआटेर, अपन खाई परोसिये हेर।
कैना कांवर गोल टिकार, ईहो हरिहैं दाम तोहार॥

हे कन्त ! तुम बैल खरीदनेके लिए जाते हो। याद रखो ऐसा बैल खरीदना जिसके दो दो दांत हों। वह बल कभी मत खरीदना, जिसमें कुछ न कुछ सांवली आभा न हो। यदि तुम्हें बैल बिलकुल स्वेत ही दीख पड़े तो उसको चार रुपये अधिक देकर भी खरीद लेना। यदि बैलके सींग खूब बड़े बड़े देखो तो सड़कके इस पारसे ही आवाज़ दे देना कि बैल खरीद लिया। यदि बैलका सिर लाल रंगका हो और शेष शरीर भी हलका लाल हो तो जब तक उसकी चारों तरफ़से उठ बैठ कर, झांक झूँककर, परीक्षा न कर लेना तब तक मोलभाव मत करना। पर प्यारे कन्त, यदि बैलका रंग काला या पीला हो या एकदम लाल हो तो उसके दांत भी देखने की आवश्यकता नहीं है।

याद रखना कि जिसका सींग एक तो आसमानकी ओर दूसरा पातालकी तरफ़ जा रहा हो और भौंहें टेढ़ी हों उसको मत लेना। वह अपने मालिकको तो मारता ही है; पर पड़ोसियोंको भी ले बैठता है।

भूरे, पीले या चितकबरे या लाल या माथे पर चिटकनवाले बैलपर रुपया लगाना तो खोना ही है।

१०—मनुष्य अपनी शानकी वस्तुओंका अधिक मूल्य समझता है और काममें आनेवाली उपयोगी वस्तुओंसे इतना प्रेम नहीं करता। इसीलिए वह बैलोंसे कड़ा काम लेता है; पर घोड़ों को अस्तबलोंमें बांधकर अपनी शोभा बढ़ाया करता है। तभी कहा जाता है—

पीस कूट मरे बैला बैठल खाय तुरंग (सुन्दर घोड़ा)।

११—सगरे फ़ौज में ऊंठ बदनाम।

सारी सेनामें ऊंठ ही बदनाम रहता है, क्योंकि उसीकी ऊंची गर्दन शीघ्र शत्रुकी दृष्टिमें आजाती है और शत्रु का आक्रमण होजाता है।

१२—स्वार्थी मनुष्य जीभके वश है, इसीलिए—

जाहीं ते कछु पाइये सहिये कड़ए बैन।
लात खात चुचुकारते सहत दुधारी धेनु॥

जिससे कछु मिलता है, उसके कड़ुए बचनभी सहने पड़ते हैं। दुधारी गायकी लात खाकर भी उसको पुचकारा ही जाता है। ठीक है,

दुधारी गाय के दू लातउ भला।

१३—गायें कामधेनु हैं। उनकी चरण रज भी पवित्र है। फिर चरण स्पर्शकी तो महिमा ही क्या कहनी। सुनिये उसके लक्षण भी—

अच्छी गाय बेसाहिये जिसकी कज्जल नैन।
सोलह सींग बत्तीसखुरी नवथन तेरहकान॥
आंगन बरसेघरे बाछा घास न खाय।
पहले दही जमायके पीछे लीजे गाय॥

यदि गाय खरीदनी है तो अच्छी गाय खरीदिये। जिसकी स्वच्छ आंखें हों, जिसके १६ अंगुल सींग, ३२ अंगुल खुर, ( गोड़ से लेकर खुर तक ), ९ अंगुल थन और तेरह अंगुल कान हों। तब देखना आपके आंगन भर दूध दूध ही बरसेगा। दूध इतना होगा कि बछड़ा भी दूधसे अघाकर घास न खाया करेगा। पर पहले दही जमाना सीख लीजिये; तब ऐसी गाय खरीदिये नहीं तो दूध इतना ज्यादा होगा कि दिन भरमें पीये न पिया जायगा—अगले दिन दही जमाकर ही पार पड़ेगा।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

---

## वेनेडियमके यौगिक और डाक्टर

वेनेडियम धातु संखिया, एंटिमनी और बिस्मथसे गुणोंमें बहुत मिलती जुलती है। अतएव कुछ आश्चर्य नहीं है कि उसके यौगिकोंका डाक्टर लोग चिकित्सामें प्रयोग करने लगे हैं। सरल वेनेडेटोंका प्रयोग रक्त हीनता, क्षयी आदि रोगोंमें सफलता पूर्वक हुआ है। वेनेडिक अम्ल चर्म रोगोंमें बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई है। सोसाइटी औफ केमिकल इंडस्ट्री (Society of Chemical Industry) के मुख पत्र (1922 page 373 R) में वेनेडियमके जटिल यौगिकोंका प्रयोग फिरंग रोग तथा उससे पैदा होनेवाले अन्य रोगोंमें बतलाया गया है।

---

# खेतीके प्राण और उसकी रक्षा

### खेतीके काम और यंत्र*

( ले०—एल० एजी० )

मड़ाई

दाने वाली कटी हुई फ़स्लको लाँक कहते हैं। यह लाँक जिस स्थानपर दाना निकालनेके लिए रखा जाता है उसे खलियान कहते हैं।

खलियानके लिए स्थान चुनते समय निम्नलिखित बातोंकी ओर ध्यान देना चाहियेः—

( १ ) यह स्थान ऐसा हो जहाँ पर पछवा हवा बिना रुकावटके आ सके। ऐसा होनेसे दाना निकालने में सहूलियत रहती है।

( २ ) इसकी भूमि कड़ी होनी चाहिये, जिससे कि बैलोंके लाँकपर घूमने से मिट्टी न उखड़े।

( ३ ) इस स्थान पर कङ्कड़ और ठिकरियां न होनी चाहियें, क्योंकि ऐसा होनेसे उनके दानेमें मिल जानेकी सम्भावना रहती है।

( ४ ) आस पासकी ज़मीनसे यह स्थान कुछ ऊँचा होना चाहिये; जिससे कि वर्षाका जल एकत्रित न हो सके।

( ५ ) लाँक रखनेसे पहले इस स्थानको साफ कर देना चाहिये। यदि खर पतवार हो तो उन्हें छील देना उचित है।

( ६ ) पासमें बैलों और अन्य काम करनेवालोंके लिए कुआँ या अन्य जलाशयका होना आवश्यक है। इससे पीनेके लिए पानी मिलनेमें सुगमता रहेगी।

( ७ ) छायाके लिए कुछ वृक्ष निकट हों तो विश्रामके समय धूपसे बचनेमें सुभीता रहेगा।

---

* विज्ञान भाग १५ संख्या ६ पृष्ट २०९ से सम्मिलित।

( ८ ) चेंटों या चूहोंके बिल यदि पास हों तो उनको बन्द कर देना चाहिये।

लाँक खलियानमें उत्तर, दक्षिण और पूरबमें रखना चाहिये। पश्चिमकी ओर लाँक इसलिए नहीं रखते हैं कि उधरसे उड़ाई या उसाईके लिए हवाका आना आवश्यक है। जिन दिनों मड़ाई की जाती है उन दिनों प्रायः पछुवा हवा चला करती है।

चित्र १७—सांखी या जेली

लाँकके ढेर इस प्रकारसे लगाने चाहियें कि बालियाँ अन्दरकी ओर और तने बाहरकी ओर रहें जिससे कि दानेको किसी प्रकारकी हानि न पहुंच सके। ढेर दो प्रकारके बनाये जाते हैं। एक तो गोलाकार दूसरे चौकोर। चोटी पर इन ढेरोंको ढलवां कर देते हैं, जिससे वर्षाका जल अन्दर नहीं जाने पाता। ढेरका एक खास रूप होनेके कारण लांकके चोरी जानेका भी डर
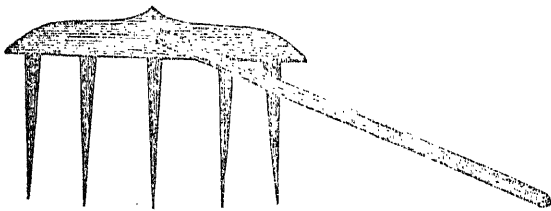
चित्र १८—पचांगुरा या पांचा

नहीं रहता; क्योंकि जहाँ परसे लाँक निकाला जायगा वहाँपर खाली जगह रह जावेगी और चोरीका पता चल जावेगा। खलियानके पास कुछ मिट्टीके घड़ोंमें पानी भरवा कर रखना चाहिये; इससे अगर कभी आग लग जाय तो बुझानेमें सरलता रहेगी।

मड़ाई करनेकी कई रीतियाँ हैं। जिन फस्लों-का तना भूसा बना कर पशुओंके चारेके काम आता है उनकी मड़ाई बैलों द्वारा की जाती है। ऐसी फस्लें प्रायः नरम तनेवाली होती हैं। मड़ाई के लिए लाँक खूब सूखा होना चाहिये। यदि गीला हो तो उसको फैला देना चाहिये और उलटते पलटते रहना चाहिये। जब सूख जाय तब उसको गोलाकार रूपमें फैला देना चाहिये। लाँक इस फैली हुई दशामें एक सा होना चाहिये। कहीं कहीं इस फैले हुए लाँकके बीचमें एक लकड़ी गाड़ देते हैं, जिसे कि मेड़ कहते हैं। इसके चारों ओर बैलोंको चलाते हैं। इन बैलोंके मुंह-पर मुछीका बांध देते हैं, जिससे कि वह लांकको न खा सकें। भीतरीवाले बैलका रस्सा इस प्रकार लकड़ी (मेड़) में बांध दिया जाता है कि उससे लिपटने न पावे और बाहिरी बैलोंके रस्से एक दूसरेकी गर्दनमें बांध देते हैं। एक आदमी पीछेसे बैलोंको हांकता रहता है। बैल बराबर लांकपर घूमते रहते हैं। जहाँ पर लकड़ी गाड़नेका रिवाज नहीं है वहाँ-पर भीतरी बैलके रस्सेको हांकनेवाला अपने हाथ-में लिए रहता है। दूसरा आदमी जिसके हाथमें सांखी या जेली ( चित्र १७ ) होती है बैलोंके नीचे-की लाँकको पलटता रहता है। ऐसा तब तक करते रहते हैं जब तक कि बाली या फलीमें से दाना अलग नहीं हो जाता और तनेका पशुओंके खाने योग्य भूसा नहीं बन जाता। पछुवा हवामें भूसा शीघ्र तैयार हो जाता है। पूर्वी हवामें नमी होनेके कारण भूसा जल्द नहीं कटता।

जब भूसा तयार हो जाता है तब पचाङ्गुरेसे ( चित्र १८ ) एकत्रित करके ढेर लगा देते हैं। इसको पश्चिममें बूँकना और पूरबमें पैरी कहते हैं। उप-रोक्त क्रियाको मड़ाई कहते हैं। गेहूँ, जौ, चना तथा मटर आदिकी मड़ाई इसी प्रकार की जाती है।

जिन फस्लोंके तने कड़े होते हैं और भूसेके काम नहीं आते हैं उन्हें पहिले लकड़ीसे पीटते हैं। ऐसा करनेसे फलियाँ और सूखी पत्तियाँ झड़

जाती हैं। इसके बाद दाना अलग करनेके लिए इन झड़ी हुई पत्तियों और फलियोंके ऊपर बैल चलाते हैं। दाना जब अलग हो जाता है तब ढेर लगा देते हैं। अरहर, नील आदिकी फ़स्लें इसी प्रकार माड़ी जाती हैं।

वह फस्लें जिनका कि तना लचीला होता है और बैल चलानेसे भूसा नहीं बनता उन्हें जड़की ओरसे पकड़ कर लकड़ी या पत्थरके ऊपर पीटते हैं। ऐसा करनेसे दाने अलग हो जाते हैं। बादको दानेपर बैल चलाते हैं। धान और जईकी मड़ाई इसी प्रकारसे की जाती है।

लाँकको शीघ्र माड़नेके लिए कुछ मशीनें भी बनी हैं। गेहूं जौको माड़नेके लिए प्रायः निम्न लिखित मशीनें काममें लाई जाती हैं:—

(१) नौराग थ्रैशर (चित्र १६)—इसको एक जोड़ी बैलके पीछे रस्सी या जञ्जीरके द्वारा जूएमें बाँध देते हैं। हाँकनेवाला मशीनके ऊपर बैठ जाता है और बैलोंको लाँक पर घुमाता रहता है। मशीनके तवोंसे तने कट कर भूसा बनता रहता है और बैलोंके खुरोंसे भी सहायता मिलती रहती है। इसके द्वारा कुछ दाने कट जाते हैं। इससे बैलोंकी अपेक्षा आधे समय में भूसा तैयार हो जाता है।
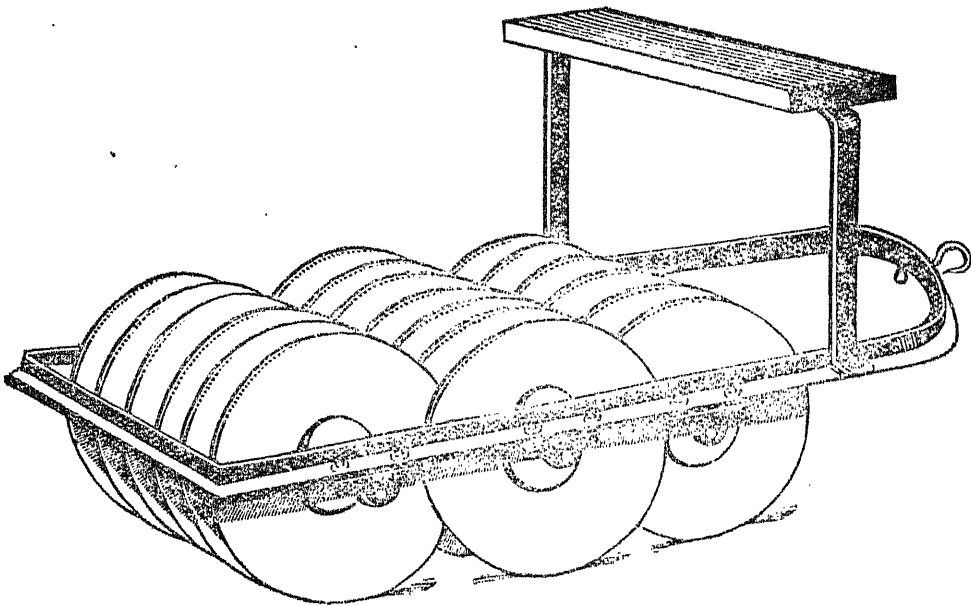
चित्र १६—नौराग थ्रैशर चित्र

जिन फस्लोंके सिरे पर दाना बाल या भुट्टेके रूपमें होता है उन्हें तनेसे अलग काट लेते हैं। इन भुट्टों या बालों पर बैल चला कर दाना निकाल लिया जाता है। बाजरा ज्वार आदि की मड़ाई इसी प्रकार की जाती है।

मक्काके भुट्टोंमेंसे दाना आपसमें रगड़ कर या लकड़ीसे पीट कर अलग कर लिया जाता है।

(२) हंट्स थ्रैशर (चित्र २०)—इससे गेहूं जौके दाने तनेसे अलग हो जाते हैं, परन्तु भूसा नहीं बनता है। जिन देशोंमें कि भूसा चारेके काम नहीं आता, वहाँ पर यह लाभदायक है। इससे दाना शीघ्र निकल आता है। वर्षा से खलियानमें दानेको हानि नहीं पहुँचती। दाना शीघ्र घरमें पहुँच जाता है। बादमें धीरे धीरे
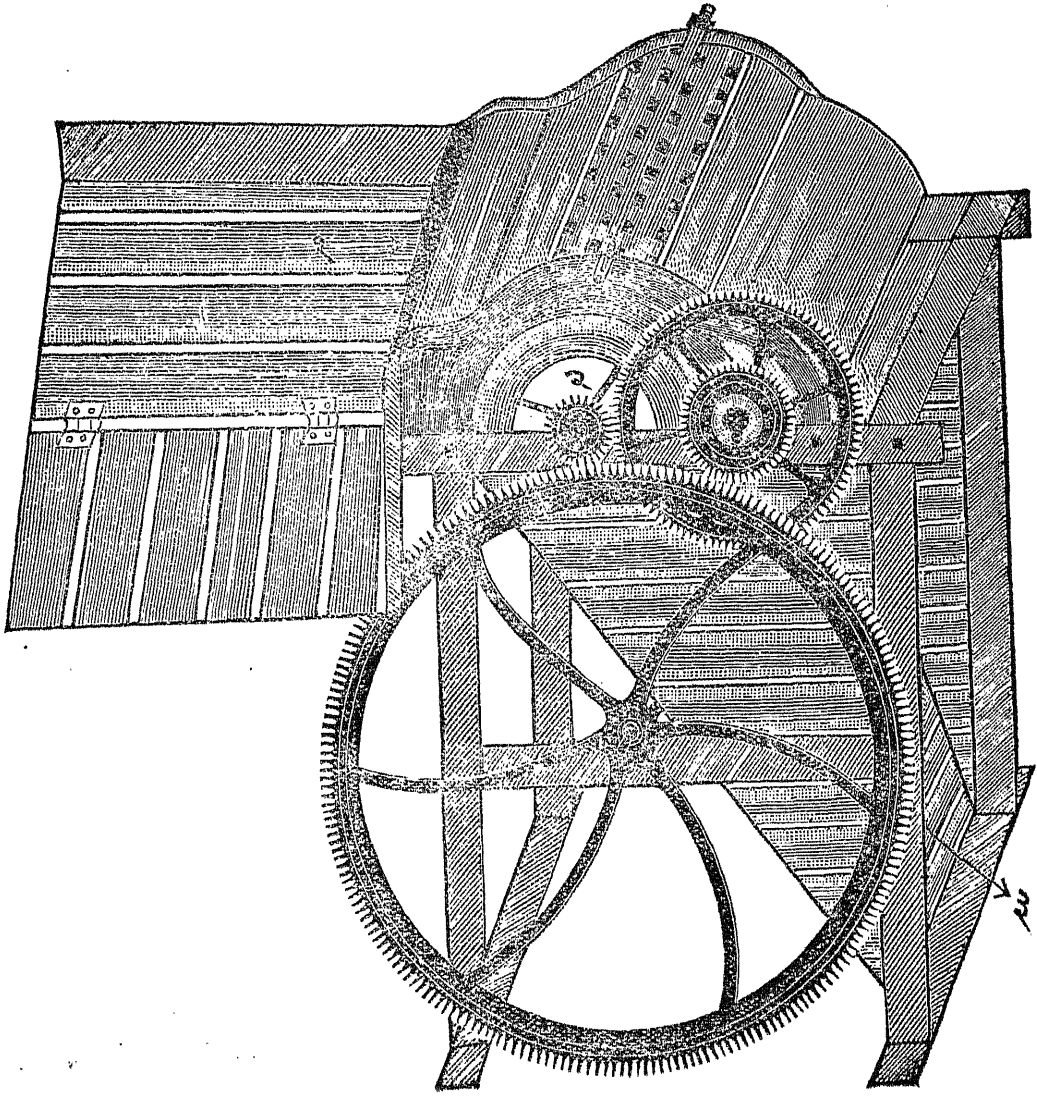
चित्र २७—हंटूस थ्रैशर (R. Hunts Thrasher) १—लाँक लगाने का स्थान; २—नरई से दाना पृथक् करनेवाला ढोल, ३—दाना निकलने का स्थान, ४—दांतदार पहिये।

भूसा बनाते रहते हैं। एक दिनमें दो एकड़की लाँकमेंसे दाना अलग किया जा सकता है। मशीनसे दाना निकालनेके बाद थोड़ी देर बैलोंसे मड़ाई की जाती है, तब दाना उड़ा कर निकाल सकते हैं। यह मशीन आदमी, बैल अथवा अंजन द्वारा चलाई जा सकती है।
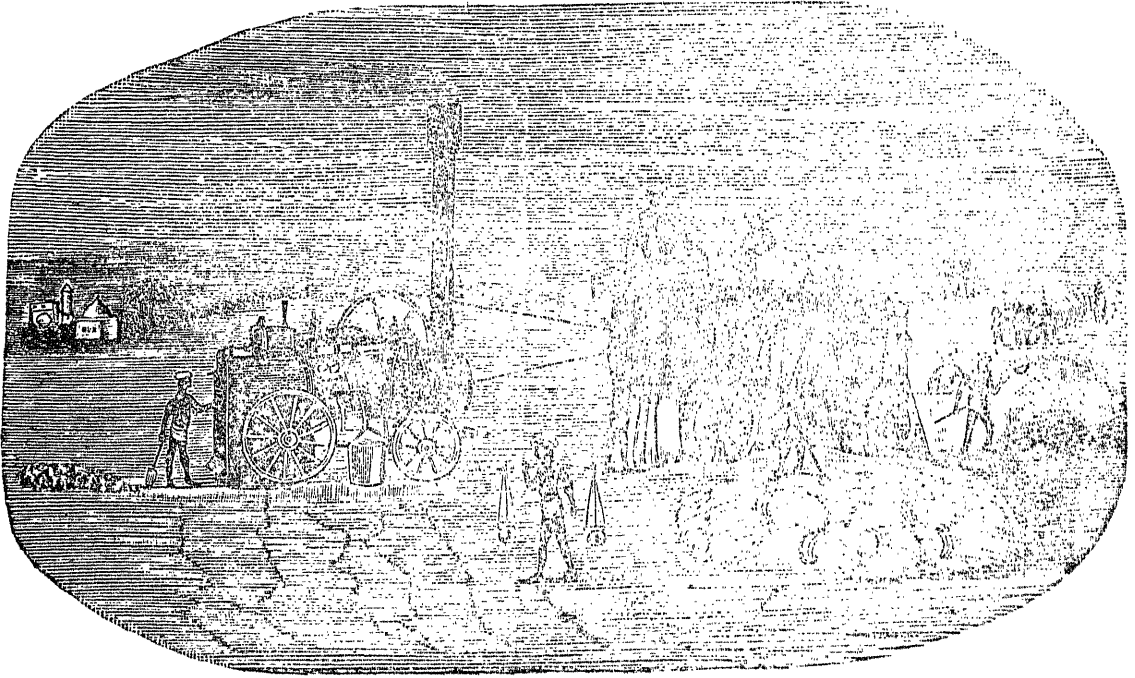
चित्र २१—स्टीम थ्रैशर एण्ड विन्नोअर

(३) स्टीम थ्रैशर एन्ड विनोअर (Steam thrasher and winnower)—इस मशीनमें एक

चित्र २२—मेज़ हलर; १–भुटिया लागनेका स्थान २–दाना निकलनेका स्थान

ओरसे लांक डाला जाता है और साफ दाना दूसरी ओर निकलता रहता है। भूसा भी साथ ही साथ तैयार होता जाता है एक दिनमें चार एकड़ का लांक माड़ा जा सकता है। (चित्र २१)
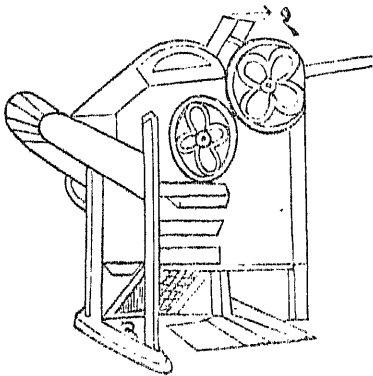
(४) मेज़ हलर (Maize huller) इससे मक्काके भुट्टेसे दाना अलग किया जाता है। यह हाथ तथा अञ्जनसे चलता है। इससे निकला हुआ दाना बीजके योग्य नहीं रहता है। (चित्र २२)

## ज़िरकोनियमके उपयोग

ज़िरकोनियमका सिलाकेत और कर्बिद हीरेके स्थानपर कांच काटनेके काममें आने लगा है। ज़िरकोनियम ओषिद एक्स-किरण चिकित्सामें बिस्मथ नत्रेत और कर्बनेतके स्थान पर काम आ सकता है; बल्कि यों कहना चाहिये कि विषैले न होनेके कारण इसका प्रयोग श्रेयस्कर है।

# विश्वासघातका फल

सन् १५९५ की बात है । एक दिन सन्ध्या समय अहमदनगरकी बेगम चांद सुलताना अपने महलके एक कमरेमें उद्विग्न चित्त बैठी थी । उसका सुन्दर मुंह क्रोधसे तमतमा रहा था । हिरनकी सी उसकी गोल गोल आंखोंसे आगकी चिनगारियां सी झड़ रही थीं । नीचे राज पथपर आती जाती भीड़के निन्दा सूचक दुर्वचनोंको सुन कर ही उसकी यह दशा हुई थी ।

अहमद नगरके निवासी दिन भर उस दिन सड़कों और गलियोंमें घूमते रहे । भूखी निर्धन जनता अत्यन्त रुष्ट थी । जो लोग महीनों पेट भर खानेको नहीं पाते, जिन्हें लगातार कई दिनों तक निराहार रहना पड़ता है यदि वह इतने पर भी शान्त रहें तो उन्हें मनुष्य ही न समझना चाहिये । नगर निवासियोंके इस प्रकार उत्तेजित होनेका मुख्य कारण यह था कि मुग़ल सेना शहरको घेरे पड़ी थी और इस कारण उनके सुख शान्तिमें व्याघात हो रहा था ।

शहरकी मोर्चेबन्दीके परे मुग़ल-सेनाके झंडे उड़ रहे थे । शाहज़ादा मुराद और राजपूतानेके शूर सामन्त इसी ताकमें थे कि कब अवसर मिले और कब सहसा धावा बोल कर शहर हाथमें कर लिया जाय । इस प्रकार शहरके घिरे रहनेके कारण नगर निवासियोंका उत्तेजित हो जाना स्वाभाविक था; क्योंकि बिना घेरा उठे उन्हें उनकी आवश्यक वस्तुएं नहीं मिल सकती थीं ।

नगर-निवासी मुग़लोंसे उतना रुष्ट नहीं थे । उनका नगरका घेरना न्यायानुकूल था; विरुद्ध थे तो चांद बीबी पर थे । वह मुग़लोंको हरा कर क्यों नहीं खदेड़ बाहर करती; यही उनकी शिकायत थी । वह परस्पर जोर जोरसे चिल्लाकर कह रहे थे—अब हम लोग अधिक समय तक भूखों नहीं मर सकते । सुल्तानाको इस बातकी क्या परवाह कि उसकी प्रजा कितना घोर कष्ट सह रही है । वह तो अपने महलोंमें सुरक्षित है । वहां तक तो शत्रुओंकी तोपोंके गोले भी नहीं पहुँचते । वह हम लोगोंपर शासन करनेके योग्य नहीं है । अच्छा हो, मुग़लोंका ही राज्य यहां भी हो जाय ।

मुग़ल भी यही चाहते थे । नगर-निवासी उन्हींके पक्षमें राजमहलोंके नीचे सड़कोंपर इसी प्रकार चिल्ला चिल्लाकर बक रहे थे । उनकी आवाजें जब झरोखों और खिड़कियोंसे होकर सुल्तानाके कानोंमें जा पड़ीं तब वह काली नागिनकी तरह भभक उठी । खिड़कीसे झांक और शहरकी ओर मुंह करके उसने क्रुद्ध हो कर कहा—"दुष्टो, तुम्हें भी देखूंगी ।" उस भीड़को तितिर बितिर करनेकी बात उसकी शक्तिके बाहर थी । यह काम सेनाकी सहायता बिना नहीं हो सकता था और सेना पर उसका विश्वास नहीं था । अतएव उसने अपने मनमें यह कह कर संतोष किया कि इन विद्रोहियोंको कल अवश्य प्राण दण्ड दिया जायगा । गुन गुनाती हुई बोली—"रुस्तम, तेरे लिए काम तैयार है ।" इस तरह कहती हुई सुल्ताना एक ओर मसनद पर बैठ गई । वह क्रोधसे थर थर कांप रही थी । इसी बीच कुछ सुन पड़नेके कारण वह सम्हल कर बैठ गई और उसी ओर कान लगा कर सुनने लगी । आगन्तुकके पैरोंके शब्द जल्दी जल्दी सुन पड़ने लगे । क्षण भरमें ही दरवाजा खट खटाया गया । सुलतानाने उठ कर उसे खोल दिया और आगन्तुकको देख कर उसे भीतर आनेको संकेत किया ।

सुलतानाने कहा—"रुस्तम, भले ही आये ।" खिड़कीकी ओर इशारा करके वह बोली—"इन कुत्तोंका भौंकना सुना । कैसा कोलाहल हो रहा है ।"

रुस्तम चढ़ी उमरका था, पर उसका शरीर हृष्ट पुष्ट था । अपने ओहदेके अनुसार वह अपनी काली पोशाक पहने था । वह शाही जल्लादोंका सरदार था । सुलतानाकी बात सुन कर उसने

अपना मुंह सिकोड़ लिया और रूखे स्वरमें कहा; "परन्तु इन कुत्तोंका भोंकना उनके काटनेसे कहीं अधिक बुरा है। इसके परिणामको देख कर कुछ लोग कल ही खेद करेंगे।"

सुलतानाने हंस कर कहा—"अरे गप्पी, हमारे विचार धाराके रूपमें निकलते हैं। तुम्हारे साथियोंको कल एक क्षणकी फुर्सत नहीं मिलनेकी। परन्तु यह तो बता, तू आया किस मतलबसे है। कोई नई खबर?"

रुस्तमने दांत काढ़ दिये। उसने कहा—"नहीं कुछ भी नहीं।" यह कह कर उसने कमरेको चारों ओरसे देखा। फिर धीरेसे दरवाजेके पास जाकर उसने उसे एका एक खोल दिया और अपना शिर बाहर निकाल कर वह देखने लगा। वहां कोई नहीं था। सिर हिलाकर उसने अपनी दिलजमई ज़ाहिर की। उसने फिर दरवाज़ा बन्द कर दिया। इसके बाद वह फिर सुलतानाके पास आ गया। सुलतानाने उसे मसनदके पास ही फर्श पर बैठनेका संकेत किया। उसने अधीर होकर पूछा—"हाँ बताओ, रुस्तम क्या बात है?"

निश्चिन्त हो कर बैठ जानेके उपरान्त रुस्तम धीमे स्वरमें बोला—"जहांपनाह, दो घंटे हुए एक स्त्री मुझसे मिली थी। वह स्त्री उसी आदमीके घरकी है; जिसे हम लोग सन्देहकी दृष्टिसे देखते रहे हैं और जो वैसा राजभक्त नहीं है जैसा वह अपनेको दिखलाता है। मैं उसकी ताकमें अभी तक लगा रहा, पर कुछ भी भेद न मिला। हां, आज रातको यह बात साबित हो जायगी कि हमारा संदेह करना निराधार नहीं था। क्योंकि···"

सुलताना—उस आदमीका नाम?

रुस्तम—फैयाज अली।

सुलताना—उस स्त्रीका?

रुस्तम—गुलनार बेगम।

सुलताना (थोड़ी देर सोच कर)—मैं उसे नहीं जानती। अच्छा फिर?

रुस्तम—जहांपनाह, वह एक बड़ा भयङ्कर हाल बताती है। मैं उसका एक एक अक्षर सच मानता हूं; फैयाज़ अली क्रूर और निर्दयी है। जहां तक मैं जान सकता हूं, गुलनारके साथ उसका व्यवहार अच्छा नहीं रहा है। उसने उसका विवाह हुसेन अलीके साथ करनेका निश्चय किया है, पर यह सम्बन्ध गुलनारको पसन्द नहीं। वह एक दूसरे ही व्यक्तिके साथ विवाह करना चाहती है···

सुलताना—अच्छा उसका क्या नाम है?

रुस्तम—दिलावर खां।

सुलताना घूर कर बोली—दिलावर खाँ! वही जिसे तुमने उस दिन गिरिफ़ार किया था।

रुस्तम—हाँ, राजद्रोहके सन्देहमें।

सुलताना क्रुद्ध हो गई। वह सम्हल कर बैठ गई। उसकी भौंहे टेढ़ी हो गईं और कुछ सोचने लगी। उसने कहा—"मैं समझती हूँ, मुझे सारा हाल मालूम है।"

रुस्तम आदरके साथ बोला—जहाँपनाहकी स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक है।

सुलताना ने मुस्कराते हुये कहा—तुम्हारी बातसे यह जान पड़ता है कि फैयाज़अली पर जो तुम्हारा सन्देह है वह निराधार नहीं है। गुलनारको किसी षडयंत्रका भेद मालूम है जिससे फैयाज़ अलीका सम्बन्ध है। यदि उसका प्रेमी मुक्त कर दिया जाय तो वह उसे बता देगी।

रुस्तम—जहाँपनाह, यही बात है। उसने कहा है कि फैयाज़अली एक ऐसे षडयंत्रमें शामिल है; जो आपके विरुद्ध रचा गया है, परन्तु वह षडयंत्र किस प्रकारका है यह बात उसने नहीं बताई। वह बड़ी चतुर स्त्री है। उसने केवल यही कहा है कि यदि उसका भेद लेना चाहते हैं तो खुद जहाँपनाह मेरे मकान पर आज ठीक साढ़े आठ बजे रातमें तशरीफ़ लावें।

चौंक कर सुलताना हँसती हुई बोली—अरे मूर्ख, मुझे अधीन करनेका यह एक स्पष्ट जाल है। तू नहीं समझता?

रुस्तम—नहीं, ऐसी बात नहीं है। उसने साफ कह दिया है कि तुम अपनी रक्षाका पूरा प्रबन्ध करके आ सकते हो। इसके सिवा हम लोग गुप्त रीतिसे उसके घर जायँगे। उसके रंग ढंग से मुझे उसपर पूरा विश्वास है। मुझे तो भयकी कोई भी बात नज़र नहीं आती। फिर कुछ शरीर रक्षक बिलकुल पास ही मौजूद रहेंगे, जो ज़रासे ही इशारे पर तुरन्त हुज़ूरकी सेवामें आ पहुँचेंगे।

सुलताना ने कहा—ठीक है। फिर वह हाथ पर ठुड्डी रख कर कुछ सोचने लगी। जायँ या न जायँ, इस प्रश्न पर वह बड़े ध्यानसे थोड़ी देर तक विचार करती रही। अन्तमें रुस्तमकी ओर घूर कर उसने पूछा—क्यों रे! क्या तू मेरा जाना उचित समझता है?

रुस्तम—हाँ जहाँपनाह, गुलनारका घर आज, बिलकुल खाली है। एक बाँदी घर पर रह गई है। केवल वही हम लोगोंको जान सकेगी।

सुलताना ने एक लम्बी साँस खींच कर कहा—अच्छा, जब तेरी ही राय है तब मैं अवश्य चलूंगी।

अज़ानकी आवाज़ सुनकर रुस्तम बोला—हमें अब विलम्ब न करना चाहिये। ठीक साढ़े आठ-पर पहुँचना है। अपनी तैयारी करें। मैं शरीर रक्षकोंका प्रबन्ध करनेको जाता हूँ, जिसमें वे यथा समय नियत स्थान पर हम लोगोंको हाज़िर मिलें।

रुस्तमके आते आते सुलताना तैयार हो गयी। उसने अपना भेष बदल लिया। जब वह आ गया तब सुलताना उसके साथ रवाना हुई। वे दोनों गुप्त मार्गसे निकल कर सड़क पर आ गये। सड़कों पर अभी तक नगर-निवासियोंकी भीड़ मौजूद थी, लोग उसी तरह अनाप शनाप बक रहे थे। सुलताना लज्जित हो गई। उसने हँसकर कहा—"यह कुत्ते अभी तक भूँक रहे हैं।" रुस्तम भी उन पर दाँत पीसने लगा। इस पर सुलतानाने धीरे से कहा—"इस प्रकार दाँत पीसनेसे काम न चलेगा। इस समय चुप ही रहना ठीक है, साँस तक न लेना।" कुछ ठहरकर, "क्या वहाँ जानेके लिए हमें इन लोगोंके बीचसे होकर जाना पड़ेगा?"

रुस्तम—जहाँपनाह जैसा पसन्द करें। इन लोगोंके बीचसे होकर जानेमें जहाँपनाह जल्द पहुँचेंगे, परन्तु घूम कर जानेमें हमें सुगमता है। हुज़ूर समय बहुत कम रह गया है।

सुलताना—अच्छी बात है; पर मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं अपने कानों सुनूँ कि मेरी प्रजा मेरे सम्बन्ध में क्या कहती है।

रुस्तम ने रुखाईसे कहा—इसे तो मैं हुज़ूर-को बहुत थोड़ेमें बता सकता हूँ; पर हुज़ूर इसे सुन कर खुश न होंगी।

सुलताना भौंहें टेढ़ी करके बोली—तब तू उसे अपने मुँहके भीतर ही रहने दे। अपनी ज़बान-को लगाम दे। हुज़ूर हुज़ूर की बहुत रट न लगा।

१५ मिनट में वह दोनों नियत स्थान पर जा पहुँचे। वह शहरका एक खूब आबाद मुहल्ला था। बड़े बड़े ऊँचे मकान और हवेलियाँ अपने स्वामियोंके वैभव तथा मर्यादाकी स्पष्ट सूचना दे रही थीं। वह दोनों उस मोहल्लेकी एक तंग गलीमें जा खड़े हुए। उस समय वहाँ बिलकुल सुनसान और अँधियार था। हाँ दूरसे सड़ककी चिमनीका धुँधला प्रकाश ज़रूर देख पड़ता था। रुस्तमके पीछे कुछ हट कर सुलताना खड़ी थी। वे चारों ओर चिन्ताके साथ देख रहे थे। सुलताना ने पूछा—क्या हम आगये?

रुस्तम—हाँ हुज़ूर, यही बड़े मियाँकी हवेली है। हमारे आदमी भी आगये होंगे।

यह कहकर रुस्तम ने धीरे से सीटी बजाई। तुरन्त ही उसके उत्तरमें एक ओर से सीटीकी आवाज़ सुनाई पड़ी। दो आदमी आगे बढ़ आये और एक दर्जन सिपाही जिरह बख़्तर लगाये उनके पीछे आ खड़े हुए। उनके अधिनायक ने झुककर सलाम किया। रुस्तमने एक मकानकी ओर संकेत करके उस अधिनायकसे पूछा—"क्यों जी, उस सामने वाले मकान में जिसके द्वार पर प्रकाश हो

रहा है किसीको जाते देखा है ?" उस आदमीने कहा—"जबसे हम लोग यहाँ आये हैं तबसे हमने किसीको मकानके भीतर जाते नहीं देखा ? परन्तु एक स्त्री मकानके भीतरसे बार बार आकर दरवाज़े पर खड़ी होती थी, मानो वह किसीके आनेकी राह देख रही हो।"

रुस्तम—अच्छा तो तुम लोग यहीं आस पास छिपे रहना। यदि हमें आवश्यकता होगी तो हम संकेत करेंगे। तुम लोग तुरन्त आ पहुँचना। हम लोगों तक पहुँचनेका मार्ग तो तुम्हें मालूम ही है।

वह लोग इधर उधर हो गये। रुस्तमने गली-में चारों ओर निगाह दौड़ाकर एक बार अच्छी तरहसे देखा। इसके बाद वह दोनों बड़ी सावधानी-के साथ उसी दरवाज़ेकी ओर धीरे धीरे जाने लगे। आधी दूर भी न पहुँचे होंगे कि दरवाज़ा खुला और एक स्त्री बाहर निकल आई। उसे देखकर रुस्तम-ने भेद भरे इशारेसे संकेत किया। उसी स्त्रीसे वैसाही उत्तर पाकर वे दोनों तुरन्त उसके पास जा पहुँचे।

स्त्री—आप लोगोंके आनेमें देरी हुई है। ख़ैर, शीघ्र भीतर आइये।

यह कह कर वह स्त्री मकानके भीतर चली गई। वह दोनों भी उसके पीछे चले गये। एक लम्बे चौड़े दालानसे होकर वह एक ज़ीनेके पास पहुँचे, जिससे चढ़कर वह ऊपर एक सुन्दर सुसज्जित कमरेमें जा दाख़िल हुए। कमरेमें काफ़ी रोशनी हो रही थी। दो बड़ी बड़ी झाड़ें कमरेमें लटक रही थीं। उनके प्रकाशसे कमरा जगमगा रहा था। कमरेमें पहुँचनेपर उस स्त्रीने अपने अति-थियोंको बैठने का संकेत किया। सुलताना और रुस्तमके बैठ जानेपर वह भी एक किनारे बैठ गई।

सुलतानाने उस स्त्रीकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टिसे देखा। नवयौवनकी छटा उसके शरीरके प्रत्येक अङ्गसे प्रस्फुटित होरही थी। वह बीस वर्ष-से अधिककी नहीं मालूम पड़ती थी। उसका शरीर सुडौल बना था और वह ग़ज़बकी सुन्दर थी। उसके केश काले और आँखें बड़ी बड़ी थीं। गुलाबी गालों और ओंठोंकी लालिमा उसकी सुन्दरतामें सोनेमें सुगन्धिका काम दे रही थी। सुलताना ने अपने मनमें सोचा—"है तो बड़ी शानदार स्त्री, पर क्रुध होने पर पूरी पिशाचिनी है।" वह बोली "बीबी साहिबा, मैं आ गई हूं। कहिये क्या मर्ज़ी है ?" उस स्त्री ने कहा—"जहाँपनाह, मैं आपकी एक दीन प्रजा हूँ। आप इस तरह न कहें।"

रुस्तम—"आपने कहा था कि हम लोगोंके आने-में बिलम्ब हो गया, सो कैसे ?" उस स्त्रीने घृणासी प्रकट करते हुए अपनी भौंहे तानी। उसने कहा—"मुझे कुछ हो कहना है। ( सुलतानाके मुँहकी ओर देख कर) मैं आपको एक ऐसी बात बता सकती हूँ, जिससे आपका सबसे अधिक सम्बन्ध तो है ही, पर पठानोंकी इस अहमदनगरकी सलतनतसे भी है। परन्तु ( मुस्करा कर ) इसके बदलेमें मैं हुज़ूर की ज़रासी दयाकी मुहताज हूँ।

सुलतानाने सिर हिलाकर कहा—"बीबी, मुझसे मोल ताल करनेसे तुम्हारी बहादुरी प्रकट होती है ! अच्छा, बोलो तुम क्या चाहती हो।" उस स्त्री-ने गहरी साँस लेकर कहा—जहाँपनाह, दो दिन हुए हुज़ूरके हुक्मसे नवाब असदअली क़ैद किये गये हैं। जो अमूल्य बात मैं बताना चहती हूँ उसके बदलेमें मैं उन्होंकी रिहाई और जानबख्शी चाहती हूँ।" सुलतानाने दृढ़तासे कहा—"बीबी, तुम बहुत अधिक माँग रही हो। मैं नहीं जानती कि जो बात तुम बताना चाहती हो वह इस माँगसे अधिक महत्व पूर्ण है। उस स्त्रीने जवाब दिया—जहाँपनाह खुद उसका महत्व समझ लेंगी। हुज़ूर केवल इतना ही बचन दे दें कि यदि उक्त बात उतनी महत्वपूर्ण हो तो नवाब स्वतंत्र कर दिया जायगा।"

सुलतानाने घूम कर रुस्तमकी ओर देखा और कहा—"क्यों रे, तू क्या कहता है ?"

रुस्तम उस स्त्रीकी ओर मुँह करके बोला—"यदि बीबी साहिबाकी बात उतनी ही महत्व की होगी तो हम समझेंगे कि नवाब असदअलीको कैद करनेमें ग़लती हुई।"

सुलताना—सुनती हो बीबी।

उस स्त्रीने अदबसे सलाम किया। प्रसन्नतासे उसका मुखारविन्द खिल उठा। वह सहसा बोल उठी—"तो क्या कल वह छोड़ दिये जायँगे?" फिर धीरेसे नज़दीक सरक कर उसने धीमे स्वरमें कहा—"जहाँपनाह, शाहज़ादा मुराद आज अहमदनगर आते हैं।"

सुलताना घबरा कर उछल पड़ी। रुस्तम भी चौंक पड़ा। सुलतानाने आश्चर्यसे कहा—हैं मुराद! शाहज़ादा मुराद!

उस स्त्रीने स्वीकृति प्रकट करते हुए फिर मुस्कराकर सलाम किया। सुलतानाने कहा—"बीबी, मुझसे हँसी मत करो। क्या तुम सच कह रही हो?"

उस स्त्रीने कहा—जहाँपनाह, अक्षर अक्षर सच है। आज रातको नौ बजे शाहज़ादे इसी मकानमें तशरीफ लावेंगे।

सुलतानाने एक लम्बी सांस खींची और रुस्तमकी ओर आश्चर्यसे देखने लगी। वह बोली—"कैसी विचित्र ख़बर है?" फिर वह उस स्त्रीकी ओर मुख़ातिब हुई जो उसकी ओर चिन्तित भावसे देख रही थी। उसने कहा—"आप कहती हैं कि शाहज़ादा इसी मकानमें आवेगा?" उसने जवाब दिया—"ठीक नौ बजे।" उसकी बात खतम भी न हो पाई थी कि नीचे दरवाज़ेके खुलनेकी आवाज़ सुनाई पड़ी। क्षण भर उस स्त्रीने कान लगा कर सुना। फिर वह शीघ्रतासे उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"वह लोग वही हैं। शीघ्र आइये।" यह कह कर वह उन्हें बग़लके कमरेमें ले गई। उसके किवाड़ बन्द कर लिये गये। सुलताना और रुस्तम खड़े होकर सुनने लगे।

आगन्तुकोंमेंसे एक बोला—साहबो, इधरसे। किसी ने पुकारा—"गुलाबो।" उत्तर मिला—"हुज़ूर, सुरक्षित दुरुस्त है। तशरीफ़ ले जाइये।" पहलेने कहा—"तब तो ठीक है।"

इसके बाद वह ज़ीने पर चढ़ने लगे। सुलताना किवाड़की दराज़से झांक रही थी। जब वह लोग एक एक करके ऊपर आने लगे तब वह उनमें से कई एकको पहचान गई। पहले इनायतउल्ला आया। इसके बाद जो आदमी आया उसे सुलताना न पहचान सकी। फिर दरियाखां आया। उसे देखकर सुलताना अवाक हो गई, क्योंकि वह तो उसके दरबारका एक ख़ैरख़्वाह उमरा था। फिर मुम्ताज़अली दिखाई पड़ा। उसके पीछे इलाहीजान आया। तब फिर दो अपरिचितोंके चेहरे दिखाई दिये और सबके पीछे जो आदमी था वह नौकरोंकी पोशाकमें था। परन्तु जिस आदमीके लिए मुख्य करके वह झाँक रही थी वह उन लोगोंमें न था।

इनायतउल्ला—बीबी साहिबा कहां हैं?

नौकर—अपने कमरेमें।

इनायतउल्ला—अच्छी बात है। तुम दरवाज़ेपर रहना।

ये सातों आदमी उसी कमरेके भीतर चलेगये जिसमें पहले सुलताना बैठी थी। भीतर पहुँचकर उन्होंने दरवाज़ा बन्द कर लिया।

सुलतानाने अँधियारेमें बीबीकी ओर घूरकर देखा। उसने बहुत धीरेसे कहा—"शाहज़ादा तो नहीं आया। क्या बात है?"

वह स्त्री काँप गई। उसने घबराकर कहा—शायद देर हो गई, पर आवेगा ज़रूर। इतना कह कर वह सुलतानाको एक ओर लेगई और दीवारके पर्देको हटाकर एक छोटा सा सूराख खोल दिया। सुलताना अब अच्छी तरह उन लोगोंको देख सकती थी और उनकी बातें सुन सकती थी।

उस कमरेमें मख़मली फ़र्श बिछा हुआ था। इसीपर एक बहुमूल्य मसनद सजी थी। उसपर

इनायतउल्ला और वही अपरचित, जो उसके पीछे आया था, बैठे थे। इनायतउल्लाके हाथमें एक काग़ज़ था और वह अपने दूसरे हाथसे माथा खुजला रहा था। उसने अपना सर ऊपरको करके कहा—

साहबो, मुझे इस बातके कहनेकी कोई ज़रूरत नहीं है कि हम लोग आज रातको यहाँ क्यों एकत्र हुए हैं। आप लोगोंको सब कुछ पहलेसेही मालूम है। परन्तु अत्यन्त दुःखके साथ मुझे आप लोगों को यह सूचित करना पड़ता है कि जिनका स्वागत करनेकी आशासे हम लोग यहाँ आये हैं वे नहीं आ सके। उन्होंने अपने स्थानमें—अपने दाहने बैठे हुए आदमीकी ओर आदरके साथ संकेत करके—आपको भेजा है। आपका शुभ नाम दिलेरखाँ है और मैं आप लोगोंकी ओरसे खाँ साहबका स्वागत करता हूँ। खाँ साहबने यह पत्र लाकर मुझे विशेष रीतिसे सम्मानित किया है। मैं उस पत्रको पढ़कर आप लोगोंको सुनाता हूँ। आप लोग उसे ध्यानपूर्वक सुनें—

मेरे प्रिय इनायतउल्ला,

खेद के साथ आपको सूचित करता हूँ कि मैं आज रातको आप लोगोंके बीचमें उपस्थित होनेमें असमर्थ हूँ। एक विशेष प्रकारकी अड़चन ही आ गई। अतएव मैं अपने प्रिय पात्र दिलेरखाँको अपने स्थानमें भेजता हूँ। मुझे जो कुछ कहना है वह सब मैंने इनसे कह दिया है। जो कुछ ये कहें उसे मेरा ही कहा समझियेगा। आशा है, आप इनके साथ वैसाही व्यवहार करेंगे जैसा कि आप मेरे साथ करते। भगवान् हमारा मनोरथ सफल करें।

आपका
मुराद

रुस्तमका हाथ ज़ोरसे दबा कर सुलतानाने उसके कानमें धीरेसे कहा—अरे, मालूम होता है कि मेरे लिए खासा षड़यन्त्र रचा गया है।

रुस्तमने सिर हिला कर कहा—हुजूर, मुझे भी ऐसा ही समझ पड़ता है। पर अभी सुनिये, कैसे कैसे गुल खिलते हैं।

जब इनायतउल्लाँ पत्रको पढ़ चुका तब दिलेरखाँ ने सब लोगोंका अभिवादन किया और कहा- "साहबो, जिस सम्मान और प्रेमसे आप लोगोंने मेरा सत्कार किया है उसके लिए मैं आप लोगोंको शाहज़ादेकी ओरसे तथा अपना भी धन्यवाद देता हूँ। इसके सिवा मेरे तथा मेरे साथियोंको शहरमें सुरक्षित ले आनेमें आपने जो परिश्रम किया है उसके लिए मैं आपका अनुग्रहीत हूँ। परन्तु जिस बातसे मैं अत्यन्त हर्षित हुआ हूँ—अपना हाथ ऊपर उठा दूरसे सुनाई पड़नेवाले नगर निवासियोंके कोलाहलकी ओर संकेत करके—वह यह है कि इस इतिहास प्रसिद्ध अहमदनगरकी जनता उस व्यक्तिका प्रेम नहीं करती है जो इस समय उनपर शासन कर रहा है। भगवान् करे उसके शासनकी इति हो जाय। आवश्यकतावश हम लोगोंके पास बहुत ही परिमित समय है; अतएव मुझे अपना काम समाप्त करना चाहिये।"

इतना कह कर दिलेरखाँ रुक गया। प्रत्येक श्रोताको एक नज़रसे देखकर वह कपकपी पैदा करनेवाले स्वरमें इस तरह बोला—

साहबो, आप लोगोंके नेताओं जैसे नवाब जुल्फिकारअली खाँ, शमशेरजंग तथा ऐसे ही दूसरे अमीर उमराओं और हमारे शाहज़ादे मुरादके बीच जो समझौता हुआ है उसके अनुसार अहमदनगर-राज्यकी सुलताना चांदबीबीका जीवन-दीपक अब बुझ जाना चाहिये। क्योंकि उसने अपने राज्यके अमीर उमराओंके साथ अन्याय का व्यवहार किया है और इस समय भी अपनी उसी दूषित मार्ग पर अवरूढ़ है! अतएव अब उसका खातमा ही करना होगा। इसमें विलम्ब करनेसे भारी हानि होनेकी सम्भावना है। और इस कार्यका भार हमी लोगों पर है। एक अना-

चारी राजाका वध कर डालना पुण्य कार्य है और तब उसे हमको ही करना चाहिये।

इसके बाद उसने एक निगाहसे श्रोताओंके मुखके भावोंको परख कर अपना वक्तव्य इस प्रकार समाप्त किया—

साहबो, मेरे स्वामीका यही संदेश है। उसे मैंने आप लोगोंको थोड़ेमें सुना दिया। यह महत्त्व पूर्ण कार्य किस प्रकार सिद्ध किया जाय इसका निर्णय मैं आप लोगों पर छोड़ता हूँ। इतना कह कर वह बैठ गया। सब लोग घबराहट से एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

बग़लवाले कमरेमें सुलताना और रुस्तम कानाफुसी कर रहे थे। और वह स्त्री पत्थरकी मूर्तिके समान अचल खड़ी थी। रुस्तमने कहा, "इन सबको शूली पर चढ़ानेके लिए हमने काफ़ी सुन लिया है। क्या मैं सीटी देकर सिपाहियोंको बुलाऊँ?" सुलतानाने ज़ोरसे अपना सिर हिला कर कहा—"नहीं। अभी मैं और सुनूंगी।"

( असमाप्त )

---

## बहुत ऊंचे तापक्रमों पर टंग्स्टन

डा० वेंट और इरायनने (Drs. Wendt and Irion) टंग्स्टनपर ऊंचे तापक्रमोंके प्रभावकी जांच की है। उन्होंने उस यंत्रका वर्णन किया है जिसके द्वारा—तारोंमें भारी धाराओंका प्रवाह कराके २०००० अंश तक का तापक्रम पैदा किया गया था। इतने ऊंचे तापक्रम पर टंग्स्टनके स्फोटन होनेसे जो गैसें पैदा हुईं उनमें हीलियमका रश्मि चित्र भी दीख पड़ा। कर्बन द्विओषिदमें ००७१३ सहस्रांश ग्राम टंग्स्टनका स्फोटन करानेसे १.०१ घन सतांशमीटर ऐसी गैस बन गयी, जिसका शोषण दाहक पोटाशके घोलमें नहीं हुआ।

---

## नकली सोना

डिज़िगोल्ड नामक एक नया धातु-मिश्रण स्वीडिनमें बिकने लगा है। यह मिश्रण अलूमिनियम और तांबेसे बनाया जाता है। तांबेका अंश ९०°/० से अधिक नहीं होता। इस मिश्रणमें सोनेकासा रंग और चमक है और सस्ते गहने बनानेके यह काम आ सकता है। इसकी कठोरता और स्थायित्व इस्पात के समान है। क्षारों और अम्लोंका इस पर प्रभाव नहीं होता।

---

## सूर्य सिद्धान्त*

[ ले० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ]

सावनोद्युगणः सूर्याद्दिनमासाब्दपास्ततः।
सप्तभिः क्षयितःशेषः सूर्याद्योवासरेश्वरः ॥५१॥
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम्।
सप्तोद्धृतावशेषौ तु विज्ञेयौ मासवर्षपौ ॥५२॥

दिन तो वार ठीक निकले और न एक दिनका अन्तर पड़े तो समझना चाहिये कि अहर्गण ठीक नहीं है। इसकी रीति ऊपरके श्लोकमें दी हुई है।

अनुवाद—( ५१ ) सावन दिनोंकी जो संख्या हो उससे दिनपति, मासपति और वर्षपति सूर्यसे गिनकर जानना चाहिये। इस संख्याको ७ से भाग दे दे जो शेष बचे वही सूर्यसे वारोंके क्रमसे आरंभ होकर दिन पति है। ( ५२ ) यदि इस ( सावन दिनोंकी ) संख्याको क्रमसे मास और वर्षके दिनोंकी संख्याओंसे भाग दे दे और भागफलोंको क्रमसे दो और तीन से गुणा करके, प्रत्येक गुणनफलमें एक जोड़ दे और योगफलोंको ७ से भाग दे दे तो जो शेष बचे

---

* विज्ञान भाग १६ पृष्ठ २६२ से आगे

वही सूर्यसे वारोंके क्रमसे आरंभ होकर क्रमानुसार मासपति और वर्षपति है।

विज्ञान-भाष्य—वार ( दिन ) का नाम उस ग्रहके नामपर रखा गया है जो वारके आरंभमें पहले घंटे ( होरा ) का स्वामी समझा गया है। जो ग्रह पहले घंटेका स्वामी होता है वही उस वारका भी स्वामी समझा जाता है। इसी तरह सावन* मास के आरंभमें जो वार पड़ता है उसीका स्वामी उस सावन मासका स्वामी समझा जाता है और सावनवर्षके आरम्भमें जो वार पड़ता है उसीका स्वामी उस सावनवर्षका स्वामी समझा जाता है। जैसे रविवारके पहले घंटेका स्वामी रवि, उस दिनका स्वामी रवि, जो सावन मास रविवारसे आरंभ होता है उस मासका स्वामी रवि और जोसावन-वर्ष रविवारसे आरंभ होता है उस वर्षका स्वामी भी रवि ही है।

किस घंटे ( होरा ) का स्वामी कौन ग्रह है यह जाननेके लिए वह क्रम समझ लेना चाहिये जिस क्रमसे घंटेके स्वामीबदलते हैं। शनि ग्रह पृथ्वीसे सब ग्रहोंसे अधिक दूर है, उससे निकट बृहस्पति है, बृहस्पतिसे निकट मंगल, मंगल से निकट सूर्य, सूर्यसे निकट शुक्र, शुक्रसे निकट बुध+ और बुधसे निकट चन्द्रमा है। इसी क्रमसे होराके स्वामी बदलतेहैं। यदि पहले घंटेका स्वामी शनि है तो दूसरे घंटेका स्वामी बृहस्पति, तीसरेका स्वामी मंगल, चौथेका सूर्य, पांचवेंका शुक्र, छठेंका बुध, सातवेंका चन्द्रमा, आठवेंका फिर शनि, इत्यादि क्रमानुसार है। परन्तु जिस दिन पहले घंटेका स्वामी शनि होता है उस दिनका नाम शनिवार होना चाहिये। इसलिए शनिवारके दूसरे घंटेका स्वामी बृहस्पति, तीसरे घंटेका स्वामी मंगल इत्यादि हैं। इस प्रकार सात सात घंटेके बाद स्वामियोंका वही क्रम फिर आरंभ होता है। इस लिए शनिवारके २२वें घण्टेका स्वामी शनि, २३वें का बृहस्पति, २४ वें का मंगल, और २४वेंके बाद वाले घंटेका स्वामी सूर्य होना चाहिये। परन्तु यह २५ वां घंटा अगले दिनका पहला घंटा है, जिसका स्वामी सूर्य है; इसलिए शनिवारके बाद रविवार होता है। रविवारके दूसरे घंटेका स्वामी शुक्रवार तीसरेका बुध, चौथेका चन्द्रमा, इत्यादि क्रमानुसार चलते हुए ११वें, १८वें और २५ वें घंटोंका स्वामी भी चन्द्रमा होता है। परन्तु २५वां घंटा अगले दिनका पहला घंटा है; इसलिए इसी घंटेके स्वामीके नामसे अगला दिन चन्द्रवार पड़ा। इसी प्रकार और वारों का नामकरण* हुआ है।

अब यह स्पष्ट होगया कि शनिवारके बाद रविवार और रविवारके बाद सोमवार और सोमवारके बाद मंगलवार क्यों होता है। ग्रहोंके क्रममें शनिसे रवि चौथा ग्रह है; रविसे चंद्रमा चौथा ग्रह है, चन्द्रमासे मंगल चौथा ग्रह है। इस लिए यह नियम हो गया है कि ग्रहोंके क्रमको शनि से गिनते हुए प्रत्येक चौथा ग्रह अगले वारका स्वामी होता है।

मासपति—यदि किसी सावन मासका पहला दिन रविवार हो तो अगले सावनमासका पहला दिन रविवारसे ३१ वां दिन होगा; क्योंकि सावन मास ३० दिन का होता है। परन्तु रविवार से ३१ वां दिन पांचवें सप्ताहका तीसरा दिन मंगल-

* सावनको श्रावण न समझना चाहिये। ३० सावन दिनोंका जो मास होता है वह सावन मास और १२ सावन महीनों का जो वर्ष होता है वह सावन वर्ष कहलाता है।

+ पृथ्वीसे बुध शुक्र की अपेक्षा अधिक दूर है, परन्तु हमारे ज्योतिष ग्रन्थों में शुक्र ही अधिक दूर माना गया है। कारण इसका यह है कि जो ग्रह जितनी ही दूर है उतनी ही देर में वह भगण पूरा करता है; ऐसा विश्वास हमारे ज्योतिषियोंका भी है, परन्तु इन्होंने पृथ्वीसे यह दूरी ली है और आधुनिक ज्योतिषियों ने सूर्यसे।

*—वारों का यह क्रम प्रायः सभी देशोंमें पाया जाता है। परन्तु इनके नामकरण की उपपत्ति जैसा यहां की गयी है वैसी कहीं और भी या नहीं है यह खोजनेके योग्य है।

वार होता है। इस लिए दूसरे सावन मासका स्वामी मङ्गल ग्रह हुआ। तीसरे सावन मासका पहला दिन मंगल वारसे ३१वां हुआ अर्थात मंगलवारसे आरम्भ करके पांचवें सप्ताहका तीसरा दिन, बृहस्पति वार हुआ। इस लिए तीसरे सावन मासका स्वामी बृहस्पति हुआ। इसी प्रकार चौथे सावन मासका स्वामी, बृहस्पतिवारसे तीसरे दिन शनिवारका स्वामी शनि और पांचवें सावन मासका स्वामी शनिवारसे तीसरे दिन सोमवार का स्वामी सोम तथा छठें सावन मासका स्वामी बुध और सातवें सावन मासका स्वामी शुक्र हुआ। आठवें सावन माससे फिर यह क्रम चलेगा। इस लिए वारोंके क्रमसे तीसरा वार आने वाले सावन मासका पहला दिन तथा उसका स्वामी उस सावन मासका स्वामी होता है। अब यदि ध्यानसे देखा जाय तो जान पड़ेगा कि मासपतियोंका क्रम ग्रहोंके क्रमके अनुसार इस प्रकार है—रवि, मंगल, बृहस्पति, शनि, सोम, बुध और शुक्र फिर रवि, मंगल, बृहस्पति शनि इत्यादि। यदि चन्द्रमासे यह चक्र आरंभ हो तो इनका क्रम वही रहेगा जिस क्रमसे ये पृथ्वीसे क्रमानुसार दूर समझे गये हैं।

वर्षपति—सावन वर्षका आरंभ जिस दिनसे होता है उसी दिनका स्वामी उस वर्षका स्वामी समझा जाता है। यदि पहले सावन वर्षका आरंभ रविवार को हो तो दूसरे सावन वर्षका आरंभ रविवारसे ३६१ वें दिन होगा जो ५१ सप्ताहके बाद वाले सप्ताहका चौथा दिन अर्थात् बुधवार है इसलिए दूसरे सावन वर्षका स्वामी बुध होगा। तीसरे सावन वर्षका आरम्भ दूसरे सावन वर्षसे ३६१वें दिन होगा इसलिए यह बुधवारसे चौथा दिन शनिवार होगा जिसका स्वामी शनि है इसलिए तीसरे सावन वर्षका स्वामी शनि होगा। इसी प्रकार चौथे सावन वर्षका स्वामी शनिवारसे चौथे दिन मंगलवारका स्वामी मंगल है। पांचवें सावन वर्षका स्वामी, मंगलवारसे चौथे दिन शुक्रवारका स्वामी शुक्र है। छठें सावन वर्षका स्वामी शुक्रवारसे चौथे दिन सोमवारका स्वामी सोम, सातवें सावन वर्षका स्वामी सोमवारसे चौथे दिन बृहस्पतिवारका स्वामी बृहस्पति तथा आठवें सावन वर्षका स्वामी बृहस्पतिवारसे चौथे रविवारका स्वामी रवि फिर होगा। इस तरह आठवें सावन वर्षसे फिर वही क्रम आरंभ होगा। इन स्वामियोंका क्रम इस प्रकार हुआ रवि, बुध, शनि, मंगल, शुक्र, सोम, बृहस्पति रवि, बुध शनि इत्यादि इसलिए यदि वारोंके अनुसार क्रम मिलाया जाय तो आने वाले सावन वर्षका पहला दिन गत सावन वर्षके पहले दिनसे चौथा होगा। और यदि ग्रहोंका क्रम मिलाया जाय तो शनिसे आरम्भ करके प्रति तीसरा ग्रह वर्षका स्वामी होता है। इन बातोंके सूत्र रूप में भूगोलाध्यायके ७८ वें और ७९ वें श्लोकोंमें यों लिखा गया है:—

> मन्दादधः क्रमेणस्युश्चतुर्था दिवसाधिपः।
> वर्षाधिपतयस्तद्वत् तृतीयाश्च प्रकीर्तितः॥७८॥
> ऊर्ध्वं क्रमेण शशिनो मासानामधिपः स्मृताः।
> होरेशाः सूर्य तनयादधोधः क्रमशस्तथा॥७९॥
>
> सूर्य सिद्धान्त, भूगोलाध्याय

वर्ष पति, मास पति, दिन पति और होरा पति, जाननेकी दोनों रीतियां नीचेके दो चित्रोंके द्वारा दिखलायी जाती हैं।

वारोंके नामों तथा वर्ष पतियों और मास पतियोंके सम्बन्धका यह नियम जान लेने पर अब ५१ वें और ५२ वें श्लोकोंकी उपपत्ति सहज ही समझी जा सकती है।

इष्ट काल तक जो अहर्गण (सावन दिन) आया हो उसको सातसे भाग देने पर जो शेष बचे उतने ही दिन सप्ताहके बीत चुके हैं। सृष्टिका आरंभ रविवारसे हुआ इसलिए रविवार सप्ताहका पहला दिन है और शनिवार पिछला दिन अर्थात् सातवां दिन। इसलिए यदि शेष ५ बचे तो समझना चाहिए कि बृहस्पतिका दिन है जिसकी मध्यरात्रिको यह अहर्गण पूरा होता है

## वारों के अनुसार क्रम
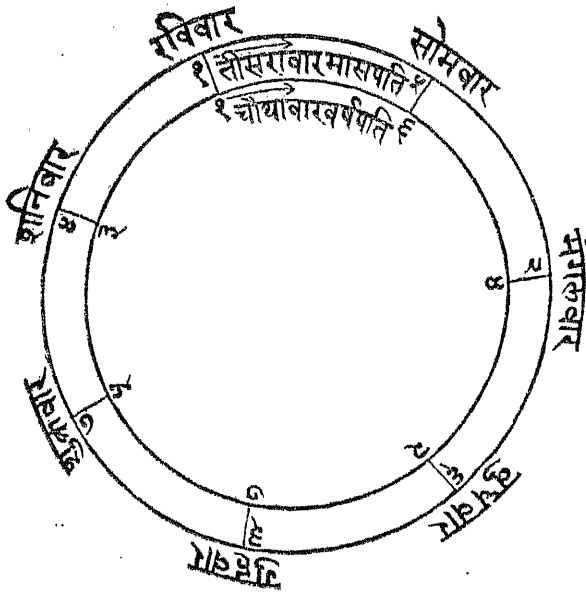
चित्र २३

क्योंकि वृहस्पति सप्ताहका पाँचवा दिन है। जैसे पिछले उदाहरणमें अहर्गणकी जो संख्या ७, १४, ४०, ४१, ३१, ६०३ आयी है उसको सातसे भाग देने पर शेष १ बचता है। इसलिए जिस दिनका अहर्गण निकाला गया है वह सप्ताहका पहला दिन रविवार है। परंतु यह अहर्गण बसंत पंचमीसे पहलेकी अर्द्ध रात्रि तकका है इसलिए बसंत पंचमीको सोमवार होगा।

मास पति जाननेके लिए इष्ट अहर्गणको ३० से भाग देना चाहिए जो लब्धि आवे वही सृष्टके आदिसे सावन मासोंकी संख्या हुई। इन सावन मासोंको दोसे गुणा करके १ जोड़ दो और सात से भाग देदो, क्योंकि मास पतियोंका क्रम वारके अनुसार तीसरे दिन पर बदलता है और सात मास बीतने पर फिर वही क्रम आरंभ होता है। शेष बचे सप्ताहके उसी दिनका स्वामी उस मासका स्वामी होता है जो चल रहाहै। जैसे ऊपरके अहर्गणको ३० से भाग देने पर २३, ८१, ३४, ७१, ०५३ सावन मास + १३ सावन दिन होते हैं। इन सावन मासोंकी सख्याको २ से गुणा करके १ जोड़ने पर ४७, ६२, ६८, ४२, १०७ होता है। इस को ७ से भाग देने पर शेष ३ बचता है इसलिए चलते सावन मासका पहला दिन मंगलवारका था इसलिए इस मासका स्वामी मंगल है।

वर्ष पति जाननेके लिए इष्ट अहर्गणको ३६० से अथवा ऊपर निकाले हुए सावन मासोंको १२ से भाग दे दो, जो लब्धि आवे उतने ही सावन वर्ष बीते हैं। इनको तीनसे गुणा करके १ जोड़ दो और सातसे भाग देदो क्योंकि वर्षपतियोंका क्रम वारके अनुसार चौथे दिन बदलता है और सात वर्षके बाद फिर वही क्रम आरंभ होता है। जो शेष बचे (सप्ताहके) उसी दिनका स्वामी चलते सावन वर्षका स्वामी होता है क्योंकि सप्ताहका आरम्भ रविवारसे होता है।
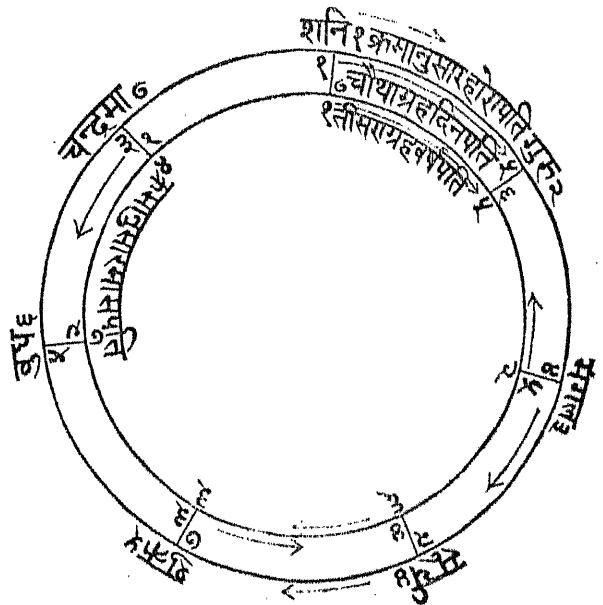
चित्र २४—पृथ्वीसे ग्रहोंकी दूरीके अनुसार क्रम

जैसे ऊपरके उदाहरणमें अहर्गणको ३६० से भाग देनेपर अथवा सावन मासोंको १२ से भाग देने पर गत सावन वर्षोंकी संख्या १, ६८, ४४,५५, ६२ १ हुई। इसको तीनसे गुणा कर १ जोड़नेसे ५, ६१, ३३, ६७, ७६४ हुआ। इसको ७ से भाग देने पर शेष १ बचता है। इस लिए चलते सावन वर्षका आरंभ रविवारको हुआ और इस वर्षका स्वामी रवि हुआ।

यह तो हुई सूर्य सिद्धान्तके अनुसार वर्ष पति निकालनेकी रीति। आज कलके बहुत से पंचांगोंमें वर्षपति (वर्षेश) उस दिनका स्वामी माना जाता है जिस दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होती है और वर्ष-का मंत्री उस दिनका स्वामी समझा जाता है जिस दिन मेष संक्रान्ति होती है। मघेश उस दिन का स्वामी होता है जिस दिन आर्द्रा नक्षत्र लगता है इत्यादि। इसी विचारसे वर्ष भरका फल निकाला जाता है। मकरंद सारिणीमें सूर्य सिद्धान्तसे भिन्न नियम यह है:—

चैत्र शुक्ल प्रतिपद्दिवसे यो वारः स राजा। मेष संक्रान्ति दिवसे यो वारः स मंत्री। कर्क संक्रान्ति दिवसे यो वारः स सस्याधिपः। तुला संक्रान्ति दिवसे (यो) वारः स रसाधिपः। मृग संक्रान्ति दिवसे यो वारो (स) नीरसाधिपः। आर्द्राप्रवेश दिवसे यो वारः स मेघाधिपः। धनुः संक्रान्ति दिवसे यो वारः स पश्चिमधान्याधिपः॥*

सावन वर्ष तथा सावन मासका व्यवहार आज कल कहीं नहीं है। इसलिए वर्षाधिप और मासाधिप निकालनेका जो नियम सूर्य सिद्धान्तमें दिया गया है वह किस काम आता है यह मैं नहीं जानता। यदि कोई सज्जन जानते हों तो कृपया सूचित करें। तेरहवें श्लोकसे, जैसा कि मैंने उस की टिप्पणीमें लिखा है, यह ध्वनि निकलती है कि यथार्थ वर्ष सौर वर्ष ही है। फिर सावन वर्ष और सावन मासके अनुसार वर्ष पति और मास पति निकालनेकी क्या आवश्यकता है?

यथास्वभगणाभ्यस्तो दिन राशिः कुवासरैः।
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिर्ग्रहो भवेत् ॥५३॥
एवं स्वशीघ्र मन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः।
विलोम गतयः पातास्तद्वच्चक्राद्विशोधिताः ॥५४॥

अनुवाद—(५३) जितने सावन दिन आवें उनसे किसी ग्रहके महायुगीय भगणको गुणा कर दो और गुणनफलको महायुगीय सावन दिनसे भाग दे दो। जो लब्धि आवेगी उतने ही भगण उस ग्रहके (सृष्टिके आदिसे) मध्यम गतिके अनुसार पूरे हुए हैं। जो शेष बचे उसको १२से गुणा करके फिर (महायुगीय सावन दिन से) भाग देनेसे उस राशिकी संख्या आवेगी; जितनी राशियां वह ग्रह वर्तमान भगणमें पूरा कर चुका है। अब जो शेष बचे उसको ३० से गुणा करके महायुगीय सावन दिनोंकी संख्यासे भाग देने पर उन अंशों-की संख्या निकल आवेगी जितने अंश वह ग्रह वर्त्तमान राशिमें पूरे कर चुका है इत्यादि। (५४) इसी प्रकार पहले कहे हुए पूर्वकी ओर चलनेवाले शीघ्रों और मन्दोच्चोंके स्थान भी जाने जा सकते हैं। पातोंकी गति उलटी (पच्छिमकी ओर) होती है, इसलिए पातोंकी जो राशि अंश कला विकला हों उनको पूरे चक्रमें से अर्थात् १२ राशिमें से घटा देना चाहिये जो शेष बचे वही पातोंके स्थान हैं।

विज्ञान भाष्य—इन श्लोकोंमें वह रीति बतलायी गयी है जिससे किसी इष्ट समयमें ग्रहोंके स्थान जाने जाते हैं। इसका संक्षेपमें अर्थ यह है कि जब एक महायुगमें (महायुगीय सावन दिनोंमें) ग्रह ऊपर कहे हुए भगण करता है तब इष्ट समय तक-के सावन दिनोंमें कितने भगण करेगा। इसलिए त्रैराशिककी रीतिसे इस नियमको यों प्रकट कर सकते हैं:—

महायुगीय सावन दिन : इष्ट अहर्गण :: महा-युगीय भगण : इच्छित भगण

* वेंकटेश्वर प्रेस की १६६० वि० की छपी मकरंद सारिणी पृष्ठ ४७।

यदि 'स' को महायुगीय सावन दिन, 'अ' को इष्ट अहगण, 'भ' को महायुगीय भगण तथा 'भा' को अभीष्ट भगण माना जाय तो संक्षेपमें इसको यों लिखेंगे:—

$$भा = \frac{अ \times भ}{स}$$

यह एक भिन्न है, जिसको सरल किया जाय तो जो पूर्णाङ्क आवेगा वह ग्रहके पूरे भगण होंगे जो कि उस समय तक पूरे हो चुके हैं और शेष भिन्नको १२ से गुणा करके सरल करने पर जो पूर्णाङ्क आवेगा वह गतराशि तथा फिर जो भिन्न होगी उसको ३० से गुणा करके सरल करने पर वर्तमान राशिके अंश निकलेंगे। यदि कला विकला भी जानना हो तो ६० से गुणा करके सरल करते जाना होगा।

यह नियम सभी पूर्व चलनेवाले ग्रहों, शीघ्रोचों और मन्दोच्चोंके लिए लागू है। यदि किसी ग्रहके पातोंका स्थान जानना हो तो ऊपर लिखी रीतिसे जो राशि, अंश, कला, विकला आवे उसे १२ से घटा देना चाहिये क्योंकि पातकी चाल उलटी होती है इसलिए वह उलटे क्रमसे राशि चक्र पर चलेगा। यदि गणितसे निकले कि अमुक पात 'भा' भगण पूरे करके २ राशि ३ अंश ५ कला पर है तो इसे मेषके आदि विन्दुसे उलटा गिनना चाहिये अर्थात् मीन, कुंभ, और मकरके अंतिम विंदुसे ३ अंश ५ कला अर्थात् मकरके २६ अंश ५५ कला पर। इसलिए यदि १२ राशियोंमें २ राशि ३ अंश ५ कला घटाया जाय तो ९ राशि २६ अंश ५५ कला आवेगा जिसका अर्थ यह हुआ कि वह पात राशि चक्रकी ९ राशियोंके उपरान्त दसवीं राशिके २६ अंश ५५ कला पर है।

---

# बाल परिचर्या और औषधि सेवन से हानियां

इस लेखमें अनियमित आहार और औषधोपचारके बुरे परिणाम और मंडमय भोजन (Starchyfoods) के दुष्प्रयोग दिखानेकी चेष्टा की गई है। पाठको! क्या आपने कभी विचारा है कि सभ्य समाजमें इतनी रोग वृद्धि क्यों दिखाई पड़ती है। मनुष्यको तो अपनी बुद्धि और चिर संग्रहीत अनुभवके कारण संसारमें सबसे अधिक स्वास्थ्य-सम्पन्न और नीरोग प्राणी होना चाहिये था। परन्तु वास्तविक दशा इसके बिल्कुल विपरीत है। हज़ारों वर्षोंसे व्यवसायिक चिकित्सकों और अताइयोंने हमारे शारीरिक आरोग्यका ठेका ले रखा है। वैद्यों और अताइयोंकी संख्या दिन दिन बढ़ती ही जाती है। जिधर देखो उधर दवाइयोंके इश्तिहार दिखाई देते हैं। गली गली औषधालय और जगह जगह अस्पताल खुलते जाते हैं; तो भी जन साधारणमें रोग फैलते ही जाते हैं। तन्दुरुस्तीकी जगह बीमारीका राज है।

क्या आप नहीं जानते कि आजकल नवजात बालकोंकी एक बड़ी संख्या बाल्य-कालमें ही विकराल कालके गालमें चली जाती है, और जो शेष बच भी जाते हैं उनका स्वास्थ्य और शारीरिक संगठन, आदर्श तो कौन कहे, संतोषजनक भी नहीं होता। जब हम अपने देशके हज़ारों बालकोंको चारों ओर रोगसे पीड़ित देखते हैं तो कलेजा काँप उठता है। उनका केवल अस्थि चर्ममय पंजर, पीला और मुर्झाया हुआ चेहरा, पिचके हुए गाल, बैठी हुई आंखें निकला हुआ पेट और सूखी टांगें दूरसे ही उनकी शोक जनक अवस्थाका पता देती हैं। जहां माता पिताका स्वास्थ्य, उनकी प्रजननार्थ योग्य

अवस्था और गर्भाधान, गर्भावस्था और प्रसव कालके संस्कार बालकोंकी इस शोकजनक परिस्थितिके लिए उत्तरदायी ठहराये जा सकते हैं, तहाँ जन्म पानेपर बालकों और उनकी माताओंके आहार विहारका प्रभाव भी उनका स्वास्थ्य बनाने या बिगाड़नेमें कुछ कम नहीं पड़ता। बहुधा माता पिता अपने बच्चोंको छोटी उम्रमें ही मिठाई खिलाने लगते हैं। उस अवस्थामें मिठाईका सेवन करनेसे उनका पाचन हमेशाके लिए बिगड़ जाता है। इसी तरह भाँति भाँतिके गरिष्ट पदार्थ और मसाले भी उनके कोमल पाचन संस्थान पर बहुत बुरा प्रभाव डालते हैं और उनको सदाके लिए असाध्य रोगोंका शिकार बना देते हैं, जिनके कारण वह अधिकांशमें तो छुटपनमें ही माँकी गोद सूनी कर जाते हैं और जो बच भी जाते हैं तो उनका जीवन उनके बिगड़े स्वास्थ्यके कारण सदाके लिये दुःखमय हो जाता है।

प्रस्तुत लेखमें इसी आहार विधिकी विवेचना को गई है। सभ्यताको उन्नतिके साथ मनुष्य समाजमें भोजनके व्यंजनोंमें भी नई नई ईजादें और उनकी संख्यामें बढ़ती होती जाती है और हम एक साथ तरह तरहके भोजनोंका स्वाद लेनेके आदी हो गये हैं। दूध, मांस, शाक, भाजी, अन्न और तरह तरहकी मसालेदार चीज़ें एक साथ खानेमें हमें ज़रा भी संकोच नहीं होता। बल्कि उलटा मज़ा आता है; यही वजह है कि इन भिन्न भिन्न गुण-स्वभाववाले और बहुधा बेमेल पदार्थोंके खानेसे हमारा हाज़िमा बिगड़ जाता है और उसे दुरुस्त करनेके लिए हमें नित नये चूर्णों और हकीमों वा डाक्टरोंके बहुमूल्य नुसख़ोंकी ज़रूरत पड़ती है।

यदि हम उस विषयमें जानवरोंसे कुछ शिक्षा लें तो मालूम होगा कि जंगली जानवर और बहुधा हमारे घरेलू जानवर भी—जब तक कि उनकी स्वाभाविक स्वतंत्रता छिन नहीं जाती—अपनी तन्दुरुस्ती क़ायम रखनेके लिए किसी डाक्टरकी सहायताके मुहताज नहीं होते। वह अपने खान पानमें स्वाभाविक नियमोंके इतने पाबंद होते हैं कि मनुष्यकी तरह आये दिन उन्हें भाँति भाँतिके रोगोंका सामना नहीं करना पड़ता। इसी तरह मनुष्योंमें भी यदि खाने पीनेके मामलेमें ठीक ठीक एहतियातका बर्ताव होने लगे तो हमारी दशा बहुत जल्द सुधर सकती है और हमारे बीचसे बदहजमी, बवासीर, पेचिश, सूखा, क्षयी प्रभृति तरह तरहके रोग पीड़ितोंकी संख्या भी बहुत घट सकती है।

बीमारियोंका मुकाबिला केवल दवाओंके भरोसे पर नहीं किया जा सकता। जब तक खाने पीने या तन्दुरुस्तीके अन्य साधारण नियमोंके पालनमें काफी एहतियात न बर्ता जावेगी इस सम्बन्धमें सफलता होना मुशकिल है। अकसर दवाओंके इस्तेमालमें लाभके बदले हानि होती है और अकसर यह भी होता है कि एक दवाके विषयमें दो डाक्टरोंकी राय एक सी नहीं होती। इसी तरह वही दवा जो किसी बीमारीके शुरूमें लाभ करती है बादको नुक़सान पहुँचा सकती है। ऐसी हालतमें दवाओंके इस्तेमालसे किसी निश्चित लाभकी आशा करना बेकार है। इसके विपरीत हम प्राकृतिक उपचारोंपर हमेशा भरोसा कर सकते हैं। स्वाभाविक नियम अचूक होते हैं और बीमारीकी हालत बदलनेके साथ साथ वह भी बदलते रहते हैं। किसी स्थानीय पीड़ाके तात्कालिक कष्टको दबा देनेमें दवाओंका इस्तेमाल बहुधा लाभदायक होता है और बहुत सी दवाएं—ख़ास कर खनिज दवाएं और वानस्पतिक दवाओंके सत-इतने तेज़ और अस्वाभाविक होते हैं कि उनके इस्तेमालसे निस्संदेह हमारी तन्दुरुस्तीको नुकसान पहुँचता है और कभी कभी जान जोखिममें पड़ जाती है। इसके विपरीत किसीने यह तो कभी सुना न होगा कि दवाएँ हमारे शरीरकी किसी कमीको स्थायी रूपसे पूरा कर सकती हैं। पर स्वाभाविक नियमोंके अनुकूल चलनेसे यह अभीष्ट सिद्ध हो जाती है।

सच बात तो यह है कि हम प्रकृतिके कामोंमें बेजा दखल न दें तो वह बराबर हमारे जीवनके प्रत्येक क्षणमें हमारे शारीरिक सुधारका काम चुपचाप बड़ी सरलतासे किया करती है और नये रग और रेशे बनाती और इसी तरह बेकार माद्देको बाहर निकालती रहती है। प्रकृतिमें नया माद्दा पैदा करनेकी शक्ति है, दवा में नहीं। आदमीका शरीर एक भोजन खानेवाला इंजन समझना चाहिये। यह इंजन तब ही ठीक ठीक चल सकता है जब कि उसे उसकी आवश्यकतानुसार भोजन रूपी ईंधन ऐसे रूपमें दिया जावे जिसे कि वह सहजमें पचा सके। प्रायः सब रोगोंका असली कारण उसी एक मुख्य चीजका, जिस पर हमारे जीवनका आधार है अर्थात् भोजनका, अनियमित प्रयोग है। उससे यह नतीजा निकलता है कि खान पानके स्वाभाविक नियमोंपर चलनेसे हमारी तंदुरुस्तीकी हालत बहुत अच्छी हो सकती है। थोड़े शब्दोंमें यही स्वास्थ्यका रहस्य है; और वैद्यों या डाक्टरोंकी कोई व्यवस्था या औषधि विक्रेताओंके लंबे चौड़े इश्तिहार इसे बदल नहीं सकते। जब यह बात सब लोग भली प्रकार समझ जावेंगे तभी नये सिरेसे हम लोगोंके तंदुरुस्तीके ज़िंदा होनेकी उम्मीद की जा सकेगी। उस समय बीमारी किसीकी सहानुभूतिका विषय होनेके बदले हमारे लिये लज्जा और अपमानकी बात होगी।

हमारी उम्र कितनी ही ज्यादा क्यों न होगई हो हम 'स्वाभाविक' साधनों पर भरोसा कर सकते हैं। मेलर महाशयने अपनी पुस्तकमें एक व्यक्तिका ज़िक्र किया है जिसकी उम्र पचास सालकी थी। वह कब्ज और बदहज़मीका लगभग बीस बरस तक डाक्टरोंका इलाज करा चुका था। जब मेलर महाशयसे उससे भेंट हुई तो वह साल भर तक एक बड़े नामी डाक्टरका इलाज कर चुका था। उस डाक्टरकी आज्ञा थी कि वह सब तरहके फलोंसे—चाहे कच्चे हों या पक्के—परहेज़ करे। और दूधका इस्तेमाल खूब करे वह बहुत दुबला और कमज़ोर हो गया था। एक बड़ा फोड़ा उसकी गर्दन पर था और उसकी सांससे बड़ी दुर्गंध आती थी। उसे बहुत समझाने बुझाने पर, और फिर भी बहुत डरते डरते, उसने एक नारंगी खानेका निश्चय किया। उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि नारंगीसे उसे कोई नुकसान न हुआ। धीरे धीरे उसने विधि पूर्वक नारँगी, नीबू, सेव, अँगूर, मुनक्का, अंजीर और बादामका इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। वह अपना मामूली भोजन भी करता था। एक महीनेके भीतर ही उसकी दशा इतनी सुधर गयी कि मानों उसके लिए संसार ही बदल गया। उसकी शारीरिक और मानसिक दशाओंमें पहले की बनिस्बत ज़मीन आस्मानका अंतर हो गया। उसके शरीरसे बड़ा भारी बोझ उतर गया और सो भी बिना एक पाई की दवाके। यह व्यक्ति यद्यपि मेवाफरोश था पर जबतक वह डाक्टरोंके इलाजमें रहा जो चीजें वह रोज़ बेचता था और जिन्हें खाने को उसका जी भी बहुत चाहता था उन्हीं चीजों को खानेसे वह वंचित रहा। ऐसे और भी बहुत से उदाहरण हैं। अनेक नर-नारी जिन्होंने फिर अच्छे होने की आशा छोड़ दी थी और बालक जिनके माता पिता उनकी ज़िंदगी से हाथ धो चुके थे, इसी स्वाभाविक उपचार और फलाहारकी बदौलत बिलकुल भले चंगे और हट्टे कट्टे होगये हैं। दवाओंका इस्तेमाल अस्वाभाविक है। उनके भरोसे किसी असाधारण लाभ की जो स्वाभाविक साधनोंसे प्राप्त न होसके आशा करना व्यर्थ है। साफ खून ही बीमारियोंसे बचनेका एक मात्र उपाय है और स्वाभाविक साधनों से खून की सफाई और नये खूनकी उत्पत्ति सहजमें हो सकती है।

—गिरवर सहाय

# ग्राम-संस्था

( ले०—भाशंकरराव जोशी )

ग्रामः कहा जाता है कि प्राचीन भारत-वर्षमें प्रजातंत्रका नाम तक नहीं सुना जाता था। कई पाश्चात्य पंडित चिल्ला चिल्ला कर यह बात कह रहे हैं कि भारत सदासे निरंकुश राज-सत्ता द्वारा पद्-दलित होता रहा है। परन्तु अब कई भारतीय विद्वानोंने यह बात सप्रमाण सिद्ध कर दी है कि किसी जमानेमें भारतवर्षमें प्रजातंत्रका बोलबाला था—सारा देश ग्राम-संस्थाओंसे व्याप्त था। भारतीय ग्राम-संस्थाओं पर किसी स्वतंत्र लेखमें विचार करेंगे। इस लेखमें प्राच्य और पाश्चात्य ग्रामसंस्थाओं पर संक्षेपमें विवेचन करते हुए भारतीय ग्रामसंस्थाओंकी रचना पर कुछ लिखेंगे।

### ग्राम-संस्थाकी प्राचीनता

हिन्दू और ट्यूटन मूल आर्य जातिकी दो शाखाएं हैं। यह आर्य जातिसे व्याप्त प्रदेशोंके पूर्वी और पश्चिमी सिरेपर रहती हैं। इन दोनों शाखाओं-में पाई जानेवाली ग्रामसंस्थाओंमें बहुत कुछ साम्य है। इस साम्यको देखते हुए कहना पड़ता है कि इन दो शाखाओंके विलग होनेके बहुत पहले ही आर्य जातिमें ग्रामरचनाका उदय हो गया था। कुछ विद्वानोंका कथन है कि दोनोंमें से किसी एक-ने दूसरीसे ग्रामसंस्था सीखी है। अथवा दोनों ही राष्ट्रोंमें देश, काल और परिस्थितिके अनुरूप एकसी आवश्यकताओंके उत्पन्न हो जानेसे बिलकुल स्वतंत्र रूपसे उनका उद्भव हुआ है। परन्तु हमें तो यह मत भ्रमपूर्ण जान पड़ता है; क्योंकि अभीतक इस बातका प्रमाण नहीं मिला है कि पूर्व-कालमें ट्यूटन और हिन्दू जातिका कभी सम्मिलन हुआ हो और न इन दोनों उपजातियोंका देश, काल और परिस्थिति ही समान थी। अतएव यही मानना पड़ता है कि दोनोंने मूल आर्य जातिसे ही ग्राम रचना सीखी थी।

आर्य जातिकी अन्यशाखाओंमें भी ग्रामसंस्था-ओंका अस्तित्व पाया जाता है। इतना ही नहीं, अनार्य जातियोंमें भी इसके अस्तित्वके चिन्ह पाये जाते हैं। एमिली डी लावे लायी नामक एक फ्रेंच विद्वानका मत है कि अति प्राचीन कालमें सब सभ्य राष्ट्रोंमें इसका अस्तित्व था। प्राचीनकालमें मेक्सिकोके देशमें 'कालपुल्ली' नामक जनसंघ थे। इनकी रचना ग्रामसंस्थाओंकी रचनासे कुछ कुछ मिलती हुई थी। प्रेस्काट नामक इतिहासवेत्ताका मत है कि पेरू देशमें भारतीय ग्राम संस्थाओंके समान ही ग्राम-व्यवस्था थी। इतना ही नहीं वहां जाति भेद भी था। यहां वैयक्तिक स्वामित्वका एकदम अभाव था। प्रत्येक विवाहित पुरुषको अपने कुटुम्बके निर्वाहके लिए एक वर्षके लिए कुछ जमीन देदी जाती थी। प्रति वर्ष आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई जमीन जोत नहीं सकता था।

डा० फ्रीमनने अपनी 'Science of comparative politics' नामकपुस्तकमें ग्रीक, रोमन और ट्यूटन लोगोंकी ग्रामसंस्थाओंकी तुलनाकी है। आपने अपने इस ग्रंथमें यह बात सप्रमाण सिद्ध कर दी है कि अथेंस नगरकी 'लेनास', रोमनगरकी 'जेन्स', ट्यूटन लोगोंकी 'मार्क', या 'जोमिएडी', स्काटलैंड और आयलैंडकी 'क्लैन' तथा पूर्वी राष्ट्रोंके 'ग्राम-मंडल' आदि जनसंघ प्रारंभमें एक ही थे। केवल देश भेदसे ही उनको भिन्न भिन्न रूप प्राप्त हो गये थे। आपने अपने ग्रंथमें यह बात भली प्रकार प्रति-पादित की है कि रशियन 'मीर, और भारतीय ग्राम मंडलमें बहुत कुछ साम्य है। मीर शब्दका यौगिक अर्थ है 'संसार'। इस एक शब्द परसे ही जनसंघों-की स्वतंत्रताकी कल्पना की जा सकती है। भारत-वर्षके गाँवोंके पटेलकी तरह प्रत्येक मीर या स्टोरस्ट गाँवका अधिकारी होता था। मीरकी व्यवस्था

देखनेके लिए गाँवके कुटुम्बनायकोंकी एक सभा रहा करती थी।

ग्राम पंचायतके समान मीरको भी न्याय करनेका अधिकार प्राप्त था। इस सभाका अधिकार बहुत ही व्यापक था और वह परंपरा गत रूढ़ीके अनुसार ही अपने अधिकारोंको काममें लातीथी। मीरके प्रत्येक कुटुम्बपर कुटुम्बके मुखियाका अनियंत्रित अधिकार रहता था।

सर हेनरी मेनने अपने ग्रंथ Village Communities में लिखा है कि ग्रीक, रोमन, ट्यूटन आदि आर्य-राष्ट्रोंकी ग्राम-संस्थाओंकी रचना एक सीथी। परन्तु मेक्ज़िको, पेरू आदि दूरके देशोंमें भी तो इनका अस्तित्व पाया जाता है। अभी तक इस बातका पता नहीं चला है कि उक्त दोनों देशों के निवासी आर्य थे और न यह बात ही सिद्ध हो पाई है कि उन्होंने आर्योंसे ग्राम व्यवस्था सीखी थी। यदि मानलें कि वहाँ ग्राम संस्था स्वतंत्र रूपसे अस्तित्वमें आई थी तो यह भी मानना पड़ेगा कि अन्य देशोंमें भी उसका उदय स्वतंत्र रूप से ही हुआ होगा। और यदि यह दोनों मत स्वीकार करलें, तो हिन्दू और ट्यूटन ग्राममंडलों-के सादृश्य से उनका प्राचीनत्व और समान प्रभुत्व सिद्ध नहीं होता। अतएव यह जरूरी है कि भाषा शास्त्र द्वारा उनकी प्राचीनता सिद्ध की जाय।

लैटिन Domus और ग्रीक Domos शब्द गृह वाची हैं। इनकी उत्पत्ति वैदिक 'धामन्' और 'दम्' शब्दों से हुई है। स्त्री पुरुष वाची 'दम्पति' शब्दका पूर्व अवयव 'दम्' इसीका संक्षेप रूप है। प्रारम्भमें दम्पति' या—Dem--s--poti कुटुम्ब नायक को कहते थे। अनेक घरोंके समुदायको 'ग्राम' संज्ञा दी गई थी और वहांके निवासियोंको 'विश' तथा घरोंको 'वेश' कहते थे। यह दोनों शब्द बहुत ही प्राचीन हैं। यह शब्द सभी आर्य भाषाओंमें पाये जाते हैं। संस्कृत 'विश' ज़िंद 'विसं,' फारसी 'विथ' ग्रीक Fik व ockos लैटिन vicus और गाथिक veiks—यह सब शब्द एक ही हैं। वेशको परि उपसर्ग लगानेसे परिवेश शब्द बनता है जो गृह समुदाय वाची है। यही शब्द परिवर्तित होकर ग्रीक भाषामें Para-oikos बन गया। इसीसे ग्राम वाची अंगरेजी शब्द Parish की उत्पत्ति हुई। फ्रांस देशकी राजधानी संसार प्रसिद्ध पेरिस नगरके नामकी उत्पत्ति भी इसी प्रकार हुई होगी।

ग्रीन विच, बुलविच, आदि गाँवोंके नामका अन्तिम शब्द wich ( विच ) संस्कृत 'विश' शब्द से बना है। हंगेरी प्रान्तके स्लाव लोगोंमें प्राचीन नमूनेके जन संघोंका अस्तित्व पाया जाता है। एक ही पूर्वजसे पैदा हुए अनेक कुटुम्बोंसे 'गोत्र' बनता है। गोत्रको हंगेरीमें ब्रात्स्त्वा ( Bratstvo ) कहते हैं। अनेक गोत्रोंके मिल जाने से सिब ( sib ) या सेप्ट ( sept ) बनाता है और उसमेंके व्यक्तियोंके समुदायको 'सिबजा' कहते हैं। भाषा शास्त्र विदोंका मत है कि सिब और सबजा शब्दोंकी उत्पत्ति संस्कृत 'वेश' और 'सभा' शब्दोंसे हुई है। अतएव प्राच्य और पाश्चात्य ग्राम संस्थाओंके सादृश्य और 'विश' 'व्हायकस' सिबजा, सभा आदि शब्दोंकी समानता पर विचार करनेसे ग्राम मण्डलोंका प्राचीनत्व सिद्ध हो जाता है।

वेदमें 'ग्राम' और वृजन् ग्रामवाची शब्द पाये जाते हैं। ग्राम शब्दका अर्थ है ( गृह + मा ) घरोंका समुदाय और वृजनका अर्थ है 'मर्यादित किया हुआ प्रदेश'। यह दोनों शब्द पाश्चात्य भाषाओंमें भी पाये जाते हैं। ग्रामसे ग्रीक Kumn, गाथि Haims, ,सिथु kemas और फार caymis शब्द बने हैं। प्रारंभमें यह सब शब्द जन समूह वाची थे। किन्तु बादमें वह लोगोंके रहनेके स्थानोंको लगाये जाने लगे। प्रत्येक नियमित जनसंघको 'वृजन्' या 'वृज' कहते थे। प्राचीन कालमें चोर आदि अपराधियोंको जनसंघसे अलग करने, परावृज् करनेकी प्रथा थी। आजकलकी जाति-बहिष्कारकी प्रथा

का यही मूल है। जनसंघसे अलग करनेकी प्रथा जनसंघके साथ ही अस्तित्वमें आई होगी। सभी देशोंमें तद्वाचक शब्द पाये जाते हैं। अंगरेजी शब्द wreck या wretch संस्कृत परावृजसी ही निकले हुए हैं। मंडलसे बहिष्कृत किया हुआ व्यक्ति अभागा माना जाता था। इसी वृजन् शब्दसे जर्मन Bergen ॲंग्लो सेक्सन Beorgan लैटिन Burgus और ॲंगरेज़ी Borough आदि ग्रामवाचक शब्द बने हैं। सारांशमें, शब्द सादृश्य परसे भी यही सिद्ध होता है कि मूल आर्य जातिके विलग होनेके पहले ही ग्राम व्यवस्था और बहिष्कारके समान तत्सम्बंधी रीति-रस्म अस्तित्वमें आगये थे।

यहां तक ग्रामसंस्थाकी प्राचीनता पर विचार किया गया है। अब संक्षेपमें भारतीय 'ग्रामसंस्था' पर विचार करेंगे।

हिन्दूग्राम व्यवस्था।

प्रारंभमें ग्राममंडल एक ही संस्था थी। किन्तु बादमें कर्त्तव्य भेद और अधिकार भेदके कारण वह तीन संस्थाओंमें विभक्त हो गई। जब तक सभी अधिकार एक ही संस्थाके हाथमें रहे तब तक उनका भेद अस्पष्ट बना रहा। परन्तु जब यह अधिकार ग्राममंडलके विभागोंमें विभक्त किये गये तब यह भेद दृश्यमान हो गये। वास्तवमें यह अधिकार और तत्प्रयुक्त विभाग एक ही ग्राममंडलके तीन भिन्न भिन्न अवयव हैं। कामके सुभीतेके लिए ग्राममंडल तीन समितियोंमें विभक्त किया गया और प्रत्येक समितिको एक एक कार्य सौंपा गया। यह कार्य थे—भूमि स्वामित्व, व्यवस्थाधिकार और न्यायाधिकार। अर्थात् गाँवकी जमीन ( village-land ) का स्वामित्व, आभ्यन्तर व्यवस्था रखनेका पूर्व अधिकार और ग्राम मंडलकी हदमें होनेवाले झगड़े निबटाना एवं अपराधियोंको योग्य शिक्षा देनेका अधिकार उन्हें दे दिये गये।

व्यवस्थाधिकार

प्राचीन व्यवस्था बन्द होनेके पहले पटेल और पटवारी ही न्याय करते थे या अपनी ओरसे पंच मुकर्रर कर देते थे। पंचायत नामकी किसी स्वतंत्र संस्थाका अस्तित्व न था। झगड़े निबटाने के लिए इकट्ठे होनेवाले लोगोंको नहीं, वरन् गांवके निवासियोंकी सभाको ही पंचायत नाम दिया गया था। ॲंगरेज़ी 'फोकमोट,' स्विस 'कम्यून,' रशियन 'मीर,' हंगेरियन 'सिब्जा' और हिन्दू 'पंचायत' यह सब जनसंघ प्राचीन ग्रामसंस्थाके रूपान्तर ही हैं। प्रारंभमें, ग्राम-भृत्यकी नियुक्ति करना और उनके कार्य पर देख रेख करनेका काम ही ग्राम पंचायतके सिपुर्द था। परन्तु धीरे धीरे पटेल और पटवारीने यह अधिकार हथिया लिये और तब ग्रामसंस्था नाम शेष हो गई।

यहां पंचायत शब्दकी उत्पत्ति पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

मेगस्थनीज़ने अपने प्रवास वर्णनमें हिन्दू पंचायतोंका उल्लेख किया है। उसने पंचायतके लिये Pentads शब्दका उपयोग किया है। पंचायत शब्द पंच और आयतसे बना है। सर हेनरी मेनका मत है कि प्रारंभमें इस सभामें पांच ही सभ्य रहा करते थे, इसीसे यह नाम दिया गया था। किन्तु यह उनका भ्रम है। भारतवर्षमें आज भी विकृत रूपमें पंचायतका अस्तित्व पाया जाता है। हमारे मतसे तो पंचायतमें पांचसे अधिक सभ्य ही रहा करते थे। संभव है, प्रारंभमें जब गांव छोटा रहा हो, पंचायतके सदस्य भी कम रहे होंगे। किन्तु ज्यों ज्यों गाँवकी लोक संख्या बढ़ती गई, पंचायतके सदस्योंकी संख्या भी बढ़ती गई होगी।

प्राचीन कालमें प्रत्येक गाँवमें वतनदार होते थे। पाणिनीके ज़मानेमें यह वतनदार थे। पाणिनीके 'ग्रामः शिल्पिनी' सूत्रसे पाया जाता है कि उस जमानेमें नाई और सुनार गाँवके वतनदारोंमें शामिल थे। इससे भी अच्छा प्रमाण पातंजल भाष्यमें है। 'एच इग्घ्रस्वादेशे' सूत्रके भाष्यमें उदाहरणके लिए पंचकारुकी शब्दका उल्लेख किया गया है। नागोजी भट्टने अपने विवरण ग्रन्थमें उसीकी

"वास्तव्यः कर्तरितव्यान्तः कुलालकर्मारवर्धकि नापितरजकः पंचकारु की" व्याख्या की है। अर्थात् जिस गाँवमें कुम्हार, लोहार, सुनार, नाई और धोबी-यह पांच रहते हों उसे ही पंचकारुकी कहते हैं। इससे यह न समझना चाहिये कि उस गाँवमें इनके सिवा दूसरे लोग न रहते हों। इसका मतलब यही है कि यह पाँच कारीगर मुख्य ग्रामस्थ हों। अमरकोषके रामाश्रमी टीकाकारने "तक्षा च तन्तु वायश्च नापितो रजकस्तथा, पंचमश्चर्मकारश्चकारवः शिल्पिनोमतः" (कारुकी पंचक)। उक्त विवेचन परसे यही सिद्ध होता है कि पंचायत और पंचकारुकी एक ही हैं। यही पाँच कारीगर मुख्य वतनदार (ग्राम्य भृत्य) हैं। मद्रासकी पांचाल नामक जातिमें भी उक्त ग्राम्य भृत्य शामिल हैं।

पंचायत वादी प्रतिवादीके झगड़े मिटानेवाली सभा ही नहीं थी, वरन् सब ग्रामवासियोंकी सभा या गाँवकी व्यवस्था रखनेके लिए चुने हुए नियमित अधिवासियोंकी सभा भी थी। इंगलैंडकी पार्लमेंट, सेक्सन लोगोंकी 'व्हिलेजमोट' और भारत वर्षकी ग्राम पंचायत सहोदर भगिनियां हैं।

( असमाप्त )

---

# बाईसवीं शताब्दीमें वैज्ञानिक चमत्कार

[ ले०—प्रो० माधोलाल जायसवाल, एम. एस-सी. ]

कल मैं विज्ञानकी "वृद्धि और उसका इतिहास" पढ़ता पढ़ता यह विचार कर रहा था कि विज्ञानका अंत कहां होगा। यह सोचते विचारते मुझे नींद आगई तो क्या देखता हूं कि पैनसिलवेनिया निवासी विद्वान् आस्टिन एडवनने विज्ञान देवीका जिस प्रकार चित्र खींचा है साक्षात् वैसी देवी मेरे सामने खड़ी है। देवीके एक हाथमें उल्लू है और दूसरेमें विद्युत्शक्ति। देवीका शरीर एक काली साड़ीसे विभूषित है और देवीके पैरोंमें एक सर्प लिपटा है। देवी घूंघट काढ़े खड़ी है। देवीके पास गढ़ी हुई एक पताका पर यह वाक्य लिखे हैं "जो है, जो होगा और जो होनेवाला है मैं उसका स्वरूप हूं; मेरा घूंघट किसीने नहीं खोला है"।

यह वाक्य पढ़ कर मैं सोचने लगा कि इस घूंघटमें क्या रहस्य छिपा है? क्या जबरदस्ती कोई घूंघट नहीं खोल सकता? बड़े बड़े विज्ञानी फैरेडे आदि तो इससे बहुत प्रेम करते थे; क्या उन्होंने कभी इसके घूंघट खोलनेका प्रयत्न नहीं किया। दुनियामें तो बड़े बड़े प्रेमी पड़े हैं, जो अपनी प्रेमपात्रियों के लिए जान तक दे देते हैं। क्या इस देवीका कोई भी प्रेमी ऐसा नहीं हुआ जो पिसतौल लेकर इसके सामने खड़ा हो जाता और कहता कि या तो अपना घूंघट खोलकर अपने दर्शन दो, नहीं तो मैं गोली मार कर मर जाऊंगा। यदि यहां तक नौबत पहुँचती तो जरूर इसको दया आजाती और अवश्य घूँघट खोलकर दर्शन देती।

मैं फिर सोचने लगा कि उसमें क्या हो सकता है? एक खूबसूरत सा चेहरा? यही सोच रहा था कि मुझे कृष्ण की एक बाललीला याद आ गई। एक बार बाल्यावस्थामें कृष्ण मिट्टी खा रहे थे। यशोदा माताको आते देख उन्होंने मुंह बन्द कर लिया। यशोदाने पूछा, "कन्हैया! तूने मिट्टी खाई है।" कृष्णने कहा "नहीं"। जब यशोदाने मुंह खोलनेके लिए कहा तब उन्होंने मुंह खोल कर दिखला दिया कि उसमें सब लोक बस रहे हैं। इस घटनाके याद आते ही मैंने समझा कि शायद घूंघट उठाते ही एक बड़ी भारी लेबोरेटरी दृष्टिगोचर होगी, उसमें हज़ारों वैज्ञानिक खोजमें लगे होंगे। यही सोच रहा था कि देवी मेरी

नजरोंसे गायब होगई । फिर मैंने देखा कि कोई मुझे जगा रहा है । कानमें आवाज आई, "विज्ञान प्रेमी उठ बाइसवीं शताब्दी का तमाशा देखना चाहता है तो मेरे साथ चल" ।

आंख मलते मलते मैंने देखा कि एक आदमी खड़ा है । उसने कहा, "चलो मैं तुम्हें एक तमाशा दिखाऊँगा ।" मैं चुपचाप उनके साथ हो लिया। थोड़ी देरमें हम एक विशाल मन्दिरके सामने जा पहुँचे । सदर फाटक बन्द था; परन्तु ज्यों ही हमने दरवाज़ेके सामनेके पत्थर पर पांव रखा; फाटक खुल गया और एक मूर्तिने आगे बढ़कर हाथ बढ़ाया । मैं तो यह हालत देख कर समझा कि यह भी चन्द्रकान्ताका तिलिस्म है और ज़रूर यह हाथ बढ़ाकर हम दोनोंको जन्म भरके लिए न जाने किस अंधेरी कोठरीमें डाल देगी; परन्तु उसके हाथमें एक कार्ड था, जिस पर लिखा था "आपका शुभ नाम क्या है ।" मेरे साथीने अपनी जेबसे एक विज़िटिङ्ग कार्ड निकाल कर उस मूर्तिके हाथमें दे दिया । कार्ड लेकर मूर्तिने अपनी जेबमें डाल लिया, मैंने अपने साथीसे पूछा कि यह क्या ? उसने जवाब दिया नौकर नहीं मिलते, इसीलिए इस मूर्तिसे दरबानका काम लिया जाता है । जो कार्ड इस मूर्तिने मेरे हाथसे लेकर जेबमें रखा है वह इस गृहके स्वामीके पास पहुँच गया होगा, अभी जवाब आता होगा ।" वह इतना कह ही रहे थे कि मूर्तिने जेबसे हाथ निकाला और वही कार्ड आगे बढ़ा दिया । उस पर लिखा था "स्वागत, अंदर पधारिये" । यह पढ़कर मैं और वह आगे बढ़े तो देखा कि बाग तो चारों ओर बड़ा अच्छा लगा था परन्तु माली कोई नहीं था । मैंने अपने साथीसे पूछा कि माली की भी ज़रूरत नहीं पड़ती। उन्होंने कहा कि मालीका काम भी विद्युत्-शक्ति से लिया जाता है । बटन दबानेकी देर है कि पानी बरसने लगता है । उससे चारों तरफ़ छिड़काव होजाता है और दरख्तोंकी सिंचाई भी हो जाती है । हम अन्दर पहुँचे तो एक सज्जन बड़े तपाकसे मिले और हम लोगोंको कुर्सियों पर बैठाया । हम बैठे ही थे कि चारों ओरसे ठंडी हवा आने लगी । मैंने चारों तरफ देखा, न कहीं पंखा था, न कोई खसकी टट्टी । उक्त सज्जनने एक छोटेसे यंत्रकी तरफ मुंह करके कहा, तीन "गिलास सोडा ।" इतना कहते ही हमारे तीनोंके बीचकी जमीन फटी और थोड़ी ही देरमें एक टेबिल, जिस-पर तीन गिलास सोडावाटर और बर्फके रखे थे, हमारे सामने आगई । हम लोगोंने सोडा पीकर अपने गिलास टेबिल पर रख दिये । टेबिल फिर वहांसे गायब हो गई ।

थोड़ी देर तक बात होनेके बाद भोजनका समय हुआ । दीवार पर लटकती हुई घड़ीने भोजनके समयका गान आरम्भ कर दिया । उक्त सज्जनने एक बटन दबाया; क्षण मात्रमें ही हमारे कमरेने रंग पलट दिया । बैठकने खानेके कमरेका रूपधारण कर लिया । यह कौतुक देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। भोजन करके हम लोग वहांसे चल दिये । मेरे साथीने कहा कि चलो बाजारकी सैर करा लायें । मैं चुपचाप उनके साथ हो लिया। थोड़ी दूर जानेपर विशाल भवन दिखाई दिया । उसे देखकर मैंने अपने साथीसे पूछा, यह क्या है ? उसने कहा कि यह अस्पताल है । इतनेमें एक मनुष्य एक मुर्देके साथ गाड़ी पर जाता दिखाई दिया, गाड़ी अपने आप चल रही थी । मैंने मुर्देके साथ केवल एक मनुष्यको देखकर अपने साथीसे पूछा कि क्या इस ज़मानेमें कृष्णजीका मृत्युका सिद्धान्त, जो उन्होंने गीतामें अर्जुनसे कहा है, लोग समझ गये हैं, जो इसकी मृत्यु पर किसीको शोक नहीं होता ।

मेरे साथीने कहा कि यह बात नहीं है । इसको अस्पतालमें ले जा रहे हैं । मैंने पूछा—"क्या इस लाशकी चीरा फाड़ी होगी, क्या यह अकालमृत्युसे मरा है ?"

मेरे साथीने कहा, "नहीं ! नहीं ! अब तो कोई मरता ही नहीं है; इसको भी जिन्दा कर देंगे।" मैंने कहा, "यह तो मैं भी देखना चाहता हूं कि मुर्दा क्योंकर जिन्दा हो जाता है।" मेरा साथी मुझे अन्दर लेगया। वहां जाकर जो देखा बाजीगरके तमाशेसे भी अधिक आश्चर्यजनक था। वहां पर कई लाशें कपड़ेसे ढकी रखी थीं। डाक्टर हाथमें एक शीशी और सुई लेकर आया; सुईको शीशीमें डुबोकर मुर्देके ऊपरसे चादर हटाई, नब्ज देखी, पांव देखे, छातीपर हाथ रखा, फिर फौरन छातीमें सुई गुबो दी। सुई गुबाना था कि मुर्दा एकदम उठ बैठा और डाक्टर साहबको सलाम कर, चलता बना। इसी प्रकार कई मुर्दे उठ उठकर चल दिये। परन्तु एक चादर हटातेही मैंने देखा कि लाशका सर अलग है और धड़ अलग। यह देखकर डाक्टरने लाशवालेसे पूछा कि कितने दिन हुये कि इसका सिर अलग हुआ है? उसने कहा कि दो दिन ही हुए हैं। यह सुनकर डाक्टर साहब चले गये और दो तीन बोतल लेकर लौट आये। एक बोतल खोलकर गले और सरमें कुछ दवा लगाई और सिर उठाकर गले पर ठीकसे जमा दिया। फिर जेबसे एक कुछ सफेद गोलासा निकालकर गलेके चारों तरफ फेर दिया। मैंने अपने साथीसे पूछा कि क्या यह बटुककी खोपड़ी सेई हुई है? मैंने बाज़ीगरोंको देखा है कि जब कभी वह कोई चीज दूसरेके पास पहुँचाना चाहते हैं तो ऐसी ही खोपड़ी निकालते हैं और उसीके द्वारा चीज पहुँचा देते हैं। उसीको याद मुझे आ गयो। मेरे साथीने कहा "नहीं, यह तो सीनेकी मशीन है। सिर धड़के साथ सीं दिया गया।" हम लोग यह बातें कर रहे थे कि डाक्टरने दूसरी बोतलकी दवा निकालकर मुर्देके सारे शरीर पर मलदी। दवाके मलतेही लाशका अंग अंग जो पत्थरकी तरह कड़ा होगया था नरम हो गया। इसके बाद डाक्टरने उसमें भी दो तीन जगह सुई गुबो दी। वह भी उठ बैठा और अपने साथीके साथ चल दिया। यह विचित्र लीला देखकर मैंने अपने साथीसे कहा, "क्या हम लोग कैलाशपर आगये हैं। यह डाक्टर तो साक्षात् शिव प्रतीत होते हैं। मैंने पढ़ा है कि अक्सर मुर्दा पड़ा देख पार्वतीजी शिवजीसे हठ करती थीं कि महाराज इसे तो जिलाही दो; उनका हठ पूरा करनेके लिए शिवजी धड़से सिर मिलाकर अमृत छिड़क देते थे और वह मुर्दा उठ बैठता था।" मेरे साथीने कहा "यह कार्य्य जो आजकल देवताओंके समझे जाते हैं और जिनको कम विज्ञान जाननेवाले पुराणों के ढकोसले कहा करते हैं, वही काम २२ वीं शताब्दीमें मनुष्य किया करेंगे और देवता कुछ और आश्चर्यजनक कार्य करने लगेंगे।"

यह बात करते करते हम उस अस्पतालसे निकले तो सामने दूसरा मकान नज़र आया। मैंने अपने साथीसे पूछा कि यह क्या है? उन्होंने कहा "यहां सोना बनता है।" मैंने पूछा "क्या सोना साफ किया जाता है?" उन्होंने जवाब दिया, "नहीं, बनाया जाता है। चलो बाजारकी सैर कर आवें फिर तुम्हें यहांकी भी सैर करावेंगे।" हम लोग बाज़ारमें पहुँचे तो देखा कि बिल्कुल सुनसान था; दुकानदार तो सब काममें लगे थे, पर खरीदार कोई नहीं था। मैंने जो कपड़ोंकी दूकान पर नजर डाली तो देखा कि वह कपड़े फाड़ फाड़ कर, कागजमें लपेट कर और बिल उसीके ऊपर लगा लगा कर ढेर लगा रहे हैं। वह कभी कभी अपने आप बातें भी करने लगते हैं। यह विचित्र लीला देखकर मैंने अपने साथीसे पूछा, "यह लोग क्या कर रहे हैं। मैं किसी खरीदारको बाजारमें नहीं देखता। इसका क्या कारण है।" मेरे साथीने कहा, "टेलीफोनसे आर्डर आजाता है। आर्डरकी चीजें बिलके साथ हरएकके घर पर पहुंच जाती हैं।" इसी प्रकार बातें करते करते हम लोग लौटकर जहां सोना बनता था वहां आपहुँचे। अंदर पहुँचनेपर एक स्त्रीसे भेंट हुई। मेरे साथीने मेरा परिचय देते

हुए उस स्त्रीसे कहा, "यह दो शताब्दी पीछे हैं; अभी २० वीं शताब्दीमें ही हैं। इन्हें विश्वास नहीं होता कि लोहा भी सोना बन सकता है।"

स्त्रीने हंसकर मेरा हाथ पकड़ा और कहा, "आइये मैं आपको लोहेका सोना बनाकर दिखलाऊंगी।" मेरे साथी वहीं रह गये। मैं पहले तो अकेला उसके साथ हो लिया; पर जब दो एक विशाल कमरे तय कर चुका तो मुझे डर हुआ कि यदि यह स्त्री जादूसे मुझे तोता बनाकर पिंजरेमें बंदकर लेगी तो मैं क्या करूंगा। यह विचार आते ही मैं एकदम ठहर गया और इधर उधर भागनेकी राह देखने लगा। सहसा मेरी नजर एक बड़े आईनेपर पड़ी। मुझे खयाल आया कि ईश्वरकी दयासे मैं ऐसा खूबसूरत नहीं हूं कि जो वह मुझे क़ैद करले। मैं यही सोच रहा था कि उस स्त्रीने पूछा, "क्या सोच रहे हो।" मैंने उत्तर दिया, "कुछ नहीं" और फिर उसके साथ तीसरे कमरेमें गया। वहां कई शीशियां रखी थीं। उस स्त्रीने एक लोहेका टुकड़ा उठाया और एक कांच की नलीमें रख कर, दो चार शीशियोंमेंसे थोड़ा थोड़ा अर्क डाला, फिर एक शीशीमेंसे एक बुकनी डाली, सबको हिलाकर गरम किया, गरम करते ही लोहेका टुकड़ा सोनेके रंगका हो गया। उसे निकालकर उस स्त्रीने मेरे हाथ पर रख दिया। मैंने कहा इसके ऊपर तो सोनेका पानी चढ़ गया है। स्त्रीने फौरन एक छेनी निकालकर उस लोहेके टुकड़ेको बीचमें से काट दिया। मैंने देखा कि वह भीतर से भी पीला था। मैंने फिर कहा, "रंग सोनेका है पर सोना नहीं बना।" स्त्रीने हंसकर मुझसे पूछा, "सोनेको कैसे पहिचानोगे"। मैंने उत्तर दिया, "विशिष्ट गुरुत्व जांच कर।" उसने मुझे तौलकर दिखला दिया कि विशिष्ट गुरुत्व भी सोनेके बराबर है। मैं अवाक् रह गया। मैंने उस स्त्रीसे पूछा, "यह क्योंकर बना?" उसने कहा, "आगे चलो; मैं तुम्हें बताऊँगी।" मैं उसके साथ दूसरे कमरेमें पहुंचकर एक कुर्सी पर बैठगया। वह स्त्री भी मेरे सामने बैठ गई। उसने कहा कि आप शर्बत पी लीजिये; फिर मैं आपको सोना बनानेकी विधि बताऊंगी। मैंने शर्बतका गिलास मुंहसे लगाया ही था कि नौकरने हिलाकर कहा, "बाबूजी, सात बज गये; क्या उठेंगे नहीं?" मेरी नींद खुल गई। देखा तो वहीं अपने कमरेमें पलंग पर पड़ा हूं। नौकर पर बहुत गुस्सा आया। मैंने डांट कर कहा "बेवकूफ! पांच मिनट ठहर जाता तो मैं आज माला माल हो जाता।" वह विचारा मेरी बातका अर्थ तो नहीं समझा, परंतु यह समझ गया कि मैं नाराज हो गया हूं। वह फौरन कान दबा कर कमरेसे भाग गया। मैंने बहुतेरी आंखें मींची परंतु वह स्वप्न नजर नहीं आया। मैं अपनी किस्मत पर पछताता रह गया।

---

## प्रवाहिका ( पेचिश )

यद्यपि यह एक साधारण रोग है और अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों ( चरक तथा बुकरात ) में भी इसका सविस्तर वर्णन दिया हुआ है तथापि इसका ठीक ठीक निदान पिछले २५ साल में ही मालूम हुआ है।

लक्षण

इसका साधारण नाम 'मरोड़' वा पेचिश बड़ा सार्थक है। इसमें रोगीको बारम्बार मरोड़के साथ थोड़ा थोड़ा दस्त आता है, और मलके स्थानमें "आँव" ( आँतोंका बलगम ) आता है। आँवका रङ्ग सफ़ेद, ख़ाकी, ज़र्द वा खून मिले रहनेके कारण सुर्ख भी होता है। अन्य मलादिके साथ मिश्रित होनेके कारण वह कई रंगका भी हो सकता है। किसी किसी दशामें खूनका परिमाण इतना अधिक हो जाता है कि सारा मल निरा खून मालूम होता है। अन्य दशाओंमें हैज़ेकी तरह जलीयस्नैहिक (Serous) मल भी निकलता

है। यही कारण है कि महर्षि चरकने प्रवाहिका (पेचिश) को अतिसार ( दस्तों ) के अन्तर्गत रखा है, और इसके भिन्न भिन्न रूपोंको 'वातज' 'पित्तज' 'कफ़ज' वा 'सान्निपातिक' बताया है।

इसमें दो प्रकारका 'मरोड़' होता है, एक वह जो नाभिसे उठकर बृहदन्त्रके मार्गोंमें शूलकी तरह दौड़ता है (Tormina) और दूसरा गुदाके स्थान में भिंचावट ( Tenes mus ) के साथ दर्द होता है, जिससे कि रोगी इच्छानुसार मलत्याग नहीं कर सकता। गुदामें दर्दके साथ भारीपन भी मालूम होता है।

निदान

यद्यपि उपर्युक्त लक्षण अन्य कई दशाओंमें उत्पन्न हो सकते हैं; जैसे संखिया, जमालगोटा आदि प्रदाहक पदार्थोंके सेवनसे—यहां तक कि सुअरके बाल सरीखे निष्क्रिय, परन्तु चुभनेवाले पदार्थको खानेसे भी पैदा हो सकता है—तथापि इसके प्रधान कारण आँतोंके अन्दर विशेष प्रकारके जीवित कीटाणुओंका पैदा हो जाना है। यों तो सं० १६०६ वि० में भी एक वैज्ञानिक ( Lamb ) को प्रवाहिकाका कीटाणु मिला था; तथापि सं० १६३२ में जाकर इसका सविस्तर वर्णन एक और वैज्ञानिक ( Losch ) ने प्रकाशित किया। इतना ही नहीं उसने इन कीटाणुओंके द्वारा अन्य जन्तुओंमें पेचिश पैदा करके इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण दे दिया कि यही कीटाणु प्रवाहिकाका मुख्य कारण है। इस पर भी सब वैज्ञानिकोंको पूर्णतया विश्वास न हुआ; क्योंकि कितने ही रोगियोंके मलमें जिनको निस्सन्देह पेचिश थी यह कीटाणु न मिल सका। इसका समाधान १६५५ वि०में जाकर जापानी वैज्ञानिक शीगा ( Shiga ) ने इस तरहसे किया, कि एक प्रकारका बहुव्यापक और सांघातिक प्रवाहिकाका कारण उपर्युक्त कीटाणु नहीं है बल्कि एक "उद्भिज्जाणु" (Bacterium) है। फिर तो सारे विद्वत् जगत्में उसका समर्थन होने लगा, और उसके बाद नये नये प्रकारके प्रवाहिका पैदा करनेवाले उद्भिज्जाणु आविष्कृत हुये।

सारांश यह कि प्रवाहिका रोगके दो बड़े बड़े भेद हुये, एक कीटाणु जनित और दूसरा उद्भिज्जाणु जनित। दोनोंके लक्षण तथा आक्रमण प्रदेशोंमें कुछ भेद रहने पर भी साधारण लोगोंके लिए उनका पहिचानना बहुत कठिन है। तथापि केवल इतना याद रखना चाहिये कि उद्भिज्जाणु जनित रोग अधिक सांघातिक और बहु व्यापक होनेके कारण फौज वा जेलखाना आदिमें फैल कर भारी रूप धारण कर चुका है। इसमें मलके साथ अधिक रक्त वा स्नैहिक तरल निकलता है और जीवाणु जनित विष से हृत्पिड-की शिथिलता होने से रोगी विसूचिका ( हैजे )की दशामें आकर बहुधा मर भी जाते हैं। इसमें रोगके आक्रमणके साथ ज्वर भी होता है और रोगान्तमें जीवाणुजनित विषसे जोड़ोंका दर्द और भिन्न भिन्न अंगोंमें नाड़ीय प्रदाह (न्यूराइटिस) होकर पैशिक शोष (muscular atrophy) भी हो जाता है। यही इसके उपद्रव हैं। यह एक तीव्र रोग है, और प्रायः दो सप्ताहमें ही समाप्त हो जाता है।

कीटाणु जनित प्रवाहिका जो कि इस देशमें साधारणतया होती रहती है, यद्यपि ऐसी हलकी बीमारी है कि दो चार दिनमें बिना चिकित्साके ही जाती रहती है, तथापि इससे उपेक्षा न करनी चाहिये; कारण कि इसके कीटाणु गिलाफदार बन कर अनेक काल तक आंतोंमें रह सकते हैं और बारम्बार रोग उत्पादन कर सकते हैं। इसी गिलाफदार दशामें वह एक मनुष्यसे दूसरेमें पहुँच कर रोगोत्पादन करते हैं। इसके अतिरिक्त इस रोगके भी उपद्रव बड़े भयानक हैं। साधारणतः यह कीटाणु यकृत 'जिगर' में पहुँचकर फोड़ा बनाते हैं जो कि एक साङ्घातिक रोग है। कभी कभी जिगरमेंसे कीटाणु निकल कर दिमाग तथा शरीरके अन्य भागोंमें पहुंच जाते हैं और फोड़े बना देते हैं। जब कभी आँतोंके जख्म फूट जाते हैं तो भारी उपद्रव

होता है। यद्यपि यह उपद्रव भारतवर्ष में कम होते हैं तथापि जिगरका फोड़ा आज कल प्रायः देखनेमें आता है। इसका कारण साधारण प्रवाहिकाकी उपेक्षा तथा फिरङ्गियोंकी तरह मद्य माँसादि का सेवन मालूम होता है।

प्रतिषेध

दोनों प्रकारकी प्रवाहिकाके बीज मलद्वारा परित्यक्त होते रहते हैं। अतएव यह रोग मक्खियों-के द्वारा फैलाये जाते हैं। रोगी वा उपचारकके हाथसे भी रोग फैलते हैं; विशेष कर जब वह औरोंके लिए भोजनादिके बनानेका काम करते हैं। अतएव माताके हाथोंसे एक बच्चेकी बीमारी औरोंमें भी फैल सकती है। इसलिए शौचादि वा मैले कपड़ोंको धोनेके अनन्तर हाथोंको खूब साबुन और पानीसे धोना चाहिये, और उसके बाद थोड़ी देर तक कोई जीवाणुनाशक पदार्थ यथा "लाइसोल" के ढाई प्रतिशत घोलमें डुबो रखना चाहिये। सने हुये कपड़ोंको भी लाइसोल आदिके घोलमें डबोने के बाद साबुन पानीसे छाँटना चाहिये; परन्तु यह क्रिया कदाचित् कुओंके पास वा तालाबके अन्दर न करनी चाहिये, जैसा कि लोग अक्सर गाँवोंमें करते हैं। कमोड (अंग्रेजी चौकी) के द्वारा भी यह रोग लग सकता है।

हैजा तथा टाइफोयडकी तरह पेचिशके रोग बीज भी अच्छे हो जानेके बहुत दिन पीछे तक रोगीके आँतों से निकलते रहते हैं। ऐसे लोग 'वाहक' कहलाते हैं। अतएव इन वाहकोंको यथा सम्भव खान पान बनानेके कार्योंसे अलग रखना चाहिये। और सबको शौचादिके नियम पर ध्यान देना चाहिये।

चिकित्सा

रोगीको आरामसे लिटाये रखना चाहिये, यहां तक कि शौचादिके लिए भी न उठे और ठण्डक से बचे। पेट पर एक हलका ऊनी कपड़ा डाले रखे। रोगके प्रारम्भमें ही एक मृदुसारक (मुलयन) देना चाहिये, जिसके कुछ नुसखे यहाँ दिये जाते हैं:—

(१) शुद्ध अरण्डीका तैल २॥ अढ़ाई तोला वा एक औंस

सैलोल (एक जीवाणु नाशक पदार्थ) २ माशे वा ३० ग्रेन।

दारचीनीका तेल (सुगन्धिके लिए) ६ बून्द वा ४ चार मिनिम।

अफ़ीमका टिञ्चर (दर्दके लिए) ३० बून्द वा २० मिनिम*।

चूर्ण गोंद कतीरा २ माशे वा ३० ग्रेन।

अथवा गोंद बबूल १ तोला वा ३ ड्राम।

सफेद चीनी वा शर्बत २॥ तोले वा एक औंस।

जल विशुद्ध; (सब मिलाकर) ३ छटांक वा ६ औंस

इनको मिलाकर घोट कर इमलशन (दूधिया मिश्रण) बना लिया जाय; जिसमेंसे छठा भाग तीन तीन या चार चार घण्टेके अनन्तर दिन भर-में तीन या चार दफे दिया जाय।

उपर्युक्त अरण्डीका तेल न केवल सारक है, बल्कि अपनी 'स्निग्धताके कारण आंतोंके प्रदाह-को दूर करता है; अफीम दर्दको हटानेके लिए है; जो आवश्यकतानुसार घटायी बढ़ायी जा सकती है; सैलोल जीवाणु नाशक होनेके कारण आंतोंकी शुद्धि करता है; और कुछ ज्वरको भी घटाता है, जो कभी कभी पेचिशमें भी हो जाता है। याद रखना चाहिये कि बच्चे अफीम बरदाश्त नहीं कर सकते। उनको इसके स्थानमें टिंचर कैनेबिस इन्डिका Tr. Cannabis Indica (अर्थात भङ्ग का टिंचर) उसी मात्रामें दिया जा सकता है; परन्तु मिश्रणकी मात्राको अवस्थानुसार घटाना होगा। अफीम और भांगके योगकी जगह 'क्लोरो-डीन' का भी व्यवहार हो सकता है। जिसमें दोनों शामिल हैं। इसीका हैजेकी प्रथम दशामें व्यवहार किया जा सकता है।

(२) उपर्युक्त जटिल योगके स्थानमें केवल ईसपगोलके बीज (बीन कर और साफ करके)

*नोट 'बून्द' और मिनिम बराबर नहीं होते।

छः से नौ माशे तक एक दफेमें आधी छटांक वा पर्याप्त दहीके साथ मिलाकर वा चीनी मिलाकर पानीके साथ खा लिये जायँ। बीज मृदु सारक हैं और उनका लुआब 'पिच्छलताके' कारण आंतोंके प्रदाहको शमन करता है।

( ३ ) बेलगिरी ( कच्ची सूखी ) दो माशे और सोंठ आधा माशा कूट कर कपड़छन करके मीठे दूध वा पानीके साथ दिनमें दो तीन बार खा सकते हैं, अथवा इसीका क्वाथ बनाकर मीठा मिलाकर पी सकते हैं।

( ४ ) पुरानी पेचिशमें कुरची ( कूड़े ) की छः माशे छाल आध पाव वा तीन छटांक उबलते पानीमें चाहदानीके अन्दर रखकर कई घंटे अर्थात् रात-भर गरम स्थानपर रख दीजिये। प्रातः इसको छान कर दिन भरमें कई बार करके पी लीजिये।

( ५ ) इन्द्रजौ और सौंफकी गिरी कच्ची पक्की भून कर रख लें और छः छः माशे चीनी मिला कर दिन भरमें दो तीन बार जलके साथ सेवन करें।

उपर्युक्त ओषधियोंको घरेलू ओषधि कह सकते हैं। इसकी विशेष ओषधियां भी जानने योग्य हैं।

( १ ) इपिकैकक्यूएना

एक अमेरिकाकी बूटी है, जो अत्यन्त उपयोगी होनेपर तीव्र वमनकारक है। अतएव आजकल इसके वीर्य 'एमिटीन' का पिचकारी द्वारा, आधेसे एकग्रेनकी मात्रामें ( दिनमें एक बार ), दस दिन तक निरन्तर व्यवहार किया जाता है। एमेटीनका एक योग एमेटीन विसमथ अयोडाइड (Emotine Bismuth Iodide) है। इसकी एक ग्रनकी टिकिया दिनमें तीन बार दी जाती है। इस देशमें इपिकैक का प्रतिनिधि अर्कमूल वा अन्तमूल है। इसको एक माशेकी मात्रामें समान भाग टेनिक एसिड वा बहेड़ेके दुगने चूर्णमें मिलाकर ( जिससे वमन कारक प्रभाव घट जाता है ) दे सकते हैं।

( २ ) 'कज्जली' वा कृष्ण पारद गन्धिद ( Black sulphide of mercury ) भी एक निर्दोष जीवाणु नाशक पदार्थ है, जिसका कि आधे माशे तककी मात्रामें सेवन किया जा सकता है। पर-लोकवासी कलकत्ता निवासी डा० हेमचन्द्र सेनकी गवेषणाओंसे मालूम हुआ है कि यह एक अच्छा पित्त निःसारक भी है। अतएव संभवतः पित्तके द्वारा ही अंत्र शुद्धिमें सहायता करता है।

उद्भिज्जाणु जनित प्रवाहिकाकी चिकित्सा अभिज्ञ डाक्टरके निरीक्षणमें होनी चाहिये। इसमें लावणिक विरेचक तथा क्यैलोम्पल छोटी मात्रामें दिया जाता है ( क्यैलोम्पलके स्थानमें विशुद्ध रस कर्पूर, जो पानीमें न घुले, अथवा कज्जलीका व्यवहार हो सकता है )। यह रोग बड़ा सांघातिक होता है; इसलिए टीकेका इलाज भी लाभदायक है। कभी कभी दोनों रोग साथ साथ भी देखनेमें आये हैं। अतएव इस देशमें पहले पेचिशका इलाज इमेटीन द्वारा करना चाहिये और यदि तीन दिनमें कोई फल न दीखे तो उसको उद्भिज्ज जनित प्रवाहिका समझनी चाहिये।

—बी. के. मित्र, एल्. एम्. एस.

---

## एक पहिये की सैकिल

( यूनिसैकिल )

एक पहियेकी सैकिलके बनानेकी धुन ४० वर्ष पुरानी है। उस समय एक यूनी सैकिल लंदनमें नज़र आती थी, परन्तु बैसिकिल ही उस ज़मानेमें होश संभाल रही थी; इसीलिए यूनी-सैकिलकी तरफ जनताका ध्यान आकर्षित न हुआ। हाल में ही एक अमेरिकन प्रोफेसर क्रिस्टी (Prof. E. G. Christie) ने एक यूनी-सैकिल बना डाली है। कुछ वर्ष पहले आपने सोन्टि फिक अमेरिकनमें अपनी यूनी सैकिलके छोटेसे नमूने-का वर्णन लिखा था, पर अब आपने बड़ी यूनी-सैकिल बनानेमें सफलता प्राप्त की है, जिसकी परीक्षा अब अच्छी तरहसे होगी।

यह मशीन १४ फुट ऊंची है। आविष्कर्ताका कहना है कि २५० मील प्रति घण्टेकी गतिसे यह चल सकेगी। उसका भार ७०० पौण्ड अर्थात् लगभग ६ मन है। उसको सीधा रखनेके लिए दो जैरोस्कोप लगे हैं और चलानेके लिए २५० हौर्स पावर का एक इञ्जन। कैसा ही टेढ़ा मोड़ क्यों न हो इस यंत्रको जैरोस्कोपोंको घुमा कर आसानी से मोड़ सकेंगे।

---

# साँप और साँपके काटेका इलाज

१—विषय प्रवेश

जिन्होंने सर्पके काटनेसे कोई मृत्यु होते नहीं देखी वह उस समयकी दुरवस्थाका अनुमान भी नहीं कर सकते। खूब हट्टा कट्टा जवान भी एक क्षणमें ढीला पड़ जाता है। कुछ तो विषकी प्रबलता और कुछ काले नाग का भय, दोनों उस समय जीवनकी टिमटिमाती लौपर अपना बल दिखाते हैं। मनुष्य उस समय अपने जीवनकी बत्तीको शनैः शनैः बुझता हुआ अनुभव करता है। उसके गलेमें ऐंठन होने लगती है। गला घुटता सा मालूम होता है। उसे मालूम होने लगता है कि कुछ मिनटोंके बाद वह सांस भी न ले सकेगा। उसके मित्र, सम्बन्धी तथा जान पहचानके लोग भयसे व्याकुल होकर उसको घेर कर खड़े हो जाते हैं। वह अपनी संकट दशामें निराशा और कष्ट भरी दृष्टिसे उनको देखता है। आँखोंमें ललाई दौड़ने लगती है। क्षण क्षणमें आँख अधिकाधिक धुंधली होती जाती है। माथेपर पसीना फूटने लगता है। वह पानीकी हाय हाय मचाने लगता है। यदि पानी मिल जाता है तो तुरन्त गलेसे झाग और खांसी उठती है; गला घुट ही जाता है। शरीरपरसे पसीना छूटता है। ज्यों ज्यों सांस लेनेमें कठिनता होती है त्यों त्यों मूर्छा भी उस पर अपना वश जमाती है। उसके देह पर भी नीलापन छाने लगता है और प्राणान्तके समयकी हिचकियां आने लगती हैं।

कुछ दशाओंमें शरीरमें कई स्थानोंपर सूजन होने लगती है। मुखमें जीभ ही इतनी फूल जाती है कि वह मुखमें समा नहीं सकती और गला घुट जाता है। गाल इतने फूल जाते हैं कि आखें उन्हीं-में छिप जाती हैं। कभी पेट इतना फूल जाता है, मानों जलोदर अपनी अन्तिम दशा तक पहुँच गया हो। अन्तमें, कोई एक घण्टेके बाद ही, खूब हृष्ट पुष्ट युवा पुरुषकी भी केवल लाश पड़ी रह जाती है।

सांप काटनेकी घटनाएं प्रायः रातके समय ही हुआ करती हैं। इसलिए प्रायः लोग सांप काटेके विशेष चिन्होंकी परीक्षा ठीक प्रकारसे नहीं करते। सांप काटेके चिन्होंकी परीक्षा करनेके निमित्त साधारण रूपको बढ़ा कर देखनेके लिए आतिशी शीशेका प्रयोग बड़ा अच्छा है। पहले छेदोंको खूब अच्छी प्रकार देखले फिर उन नाड़ियों-की परीक्षा करे जिनमें विषकी धारायें गयी हैं। यदि सांपके काटते ही पट्टी बांध ली गयी हो तो विषका ऊपर चढ़ना रुक सकता है। पट्टीके कारण बाधा पाकर विषकी धारा एकदम पीछे हटती है और फिर धक्का मारती है। यदि बन्धन कसा न हो तो बन्धन पार करके फिर चलने लगती है। यदि बन्धन कड़ा है तो भी धारा पीछे हटकर बार बार धक्के लगाती है। यह सब विषधाराकी गतियां आँखोंसे भी देखी जा सकती हैं।

पट्टी कसकर बांध लेने पर विषधारा पार नहीं जा सकती। विषधारा रुक कर बन्धे हुए स्थान-के पास ही फैलने लगती है और सारे अंगमें फैल कर उसे निश्चेतन कर देती है। यदि विषधारा बन्धनको पार कर ले तो वह बड़े वेगसे फिर

दौड़ती है और बहुत शीघ्र मार देती है। सांपके काटने पर अंग भारी मालूम पड़ता है। हाथ पैर हिलानेमें बहुत तकलीफ़ होती है। सांपके विषका प्रभाव ज्ञान तन्तुओं पर बहुत गहरा पड़ता है; प्राणी बहुत जल्दी मर जाता है। पहले ज्ञानतन्तु गल जाते हैं फिर शरीरके अन्दरके अंगोंकी गति रुकती है।

सांपके विषके अन्दर घुसते ही पांचो इन्द्रियां अपना काम करना छोड़ देती हैं। आँखें लाल हो जाती हैं और पुतलियां घुलने लगती हैं! सांपका काटा व्यक्ति नाकसे बोलने लगता है। मुखमें कोई स्वाद अनुभव नहीं करता। कान बहरे हो जाते हैं। सब शरीरसे ठण्डा चिपचिपा प्रस्वेद छूटने लगता है। और देहमें झटके या कपकपी उठने लगती है। कड़ैत या अन्य बिना फणके सांपके काटने पर देह सूज जाता है। कई दशाओंमें विशेष अंगोंमें सूजन होने लगती है। आदमीकी शकल बड़ी भद्दी और भयानक सी दीखने लगती है। कभी जीभ इतनी सूज जाती है कि वह मुखमें भी नहीं समा सकती। कभी गाल इतने सूजने लग जाते हैं कि आखें मिच जाती हैं। कभी देह पर काले नीले चकत्ते पड़ जाते हैं।

सरकारी रिपार्टोंके अनुसार प्रतिवर्ष भारतमें प्रायः २० हज़ार पुरुष सांपके काटेसे ही स्वर्ग पथके यात्री हो जाते हैं। सरकारने इस संकटसे बचनेका यही उपाय किया है कि सांपोंको मार कर उनका वंशोच्छेद किया जाय। शायद इसके लिए सरकारने दो आना प्रति सांप सांप मारनेका इनाम भी रखा है। पर सांप बहुत हैं और इनाम कुछ भी नहीं। इसके अतिरिक्त इस इनामके लिए मीलों ढूंढ़ने पर भी सांप पाना कठिन होगा। अस्तु! दूसरा उपाय सांप काटेका औषध उपचार ही है। सांपोंको मार कर सांपोंका पारपाना तो कठिन है। उसके काटेका उचित उपचार करलेना ही सांपसे बचनेका सबसे उत्तम उपाय है। भारतवर्षके संपेरे लोग सांपको सदा अपने साथ लिए रहते हैं। वह जहाँ कहीं भी हों सांपको पकड़नेके लिए सदा तैयार रहते हैं। सांपके बिलोंमें हाथ डालते उनको तनिक भी संकोच नहीं होता। जहरीले सांपको खिलाते समय भी उसे ऐसा साध लेते हैं मानों वह उनका नौकर हो। उसे ऐसे गलेमें डालते हैं जैसे गलेका हार हो। प्रियतमाका बाहुपाश इतना कोमल न होगा जितना सर्प-पाश। आखिर इस सांपका कोई रहस्यमय इलाज है तभी तो संपेरे सांपको अपनी बगलमें लिए रहते हैं

यह सब कुछ देखकर भी प्रायः यह प्रश्न हरेकके दिलमें उठते होंगेः—

१. सपेरे लोग ऐसे भयंकर जीवोंको इतना कैसे हिलालेते हैं?

२. क्या कभी इन संपेरोंको सांप नहीं काटते?

३. क्या उनके पास कोई जादू या मन्त्र होता है, जिसके बलपर वह सांपोंको वशमें करते हैं और उनके विषका शमन करते हैं।

इन तीनों प्रश्नोंका साधारणतः उत्तर यह है—

१—वह कभी सांपको काटनेका अवसर नहीं देते। यदि वह कभी काट भी लेता है तो वह या तो उसका विष शरीरसे उसी समय निकाल देते हैं या उसके विषको प्रतिविषसे शान्त करते हैं।

२—उनको सांप कभी काटता नहीं; यदि काट लेता है और प्रतीकार नहीं हो सकता तो वह मर जाते हैं।

३—उनको जादू, मन्त्र और किसी औषधमें पूरा विश्वास नहीं है। वह कहते हैं जब पांच मिनटमें ही ज़हर शरीरका काम तमाम कर देता है और औषध अधिक देरमें असर दिखाती है तो उसपर क्या विश्वास करें। तो भी इसमें संदेह नहीं कि सपेरोंका उपचार और औषध बहुत सरल सीधी और वैज्ञानिक आधार पर होती है। जो वाचक इस लेखको पूरा पढ़नेका कष्ट उठावेंगे उनको भारतीय विष-वैद्यों और संपेरों का रहस्य बहुत कुछ मालूम हो जायगा।

प्रायः कहा जाता है और सुना भी जाता है कि सांप काट लेने पर उस अंगका काट देना ही अच्छा है। जहां तक हो सके विषको रुधिरमें घुसने न दे। उसको पट्टियोंसे कस कर बांध दे और चाकूसे काटकर जहरीले खूनको निकाल दे। जैसा कालिदास ने भी कहा है—

त्याज्यो दुष्टः प्रियो ऽप्यासीद् अंगुलीवोरग क्षता ॥"

राजा दिलीप अपने प्रेमी पुरुषको भी दोषी जानकर उसे अपनेसे अलग इस प्रकार कर देता था, जिस प्रकार सांपको डसी हुई अंगुलीको चाकूसे काट कर अलग कर दिया जाता है।

शरीरके किसी अंगमें असाध्य रोग हो जानेपर शेष शरीरको बचानेके लिए डाक्टर प्रायः शस्त्र-क्रिया करते हैं। यह बायकाट, बहिष्कार और असहयोगका सिद्धान्त सांपकेकाटेका भी इलाज है। परन्तु यह सदा ही प्रयोगमें नहीं आ सकता। हाथ पांवकी अंगुलीमें सांप काट जानेपरतो यह उपचार कुछ लाभ दे देता है; परन्तु बीचके शरीरके भागपर काट लेनेपर आप क्या करेंगे? जब सांपने छातीपर चढ़ कर काट लिया तब क्या औषध कीजियेगा? यह समस्या बड़ी भारी है। विशाखदत्त ने इस प्रसंगमें क्या ही अच्छा लिखा है—

जानन्ति तन्त्रयुक्तिं ये मण्डलमभिलिखन्ति।
ये मन्त्ररक्षण पराः ते सर्पनराधिपावुपचरन्ति ॥

जो लोग तन्त्र (पोलिटिकल सायंस और वैद्यक) के बतलाये हुए योग (उपाय, सन्धि, विग्रह आदि और नुसखे) जानते हैं, जो मण्डल (पर राष्ट्रके मंत्रि आदि तथा मित्र राजाओं और जन्त्रों) का अभिलेख (फोड़ना और खेंचना आदि) करना जानते हैं और जो अपना मन्त्र (मन्त्रियोंकी सोची हुई स्कीम और रहस्य विद्या) की रक्षा करते हैं वही सांप और सरकार दोनोंको अपने खूब वशमें करते और उनका इलाज करते हैं। नहीं तो सांपोंसे और सरकारोंसे खेलना कोई सरल बात नहीं है। इनकी सेवा तक करना आफ़त है। कविने कहा "राजसेवा मनुष्याणां व्यालीवदनचुम्बनम्।" मनुष्योंका राजसेवा करना भी नागिनके मुख चुम्बन करनेके समान है। फलतः कहनेका तात्पर्य यह है कि राजा और सांप दोनोंका उपचार बड़ा ही कठिन है। तथापि केवल छेदन भेदन ही इसका पूरा उपचार नहीं बल्कि और भी कोई रहस्य है, जिसके आधारपर सर्प जीवी गारुड़िक विषवैद्य सर्पोंसे इतने निःशङ्क रहते हैं।

संपेरे लोग निःसंदेह सांपको वश करने तथा उसके काटेका इलाज करनेमें तो सिद्धहस्त होते हैं, परन्तु वह सांपके शरीरकी रचना तथा उसकी स्वाभाविक शारीरिक क्रियाओंसे बहुत अनभिज्ञ होते हैं। उनमेंसे बहुत कम ऐसे होते हैं जो निर्विष सांपों और सविष सांपोंकी विशेष पहचान कर सकें। कभी कभी वह लोग जो रात दिन सांपोंके पकड़ने और पालनेमें बिताते हैं वह भी इतनी भारी भूल और अज्ञानताका कार्य करते हैं, जिसकी सीमा नहीं। बहुत कम लोग सांपोंका पूरा हाल जानते हैं। कारण इसका यही है कि उन्होंने सर्पके व्यवसायको विज्ञानके रूपमें नहीं लिया है। वह सांपोंके रूप रंग और आचार व्यवहारोंपर भी विशेष ध्यान नहीं देते। वह सांपोंके शरीर सौन्दर्य पर भी विचार नहीं करते। वह तो व्यवसायी मात्र हैं। उनको अपने पेटके लिए जो हाथसे काम करना है उसमें सिद्धहस्त हैं। उनका इसीमें सन्तोष है कि उनके पास नाचूक औषध या जड़ी बूटी है।

सांप-पकड़ना

डाक्टर फ़ायरने सांपोंके विषयमें बड़ी खोज की है। आपने बड़े परिश्रमसे भारतवर्षके सांपोंका विवरण विस्तारसे लिखा है। आपने सांपोंको दो मुख्य भागोंमें बांटा है—एक सविष और दूसरे निर्विष—हमें इन विभागोंसे यहां विशेष प्रयोजन नहीं। हमारा समालोच्य विषय केवल सविष सर्प ही हैं। इनमें भी वह, जिनका विष कुछ क्षणोंमें ही मनुष्यों और चौपायोंका काम तमाम कर देता है। ऐसे सांपोंको संस्कृतमें 'कालनाग' 'भुजंग' 'आशी-

विष' आदि नाम दिये गये हैं। उनके भारतीय प्रचलित नाम 'गोखुरा' 'खुड़ीश' 'गोहुमा' आदि हैं। इनके भी बहुत से भेद हैं। इनके देह पर भिन्न भिन्न चिन्ह होते हैं, जिनसे इनकी पहचान होती है। यहांका फनियर खपरा सांप ( कोब्रा ) कई प्रकारका ( श्वेत, काला, पीला आदि ) होता है। प्रायः भारतवर्षमें यह सभी जगह पाया जाता है। पर्वत प्रान्तोंमें यह बहुत अधिक लम्बा होता है। वहां उसकी हत्या नहीं करते प्रत्युत देवता मान कर उसकी रक्षा करते, हैं। वहां सर्वसाधारणका विचार है कि सांप कभी बुढ़ापे या रोगसे नहीं मरते। उससे उतर कर दूसरे नम्बर पर "करैत" हैं। पंजाबमें इसे 'करैत' या 'कोनार' कहते हैं। इसे बंगालमें चित्ता कहते हैं। यह भी साक्षात् काल ही होता है। यह और सांपोंके समान मनुष्यसे डर कर भागता नहीं ,बल्कि मनुष्यके साथ रहना पसन्द करता है। संपेरोंका कथन है कि 'करैत' जातिके सांपोंमें विषकी दाढ़ें ( विषदंष्ट्रा ) नहीं होतीं, बल्कि उनके थूकमें विष होता है। वह केवल चाटते हैं। और इनका चाटा हुआ स्थान सूज जाता है। नहीं कहा-जा सकता कि उनके कथनमें कितना सत्य है।

काला करैत 'काल'कहाता है। यह अपनी जाति-में सबसे बड़ा होता है। यह प्रायः सभी जगह घरोंमें पाया जाता है। बिस्तरोंपर, घड़ोंमें, दीवारों, बिलोंमें और छतकी कड़ियोंमें और बिस्तरकी तहों तकमें यह सांप आकर छिप जाया करता है। प्रायः छप्परोंमेंसे टपक पड़ता है। यह मकानोंकी छतोंपर 'जा कर अपने अण्डे बच्चे दिया करता है।' यह नाग बहुत शान्त स्वभावका होता है। जब तक इसके शरीरपर आघात नहीं पहुँचता तब तक वह किसीको नहीं काटता। इसी कारण वह साहस पूर्वक सब स्थानों-पर घूमा करता है। मनुष्य भी उसपर विशेष ध्यान नहीं देते। बहुत बार रातको सोनेके बाद मनुष्य अपनेको इस 'करैत' सांपके साथ सोया हुआ पाता है। वह रात भर साथ सो कर भी नहीं काटता। ईश्वरका कृपामय हाथ सांपके सहवासमें भी मनुष्यकी रक्षा करता है। इसी जातिका एक जलका वासी होता है, जिसे 'पानी चित्ता' कहते हैं। वह प्रायः धानके खेतोंमें पाया जाता है। किसान उससे बहुत भयखाते हैं।

फणवाले सांप बहुत भयानक होते हैं; पर वह भी बिना कारण कभी नहीं काटते। सांपोंकी क्रूरताके विषयमें हम तब लिखेंगे, जब पटराज दूधराज, शंखचूड़ आदि महानागोंकी चरचा करेंगे। कैवट नाग भी बहुत बड़ा होता है, परन्तु उसके फण नहीं होता। वह गोखुरा नागकी जाति-से सर्वथा भिन्न होता है।

कैवट नाग (कैवर्त्त नाग)

यह बस्तीसे बहुत दूर प्रायः खेतों और दलदली स्थानोंपर रहता है। वह अपने साथ अन्य नागोंको रहने नहीं देता। वह गोखुराकी अपेक्षा पानीका भी अच्छा तैराक होता है। गोखुराका तो केवल जोड़ा एक साथ रहता है; परन्तु कैवट नागोंका झुण्डका झुण्ड इकट्ठा रहता है। काम-ऋतुमें गोखुरा और कैवट इकट्ठे भी रहने लगते हैं। उनके संकरसे अन्य नाग पैदा होते हैं। शंख-चूड़ या शंकरचूड़ नागपटराज और दूधराजके मेलसे पैदा होता है। इसमें संदेह नहीं कि ऋतु कालमें फणवाले सर्प बिना फणवालोंके साथ भी लग जाते हैं। उनसे सैकड़ों प्रकारकी नसलें पैदा हो जाती हैं। कैवट नागोंका वर्णन हम पृथक् करेंगे। उनका आचार व्यवहार बड़ा ही विस्मय जनक होता है।

नागोंमें सबसे अधिक विस्मयजनक नाग हेमा-द्रिजात है, जिसको बिगाड़ कर हमदरजाद कहते हैं। यह बड़ा ही भयानक तथा साक्षात् काल का अवतार होता है। फणियर खपरा नाग (Cobra) के समान ही इसका भी बहुत बड़ा फण होता है; पर शरीर भी बहुत बड़ा—लगभग १४, १५ फुट लम्बा—होता है। इनकी ज़हरकी दाढ़ें भी औरोंकी अपेक्षा अधिक लम्बी तथा बहुत ही भयानक होती

हैं। इन नागोंकी आदत भी बहुत बुरी होती है। वह बलमें भी मनुष्य और चौपायोंको अपने सामने कुछ नहीं समझते। यह जाति सुन्दरबन (बंगाल) में बहुत होती है। संपेरे वहांसे उनको पकड़ कर लाते हैं। उनका पकड़ कर लाना भी कोई दाल भातका गस्सा नहीं है।

वह खपरेके समान पकड़ाईमें नहीं आते। हेमाद्रिजातको पकड़नेके लिए तीन मनुष्योंकी आवश्यकता होती है। क्योंकि यह नाग इतना बलवान होता है कि एक आदमी इसका बलमें मुकाबिला नहीं करसकता। गला पकड़ लेने पर वह पूंछसे आक्रमण करता है। अपना सारा शरीर पकड़नेवालेके पैरोंमें लपेट देता है और इतने बलसे घोंटता है कि मनुष्य विवश होकर धरतीपर गिर पड़ता है। अधिक बल करनेसे तो हड्डियां तक कड़का देता है।

खपरा नाग जब गलेसे पकड़ लिया जाता है। तो वह बेबस हो जाता है। परन्तु हेमाद्रिजातकी यह दशा नहीं होती। उसकी गर्दनकी नस खपरेके समान नियत आकारकी तथा निश्चित नहीं होतीं बल्कि स्थितिस्थापक होती हैं। गर्दनपर पकड़ लेनेपर हेमाद्रिजात अपने पकड़नेवालोंका काट ही लेता है। इसलिए इसका मुख ही दबाना पड़ता है। यदि कुछ भी असावधानी हो जाय तो बस जीवनसे हाथ धोना ही पड़ता है। इसके पकड़नेके लिए बड़े धैर्य और चतुराईकी आवश्यकता होता है। यह नाग अपना फन धरतीसे कई फुट ऊपर उठाकर बिजलीकी तेज़ीसे काटनेको झपटता है। इसी बीचमें उसके फणको पकड़ना पड़ता है।

संपेरे लोग सुन्दर बनमें प्रायः जाड़ेके दिनोंमें इन नागोंको पकड़ने जाते हैं। वह गांवोंमें जा कर पूछते हैं तो उनको नागका पता मालूम हो जाता है। जाड़ेके दिनोंमें यह नाग आतप सेवनके लिए वृक्षों पर चढ़ जाता है। नागको वृक्षपर बैठा देखकर आसपासके पक्षिगण शोर मचाते हैं, उसपर ठूंगे लगाते हैं, उसको तंग करनेकी कोशिश करते हैं। वह उसको छेड़कर बहुत शोर मचाते हैं। अतः संपेरे तुरन्त जान जाते हैं कि वृक्षपर कोई नाग अवश्य है; या तो हेमाद्रिजात है या 'धमना है। वह तुरन्त वृक्षके पास पहुंचते हैं। पास पहुंचते ही नाग उनपर फुंसकारने लगता है। यदि नाग क्रोधमें आपेसे बाहर हो जाय तब तो अदम्य बलसे इन आगन्तुकोंपर सहसा आक्रमण कर बैठता है। यदि सपेरे उसकी फुसकारोंसे न डरें तो वह और भी क्रोधमें आकर ऊपरसे उनपर कूद पड़ता है। साधारणतः वह वहां ही लटका लटका अपना फण घुमाया करता है। ऐसी दशामें संपेरे एक लम्बा बांस लेकर उसकी शान्ति भङ्ग करते हैं और उसको तंग करके और क्रोध दिलाते हैं।

बस यह अपराध नागसे सहन नहीं होता। वह उछल कर तुरन्त शान्ति-भञ्जकोंपर कूद पड़ता है। ज्योंहीं वह धरती पर गिरता है त्योंही उन्हें काटनेको दौड़ता है। पर गिरने पर ही उसका आधा दम मारा जाता है। सरदीमें नागका दर्प योंहीं कम हो जाता है; फलतः उससे दौड़ा नहीं जाता। वर्षा ऋतुमें यह अदम्य होता है। उस समय इससे खेलना जान पर खेलना है।

ज्योंहीं नाग अपने शत्रुओं पर आक्रमण करनेके लिए झपटता है संपेरे सब एक कतारमें खड़े हो जाते हैं और उसकी चाल पर ताक लगाये रहते हैं। ज्यों ही साँप उनकी ओर बढ़ता है वह पीछे हटते हैं। जब सांप अपना फन मारनेके लिए उठाता है वह आगे नहीं बढ़ता उसकी गति रुक जाती है। उसकी आगेकी गति धीमी पड़ जाती है। संपेरे जान बूझ कर अपना बाँयां हाथ उसके फनकी तरफ़ बढ़ाते हैं; जिन्हें देख कर साँपको काटनेका लोभ होता है। इसी लोभमें वह अपना फण उठाता है। वह बड़े वेगसे बलपूर्वक अपना फण मारता है। संपेरा इसी अवसरमें तुरन्त अपना हाथ पीछे खींच लेता है। बस बिचारेका फण धरती पर टकराता है। नागका सब ज़ोर निकल

जाता है। और बहुत सा विष भी दाढ़ोंसे बाहर निकल पड़ता है। जब नाग फण पटकता है तब उसका फण प्रायः नहीं पकड़ते। उस वक्त तो उसका वार खाली जाने देते हैं। फिर नाग अपना फण उठाता है और दूसरा वार करनेके लिए अपना फण हवा में लहराया करता है। इस समय वह अपनी ताक किसी एक सपेरेके बायें हाथ पर लगाये रखता है। बस उसी मौके पर साँपको भुलावा देकर उनमें से एक उसकी गर्दन दबोच लेता है। इधर एक उसका फण पकड़ता है; उधर दूसरा पूंछ पकड़ लेता है और तीसरा उसको बीचमेंसे पकड़ लेता है। उस समय नाग अपने छुड़ानेके सैकड़ों प्रयत्न करता है; परन्तु मुखकी ओरसे कोई बस चलता नहीं और सारा शरीर तन जाता है। ऐसी दशामें यदि नाग अपनी पूँछ और शरीर छुड़ाले तब सिर पकड़नेवालेकी आफत आ जाती है। उसको तुरन्त वह अपने कुण्डलोंमें धर लपेटता है। वह यातो उसकी टाँगें कड़का देता है या अन्य कोई अंग कड़का देता है। ऐसी दशामें वह तुरन्त उसका सिर भी परे की तरफ पटक देता है। और आप पीछे हट जाता है।

हेमाद्रिजात नागका बच्चा, या कैंचुली छोड़नेके उपरान्त ही बड़ा नाग भी, सुगमतासे पकड़ा जा सकता है। वृक्षपर टंगा हुआ तो वह अवश्य क्रोधमें भरकर संपेरोंपर टूटता है; पर नहीं कहा जा सकता कि समान धरतीपर भी वह मनुष्यपर आक्रमण करता है या नहीं। संपेरोंका कथन है कि वह बहुत से अवसरोंपर यों भी मनुष्योंपर आक्रमण किया करता है।

ज्योंही हेमाद्रिजात पकड़ा जाता है त्यों ही उसकी जहरीली दाढ़ें निकाल दी जाती हैं और वह टोकरेमें बंद कर लिया जाता है। वह और नागोंसे ऐसा व्यवहार नहीं करते। बहुतोंकी तो दाढ़ें भी नहीं निकालते।

गोखुरा और केवटा जलदी वश हो जाते हैं। संपेरेको जब कोई खपरा नाग मिल जाता है। वह तुरन्त उसकी पूँछ पकड़ कर उठा लेता है। तभी साँप बेबस सा हो जाता है; पर बड़ा बलवान जवान साँप पूंछ पकड़नेपर काट लेता है। इसलिए पूंछ पकड़ते ही ज़ोरसे उसे झटक दिया जाता है या जब पूँछ पकड़ते हैं तब कमर पर एक लाठी हलकेसे जमा देते हैं और पकड़ कर हाथ परे कर लेते हैं।

प्रायः सर्दीके दिनोंमें संपेरे लोग साँपोंको बिलोंमेंसे पकड़ा करते हैं। जब उनको किसी बिलमें सांप होनेका संदेह हो जाता है जब वह उसे बड़ी सावधानीसे देखते हैं। यदि बिलके मुखपर मकड़ीका जाला तना हो तो स्पष्ट है कि उसमें साँप नहीं है। यदि सांप होता तो अवश्य उसके आने जानेसे जाला टूट गया होता; क्योंकि भोजन, हवा और धूपकी तलाश तो वह सर्दीमें भी करता है। यदि बिलके मुखपर कोई जाला नहीं होता तो उसके मुखके आस पासकी धरतीपर देखते हैं कि कहीं धूलपर साँपके आने जाने का कोई चिन्ह है या नहीं। वह बारबार आस पास की धूल उठा उठाकर सूँघते हैं; क्योंकि जिस धूल परसे साँप रेंग जाता है उस पर साँप एक अपनी विचित्र सी गंध छोड़ जाता है। कभी कभी उसकी कैंचुली ही उसकी सत्ताका प्रमाण हो जाती है। वह बिलको खोदना शुरू करते हैं। सांप चूहेकी तरह डर कर भागनेकी कोशिश नहीं करता; परन्तु धैर्यसे शंकित चित्त होकर जो कुछ होता है देखता रहता है। जब जान पर आती है तब भागनेकी कोशिश करता है। बस तभी पूंछसे पकड़कर झटक दिया जाता है।

जिन सांपोंके फण नहीं होते उनको पूंछसे नहीं पकड़ा जाता; वह पूंछसे पकड़ते ही काट लेते हैं। उनका सिर छड़ीसे दबा लिया जाता है और फिर उनका एक हाथसे सिर और दूसरे हाथसे पूंछ पकड़ ली जाती है। भोआ या भोरा नाग बहुत लम्बा होता है। वह इस रीतिसे भी नहीं पकड़ा जाता। इसको बड़े

टोकरोंसे ही पकड़ते हैं। उसकी पहले पूंछ पकड़ते हैं। ज्यों ही फुसकारा देकर वह काटनेको पड़ता है त्योंही साथी संपेरा पकड़नेवालेके शरीरके आगे टोकरा खोलकर थाम लेता है; बस सांप उसमें अपनी शरण देखकर आ छिपता है। उसकी पूंछ छोड़ दी जाती है और तुरन्त टोकरा बन्द कर लिया जाता है। बहुत बड़े बड़े भोआ नाग भी जल्दी काबूमें नहीं आते। भोआ नाग बड़े होकर अजगर बन जाते हैं। वह हरिणों और भैंसों तकको निगल जाते हैं। उनको कुल्हाड़ों और भालोंसे मारा जाता है। उनको बन्दूक से भी मार सकते हैं।

---

## डरकी दवा

डेढ लाख रुपयेमें पांच सेर रूखड़ी

गार्डन मेकरी (Gardan Mereagh) नामक एक व्यक्ति हालमें ही दक्षिण अमेरिकासे लौटे हैं। वह अपने साथ एक छोटा सा काला बकस लाये हैं; जिसमें एक रूखड़ीकी टहनियां और पत्तियां भरी हैं। इसका भार ५ सेरसे अधिक न होगा; तथापि लगभग १५०००० रु० इसके लानेमें लगे हैं; इसके अतिरिक्त जो कष्ट और आपदायें सहनी पड़ी हैं उनका मूल्य रुपयोंमें निकालना असम्भव है। कई आदमी बीमार हो हो कर लौट आये, कई रास्तेमें ही मर गये। कुछ आदमी ज़हरमें बुझाये हुए तीरोंके निशाने बने; सैकड़ों मील तक नदियोंमें भद्दी भद्दी नावोंमें यात्रा करनी पड़ी; सांप, अजगर आदि भयानक जीवोंसे भरे जंगलोंमें से जाना पड़ा; असभ्य बर्बरोंसे, औषधको बड़ी बड़ी तरकीबोंसे, इकट्ठा कराके लाना पड़ा।

इस वनस्पतिकी जड़ोंसे "कआपी" बनायी जाती है, जिसके सेवनसे भयका भाव हृदयसे निकल जाता है। शस्त्रोपचारके पहले रोगीको यह ओषधि पिला दी जाय तो उसे मृत्युका भय किंचिन्मात्र भी न रहे। ज़च्चाको प्रसवके पहले खिला देनेसे उसे प्रसव वेदनाका भय न रहेगा। डरपोकसे डरपोक मनुष्य सेवन कर लेगा तो भीम और अर्जुन सा साहसी हो जायगा।

बहुत दिनोंसे कआपी की बातें सुननेमें आती थीं। जर्मन यात्री बैरन हम्बोल्ट्ने ब्राज़िलके आदिम निवासियोंको इस औषधका ज़िक्र करते सुना था। वह कहते थे कि उसके सेवनसे मनुष्य निर्भय होकर लड़ता है। रिचार्ड स्प्रूसने भी लाल फूलवाली एक लताको देखा था, जिसके सम्बन्धमें उनके पथ प्रदर्शकने बतलाया था कि उसे साहस-पुष्प कहते हैं। बीस महोदयने अपनी आंखों देखा था कि एक अमेरिकनने किसी औषधका प्याला चढ़ाया और सहस्रगुने साहससे लड़ने लगा।

इन सब कथाओंपर वैज्ञानिकोंको कम विश्वास होता था। परन्तु यह बातें रोचक अवश्य मालूम होती थीं, क्योंकि विज्ञानको "भय" की ओषधिकी आवश्यकता थी। यदि क्लोरोफार्म आदि ओषधियोंका प्रयोग न करके कआपीका सेवन करा सकें तो बहुतसे रोगी मरनेसे बच जाया करें, क्योंकि कमज़ोर दिलवालों पर इनका घातक प्रभाव पड़ता है।

इन सब बातोंको सोचकर यह निश्चय हुआ कि कआपीकी खोजमें कुछ आदमी भेजे जायं। कआपी कोलम्बिआ, पेरू, इक्वेडर और ब्राज़िलके तटस्थ प्रदेशोंमें मिलती है और इन प्रदेशोंका हाल गोरोंको बहुत ही कम मालूम है।

वहांके जंगलोंमें बड़े बड़े भयानक सर्प और अद्भुत अद्भुत स्तनपायी पशु विचरते हैं; वहां बड़े बड़े वृक्ष उगते और सुन्दर पुष्प खिलते हैं; बोआ कन्स्ट्रिकटर एनेकोनडा, तापिर, ओर्किड आदि

प्राणी भी यहां पाये जाते हैं। इन प्रदेशोंमें आदिम निवासी रहते हैं, जो विषाक्त तीरोंका प्रयोग करके सहज ही नवागन्तुकोंका प्राणहरण कर लेते हैं।

खोजियोंने सब बातोंका पूरा पूरा प्रबंध किया। हथियारोंसे खूब सुसज्जित हुए; पानीके जीवाणु शून्य करनेका सब सामान लिया; अनेकानेक सीरम; और बुखार, टेटेनस, चेचक, सर्प-विष आदिके प्रतिविष भी लिये; लगभग सौ मन खानेकी सामग्री ली और तब यात्रा आरम्भ की।

इन सब प्रबन्धोंके होते हुए भी कई व्यक्ति रास्तेमें ही मर गये। डा० रसबी सख्त बीमार होकर घर लौट आये; अन्तमें मेकरी, ब्रौन और मेकारटी-रह गये। रायोनीगरो और रायो वौप्स (Waupes) नदियोंके उद्गम स्थानोंकी दिशामें यह चले। इनका सामान कोलम्बियन कुली लाद कर ले जाते थे। कुछ दिन बाद यह कुली इन्हें छोड़कर भागगये और खानेका सामान और गोली बारूद भी लेते गये। तीनों खोजियोंने इनका पीछा किया; घने जंगलमें, जहां चलने फिरनेके लिए स्थान और रास्ता न था, इन्हें बड़ा कष्ट हुआ। अन्तमें इन्होंने उन्हें जा पकड़ा। वहांके बाशिन्दोंने कुलियोंका साथ दिया; फिर तो खूब जमकर लड़ाई हुई। बहुत से आदमी मारे गये, जो बचे सो भाग गये। अपना सामान ले यह तीनों वीर खोजी फिर आगे बढ़े।

एक दिन जब यह टिकुई नदीमें जा रहे थे, जो वौप्सकी एक सहायक नदी है, तो मेक्रीके सर-पर से कोई चीज़ सनसनाती निकल गई और पानी-में जा गिरी। यह चीज़ एक तीर था, जिसके सिरे-परसे कोई पदार्थ पिघल कर पानीमें मिल गया। यदि तीरसे सरमें खरोंच भी आ जाती तो मेक्री मर जाता।

खोजियोंने नाव ठहरा दी और उतर कर किनारेकी झाड़ियोंमें तीर चलानेवालेका पता चलाने लगे। कुछ देरमें इन्होंने उसे पकड़ लिया। वह क्रोधसे कांप रहा था। मेक्रीने पहले उसे शान्त किया, और तब जेबसे निकाल कर "फ्लेशलैट" उसकी आंखोंके सामने कर दी। वह बेचारा डरके मारे इनके पैरों पर गिर पड़ा। फ्लेशलैटने वह काम किया जो बारूदके कई मन नहीं कर सकते थे।

उस आदमीको जब छोड़ा तो वह अपनी जातिके बहुत से आदमियोंको लिवा लाया, जिन्होंने आकर इन तीनोंकी अर्चा पूजा की। वह इन्हें देवता समझ कर अपने घर लिवा ले गये और वहां बड़ी खातिरसे रखा।

मेक्रीने उनके सरदारोंसे कहा कि हम तुम्हारी दावत देखना चाहते हैं। सरदारने स्वीकार कर लिया। उसके अनुयायियोंने एक लताको काटा, जो एक वृक्षके सहारे उग रही थी। उसके छोटे छोटे टुकड़े किये और उन्हें पीसकर बुकनी सी बनाली। बुकनीको एक बर्तनमें रखकर चेको (Chaco) वृक्षकी पत्तियां डालदीं और पानी भर दिया। एक घण्टे तक गरम करनेसे शराबके रंग-का काढ़ा तैयार हो गया।

औरतों और बच्चोंको वहांसे हटा दिया और कह दिया कि जो आयेगा वह जानसे मार दिया जायगा। तब सब पुरुष दो पंक्तियोंमें उस बर्तन-को घेरकर बैठ गये। एक आदमीने प्याले भर भर कर सबको दिये। फौरन इस दवाने अपना असर दिखाया। एक एक करके वह सब उठ खड़े हुए और बेसुध होकर नाचने और अपने अपने शौर्य और वीर्यका बखान करने लगे। तदनन्तर कोई दस मिनट तक उनमें आपसमें घमासान युद्ध हुआ और सब मूर्छित हो हो कर गिर पड़े।

मेक्री साहबने जितनी कआपी उनसे इकट्ठा करते बनी काट कर जमा करली और उनसे बिदा मांग लौट आये।

अब इस लकड़ीका सत प्रयोगशालामें निकाला जायगा और उसकी जांच की जायगी; तब निश्चय पूर्वक यह कहा जा सकेगा कि वस्तुतः इस औषध-में पूर्वोक्त गुण हैं या नहीं।

—सुन्दरलाल, एम. ए.

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १७ } मिथुन, संवत् १९८० । जून, सन् १९२३ { संख्या ३

## मिट्टीमें चूनेकी आवश्यकता

अत्यन्त प्राचीन कालसे यह बात मालूम है कि धरतीकी उपजाऊ शक्ति पर चूनेकी उपस्थिति तथा अनुपस्थितिका बड़ा प्रभाव पड़ता है। आधुनिक गवेषणाओंने यह सिद्ध कर दिया है कि खेतीके लिए धरतीमें चूनेका अंश रहना परमावश्यक है। यह सब होते हुए भी, जबसे कृत्रिम खादोंका प्रचार बढ़ा है तबसे धरतीमें चूना देनेकी ओर किसानोंका ध्यान नहीं जाता। सम्भव है कि किसान लोग यह अच्छी तरह नहीं जानते कि चूना धरतीमें क्या काम करता है; इस अज्ञानके कारण तथा मज़दूरोंके मिलनेकी कठिनाईके कारण किसान धरतीमें चूना देनेकी ओर ध्यान नहीं देते।

चूना देना पौधोंको काफी खुराक पहुँचानेकी नीयतसे ज़रूरी नहीं है, क्योंकि इस कामके लिए बहुत थोड़े चूनेकी आवश्यकता होती है और इतना चूना प्रायः सभी जगह पाया जाता है। चूनेकी ज़रूरत तो धरतीके अम्लत्वको मिटाने और मट्टीके यांत्रिक गुणोंमें परिवर्तन करनेके लिए होती है।

धरतीमें बहुत सी क्रियाएं होती रहती हैं, जिनसे अम्ल पैदा होते रहते हैं; जैसे आंगारक पदार्थोंके विघटन तथा गन्धिदोंके ओषिदीकरणसे आंगारक अम्ल तथा गन्धसाम्ल धरतीमें इकट्ठे होते रहते हैं, जो अन्तमें पृथ्वीको बंजड़ कर देते हैं। अम्लमय धरतीमें पौधोंका उगना मुश्किल है। अम्लकी उपस्थितिमें नत्रजन बांधनेवाले जीवाणु, नत्रीकारक जीवाणु आदि जीवित नहीं रह सकते। अम्लोंके रहते अच्छी घास भी नहीं उगती।

धरतीमें अम्ल तभी पैदा होते हैं जब चूनेकी कमी होती है और बहुत दिनों तक धरतीमें चूना

नहीं दिया जाता। धरतीमें से चूना प्रतिवर्ष अनेक कारणोंसे निकलता रहता है। कुछ तो वर्षाके जलमें धुलकर और घुलकर बह जाता है, कुछ अम्लखादोंके प्रयोगसे, जैसे अमोनियाश्वेत, निकम्मा हो जाता है, कुछ अशुद्ध वायुके प्रभावसे, जैसी कि बड़े बड़े शहरोंके पास जहाँ फैक्टरी और मिल बहुत हो हुआ करती है, खराब हो जाता है। अतएव चूना देकर पृथ्वीके अम्लत्वको नष्ट करते रहना चाहिये। चूना, बुझा चूना या खड़ियाका प्रयोग किया जा सकता है।

चूनेसे मट्टीके यांत्रिक गुणोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। बारीक चिकनी मिट्टीके बारीककण चूनेके संसर्गसे मिलकर बड़े कण बना लेते हैं और इस प्रकार उसमें जल और वायुका प्रवेश होना संभव हो जाता है। स्मरण रहे कि चिकनी मिट्टीमें खेती करना इसीलिए कठिन है कि उसमें पानी और हवाका प्रवेश नहीं हो पाता। चूना डालनेसे कण बड़े हो जाते हैं और मिट्टी भुरभुरी हो जाती है।

चूनेकी क्रियासे धरतीके अनघुल नत्रजनीय पदार्थ और पोटासियम यौगिक घुलनशील हो जाते हैं और पौधोंके काम आने लगते हैं। एक बात इस सम्बन्धमें याद रखनी चाहिये। यदि पोटासियम यौगिककी मात्रा कम हुई तो पौधों द्वारा शोष्य पोटाशकी मात्रा चूनेकी क्रियासे बहुत कम हो जायगी और इस दशामें पोटासियम मय खादोंका प्रयोग करना पड़ेगा।

हमारे पूर्वजों ने धरतीमें चूनेकी पर्याप्त मात्रा देदी थी, उसीसे अब तक काम चलता रहा है; परन्तु अब सावधानतासे काम करना चाहिये। जिन विधियोंसे हिन्दुस्तानमें खाद इकट्ठा किया जाता है, और बनाया जाता है, उनके कारण खादमें चूनेकी पर्याप्त मात्रा रहती है।*

—हरिकृष्ण, एम. ए-जी.

* इण्डियन सैन्टिफिक एग्री कलचरिस्टमें प्रकाशित श्री० कारलोस ( A. S. Carlos ) के लेखके आधार पर।

# दांतनसे दांत साफ करना
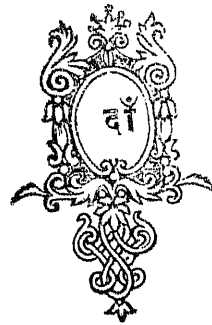
दाँतों और मुखके भीतरी तथा बाहिरी भागका स्वच्छ रखना स्वास्थ्य रक्षाका एक प्रधान साधन है। क्या पशु क्या मनुष्य सभीके पास दाँत रूपी अमूल्य और जीवनोपयोगी वस्तु हैं। दाँतोंके नीरोग रहनेसे मनुष्य भले प्रकार भोजनको चबा सकता है और पाचक रसका भले प्रकारसे भोजनमें मिश्रण कर सकता है, जिससे कि भोजनका ठीक परिपाक होता है और बलवृद्धि होती है। दाँतोंका महत्व युवक पुरुषोंकी दृष्टिमें भले ही कुछ न हो, परन्तु जो वृद्ध पुरुष हैं जिन्होंने कि दोनों दशाओंका अनुभव किया है भले प्रकार जानते हैं कि दाँत प्रकृति माताके दिये हुए अमूल्य रत्न हैं। वृद्धावस्थामें जब दांत हिलने लगते हैं अथवा युवावस्थामें ही जब प्राकृतिक नियमोंका भली भांति पालन नहीं किया जाता दाँतोंमें अनेक तरहकी पीड़ायें होने लगती हैं। उस समय असह्य दुःख और धनका दुरुपयोग होता है। दाँतोंके गिर जानेपर भोजनमें स्वाद भी नहीं आता; मिट्टी जैसा मालूम पड़ता है। जिन चीज़ोंके खानेमें अपूर्व आनंद मिलता था दाँतोंके गिर जानेके कारण उन चीज़ोंका खाना मुश्किल हो जाता है, अतः उनके लिए हमेशा तरसते रहते हैं। इसलिए दाँतोंका स्वच्छ रखना, उनमें कोई रोग न पैदा होने देना, रोग पैदा होनेपर उनका उचित प्रतीकार करना, प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। यह बातें यदि बच्चोंको ही सिखा दी जायँ तो वह अपने जीवनमें अनेक विपदाओंसे बचे रहते हैं; अतः माता पिताओं और संरक्षकोंको इस बातका हमेशा ध्यान रखना चाहिये। दन्तरक्षाके उपायोंमें से यहां पर दन्तधावनका विवेचन किया जाता है।

दन्तधावन

ऊपर बतलाये हुए कारणोंसे ही प्रत्येक देश और समाजमें दन्तधावन किसी न किसी रूपमें पाया ही जाता है। आजकल दाँतोंको साफ करनेकी अनेक रीति प्रचलित हैं। कोई बबूल आदिकी ताजी नरम दाँतनसे दाँतोंको साफ करते हैं, कोई लकड़ीके कोयलेके चूर्णसे, कोई विविध औषधियोंके चूर्णसे, कोई विलायती पौडरसे, कोई ब्रुश आदि से दाँतोंको साफ़ करते हैं। इन सब रीतियोंमें प्रथम रीति सबसे उत्तम, सुगम, और अनेक रोगोंका नाश करनेवाली है। इसी रीतिका आदेश सुश्रुत आदि महर्षि कर गये हैं—

तत्रादौ दन्तपवनं द्वादशांगुलमायतम्।
कनिष्ठिका परीणाह मृज्वग्रथितमव्रणम्॥
अयुग्मग्रन्थि यच्चापि प्रत्यग्रं शस्तभूमिजम्।
अवेक्ष्य ऋतुं च दोषं च रसं वीर्यं च योजयेत्॥
कषायं मधुरं तिक्तं कटुकं प्रातरुत्थिता।

प्रातःकाल उठ कर मलमूत्र त्याग करनेके अनंतर बारह अंगुल लंबी छिंगरीके बराबर मोटी सीधी गांठ रहित, जिसमें कीड़े न लगे हों, एक साथ जिसमें दो गांठें न हों, ताजी, स्वच्छ जगहमें पैदा हुई-ऋतु, दोष, तथा रस और वीर्यका विचार करके—कषाय, मधुर, तिक्त और कटु रसवाली दाँतनको करे। प्रतिदिन ताजी दाँतन करनेसे दाँत सुडौल होते हैं, मुखमें किसी तरहकी दुर्गन्ध नहीं आती और चित्त प्रसन्न रहता है। दाँतनका कषाय रस संकोचक होता है; अतएव थोड़े ही दिनों तक मौलसरी, खैर या बबूरकी दाँतन प्रतिदिन करनेसे मसूड़े यदि ढीले पड़ गये हैं तो संकुचित हो जाते हैं और दाँतोंका हिलना बंद हो जाता है।

उपर्युक्त प्रमाणवाली दाँतनको लेकर पहिले विशुद्ध जलसे कुल्ला करे। बादमें उसको दाँतोंसे धीरे धीरे चबावे, जिससे कि मुलायम कूंची बन जाय। कूंची पत्थर आदिसे भी कूटकर बनायी जा सकती है, परन्तु दाँतोंसे चबा कर बनानेमें कुछ विलक्षण ही रहस्य है। वह यह है कि चबाते वक्त दाँतोंके ऊपरी भागमें रगड़ होनेसे वहांका मल साफ हो जाता है। अतएव कूंची चबाकर बनानी चाहिये। कूँचीसे धीरे धीरे मसूड़ोंको बचाकर एक एक दाँत घिसना चाहिये। बहुत से आदमी मसूड़ोंकी कुछ परवाह न कर बड़े ज़ोरसे दाँतोंको घिसते हैं, जिससे प्रतिदिन पैसे दो पैसे भर खून निकल जाता है। इस तरह से घिसना ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसा हमेशा करते रहनेसे दाँतोंकी जड़ें कमज़ोर हो जाती हैं, जिससे कि दन्तचाल, वैदर्भ आदि अनेक रोग पैदा हो जाते हैं और अंतमें दाँतोंसे हाथ धोना पड़ता है।

आचार्य वाग्भटने लिखा है—

घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरंभो जायते महान्।
चला भवन्ति दन्ताश्च स वैदर्भोऽभिघातजः॥

दाँतोंके मांस घिस जानेसे अत्यन्त सूजन और जलन होकर मसूड़े पक जाते हैं; जिससे कि पीव बहने लगती है; दाँत भी हिलने लगते हैं; इसीको दाँतनकी रगड़के आघातसे उत्पन्न होनेवाला वैदर्भ नामका रोग कहते हैं।

पूर्व महर्षियोंका कथन है—कि "मणिमंत्रौषधयो ह्यचिन्त्य-प्रभावाः" हीरा आदि मणि, णमोकार आदि मंत्र और सहदेवी आदि ओषधियोंका प्रभाव अचिन्त्य होता है। बहुत से आदमियोंको ऐसी शंकायें किसी विषयमें पूर्ण अनुभव किये बिना ही होने लगती हैं कि अमुक ओषधि अमुक जड़ी तो घास है उसमें इस रोगके इतने शीघ्र नाश करनेकी शक्ति कहांसे होगी; परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं है; क्योंकि आज कलके जमानेमें भी ओषधियोंके प्रभावको प्रत्यक्ष दिखलानेवाले अनेक महानुभाव विद्यमान हैं। दाँतनके भी पुरातन वैज्ञानिकोंने कुछ ऐसे कायदे बतलाये हैं जिनमें शंकायें हो सकती हैं; परन्तु शंका करनेवाले महाशय यदि इस विषयका कुछ काल तक अनुसंधान करें तो उनको अवश्य ही मालूम हो जायगा कि यह बात सर्वथा सत्य है।

आचार्योंका अनुभव है कि आककी दांतन करनेसे ताकत बढ़ती है, वटवृक्ष (बड़)की दांतन करनेसे दीप्ति बढ़ती है; खैरकी दांतन करनेसे मुखमें सुगंध आती है; कदंब तथा चिरचिटाकी दांतन करनेसे स्मरण शक्ति बढ़ती है; चंपाकी दांतन करनेसे कोयलके समान मधुर स्वर होता है और तोतलापन मिटता है; श्रवणशक्ति बढ़ती है; विजयसारकी दांतन करनेसे बुद्धि तेज होती है; चमेली, तगर और आककी दांतन करनेसे दुःस्वप्न मिटते हैं।

मधुर रसवाली दांतनोंमें महुआकी दांतन सर्व श्रेष्ठ और हितकारी है; वह वायु तथा उससे उत्पन्न होनेवाले रोगोंका नाश करती है। कटु रसवाली दांतनोंमें करंजकी दांतन सर्व श्रेष्ठ और गुणकारी है; वह कफ वा उससे उत्पन्न होनेवाली व्याधियोंका नाश करती है, तिक्त रसवाली दांतनोंमें सर्व श्रेष्ठ तथा हितकारी है और पित्त व उससे उत्पन्न होनेवाली बीमारियोंका नाश करती है। कषाय रसवाली दांतनोंमें खैरकी दाँतन सर्वोत्तम है और कफ पित्त वा इनसे होनेवाली व्याधियोंका नाश करती है। सुपारी, ताड़वृक्ष, केवड़ा, खजूर, नारियल आदि वृक्षोंका रस दांतोंके लिए हानिकारक है तथा इनकी कूंची कड़ी होती है। दांतोंको घिसते समय उनके रेशे मसूड़ोंमें घुस जाते हैं और अनेक तरहकी व्यथायें पैदा करते हैं; अतएव इन वृक्षोंको दांतन कभी नहीं करनी चाहिये।

आचार्योंकी आज्ञा है कि दांतन प्रातःकाल और भोजनके बाद भी करनी चाहिये, आचार्य वाग्भटने लिखा है—'प्रातर्भुक्त्वाच', अर्थात् दांतन प्रातःकाल और भोजनके बाद करनी चाहिये। भोजन करनेके बाद भी जो दांतन करनेकी आज्ञा है, उसका कारण यह है कि जो कुछ भी खाया पिया जाता है उसके अंश अवश्य ही मुखमें वा दांतोंमें लगे रह जाते हैं, जो कालान्तरमें रोगोंका कारण होते हैं। दांतनके अतिरिक्त प्रत्येक चीज़के खाने पीनेके बाद विशुद्ध जलके द्वारा मुख-शुद्धि करनी चाहिये। यही कारण है कि भारतवर्षमें मुखको झूठा न रखनेकी रीति चिरकालसे प्रचलित है। कुछ समयसे तो इस सुरीतिको उखाड़नेके लिए सुशिक्षित जनता भागीरथ प्रयत्न कर रही है, जिससे कि यह रीति कहीं कहीं ब्रह्मचारी, संयमी, और मुनियों आदिमें ही संकुचित होकर रह गयी है; परन्तु वह समय बहुत जल्दी आनेवाला है जब कि यही रीति बहुत अच्छी समझी जायगी।

कुछ दिन हुए दांतोंके सम्बन्धमें विचार करनेके लिए यूरोपीय विद्वानोंकी एक समिति बैठी थी। उसने पूर्णरूपसे निश्चय करके कहा था कि दांतोंकी रक्षाका सर्वोत्तम उपाय प्रतिदिन वृक्षोंकी ताजा दांतन करना और मुखको हर एक चीजके खाने पीनेके बाद प्रक्षालन करना है। तथा यह भी कहा था कि दांतन करनेवाले भारतीयोंकी दन्तावली पाऊडर आदिसे दांत साफ करनेवाले यूरोपियनोंकी अपेक्षा नीरोग, सुन्दर और मजबूत होती है। संपूर्ण शास्त्रोंकी यही आज्ञा है कि मनुष्योंको, अग्निहोत्रकी तरह, प्रातःकाल और सायंकाल दो बार ही भोजन करना चाहिये।

अनुकरणशील भारतीयोंने—

सायंप्रातर्मनुष्याणामशनं श्रुतिबोधितम्।
नान्तरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्र समोविधिः॥

आदि पूर्वजोंके वाक्यों पर, कुछ भी ध्यान न देकर देखादेखी दिन रातमें चारबार, छहबार, आठबार, तक भोजन करना आरम्भ कर दिया है। भोजनके अलावा चा, काफी, फल, पान, सुपारी, जलपान, बीड़ी आदिका इस्तेमाल तो अगणित बार करते हैं। इस तरहकी अव्यवस्थित भक्षण प्रणाली अज्ञानी पशुओंमें भी नहीं पायी जाती है, फिर दुनियाँका सर्व श्रेष्ठ प्राणी मनुष्यमें इसका होना कितना हास्यास्पद है। ऐसी भक्षण प्रणालीमें दांतोंकी वा मुखकी सफ़ाईपर कितना ध्यान दिया जा सकता है, यह पाठक स्वयं ही विचार लें।

यहांपर इस कुटेवसे पैदा होनेवाले कुछ थोड़ेसे रोगोंका दिग्दर्शन कराया जाता है

मछली आदिका मांस मनुष्योंका स्वाभाविक खाद्य नहीं है; इस बातको क्या पाश्चात्य और क्या पौर्वात्य सभी विद्वानोंने स्वीकार किया है। मांसके खानेसे उसके सूक्ष्म रेशे दांतोंकी संधियोंमें घुस जाते हैं और सड़ कर दांतकी बीमारी पैदा करते हैं। नीचा मुंह करके (औंधा) सोना, दांतन न करना कुल्ले न करना आदि कारणोंसे भी दांतोंमें रोग पैदा होते हैं। जब दांतोंमें उपर्युक्त कारणोंसे मलका संचय होता है, तब वातादि दोष प्रकुपित होकर अनेक रोग पैदा करते हैं।

अधावनान्मलोदन्ते कफो वा वात शोषितः।
पूतिगंधः स्थिरीभूतः शर्करा ॥

अष्टांग हृदय उ० स्था०

दांतन वा कुल्ले न करनेसे दांतोंके भीतर जो मैल वा कफ जम जाता है उसको भीतरी वायु सुखा देती है तो उसमें अत्यंत दुर्गंध आने लगती है और मल उसी जगहपर मजबूतीसे चिपट जाता है; इसीको सर्करा रोग कहते हैं। यदि इस रोगकी उचित चिकित्सा न की जाय तो कालान्तरमें वह मैल दांतोंको खा जाता है। कुछ दिन बाद दांतोंमेंसे छिलके निकलने लगते हैं और अन्तमें दांत नष्ट हो जाते हैं। इसको कपालिका रोग कहते हैं। इसी तरहसे दांतोंकी संधियों वा जड़ोंमें जब भोजनके कण भर जाते हैं और उन कणोंके सड़नेसे जब छोटे छोटे कीड़े पैदा हो जाते हैं तब दांतोंके मसूड़ोंमें सूजन पैदा होजाती है। खून और पीव निकलने लगती है। जब कीड़े उग्ररूप धारण करते हैं तब अत्यंत दर्द होता है और दांत हिलने लगते हैं। जब कीड़े दांतकी हड्डी खा लेते हैं तब दांत खोखला होजाता है। उस छिद्रमें अन्न भरने लगता है और फिर बार बार कीड़ोंका उपद्रव होता रहता है और दांत काले पड़ जाते हैं। इसको कृमिदंतक व्याधि कहते हैं।

खून बिना कारणही कभी कभी दांतोंसे गिरता है। दांतोंके मसूड़े मुलायम, गिलगिले, और काले होकर गिरने लगते हैं; इसको शीताद नाम रोग कहते हैं।

दांतोंके मसूड़ोंमें जलन और सूजन होती है, कभी कभी खुजली चलती है, मसूड़ोंका रंग लाल हो जाता है, हमेशा खून निकलता रहता है। जब कभी खून बन्द हो जाता है मसूड़े फूल जाते हैं, दांत हिलने लगते हैं, थोड़ा थोड़ा दर्द होता है और मुखमें बास आने लगती है। इस रोगको उपकुश कहते हैं।

दो अथवा तीन दांतोंके बीचमें बेरकी गुठलीके बराबर कठिन सूजन होती है, और बहुत जल्दी पक जाती है तथा अत्यंत दर्द होता है। इसको दन्तपुप्पुट रोग कहते हैं।

ऐसे ऐसे अनेक रोग केवल दन्तधावन और मुख प्रक्षालन निरन्तर न करनेसे उत्पन्न होते हैं। लेखके बढ़ जानेके भयसे उनका यहां सविस्तर वर्णन नहीं किया जाता है; हो सका तो इसका विचार एक स्वतंत्र लेखमें करूंगा।

दांतन किसको नहीं करना चाहिये ?

बहुतसे दैनिक कृत्य ऐसे होते हैं जो केवल स्वस्थ पुरुषोंको ही फायदा पहुँचाते हैं। यदि उनका व्यवहार रोगी पुरुष भी करने लगे तो उनको फायदेके बदलेमें नुकसान ही उठाना पड़ेगा। यही हाल दांतनका भी है। इसलिए अजीर्णरोग, वमन, श्वास, खांसी, ज्वर, प्यास, लकवा, मुखपाक, हृद्‌यरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, कर्णरोग, ओष्ठरोग, जिह्वारोग, मुखकी सूजन, हिचकी, मूर्च्छा, आदि रोगोंमें दांतन नहीं करनी चाहिये।

ऊपर लिखी हुई विधिके अनुसार दांतोंको दांतनसे भले प्रकार साफ कर लेनेके बाद उसी दांतनको बीचमेंसे फाड़कर जीभी बना लेनी चाहिये। यद्यपि दांतनके अभावमें काम चलानेके लिए सुवर्ण, चांदी, तांबा, आदि कीभी जीभीका उपयोग करते हैं; परन्तु जहांतक होसके दांतनकी

जीभीसे ही काम लेना चाहिये। वह भी कोमल, गांठ रहित और चिकनी होनी चाहिये। उससे धीरे धीरे जिह्वाके ऊपरके लगे हुए मलको खरोंचकर निकालना चाहिये; क्योंकि जोरसे खरोंचकर मल निकालने से जीभमें लग जाती है। उत्तम प्रकारसे जीभीका उपयोग करनेसे मुखका मैल, दुर्गंध तथा विरसता दूर होजाती है। जिह्वा और मुखके रोग नष्ट हो जाते हैं। अरुचि दूर होकर मुखमें विशदता और हलकापन प्रकट होता है। इसके अनंतर पूर्णरूपसे मुखकी भीतरी शुद्धि करनेके लिए कुल्ले करने चाहियें। यदि पित्त तथा पैत्तिक व्याधि, प्यास आदि रोग हों तो ठंडे जलसे और यदि कफ, कफरोग, अरुचि, मल, दांतोंकी जड़ता, मुखका भारीपन आदि रोग हों तो कुछ गरम जलसे कुल्ले करने चाहियें।

जिन्होंने विष खा लिया हो, मूर्च्छित हों, नशेमें हों, जिन्हें शोष वा रक्त पित्तकी बीमारी हो, नेत्र दुखने आये हों, रूक्षता अधिक हो, मलक्षीण हो, ऐसे पुरुषोंको गरम जलसे कुल्ले न करने चाहियें।

बहिर्मुख प्रक्षालन

मुखके बाहिरी भागको भी अच्छी तरह धोना चाहिये। इससे रात्रिमें सोनेसे उत्पन्न हुई सुस्ती दूर होकर मुखकी कान्ति बढ़ती है। मुंहासे, मुखका सूखापन और दाग नष्ट हो जाते हैं।

गायके दूधको कुछ गर्म करके उससे कुल्ले कर सकते हैं और मुख भी धो सकते हैं। ऐसा करनेसे मुखकी रूक्षता वा सूखना दूर होता है और कफ वातकी व्याधियाँ नहीं होती हैं।

गर्म जलमें सेंधा नमक डाल कर कुल्ले करनेसे इनफ्लूयेंजा, खांसी, श्वास आदि रोगोंमें अप्रतिम लाभ होता है।

—अभयचन्द्र, काव्यतीर्थ, वैद्य शास्त्री।

# पपीता और पेपेन

उद्भिदकी उत्पत्ति तथा प्रसार एक अत्यन्त कौतूहलप्रद विषय है। जलवायु, पशुपक्षी तथा मनुष्य द्वारा एक स्थानका उद्भिद अन्य स्थानमें लाया जाकर कालक्रममें इतना फैल जाता है कि उसकी गणना उस स्थानके आदिम उद्भिदोंके साथ होने लगती है। यही हाल पपीतेका भी है। आजकल भारतवर्षमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं है, जहां पपीता न पाया जाता हो। किन्तु पपीता दक्षिण अमेरिकाके ब्राज़िल अञ्चलकी उपज है। सबसे पहले पोर्चुगीज़ सोलहवीं शताब्दीमें इसे यहां लाये थे। किसी भी जलवायु और भूमिमें यह उपज सकता है। इस लिए भारतवर्षमें ही क्या, संसारके प्रायः सभी देशोंमें, यह अल्प समयमें ही फैल गया। आजकल पपीतेकी खेती वेस्टइंडीज़ द्वीप समूह, हावाई, फिलिपाइन, मान्टसेरट तथा सिंहल द्वीपमें बहुत होती है। अन्तिम दो देशोंमें विशेषतः पेपेन बनानेके लिए ही पपीता उत्पन्न किया जाता है।

कच्चा और पक्का पपीता यथाक्रम सब्जी और फलके रूपमें व्यवहृत होता है। पका हुआ पपीता मीठा और सुस्वादु होता है। कच्चा पपीता कोष्ठ काठिन्यता तथा अर्श रोगकी उत्कृष्ट औषध है। पपीतेसे पेपेन नामक एक मूल्यवान वस्तु तैयार होती है। इसका नत्रजन-प्रधान-भोजन पर इतना प्रभाव होता है कि एक अंश पेपेन २०० अंश मांस पचानेकी शक्ति रखता है। पेपेनकी रासायनिक क्रियाकी चर्चा करना अनावश्यक जान पड़ता है; तोभी यह कह देना यथेष्ट होगा कि यह Ferment अथवा किण्व श्रेणीके अन्तर्गत है। पेपसिन (Pepsin), जो सूअरके पेटके एक हिस्से से बनती है, और पेपेनकी क्रिया एक ही प्रकार की है। अन्तर यह है कि बिना अम्ल संयोगके भी पेपेनकी क्रिया होती है। अधिक गरमीके

कारण इसकी क्रियामें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता और पेपसिनकी अपेक्षा थोड़े समयमें पेपेनका असर होता है। पेपेनके नाशकारक गुणके ही कारण उसका डिपथीरियाके रोगमें व्यवहार करते हैं। पेटका फूलना, गलेमें जलन प्रभृति लक्षण युक्त उदरामय, अर्श, प्लीहा, यकृत वृद्धि, कृमि और चर्म्मरोगमें पेपेन विशेष लाभदायक पाया गया है। पपीतेकी पत्तीमें भी कुछ पेपेन पाया जाता है; इसीलिए किसी किसी जगह मांस बनानेके २,१ घंटे पहले उसे पपीतेके पत्तोंमें लपेट कर रख छोड़ते हैं। इससे माँस शीघ्र पक जाता है। हथेलीका चमड़ा छूटनेपर और मुखपरके घाव या सिहुलीके लिए पेपेनका द्रावण या साबुन उत्कृष्ट वस्तु है। इसके व्यवहारसे त्वचा परिष्कृत तथा चमकीली होती है। पपीतेके बीजमें भी कृमियोंके नाश करनेका गुण है। सरसोंकी नाई पपीतेके बीजमें भी एक प्रकारका कडुआपन रहता है; अतएव दक्षिण अमेरिकामें कहीं कहीं यह मसालेके रूपमें व्यवहृत होता है। आजकल कपड़ेके दाग छुड़ानेके लिए पेपेनका द्रावण व्यवहार किया जाता है। इससे सूत नष्ट होनेका भय नहीं रहता।

पपीतेका पेड़ बिना यत्न अथवा समान्य यत्न से भी फल देता है; किन्तु अच्छा फल पाने अथवा व्यवसाय करनेके निमित्त खेती करनेके लिए विशेष प्रकारके खेत बनाने चाहियें। पपीतेका पेड़ ६,७ हाथसे लेकर १२,१४ हाथ तक बड़ा होता है; शाखा-प्रशाखा बहुत थोड़ी निकलती हैं। इसका धड़ तन्तुमय तथा पोला होनेके कारण किसी काममें नहीं आता। पपीतेके फूलमें थोड़ी गन्ध रहनेपर भी उसका रंग ऐसा होता है कि मनुष्य की दृष्टि साधारणतः उसकी ओर आकृष्ट नहीं होती।

पपीतेके वृक्ष नर और मादा दो प्रकारके होते हैं। केवल फल उत्पन्न करनेके लिए नर वृक्ष की कोई आवश्यकता नहीं होती। पराग-संयोगके बिना ही स्त्री-वृक्ष स्वादिष्ट और बड़ा फल देता है। किन्तु अङ्कुर उत्पन्न करने योग्य बीज पैदा करनेके लिए नर वृक्ष भी अत्यावश्यक है। कभी कभी ऐसा देखा जाता है कि पपीतेका बीज अङ्कुरित नहीं होता। इसका एक मात्र कारण यह है कि वह स्त्री-वृक्षके फल से ही संगृहीत किया गया है। स्त्री और पुरुष वृक्षके धड़ तथा पत्ती प्रभृतिमें कुछ अन्तर न होनेके कारण जब तक फूल नहीं निकलते तब तक वृक्षको श्रेणी बद्ध करना असम्भव है। पुरुष-वृक्षमें भी फल होता है, पर वह आकृति में छोटा होता है। सिंहलद्वीपमें पुरुष-वृक्षके फलसे ही पेपेन प्रस्तुत होता है। बीज से उत्पन्न वृक्षोंमें प्रायः सौ में ७२ फल नहीं देते। इसलिए कलम लगानेकी प्रथा है।

पपीतेके लिए मिट्टी न बहुत चिकनी और न बहुत बालूदार चाहिये। जिस स्थान पर जल जमा रहता है वह स्थान पपीतेके लिए अनुपयुक्त है। खेत उत्तम रूपसे जोतकर १२, १२ हाथकी दूरी पर ४ फुट गहरा और ४ फुट गोला गड्ढे बनाने चाहियें। वैशाख और ज्येष्ठ मासमें ही खेत ठीक कर लेना चाहिये। गड्ढेकी मिट्टी निकाल कर उसके चारों तरफ छींट देनी चाहिये। उसके बाद मिट्टीके साथ पुराना खाद मिलाकर गड्ढेमें भर देना पड़ता है। वर्षाके जलसे मिट्टी बैठ जानेके बाद वहां पर पपीतेका बीज रोपन करना चाहिये। बीजोंको किसी टबमें लगाना चाहिये; जब उनसे अंकुर निकल कर ४, ५ इंचके हो जायं तब उन्हें उखाड़ कर खेतमें लगा देना चाहिये। पौधा उखाड़नेके पूर्व प्रचुर परिमाणमें जल देना नितान्त आवश्यक है। पपीतेका बीज अंकुरित होनेमें प्रायः १५ दिन लगते हैं।

पपीतेका पेड़ अत्यन्त द्रुतवेगसे बढ़ता है। इसलिए इसकी खेती करनेमें खाद और जल यथेष्ट परिमाणमें देना चाहिये। खेत किसी जलाशयके निकटवर्ती हो तो और अच्छा। पौधा बैठानेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि जहां धड़ जड़के साथ

मिलता है वहां मिट्टी न पड़ने पावे। पपीता गोल अथवा लम्बा दोनों प्रकारका होता है। बड़ा फल तैयार करनेके लिए कुछ कच्चे फलोंको तोड़ लेना चाहिये। वर्षमें प्रायः सब समय पपीतेका फल होता है; किन्तु गर्मीके दिनोंमें फल मीठा होता है। नौ महीनेसे लेकर एक वर्षके भीतर ही पपीतेका वृक्ष फलने लगता है और तीन वर्ष तक फल प्रायः एक समान देता है। इसके बाद और तीन वर्ष तक वृक्ष रह सकता है। किन्तु फलता कम है और फल भी निकृष्ट श्रेणीके होते हैं। साधारणतः प्रत्येक वृक्षमें २०, २५ फल होते हैं। फलका अग्रभाग पीला होनेसे ज्ञात होता है कि फल पक रहा है। इसी समय तोड़ कर पुआलमें रख देने पर २, ४ दिनमें फल पक जाता है। पेपेन प्रस्तुत करनेके लिए एक बीघेमें २५० वृक्ष और उत्तम फलके लिए १ बीघेमें १५० वृक्ष लगाये जा सकते हैं।

हम पहले कह आये हैं कि बीजसे पैदा हुआ पपीतेका वृक्ष अच्छा फल नहीं देता। इसलिए क़लम लगाना चाहिये। कलम उतारनेके लिए पुराने स्त्री-वृक्षका सिर छांट दिया जाता है। कुछ दिनमें उसके आसपास शाखा निकलती हैं। शाखा एक फुट लम्बी हो जाती है तो काटकर प्रायः २ मासके पौधेके साथ लगा देते हैं। पौधेका उपरिभाग काट कर अंगरेज़ी V अक्षरके सदृश सूराख़ बना देना पड़ता है। उसके बाद शाखाके नीचेके भागको इस प्रकार काटना पड़ता है कि उक्त सूराख़में वह ठीक ठीक बैठ जाय। वर्षाके पूर्व पूर्वोक्त कलमका नारियल अथवा केलेके छिलकोंसे अच्छी तरह लपेट कर रखनेसे कुछ ही दिनोंमें कलम तैयार हो जाती है। बाकुबुद्वीप तथा उटाकमान्डके बीज ही सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं, किन्तु कलकत्तेके सन्निकट कई जगहोंमें उत्कृष्ट जातिके पपीते पाये जाते हैं।

पेपेन प्रस्तुत करनेके लिए खूब बड़ा पपीता न होनेसे भी काम चलता है, पर फल मीठा होना अत्यावश्यक है। तीन महीनेके फलमें एक प्रकारका लसदार पदार्थ पाया जाता है। उसे बाहर निकालनेके लिए फलके छिलकेको ⅛ इंचसे ⅙ इंच तक चीर देना पड़ता है। तीक्ष्ण धारवाली काठकी ही छुरी इस कार्य्यके लिए अच्छी होती है। इस प्रकारकी छुरीसे बड़े सवेरे फलको काट कर उसके नीचे चीनी अथवा एनामेलका बर्तन टांग देना चाहिये। रस गिर गिरकर उसी पात्रमें जमा होता जाता है। २, ३ घण्टेके भीतर ही सब रस निकल आता है। तब विभिन्न पात्रोंसे रस एकत्र करके उसे सुखानेका बन्दोबस्त करना चाहिये। प्रायः ६० फल अथवा पांच पेड़से एक सेर लसदार पदार्थ पाया जाता है। एक फलको तीन दिनके बाद एक बार काट देनेसे काम चल सकता है। एक सेर रस सुख जाने पर प्रायः ७ छटांक गोंद बनता है।

गोंद सुखानेके पहले उसे ( Rectified spirit ) रेकटीफैड स्पिरिट द्वारा परिष्कार करलेना अच्छा होता है। किन्तु यह अत्यावश्यक नहीं है। थोड़ासा पेपेन प्रस्तुत करनेके लिए रसको शीशेके ( Pans ) ऊपर ही सुखा लेनेसे काम चल सकता है। किन्तु अधिक मात्रामें बनानेके लिए घरमें ईंटके एक चूल्हेमें आग जलाकर उसे लोहेकी एक चद्दरसे ढक देना चाहिये। भिन्न भिन्न पात्रोंमें रस रखकर उन्हें चद्दरके एक फुट ऊपर लटका देते हैं। २, ३ इंच चौड़ी लकड़ीके चौखूंटे फ्रेमके नीचे किसी प्रकारका मोटा कपड़ा अथवा कैनवास लगा देनेसे इस कामके लिए एक पात्र प्रस्तुत हो जाता है। उस कपड़ेके ऊपर गोंद बिछा दिया जाता है। गरमी १०० डिग्री फारनहैट होना आवश्यक है। नीचेके पात्र क्रमशः ऊपर उठानेसे और ऊपरके पात्र नीचे करनेसे सब पात्रोंका गोन्द एक सा सूख जाता है। गीली अवस्थामें गोन्द शुद्ध दहीके ऐसा रहता है और सूख जानेपर उसका रंग कुछ मैला हो जाता है। गीले गोन्दमें कुछ कडुआपन रहता है। गोन्द रखनेके पात्रमें थोड़ासा फारमालिन ( Formalin ) लगा देनेसे यह कडवा-

पन जाता रहता है। बिल्कुल सूखे हुए गोंदका रंग बिस्कुटकी भांति होता है और बिस्कुटकी तरह ही वह भुर भुरा होता है, तनिक सी भी चट चटाहट रहनेसे समझना चाहिये कि गोन्द अभी ठीकसे सूखा नहीं है। सूखे हुए गोन्दकी मशीन द्वारा अच्छी तरह बुकनी करके तुरन्त वायुहीन बोतल अथवा टीनमें रख देना चाहिये। पेपेनका स्वाद नमकीन होता है। इससे दूध फट जाता है। कुछ परीक्षाओं द्वारा जाना गया है कि इसके द्वारा रबरका भी गोन्द जमाया जा सकता है। इस समय सिर्काम्ल (Acetic Acid) इसी कामके लिए व्यवहृत होता है। पेपेन द्वारा उक्त कार्य्य सम्पादित होनेसे इसके व्यवहारिक प्रयोग बढ़ जानेमें कुछ भी सन्देह नहीं।

बाज़ारमें दो प्रकारके पेपेन मिलते हैं—दानेदार और चूर्ण। दानेदार पेपेन फीका और धूम्र वर्णका होता है। खुला रहनेसे उसका रंग मैला हो जाता है। चूर्ण (पेपेन) का रंग बिस्कुटके रंगके सदृश होता है; उसमें कुछ परिवर्तन नहीं होता। इसके अतिरिक्त एक प्रकारका उजला पेपेन पाया जाता है। वह औषधके काममें नहीं आता; कारण कि अत्यन्त स्वच्छ करनेसे पेपेनका नाशकारक गुण नष्ट हो जाता है। सबसे उत्कृष्ट पेपेन सिंहल द्वीपमें पैदा होता है। अन्य द्रव्योंकी नाईं पेपेनमें भी कई प्रकारके पदार्थ मिलाये जाते हैं। साधारणतः मांड (Starch), अरारूट, सूखा तथा चूर्ण किया हुआ गटापार्चा और कई प्रकारके पेड़के गोन्द आदि, नाना प्रकारके पदार्थ, इसमें मिलाये जाते हैं। पेपेनका प्रधान खरीदार मार्किन, जर्मनी और इंगलेन्ड हैं। किन्तु मार्किनका (न्यूयार्क शहर) ही पेपेनका प्रसिद्ध बाजार है। सालमें लाखों रुपया से भी अधिक मूल्यका पेपेन भिन्न भिन्न स्थानोंसे मार्किनको चालान होता है। विगत कई वर्षोंमें पेपेनका बाजार दर बहुत चढ़ गया है। युद्धके समय खुचरा ख़रीदारोंको प्रायः १८) एक पौन्ड पेपेनके लिए देने पड़ते थे। आजकल प्रायः ५) में एक पौन्ड (आध सेर) मिलता है।

हम लोगोंके देशमें ऐसे अनेक स्थान हैं जहांपर पपीतेके स्थानीय ख़रीदार बहुत कम हैं और दूरके बाजारमें ले जानेके लिए बहुत व्यय और कष्ट होता है। ऐसी हालतमें पेपेन प्रस्तुत करना ही पपीतेके पेड़का सद्व्यवहार करना है। विस्तृत भावसे पपीतेकी खेती करनेसे फल बेचनेके अलावा पेपेन प्रस्तुत करनेमें भी विशेष लाभ है। कारण पुरुष-वृक्षके फलमें भी यथेष्ट परिमाणमें पेपेन पाया जाता है। आजकल चार आनेसे कममें अच्छा पपीता नहीं मिलता। अतएव उद्यान-फसलमें यह एक विशेष लाभप्रद फसल है। उत्कृष्ट जातिके पपीतेकी खेती करना सब प्रकारसे लाभदायक है।

श्री उमेशप्रसाद सिंह

---

# कठोरता
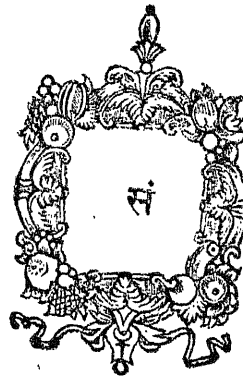
सारमें जितने पदार्थ हैं उनमेंसे कुछ कठोर अथवा कड़े होते हैं और कुछ कोमल अथवा नरम। जिस पदार्थके काटने वा खरोंचनेमें जितनी अधिक कठिनाई होती है वह उतना ही अधिक कड़ा समझा जाता है। साधारणतः जो पदार्थ द्रव या वायु रूपमें हैं उनके काटने वा खरोंचनेमें कुछ भी कठिनाई नहीं मालूम पड़ती और अगर होती भी है तो बहुत थोड़ी; अतएव ठोस पदार्थोंकी अपेक्षा बहुत नरम होते हैं। जो पदार्थ ठोस होते हैं उनके काटने वा खरोंचनेमें कठिनाई होती है, अतएव वह कड़े होते हैं।

सब ठोस पदार्थोंके काटने वा खरोंचनेमें एक सी कठिनाई नहीं होती; इसीलिए कोई अधिक कड़े होते हैं और कोई कम। निरपेक्ष कठोरता

(Absolute hardness) नापनेकी न तो कोई विशेष रीति है और न उसके नापनेकी (unit of measurement) इकाई ही है। आपेक्षिक (Relative) कठोरता अवश्य नापी जा सकती है; इसके नापनेकी एक बहुत पुरानी विधि है। जिन दो या अधिक पदार्थोंकी आपेक्षिक कठोरता नापनी हो उनको तोड़ कर टुकड़े करलो। फिर एक पदार्थका एक टुकड़ा उठाकर उसकी नोकसे दूसरे पदार्थकी हमवार सतहपर (समतल) खरोंचो। अगर दूसरे पदार्थ पर खरोंचनेकी लकीर न पड़े और पहलेकी नोक घिस जाय तो दूसरे पदार्थको अधिक कड़ा मानेंगे। इसी प्रकार कई बार परीक्षा करनेसे पदार्थोंकी कठोरताके क्रमसे सूची बना सकते हैं। उपर्युक्त विधिसे यह मालूम हुआ है कि हीरा सब पदार्थोंसे कड़ा होता है; तभी तो कांच तथा अन्य कड़ी चीज़ोंके काटनेके औज़ारोंकी नोक वा धार हीरेकी बनाई जाती है। जिन क़लमोंकी नोकपर हीरा लगा होता है वह प्रायः कभी नहीं घिसती हैं। रोज़के कामकी चीज़ोंमें कांच सबसे कड़ा होता है। इसके बाद फ़ौलादका नम्बर है। मोम बहुत मुलायम होता है, लिखनेका खरिया इससे भी मुलायम होती है। इसीसे इसकी नोक सब चीज़ों पर घिस जाती है। विज्ञान प्रेमियोंके मनमें यह प्रश्न उठना बिल्कुल स्वाभाविक है कि एक पदार्थ दूसरेसे क्यों अधिक कड़ा होता है? कड़े पदार्थमें नरम पदार्थकी अपेक्षा क्या वस्तु अधिक होती है? क्या प्रत्येक पदार्थ हमेशा एकसा कड़ा रहता है? ऐसे प्रश्न वैज्ञानिकोंके लिए सदासे ही उपस्थित रहे हैं और लोग इनका कुछ न कुछ उत्तर सोचते ही रहे हैं।

पहले लोग सोचते थे कि जिस पदार्थके अणु, जिनसे वह पदार्थ बना है, बहुत पास पास होते हैं अर्थात् जिस पदार्थका घनत्व (density) अधिक होता है अधिक कड़ा होता है। लेकिन वैज्ञानिकोंको यह बहुत जल्द मालूम हो गया कि यह भूल है। बहुत सी चीज़ें घनत्वमें अधिक होनेपर भी कम कड़ी होती हैं, जैसे सीसा फौलादसे घनत्वमें लगभग दूना होता है; परन्तु फौलादसे नरम होता है तभी तो फौलादसे कट जाता है। इसी तरहकी और भी बातें कहकर इस समस्याके हल करनेकी कोशिश की गई, पर कोई संतोष जनक बात थोड़े दिन पहिले तक नहीं दिखाई दी।

हालमें कठोरताके कारणके विषयमें लोगोंको कुछ विचित्र प्रमाण मिले हैं; इनसे सिद्ध होता है कि कड़ा वा नरम होना किसी वस्तुका विशेष गुण नहीं है। नरमसे नरम पदार्थ यदि बड़े वेगसे चले तो वह कड़ा मालूम होगा। वस्तुतः जो पदार्थ साधारणतः कड़े मालूम होते हैं उनके अणु बड़े वेगसे घूम रहे हैं। इसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं।

जब बंदूकसे फौलादकी गोली चला कर किसी दूरकी खिड़कीके कांचमें मारी जाती है तो वह कांच दरक कर टूट जाता है। इससे मालूम होता है कि गोली कांचसे ज़्यादा मज़बूत है; पर उससे अधिक कड़ी नहीं है; अन्यथा कांचमें एक साफ़ छेद हो जाता और वह दरकता नहीं। लेकिन वही गोली यदि किसी बढ़िया बंदूकसे तेजीसे चलाकर किसी पासकी खिड़कीपर मारी जाय तो वास्तवमें कांचमें एक साफ़ छेद हो जाता है और वह दरकता नहीं है। इससे मालूम होता है कि तेज़ चलनेवाली गोली धीरे चलनेवाली गोलीसे अधिक कड़ी है।

मोमबत्ती लकड़ीकी अपेक्षा बड़ी नरम चीज़ है; परन्तु मोमबत्ती जब किसी बंदूकके द्वारा बड़े वेगसे फेंकी जाती है तो उससे चीड़की लकड़ी (dealwood) के तख़्तेमें एक काफ़ी गहरा गड्ढा हो जाता है। इससे मालूम होता है कि तेज़ चलनेके कारण मोमबत्तीमें बहुत कड़ापन आ गया; अन्यथा मोमबत्तीसे लकड़ीमें गड्ढा खुदना असम्भव था।

अमेरिकामें नियाग्रा नामका एक बड़ा जल प्रपात है। वहाँ पानी बहुत ऊंचाई से आनेके कारण बड़ी तेज़ीसे गिरता है। यदि कोई आदमी नीचे खड़ा

होकर गिरते हुए पानीमें कोई कुल्हाड़ी या फरसा मारे तो कुल्हाड़ीकी धारको पानीमें एक इञ्च भी धंसाना बहुत मुश्किल हो जाता है। इससे मालूम होता है कि पानी जो कि इतना कोमल पदार्थ है वेग से गिरनेके कारण इतना कड़ा हो जाता है कि कुल्हाड़ीसे भी नहीं कटता।

एक प्रमाण और भी मिलता है। वह प्रायः इन सबसे विचित्र है। कुछ धातुएँ रेडियम, यूरेनियम या थोरियम आदि विकीरक (Radioactive) होती हैं अर्थात् वह हमेशा अपनेमेंसे छोटे छोटे कण (Particle) चारों ओर फेंका करती हैं। यह कण बहुत ही छोटे होते हैं; यहां तक कि कुछ तो उज्जनके परमाणु (Hydrogen atom) के $\frac{1}{1830}$वें भागके बराबर होते हैं, किन्तु वह चलते बड़े वेगसे हैं। इनकी चाल रोशनीकी चालसे कुछ ही कम होती है। इनमें से सबसे बड़े कणोंका नाम 'अ-कण' (L-particle) है। जब यह 'अ' कण हवामें होकर निकलते हैं तो हवाको आयोनाइज़ (ionise) कर देते हैं अर्थात् हवाके अणुओंको (Molecules) दो दो विद्युद्वाहक टुकड़ोंमें विभक्त कर देते हैं। इन टुकड़ोंमें से आधोंमें एक भांतिकी बिजली होती है और आधोंमें दूसरी भांति की; इस कारण उस हवामें होकर बिजली की धारा निकल सकती है। यह देखा गया है कि आरम्भमें 'अ-कण' हवाको थोड़ी दूर तक आयोनाइज़ नहीं करते और बादमें करने लगते हैं। बात यह है कि शुरुमें 'अ' कण बड़े वेगसे चलते हैं। इससे बहुत कड़े होते हैं और हवाके अणुओं (Molecules) में छेद करके साफ़ निकल जाते हैं, परन्तु जब थोड़ी दूर चलकर कुछ धीमे पड़ जाते हैं तो उतने कड़े नहीं रहते और हवाके अणुओं (molecules) में साफ़ छेद नहीं कर पाते वरन् उनको धक्का कर दो टुकड़ोंमें तोड़ देते हैं; इसीसे हवा आयोनाइज़ (ionise) होकर विद्युद्वाहक बन जाती है। इन सब प्रमाणोंसे जान पड़ता है कि यदि कोई भी वस्तु तेज़ीसे चले तो वह कड़ी मालूम होगी। कड़ापन पदार्थका विशेष गुण नहीं है। कड़ापन किसी वस्तु, या उसके अणुओं (Molecules) की चाल पर निर्भर है।

—लक्ष्मीनारायण गुप्त, एम० एस० सी०

## मिट्टी का तेल

कोई पचास वर्ष पूर्व भारतके समस्त भागोंमें खाने, शरीरमें लगाने, अथवा जलानेमें तिल्ली या सरसों-का तेल काममें लाया जाता था। इस देशमें महुआ, रेंडी और गिरीके तेलका कम व्यवहार था; पर अधिकतर इन्हीं दोनों तेलोंका प्रचार था। उत्तरी ब्रह्माको भारतमें मिलानेके पूर्व मिट्टीके तेलका प्रचार यहां बिलकुल न था। लोग सरसों आदिके तेलोंको अपने व्यवहारमें लाते थे।

सम्वत् १९४३ में अंगरेज़ोंने जब उत्तरी बरमा जीत कर भारतमें मिला लिया तब उनको मिट्टी का तेल निकालनेका अच्छा सुअवसर प्राप्त हुआ। यह तेल सरसों आदिके तेलसे बहुत सस्ता था। यद्यपि वह केवल जलानेके ही काम आता था; पर सस्ते होनेके कारण इसका प्रचार बढ़ने लगा। इसकी दुर्गंध और इसके हानिकारक धुंएके कारण पहिले इसका प्रचार बहुत धीरे धीरे हुआ। पर जबसे सस्ते सस्ते लैम्प जर्मनी, आस्ट्रिया और अमेरिकासे आने लगे और इसका तेल धीरे धीरे अधिक स्वच्छ होने लगा त्यों त्यों शहर-वालोंमें इसका प्रचार बढ़ता गया। इसमें सन्देह नहीं कि इसका तेल नेत्रोंके लिए हानिकारक है पर लैम्पोंकी ज्योतिमें प्रकाश अधिक होता है; इसीसे नगरवालोंने पहिले पहिल इसे अपनाया। उस समय नगरोंमें बिजलीका प्रबन्ध न था; अतः नगरोंको प्रकाशित रखनेके लिए इन्हीं

लम्पोंसे काम लिया गया। धीरे धीरे गाँवों तकमें इसका प्रचार फैल गया। इसका मुख्य कारण लोगोंकी दरिद्रता था। गांवके दीन कृषक हीन तो थे ही, फिर वह भला कम ख़र्चकी चीज़को क्यों न अपनाते? इसको जलानेके लिए उन्होंने मिट्टीकी ढिबरियां निकालीं।

इन्हीं दिनों आपसके युद्ध बन्द होनेसे भारत-की जन-संख्या भी बढ़ने लगी, जिससे तेलकी मांग भी बढ़ गई। रेल और जहाज़ोंके प्रचारसे देशका भीतरी और बाहरी व्यापार भी बहुत बढ़ गया। देशसे कच्चा माल अधिक परिमाणमें बाहर जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि अधिकांश भूमि अन्न रूई आदि पदार्थोंके उत्पन्न करनेमें लगाई जाने लगी। लोगोंने अलसी, तिली और सरसों आदि बोना कमकर दिया। इधर जन संख्याके बढ़नेसे तेलकी मांग बढ़ी, उधर सरसों आदि कच्चे पदार्थ विदेशको जाने लगे। अतः यह स्वाभाविक बात थी कि वानस्पतिक तेलोंका मूल्य बढ़ जाता। एक तरफ सरसोंके तेलका मूल्य बढ़ रहा था, दूसरी ओर रेल इत्यादिके बननेसे देशके भीतर एक स्थानसे दूसरे स्थान तक किसी पदार्थ-को ले जानेमें प्रति दिवस सुगमता होती जा रही थी। मिट्टीके तेलके स्थानोंमें पैप लैनके बन जानेसे लादनेका व्यय और भी कम हो गया। इस प्रकार ज्यों ज्यों व्यय कम होता गया त्यों त्यों यह तेल सस्ता होता गया और उतना ही अधिक इसका प्रचार होता गया; यहाँ तक अब कदाचित् ही कोई ऐसा स्थान होगा जहाँ मिट्टीका तेल न जलाया जाता हो।

इस देशमें मिट्टीके तेलके सोतोंके दो विभाग हैं। पहिला विभाग पूर्वकी ओर है। यह बहुत ही बड़ा विभाग है। इस विभागके सोते आसाम, बरमा, आराकानके निकटवर्ती टापू, सुमात्रा, जावा और बोरनियो आदिमें पाये जाते हैं। दूसरा विभाग पश्चिम की ओर है। इसके सोते पंजाब और बेलूचिस्तानके उस पार अँगरेज़ी हद्के बाहर तक पाये जाते हैं। यह विभाग पहिले की अपेक्षा बहुत छोटा है। उत्तरी पंजाबमें रावलपिंडी और शाहपूरके बीचमें इन सोतोंसे अधिक तेल निकलता है। सम्वत् १९७२ में पहले पहिल खऊरमें पर्याप्त परिणाममें तेल निकाला गया था। इस समय वहां-पर १० कुओंसे तेल निकाला जाता है और इन कुओंकी गहराई अधिकसे अधिक १७ सौ फुट है। इन कुओंसे इतना काफी तेल निकलने लगा है कि अब वहाँपर तेल साफ करने का कारखाना खोलने का विचार है। यह कारखाना रावलपिंडी-में बनाया जा रहा है और यहांसे ४२ मील तक पैप लैन बनाई जायेगी।

उत्तरकी तरफ चलकर काश्मीरमें भी कुछ तेलके सोते पाये जाते हैं। कहा जाता है कि जम्मूमें उद्योग करनेपर तेल निकाला जा सकता है। बलूचिस्तानमें कलातके निकट, गनडावाके उत्तरमें शोरन में तेलके सोते हैं। खातन, हरनाई और स्पिनटंगीके ज़िलोंमें सोते हैं। पर यहां की अवस्था ऐसी नहीं कि तेल निकाला जा सके। भारत सरकारने कई बार तेल निकालनेकी चेष्टा की पर सफलता न हुई

दूसरा भाग पहिलेकी अपेक्षा बहुत लम्बा, चौड़ा और तेल देनेवाला है। अन्यत्र दी हुई तालिकासे पता चल जायेगा कि भारतका ९८ प्रति सैकड़ा तेल इस विभागसे निकलता है। हम कह आये हैं कि यह विभाग आसाम, ब्रह्मा होता हुआ सुमात्रा द्वीप तक चला गया है। आसाम के सोते चन्द्रा-कारमें आग्नेय दिशासे ब्रह्मा तक चले गये हैं। डिगवी, बापा पंग, मकूम और बदारपुर मुख्य स्थान हैं, जहांपर तेल निकाला जाता है। मकूम में पहिले पहल १८६७ सम्वत् १९१४ वि० में तेलके कुए खोदे गये, पर असली काम सम्वत १९५९ से हुई और तब प्रतिवर्ष ३५ से ४० लाख गैलन तक तेल निकलता है। इस देश में जितना तेल होता है उसका ९८ प्रति सैकड़ा ब्रह्मा से आता है। यहांका सब से पुराना तेलका स्थान यनांग-

याग है। ब्रिटिश राजके पहले वहां तेल निकाला जाता था। यहां ब्रिटिश राज्यमें मिलनेके पहिले २० लाख गैलन तेल प्रति वर्ष निकलता था। यह स्थान इरावदी नदीके किनारे रंगूनके उत्तरमें है। खिन्यन खोदंग और बीम इसके तीन मुख्य भाग हैं। सम्वत् १९४४ में पहिले पहिल यहां खुदाईका कार्य प्रारम्भ हुआ।

यहां का दूसरा स्थान पकोकू ज़िलेमें यनांग-यात है। सम्वत् १९४८ के पूर्व यहां बहुत थोड़ा तेल निकलता था; पर जबसे इसका प्रबन्ध बरमा आयल कम्पनीके हाथमें आया है तब से इसकी उपज बहुत बढ़ गई है।

यहांका तीसरा स्थान सिंगू है। यह स्थान मिगियन जिलेमें यनांगयाग से ३० मील उत्तर है। यहां तेल लगातार पाया जाता है। इस देश-में तेलके निकासके लिहाज से यह द्वितीय स्थान है। इस स्थान की निकास सम्वत् १९६० वि० में ५० लाख गैलन, १९६२ और १९६३ में ४ करोड़ ३० लाख गैलन थी। १९६७ वि० में इसकी निकास केवल ३ करोड़ १२ लाख गैलन रह गई; पर ११६९ में फिर बढ़कर ५ करोड़ ६५ लाख गैलन हो गई।

ब्रह्मामें तेलके स्थान विशेष कर इरावदी और छिन्दविन नदियोंकी घाटीमें पाये जाते हैं। युराकान किनारे परके द्वीपोंमें भी तेल पाया जाता है। इरावदी नदीके किनारेके स्थान एक दूसरेसे पैप लैनोंसे मिला दिये गये हैं। यह पैप लैन इन स्थानोंसे रंगून तक जाती है। इनके द्वारा कच्चा माल रंगून तक लाया जाता है और वहां शुद्ध किया जाता है। फिर रंगूनसे रेलों और जहाजोंसे भारतके भीतर बाहर चारों ओर भेजा जाता है। छिन्दविन, शिडवो, टेटमो, हेनज़ादा, प्रोम, वेरेन्गो, रेमरी और मिन्बू आदि स्थानों में भी तेल के सोते हैं और उनसे तेल निकाला जाता है। सम्वत् १९६८ में वेरेन्गो द्वीप से २० सहस्र और क्याकप्यू जिले के रेमरी द्वीप से ३७ सहस्र गैलन तेल निकाला गया था। मिन्वो द्वीप के सोते सम्वत् १९६७ में खोदे गये थे। उस वर्ष केवल १८३२० गैलन तेल निकला। पर १९६९ वि० में यह संख्या ४० लाख गैलन तक पहुँची। इन स्थानों पर अभी तक अच्छी तरह तेल निकालने का उद्योग नहीं किया गया है।

निम्नलिखित तालिका से पता चलता है कि सम्वत् १९६५ से प्रति वर्ष किस किस विभाग से कितना तेल निकाला गया है।

तालिका

| वर्ष सम्वत् | ब्रह्मा टन | आसाम टन | पंजाब टन | कुल टन |
|---|---|---|---|---|
| १९६५ | ६,९३,६११ | १२,९७२ | २ | ७०६५८५ |
| १९६६ | ९२१५९६ | १३१२३ | ३ | ९३४७१२ |
| १९६७ | ८४६०३१ | १३२८३ | ४ | ८५९३१८ |
| १९६८ | ८८८९०२ | १४२६१ | ६ | ९०३१६९ |
| १९६९ | ९८१३४१ | १४९९० | ४ | ९९६३३५ |
| १९७० | १०८९०६२ | १८७५४ | ५ | ११०७८२१ |
| १९७१ | १०१८६१२ | १८७५४ | ५ | १०३७३७१ |
| १९७२ | ११२९१६८ | १८२०० | १००५ | ११४८३७२ |
| १९७३ | ११६७०७६ | २०९४८ | ७३५ | ११८८७५९ |
| १९७४ | १०९११८१ | ३७३७९ | २४७८ | ११३१०३८ |
| १९७५ | १०९९३३८ | ४३९९९ | ३००३ | ११४६३४० |
| १९७६ | ११७४९९५ | ४७१५५ | ४५७ | १२२२६०७ |

—श्याम बिहारीलाल कपूर

## विश्वासघातका फल

( गतांगसे आगे )
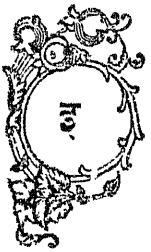
इस समय षड़यन्त्र-कारी परस्पर धीरे धीरे बातें करने लगे। सुलताना कुछ भी न सुन सकी, पर उनकी चेष्टाओंसे यह मालूम हुआ कि वे लोग कुछ भी निश्चय न कर सके। इसी बीचमें दिलेरखाँ हाथके इशारेसे सबको शान्त करके बोला—"मुझे खेदके साथ कहना पड़ता है कि इस मामूली कामको पूरा करनेका कोई उपाय न सोच सके। इसके पूरा करनेमें लगेगा ही क्या। आप व्यर्थ ही बड़े बड़े मंसूबे बांध रहे हैं। इस कामके करनेमें केवल ज़रा सी हिम्मतकी ज़रूरत है। आप लोगोंमें से कई एक ऐसे लोग हैं जो बेगम साहिबासे एकान्तमें उनके महलमें भेंट किया करते हैं। वही लोग एकान्तमें सुलतानासे भेंट करें। पास पहुँचते ही एक झपाटेमें काम पूरा हो जायगा। एक हाथ गले पर और दूसरेसे सीनेमें खञ्जर का वार; बस काम पूरा हुआ। कहिये कैसा सहज उपाय है।"

दिलेरखांके कह चुकनेपर सब एक दूसरेका मुँह ताकने लगे। किसीके मुँहसे एक बोल तक न निकला। तब इनयातउल्लाने अपने मित्रोंकी ओर घूर कर देखा। उसने कहा—"शाबाश दिलेरखां, आपने ठीक निशाना लगाया है। आपकी तरकीब बहुत ही अच्छी है। सुलतानाको उसीके महलमें बध करना सबसे बढ़ कर उपाय है। ज़रा सी हिम्मत करनेसे ही सब काम फतेह है।"

दरियाखां और मुम्ताज़अलीने भी सिर हिला कर अपनी सम्मति प्रकट की। दरियाखांने कहा—"बहुत ठीक है।" मुम्ताज़अली बोले—"यह साहसका काम है। मुझे इसकी सफलतामें ऐसी कोई अड़चन नहीं देख पड़ती।" इलाहीजान केवल चुपचाप बैठा सुनता रहा। उसने कुछ भी न कहा।

इनायतउल्ला बोला—"और सुलतानासे भेंट करनेके लिए एक ख़ासा बहाना भी है। एक हफ़्ता हुआ, किसी अज्ञात अपराध पर, रहीमबख़्श गिरिफ़्तार हुआ है। वह हम लोगोंका मित्र है। अतएव हम उसे क्षमा कर देनेके लिए सुलतानासे प्रार्थना कर सकते हैं।"

दिलेरखां—आपको अब और क्या चाहिये। ऐसी दशामें कोई किसी तरहका सन्देह भी तो नहीं कर सकता। काम हो जाने पर अहमदनगर पर अपना ही अधिकार समझिये।

बगलके कमरेमें खड़ी सुलताना अपने माथेका पसीना पोंछती हुई बोली, "रुस्तम, षड़यंत्र तो ख़ासा रचा गया है।"

सिर हिलाकर रुस्तमने कहा—"हां बहुत ठीक है। पर हुज़ूर निर्भय रहें। मैं रक्षकोंको अब बुलाता हूं। इतना कहकर वह खिड़कीकी ओर बढ़ा।"

सुलतानाने उसे रोक कर उसके कानमें कहा—"नहीं अभी नहीं, आओ पहले हम पूरा हाल जान लें। रुस्तमने आश्चर्यसे उसकी ओर देखकर कहा—"जैसी हुज़ूरकी मर्ज़ी, पर मेरी समझमें उनका बुला लेना बेहतर था।" सुलतानाने कुछ न कहा और पहलेकी भांति सूराखमें कान लगाकर फिर ध्यानसे सुनने लगी।

उन लोगोंमें फिर कुछ बातें धीरे धीरे हुईं। इनायतउल्लाने कहा—"भगवान् मालिक हैं। यही होगा।" दिलेरखांने सलाम करके अपनी प्रसन्नता प्रकट की और कहा—"और यह तो बताइये कि यह काम होगा किस दिन। मुझे इस बातकी सूचना मिलनी चाहिये, क्योंकि शहरपर आक्रमण करनेके लिए सेनाको भी तैयार रखना है। आज मंगल है। मेरी समझमें गुरुवारका दिन इस कार्यके लिए ठीक होगा। इतने ही समयमें मैं अपनी सेना तैयार कर लूंगा।"

इनायतउल्ला—और आप कैसे जानेंगे कि काम सिद्ध होगया। इसकी ख़बर हमें आपको भी तो देना चाहिये।

थोड़ी देर सोचनेके बाद दिलेरखां बोला—"शहरके उत्तरी फाटकसे इस बातका संकेत करियेगा। संकेत हो···" इतना कहकर वह ठहर गया और कान लगाकर सुनने लगा। घंटा बज रहा था। उसने कहा—"अरे ग्यारह बज गये। अब हम लोगोंको चलना चाहिये। संकेतकी बात आओ हम लोग चलते चलते तै कर लें। फाटक तक तो आप लोग चलेंगे ही।"

इनायतउल्ला उठ खड़ा हुआ। साथ ही दूसरे लोग भी खड़े हो गये। और बिना एक बात भी किये वह सबके सब एक एक करके कमरेसे बाहर होगये।

सुलताना शीघ्रतासे रुस्तमकी ओर मुड़ी और दांतोंको दबाकर बोली—"सीटी दो" रुस्तम खिड़कीकी ओर बढ़ा, परन्तु उस स्त्रीने उसका कपड़ा पकड़ लिया और कहा—"ठहरो, इसकी अपेक्षा बढ़िया उपाय एक और है।"

सुलतानाने आश्चर्यसे उसकी ओर अपनी आंखें फेरीं और कहा—बीबी, कौनसा बढ़िया उपाय बताती हो?

उस स्त्रीने संक्षेपमें अपनी बात कह दी। उसकी बात सुनकर सुलताना उसकी बुद्धि पर रीझ गई। सुलतानाने कहा—"बीबी, तुम्हें मर्द होना चाहिये था। तुम्हारा उपाय भी एक ही है।"

रुस्तमका चेहरा भी प्रसन्नतासे खिल उठा। उसके उपायका समर्थन करते हुए उसने कहा—"बहुत ठीक है, पर है इसमें जोखिम।"

सुलतानाने धीरेसे मुस्करा दिया। वह बोली—"किस बातकी जोखिम। कुछ रक्षकोंको लिये तू बाहर खड़ा रहना। मुझे किसी बातका डर नहीं। उसी तरह तुझे भी न डरना चाहिये। और ज़रा यह भी तो सोच कि इसका अर्थ क्या है। अरे, इससे ये षड़यंत्रकारी सबके सब नष्ट हो जायंगे। अच्छा, क्या वह लोग गये?"

उस स्त्रीने कमरेसे छज्जे पर जाकर नीचे झांककर देखा। बाहर का दरवाजा बन्द हो रहा था। उसे बन्द करके नौकरने आवाज़ दी—"बीबी, वह लोग चले गये। मैंने किवाड़ लगा दिये हैं। यह सुन वह स्त्री सुलतानाके पास आगई। तब वह लोग भी नीचे उतर आये। नौकरने दरवाज़ा खोल दिया। उस स्त्रीने तिरछी निगाहसे सुलतानाकी ओर देख कर कांपते हुए स्वरमें केवल यही कहा—"जहांपनाह।" सुलतानाने हंसकर कहा—"बीबी, मत डरो। तुम्हारा प्रेमी तुम्हें मिलेगा। तुम्हारा यह भेद उसकी अपेक्षा दूने मूल्यका है। रुस्तम, ऐसा ही है न! अच्छा तुमको हमें धन्यवाद देना चाहिये।" इतना कहकर सुलतानाने उसे गलेसे लगा लिया और कहा—"ईश्वर मालिक है। बीबी सलाम।" इसके बाद वह दोनों मकानसे बाहर हो गये और गलीमें पहुंचते ही अंधकारके कारण नज़रोंसे गायब हो गये।

इनायतउल्लाखाँ प्रभृति अहमदनगर राज्यके अमीर उमरा सुलतानाके निरङ्कुश शासनसे असंतुष्ट रहते थे। दरबारकी दशा पहलेसे भी अधिक शोचनीय हो गयी थी। दरबारियोंकी दलबन्दीके कारण राज्य-प्रबन्धमें बड़ी गड़बड़ी हो रही थी। जब सुलतानाने राज्य-शासनकी बागडोर अपने हाथोंमें ली तब उसने पुराने कर्मचारियोंको राज-काजसे पृथक् कर दिया और उनके स्थानमें अपने मनके लोगोंको नियुक्त किया। यह लोग सत्कुलोत्पन्न नहीं थे। उसके प्रिय पात्रोंमें शाही अल्लादोंका सरदार रुस्तम अग्रगण्य था। इस कारण दरबारके अमीर उमरा उससे असंतुष्ट रहते थे। अतएव वह सुलतानाको तख़्त परसे उतार देनेकी चिन्तामें लगे रहते थे। तदनुसार उन्होंने उपर्युक्त षड़यंत्रकी रचना की।

इनायतउल्ला दृढ़ निश्चयका मनुष्य था। अपने निश्चयसे उसे कोई बात न डिगा सकती

थी। अतएव सुलतानाके बधका भार उसीने अपने ऊपर लिया। उसे सहायता देनेके लिए उसके तीन मित्र भी तैयार हो गये थे। यह लोग भी उस षड़यंत्रमें शामिल थे।

जिस दिनका ठहराव दिलेर खाँ के साथ हुआ था उसी दिन शामको ठीक सात बजे इनायतउल्लाके घरसे चार आदमी बाहर निकले। इन लोगोंने सब बातें आपसमें ठीक करली थीं। किसको क्या करना होगा, यह उन्होंने पहले ही से निश्चय कर लिया था। वह लोग शाही महलोंकी ओर रवाना हुए। वह अपने विचारोंमें इतना अधिक तल्लीन हो रहे थे कि उन्हें इस बातकी ज़रा भी ख़बर न हुई कि उनके आस पास क्या हो रहा है। ज़िरह-बख़्तर पहने सैनिक लोग महलोंकी ओर जा रहे थे, उनमेंसे अनेक शाहराह और गलियोंमें भी घूम रहे थे। चारों ओर अस्त्र शस्त्रोंकी झन्कार हो रही थी। तो भी वह चारों अपनी धुनमें संलग्न थे; इस चहल पहलकी ओर ज़रा भी उनका ध्यान न गया। ठीक साढ़े सात बजे वह लोग शाही महलमें दाख़िल हुए और एकान्तमें सुलतानासे भेंट करनेकी प्रार्थना की। वह लोग तुरन्त महलके भीतर बुलाये गये और महलदारोग़ाने उन्हें सुलतानाकी सेवामें ला उपस्थित किया।

कमरेकी खिड़कियाँ खुली थीं। चन्द्र देव पूर्व दिशासे निकल कर अपनी शीतल रश्मियोंसे संतप्त हृदयोंको ठंडा करने लगे। सुलतानाका कमरा शमादानों और झाड़-फानूससे जगर-मगर हो रहा था। बीचमें दो आदमी, सुलताना और रुस्तम, खड़े थे। जब वह चारों दरबारी अमीर आगये तब सुलतानाने रुस्तमसे कहा—"रुस्तम, यह लोग मुझसे एकान्तमें भेंट करना चाहते हैं। क्यों सरदारो, यही तुम्हारी दरख़्वास्त है न?"

इनायतउल्लाने झुककर सलाम किया और रुस्तम तुरन्त कमरेके बाहर हो गया। सुलतानाने आगन्तुकोंको बैठ जानेकी आज्ञा दी और उन्हें अपनी इच्छाके विरुद्ध लाचार होकर बैठ जाना पड़ा; पर सुलताना उन लोगोंसे कुछ दूर खड़ी ही रही। उसके पीछे चोर दरवाज़ा खुला था।

सुलताना—आज आप लोग बड़े बे मौके आये हैं। मालूम होता है कोई बहुत ही आवश्यक काम आ पड़ा है।

इनायतउल्ला—"जहाँपनाह, ऐसा ही है" यह कहते हुए वह अभी आधा ही उठा था कि सुलतानाने कहा—"नहीं, आप बैठे ही बैठे कहें। खड़े होनेकी कोई ज़रूरत नहीं। मैं ध्यान से सुन रही हूं।" इनायतउल्लाने भेदभरी दृष्टिसे अपने साथियोंकी ओर देखा। उसे इस प्रकारकी अड़चनकी आशा न थी। यदि वह इसी तरह बैठे रहेंगे और सुलताना खड़े खड़े बातें करती रहेगी तो उन्हें अपना काम करनेका अवसर कैसे मिलेगा। वह यह नहीं जानता था कि सुलतानाको सारा हाल मालूम है। इस बातका गुमान तक उसे न हुआ। सुलताना उन लोगोंको उसी तरह ताक रही थी जैसे बिल्ली चूहोंपर निगाह रखती है।

सुलताना—हां, आप लोग क्या कहना चाहते हैं?

अपने सूखे हुए ओठोंको तर करके इनायतउल्लाने कहा—"जहांपनाह, मुझसे आगे कुछ नहीं कहा जाता। हम लोग आपको अप्रसन्न नहीं करना चाहते। मुझे डर लगता है कि कहीं हमारी प्रार्थना सुनकर हुज़ूर नाराज़ न हो जायँ।"

"और तुम्हारी प्रार्थना"?—सुलतानाने पूछा।

"जहांपनाह, ख़्वाजा दरियादिल एक हफ्ता हुआ गिरिफ़्तार कर लिया गया है। उसने क्या अपराध किया है, यह हमें नहीं मालूम है। परन्तु हम लोग इतना ज़रूर जानते हैं कि वह हुज़ूरका नमक हलाल ताबेदार है और सलतनतका ख़ैरख़्वाह है।"

"और तुम्हारी प्रार्थना है कि मैं उसे मुक्तकर दूं।"

इस पर उन चारों ने उठकर कोर्निश की।

सुलतानाने अपना सिर हिलाकर हाथसे खिड़कीकी ओर इशारा किया और हँसती हुई बोली—"सरदारो, तुम्हारी प्रार्थनाका उत्तर वहां

मिलेगा। झांककर नीचे देखो।" यह सुन कर वह लोग आश्चर्यसे एक दूसरेका मुंह ताकने लगे। सुलताना क्रोधसे अपने हाथ मल कर फिर बोली—"खिड़कीसे झांक कर नीचे देखो।" वह लोग घबराहटके साथ खिड़कीके पास गये। ज्योंही उन्होंने झांककर नीचे देखा, त्योंही भयसे वह कांप गये। इनायतउल्ला तो एकाएक चीख उठा।

चांदनीके प्रकाशमें जो दृश्य उन्हें नीचे देख पड़ा उससे उनकी देहका रक्त जम गया। क्योंकि वहां कई एक शूलियां लगी हुई थीं और उनमेंसे एक एक पर लाश झूम रही थी। वह भयंकर दृश्य देख कर वह लोग अपनी अपनी जगह पर लौट आये। उनके चेहरोंपर हवाइयां उड़ने लगीं।

सुलतानाने धीरेसे कहा—"हां, वह तुम्हारा मित्र है। देशद्रोहीका अन्त इसी तरह होता है। वहां ऐसे ही तीन लोगोंके लिए बल्कि चारके लिए भी गुञ्जायश है।"

इनायतउल्ला उत्तेजित हो गया। उसने तैशमें आकर अपनी तलवारकी मूँठपर हाथ रखा ही था कि सुलतानाने डपट कर कहा—"खबरदार मियाँ साहब। इतना कह कर उसने फ़र्श पर ज़ोरसे पैरकी आवाज़की। इस आवाज़के होतेही एक ओरका दरवाज़ा खुला और एक दर्जन शरीर रक्षक तुरन्त आ उपस्थित हुए। रुस्तम सबके आगे था। उन्होंने उन चारों सरदारोंको घेर लिया। यह सब बातें इतनी शीघ्रतासे हो गईं कि वह लोग ज़रा भी सोच न सके। दो शरीर-रक्षक अपनी नंगी तलवार लिए सुलतानाके पास जा खड़े हुए। यह हाल देख कर एकाएक मुम्ताज़अलीके मुँहसे यह बात निकल पड़ी कि हाय! भेद तो खुल गया। उसके अन्य साथी उसकी यह मूर्खता-पूर्ण बात सुन कर उसे मन ही मन कोसने लगे।

क्रोधकी हँसीके साथ सुलताना बोली—"मुम्ताज़, तुम बहुत ठीक कहते हो।" इतना कहकर वह उन चारोंको घृणासे घूरने लगी। इसके बाद दांत पीस कर उसने कहा—"सरदारो, अहमदनगरकी चांदबीबीके विरुद्ध षड़यंत्र रचना सरल काम नहीं है। क्यों रुस्तम?" रुस्तम रुखाईसे हँस दिया।

अकड़ कर इनायतउल्ला बोला—"हुजूर, यह क्या बात है?"

सुलताना—इनायत, तुम एक बहादुर आदमी हो। बादशाहको उसीके महलमें बध करनेकी कल्पना करना कुछ कम साहसका काम नहीं है। क्यों ऐसा ही है न!

यह सुनकर इनायतउल्ला सहम गया। वह बोला—"हुजूरको ग़लत सूचना मिली है।"

सुलताना—तुम, तुम्हारे दूसरे मित्र, दिलेरखाँ तथा दो और मुग़ल सैनिक दो दिन पहले रातमें एक जगह पर मिले थे। इनायत, क्या तुम इस बातसे इनकार करते हो? क्या वहां तुम लोगोंने मुझे मार डालनेका निश्चय नहीं किया था? और क्या तुम इसी उद्देशसे यहां नहीं आये हो?

इनायतउल्ला अपने दांत पीस कर अपने साथियोंकी ओर देखने लगा। दरियाखां और मुम्ताज़अलीने भी दृढ़तासे उसकी आँखोंसे अपनी आँखें भिड़ा दीं। केवल इलाहीजान सुलतानाकी ओर देख रहा था। वह भयभीत हो गया था।

सुलतानाने फिर कहा—"मेरे दोस्तो, झूठ बोलनेमें ज़रा भी लाभ नहीं है। मैं और रुस्तम वहीं पासके कमरेमें खड़े खड़े सारी बातें सुन रहे थे।"

इनायतउल्लाके चेहरेका रंग उड़ गया। उसके मुँहसे एकाएक यही निकला—असम्भव!

सुलताना—"शाहज़ादा मुरादके न आनेके सम्बन्धमें किसने खेद प्रकट किया था? और उनका पत्र पढ़ कर वहां उपस्थित लोगोंको क्या किसी भूतने सुनाया था। वह आदमी कौन है जिसने सबसे पहले मुझे मार डालनेका भार अपने ऊपर लिया था? क्या यह सब बातें झूठी हैं?

इनायतउल्ला चौंक कर एक क़दम पीछे हट गया। उसने घबराकर कहा—"हुजूर, यह सारी बातें बिलकुल झूठी हैं।"

सुलताना—इनायत, मैं झूठ नहीं बोलती। मैं तुम लोगोंको वहीं क़ैद कर लेती, पर एक बातके कारण मैंने तुम लोगोंको गिरिफ़्तार न किया। मुझे मार डालनेके बाद उत्तरी फाटकके पाससे मुग़लोंको शहर पर आक्रमण करनेके लिए जो संकेत तुम करते वह मुझे न मालूम होता। मैं उसे न सुन सकी थी, क्योंकि तुमने उसका निश्चय चलते चलते किया था। वह कौन संकेत है, यह मैं जानना चाहती हूं।

इनायतउल्लाके बचे खुचे होश भी जाते रहे। उसके मुँहसे एक शब्द तक न निकल सका। वह समझ गया कि सुलताना किस लिए जानना चाहती है। संकेतका भेद पा लेनेसे सुलतानाका मतलब निकल जायगा। परन्तु अभी बहुत कुछ ठीक हो सकता है। क्योंकि सुलतानाको संकेत नहीं मालूम है। इनायतउल्लाने अपने मित्रोंकी ओर कड़ी नज़रसे देखा। उन्होंने भी उसी प्रकार देखकर अपने दृढ निश्चयका परिचय करा दिया। केवल इलाहीजानपर उसका विश्वास न हुआ, क्योंकि उसका चेहरा स्पष्ट बता रहा था कि वह बहुत ही डरा हुआ है। इतने हीमें सुलताना बोली—"अच्छा, तुम लोग क्या कहते हो?"

इनायतउल्ला—"मुझे कुछ नहीं कहना है।" यही बात दरियाखां और मुम्ताज़अलीने भी कह कर दुहरा दी। केवल इलाहीजान चुप खड़ा रहा।

सुलतानाने डपट कर उससे पूछा—"इलाही, तुम क्या कहते हो?"

इलाहीजान पहले ही से डरा हुआ था उसने कहा—"मैं...मैं...मैं..."

सुलतानाने और अधिक कड़े स्वरमें कहा—"हां, तुम सीधा खड़े होकर बोलो।"

भयसे कांपता हुआ इलाहीजान खड़ा हो गया।

सुलताना—तुम मुझको वह संकेत बता दो। मैं तुमको रिहा कर दूंगी। यदि तुम नहीं बताओगे तो समझ रखो, नीचे शूली गड़ी है। दस मिनटमें तुम्हारा काम तमाम हो जायगा। सोच लो। मैं तुमको तीन मिनटका समय देती हूं।

सुलतानाने रुस्तमको इशारेसे अपने पास बुलाकर उसके कानमें कहा—"जब इलाही संकेत बता दे तब तुम उन तीनोंको एक दो मिनटके लिए छोड़ सा देना।"

रुस्तम—किस लिए?

सुलताना—तुम्हें आप ही मालूम हो जायगा। ईशारेसे शरीर रक्षकोंको एक ओर कर देना।

सुलताना फिर इलाहीजानकी ओर मुख़ातिब हुई। उसके चेहरेका रंग उड़ गया था और वह कांप रहा था। मृत्युके भयसे उसकी बुरी हालत हो गई थी। उसने एक बार अपने साथियोंकी ओर देखा। उनके चेहरे पीले ज़रूर हो गये थे, पर उनपर भयके चिन्ह नहीं थे। उसने सोचा कि जब उसके साथी वीरतासे मृत्युका सामना करनेको डटे हुए हैं तब मैं ही क्यों डरूँ। उसे भी कुछ हिम्मत हुई।

सुलताना ने डांटकर पूछा—क्यों?

"मुझे नहीं मालूम है," यह कहकर इलाहीजानने सुलतानाकी कड़ी निगाह बचानेके लिए अपना सिर झुका लिया।

सुलताना फिर कर्कश स्वरमें बोली—"इलाही, एक बार फिर विचार करो। नीचे शूली पर लटकते हुए आदमियोंको देखा है? क्या तुम भी उन्हींका साथी बनना चाहते हो। तुम अभी नौजवान आदमी हो। जीवनका आनन्द भी नहीं भोगा। मुझको वह संकेत बता दो। मैं तुमको छोड़ दूंगी।"

इलाहीने लड़खड़ाती हुई ज़बानसे कहा—"मैं नहीं जानता।"

सुलतानाने गरज कर कहा—नहीं जानता। अच्छा ले। इतना कह कर वह शरीर रक्षकोंको संकेत करके बोली—"इसे ले जाओ और इसी समय नीचे शूली दे दो।"

आज्ञानुसार शरीर रक्षकोंने उसे पकड़ लिया और बाहर ले चले। मृत्युके मुखमें अपनेको जाते

देख कर उसकी हिम्मत जाती रही। ज्यों त्यों करके वह दो तीन क़दम जा सका कि इतनेमें अपना मुंह पीछेकी ओर करके उसने सुलतानासे दया करनेकी प्रार्थना की। सुलतानाने रक्षकोंको लौट आनेका संकेत किया। उसने इलाहीसे फिर पूछा—"अच्छा, तो वह संकेत बताओ।"

इलाहीने अपने साथियोंकी निगाह बचा कर प्रार्थना की—"यदि मैं वह भेद बता दूं तो क्या मैं रिहा कर दिया जाऊँगा।"

सुलतानाने भेद भरी हँसी हँस कर रुस्तमकी ओर देख करके जवाब दिया—"हां, मैं तुझे छोड़ दूंगी।" इसपर इलाहीजानने उक्त संकेत बता दिया।

इनायतउल्ला चिल्ला उठा। उसने कहा "अरे विश्वासघाती।" दूसरे बोले—"दग़ाबाज़ कुत्ता।" इस तरह चिल्लाते हुए वह तीनों शरीर रक्षकोंके घेरेसे निकल कर इलाहीजानपर जा टूटे। बचाओ, बचाओ चीख़ता हुआ इलाहीजानने रक्षकों के पीछे जा छिपनेकी चेष्टा की, पर अपने साथियों-के आक्रमणसे वह न बच सका, वहींका वहीं ढेर हो गया।

सुलतानाने रुस्तमकी ओर देख कर कहा—"इन्हें गिरफ़ार करो। आज्ञा पाते ही रक्षक उनकी ओर झपटे, पर इनायतउल्ला कड़क कर बोला, "हटो जीते जी पकड़ना टेढ़ी खीर है।" यह कह कर वह अपनी तलवार चलाने लगा। दरियाखां और मुम्ताज़अलीने भी उसका साथ दिया। अब वहां एक प्रकारका युद्ध छिड़ गया।

सुलताना गरज कर बोली—"इन्हें ज़िन्दा पकड़ो।"

अस्त्र-शस्त्रोंकी झंकारसे कमरा गूंजने लगा। दरियाखांने एक रक्षकको अपने वारसे धराशायी किया। एक दूसरे रक्षकके भालेसे स्वयम् दरिया-खांने भी ज़मीन देखी। इसके बाद मुम्ताज़अली भी मारा गया। अन्तमें इनायतउल्लाकी बारी आई। जब उसकी तलवार टूट गई तब उसने अपनी भुजाली निकाली और सुलतानाकी ओर मुख़ातिब होकर, यह कहते हुए कि मैंने हुजूरके साथ विश्वास-घात किया है, उसने उसे अपनी छातीमें भोंक लिया।

सुलताना क्रुद्ध होकर बोली—"नालायकों, इसी प्रकार जीवित पकड़ा जाता है।" परन्तु कुछ शान्त होकर उसने कहा—"जो हुआ सो अच्छा हुआ। रुस्तम, तुम तकलीफ़से ही बचे।" यह कह कर वह चुप हो गयी। थोड़ी देर सोचनेके बाद उसने कहा—"अच्छा रुस्तम, अब तुम अपना काम करो। जल्दी करो। संकेत मशालका है। सो उत्तरी फाटकसे पश्चिम बायेंसे दाहनेको तीन बार हिलाना। इस कामको करके फिर जैसी घटना उपस्थित हो उसकी पूरी सूचना मुझे यहीं मिले। तुम्हारा प्रबन्ध ठीक है न!"

रुस्तम—"हुजूरने ही सारा प्रबन्ध किया है। उसमें कुछ भी त्रुटि नहीं। यही बाक़ी था सो मैं जाकर इसे भी ठीक किये देता हूँ।" यह कह कर वह वहांसे चला गया।

इसके बाद सुलतानाने रक्षकोंको उन लाशों-को हटानेकी आज्ञा दी। वह वहांसे तुरन्त हटाई गईं और कमरा साफ़ किया गया। वह भी वहांसे चली गई और अपनी बैठकमें जा बैठी। वह मन ही मन भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी—"हे दीनबन्धु, शत्रुओंसे अपना राज्य बचानेके लिए मैं जो परिश्रम कर रही हूं वह सब आप देख रहे हैं। मैं आपकी शरणमें हूं। मुझ अबला स्त्रीका भरोसा आप पर ही है। इस तरह वह बड़ी देर तक भग-वान्‌से प्रार्थना करती रही।

एक घंटा बीता, दो घंटे गुज़र गये। अन्तमें लोगोंका कोलाहल जो बहुत दूर हो रहा था सुल-तानाको सुनाई दिया। उसने कहा—"हे दीनानाथ, मेरी सहायता करो। वह स्थिर न रह सकी। वह अधिक व्याकुल हो रही थी। कभी खड़ी हो जाती, तो कभी बैठ जाती। कभी खिड़कीसे झांकने लगती, तो कभी कमरेमें घूमने लगती।

उसकी व्यग्रता बढ़ती ही जाती थी। थोड़ी ही देरमें उसे मालूम हुआ कि कोई ज़ीनेपर चढ़ रहा है। क्षण भरमें दरवाज़ा खुला और रुस्तम कमरेमें दाखिल हुआ। उसके शरीरके अंग प्रत्यंगसे प्रसन्नता झलक रही थी। उसकी यह दशा देख कर सुलतानासे भी न रहा गया। वह भी प्रसन्नता-से उछल पड़ी। रुस्तमके कन्धे पर हाथ रख कर उसने पूछा—"कहो, क्या हुआ। जल्दी बताओ।"

रुस्तम ने हँस कर कहा—"हम लोगोंने मुग़लों-को सागकी तरह भथुर डाला। कहीं हुजूरकी चाल खाली जा सकती थी। आज हुजूरके इक़-बालसे मुग़ल पराजित ही नहीं हुए हैं, किन्तु उन-पर ऐसी मार पड़ी है कि वह अब यहां रह नहीं सकते। कल सवेरे तक उनका नाम-निशान तक न रह जायगा।"

सुलतानाकी आंखें खुशीसे चमकने लगीं। उसने कहा—"अहमदनगरकी विजय हुई! हे भगवन्, यह आप की ही कृपा है।" यह कह कर वह मसनद पर बैठ गई और रुस्तमको अपने पास बिठाकर उसने पूछा—"सारा हाल विस्तारके साथ मुझे बताओ।"

रुस्तमने बताया कि संकेतके दिये जाने पर किस प्रकार मुग़ल सेना अपने मोर्चोंसे निकल शहर पर आक्रमण करनेको आगे बढ़ी और किस प्रकार हुजूरकी सेनाने उसे चारों तरफ़से घेरकर सोहास कर डाला। यह सब बातें सुलतानाको उसने ब्योरेवार कह सुनाईं। सुलतानाः सारी बातें ध्यानसे चुपचाप सुनती रही। जब रुस्तमकी बातें समाप्त हुईं तब सुलताना उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"रुस्तम, बहुत ठीक हुआ। जाओ और इस बातका पता लेते रहो कि मुग़ल सेनाका पीछा अच्छी तरह किया जा रहा है या नहीं। तुमको जो कुछ त्रुटि समझ पड़े उसकी ख़बर मुझे शीघ्र देना। जब तक मुग़लोंसे हम लोग भली प्रकार निरापद न हो जायँगे तब तक मुझे चैन नहीं मिलने की।" इतना कह कर उसने रुस्तमको वहांसे रवाना किया।

सुलताना अपने शयनागारमें प्रवेश करनेके पहले दरवाज़े पर खड़ी होकर सोचने लगी—"कैसी आश्चर्यकी बात है। प्रणय भी एक ही वस्तु है। इसीकी बदौलत यह सब कुछ हुआ। यदि वह स्त्री प्रेमके फेरमें पड़ कर अपना भेद न बता देती तो आज रातमें मैं मार डाली जाती और अहमदनगर पर मुग़लोंका झण्डा फहराता हुआ कल दिखाई पड़ता। भगवान्‌की लीला विचित्र है।" यह कह कर वह अपने शयन-गृहमें चली गई। —"श्रीकौलाचार्य"

---

# दुग्ध रक्षा-प्रणाली

हमारे देशमें साधारणतः गाय दुहने का काम हाथसे ही होता है। दिनमें दो या तीन बार गायें दुही जाती हैं। सन् १८६२ ई० में अमेरिकामें एक प्रकार का दुहनेका यन्त्र निकाला गया था। किन्तु उस यन्त्रका प्रयोग करके देखा गया कि यन्त्रकी अपेक्षा हाथसे दुहना अधिक सुविधाजनक है। इसलिए उस यन्त्रका प्रचार न हो सका। दुहनेका काम साव-धानी और स्वच्छता पूर्वक करना चाहिये। दूधके बिना छाने कभी व्यवहारमें न लाना चाहिये, क्योंकि दुहते समय सावधान होते हुये भी गायका रोम और कई प्रकारका मल (Animal debres) दोहन पात्रमें पड़ ही जाते हैं, जो पीछे हानिकारक होते हैं। दूध दुहनेका बर्तन खूब साफ़ रखना चाहिये, नहीं तो उस बर्तनका मैल या रंग दूधके साथ मिल कर दूधको खराब कर देगा। कच्चा दूध व्यवहारमें न लाना चाहिये। औटाकर दूध काममें लाना चाहिये क्योंकि औटानेसे दूधके बहुत दोष नष्ट हो जाते हैं।

साधारणतः दूधको कई रूपमें खाते पीते हैं दूध, मक्खन, घी, दही, मलाई आदि दूधको किसी बर्तन

में रख देनेसे ऊपरके तलपर थोड़ा थोड़ा तरल मक्खन इकट्ठा हो जाता है। किन्तु मथानी या और किसी यन्त्रके सहारे दूधसे ज़्यादा मक्खन निकाला जा सकता है। दूध या दहीकी मलाई-को इकट्ठा करके मथानी या किसी यन्त्र द्वारा गृह देवियां मक्खन निकालती हैं और मक्खन को गलाकर घी बनाती हैं। दूध बहुत दिन तक नहीं रखा जा सकता। यदि रखा जाय तो दुग्धका मिठास (Milk sugar or lactose) नष्ट हो जाता है और खट्टापन आने लगता है। दूधको जब हम किसी खट्टी चीज़के साथ मिला कर जमाते हैं तो दही बन जाता है।

दुग्ध रक्षा ( Preserve ) करनेकी बहुत सी प्रणाली हैं। उनमेंसे तीन उल्लेखनीय हैः—( १ ) दूधमें लवण (Salts) या अन्यान्य पचन निवारक पदार्थोंका मिलाना; ( २ ) उबालना ( Boiling ), ठंडा करना ( c oling ) तथा अन्य वाह्य उपचार; ( ३ ) गाढ़ा करना ( Condensation )। अन्तिमको हम दो प्रकारसे काममें ला सकते हैं। (क) केवल उबाल कर दूधको गाढ़ा करना या ( ख ) किसी ऐसी वस्तुसे गाढ़ा करना जिससे कि दूध खराब न हो जाय। परन्तु ढंडके द्वारा दूधकी रक्षा करना सर्वश्रेष्ठ है।

( Soxhlet ) सौक्सलैटने बतलाया है कि बर्फ-के पानीसे भरे बर्तनमें यदि दूधका बर्तन रख दिया जाय तो १४ दिन तक वह न बिगड़ेगा। यदि वायुकी सहायतासे दूध ठण्डा किया जाय तो और भी अधिक दिन तक रह सकता है।

दुग्ध रक्षा करनेके लिए जिन रासायनिक यौगिकोंका ( chemical compound ) व्यवहार होता है उनमेंसे सैलिसिलिक अम्ल ( Salicylic acid ) ही सर्वश्रेष्ठ है। डेढ़ पाव दूधमें ( २ ग्रेन ) २ माशे अम्ल मिला देनेसे वह ६५° फा या ६८° फा डिग्रीके तापक्रम पर १२ घंटे तक और ५५° फा तापक्रम पर २४ घंटे तक अविकृत अव-स्थामें रहता है। ४ माशा सैलिसिलिक अम्ल मिलानेसे बादको अधिक गर्मीसे भी २ या ३ दिन तक और कम गर्मीसे ४ या ५ दिन तक दुग्ध नष्ट नहीं होता। बहुत से स्थानों पर बोरासिक अम्ल ( Boracic acid ) अथवा सोहागा ( Borax ) भी व्यवहृत होता है।

दूधको जलानेसे उसका मिठास अधिक होता जाता है; किन्तु स्वाद और गुणमें परिवर्तन हो जाता है। बँद बर्तनमें दूधको गर्म करना ठीक है। गरम करनेके पहले या पीछे दूध जिस बर्तन में उँडेला जाय उसको खूब साफ़ होना चाहिये। पात्रमें अम्ल गुण सम्पन्न ( Acidic property ) किसी वस्तुके रहने से दूध नष्ट हो जायगा; क्योंकि गर्म दूधमें किसी प्रकारका अम्ल (Acid) मिलने से वह सहजमें ही जम जाता है।

यहाँ पर जिस प्रकारकी दुग्ध रक्षा प्रणाली बतलाई गई है उसमें से आधुनिक गाढ़ा दूध करने का प्रकरण सर्वापेक्षा कार्य्य कर है। न्यूयार्क (Newyork) निवासी मि० गेल बोर्डन ( Mr. Gail Borden) इस प्रकरणके उद्भावक हैं। १८०६ वि० में परीक्षा कार्य्य आरम्भ करके १०,१२ बारह वर्षके बाद वह गाढ़े दुग्धके तय्यार करनेमें कृतकार्य्य हुये। सन् १८१८ वि० में युद्धक्षेत्रमें सैनिकोंके लिए गाढ़ा दूध भेज कर उन्होंने बड़ा उपकार किया। आजकल स्विज़रलेण्ड, आयरलेण्ड, डेनमार्क बेवे-रिया, नारवे आदि देशोंमें दूध गाढ़ा करनेके बहुत से कारखाने खुल गये हैं। आजकल इस व्यव-सायमें स्विज़रलेण्ड सबसे बढ़ा चढ़ा है। दूध गाढ़ा करनेकी प्रणालीके सम्बन्धमें न्यूयार्क स्थित ( Cornell ) कारनेल विश्वविद्यालयके सदस्य श्री० विल्लर्ड ( Mr. Wellard ) लिखित निबन्धका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जाता है।

बहुत से स्थानों से दुग्ध संग्रह करके पहले छानना और तब किसी बड़े बर्तनमें ( Receiving vat ) रखना चाहिये।

इस पात्रमें २० गैलन तक भर सकते हैं, फिर दूधको छानकर एक दूसरे धातु पात्रमें देने जाते हैं।

यह पात्र गरम जलके पात्रमें रखा रहता है। अग्नि संयोगसे दूध १५०° फा० १७५° फा० तक दूध गर्म करे। इसके बाद दूधको छानकर एक बड़े बर्तनमें जाने देते हैं। इस पात्रके नीचेके भागमें नल रहता
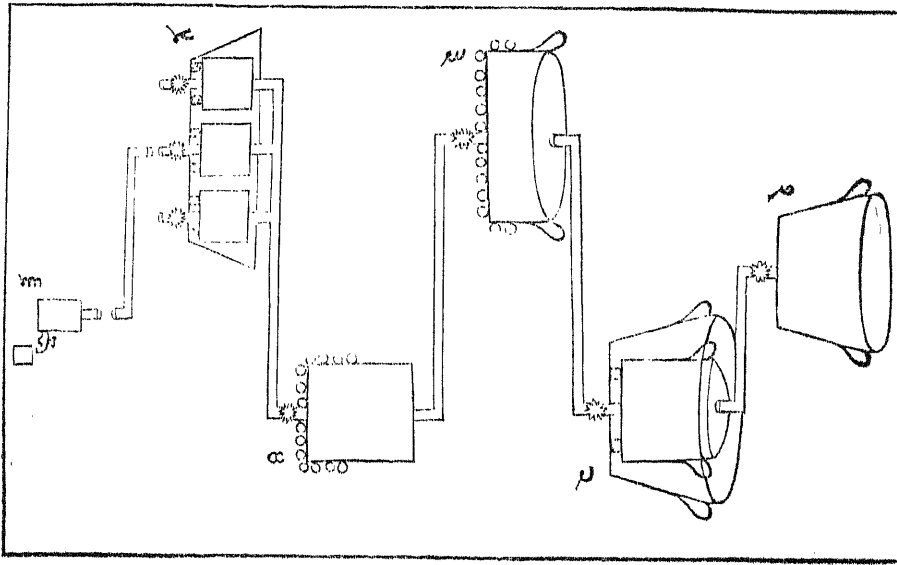
चित्र २५—दूध भरनेका पात्र; २—१५०° फा—१७५° फा तक दूध गरम करनेका पात्र; ४—दूध उबालनेका पात्र; ४—शून्यपात्र ( vacuum pan) ५—दूध ठंडा करनेके पात्र (Drawing cans) ६—दूध भरने के पीपे या कटोरे
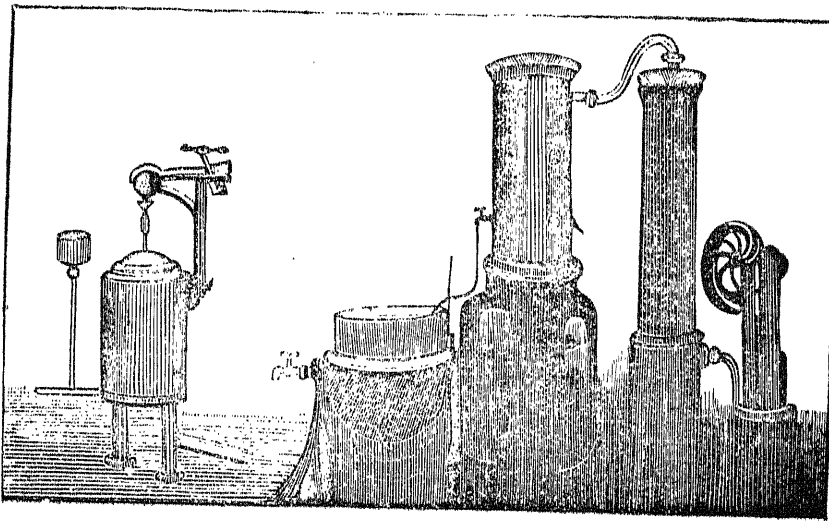
चित्र २६—दूध गाढ़ा करनेकी पूरी मशीन ।

है। उसी नल द्वारा भाप आकर गरमी पहुँचाती है। जब बर्तनमें दूध उबलने लगता है तो उसमें चीनी मिला देते हैं; प्रति तीन सेर दूधमें अढ़ाई पाव चीनी मिलानी चाहिये। जब चीनी अच्छी तरह गल जाती है तो उस बर्तनसे दूध किसी वायु शून्य पात्रमें ( Va cuum pan ) में उँडेल देते हैं। दूध गाढ़ा करनेके लिए यह बर्तन खरीदनेसे मिल सकता है, जिसमें ८०० से १००० मन तक दूध प्रतिदिन जमाया जा सकता है। यह भी नलसे घिरा रहता है। इस वर्तनमें वाष्पके सहारे दूधके जलीय अंश को नष्ट कर चौथाई भाग शेष रहने देते हैं। उक्त कार्य ३ घंटेमें समाप्त हो जाता है। इस प्रकार दूधके जम जानेपर—एक बड़े काठके बर्तनमें रखे हुए छोटे छोटे बर्तनोंमें निकालकर ठंडा करते हैं। बर्तनोंमें रखे दूधकी ऊँचाई और काठके बर्तनके जलकी ऊँचाई एक होनी चाहिये। इस प्रकार पानीके वर्तनमें रखकर दूधको चलाना चाहिये। जब दूधका तापक्रम ७° का डिगरी हो तो उसे छोटे छोटे बर्तनोंमें उँडेलकर भर लेना चाहिये। इन छोटे बर्तनोंको Drawing can कहते हैं। उपरोक्त काम करते समय बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। फिर दूधको छोटे छोटे कटोरोंमें उँडेले। गाढ़े दूधकी गरमी और कटोरेकी गरमी समान करनेके लिए, कटोरोंको पहले कुछ गरम कर लेना चाहिये। दूध डालते समय वायुका प्रवेश न होने देनेके लिए कटोरेको किसी चीज़से बंद कर देना चाहिये। कटोरा न खुलनेसे दूध बहुत दिनों तक न नष्ट होगा।*

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'

---

* Journal of the Royal Agricultural Society 2nd Series, Vol. VIII,

# हमारा पाचन और सादा और निर्जल भोजन

भोजन करते समय जल पीना अस्वाभाविक है। जल पीनेसे जो रस भोजन पचानेके लिए आमाशयमें उत्पन्न होता है वह पानीसे मिलकर कमज़ोर होजाता है और उसका फल यह होता है कि भोजन ठीक ठीक नहीं पच पाता और मनुष्यका हाज़मा कमज़ोर होजाता है, जिससे अनेक प्रकारके रोग पैदा होकर मनुष्यका जीवन दुःखमय बनादेते हैं। ऐसी दशामें निर्जल भोजनका लाभ स्पष्ट है।

भिन्न भिन्न गुणवाले अनेक प्रकारके व्यंजनोंका एक साथ खाना भी स्वभावके विरुद्ध है। प्रायः प्रकृतिमें यही देखा जाता है कि जो जानवर फलाहारी होते हैं वह केवल फल खाते हैं; जो मांसाहारी होते हैं वह सिर्फ मांस खाते हैं और, जो अन्नाहारी होते हैं वह अन्न ही पर गुज़र करते हैं; पर मनुष्यकी बात निराली है। यह जिह्वा लोलुप प्राणी इन सब प्रकारके व्यंजनोंपर हाथ साफ़ करता है। मांस, मछली, अंडा, दूध, शाक भाजी, अन्न, फल और तरह तरहके मेवे कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं जो इनकी भोजन सामग्रीमें दाखिल न हो। और शायद इसी गुणके भरोसे यह सर्वश्रेष्ठ प्राणी होनेका दावा करते हैं। वास्तवमें यह दशा नितान्त स्वभाव विरुद्ध तथा शोचनीय है और एक तरहकी जातीय आत्महत्या है।

भोजन ही अमृत है और भोजन ही विष है। खान पानके स्वाभाविक नियमोंके पालनमें सावधान रहनेसे भोजन मनुष्यके शरीरको पुष्ट करता है। उसके मनको प्रसन्न रखता और उसे दीर्घजीवी बनाता है। यही अमृतके गुण हैं। केवल

जिह्वाके क्षणिक स्वादके लालचसे यदि कोई स्वभाव विरुद्ध भोजन किया जाता है तो वह विषका सा काम करता है। निर्जल भोजनके लिए कोई विशेष झंझट नहीं करना पड़ता। ऐसा भोजन स्वादिष्ट भी होता है और उससे पाचन पर कोई बोझ नहीं पड़ता। यह उपाय इतना सादा और गुणकारी है कि उसकी जितनी प्रशंसा की जाय वह कम है। जल वायु बदलनेके उद्देशसे दूसरी जगह जानेकी तकलीफ सहनेमें या डाक्टरोंके कड़ुवे बदजायका नुसखे पीनेमें जिस इष्टकी सिद्धि नहीं होती वह इस सरल उपायसे हो जाती है। इसके प्रबंधके लिए किसी तैयारीकी ज़रूरत नहीं और न भोजन-के समयके पहले आपको अपनी दिनचर्यामें किसी प्रकारकी तब्दीली करनेकी आवश्यकता है।

यह नुसखा कम खर्च है। कम खर्च बा नानशींकी कहावत इस पर घटती है। इतना सादा होते होते हुए भी यह उपाय बहुत जल्द अपना अच्छा प्रभाव मनुष्यके स्वास्थ्य पर प्रकट करने लगता है। इसके शुरू करनेमें किसी सोच विचार या देर करनेकी ज़रूरत नहीं। इससे बहुत से दूसरे इलाजोंकी तरह शुरूमें भी किसी तरहकी कमज़ोरी नहीं मालूम होती। बच्चोंके लिए इसकी विशेष आवश्यकता है। मेलट महाशयने अपने बच्चेका हाल लिखा है। जन्म के समय वह अत्यन्त हृष्ट पुष्ट था पर धीरे धीरे खानपान की खराबियोंसे उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और यहां तक नौबत पहुँची कि उसकी दशा असाध्य जान पड़ने लगी। गंदे दूध और जौ के पानीसे उसके पेटमें बाई पैदा हो गई और जब सुधारनेके लिए उसे कच्ची शकर दी गई तो दस्त और कब्ज़की शुरुआत हो गई। इस शिकायतको दूर करनेके लिए रेंडीके तेलकी पिचकारी ( एनीमा ) लगाई जाने लगी; जिससे उसकी आंतें और भी कमज़ोर होगईं और उनमें सूजन आ गई। तब उसे डब्बेका दूध और 'विरेचक पुड़िया ( ग्रेपोडर ) दी जाने लगी। पर यह सब कुछ करने पर भी उसकी दशा बिगड़ती ही गई और आख़िर उसके जीवन-की कोई आशा न रही। इस बीचमें एक और डाक्टर महाशयसे भेंट हो गई। उन्होंने बच्चेकी परीक्षा करके बतलाया कि उपचार प्रणालीके कारण शरीरके पोषणार्थ उचित और पर्याप्त सामग्री न पहुँचनेसे बच्चे की यह हालत हो गई है। इसके पश्चात् उस डाक्टरने स्वाभाविक चिकित्सा विधिसे बच्चेका इलाज शुरू कर दिया और धीरे धीरे एक बार फिर नये सिरेसे बच्चेकी टिमटिमाती हुई जीवनज्योतिको जग-मगा दिया। दो महीनेके भीतर ही बच्चा हवामें टहलाया जाने लगा। स्वाभाविक उपचार और भोजन सुधारने उसके स्वास्थ्य पर जादूका असर किया और उसकी खोई हुई तंदुरुस्ती बहुत जल्द वापस आगई। अँगूरके रसने उसे बड़ा फ़ायदा किया। उसने बच्चेकी जीवनके टिमटिमाते हुए दीपकमें तेलका काम किया। अँगूरका रस देते ही बच्चेकी मुँदी हुई आखें खुल गईं और उसके शरीर-में दुबारा खूनका दौरा होने लगा। एक तरहसे उस स्वाभाविक औषधि यानी अंगूरके रसने ही उसकी जान बचाली।

फल और उनके रस केवल बच्चोंके लिए ही उपयोगी नहीं हैं। इनके इस्तेमालसे बड़े लोगोंको भी उतना ही फायदा होता है। निर्जल भोजनसे पानीकी कमी फलोंके रससे पूरी हो जाती है और उस उपायसे हाज़मा कमज़ोर नहीं होता।

जब तक मनुष्यके मुंह और पेटके रस ठीक ठीक बनते रहते हैं और उनमें किसी तरहका विकार नहीं आने पाता तब तक हाज़मा भी ठीक रहता है। पेय और रसादार भोजन करनेसे या जलमय पदार्थोंका भोजनके साथ इस्तेमाल करनेसे यह रस कमज़ोर होकर भोजनके पचानेमें आवश्यक सहायता नहीं देते। शुरूमें या जबतक मनुष्यके शरीरमें बल रहता है उसकी स्वाभाविक शक्तियां पाचनकी कमजोरीसे पैदा हुई कमीको पूरा करती रहती हैं और वह अस्वाभाविक भोजन विधिके बुरे परिणामोंका भली प्रकार अनुभव नहीं

करता। परंतु जब स्वाभाविक नियमोंका उल्लंघन कुछ काल तक जारी रहता है तो अंतमें वह समय भी आ जाता है जब मनुष्यकी स्वाभाविक क्षमता जवाब दे देती है और प्रत्यक्षमें बिना किसी कारण विशेषके ही, मनुष्य बीमार होकर गिर जाता है। भोजनके बीचमें चाय, पानी या शराब सदृश पेय पदार्थोंके इस्तेमालसे उपर्युक्त खराबियां पैदा हो जाती हैं और हाजमा बिगड़ जाता है। उसी तरह दस्तावर दवाओं या पिचकारी ( अनीमा ) के अधिक प्रयोगसे आंतें खराब हो जाती हैं। उन दोनों तरहकी खराबियोंके कुछ समय तक जारी रहनेसे मनुष्यके शरीरमें बदहज़मी और कब्ज स्थायी रूपसे अपना अड्डा जमा लेते हैं और उनसे तरह तरहकी शिकायतें पैदा हो जाती हैं। आजकल अधिकांश लोगोंमें खाने पीनेकी ख़राबियोंसे पाचक रसके निर्बल हो जानेसे हाज़मा कमजोर हो जाता है। निर्जल भोजन करनेसे और पानीकी कमीको पूरा करनेके लिए भोजनके बाद (अथवा कुछ पहले) मीठे रसदार फलोंका सेवन करनेसे पाचनशक्ति सुधर जाती है और भोजन पचानेके लिए आवश्यकतानुसार पाचक रस बनने लग जाता है।

आजकल जिधर देखो उधर पौष्टिक भोजनों और पुष्टिकारक औषधियोंकी धूम है। वैद्य और डाक्टर भी इनके इस्तेमालकी सलाह देते हैं। परन्तु जब तक शरीर अपनी साधारण क्रिया करनेमें यानी भोजनको पचा कर भीतरी मलको बाहर निकालनेमें, भली भांति समर्थ न हो उसे पौष्टिक भोजनके सेवनसे कुछ लाभ नहीं हो सकता और न उसका बल बढ़ सकता है। अकसर ऐसा देखा जाता है कि जिन रोगियोंको पौष्टिक भोजनके इस्तेमालकी सलाह दी जाती है उनमेंसे अधिकांश अति भोजन या अस्वाभाविक भोजनके कारण पहलेसे ही अपनी पाचन शक्ति का नाश कर चुके होते हैं।

अधिक भोजन या पौष्टिक भोजनके सेवनसे ही मनुष्यकी स्वास्थ्य रक्षा नहीं होती, न उस प्रकार उसका स्वास्थ्य सुधर सकता है। जब तक उसके पाचन और मलोत्सर्गकी क्रियाएं ठीक न हों, मनुष्यको बढ़ियासे बढ़िया भोजनसे भी कोई लाभ नहीं हो सकता। पेय भोजनके प्रयोग से उसके 'पाचन' और मलोत्सर्ग की क्रियाएं निर्बल हो जाती हैं। बेपचा या कम पचा हुआ भोजन शरीरको कुछ लाभ पहुँचाये बिना ही मल रूप होकर निकल जाता है। उससे लाभके बदले हमारे शरीरमें अनावश्यक और विषैले पदार्थ पैदा होकर इकट्ठा होने लगते हैं और जब हमारी शारीरिक क्षमता थक कर उनके उन बुरे प्रभावोंका, जो वह हमारे स्वास्थ्यपर डालते हैं, सामना करनेसे जवाब दे देती है तो उनके यही बुरे प्रभाव किसी रोग विशेषके लक्षणोंमें प्रकट होकर हमें एकाएकी बीमार डाल देते हैं।

भोजन चाहे कितना ही पौष्टिक क्यों न हो, यदि शरीरके भीतर उसका ठीक ठीक पाचन और उससे बने हुए मलका स्वाभाविक रीतिसे त्याग न होता रहता तो ऐसी दशामें उससे शरीरको कोई लाभ पहुँचनेकी अपेक्षा सदैव हानि ही होती है। सादे भोजनकी अपेक्षा पौष्टिक भोजनके पाचन अथवा मलत्यागमें गड़बड़ होनेसे शरीर पर अधिक बुरा प्रभाव पड़ता है; क्योंकि सादा भोजनके इस्तेमालसे खून उतना जलदी विषैला नहीं होने पाता जितना कि पौष्टिक भोजनसे। अच्छे या स्वाभाविक स्वास्थ्यका लक्षण यह है कि शरीर रूपी भट्टीमें जो भोजन रूपी ईंधन डाला जाय वह बिलकुल जल कर भस्म हो जाय और उसका शेष मल शरीरमें इकट्ठा न होकर नित्य नियमित रूपसे बाहर निकलता रहे। यह जलनेकी क्रिया जितनी हा अपूर्ण होगी उतना ही स्वास्थ्य दूषित होगा। शरीरकी उस अग्निको, जिससे भोजन 'पचता' यानी 'पकता' या 'जलता' है जठराग्नि कहते हैं। विद्वानोंका कहना है कि जो आदमी बिलकुल तन्दुरुस्त है उसकी जठराग्नि प्रबल होनेके कारण उसे हर समय थोड़ी भूख बनी रहती है। जब शरीरके

भीतर जठराग्निको जलानेके लिए भोजन नहीं मिलता तो उसकी जलन हमारे पेटमें प्रतीत होती है और इसीको साधारण भाषामें भूख लगना कहा जाता है।

बच्चोंकी शारीरिक क्षमता बड़ी प्रबल होती है। वह अनुपयोगी और हानिकारक भोजनोंके प्रभावको चिरकाल तक सह सकते हैं। कोई कोई मनुष्य बड़े गर्वसे कहा करते हैं कि हमारा बच्चा तो सब चीज़ें खाता है। वह हानि लाभका विचार किये बिना ही उस बेचारेके पेटको मंड-मय भोजनों, मिठाइयों और तरल और गरिष्ट पदार्थोंका गोदाम बना देते हैं। यह चीज़ें उसके पाचनको खराब कर देती हैं। आगे चलकर उसकी देह रोगका घर हो जाती है, जिसके जिम्मेदार असलमें वही लोग हैं जो बच्चोंके भोजन पर ध्यान नहीं रखते और उन्हें नित नई मिठाइयां और पक्वान खिलाते रहते हैं। जब बच्चोंको आदत पड़ जाती है तो वह मिठाइयोंके लिए ज़िद करने लगते हैं। बच्चे तो नादान होते हैं वह किसी बातका लाभहानि नहीं जानते; शुरूसे उन्हें जैसी आदत डाली जाती है उसीके अनुसार वह चलने लगते हैं। इस प्रांतमें बच्चोंको प्रातःकाल जलेबी खिलानेकी अधिक चाल है। ज्योंही खोमचेवालेकी आवाज़ सुनाई दी बच्चेने अपने नित्यके जलपानका तक़ाज़ा शुरू कर दिया। यह देखकर खोमचेवालेने भी अपनी चाल धीमी कर दी और घरके सामने ज़ोर ज़ोरसे 'जलेबी गरमागरम' की आवाज़ लगाने लगा। बाबू जीको मजबूर होकर बच्चेको उसके पाससे कुछ सौदा दिलवाना ही पड़ता है।

बच्चोंको मीठी चीज़ें बहुत पसंद होती हैं—मिठाइयोंकी जगह शुरूसे उन्हें मीठे फल और मेवे खिलाना अधिक स्वाभाविक है। शायद आप घबराकर कहने लगें कि फलोंसे बच्चोंको सरदी हो जानेका खटका है। फल खिलानेसे उनके पेटमें दर्द होने लगता है। बच्चोंको फलोंका अधिक सेवन कराना ठीक नहीं है; परंतु यह बात वास्तवमें सत्य नहीं है। फल तो ईश्वरदत्त स्वाभाविक भोजनके पदार्थ हैं। मीठे अंगूर परमात्माकी दी हुई न्यामत समझनी चाहिये। बच्चोंको भोजनके कुछ देर पहले थोड़े अंगूर खिलानेसे उनका पाचन और स्वास्थ्य सुधरता है। इसकी जांच सहज ही हो सकती है।

यह याद रखनेकी बात है कि अस्वभाविक उपचारोंकी सहायतासे बहुत दिन तक काम नहीं चल सकता। गोली, चूर्ण, पाक और लाल शरबत या बालामृत प्रभृति ताक़तकी दवाओंसे अंतमें स्वास्थ्य सुधरनेकी अपेक्षा और बिगड़ जायगा। प्रकृतिके साधारण नियम पालन करनेसे ही दशा सुधर सकती है। उसके लिए उम्रकी कोई रुकावट नहीं है। यह समझना बड़ी भूल है कि उम्र ज़्यादा हो जानेपर रोग असाध्य हो जाता है। स्वाभाविक नियमोंपर चलनेके लिए सदा सवेरा है। उनके अनुसार चलनेसे सिवाय लाभके कभी कोई हानि हो सकती। स्वाभाविक नियमोंके अनुसार चलनेवाले प्रत्येक मनुष्यको यह नियम कर लेना चाहिये कि वह भोज्य और पेय पदार्थोंका एक साथ व्यवहार न करे। भोजनके समय केवल भोज्य पदार्थ खाये और पेय पदार्थोंको भोजनके कुछ पहले ( या बादमें ) पिये। पेय रूपमें अधिकतर फलोंके रसका सेवन करना चाहिये। निर्जल भोजन करनेसे यह तात्पर्य नहीं कि खानेकी चीज़ोंमें आर्द्रता ( गीलापन ) बिलकुल न हो। बहुत सी खानेकी चीजें अपनी स्वाभाविक दशामें थोड़ी बहुत गीली रहती हैं। केवल इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि खानेकी चीज़ोंमें जल या कोई और पेय पदार्थ ( दूध इत्यादि ) मिला कर उन्हें पतला करना उचित नहीं है। इस नियम पर चलनेसे अधिक प्यास लगनेका डर नहीं है। अधिक छौंकी बघारी और तली हुई चीज़ोंका इस्तेमाल अच्छा नहीं है। मंड-मय चीज़ें, जैसे आलू, अर्वी, शकरकंद और चावल इत्यादिका भी अधिक इस्तेमाल ठीक नहीं है। रोगनी रोटी, मलीदा, हलुआ, पूरी और

तरह तरहकी मिठाइयां और पकान्न जल्दी पचनेवाली चीज़ें नहीं हैं। इसलिए इनका इस्तेमाल सम्हल कर करना चाहिये। अँगूर, सेव, नारँगी, अंजीर, केला, खजूर, छुहारे, गन्ना इत्यादि स्वाभाविक भोजनके पदार्थ हैं और उनमें हमारे स्वास्थ्यके लिए आवश्यक सब उपादान उचित मात्रामें पाये जाते हैं; इसलिए इन चीज़ोंका सेवन बच्चे और बूढ़े सभीके लिए लाभदायक है। बच्चोंको निर्जल भोजनका अभ्यास कराना चाहिये और खानेके कुछ पहले उन्हें एक सेव या संतरा या थोड़े अँगूर दे देने चाहियें या एक शर्बती या मामूली कागज़ी नीबूका रस पिला देना चाहिये। ऐसा करनेसे बहुत जल्द उनके स्वास्थ्यमें उन्नति होती जान पड़ेगी। जब लड़का स्कूल जाने लगे तो मिठाइयोंके लिए पैसा देनेकी जगह उसको एकआध सेव या दूसरा फल दे दो। इसी तरह प्रातःकाल सो कर उठनेपर भी मिठाइयोंकी जगह बच्चोंको फल खिलाना अधिक लाभप्रद है। फलोंके सेवनसे बहुत जल्द बच्चेके चेहरेपर ताज़गी और गालोंपर लालीका प्रादुर्भाव होगा। पेड़के, कच्चे, या पाल या आंचसे पके हुए फलोंका इस्तेमाल अच्छा नहीं है। उनसे नुकसानका डर है। स्वाभाविक डालके पके फल ही अधिक गुणकारी होते हैं। यह बात बिलकुल निर्मूल है कि फल बच्चोंको नुकसान करते हैं। असल बात यह है कि बच्चोंका पाचन ठीक रखनेके लिए फलोंका सेवन ही सबसे अधिक स्वाभाविक है।

—गिरवर सहाय

# बड़ी घटनाओंके छोटे कारण

आजकल टर्की और ग्रीसका जो युद्ध चल रहा है उसके सम्बन्धमें कहा जाता है कि एक बन्दरके कारण शुरू हुआ है। दो बरस पहले यूनान (ग्रीस) के राजा अलेक्सेण्डरको उसके एक पालतू बन्दरने काट खाया। उसके दांतोंका ज़हर चढ़ जानेके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। एथेन्समें उसके महामन्त्री वेनीज़ोला पदच्युत कर दिया गया और राजा कौंस्टेण्टीन लौट आया और गड़बड़ शुरू हो गयी।

यूरोपके महायुद्धका कारण सूअर थे। सरवियामें सूअरोंके पालनेका व्यवसाय होता है। सर्वियाके पास कोई समुद्रमें घुसनेका रास्ता नहीं था। उसका सारा व्यापार आस्ट्रिया द्वारा होता था। आस्ट्रियावालोंने सर्वियाके सूअरोंका चालान इसलिए बन्द कर दिया कि उनमें बीमारी होती है। इस प्रकार दोनों देशोंमें वैमनस्य बढ़ गया। सोराजीवोंमें इस कारण दंगा हो गया और युद्ध खड़ा हो गया।

भारतमें १८५७ के गदरमें भी गौ और सूअर ही कारण थे। देसी सिपाहियोंमें यह अफ़वाह फैल गयी कि कारतूसोंमें गाय और सूअरकी चर्बी लगायी जाती है। इसीसे उन्होंने अपना धर्म नाश होते देख कर गदर मचा दिया।

एक वर्ष पहले हंगरी और रूमानियामें बड़ा घोर युद्ध हुआ था। एक बछड़ा कौण्ट एंडसी रियासतकी हद पार करके हंगरीके हदमें पहुँच गया था। वहां उसे पकड़ लिया; अतएव लड़ाई शुरू हो गयी।

इजिप्टके भूत पूर्व मन्त्री अनवर पाशाको एक गायके कारण अपने पदसे उतरना पड़ा। वह

कैरो नगरमें अपना खेत देख रहा था कि एक गायने सींग मार दिया। वह कई दिनों तक विस्तरे से न उठ सका। खदीवने इस अवसर पर उसे पदसे हटा दिया।

स्काटलैण्डके प्रसिद्ध सेनापति राबर्टब्रूसने एक मकड़ीको देखकर धैर्य धारण किया और घोर युद्ध किया।

फ्रेडरिक दि ग्रेट की मृत्युसे रक्षा करनेवाली भी एक मकड़ी ही थी। फ्रेडरिक शराब पीनेको ही था कि उसमें एक मकड़ी आ गिरी। उसने प्याला उलट दिया और नयी शराब भर कर पीनेको प्याला उठाया। इतनेमें ही उसने देखा कि फेंकी हुई शराबको चाटकर एक कुत्ता चौपट हो गया। वह ताड़ गया कि शराबमें विष है। इससे उसके राजकीय प्रतिनिधिका षड़यन्त्र खुल गया।

अश्वत्थामाने उल्लूको चोरीसे दूसरे पक्षियोंके अण्डे तोड़ते देखकर ही पाण्डवोंके पुत्रोंको मारा।

शिव मूर्तिपर चूहेको मिठाई खाते देख स्वामी दयानन्दके विचारोंने पलटा खाया। फिर तो उन्होंने भारतकी दशा बदल दी।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

---

## ग्रामसंस्था

( ले०—श्री० शंकरराव जोषी )

( गतांकसे संबद्ध )

न्यायाधिकार

स्मृतियोंमें प्राचीन न्याय पद्धतिका वर्णन पाया जाता है। उससे पता चलता है कि ग्राममंडलोंका न्यायाधिकार अनियंत्रित था। आजकल यह प्रतिपादित किया जाता है कि जूरी की पद्धतिके आदि जनक अंग्रेज़ ही हैं, किन्तु यह भ्रम मात्र है। प्राचीनकालमें सारे भारतवर्षमें सर्वत्र यह पद्धति प्रचलित थी। एक न्यायाधीश द्वारा न्याय करानेकी प्रथा गौण और अपवाद रूप मानी जाती थी। इतना ही नहीं वरन् पाश्चात्य देशोंमें अति प्राचीन कालसे चला आनेवाला और इंगलैंडके सुप्रसिद्ध मेग्नाचार्टामें लिखा हुआ जूरीका हक़ और भारतमें प्रचलित न्याय पद्धतिका उद्गम एक ही है। और वह उद्गम है प्राचीन ग्राम संस्था और उनका न्यायाधिकार। इतिहासकारोंका मत है कि प्राचीनकालमें प्रत्येक मनुष्यको अपने सवर्गीयका न्याय करनेका अधिकार प्राप्त था। तदनन्तर राज सत्ताका ज़ोर बढ़नेपर राजा या उसके प्रतिनिधि द्वारा न्याय कार्य करानेकी पद्धति प्रचलित हो गई। भारतको भी यह नियम लागू होता है।

प्राचीन धर्म ग्रन्थोंमें तीन राजनियुक्त और तीन समूहात्मक न्याय स्थानोंके नाम दिये गये हैं। राजा सर्वश्रेष्ठ माना जाता था। राजाकी सभा ही आखिरी अपील कोर्ट थी। राजाके बाद प्राड्विवाक या धर्माध्यक्षका नम्बर था। धर्माध्यक्षके अधिकार आजकलके डिस्ट्रिक्ट जजके अधिकारोंके समान थे एवं वह नियमित स्थानपर कचहरी करता था। उसके नीचे प्रत्येक गांवमें न्यायाधिकारी थे। उक्त तीनों न्यायाधीशोंको सलाह देनेके लिए तीनसे लगा कर सात तक मंत्री रहा करते थे। इससे यह बात साफ़ तौरसे मालूम हो जाती है कि भारतवासी यह बात भले प्रकार जानते थे कि न्याय जैसे महत्वके कामका किसी एक व्यक्तिपर छोड़ देना ठीक नहीं। दूसरी तीन न्यायसभाएं तो सार्वजनिक ही थीं। यह तीन सभाएं थीं—कुल सभा, जातिसभा और ग्रामसभा और उन्हें अनुक्रमसे कुल, श्रेणी और पूग नाम दिये गये थे। झगड़ा हो जाने पर सबसे पहले वादी प्रतिवादीके रिश्तेदारोंकी सभा उस पर विचार करती थी। तदनन्तर उस जाति या धंधेकी सभामें अपील की जाती थी और अन्तमें यह झगड़ा ग्राम-सभामें पेश किया जाता था। यहां निर्णय न होनेपर प्राड्

विवाकके पास अपील की जाती थी और तब राजाकी सभामें मामला पेश होता था। स्मृति चन्द्रिकामें तो, गण, वर्ग आदि दस न्याय स्थानोंके नाम दिये गये हैं। राजा और प्राड्विवाकको ग्राम सभाके फैसलेकी अपील सुननेका अधिकार था; परन्तु उन्हें अपने मंत्रिमंडल की सम्मति लेनी होती थी।* संभवतः प्राचीन परिषद्से ही इस न्याय सभाकी उत्पत्ति हुई होगी। उपलब्ध धर्मग्रन्थोंमें इस परिषद्को केवल धार्मिक और नियमित रूप दे रखा है। तथापि प्रारंभमें प्रत्येक जाति और जनसमुदायमें परिषद् नामक एक आद्य साधारण सभा अवश्य ही रही होगी। बृहदारण्यकोपनिषद्में लिखा है "श्वेतकेतुर्हारुणेयः पांचालानाम् परिषदमाजगाम्"। प्रारंभमें परिषद्के सभ्यों की संख्या अवश्य ही अधिक रही होगी। पराशर स्मृतिमें सभ्योंकी संख्यामें उत्तरोत्तर कमी होनेका उल्लेख पाया जाता है।‡

परिषद् शब्द भी अति प्राचीन है। परिवेश, पैरिश (Parish) आदि शब्दोंसे उसका बहुत कुछ साम्य है। इतना ही नहीं, वरन अँगरेज़ी Session, लैटिन Sedis और संस्कृत 'सद्' आदि शब्द इसीसे निकले हैं। यह माना जा सकता है कि प्राचीन परिषद् ग्राममंडलका रूपान्तर और ग्राम पंचायत सभाका आदि स्वरूप है।

मेनका मत है कि सार्वजनिक भूमि स्वामित्वपर ही प्राचीन ग्राम व्यवस्थाका पाया बनाया गया था। उन्होंने अपने सिद्धान्तकी पुष्टिके लिए तीन प्रकारकी अवशिष्ट रूढ़ियोंका उल्लेख किया है। यह अवशिष्ट रूढ़ियाँ हैं—१ गाँवके अधिकारमेंकी जमीनका बँटवारा, २ जमीनसे सम्बन्ध रखनेवाले झगड़े बखेड़े तोड़ना और ३ अन्य प्रकारकी व्यवस्था रखनेकी सार्वजनिक रीति। इन तीन प्रमाणों द्वारा मेन साहबने यह बात सिद्ध की है कि पूर्वकालमें गाँव एक समूहात्मक व्यक्ति था। पहली दो रूढ़ियाँ अब लुप्त हो गई हैं। तथापि आज भी कहीं कहीं उनका अस्तित्व पाया जाता है। पाश्चात्य देशोंमें गाँवके अधिकारमें की जमीन 'टाउन मार्क', कॉमन फील्ड्स और 'पाश्चर' नामक तीन भागोंमें विभक्त थी। भारतवर्षमें भी ऐसा ही किया जाता था। यह तीन भाग थे—१ ग्रामसे व्याप्त भूमि, २ खेती करने योग्य जमीन और ३ चरनोई या जंगल या चरागाह। प्रत्येक विभागमें से एक टुकड़ा न्यूनाधिक परिमाणमें ग्रामके प्रत्येक कुटुम्बको दे दिया जाता था। कुटुम्बका अपनी ज़मीनपर पूर्ण अधिकार रहता था। परन्तु कुछ वर्षोंके बाद एक कुटुम्बके अधिकारमेंकी जमीन दूसरे कुटुम्बको दी जानेकी प्रथा थी। यह पुनः पुनः वितरणकी प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी।

बेडन पावेलका मत है* कि मानव जातिकी नैसर्गिक प्रवृत्तिके ही कारण सभी राष्ट्रों और जातियोंमें ग्राममंडलका उदय होता है। उसी प्रकार ग्राम संस्थाओंका उदय मैदानोंमें ही होता है; पहाड़ी प्रदेशोंमें नहीं। भारतीय ग्राम संस्थाएं एकसी नहीं हैं; अतएव मानना पड़ता है कि उनका उद्गम हिन्दू कायदोंसे नहीं हुआ है। शत्रुसे रक्षा करनेकी आवश्यकता और मिलकर रहनेकी मानवी प्रवृत्तिके ही कारण ग्राम समूह बनते हैं। आर्योंके भारतमें आकर बसनेके बहुत पहले ही अन्य जातिके लोग आकर भारतमें बस गये थे। उनमें भी ग्राम मंडलोंका अस्तित्व था। भारतके कई प्रान्तोंमें कोल जातिके लोग पाये जाते हैं। उनकी भाषामें खेड़ेको पन्हा और गाँवके मुखियाको मांकी या मंड कहते हैं। द्रविड़ जातिमें राजा होता था। गाँवकी जमीन कई भागोंमें विभाजित की जाती

---

* Life and Essay of H. T. Colebroke Vol. II, pp. 490-527.

‡ मेक्समूलर कृत A History of Ancient Sanskrit Literature पृष्ठ १२८-१३०।

* Land system of British India by B. H. Baden Powel--Vol. III.

थी। पहला भाग राजाको, दूसरा ग्रामाधिपतिको और तीसरा उपाध्यायको दिया जाता था। प्रत्येक गाँवमें 'मातो' (पटवारी) रहता था। हिसाब किताब रखनेका काम ही इसके जिम्मे रहता था। इसी जमानेसे जमीनका महसूल लिया जाने लगा।

सारांशमें बेडन पावेलका मत है कि आर्य लोगोंके भारतमें आनेके बहुत पहलेसे ही भारतमें ग्राम मंडलोंका अस्तित्व था। परन्तु आपने उक्त ग्रंथमें एक स्थान पर घुमा फिरा कर मेन के मतको कुछ अंशमें स्वीकार कर लिया है।

### ग्राम-मंडलका पुनरुज्जीवन

कई पाश्चात्य लेखकोंने भारतवर्षकी ग्राम संस्थाओंको निरुपयोगी और खराब कह कर बदनाम किया है। गुडाईन नामक एक सर्वे आफिसर अपनी पुस्तक Report on the village communities of the Deccan के २८वें सफे पर लिखते हैं "On reviewing it we find no perticular right or privileges possessed by the body of the people, not office-bearers; no independance or equality; no civil rights such as the freedom of election; no principle of progressive liberty. अर्थात् सब बातों पर विचारोंसे यही मालूम होता है कि प्राचीन ग्राम संस्थाओंमें कर्मचारियोंके सिवा अन्य लोगोंको कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं। स्वतंत्रता और समभावका बिलकुल अभाव पाया जाता है। चुनावके समान राजकीय अधिकारका एकदम अभाव है और स्वातंत्र्य वृद्धिका एक भी साधन प्राप्त नहीं।

इस आक्षेपका लम्बा चौड़ा उत्तर देनेकी अपेक्षा दो तीन विद्वानोंके मतका सारांश दे देना ही काफी होगा।

हिन्दुस्तानके गवर्नर जनरल मेटकाफ साहब एक स्थान पर लिखते हैं कि भारतीय ग्राममंडल छोटे छोटे प्रजासत्तात्मक राज्य हैं। वहां सब जरूरी चीज़ें मिलती हैं। उन्हें किसी पदार्थके लिए दूसरोंका मुँह नहीं ताकना पड़ता। अन्य संस्थाओंका नाश होगया, परन्तु वह अबतक जीवित हैं। एकके बाद एक कई राज घराने नष्ट हो गये। अनेकों विदेशी राजाओंने देशको लूटा। अनेक परिवर्तन हुए; परंतु ग्राममंडल पूर्ववत् बने रहे। ग्राममंडलोंमें ऐक्यताका अटल साम्राज्य था। इसी ऐक्यके कारण वह छोटे छोटे राज्य बन गये थे। इसी ऐक्यके कारण वह सब विघ्न बाधाओंको पारकर केवल जीवित ही नहीं रहीं, वरन् उनके सुख और स्वातंत्र्य रक्षणमें यह ऐक्य बहुत काम आया।

एक दूसरे सज्जन लिखते हैं कि सैकड़ों विदेशियोंके आक्रमणसे सारा देश मलियामेट होगया परन्तु ग्राम संस्थाएं कुशकी तरह देशमें मजबूती से जमी रहीं। एक और महाशय लिखते हैं कि विदेशी शासनका प्रभाव भी ग्रामसंस्थाओंको नष्ट न कर सका। यह संस्थाएं देशमें जाल सी बिछी हुई हैं। आज भी भारतमें यह विकृत रूपमें पाई जाती हैं। इनसे देशको बड़ा लाभ पहुँचा है। स्थानाभावके कारण अधिक मत उद्धृत नहीं किये जासकते।

### ग्रामसंस्थासे होनेवाले लाभ

ग्रीकके समान स्वातंत्र्य-प्रिय राष्ट्र रोमन लोगोंके अधिकारमें जाते ही नष्ट होगया। परन्तु अनेक राज्यक्रान्तियां होने पर भी हमारी ग्रामसंस्थाएं, हमारा धर्म और हमारी रूढ़ी ज्योंकी त्यों बनी रही। इसका कारण यह है कि ग्रीसमें स्वातंत्र्य रक्षणार्थ एक ही सभा थी और उसके निर्जीव होते ही स्वातंत्र्य भी नष्ट हो गया। परन्तु भारत की बात निराली थी। यहां प्रत्येक ग्राममंडल स्वतंत्रताकी वेदीपर आत्मबलिदान करनेको सदा प्रस्तुत रहता था। बड़े बड़े रथी महारथी भी इनको नष्ट न कर सके। यह सच है कि एक समूह या व्यक्तिके हाथमें अधिकार सूत्र होनेसे कुछ फायदे होते जरूर हैं, किन्तु इससे एक आध समय सर्वस्व नष्ट होनेका भय बना रहता है। यदि अधिकार बँटा हुआ हो, तो अंशतः नष्ट होनेपर भी बहुत कुछ बच ही रहता है, यह एक सामान्य नियम है।

पश्चिमी देशोंमें गरीबीके कारण लोगोंको विशेष कष्ट सहना पड़ते हैं। श्रम जीवियोंके दुःख दूर करनेके लिए 'कम्यूनिज़्म' 'सोशियालिज़्म' 'बोलशेविज़्म' आदि भाँति भाँतिके उपायोंका अवलम्बन किया जाता है। पाश्चात्य देशोंमें धनी और गरीब—पूंजी पति और श्रमजीवियोंमें, वैषम्य उत्पन्न होता जा रहा है। भारतवर्ष इन बुराइयोंसे बचा हुआ है। इधर कुछ वर्षोंसे भारतवर्षको भी यूरोपकी हवा लग गई है; जिसके प्रभावसे भारतीय श्रमजीवियोंका क्रोध हड़ताल-के रूपमें कभी कभी प्रकट हो जाया करता है। परन्तु ईश्वरकी दयासे अभी तक इसने उग्र रूप धारण नहीं किया है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिये कि भारतवर्षमें सम्पति-वैषम्य नहीं है। है तो; परन्तु हमारी ग्राम संस्थाओंने संकटके समय एक दूसरेको मदद करनेका उत्तम पाठ पढ़ा रखा है। इधर कुछ वर्षोंसे ग्राम संस्थाओं-की संयुक्ति शक्ति नष्ट हो गई है, जिससे गरीबीकी आग ज़्यादा दुखदायी मालूम होने लगी है। इससे यह माना जा सकता है कि ग्राम-मंडलोंके नष्ट हो जानेके कारण ही दिन पर दिन दरिद्रता बढ़ती जा रही है। आजकलके चढ़ा ऊपरीके ज़मानेमें प्राचीन ग्राम रचना सर्वांशमें हितप्रद नहीं हो सकती। प्राचीन ग्राम व्यवस्थाके निरुपयोगी भागोंको दूर कर उनमें देश, काल और परिस्थितिके अनुरूप योग्य परिवर्तन कर ग्राम मंडलोंका पुनरुज्जीवन करना अत्यन्त आव-श्यक है। हमारे राजा महाराजा और नबाब यह काम भले प्रकार कर सकते हैं। क्योंकि वह अपने सजातीय लोगोंके आचार, विचार और आवश्य-कताओंसे पूर्णतया परिचित होते हैं। सन् १८५७ के बलवे तक पंजाबमें ग्राम संस्थाओंका अस्तित्व था। सर, जान कम्बेलने अपनी एक पुस्तक*में पंजाबकी ग्राम संस्थाओंका अच्छा वर्णन किया है।

* System of Land Tenures in various countries.

ग्राम पंचायतें स्थापित हो जानेसे पहला लाभ तो यह होगा कि न्याय सस्ता हो जायगा और न्या-यालयोंका काम भी हलका हो जायगा। आजकल न्याय बहुत महँगा मिलता है और बेचारे गरीब लोगोंको बहुत कष्ट झेलने पड़ते हैं। स्टाम्प, रजिस्ट्रेशन फी, वकील, साक्षी आदिके भत्तेका खर्च और कारकुन, चपरासी आदिकी रिश्वतके मारे बेचारेका दिवाला पिट जाता है। इसलिए कई बार लोगोंको चुपचाप अन्याय सह लेना पड़ता है। इसके अलावा छोटे छोटे मुकद्दमोंके कारण स्माल कौज़ कोर्ट और मुनसिफ कोर्टका काम बहुत ज़्यादा बढ़ गया है। पंचायतें स्थापित करनेसे उक्त सब प्रकारके संकटोंसे छुटकारा मिल सकता है। मौंट स्टुअर्ट एलिफन्स्टन, सर टी मनरो, सर जे मालकम आदि कई पाश्चात्य विद्वानोंका भी यही मत है। भारतवर्षके समान कृषि प्रधान देश के लिए ग्राम पंचायतें ज़्यादा फायदे मंद हैं। पंजाब, बम्बई आदि प्रान्तोंमें इनसे लाभ ही हुआ है।

दूसरा लाभ यह होगा कि अकालके जमानेमें ग्रामवासियोंसे अच्छी मदद मिल सकेगी। कई लोग कई कारणोंसे सरकारी रिलीफ वर्क्सकी सहायता लेना मरनेकी नौबत आने तक स्वीकार नहीं करते। कारण ऐसा करना वह अपमानजनक समझते हैं। फैमिन कमीशनोंने यह काम ग्रामा-धिकारियोंके सिपुर्द करनेकी सिफारिश की है। ग्राम पंचायतोंके स्थापित हो जानेसे अकालके जमानेमें लोगोंको बहुत लाभ पहुँचने की संभा-वना है।

हिन्दुस्तानमें जंगलों पर सरकारका अधिकार है। जंगलोंकी रक्षाके लिए सरकारको ज़्यादा खर्च उठाना पड़ता है और किसानोंको भी ज़्यादा तकलीफ होती है। यदि यह काम ग्रामपंचायतोंके सिपुर्द कर दिया जाय तो लाभ हो सकता है। फ्रांस और जर्मनीमें जंगल गांवके अधिकारियोंके सिपुर्द हैं। इस प्रथासे वहांवालोंको लाभ ही हुआ है।

शिक्षा, आरोग्य व्यवस्था, टीका लगाना, जन्म-मृत्युका लेखा रखना आदि काम ग्रामपंचायतों द्वारा कम खर्चमें किये जा सकते हैं। अनुभवसे पाया गया है कि म्युनिसिपैलिटी मदर्सोंकी व्यवस्था उत्तम रख सकती है।

प्रत्येक गांवमें नहर, तालाब, कुएं आदि नवीन बनाने या उनकी दुरुस्तीका काम पंचायतें भली प्रकार कर सकती हैं। पंजाबमें यह काम ग्राम-पंचायत द्वारा करानेसे कमखर्च और थोड़े समयमें उत्तमता पूर्वक किये जासके हैं; मिश्रमें भी यह प्रथा प्रचलित है।

कृषि सुधारमें भी ग्राम मंडलोंसे बहुत सहायता मिल सकती है। भारतीय कृषक धनहीन हैं। वैज्ञानिक ढंगसे खेती करनेके लिए यंत्रोंकी जरूरत होती है। परंतु धनाभावके कारण भारतीय किसान उसे खरीद नहीं सकते। ग्रामपंचायतें यह यंत्र खरीद सकती हैं। यह मशीनें तब लोगोंको किराये पर देनेसे पंचायतको तो थोड़े ही दिनोंमें मशीनकी कीमत व्याज समेत मिल जायगी और गांवका गरीबसे गरीब किसान भी पांच सात रुपया खर्चकर यंत्रोंसे लाभ उठा सकेगा। एमिली डी लावेलायी लिखते हैं कि फूलैंडर्समें यही पद्धति प्रचलित है; जिससे किसानोंको बहुत लाभ पहुँचा है।

ग्रामपंचायतोंके स्थापित हो जानेसे और भी कई प्रकारके लाभ हो सकते हैं। विस्तार भयके कारण उन सबका विवेचन यहां नहीं किया जा सकता। तथापि यहां पर यह कह देना उचित होगा कि सभी जगह एक सी पद्धतिका अवलम्बन करना लाभदायक नहीं हो सकता। स्थान भेदके कारण उनमें कुछ न कुछ भेद अवश्य ही रखना होगा।

सार्वजनिक भूमिस्वामित्वको छोड़कर अन्य दो अधिकार पंचायतोंके सिपुर्द करना फायदेमंद होगा। गांवके अधिकारियोंमें परिवर्तन करना आवश्यक है। उनको वेतन भी नगद ही देना ठीक होगा। सारांशमें, मुख्य बातको ध्यानमें रखकर उचित सुधारकर ग्रामपंचायतें स्थापित करना भारतके हितकी दृष्टिसे अनिवार्य्य है।*

---

## लाहकी खेती

[ले०—साहित्य शास्त्री पं० रामप्रसाद पाण्डेय, विशारद, काव्यतीर्थ]

जिस पदार्थसे स्त्रियोंकी चूड़ियां बनती हैं, आफिसोंमें मुहर (Seal) लगाई जाती है, वह किस चीज़से बनाया जाता है? सम्भवतः इसे बहुतसे लोग अच्छी तरह नहीं जानते। इस निबन्ध लिखनेका प्रयोजन उसीसे पाठकोंका परिचय करना है।

एक प्रकारका कीड़ा कितने ही वृक्षों पर रहता है, उनका रस चूसा करता है और फिर उसे अपने शरीरमें चारों ओर पोत मानों अपनेको एक कठोर आवरणसे ढक लेता है। इस कठोर आवरणको ही लाक्षा, Lac, लाह आदि कहते हैं। उक्त कीड़ा अनेक प्रकारके वृक्षों पर बैठ कर इस प्रकार लाह तैयार करता है; किन्तु बैर, परास, पीपल, पाकड़ प्रभृति वृक्षोंसे ही लाह अधिक बनता है। मानभूमिमें बहुत ज्यादा लाह तैयार होता है। वहांवाले बैर और परासके ही वृक्षोंको अधिक काममें लाते हैं। परासका लाह बहुत ही गहरे रंगका होता है। जिस पेड़ से लाह तैयार करना होता है पहले उसकी डाल काट देते हैं; फिर जब उस स्थान पर नई टहनियां निकल आती हैं तो वहां लाक्षाबीज (Brood lac) रख देते हैं। १०, १५

*लेखककी 'ग्रामसंस्था' नामक एक अप्रकाशित पुस्तकके आधार पर।

दिनमें उस बीजमेंसे कीड़ा निकल आता है; तब उस बीजको उतार लेते हैं।

लाहकी फसल सालमें दो बार होती है। एक-को वैशाखी और दूसरीको मात्रकी वा रंगीन कहते हैं। वैशाखी वैशाख मासमें एवं मात्रकी आश्विन वा कार्तिकमें कटती है। वैशाखमें कटनेवाली फसल कार्तिकमें और कार्तिकमें कटनेवाली जेठ वा आषाढ़में बोई जाती है। जब कीड़े बाहर निकलने लगते हैं तो पेड़ोंसे उतार कर फिर बीजरूपसे उनका व्यवहार किया जाता है। सालमें दो बार अर्थात् आषाढ़ और कार्तिकमें लाहके कीड़े बाहर निकलते हैं।

लाहकी अच्छी वा बुरी फसल प्रधानतः ईश्वरा-धीन है; कारण कि अच्छी फसल होनेके लिए इस समय जल बरसनेकी जरूरत होती है। यदि पानी न बरसे या अधिक गर्मी पड़े अथवा अन्य कोई दैविक बाधाके उपस्थित हो जावे तो फसल खराब हो जाती है। एक प्रकारकी काली चींटी इसको बहुत हानि पहुंचाती है। एक प्रकारका और कीड़ा होता है जिसे "चाउल" कीड़ा कहते हैं। वह भी बहुत अनिष्ट कर है। वह बीजमें घुसकर लाहके कीड़े और लाह दोनोंको खा जाता है। इस कीड़ेका खाया लाह फिर बीजके काममें भी नहीं आ सकता।

यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि लाह-की खेतीमें कम ज्ञान और कम व्ययकी जरूरत होती है और साधारणतः इसकी खेतीमें हानि नहीं हो सकती। तीन रुपयेका बीज बोनेसे ४० या ४५ रुपयेका लाह तैयार होता है। क्या अब भी बतानेकी जरूरत है कि इसकी खेती कितनी लाभ दायक है। मानभूमिके सैकड़े पीछे ६० आदमी लाहका क्रय विक्रय करते हैं। कुछ लोग अपनी जमीन कृषकोंको पट्टे पर लाह बोनेके लिए दे देते हैं और स्वयं उसका व्यवसाय करते हैं। आढ़तिये और दलाल भी खूब लाभ उठाते हैं। यह लोग २०००) ३०००) तक एक एक फसल में मुनाफा करते हैं।

भारतमें कबसे लाहकी खेती होती है। इसका ठीक ठीक तो पता नहीं; फिर भी मानना पड़ेगा कि बहुत प्राचीन समयसे यहां इसकी खेती होती थी। इसका प्रमाण संस्कृत कोषोंसे मिलता है। उनमें लाक्षा वृक्षका नाम आता है। महाभारतमें वारना वतके लाक्षा-गृहमें पाण्डवोंका जलाया जाना प्रसिद्ध ही है।

लाहके खिलौने, छड़ी, वार्निश, ब्राकेट आदि अनेक चीज़ें बनती हैं। इससे स्त्रियोंके पैरमें लगाये जानेवाला महावर बनता है। लाहका पानी खेतोंके लिए बड़ा उपयोगी है। वह बड़ी अच्छी खादका काम देता है।

---

# साँप और साँपके काटेका इलाज

( गतांकसे सम्बद्ध )

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार ]

३—साँपोंका स्वभाव

ब साँपकी दाढ़ निकाल दी जाती है वह प्रायः रूस कर या मुखमें दर्द होनेके कारण भोजन नहीं करता। संपेरे लोग ऐसी दशामें जबरदस्ती मेंढ़क लेकर उसके गलेके नीचे उतार देते हैं। निर्विष सर्प—जैसे भोआ, जिनके विष दंष्ट्रा नहीं होती—तो बड़ी प्रसन्नतासे खा लेते हैं और देरतक जीते भी रहते हैं। बड़े बड़े विषखपरा साँप भी छः छः मासतक बिना खाये जीते रहते हैं। साधारणतः ३ मासतक तो मज़ेमें जीते रहते हैं। सर्दियोंकी सारी ऋतु वह उपवासमें ही गुज़ार देते हैं। उस समय उनका देह बहुत निर्बल हो जाता है। संस्कृतमें एक कहावत है कि—

"सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते"
सांप पवन पीकर ही जीते हैं। पर फिर भी दुर्बल नहीं होते। ठीक है "क्या जाने कोई पीर पराई जाके पैर न फटी बिवाई।"

ज्यों ही सरदी शुरू होती है सांप किसीके बिलमें या वृक्षकी खोखलमें या दरारमें जा सोता है। एक हरा सांप ही ऐसा है जो जाड़ेमें स्वच्छन्द विचरा करता है। इसका विष भी बड़ा उत्कट होता है। इसके शरीरपर खुरु सुखु छिलके रहते हैं, जो इसकी सरदीसे भी रक्षा करते हैं।

यह देखनेमें इतना सुन्दर नहीं होता है जितना घासका सांप (grass vipers); यद्यपि उसमें और इसमें समानता बहुत होती है। वृक्षोंपर जो हरा सांप होता है वह निर्विष होता है। हरा सांप जाड़ेकी रातोंमें भी खानेकी खोजमें निकलता है। वह मेढ़क छोटे छोटे परिन्दे, चूहे, चुहियां, भौंरे, झिंङ्गे, छिपकलियां और छोटे छोटे रेंगनेवाले जानवरोंसे वह अपना पेट भर लेता है।

राजसांप या सकनी भी बड़ा विषैला होता है। यह भी हेमाद्रिजातका दूसरा भाई होता है। उसका आहार सर्प ही होते हैं। कहा जाता है कि यह दोनों अन्य सांपोंको अपनी शक्तिसे मानों मन्त्र-बद्ध कर लेते हैं। इनको देखकर दूसरे सांप रास्ता चलना भूल जाते हैं। वह मुग्ध होकर खड़े हो जाते हैं। इधर राजसांप शनैः शनैः समीप आता है और उसे गड़प कर निगल जाता है। कभी कभी सकनी अपने स्थानसे नहीं हिलता; बल्कि मुग्ध होकर और सांप आपसे आप इसके पास खिंचे चले आते हैं। यह मुंह खोलकर बैठ जाता है और वह आपसे आप खुले मुखमें घुस जाते हैं।

ज्यों ही ग्रीष्म ऋतु प्रारम्भ होती है सांप सायंकाल होते ही अपने अपने बिलोंसे निकलकर विचरने लगते हैं। वह मन्द मन्द पवनका आनन्द लूटा करते हैं; पर पासमें किसीके पैरकी आहट सुनकर खिसकने लगते हैं। कभी कभी वह पैरोंकी आहट सुनकर भी अपने स्थानसे नहीं हिलते बल्कि वहां ही दुबककर बैठ जाते हैं। यदि उसपर किसीकी आंख न पड़े और राहगीरका पैर भूल कर इसके सिरके पास ही पड़ जाय तब तो यह मूज़ी अपना घात लगाये बिना नहीं छोड़ता; पर हां करैत सांप तब तक कुछ नहीं कहता जब तक उसके शरीर पर आघात नहीं होता।

गोखुरा अपना आहार शामको नहीं खोजता बल्कि अर्धरात्रिमें, जब कि सब मनुष्य सो जाते हैं, यह निशाचर निकलता है। तब यह निःशंक होकर मनुष्योंके निवासगृहोंमें विचरता है। वहां मूसों, मुर्गों और पक्षियोंके अण्डोंपर दाव लगाता है। अण्डोंको तो लड्डूके समान गलेसे उतार लेता है। भोजनकी तलाशमें तो आदमीकी खोपड़ीमें भी बड़ा तूफ़ान उठता है। वह भी दुनियां भरके गरीब जानवरोंको कतल करके खा जाता है। फिर सांपोंका तो कहना ही क्या। वह तो चाहे निर्विष हो या विषैला भूखसे व्याकुल होकर आहारपर साक्षात् यमराजके समान निष्ठुर देख पड़ता है। भूखके चक्करमें उसे कहीं भी जाते भय नहीं होता। वह जनसमूह तकमें आ धमकता है। परन्तु साधारण दशामें वह मनुष्योंके पास नहीं आता। यदि वह चूहेके पीछे पीछे लग जाय और चूहा कहीं जान बचानेके लिए आदमियोंमें घुस जाय तो ऐसी दशामें सांप भूखसे व्याकुल होकर नर मांसपर ही दाँत गड़ा देता है। साँप अण्डों और छोटे छोटे पक्षियों और चिड़ियोंपर बड़ा लालायित होता है।

गोखुरा चिड़िया या मुर्गेको निगल नहीं सकता। परन्तु वह उनके बच्चोंको समूचा ही चाट जाता है। उन्हींके भ्रममें कभी कभी उनके मां बापको भी साफ़ कर देता है।

पक्षियोंके घोसलोंमें अण्डोंका व्यसन पूरा करनेके लिए वह वृक्षोंकी सैर किया करता है। यदि कोटरमें किसी पक्षीने घोसला बनाया हो और वहां अण्डे बच्चे दिये हों तो बस वहां वह अपना यमराजी मुख फैला देता है। कभी कभी

ऐसी आनन्दकी लूटमें ही उसको स्वयं भी काल का शिकार होना पड़ जाता है। अंडोंकी लालसा-से वह जब कभी आगे बढ़ी हुई शाखाके खोखलमें अपनी गर्दन डाल देता है, परन्तु शेष धड़ न सम्भलनेके कारण लटक जाता है और उधर गलेमें अण्डा बच्चा भी आकर मारे लालचके मुँहसे नहीं छूटता; तब तो काले नागकी भी गर्दन साक्षात् यम आकर नाप लेता है। उसका प्रिय भोजन ही उसके गलेमें अटक कर उसका दम घोट देता है। बस वह वहां लटक कर फांसीका आनन्द ले लेता है। उस अधमरी दशामें और हो जाता है और कागा और चील उसके देहकी खाल नोच नोच कर उसे मार डालते हैं।

ग्रीष्मऋतु इनका ऋतु कालका अवसर होता है। तब नाना प्रकारके सांप विचरते हैं और नाना प्रकारके जोड़े बननेसे संकर जातियां पैदा होती हैं। संयोगके समय जब नाग नागिन दोनों जुड़ जाते हैं उस समय बहुत से ग्रामवासी उन्हें देखनेके लिए इकट्ठे हो जाते हैं और उन जुड़े हुओं पर बहुतसे कपड़े फेंकते हैं। उनका विश्वास है यदि ऐसी दशामें उन वस्त्रोंका नाग नागिनके शरीरसे स्पर्श हो जायगा तो उन वस्त्रोंमें ही औषधिका सा प्रभाव हो जायगा। प्रायः गोखुरा और काला नाग आपसमें जुड़ जाते हैं। लोगोंका विश्वास है कि गोखुरा काले नागकी नागिन है। इतना तो अवश्य है कि गोखरा ही ऐसी नागिन है जिसके फण और जहरीली दाढ़ें होती हैं।

सांप अपने अण्डे सूखे स्थानोंपर देता है। कहा जाता है कि यदि इसके अण्डे गीले हो जांय तो मर जाते हैं। यही कारण है कि एक वर्षमें सांप बहुत अधिक होते हैं और दूसरे साल कम होते हैं। बच्चे अण्डोंसे बाहर आते ही चारों तरफ फैल जाते हैं और भोजनकी तलाशमें निकल जाते हैं। याद रखिये कि इन सांपोंका आकार और रूप देख कर उनकी अपेक्षा नहीं करनी चाहिये। गुखुरे का एक दिनका बच्चा भी काटकर मनुष्यके प्राणान्त कर देता है।

यहां कोई छोटा सा भी सांपका बच्चा रेंगता पाया जाय वहां आस पास औरोंकी भी खोज कर लेनी चाहिये। उसके सहोदर भाई भी अवश्य आसपास ही कहीं होते हैं। संपेरे सांपको देवता और इष्ट मान कर उसकी हत्या नहीं करते; क्योंकि साँप ही उनकी आजीविका देता है। वह उसका मारना कृतघ्नता समझते हैं। इसलिए उन्हें जब कोई छोटा मोटा साँप संपोला मिल जाता है वह उसे हाँड़ीमें बन्द करके कहीं बाहर खेत या जंगलमें छोड़ देते हैं। यदि सरकार सांपोंकी हत्यापर इनाम देती है तो उसे चाहिये कि दो या अधिक अण्डोंके नाशपर इनाम दिया करे। खैर ऐसे अवसरोंपर विधाताकी सृष्टि ही मनुष्यके साथ हाथ बंटाती है। सांपके छोटे संपोलोंको और बहुत से जानवर खा जाते हैं। यही कारण है कि साँप बहुत ज़्यादा नहीं हो पाते। इसमें संदेह नहीं कि इनकी आयु बहुत ही अधिक होती है। यदि उनकी हत्याका ईश्वर ऐसा प्रबन्ध न करे तो एक जोड़ा सांप ही अपनी सन्तानसे भूमण्डलपर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा ले।

करैत अपना आवास मकानकी छतों और छप्परोंमें बनाता है। प्रायः छतोंमेंसे ही उसके छोटे छोटे बच्चे टपका करते हैं। करैतके बच्चों-का आंगन या घरमें रेंगना कोई उपेक्षाकी बात नहीं; क्योंकि वह बच्चा भी जवानसे कम भयानक नहीं होता। खपरेका बच्चा बड़ा ही सुन्दर होता है। उसकी वीरता तो अपने माँ बांपकी सी ही होती है। परन्तु शत्रुमित्रकी पहचान अनुभवसे ही आती है। वह बचपनमें तो आनन्दसे इधर उधर घूमा करता है। चाहे उसके पास कोई आदमी हो या न हो वह परवाह नहीं करता। परन्तु लाठी छुआते ही वह वीर मां बापका बच्चा फन उठाकर काटनेको पड़ता है और मारे क्रोधके पीछे दौड़ता है।

४—रक्षा

खपरा भोजनकी खोजमें मनुष्यके घरोंमें भी घुस आता है। कैवट और हेमाद्रिजात कभी मनुष्योंके पास नहीं फटकते। शेष जातियोंके सांप खेतोंमें रहते हैं। करैत मनुष्यके सहवासका बड़ा प्रिय है। खपरा सदा चूहे, चुहियां, अण्डे, पक्षियोंके बच्चे और बिल्लियोंके बच्चोंका लोभी होता है। जिस घरमें मूसे बहुत हों उसमें विष खपरा भी अवश्य दर्शन देता है। इसलिए चूहों और चूहियोंका संग भी बड़ा संकट जनक है; परन्तु बिल्लियोंका घरमें सहवास बड़ा उत्तम है। इसी प्रकार कुत्ते और नौला भी उत्तम हैं। नौलेमें भी एक बड़ी बुरी आदत है। वह कभी कभी बाहर से भी सांपका शिकार करके घरमें ले आता है। तो भी वह घरमें रहता हुआ सांप पर बड़ी कड़ी नजर रखता है। कुत्ता सांप पर कभी आक्रमण नहीं करता; परन्तु भौंकता अवश्य रहता है। बिल्ली बड़ी साहसी होती है। वह सांपके साथ बड़ी निर्दयतासे खेलती है। कभी कभी दोनोंमें बड़ा ही रोमांचकारी युद्ध होता है। इस युद्धमें एककी मृत्यु अवश्य होती है और कभी कभी दोनों ही जानपर खेल जाते हैं। गादड़ भी सांपोंपर बड़ा शेर होता है। वह भी सांपसे जान तोड़कर लड़ता है। सांप और नौलेकी लड़ाई मशहूर हो गयी है। संस्कृतमें भी 'अहि नकुल' का परस्पर शास्वतिक विरोध माना जाता है। आक्रमण पहले सदा नकुल ही किया करता है। यह प्रसिद्ध बात है कि नौला सांपके विषकी कोई अद्भुत औषध जानता है। पर कभी कभी नौला सांपसे पछड़ जाता है और सांपके विषसे प्राण खो बैठता है। इससे यही कहा जा सकता है कि सब नौले सांपके विषकी औषधके ज्ञाता नहीं होते।

सारस भी सांपका पक्का शत्रु है। वह सांपको मारकर हड़प जाता है। इसी प्रकार और भी शिकारी जानवर सांपकी जानको आफत ही हैं। वह भी उसके प्राण लिए बिना नहीं रहते। सांप उनके मुकाबलेमें कुछ भी नहीं। गरुड़ राज, नीलकण्ठ, मयूर—यह तो सांपको अपना आहार ही समझा करते हैं।

जहां तक हो सके घरमें चूहे नहीं रहने देने चाहियें। प्रायः चूहोंके बिलोंका निवास-सुख सांप ही लिया करते हैं। सांप अपने बिल आप नहीं खोदता। वह पराये घरमें ही आनन्दित रहता है। सांख्यकारको यह सर्प वृत्ति बड़ी ही उत्तम प्रतीत होती है, आप लिखते हैं—

"पर गृहे सुखी सर्पवत्"

"भिक्षुक आत्मज्ञानी अपना घर आदि खड़ा न करे; प्रत्युत सांपके समान परगृहमें ही सुखसे रहा करे।"

सांप आप बिल नहीं खोद सकता। यदि सांप किसी बिलमें घुस जाय तो उसे बन्द कर देना चाहिये। सांप अन्दर ही अन्दर घुटकर मर जायगा। यदि घरके द्वार खूब मज़बूतीसे बन्द हों तो सांप घरके भीतर नहीं घुस सकता; तो भी यदि किसी रास्तेसे वह घरमें आजाता है तो रात ही रात अपना भोजन ढूंढकर भोर होनेके पहले बाहर हो जाता है। यदि घरके भीतर कोई बिल मिल जाता है तब तो वह वहां ही दिनमें रह जाता है। यदि वहां उसको किसी प्रकारकी तंगी न हुई तो फिर ऋतुकालमें उसकी नागिन भी वहीं आजाती है और वंश फैलने लगता है।

गरीबोंको चाहिये कि वह अपने घरके सब बिल बन्द कर दिया करें। वह चूहोंको भी घरोंसे निकाल सकते हैं। करैत सांपसे पीछा छुड़ाना बड़ा कठिन है। एक तो वह मनुष्यसे भय नहीं खाता। वह मनुष्यके सहवासका बड़ा प्यारा है। उसका भोजन भी छिपकली, मकड़ी और मकोड़े हैं। सांप की नासिका बड़ी तीक्ष्ण होती है। वह धुएंको नहीं सह सकता। सांपोंसे मुक्ति पानेका यह एक अच्छा उपाय है कि कोई तेजगन्धवाले पदार्थ का धुआं किया जाय। छिद्रके मुख पर गन्धक या लाल मिर्च या हलदी जलादी जाय। किसी दिन

दिन भर जलाकर छिद्र बन्द करदें। परन्तु ध्यान रहे कि चूहेके बिलके मुख बहुत से होते हैं; इसलिए एक नहीं बल्कि सभी मुख बन्द करे।

छप्परोंकी छतों और दीवारोंके कोनोंमें प्रायः करैत सांप अपना स्थिर घर बना लिया करते हैं। बहुत खोज करने पर भी सांपका छप्परमेंसे ढूंढ निकालना कठिन होता है। ऐसी दशामें छप्परमें गन्धकका धूंआ या तम्बाकूका पानी बड़ा चमत्कार करता है। छप्परोंमें सोनेके पहले भी ऊपर चादर तान लेना तथा चारपाई बिछाकर सोना उत्तम है। गरीबोंके लिए खाट पर सोना भी एक बड़ी रक्षाका साधन है। कहते हैं जब विश्वकर्माने खाट बनाई तब उसने सांपोंको आज्ञा दे दी थी कि चारपाई पर सोनेवालोंको तुम मत काटना।

प्रायः सांप काटनेकी घटना ग्रामवासियोंके साथ खेत आदिमें होती है। वहां उनको नाना प्रकारके सांपोंसे भेंट होती है। वहां भयानक दबोइया भी आ मिलता है। यह अजगर घरपर कभी दर्शन नहीं दे सकता। जिनके पास जूते और जुराब पहननेके लिए पर्याप्त धन है उनको तो कोई विशेष भय नहीं। हाथमें बत्ती ले कर चलने वालेको भी कोई भय नहीं। गरम ऋतुमें लोग प्रायः हाथमें लाठी और लालटैन लेकर घूमा करते हैं। वह लाठी खटका खटकाकर सांपको डराया करते हैं। न लाठी हो तो हाथोंसे ताली बजाकर ही सांपको हटनेका इशारा कर दिया जाता है। परन्तु याद रहे कि शब्द सुना देना ही सांपको काफ़ी नहीं है। क्योंकि कई दशाओंमें सांप सुनकर भी पड़े रहते हैं। वह वहां काटने और बदला लेनेकी गर्ज़ से ही पड़े रहते हैं। वह फण उठाकर मनुष्यकी बाट जोहने लगते हैं। प्रायः गरम ऋतुमें यह बहुत देखनेमें आयेगा।

शुरू बरसातमें बहुत सांप निकला करते हैं। उस समय वह भोजनकी फिकिरमें विचरते हैं। उस समय वह मार्गों पर आलस्यसे पड़े नहीं रहते।

पहली वर्षाके अवसर पर ही सभी सांप अपने बिले छोड़ा करते हैं। वह सर्दीसे भी डरते हैं; पर गरमीमें घुट कर भी मरना नहीं चाहते। ग्रीष्म गुज़रने पर शीतल बौछार पड़ते ही वह उसका आनन्द लेनेके लोभसे बाहर आ निकलते हैं। इधर वर्षासे उनके बिल भी पानीसे भर जाते हैं। वह बिलोंमें रह भी नहीं सकते। वह यद्यपि वर्षामें बड़े मदमत्त होते हैं तो भी पानीमें भीगना पसन्द नहीं करते। वह रक्षा पानेके लिए फिर मनुष्यके घरकी शरण लेते हैं। भोजनके लिए वह वृक्षों पर भी चढ़ जाते हैं।

ऐसे अवसरों पर सांपोंसे बड़ा सावधान रहना चाहिये। उत्तम उपाय यही है कि सांप दांत न गड़ा पाये; उसे पहले ही झटक कर परे फेंक दिया जाय।

### ४—विष, विषके दांत और काटना

सपेरे प्रायः लोगोंको फणवाले सांपका दर्शन कराया करते हैं। वह कभी कभी अजगर सांप या दबोया सांप भी दिखाया करते हैं। उनका चमड़ा बहुत सुन्दर होता है। सांपोंकी जहरीली दाढ़ निकाल डालनेको "मूंड़ना" कहते हैं। हेमाद्रिपात और दबोया सांपोंको ज्योंही पकड़ते हैं त्योंही मूंड़ डालते हैं। परन्तु खपरा और कैवरा सांपोंको प्रायः बिना मुंड़ा ही रखते हैं। उनको इसलिए नहीं मूंडते कि उनको बिना मुंडा रखनेसे उनको भोजनादि खिलाकर बड़ा करना सुगम हो जाता है। इससे उनकी आयु भी बहुत हो जाती है। यद्यपि बिना मुंडा सांप हाथमें लेना बड़ा आपत्तिजनक है, पर सपेरे ऐसे सांपोंपर भी हाथ डालते भय नहीं करते। उनको सांपके काटनेसे भी भय नहीं लगता।

कैवराको तो कभी नहीं मूंडते। विशेष कर तब जब वह काली जातिका हो। वैद्य लोग कैवरेके फणसे दवायें भी बनाते हैं। और किसी सांपके विषकी औषध नहीं बनती। बस काले कैवरेके विषकी औषध ही बड़ी लाभकर और मूल्यवान

होती है। उसका विष बड़ा कामोद्दीपक और वृष्य होता है। इसका काटना तो खपरेके काटनेसे भी अधिक भयंकर होता है। इसमें तो कोई संदेह नहीं कि बिना फणके सांपकी अपेक्षा फणवाले सांपका विष अधिक गुणकारी होती है।

हेमाद्रिपात और केवरा या किसी भी बड़े सांपके मूंड़नेके लिए दो तीन आदमियोंकी आवश्यकता होती है। पर कभी कभी एक आदमी भी मूंड लेता है। उस समय वह उसका सिर अपने बांये हाथमें पकड़ता है और बायें पैरके पंजेसे उसकी पूंछ दबा लेता है। बायें हाथसे दबा कर उसका मुख खोलता है और तेज चाकू हाथमें लेकर विषकी थैलियों सहित दाढ़ें उखाड़ डालता है।

हरेक सांपके छः जहरकी दाढ़ें होती हैं। दो तो बहुत बड़ी और पक्की होती हैं और शेष चार नन्हीं नन्हीं होती हैं। दो बड़ी दाढ़ें ही जहरीला गहरा घाव करती हैं। यदि किसी प्रकारसे इनमेंसे कोई एक या दोनों दाढ़ें नष्ट हो जायँ तो शेष छोटी छोटियोंमें से हो बढ़कर बड़ी हो जाती हैं। छोटी भी बनावटमें बड़ी दाढ़ोंके समान ही होती हैं। केवल आकारमें छोटी होती हैं। उनमेंसे कई तो इतनी छोटी होती हैं कि उनका पता भी लगाना कठिन हो जाता है। अण्डेसे निकलते ही यह छहों दाढ़ें मुखमें प्रकट होती हैं। उनके निकाल देने पर सांपसे फिर किसी प्रकारका भय नहीं रहता। यदि उनमेंसे एक भी रह जाय तो कुछ दिनोंके बाद वह फिर पूर्ववत् भयानक हो जाता है। वह छोटी दाढ़ें भी थोड़े ही दिनोंमें बढ़कर प्राणघातक हो जाती हैं।

इसलिए सांपको मूंड़नेमें बहुत सावधान होना चाहिये। इस अवसरकी असावधानतासे कभी कभी संपेरोंको भी बड़ी हानि उठानी पड़ती हैं। संपेरा मनमें समझ बैठता है कि उसने उसकी सब विषकी दाढें निकाल दी हैं और काट लेने पर घावको साधारण दांतका समझकर यों ही छोड़ देते हैं; परन्तु थोड़े ही कालके बाद उसका घातक असर दीखने लगता है। सांप काट लेने पर शरीरमें अद्भुत प्रकारसे लिपटता है। उसीसे समझ लेना चाहिये कि सांपकी विषकी दाढें फिर बड़ी हो गयी हैं।

विषकी थैलियां दाढोंकी जड़ों पर होती हैं। विषकी दाढें मुख बन्द रहते समय जीभ पर चपटी पड़ी रहती हैं। काटते समय वह कांटेकी तरह खड़ी हो जाती हैं। वह सींगकी तरह मुड़ी रहती हैं। उनकी मोटाई सुईसे अधिक नहीं होती। उनके बीचमें छेद होता है। उन्हींमें होकर विष रुधिरमें पिचकारीकी तरहसे प्रविष्ट हो जाता है।

विषकी थैलियोंमें विष पैदा हो जाता है। और थैलियोंमें ही जमा रहता है। जब विषकी दाढ़ें जीभपर लेटी रहती हैं तब उन दाढ़ोंका मुख भी बन्द रहता है। मुंह खुलते ही दाढें सुइयोंके समान खड़ी हो जाती हैं। जब सांप काटता है तभी विष उछलकर दाढोंके मार्गसे बाहर निकल आता है। यदि सांपसे बहुत बार कटाया जाय तो थोड़ी देरके बाद थोड़ी देरके लिए विषकी थैलियां खाली हो जाती हैं और सांपकी घातकता भी न्यून हो जाती हैं। सांप भी कमजोर हो जाता है; थोड़ी देरके बाद फिर विष पैदा हो जाता है।

सांपका विष तेलका सा पदार्थ होता है और देखनेमें शहदका सा जान पड़ता है। स्वादमें विष बहुत कड़वा होता है। एक छोटा सा बिन्दु भी जीभपर रख लेनेसे मुख कई घण्टों तक कड़वा रहता है। सांपका विष पेटमें जानेसे कोई हानि नहीं करता। थोड़ी मात्रामें कुछ प्रभाव नहीं करता। अधिक मात्रा पेटमें चले जाने पर जी मिचलाने लगता है और सिरमें दर्द शुरू हो जाता है; छींकें आने लगती हैं और सिर घूमने लगता है। दिमाग भारी होने लगता है और आखें लाल पड़ जाती हैं। परन्तु यदि विषकी थोड़ी सी मात्रा भी रुधिरके साथ मिल जाय तो मृत्यु होजाती है।

भारतीय विष वैद्य केउराके विषका औषधोंमें प्रयोग करते हैं। वह उसका सिर बायें हाथमें पकड़ लेते हैं और चमचे पर ताड़का पत्ता मढ़कर उसके मुखमें डाल देते हैं। वह अपनी दाढ़ें ताड़ पत्रमें खुबो देता है। और विषकी धार चमचेमें इकट्ठी होने लगती है। वह घटकर बूंद बूंद टपकने लगती है और कुछ कालके बाद सब टपक चुकती है। विषकी थैलियां खाली हो जाती हैं। थैलियां खाली होनेमें कुछ ही मिनट लगते हैं। चमचा विषसे भर जाता है वह परिमाणमें चार ड्राम होता है।

यदि सांपके विषकी एक बूंद हथेली पर डाल कर पानीके साथ मलें तो साबुनकेसे झाग उठने लगते हैं। औषधमें डालनेके लिए विषको नारियल-के तेलमें मिलाकर सुखा लेते हैं। सूखने पर उसको आटेकी शक्लमें इकट्ठा कर सकते हैं। बंगालके माल वैद्योंका कथन है कि सांपके विषका, धूपमें खोलकर रख देनेसे, विषैला प्रभाव घट जाता है।

प्रायः कहा जाता है कि सांपकी विषकी दाढ़ें बीचमें से खोखली होती हैं। यूरोपियन लोगों-का विचार है कि यदि एक बालके समान सूक्ष्म सूई दाढ़ोंमें डाली जाय तो वह आरपार निकल जायगी; परन्तु ऐसा नहीं होता। वह बीचमें आकर रुक जाती है। यदि यूरोपियनोंके कथनानुसार आरसे पार नलीके समान खोखली होती और कोई विशेष रचना न होती तो प्रत्येक बार काटने-पर विष बाहर आता। परन्तु ऐसा नहीं होता। भूखके अवसर पर उसका विष बाहर नहीं आता।

खपरा, केवरा और हेमाद्रिजातका तो विष बहुत प्रबल होता है। दबोइया सांपके विष दंष्ट्रा बहुत लम्बी होती हैं। दबोइया बहुत सुन्दर होता है। इसको उल्लू बोड़ा या पच्छाबोड़ा भी कहते हैं। यह काटते समय बड़ा घहरा घाव करता है। इस विषका कुछ मन्द होता है। परन्तु बड़ा हेमाद्रिजातका विष भी तेज़ होता है और काटनेपर गहरा घाव करता है।

# अद्भुत मछलियां

वनकी उत्पति समुद्रमें हुई। अतएव मनुष्य और मछ-लियोंमें बहुत कुछ समानता है। मछलियां सुनती हैं; देखती हैं और पानीमें रहते रहते उकता जाती हैं। पानी छोड़कर दरख़्तों पर हवाखाने चढ़ जाती हैं और कभी कभी मीलों तक खुश्की पर घिसट कर एक तालाब या नदीसे दूसरे तालाब या नदीमें पहुंच जाती हैं। जब कभी उन्हें काम नहीं करना पड़ता तो उनके शरीरोंमें बसाका आधिक्य हो जाता है और हृत्पिण्डके विह्वल हो जानेसे उनकी मृत्यु हो जाती है। यह घटना मछलियोंसे मिलते जुलते जीव, सील, के सम्बन्धमें देखी गयी थी।

मछलियां सोती भी हैं। रातके समय मछली-कुण्डोंमें मछलियां भिन्न भिन्न स्थितियोंमें देखी जाती हैं। प्रकाश डालते ही वह चौंक पड़ती हैं और इधर उधर घूमने लगती हैं। यह भी ज्ञात हुआ है कि सोते समय उनका रंग गहरा और मटैला हो जाता है।

### बातूनी मछली

जैसे कुछ आदमी बातूनी होते हैं, उसी प्रकार कुछ मछलियां भी बातूनी होती हैं। शायद पाठकों-को यह सुन कर आश्चर्य होगा, किन्तु वस्तुतः बहुत सी मछलियां बड़ा गुल मचाया करती हैं।

ग्रंट मछली (grunt, Haemulon family) गड़-गड़ शब्द किया करती है; ड्रम मछली बाजेका शब्द किया करती है; सैली ग्रौलर मछली हड्डी पा लेने पर पिल्लोंका सा शब्द करती हैं। पफर मछली हाथमें पकड़ लेने पर दांत पीसनेका सा शब्द करती है। एक नाविकका कथन है कि हडसन

नदीमें बीक मछली आकर इतना शोर मचाती हैं कि रातको नावमें सोना कठिन हो जाता है।

पफर मछली

इसके शब्दकी विचित्रता पहले बतला चुके हैं। इसमें एक और अद्भुत गुण हैं। यह इच्छा-नुसार फूल जाती हैं। जब कभी यह मछली किसी या लड़ाका मछलीको आते हुए देखती है यह पानी वैरी या वायु पेटमें भर कर फूल कर मोटी हो जाती है। उसकी देह पहलेकी अपेक्षा प्रायः तिगुनी फूल जाती है। यह घटना देख आक्रमण कारी भाग जाती है।

चित्र २५

चित्र २६

गिरगट मछली

गिरगटका रंग बदलना मशहूर है। कुछ मछलियां भी इच्छानुसार रंग बदल सकती हैं।

भ्रमर मछली किसी समय हलके पीले रंगकी दिखलाई देती है; उस पर हलके हलके निशान भी दिखाई देते हैं, किन्तु तत्क्षण ही वह डुबकी लगा कर रंग बदल जाती है। उसके निशानात गायब हो जानेके बजाय गहरे स्याह रंगके दिखाई पड़ने लगते हैं। लाल कोनी (Red Coney) भी रंग बद-लती है। ऊपरसे रंग हलका पीला और नीचेसे बिल्कुल सफेद हो जाता है। गरम देशोंकी मछ-लियां खूब रंग बदलती हैं। ऋतु कालमें तो वह बड़े भड़कीले रंग दिखाती हैं।

बाबू मछली

कुछ मछलियोंके सर मनुष्यसे मिलते जुलते होते हैं। इसी बातको दिखलानेके लिए एक मछलीको कोट टोप पहनाकर और उसके मुंहमें चुरट देकर (चित्र २७) दिखलाया है।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १७ { कर्क, संवत् १९८० । जुलाई, सन् १९२३ } संख्या ४

# अफ़ीम

* [ ले०—कविराज श्री प्रतापसिंह ]

संस्कृतमें इसको अहिफेन कहते हैं। अफीमके पौदेके सफेद कच्चे फलमें चीरा लगाकर जो दूध निकलता है उसको एकत्रित करके सुखानेसे यह द्रव्य बनता है। किसी प्रकार प्राप्त की हुई अफीमको औषधिके रूपमें प्रयुक्त कर सकते हैं, किन्तु यह देख लेना आवश्यक है कि अफीममें किसी प्रकारके अन्य पदार्थ मिले हुए न हों, क्योंकि अन्य पदार्थोंकी मिलावटसे उपयोगिता कम हो जाती है।

आकार

इसकी गोल, अनियमित या चौड़ी टिकिया आठसे दो पौण्ड तकके वज़नकी आती हैं। जब यह टिकिया ताज़ा होती हैं, प्लास्टरकीसी नमीवाली, दानेदार, चिकनाहट लिए हुए, भूरेसे रंगकी होती हैं, किन्तु रखी रहनेपर सख़ हो जाती हैं और कालापन अधिक आजाता है। इसकी गन्ध उग्र तथा विशेष प्रकारकी होती है, जिसको मनुष्य सूंघकर पहिचान सकता है। स्वाद अत्यन्त तिक्त (कड़वा) होता है। लोग इसमें अधिकतर पत्थर, ईंटकी रज, इसीके फलोंकी छाल, पत्ते और गेहूँका श्वेतसार (Starch) मिला दिया करते हैं। देश भेदसे इसकी अनेक जातियां होती हैं, जिनका विवरण संक्षेपसे नीचे लिखा जाता है। एशिया

* अपरैल मासके अंकमें जो पारद नामक लेख छपा है वह भी इसी लेखकका था—सम्पादक।

माइनरकी अफीममें, जिसको स्मरना, तुरकी, और लेवेन्टकी अफीम भी कहते हैं, उपरोक्त सब गुण मौजूद होते हैं; किन्तु अफीमके पौदेके पत्ते, फल और दाने मिले रहते हैं। दूसरी कुस्तुन-तुनिया ( Constantinople ) की अफ़ीम—जिसमें टरकी और लेवेण्डकी अफ़ीम भी मिली रहती हैं, और टिकिया या ढेलोंकी शकलमें आती है—अफीम-के पौदेके पत्तोंमें बंधी रहती है, किन्तु उसमें फल वा पत्ते मिले हुए नहीं होते। तीसरी चाइनाकी अफीम जो चीनमें बनती है और कभी कभी कलकत्ते में आती है। फारसकी अफीम भी बत्ती या ढेले-की शकलमें आती है। भारतीय अफीम जो गवर्नमेन्ट बनाती है वह तीन भांतिकी मिलती है।

१—विशेष प्रकारकी अफीम, जो चाइनाके लिए बनती है, वह गोलेकी शकलमें होती है और अफ़ी-मके पत्तोंसे ढकी रहती है।

२—आबकारीकी अफ़ीम ( जो साधारणतया बाजारमें मिलती है ) चौकोर टिकियाके रूपमें मिलती है और भोजपत्रसे बंधी रहती है।

३—ओषधिके कामकी अफ़ीम वह होती है जो टिकिया या चूर्णके रूपमें पटना, गाज़ीपुर आदि स्थानोंमें बनती है। इस कार्यके लिए अधिक मार-फ़ियावाली श्रेष्ठ अफ़ीमका संग्रह किया जाता है। इसके अतिरिक्त मिस्रकी, जर्मन और अंग्रेज़ी अफ़ीम भी आती है।

भारतवर्षमें अफ़ीम बनानेकी विधि

जब अफ़ीमके पौदे बड़े हो जाते हैं और उनमें पूर्णतया फल निकल आते हैं उस समय फलोंमें मद आनेपर (Fully developed) पांच छः नोकीले कांटेदार चंमचों द्वारा कुछ कुछ दूर पर फलोंमें ऊपरकी तरफ़से नीचेको चीरें लगाते हैं, जिससे दूधके समान एक द्रव निकलता है। फिर रात्रिभर उनको इसी प्रकार छोड़ देते हैं। रात्रिभर जमनेसे वह दूध गाढ़ा हो जाता है। पुनः दूसरे दिन प्रातः-काल लोहेके चमचोंसे उस जमे हुए पदार्थको मिट्टीके बरतनोंमें एकत्र कर लेते हैं ( फलोंमें चीरे लगानेका काम उस समय तक जारी रखा जाता है जब तक उनमेंसे दूधवत्‌रस निकलता रहता है।) फिर इस एकत्रित किये हुए द्रवको सुखाकर और आवश्यकतानुसार शुद्ध करके गवर्नमेन्टके कार्यालयोंमें भेजा जाता है। वहांपर इसकी शुद्धता रंग, गन्ध आदि की परीक्षा की जाती है और अफ़ीमके डोड़ोंको दबाकर, टिकियाकी शकलका बनाकर अफ़ीमकी टिकियाके चारों ओर ढक देते हैं।

शरीरके अवयवोंपर प्रभाव—अफ़ीम और मार-फ़ियाके प्रभाव एक दूसरेसे परस्पर ऐसे मिले हुए हैं कि एकका वर्णन करनेसे दोनोंका ज्ञान हो सकता है। यदि अफ़ीम लेपके रूपमें त्वचापर लगाई जाय तो ज्ञानवह नाड़ियोंमें शून्यता उत्पन्न होजाती है, जिससे इसका प्रभाव, शून्यताकारक और वेदनोपशम होता है। किन्तु बहुत से लेखकोंका अनुभव है कि उक्त प्रभाव ठीक ठीक नहीं होता। अफ़ीम त्वचा द्वारा शरीरमें प्रवेश कर जाती है, किन्तु छिली हुई त्वचा या श्लेष्म-धरा-कला पर लगानेसे अति शीघ्रतासे शरीरमें प्रवेश करती है।

महास्रोतपर Alimentary canal प्रभाव—साधारण मात्रामें अफ़ीमका उपयोग करनेसे मुख, गला और जीभ सूखती है और लाला रस कम बनता है। इसी प्रकारका प्रभाव आमाशय पर भी होता है, जिससे आमाशयकी चैतन्यता, रस और परिचालन न्यून हो जाता है। कभी कभी अफ़ीम खाते ही आमाशयकी ज्ञानवह नाड़ियोंके प्रदाहसे उत्क्लेद और वमन होने लगता है। इस प्रभावके कारण भूख और पाचन शक्ति न्यून हो जाती है और यदि किसी स्थान पर दर्द हो तो वह भी कम हो जाता है। पाचक अथवा वामक औषधें इसके सन्मुख कुछ प्रभाव नहीं करतीं। आमाशयीक और आन्तरिक रसके अति न्यून होने एवं उनकी गति कम होनेके कारण विबन्ध ( Constipation ) हो जाता है।

अतः यह औषध अवसादक (Sedative), संकोचक (Astringent) और वेदनो पशम ( Anodyne ) है। अति अल्पमात्रा ( अर्थात् ⅛ रत्ती से १ रत्ती तक ) में प्रयोग करनेसे कभी कभी विरेचक प्रभाव करती है। इसका कारण इसके उत्तेजक प्रभावको समझना चाहिये। यदि अधिक मात्रा (अर्थात् ४ माशेकी मात्रा) में शिराके द्वारा शरीरमें प्रवेश कर दी जाय तो आन्तोंमें धनुष टंकारसा खिंचाव उत्पन्न करती है। यदि त्वचा इन्जेकशन (त्वक् भेद) द्वारा प्रवेश करादी जाय तो आमाशयमें जाकर श्रवित (Excreted) हो जाती है।

रक्त परिगमनपर प्रभाव—अन्य अफ़ीमके सत्तोंकी अपेक्षा मारफ़िया रक्तमें मन्दतासे प्रवेश करता है। यह रक्तमें रक्तोष्मासे मिश्रित होकर Oxydimorphine के रूपमें परिणित हो जाता है। अन्य सत्तोंमें क्या परिवर्तन होता है अभी तक इसका ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है। यह सामान्य मात्रामें हृदयको उत्तेजित करता है, किन्तु अधिक मात्रामें हृदयकी गतिको अवसन्न करता है, जिससे नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है। इसके विषसे मरनेके पूर्व हृदयकी गति इतनी अवसन्न हो जाती है कि उसका फिर उत्तेजित होना असम्भव है। अफ़ीमके विषसे हृदयकी गति बन्द होनेसे मृत्यु नहीं होती, वरन् श्वासाशय के केन्द्रोंके निष्क्रय हो जानेसे मृत्यु होती है।

श्वासाशयपर प्रभाव—इस विषके प्रभावसे श्वासाशयके केन्द्र हृदयके केन्द्रकी अपेक्षा शीघ्र प्रभावान्वित ( Effected ) हो जाते हैं, जिससे श्वास क्रिया मन्द और दुर्बल होने लगती है और हृदयके गति करते रहने पर भी श्वास क्रियाके मन्द हो जानेसे मृत्यु हो जाती है। अफ़ीमके प्रयोगसे श्वासाशयमें रक्त परिगमन और रस न्यून होजाता है।

यकृत पर प्रभाव—इसके प्रभावसे यकृतका द्रव (पित्त) (Biliary secretion) अल्प मात्रामें उत्पन्न होता है, जिससे मल भूरा या मिट्टीके रंगका आता है या इससे कामला (Jaundice) रोग उत्पन्न होता है। कुछ लेखकोंका मत है कि इससे मधुमेहीके मूत्रमें शकर और सामान्य मूत्रमें मूत्रक्षार (Urea) और अंगारक अम्ल (Carbonic acid ) कम हो जाता है।

शरीरोष्णता—इसकी बड़ी मात्रा सेवन करनेसे शरीरका तापक्रम कम हो जाता है।

वात संस्थान (Nervous system)—अफ़ीमका विशेष प्रभाव वात संस्थानपर ही होता है। यह अल्प मात्रामें मस्तिष्ककी उत्तमोत्तम शक्तियोंका विकाश करती है। जब मस्तिष्कमें उच्च आशयोंका विचार होता है तब कुछ मनुष्योंको ऐसी कपोल कल्पनाएँ उत्पन्न होती हैं कि जिससे वह शान्ति और प्रसन्नताका अनुभव करते हैं। कुछ मनुष्योंकी मानसिक शक्ति अधिक तीव्र होजाती है, जिससे वह अपनी शक्तिको एक विशेष विषय पर एकत्रित कर सकते हैं। किन्तु अधिकतर मनुष्योंमें व्यर्थ कल्पनाएं और अनुत्साह ही उत्पन्न होता है। मात्राके अनुसार अनुत्साहके साथ शरीरमें कुछ उत्तेजना भी होती है, जिससे शरीर भारी हो जाता है और नींद आ जाती है। इस निद्राके बाद जब मनुष्य जागता है तो उसको सिरका दर्द और उत्क्लेद प्रतीत होता है। इस दशामें मस्तिष्कके ऊपरी केन्द्र पहले और तदुपरान्त निम्न केन्द्र अवसन्न जाते हैं, जिससे सुनने, देखने और स्पर्श करनेका ज्ञान मन्द हो जाता है। इस कारण मनुष्य निद्रामें किसी प्रकारका कष्ट अनुभव नहीं करता। यदि मात्रा अधिक हो तो उत्तेजना शक्तिके अति अल्प होने अथवा उसके नितान्त अभावसे मूर्च्छा हो जाती है। नेत्रके तारक संकुचित हो जाते हैं। अतः इस कारण अफ़ीम उत्तेजक, वेदनोपशामक, निद्राकारक, मदकारक और शूलघ्न मानी जाती है।

वात नाड़ियां और मांस

इसके प्रभावसे मस्तिष्क और सुषुम्नामें चेष्टावह वात नाड़ियोंके कोष ( cells ) प्रथम उत्तेजित होते हैं; फिर अवसन्न हो जाते हैं, जिससे बेचैनी और मानसिक दुर्बलता प्रतीत होने लगती है। इसी प्रकार चेष्टावह और ज्ञानवह नाड़ियों पर भी

प्रभाव पड़ता है। इसी भांति कोष्टकी चेष्टावह नाड़ियोंपर भी प्रभाव होता है। अफ़ीमके तीव्रविष प्रयोग होनेपर भी मांसकी गति शक्ति सर्वथा नष्ट नहीं हो जाती; क्योंकि सहायता करनेपर रोगी विषकी उग्र दशामें भी चल सकता है।

वृक्कोंपर प्रभाव

अफ़ीम मूत्रकी मात्राको कम करती है। मूत्रमें मारफ़िया बिना परिवर्त्तनके पाया जाता है। मूत्राशयकी विकृतिसे मारफ़िया शरीरमें फिर शोषित होकर विषका प्रभाव उत्पन्न कर सकता है।

चर्मपर प्रभाव

अफ़ीम स्वेदोत्पादक है। इस कारण स्वेदोत्पादक ग्रन्थियोंको उत्तेजित कर स्वेद उत्पन्न करनेमें सहायता करती है। इसके प्रयोगसे स्वेद और दुग्धको छोड़कर और सब द्रवोंका शोषण होता है।

संशोधन

यह शरीरके सब द्रवों द्वारा बाहर निकलती है। पित्त, दूध और मूत्र द्वारा शरीरसे बाहर इसका निकास विशेष कर होता है।

तात्कालिक विष लक्षण

भारतवर्षमें अफ़ीमका विष रूपमें प्रयोग करनेका बहुत प्रचार है। विशेष कर राजपूताना और बंगाल में जहां कि इसके बेचने की मनाही नहीं है; इसको खाकर प्रायः मनुष्य आत्महत्या करलेते हैं। यूरोप निवासियोंकी अपेक्षा भारतवर्षकी जनतामें इसके द्वारा आत्महत्या करनेका अधिक प्रचार है। अधिकतर लोग इसको तेलमें मिलाकर निगल जाते हैं; जिससे शरीरमें किसी प्रकारकी उत्तेजना नहीं होती और शरीरमें आलस्य शिथिलता शीघ्रतासे बढ़ने लगती है। यद्यपि रोगी प्रथम दशामें झकझोरकर जगाया जा सकता है तथापि शीघ्र ही गाढ़ मूर्च्छाको प्राप्त हो जाता है; फिर तो बाहरी उत्तेजक पदार्थ उसको नहीं जगा सकते। आंखोंके तारक सुकड़ कर सुईकी नोकके समान संकुचित हो जाते हैं। शरीरका बाहरी भाग शीतल और पसीजा सा हो जाता है; चेहरा और होंठ लटकेसे हो जाते हैं; नाड़ी मन्द और अत्यन्त दुर्बल हो जाती है। श्वास क्रिया मन्द, अनियमित, दीर्घ निश्वासवाली, हो जाती है। अन्तमें श्वासक्रियाके विकृत होनेसे मनुष्य मर जाता है। मरनेसे कुछ मिनट पूर्व नेत्रके तारक फिर प्रसरित ( Dilate ) हो जाते हैं। मरनेपर शरीरकी दशा फांसीपर लटके हुए मनुष्यके समान हो जाती है।

अफ़ीमके निदानात्मक लक्षण

सावधानीसे मद्य ( alcohol ) और अफ़ीम खानेकी आदतका पता लगावे। केवल श्वासकी गन्धसे ही उक्त द्रव्योंके सेवन करनेवालेका पता लगना कठिन है। यह अवश्य होता है कि मद्य पीनेवाले मनुष्यको श्वाससे मद्यके सदृश गन्ध आती है किन्तु, प्रायः अफ़ीम खाकर भी लोग मद्य पी लेते हैं; और अफ़ीम तथा मद्य दोनों एक साथ भी पी लेते हैं। इस कारण केवल श्वासकी गन्धसे ही पहिचाननेकी रीतिसे ठीक पता नहीं लग सकता। अफ़ीमके विषसे नेत्रके तारक संकुचित हो जाते हैं, किन्तु मद्यके प्रभावसे नेत्र-तारक साधारण दशामें रहते हैं या प्रसरित हो जाते हैं। मद्य-विष-जन्य मूर्च्छामें बाह्य उत्तेजक प्रयत्न अफ़ीम—विषकी मूर्च्छाकी अपेक्षा शीघ्र चेतन्यता उत्पन्न करते हैं। आमाशय धोनेका पम्प भी इस विषकी परीक्षामें सहायक होता है, क्योंकि अफ़ीमके रक्तमें प्रविष्ट होनेके बाद भी आमाशयके धोये हुए जलमें अफ़ीमकी विशेष गन्ध होनेके कारण निदानके लिए मार्ग प्रदर्शित होता है।

जब मस्तिष्कमें रक्तश्राव होता है तब नेत्रके तारक अत्यन्त संकुचित हो जाते हैं, हाथ और पैरोंमें एक ओर लकवा मार जाता है, शारीरिक ताप पहिले कम होकर अन्तमें बढ़ने लगता है; मूत्र रुक जाता है; मूर्च्छा प्रबल नहीं होती; मूत्रमें (Albumen) अलब्युमन आता है। कभी कभी हाथ पैर ऐंठने लगते हैं और मूर्च्छा हो जाती है। मधुमेह जन्य मूर्च्छा ( Coma ) में श्वास और मूत्रमें शक्कर

होनेसे विभिन्नता समझनी चाहिये। अपस्मार ( मृगी रोग ) की मूर्च्छामें दोरा पड़नेके बाद बेहोशी कम होकर नेत्र तारक प्रसरित हो जाते हैं। योषापस्मारकी मूर्च्छा ( Hysterical Stupor ) का विभेद उसके विशेष लक्षण और इतिहाससे मालूम होता है। क्लोरोफार्म, ईथर और कार्बोलिक एसिड विषका निर्णय गन्ध और विशेष लक्षणोंसे किया जाता है।

### प्रतिविष

यदि कोई मनुष्य अफीम या मारफिया खाले तो वमनकारक औषध अथवा आमाशयके पम्पका प्रयोग यथासम्भव शीघ्र ही करे। ( Apomorphine ) अपोमारफिया $\frac{१}{१०}$ ग्रेनसे $\frac{१}{४}$ ग्रेन तक इन्जेकशन द्वारा चर्ममें प्रवेश करे। कुएमें डालने-की लाल दवा ( Pot. Permanganate ) एक ग्रेन मारफ़ियाके विषको मारती हैं अतः यह औषधि ४ रत्ती ४ औंस जलमें मिला कर तुरन्त ही पिलादे; यदि अफ़ीम अथवा मारफ़ियाकी मात्रा मालूम न हो या अधिक मात्रा खायी गयी हो तो वमनकारक औषध खिलाने अथवा आमाशयके धोनेके पूर्व हलका सा पुटास परमैंगनेटका द्रव ( ६ माशेको १० छटांक जलमें मिलाकर ) पिलादे। फिर आमा-शयीक पम्प द्वारा धोकर १० छटांक चाय या काफ़ी मुख द्वारा आमाशयमें पहुँचा दे अथवा मल द्वारसे पिचकारी द्वारा आन्तोंमें पहुँचा दे। $\frac{१}{२०}$ ग्रेन (Atropine) एट्रोपीन इंजेकशन द्वारा चर्ममें पहुँचा दे या टिंकचर बेलेडोना (Tr. Bellodona) ३० बून्द जलमें मिलाकर १५ मिनटसे ३० मिनटके अन्तरसे बराबर देता रहे, जब तक नेत्रके तारक प्रसरित न हो जायं और नाड़ीकी गति तीव्र न हो जाय। $\frac{१}{६०}$ ग्रेन कुचलेका सत्व (Strychnine) प्रति दो या तीन घन्टेके अन्तरसे इंजेकशन द्वारा शरीरमें प्रवेश करा दे। इसके करनेसे हृदय और श्वासाशयकी क्रिया ठीक रहेगी। इसी प्रकार कृत्रिम श्वास प्रश्वासकी क्रिया करे और सूंघनेको (Amyl nitrite) दे, शरीर पर गर्म और ठण्डे जलके छींटे दे। ललाट पर अंगुलियोंके नखोंसे टकोरे लगावे; राईका प्लास्टर लगावे, विद्युत् (बिजली) का प्रयोग करे, एमोनिया क्षार (Smelling salt) सुंघावे, रोगीको इधर उधर खूब घुमावे और जैसे भी बने उसको जगाये रखे। आठ दस घण्टे तक, जब तक विष लक्षण न मिट जायँ, बराबर चिकित्सा जारी रखे। बहुत से अनुभवियोंका कथन है कि आमाशयको पम्प द्वारा बार बार धोते रहना चाहिये; क्योंकि अफ़ीम आमाशयमें आकर रक्त द्वारा निकलती है। किन्तु ऐसा करते रहनेसे रोगी अधिक दुर्बल हो जाता है। दूसरे अफ़ीम अल्प मात्रामें पानीमें घुलकर बाहर निकलती है, जिससे कोई विशेष लाभ नहीं। रोगीको अधिक कष्ट होनेके कारण यह विधि अनेक बार करनी उचित नहीं।

### चिरकालिक विष लक्षण

थोड़े ही दिनोंके सेवन करनेसे मनुष्य शीघ्र ही इसका आदी हो जाता है। इस कारण रोगीको औषधि रूपमें भी इसके सेवन करानेका पता नहीं देना चाहिये। इस पृथ्वी पर भारतवर्ष, टर्की, फारस और चीन देश अफीमचियोंके मुख्य केन्द्र गिने जाते हैं। अफीम खानेका रिवाज़ इंगलैण्डमें भी मौजूद है। भारतवर्षमें अफीमका खाने और पीने द्वारा सेवन किया जाता है। ५ ग्रेनसे २० ग्रेनकी मात्रामें पीनेसे कोई विशेष हानि नहीं होती। मदक और चण्डू पीनेवाले लोग समाजमें घृणाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

अफ़ीम खाने या पीनेवाले मनुष्य साधारण-तया पतले दुबले, मलिन, पीले पड़े हुए, काम करनेसे जी चुरानेवाले, शरीरके अति दुर्बल, नाड़ीकी मन्द गतिवाले, उन्मादियों जैसी अवस्था-वाले होते हैं। उनकी भूख और पाचन शक्ति नष्ट हो जाती है; प्रायः कब्ज़ रहता है। उनको तन्द्रा होती है। शरीरमें भारीपन रहता है और काम शक्ति नष्ट हो जाती है। इसके सेवन करनेसे स्त्रियोंका मासिक धर्म विकृत हो जाता है और आँखोंके तारक संकुचित रहते हैं।

चिकित्सा—अफ़ीमका सेवन करना धीरे धीरे कम कर देना अच्छा है। कम करनेसे दुर्बलता प्रतीत होनेके समय चाय, काफ़ी, और नौसादर (Ammonia) देना आवश्यक है। कभी कभी थोड़ी मात्रामें मद्य पिलाना भी बहुत आवश्यक होता है। यदि अफ़ीमचीको अफ़ीम देना एक दम बन्द कर दिया जाय तो उसके दिमाग़में चिड़चिड़ापन, बेचैनी, उदरशूल, पीठमें जलनेका सा अनुभव आदि कष्ट बहुत दुखदायक प्रतीत होते हैं। इस कारण धीरे धीरे अफ़ीम छुड़ानेका प्रयत्न करना चाहिये जिससे इसका विष क्रमशः बाहर होता चला जाय। बहुत सी दशाएं ऐसी हैं, जिनमें इसका प्रभाव कुछ बदल कर होता है। बच्चे पर इसका विषैला प्रभाव अधिक होता है; इस कारण एक वर्षसे कम आयुवाले बालकको पोस्तके दाने-से अधिक मात्रामें देना हानिकारक है। पुरुषोंकी अपेक्षा इसके विषका अन्तिम प्रभाव स्त्रियोंपर अति प्रबल होता है। जो स्त्री बालकको दूध पिलाती है यदि उसे अफ़ीम देनी हो तो बड़ी सावधानीसे देनी चाहिये। कुछ मनुष्योंको अफ़ीम खानेसे चक्कर आते हैं और निद्रा नहीं आती, कुछ-के पेटमें तकलीफ होती है। लेखकको एक रोगी-का अनुभव है जिसको आधी ग्रेन मारफिया इन्जे-कशन द्वारा चर्ममें प्रवेश करनेसे ही वमन, बेचैनी, और मूर्च्छा आ गई थी। कुछ दिन अफ़ीमका सेवन करानेसे इसकी आदत हो जाती है और फिर अधिक मात्रा देनेसे उसपर उचित प्रभाव उत्पन्न होता है। एक मनुष्यको ४० ग्रेन मारफ़िया खाते हुए भी देखा है। जिस मनुष्यको नवीन शूल हो उसको अधिक मात्रा देनेकी आवश्यकता होती है। किन्तु वृक्क रोगी अधिक मात्रा सहन नहीं कर सकता; इस कारण उस रोगी पर सावधानीसे अफ़ीमका प्रयोग करना चाहिये। जिन मनुष्योंको हृदय, श्वासाशय, मूत्राशय और मस्तिष्क रोग हों अथवा जो मद्यप रोगी हों उनपर भी इसका प्रयोग बड़ी सावधानीसे करना चाहिये।

घातक मात्रा—अफ़ीम दो रत्तीकी मात्रामें देनेसे युवा पुरुषों पर घातक प्रभाव करती है। किन्तु, मारफ़िया एक ही रत्ती देनेसे युवा पुरुषों पर घातक प्रभाव करता है। एक वर्ष तककी अवस्था-के बालकोंको मारनेके लिए १ ग्रेनकी मात्रा ही काफी है। एक बार एक दो तीन वर्षके बालक $\frac{1}{10}$ रत्ती देनेसे मर गया।

घातक समय—अफ़ीमके विषसे मनुष्य साधा-रणतया ५ से १० घण्टेके भीतर मर जाता है। पर-न्तु यह बात प्रसिद्ध है कि यदि अफ़ीम खाने पर २४ घण्टे बीत जायं तो मनुष्य बच जाता है। इसके विषसे मरनेका सबसे अल्प समय जो अभी तक विदित हुआ है वह ४५ मिनट है।

---

## घृणा

### ( २ )

न और यश लाभ करनेके लिए मनुष्य जो प्रयत्न करता है उसमें वे स्थल कौन हैं जहां वह औरों का घृणा-पात्र हो सकता है तथा किन अवस्थाओंमें मनुष्य एक ही कार्य्यके कारण कुछका घृणा-पात्र और कुछका प्रेम-पात्र हो सकता है, इसकी चर्चा हम कर चुके हैं। मनुष्यके हृदयमें एक और विशेषता है और वह ऐसी है कि मुख्यतया उसीसे प्रेरित होकर वह धन और कीर्त्ति अर्जित करनेमें सयत्न होता है। यह विशेषता है प्रेम करनेकी। मनुष्य संसारमें अकेला रहकर भी भोजनके सम्बन्धमें कुछ सुवि-धायें चाहेगा, प्रेम-पात्रके न होने पर भी वह स्वयं को प्रायः अपमानित न होने देगा—यह सच है, परन्तु सच पूछिये तो उन लोगोंके कारण ही जिन्हें वह चाहता है, वह अधिकाधिक धन और यशके अर्ज्जनमें संलग्न होता है, जिससे उपर्युक्त

दोनों प्रवृत्तियोंकी अपेक्षा प्रेम अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है। इस प्रेम-प्रयत्नमें घृणाकी उत्पत्तिके अवसर कब और कैसे आते हैं, यहां हम यही बतलाना चाहते हैं।

सबसे पहिले हमें यह जाननेकी आवश्यकता है कि मनुष्य अपनी सम्पूर्ण जीवन-यात्रामें किस किससे प्रेम कर सकता है। यह निर्विवाद है कि बचपनमें हम मिट्टी, लोहेके खिलौनों, और गुड़ियों से प्रेम करते हैं, बड़े होने पर स्त्रीसे, फिर बच्चेसे और क्रमशः जाति, देश, विश्व और परमात्मासे प्रेम करने लगते हैं।

इन पदार्थों पर थोड़ा विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि वह दो प्रकारके हैं। एक तो जड़ और दूसरा चेतन। जड़के साथ प्रेम करने और चेतनके साथ प्रेम करनेमें यह अन्तर है कि पहिली अवस्थामें प्रेम-पात्र अनुभव-शून्य रहता है और प्रेमका किसी प्रकार बदला नहीं दे सकता। यह बात चेतनके साथ प्रेम करनेमें नहीं है। वह किसी दशामें प्रेमका बदला प्रेम द्वारा दे सकता है और किसी दशामें घृणा द्वारा। जाति देश और विश्व के साथ प्रेम करनेका भी बदला मिल सकता है, क्योंकि वह सब मनुष्यके समूह द्वारा निर्म्मित होते हैं, वह घृणा भी कर सकते हैं और प्रेम भी। प्रायः ऐसा भी होता है कि शुद्धसे शुद्ध प्रेम करनेवाले महात्माओंसे उनके समकालीनों और देश-बन्धुओंने घृणा की है; उदाहरणके लिए महात्मा ईसा, सुक़रात, दयानन्द आदिका नाम लिया जा सकता है। ईश्वरका प्रेम ही ऐसा है जहां घृणाकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि यहां तो स्वार्थ-भावका अस्तित्व ही नहीं रह जाता। हां, यदि ईश्वरका प्रेम ढोंग हुआ तब तो संसार भरमें ऐसे मनुष्यका उपहास ही उड़ाया जायगा और उसकी वञ्चनशीलताको देखकर लोग अवश्य ही उससे घृणा करेंगे। अब एक ही बात और है जिसके सम्बन्ध में इसे विस्तारसे कहना है और वह यह है कि प्रेम प्रयत्नमें पुरुष स्त्री से कब घृणा करता है और स्त्री पुरुषसे कब घृणा करती है।

जिस प्रकार प्रेमके कारण धन और मान प्राप्त करनेकी प्रवृत्ति मनुष्यमें प्रबल होती है, उसी प्रकार धन और मान द्वारा प्रेम और अप्रेम भी अपने रूपको संसारके सामने प्रकट करता है।

यदि हम किसीके लिए हज़ारों ख़र्च कर सकते हैं, तो इसका यह अर्थ समझा जाता है, कि हम उसे चाहते हैं। इसी प्रकार जिसके स्वागतमें सहस्रों रुपयेका व्यय होना चाहिये उसके आनेपर मौन रहकर हम अपने हृदयकी घृणाको दिखलाते हैं। रुपयेके अतिरिक्त स्वार्थ-त्याग सूचित करनेवाले अन्य अनेक कार्य्यों द्वारा भी हमारा प्रेम प्रकट होता है और अवसर पड़ने पर उन कार्य्योंको न करनेका अर्थ निरपेक्ष-भावका अस्तित्व ही समझा जाता है, जिसके विशिष्ट रूपका नाम ही घृणा है। उदाहरणके लिए कोई पुरुष एक स्त्री से परिचित है, यदि वह उसके लिए उतना ही ख़र्च करे, अथवा उतना ही आदर-भाव अपने कार्य्यों द्वारा प्रदर्शित करे जितना साधारण परिचय वालोंके साथ किया जाता है, तब हम यह नहीं कहेंगे कि वह उसे चाहता है, और यदि वह इतना भी न करे, बिलकुल लापरवाही करे, तब तो यही समझा जायगा कि वह इसका अपमान करता है। इसी लापरवाहीका भाव यदि विशेष बढ़ जाय तो हम समझेंगे कि वह उससे घृणा करता है।

पुरुषके हृदयमें स्त्रीके प्रति यह निरपेक्षताका भाव, यह लापरवाहीका व्यवहार, क्यों उत्पन्न होता है, यह एक गूढ़ प्रश्न है। साधारणतः स्त्रीको देखकर पुरुष उससे अनुराग ही करनेके लिए लालायित होता है। यौवन और लावण्य युवक और युवती को एक दूसरीकी ओर देखते ही आकृष्ट कर देते हैं। प्रेमके दो रूप होते हैं, एक संहारात्मक और दूसरा निर्म्माणात्मक। संहारात्मक रूप वह है जो मनुष्यकी शक्तियोंका नाश

करता है और निर्म्माणात्मक वह है जो सन्मार्गमें उनका उपयोग करके अधिकाधिक शक्तिमान् बनाता है। दया, वत्सलता, परोपकारिता आदि निर्म्माणात्मक प्रेमके अन्तर्गत हैं और काम वासना तथा पाशविक प्रवृत्ति-सूचक इन्द्रिय-जन्य सुखोपभोग संहारात्मक प्रेमके अन्तर्गत हैं। प्रेमके इन दोनों रूपोंमें घृणाकी कोई गुञ्जाइश नहीं—पहिलेमें तो इसलिए नहीं कि वह मनुष्यकी गम्भीर प्रकृतिका द्योतक है और गम्भीरताके समय वह घृणाको तुच्छ समझता है, तथा दूसरीमें इसलिए कि काम-ज्वालामें वह सभी तत्व भस्मीभूत हो जाते हैं, जिनके सम्मिश्रणसे घृणाकी उत्पत्ति होती है। दूसरे शब्दोंमें, जब मनुष्य की गम्भीरता नष्ट हो जाती है और उसे जीवनके तहकी बातें नहीं सूझतीं तथा जब काया शक्ति एक दूसरेको एक सूत्रमें बाँधे रहनेके लिए विद्यमान नहीं रहती, तब मनुष्य घृणाकी ओर प्रवृत्त हो सकता है। हाँ, इस घृणाके परिपाकके निमित्त यह आवश्यक है कि मनुष्यकी धन-प्राप्ति-सम्बन्धी अथवा यश-प्राप्ति-सम्बन्धी इच्छाओंकी पूर्त्तिमें किसी तरहकी बाधा पड़े।

उपर्युक्त बात एक उदाहरण देने से स्पष्ट हो जायगी। मान लीजिये कि कृष्ण और राधा युवक और युवती हैं। यह भी मान लीजिये कि राधामें अनेक दुर्गुण हैं, वह झूठ बोलती है, औरोंको धोखा देती है और अन्य अनेक प्रकारके कष्ट सबको देती रहती है। अब यदि कृष्णके हृदयमें निर्माणात्मक प्रेम है, अर्थात्, दया, वत्सलता और परोपकार-शीलता है, तो वह राधाके इन दुर्गुणों की बिलकुल परवाह न करके उसे चाहेगा और तनिक भी घृणाको अपने हृदयमें न बैठने देगा। इसी प्रकार यदि राधाके यौवन, शरीर-लावण्य आदिका आकर्षण प्रबल है और कृष्णके चित्तको वह अपना शिकार बनाता है तो सब दुर्गुणोंके विद्यमान रहते हुए भी वह उससे अनुराग करेगा। इन दोनों बातोंके विपरीत, यदि कृष्णमें राधाके प्रति किसी प्रकारका प्रेम न हुआ तो वह उसके प्रति तब तक तटस्थ रहेगा जब तक उसके किसी प्रकारके स्वार्थमें वह बाधा डालनेवाली नहीं होती। उदाहरणार्थ यदि राधा लोगोंमें यह कहती फिरे कि कृष्णका चरित्र ठीक नहीं है, उसने उसका सतीत्व भंग करनेकी चेष्टा की, तो निस्सन्देह वह कृष्णकी घृणाका पात्र हो सकती है। इसी प्रकार यदि कृष्ण की धन-प्राप्तिका कोई मार्ग निकल रहा हो, और राधा उसकी ईमानदारी सच्चरित्रता और परिश्रम-शीलताके विषयमें उसके नियोजकोंकी विरुद्ध धारणा कर दे, तब वह कृष्ण की घृणाकी पात्र होगी। इन सबके अतिरिक्त यदि राधासे ही कृष्ण अपने किसी स्वार्थकी सिद्धि चाहता है, तो राधाके उसकी इच्छाको पद-दलित करने पर वह अवश्य ही उससे घृणा करेगा।

पाठकको यह बात भी याद रखनी चाहिये कि पुरुषकी प्रकृतिमें स्त्रीकी अपेक्षा स्थिरता कम है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह अपनी कामवासनाको तृप्त करनेके लिए नित नया सौन्दर्य्य ढूँढता रहता है और जिससे ऊब जाता है उसके प्रति उदासीन हो जाता है अतएव जब कोई ऐसी स्त्री जिससे पुरुष ऊब गया है, उसके दूसरा कोई शिकार ढूँढ़नेके कार्य्यमें बाधा-स्वरूप होती है, तब वह उससे घृणा करने लगता है।

जिन अवस्थाओंमें स्त्रीके हृदयमें घृणाका सञ्चार होता है वह भी प्रायः वैसी ही हैं जैसी कि ऊपर बतलाई गयी हैं। अन्तर केवल इतना है कि दोनों भिन्न भिन्न विशेषताओंके चाहनेवाले होते हैं, उदाहरणके लिए पुरुष स्त्रीकी कोमलता, सुकुमारता, सरलता आदि गुणों द्वारा मुग्ध होता है और स्त्री पुरुषकी वीरता, श्रम-सहिष्णुता और प्रभाव-शालिता आदि पर अपने हृदयको निछावर करती है। जैसा अन्तर इन विशेषताओंमें है, वैसा ही अन्तर उन अवस्थाओंमें भी होना आवश्यक है जो पुरुष अथवा स्त्रीके हृदयमें घृणा उत्पन्न करनेके लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए गोपाल

( इससे आगे पृष्ठ १७६ पर देखिये। )

# सरदी और गरमी

सवेरेका समय है। सूर्यदेव प्राची दिशाकी कोखसे निकल तम-रूप असुरोंको मार अपनी दिन-यात्राका आरम्भ करनेकी तैयारी कर रहे हैं। बाँध पर खड़े हुए हज़ारों मनुष्य सूर्योदयका सुन्दर दृश्य देख रहे हैं। प्राकृतिक छटाके प्रभावसे धार्मिक भाव पैदा हो उनके हृदयोंको गुदगुदा कर परमात्माके प्रेमसे भर रहे हैं। त्रिवेणीके दर्शनके लिए जब निगाह उठा कर हम देखते हैं तब सिवा धुआँके कुछ नहीं दिखाई देता। दो चार हाथ पर खड़े आदमीको भी पहचानना कठिन हो रहा है। सरदीके मारे सबके दाँत बज रहे हैं। सब सरदीकी शिकायत कर रहे हैं।

एक घण्टे बाद धुआँ हवा हो जाता है। सूर्यकी प्रखर किरणोंके फैलते ही कुहरा साफ़ होगया। कपड़ोंसे लदे हुए ईजिपशियन मम्मीकी तरह तह-पर तह कपड़ोंसे ढके बाबू लोग ओवरकोटोंको कन्धेपर डालने लगे। देहाती भी अपनी दोहरोंको समेटने लगे और हाथ पैर सीधे कर इधर उधर जाने लगे। एक और घण्टा बीता कि सब सूर्य्यकी प्रचण्डताकी शिकायत करने लगे।

दो घण्टे पहले जिस सूर्य्यकी ऐसी प्रतीक्षा थी, जिसने ग़रीबोंका दुःख और अमीरोंका बोझा हलका कर दिया था, उसीसे अब लोग घबरा उठे हैं। हमको संसारकी स्वार्थ परायणतासे सरोकार नहीं, हम तो केवल यह जानना चाहते हैं कि सरदी या गरमी क्या वस्तु है।

"ठण्ड लग रही है," "चिल्लेका जाड़ा पड़ रहा है," "बड़ी गरमी है" इत्यादि वाक्य छोटे बड़े, राजा और रङ्क सभीकी ज़बानसे सुनाई दिया करते हैं। परन्तु वस्तुतः इन वाक्योंसे वह समझते क्या हैं? प्रायः लोग समझते हैं कि सरदी और गरमी दो भिन्न भिन्न वस्तुयें हैं। जाड़ेके मौसिममें ठण्डका प्राधान्य रहता है और ग्रीष्ममें गरमीका। इतना सभी जानते हैं कि तापका मुख्य उद्गम स्थान सूर्य है, परन्तु ईंधन लकड़ी, कोयला आदिके जलानेसे भी ताप उत्पन्न होता है। जो अधिक शिक्षित हैं वह गैसके जलने और विद्युत्के प्रवाह-द्वारा तारोंके गरम हो जानेसे भी परिचित हैं। इलेक्ट्रिक फुट-वार्मरपर पैर रखनेसे कैसा आनन्द आता है; कमरेमें दहकते कोयलोंकी अँगीठी अथवा बिजलीका रेडियेटर रखनेसे सरदीका बहिष्कार हो जाता है।

ध्यानसे देखा जाय तो जितने तापोत्पादक साधनोंका उल्लेख ऊपर किया गया है वह सभी सूर्यसे ही अपना ताप पाते हैं।

लकड़ीका कोयला तो लकड़ियोंको विशेष रीतिसे जलाने अथवा लोहेके बरतनोंमें तपानेसे प्राप्त होता ही है, परन्तु पत्थरका कोयला भी भूगर्भमें हरे-भरे जंगलोंके समा जाने और धीरे धीरे उनका विघट्टन हो जानेसे बनता है। पत्थरके कोयलेमें पत्तों, डंठलों, तनों और शाखाओंके टुकड़े कभी कभी स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं। लकड़ीके रेशे और धारियां तो सभी टुकड़ोंमें देखी जा सकती हैं। दूसरे खनिज कोयला अनेक अवस्थाओं और प्रकारोंमें मिलता है, जिससे वनस्पतियोंसे ही उसका पैदा होना सिद्ध होता है; केवल कालान्तर से ही अनेक भेद खड़े हो जाते हैं। अत्यन्त प्राचीन कोयला ग्रैफ़ाइट या एंथ्रेसाइटके रूपमें मिलता है और हालका बना कोयला पीटके रूप में। कोयलेकी करामात से बिजली और गैस बनती हैं। अतएव यह स्पष्ट हुआ कि तापके देने वालोंमें मुख्य सूर्य्य और वनस्पति हैं।

परन्तु वनस्पतियोंमें ताप देनेकी शक्ति कहांसे आती है? प्रायः इसका सीधा-सादा जवाब यही दिया जाता है कि जलाने से। पर गम्भीरता-पूर्वक देखिये कि जलने से क्या पैदा होता है?

राख तो पड़ी रह जाती है, जो मिट्टीमें मिल जाती है और कुछ गैसें, मुख्यतः कर्बन द्विओषिद, वायु में जा मिलती हैं। जब वृक्ष हरा-भरा खड़ा था तब उसने कर्बन द्विओषिद वायु से और खनिज पदार्थ (जो राखके रूपमें जलने पर बच रहते हैं) पृथ्वी से ग्रहण किये थे। पृथ्वी से तो जड़ों द्वारा पानी में घुले पदार्थ सहज ही पौधे के पिण्ड में पहुँच जाते हैं और पौधा उन्हें अङ्गीकार (assimilate) कर लेता है, परन्तु वायु से कर्बन द्विओषिदको वह किस प्रकार ग्रहण कर लेता है ?

जिस प्रकार अन्य प्राणियोंमें श्वासोच्छ्वास की क्रिया जारी रहती है, उसी प्रकार वृक्ष भी साँस लेते और छोड़ते हैं। वायुकी ओषजन श्वास-कर्ममें काम आती है और बिगड़ कर—कर्बन द्विओषिद में बदल कर–बाहर निकल आती है। इस प्रकार जलचर, थलचर, नभचर, स्थावर और जङ्गम सभी प्राणी इस कामको रात दिन किया करते हैं। परन्तु वनस्पतियाँ एक और महत्व-पूर्ण काम करती रहती हैं। वह अपने शरीरमें पैदा हुई कर्बन द्विओषिद गैसको तथा उसको भी, जो बाहर से (वायुके साथ) आती है, वृक्षके बाहर निकलने नहीं देतीं। सूर्यकी किरणों और हरित रागकी सहायता से वह उसको ओषजन और कर्बनमें विभक्त कर देती हैं। कर्बनको तो अङ्गीकार कर लेती हैं और ओषजनको मुक्त कर देती हैं।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि वनस्पतियोंका शरीर कुछ खनिज पदार्थों और सूर्यके प्रकाशके संयोग से बनता है। जब लकड़ी जलती है तब इन्हीं यौगिकोंका वायुके ओषजनकी सहायता से विघट्टन होता है और सञ्चित ताप हमको मिल जाता है; अतएव वायुकी ओषजनका मुक्तावस्था-में मिलना और जलनेवालोंकी सृष्टि दोनों भगवान् सूर्यकी कृपा से ही सम्भव होते हैं। अतएव ताप-का एकमात्र स्रोत सूर्यका पिण्ड है।

पर गरमी अथवा ताप है क्या वस्तु ? यह निर्णय करनेके लिए दो एक सरल प्रयोग करने पड़ेंगे। आधपाव पारा लीजिये। उसे ऊँचेसे डाल दीजिये। जब तक वह ज़मीन से टकराता नहीं है, बँधा हुआ गिरता है। पर पृथ्वीसे टकराते ही वह सहस्रों विन्दुओंके रूपमें इधर-उधर फैल जाता है। या एक भञ्जनशील पदार्थकी गेंद लेकर ऊपर से छोड़ दीजिये। पृथ्वी से टकराते ही वह छार छार होकर इधर-उधर बिखर जायगी। अब एक लोहेकी गेंद इसी प्रकार और उतने ही ऊपर से छोड़िये। वह ज़मीन से टकरा कर टूटती नहीं, किन्तु गरम हो जाती है।

इन प्रयोगों पर विचार करने से यह परिणाम निकलता है कि समान उँचाई से गिरने से उक्त तीनों चीज़ें पृथ्वी पर समान समयमें पहुँचती हैं और उनका समान वेग होता है। पृथ्वी से टकराते ही उनकी सामूहिक गति (प्रत्येकको कणोंका समूह मान सकते हैं) रुक जाती है, इसीलिए गतिसम्भूत शक्ति अवयवी कणोंमें पहुँच कर उनकी गति बढ़ा देती है। पारे और काँचके कणों-में पारस्परिक आकर्षण कम होने से उनके कण इस गतिके आधिक्यको सह नहीं सकते और बिखर जाते हैं। लोहेमें कण बिखरने तो पाते नहीं; अपने अपने स्थान पर ही वेग से घूमने लगते हैं। लोहे और काँचकी गेंदमें यही फ़र्क़ है। लोहेमें तापकी वृद्धि देख सकते हैं, काँचमें नहीं। काँचके कण टूट कर इधर उधर ढुलक जाते हैं अथवा उचट जाते हैं। लोहेके कण एक स्थान-पर रहते हैं; अतएव उनकी ताप-वृद्धि का अनुभव सहज ही हो जाता है।

लोहेकी गेंदमें तापक्रम बढ़ गया; पहले दो प्रयोगोंमें जैसा स्पष्ट देखते हैं, उसीके आधार-पर यह अनुमान कर लेना न्यायसङ्गत है कि लोहे के कणोंका वेग भी बढ़ गया; अतएव यह सिद्ध हुआ कि तापक्रममें जब वृद्धि होती है, कणोंका वेग बढ़ जाता है। इसीलिए आजकल यह माना जाता है कि अणुओंकी गतिसम्भूत शक्ति ही ताप है।

दो पिण्डोंका समान तापक्रम तभी होगा जब उनके अवयवी अणुओंकी गतिसम्भूत शक्ति समान होगी। यदि पिण्ड क के अणुओंकी गति-सम्भूत शक्ति ख के अणुओंकी गतिसम्भूत शक्ति से अधिक है तो वह अधिक गरम प्रतीत होगा। अर्थात् उसका तापक्रम ऊँचा होगा। जब क, ख को सटाकर रखेंगे तब क के अणु अपनी शक्ति को अंशतः ख को देने लगेंगे और थोड़ी देरमें दोनों-की गति-सम्भूत शक्ति बराबर हो जायगी। यही ठण्डे और गरम होनेका अर्थ है।

जिन पिण्डोंके अणुओंकी गति-सम्भूत शक्ति हमारे शरीरके अणुओंकी शक्ति से अधिक है वह गरम और जिनकी कि कम है वह ठण्डे प्रतीत होते हैं। सरदी या ठण्ड केवल गरमी या तापका अभाव मात्र है। ठण्डक अलग नहीं है।

अब प्रश्न यह होता है कि शरीरको जो सरदी-गरमीका बराबर अनुभव होता रहता है वह क्यों होता है। इसका रहस्य यह है कि जब वायु-मण्डलका तापक्रम हमारे शरीरके तापक्रमसे अधिक होता है तब हमारे शरीरमें गरमी बाहरसे आने लगती है और हमें गरमीका अनुभव होता है। इसके विपरीत जब वायुमण्डलका तापक्रम शरीरके तापक्रमसे कम होता है तब शरीरसे ताप वायु-मण्डलमें जाने लगता है और हमें सरदी लगती है। ताप-विनिमय पिण्डोंमें बराबर होता रहता है। वायुके रहते हुए भी उसकी उपेक्षा कर पिण्ड ताप देते लेते रहते हैं। यदि आग हमसे बहुत फ़ासिले पर जल रही हो तो भी हमारे और उसके बीचके वायुके गरम हुए बिना भी हमें गरमी का अनुभव होता है। इसी क्रियाको ताप-विसर्जन कहते हैं। जो ताप विसर्जन द्वारा फैलता है उसे विसर्जित ताप कहते हैं। विसर्जित बलके दो रूप हैं—ताप और प्रकाश। इन दोनोंका जोड़ा है। सूर्य से विसर्जित बल बराबर आता रहता है। यह वायुको गरम न करके पदार्थों पर गिरता है और उन्हें गरम कर देता है। तब वायुमें तापवाहक धारायें उत्पन्न होकर वायुको गरम कर देती हैं। यही कारण है कि गरमीमें ईंट, पत्थर आदि पहले गरम हो लेते हैं तब वायु गरम होती है।

सूर्यपिण्डका बड़ा ऊँचा तापक्रम है; ६०००° श से भी ज़्यादा है। मनुष्य और साधारण सभी प्राणियोंके देहोंका तापक्रम ३६° श होता है। अतएव सूर्यकी किरणें जब शरीर पर पड़ती हैं तब गरमीका अनुभव होता है। पृथ्वी अपनी कक्षामें सूर्यकी एक परिक्रमा ३६५ दिन और ६ घण्टेमें कर लेती है। परन्तु पृथ्वीकी अक्ष कक्षा-तल से समकोण नहीं बनाती, बल्कि उसकी तरफ़ कभी कम और कभी ज़्यादा झुकी रहती है। कभी उसका एक छोर सूर्यकी तरफ़ रहता है, कभी दूसरा। इस झुकावके कारण कहीं सूर्यकी किरणें सीधी गिरती हैं और कहीं टेढ़ी। इसी कारण ऋतुओंमें परिवर्तन होता रहता है।

वायुमण्डल हमारी बड़ी रक्षा करता है। यदि वायुमण्डल न होता और वायुमें भी जल-वाष्प और कर्बन द्विओषिद न होते तो भूतल दिनमें अङ्गारोंके समान उत्तप्त हो जाता और रातमें बरफ़से भी सैकड़ों गुना ठण्डा। ऐसी अवस्थामें प्राणियोंका जीवित रहना कब सम्भव होता!

पिघलती हुई बरफका तापक्रम ०° श माना जाता है। इस हिसाबसे सबसे ऊँचा तापक्रम, अर्थात् ६००० दर्जेका, सूर्यपिण्डका है। मनुष्यने भी विद्युत भट्टे तैयार करके छोटे पैमानेमें इस ऊँचे तापक्रमकी नक़ल की है। बरफ़से ठण्डी अनेक वस्तुयें हैं। बरफ़ और नमक मिलानेसे लगभग −२३° श का तापक्रम पैदा हो जाता है। शोरा मिलानेसे और भी नीचा तापक्रम मिल जाता है। केलसियमहरिद और बरफ़के मिश्रणका तापक्रम लगभग −४०° श है। इस तापक्रमपर कर्बन द्विओषिदका दबाव बढ़ाकर द्रव बना सकते हैं। द्रव कर्बन द्विओषिदको यदि स्वतः उड़ने दें तो ठोस कर्बन द्विओषिद प्राप्त हो जाता है। ठोस कर्बन द्विओषिद और ईथरके मिश्रणसे और भी

नीचा तापक्रम ( –११०°श ) मिल जाता है। सबसे नीचा तापक्रम, जो अब तक प्राप्त हो सका है –२७१° श है। वह तापक्रम, जिस पर तापका नितान्त अभाव है अर्थात् जिस तापक्रम पर अणुओंकी गति बिलकुल रुक जाती है, –२७३° श है। यह केवल सिद्धान्तों द्वारा जाना गया है। प्रयोगशालामें इस नीचे तापक्रमका अभी अनुभव नहीं हुआ है। अनन्त देशमें तो सदैव इसी सरदीका अनुभव होता रहता है। यही सरदीकी पराकाष्ठा और गरमीका मूल-विन्दु है। इससे नीचे दरजेकी गरमी या सरदी कल्पनातीत है।

स्वस्थ रहते मनुष्य अपने तापक्रमको सह सकता है, परन्तु शरीरसे गरमीका जल्दी जल्दी निकल जाना या उसमें बाहरसे गरमीका पहुँचना बहुत देर तक सह्य नहीं हो सकता। यही कारण है कि कमरोंको गरमीमें अनेक उपायोंसे ठण्डा रखनेका और जाड़ेमें गरम करनेका प्रयत्न किया जाता है। कपड़े भी शरीरकी गरमीको जल्दी जल्दी निकल जानेसे रोकनेके साधन हैं। कपड़े पहनने से शरीरमें ताप उत्पन्न नहीं हो जाता, किन्तु उसके बिसर्जनकी गति कपड़ोंके कुवाहक होनेके कारण कम हो जाती है। कपड़ा जितना कुवाहक होगा उतने ही कम कपड़ोंकी आवश्यकता पड़ती है। इसीलिए सूती कपड़े रेशमी कपड़ोंसे कम उपयोगी होते हैं। रूईकी कुवाहकता धुननेसे और बढ़ जाती है। इसी लिए हालकी धुनी हुई अधिक गरम होती है। धुननेसे रुई फैल जाती है और उसके रेशोंके बीचमें बहुत हवा भर जाती है। दबने पर जब हवा निकल जाती है तब वह इतनी गरम नहीं रहती।

सुनते हैं कि लखनऊके नवाब लिहाफ़की जगह कई रज़ाइयोंका प्रयोग किया करते हैं। वस्तुतः आध आधसेरकी दो रज़ाइयाँ तीन सेरके लिहाफ़से अधिक उपयोगी होती हैं। दोनोंके भीतर भरी और बीचमें दबी हुई हवा उनकी उपयोगिता बढ़ा देती है। इसी हवाकी कुवाहकताके कारण स्त्रियाँ एक धोती और कुरती पहने ही आनन्दसे विचरा करती हैं और ग़रीब देहाती एक दोहरमें ही सुखका अनुभव करते हैं।

बरफ़ीले स्थानोंमें बरफ़में गड्ढा खोद कर यदि कोई पैठ रहे तो उसे अनेक कम्बलोंका सुख बरफ़की कुवाहकताके कारण मिल सकता है।

---

# वर्षा और वनस्पति

[ ले०—श्रीशंकरराव जोशी ]

१—भारतका भूगोल और आब हवा

हातोंमें रहनेवाले वृद्ध व्यक्तियोंसे सुना जाता है कि दिन-पर दिन खराब ज़माना आता जाता है। ज़मीनकी उपजाऊ शक्ति नष्ट होती जारही है और इन्द्रदेव भी रुष्ट होकर कम पानी बरसाने लगे हैं। इस कलियुगमें लोगोंकी प्रकृति पापकी ओर अधिकाधिक होती जारही है और इसीसे पृथ्वीमाता और इन्द्रदेव इस स्वर्णभूमिसे रुष्ट होगये हैं। हमारे निरक्षर देहाती भाइयोंके यह विचार कितने ही भद्दे और अवैज्ञानिक क्यों न हों; परन्तु उनमें सत्यका एक बड़ा अंश विद्यमान है। वैज्ञानिक कृषि पद्धतिके अभावसे भूमिकी उर्वरा शक्ति दिन पर दिन घटती जारही है और जंगलोंका नाश हो जानेसे पानीका बरसना भी कम होता जारहा है। इस लेखमालामें वनस्पतिकी वृद्धि और जंगलोंकी रक्षासे होनेवाले लाभों और वर्षा और वनस्पतिके पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार किया जायगा। इस विषयको अच्छी तरहसे समझनेके लिए भारतके भूगोलका परिचय होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अतएव इस परिच्छेदमें भारतके भूगोलका संक्षेपमें वर्णन किया जायगा।

भूगोल वर्णन

पाठशालाओंमें भारतका भूगोल पढ़ाया जाता है; किन्तु उसकी रचना राजकीय विभागोंके आधार पर की गई है। इस भूगोलके पढ़नेसे भारतके प्रदेशोंकी अच्छी जानकारी प्राप्त हो जाती है; अतएव नदी पर्वत आदिसे सम्बन्ध रखने वाली देशकी प्राकृतिक रचना पर ही यहाँ विचार किया जायगा।

स्थाननिर्देश और व्याप्ति—भारतवर्ष विषुववृत्तसे उत्तरकी ओर उत्तर अक्षांश ८से ३६ तक और पूर्व रेखांश ६६ से ९२ तक व्याप्त है। भारतवर्षकी दक्षिणोत्तर लम्बाई १८०० मीलसे कुछ अधिक और चौड़ाई १५०० मीलके लगभग है।

सीमा—उत्तरमें तिब्बत और भारतवर्षके मध्यमें हिमालयकी पर्वत श्रेणी फैली हुई है। वायव्य और ईशानमें सिन्धु नदी और ब्रह्मपुत्रा नदी है। इनसे आगेकी ओर पर्वत श्रेणियाँ हैं। इस देशका दक्षिण भाग समुद्रसे घिरा हुआ है। इसे ही दक्षिण (Deccan) कहते हैं।

इस प्रकार भारतवर्षके आग्नेय, दक्षिण और नैऋत्य दिशामें समुद्र है। उत्तर और ईशानमें भूमि है। दक्षिण दिशाकी ओरका जल संचय ही हिंद महासागर कहलाता है, जिसमें कई छोटे द्वीप हैं। सिलोन (लंका) को भी भारतवर्षका एक भाग मान सकते हैं।

यह देश तीन भागोंमें विभक्त है। हिमालय पर्वत, उत्तर और दक्षिण भारत, जिसे अधिकतर डेकन (दक्षिण) कहते हैं।

हिमालय पर्वत—यह पर्वत श्रेणी उत्तर हिंदुस्तान के उत्तरमें एक हज़ार मील तक अविच्छिन्न फैली हुई है। समुद्रकी सतहसे इसकी औसत ऊंचाई २१००० फुटके लगभग है। परन्तु इसके कुछ शिखर पाँच साढ़े पाँच मील ऊंचे हैं। ज्यों ज्यों पर्वतकी ऊंचाई बढ़ती गई है त्यों त्यों उस पर की उष्णता भी घटती गई है।

हिमालय पर्वतकी वनस्पतिका वर्णन करनेके लिए रायल साहब ने उसको तीन कल्पित भागोंमें विभक्त किया है।

पहला भाग—समुद्रकी सतहसे पाँच हज़ार फुटकी ऊंचाई तक का प्रदेश इस भागमें शामिल किया गया है। नियमानुसार ऊंचाईकी वृद्धिके साथ उष्णता घटती गई है। तथापि इस भू भाग-पर उष्ण कटिबन्धकी वनस्पतिका अभाव नहीं है। क्योंकि सूर्यकी किरणोंके दक्षिण दिशाकी ओरसे पड़नेके कारण उष्णता अधिक पड़ती है और वर्षा भी ज़्यादा होती है। अतएव इस भूभागमें खूब वनस्पति होती है। यहाँ आम और अनन्नास भी होता है। उसी प्रकार शीतकालमें इस भूभागके ऊंचे ऊंचे शिखरों पर समशीतोष्ण और उष्ण देशोंकी वनस्पति साथ साथ उगी हुई देखी जाती हैं। इस भूभाग पर बर्फ कम नज़र आता है।

दूसरा भाग—समुद्रकी सतहसे पाँच हज़ार फुटकी उंचाईसे लगाकर नौ हज़ार फुटकी ऊंचाई तक का भूप्रदेश इस भागमें शामिल किया गया है। यहाँ शीतकालमें सदा वर्फ जमी रहती है। कभी कभी तो बर्फकी मुटाई बहुत ही ज़्यादा हो जाती है। परन्तु वसन्त ऋतुका प्रारंभ होते ही यह पिघलने लगती है। इस भूभागमें भी समशी-तोष्ण देशकी वनस्पति पाई जाती है। परन्तु ऊपर बताये हुए कारणसे उष्ण कटिबंधमें पाई जानेवाली वनस्पतिका जितने उच्च प्रदेशमें पाया जाना संभव है, उससे अधिक ऊंचाई पर वह पाई जाती है। एवं शीत प्रदेशमें होनेवाली वनस्पति भी इन्हींके पास उगी हुई देखी जाती है। किन्तु उष्ण कटि-बंधकी वनस्पतिकी यहाँ अच्छी बाढ़ नहीं होती। ताड़की जातिके झाड़ों का यहां अभाव ही है। सब वनस्पति यूरोपकी वनस्पतिके समान नज़र आती हैं।

तीसरा या सर्वोच्च भाग—नौ हज़ार फुटकी ऊँचाईसे लगाकर पर्वतके शिखर तकका भूभाग इसमें शामिल है। यहाँ की आबहवा यूरोप और

अमेरिकाके उत्तरी भागोंकी आबहवासे मिलती जुलती है और चोटियाँ तो सदा बर्फसे ढकी रहती हैं। मई जूनमें ठंड एक दम घट जाती है और कड़ाकेकी गरमी पड़ने लगती है। अचरज की बात यह होती है कि सूर्य किरण कितने ही प्रखर क्यों न जान पड़ें, पर हवामें की शीतलता बनी ही रहती है और तापमापक यंत्रका पारा शून्य अंशसे कई अंश नीचे बना रहता है। इसका कारण यह है कि सूर्य किरणोंकी सबकी सब गरमी बर्फ पिघलानेमें खर्च हो जाती है। पदार्थ विज्ञान शास्त्रका नियम है कि पदार्थका रूपान्तर प्रारंभ होते ही उष्णताका एक बड़ा अंश नष्ट होने लगता है।

हिमालय पर्वतके उत्तरी भागका दृश्य बिलकुल निराला है। तिब्बत देश पठार पर स्थित है। इस पर्वतके उत्तरी भागमें भारतवर्षके वर्षाकालमें वर्षा नहीं होती और बर्फ भी कम गिरती है। उस भागमें वनस्पति भी कम पाई जाती हैं।

हिमालय पर्वतके दोनों छोर से पर्वत मालाएं निकल कर दक्षिणकी ओरको गई हैं। ईशान कोणकी पर्वत श्रेणीको नागापर्वत और पटकुई पर्वत माला कहते हैं। भारतके वायव्य प्रान्तकी पर्वत माला हिमालयसे निकलकर दक्षिणकी ओर समुद्र तक चली गई है। उन्हें सफेद कोह, सुलेमान पर्वत और हालापर्वत कहते हैं।

उत्तर हिन्दुस्तान—यह विस्तीर्ण मैदान बहुत ही उपजाऊ है। ब्रह्मपुत्रासे लगाकर सिंधु नद तक यह फैला हुआ है। एवं दक्षिणोत्तर हिमालयसे लगाकर दक्षिणके पठार प्रदेश तक यह व्याप्त है। इस मैदानकी लम्बाई लगभग १५०० मील और चौड़ाई अधिकसे अधिक ४०० मील है। हिमालय पर्वत उत्तर भारतकी सीमा है। राजपूतानेके भूभागको छोड़कर शेष सब प्रदेश अनेकों नदी नालोंसे सींचा जाता है। राजपूताना और मध्य भारतमें कहीं कहीं पर्वत श्रेणियां भी पाई जाती हैं।

दक्खिन—भारतके दक्षिणकी ओरको जो प्रायद्वीप है वही 'दक्खन' (Deccan) के नामसे पुकारा जाता है। यह द्वीप एक त्रिकोणके समान है। इस त्रिकोणका आधार बंगालकी खाड़ीसे खंबायतकी खाड़ी तक फैली हुई पर्वत श्रेणियाँ हैं। इसे ही विंध्यपर्वत श्रेणी कहते हैं। पश्चिमकी ओरको समुद्रसे समान अन्तर पर सह्याद्रि फैला हुआ है। कहीं कहीं यह समुद्रसे जा मिला है। इस पर्वतके शिखरों पर ताड़, सुपारी, नारियलके समान उष्ण देशोंकी सुन्दर वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। सागके झाड़ भी यहाँ बहुत हैं। मैसूर की सीमा पर इस पर्वतकी एक शाखा पूर्व-पश्चिम को चली गई है। इसे नीलगिरी कहते हैं। यहाँसे केवल एक शाखा कन्या कुमारी तक चली गई है।

पूर्वीघाट बंग के उपसागरके किनारे किनारे दक्षिणकी ओरको चला गया है। यह सह्याद्रि इतना ऊँचा नहीं है। और इसकी अनेक शाखाएँ इधर उधर फैली हुई हैं। इस पार्वतीय प्रदेशके निवासी जंगली हैं और भूमि भी उपजाऊ नहीं है। इन तीनों पर्वतों से घिरा हुआ प्रदेश ही दक्षिणका पठार है। इस भूभागकी सब नदियाँ पश्चिमके सह्याद्रिसे निकल कर बंगालकी खाड़ीमें गिरती हैं। इस प्रदेशका नैऋत्य भाग गहरी घाटियोंसे व्याप्त है। इसका मध्यभाग सम है। कर्नाटक प्रान्तमें दो पठार हैं—मैसूर और बालाघाट। दक्खिनके पठारका भूभाग भिन्न भिन्न ऊंचाईपर स्थित है अतएव वहाँ की आबहवा, फसलें, जमीन आदि भी भिन्न भिन्न हैं।

आबहवा—अब भारतकी आबहवा पर संक्षेपमें विचार कर मुख्य विषयकी ओर झुकेंगे।

भारत विषुव-वृत्तसे उत्तरकी ओर ८° से ३६° अंश तक व्याप्त है। और कर्क वृत्त विषुव वृत्तसे २३½° ऊपर है। अर्थात् भारतका आधा भाग उष्ण कटिबंधमें और आधा समशीतोष्ण कटिबंधमें है।

कर्कवृत्त उष्ण कटिबंध और समशीतोष्ण कटिबंधके बीचकी सीमा कहा जा सकता है। कर्कवृत्त,

अहमदाबाद, उज्जैन, बरद्वान और डाकाके उत्तर से होकर ब्रह्मदेश को जाता है। उत्तरायणके समय भी सूर्य दक्षिणकी ओरको झुका हुआ रहता है। इस वृत्तके दक्षिणमें सूर्य वर्षमें दो बार ठीक सर पर आता है—पहलीबार उत्तरसे दक्षिणकी ओरको जाते हुए और दूसरी बार दक्षिणसे उत्तरको जाते हुए। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात पाठकोंके ध्यानमें चट आ जायगी। कर्कवृत्तके दक्षिणके प्रदेशोंमें उत्तरायणके समयमें घर झाड़ आदिकी छाया कुछ दक्षिणकी ओरको झुकी हुई नज़र आती है और दक्षिणायनमें उत्तरकी ओरको। परन्तु कर्कवृत्तसे उत्तरकी ओरके प्रदेशोंमें यह बात नहीं पाई जाती। वहाँ छाया हमेशा उत्तरकी ओरको ही झुकी हुई रहती है।

उष्ण कटिबंधमें तापक्रम औसतन ७३ अंशसे ८२ अंश तक होता है। परन्तु इससे ग्रीष्म कालकी उष्णताका अनुमान नहीं किया जा सकता। ग्रीष्म कालमें उष्णताका मान शीतकालकी शीतके परिमाणसे जितना ही अधिक होगा, वार्षिक तापक्रमका औसत भी उतना ही कम होगा। इसके प्रतिकूल गर्मी और सर्दीके मौसमके तापक्रममें जितना ही कम अन्तर होगा, वार्षिक तापक्रमका औसत उतना ही अधिक होगा। अतएव वार्षिक औसत तापक्रमकी न्यूनताको देखकर यह मान लेना कि ग्रीष्मकालमें उष्णता कम पड़ती होगी भारी भूल है। मान लीजिये कि एक स्थानमें गरमीके दिनोंमें ताप क्रम १००° और शीतकाल में ६० अंश है, तो उस स्थानका औसत तापक्रम ८०° होगा। परन्तु एक दूसरे स्थानका तापक्रम गरमी और ठंढके मौसममें अनुक्रमसे ९० अंश और ८० अंश है, तो औसत तापक्रम ८५° होगा। दूसरे स्थानका औसत तापक्रम ५° अधिक है, परन्तु पहले भूभागमें गरमीके दिनोंमें गरमी ज़्यादा पड़ती है और शीतकालमें ठंढकी अधिकता रहती है। अतएव किसी स्थानके वार्षिक औसत तापक्रमको देखकर उस स्थानकी सरदी गरमीका अन्दाज़ा कर लेना भ्रमपूर्ण और मूर्खता पूर्ण होगा।

उत्तर भारतका वार्षिक औसत तापक्रम दक्षिण भारतके वार्षिक औसत तापक्रमसे कम है। तथापि इस भाग पर सूर्यकी किरण अधिक लम्ब रेखामें गिरती हैं, जिससे वहाँ ग्रीष्मकालमें उष्णता अधिक प्रखर होती है। वायव्य दिशाके प्रान्तोंमें तो गरमी बहुत ही ज़्यादा पड़ती है। परन्तु सिंध प्रान्तमें बलुचिस्तानकी सरहद पर जेकोबाबादमें थर्मामीटरका पारा कभी कभी १२५° अंश तक पहुँच जाता है। इतनी अधिक गरमी भारतमें अन्यत्र कहीं नहीं पड़ती। इसके बाद पंजाबका नम्बर आता है। उत्तर भारतमें शीत भी अधिक पड़ती है।

दक्षिण भारत, यद्यपि उष्ण कटिबंधमें है तथापि वहाँ गरमी उतनी तेज़ नहीं होती। इसके तीन कारण हैं। पहला कारण तो यह है कि यह प्रदेश पठारपर स्थित है। इसलिए यहाँ सूर्य किरण अधिक प्रखर नहीं होती। दूसरा कारण यह है कि वहाँ मई जूनमें भी सूर्य कर्कवृत्तके लगभग होता है। इसलिए किरणें अधिक लम्ब रेखामें नहीं पड़तीं। तीसरा कारण यह है कि वहाँ जून मासमें ही वर्षा शुरू हो जाती है, जिससे शीतलता फैल जाती है। तथापि शीतकाल सौम्य होनेके कारण वार्षिक उष्णताका औसतमान बढ़ जाता है।

सारांशमें, पहाड़ी प्रदेशका थोड़ा सा भाग छोड़ कर सारे देशमें गरमी ही ज़्यादा पड़ती है। भारतवर्षमें वर्षा नियमित समय पर होती है। साधारणतः वर्षाकाल जूनसे अक्टोबर तक व्याप्त रहता है। वर्षाके पानी पर ही वर्षके शेष भागमें निर्वाह करना पड़ता है।

### २—भारतकी स्वाभाविक आवश्यकताएं

गत परिच्छेदमें भारतकी जलवायुका दिग्दर्शन करा चुके हैं। इस परिच्छेदमें भारतकी आवश्यकताओं पर विचार किया जायगा। देशके जलवायुको देखते हुए भारतकी तीन आवश्यकताएं भासित

होती हैं, यह हैं शीतलता, वर्षा और जलसंचय। इन तीनों पर भिन्न भिन्न परिच्छेदोंमें विवेचन किया जायगा।

### शीतलता

समशीतोष्ण कटिबंध करीब ४३ अंश तक फैला हुआ है। इनमेंसे करीब १२½ अंश भारतके हिस्सेमें आये हैं। और यह अंश उष्ण कटिबंधके पासके हैं। अतएव यहाँकी हवा समशीतोष्ण देश-की हवाके समान नहीं है। यहाँ उष्ण कटिबंधकी अपेक्षा कुछ कम गरमी होती है। इस देशकी वार्षिक औसत गरमी ६२ अंशसे ८२ अंश तक है। गरमी-के दिनोंमें कहीं उष्णता १२५° अंश तक बढ़ जाती है। इतनी अधिक उष्णता एक दम असह्य है।

अतिशय उष्णतासे मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक वृद्धिमें रुकावट पहुँचती है। उष्ण जल-वायु वाले देशोंके लोगोंकी उम्र भी कम होती है। क्योंकि इन देशोंमें मनुष्य को प्रौढ़त्व जल्दी प्राप्त हो जाता है और बुढ़ापा भी जलदी आ घेरता है। उष्ण देशोंकी लड़कियां दस बारह वर्षकी अव-स्थामें ही प्रौढत्वको प्राप्त हो जाती हैं और बाल्यावस्थामें शादी करनेकी चाल होने से सन्तति भी कमजोर हो जाती है। शीत प्रधान देशोंमें स्त्रियां २० वर्षकी अवस्थामें और पुरुष २२ वर्षकी अवस्थामें प्रौढ़ताको प्राप्त होते हैं। उत्तर भारतमें ठंढ अधिक पड़ती है। इसलिए वहां लड़कियां १५-१६ वर्षकी अवस्था तक प्रौढत्वको प्राप्त नहीं होतीं। परन्तु मद्रासका हाल बिलकुल जुदा है। वहाँ गरमी अधिक पड़ती है, इसलिए लड़कियाँ छोटी अवस्थामें ही प्रौढत्वको प्राप्त हो जाती हैं। मानसिक बाढ़ का भी यही हाल है। आफ्रिका खंड में से विषुव वृत्त गुजरता है, इस-लिए वहाँ गरमी अधिक पड़ती है। और यही कारण है कि वहाँ के लोग बौने, काले और कुरूप हैं। मिश्र के सिवा अन्यत्र सभ्यता के चिन्ह नजर नहीं आते। लोगोंकी मानसिक शक्तिका भी उतना विकास नहीं हुआ है। परन्तु फ्रांस, इङ्गलैंड, जर्मनी, अमेरिका आदि देशोंकी स्थिति बिलकुल निराली है। वहाँके लोग बलवान ऊंचे और सुन्दर हैं। इन देशोंकी अपनी निजकी सभ्यता है जो ऊंचे दरजेको पहुँच गई है। लोगोंकी मान-सिक अवस्थाका भी अच्छा विकास हुआ है। मद्रासके निवासी काले कुछ कुरूप और बौने होते हैं। हर प्रकारकी सभ्यता और मानसिक शक्तिमें वह पिछड़े हुए हैं। परन्तु बंगाल पंजाब आदिकी बात इससे बिलकुल जुदी है। वहां के लोग हट्टे कट्टे और ऊंचे पूरे हैं। अर्वाचीन कालमें सभ्यता और विद्यामें बंगाल भारतके शेष सब प्रान्तोंसे बहुत आगे बढ़ा हुआ है। प्राचीन कालमें अयोध्या, दिल्ली, मथुरा, पाटली पुत्र आदि नगर धन धान्य और विद्या सम्पन्न थे। यह सब नगर उत्तर भारत में ही स्थित हैं। प्राचीनकालमें जितने शक्तिशाली साम्राज्य हो गये हैं, वह सब उत्तर भारतमें ही फैले हुए थे। कमसे कम उन साम्राज्योंके नेता और महाराज उत्तर भारतके ही रहने वाले थे। सारांश में समशीतोष्ण कटिबंध ही रहनेके लिए एक आदर्श प्रदेश है। परन्तु इस कटिबंधका मध्य भाग ही सर्वोत्तम है—शीत कटिबंध या उष्ण कटिबंध की ओरवाला भाग नहीं।

अतिशय ठंढ भी मानव प्राणीके लिए हित-कारक नहीं। नार्वेस्वीडन, लैप लैंड, रूसका उत्तरी प्रदेश आदि देशोंकी आबहवा बहुत ही ठंढी है। अतएव वहाँके लोग भी बौने और कुरूप हैं। उनकी मानसिक शक्तिका विकास भी उतना अधिक नहीं हुआ है। हिमालय पर्वतके शीत प्रधान प्रदेशोंका भी यही हाल है।

उष्ण जल वायुमें रहनेसे अन्य कई प्रकार की हानियाँ भी होती हैं। उष्ण प्रदेशोंमें शारीरिक और मानसिक परिश्रम ज़्यादा नहीं किया जा सकता। थोड़ी सी मिहनत करनेसे ही सारा शरीर शिथिल हो जाता है। ठंढे देशोंमें अधिक समय तक परिश्रम करनेसे भी थकावट मालूम

नहीं होती। जर्मनीके विद्यार्थी प्रति दिन १४-१५ घंटे तक अभ्यास करते हैं।

सारांशमें, मानवोन्नतिके लिए न तो अतिशय उष्णता ही हितकारक है और न अतिशय ठंढ ही, और भारतवर्षमें तो उष्णता ज़्यादा है। अतएव यह आवश्यक है कि कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे उष्णताका परिमाण घटाया जा सके।

हमारा अनुभव है कि शीतकालमें अन्न-पचन अच्छा होता है और वह रुचिकर भी मालूम होता है। इस ऋतुमें ज़्यादा मेहनत करनेसे भी थकावट नहीं मालूम होती। इसी ऋतुमें पहलवान लोग कसरत करके शरीर कमाते हैं। शीतकाल में परिश्रम करनेको जी चाहता है और शरीर-शक्ति भी अधिक रहती है। परन्तु गरमीके मौसम का हाल इससे बिलकुल उलटा है। इस मौसममें अन्न रुचिकर नहीं मालूम होता। थोड़ा सा परिश्रम करनेसे सारा शरीर शिथिल हो जाता है और पसीना चूने लगता है। प्यास ज़्यादा लगती है, जिससे भोजन कम खाया जाता है। गरमीके मारे रातको नींद नहीं आती, जिससे दूसरे रोज़ सबेरे काम करनेको उत्साह नहीं रहता। अस्तु।

उपर्युक्त विवेचनको पढ़कर पाठक यह बात भले प्रकार समझ गए होंगे कि हमको शीतलता की कितनी अधिक आवश्यकता है।

### वर्षा

क़रीब क़रीब सभी ठंडे देशोंमें बारहों महीने पानी बरसा करता है। परन्तु पूरे सालमें ३०—४० इंचसे अधिक वर्षा नहीं होती। फिर भी उन देशोंमें अकाल की भीति बिलकुल नहीं रहती। किन्तु उष्ण देशोंमें नियमित समय पर नियमित दिनों तक वर्षा होती है। भारतवर्षमें वर्षा-काल लगभग चार महीनों तक रहता है। इसी पानी पर साल भरकी फ़सलें निर्भर करती हैं। यदि वर्षा अच्छी हुई तो फ़सलें भी ठीक आती हैं। कई देशोंमें फ़सलें वर्षाके पानी पर निर्भर नहीं करतीं। वहाँ तालाबों और नदी-नालेके पानीको नहरों द्वारा दूर दूर तक लेजाकर सिंचाई द्वारा फ़सलें पैदा की जाती हैं। ऐसे देशोंमें वर्षा न होने पर भी अकाल का भय नहीं रहता। भारतके उन भागोंमें, जहाँ गंगा, यमुना, सिंधु आदिकी नहरोंसे ज़मीन सींची जाती है, वर्षा न होने पर भी सभी प्रकारकी फ़सलें पैदा की जा सकती हैं। तथापि देशके अन्य भागोंमें कृषि वर्षा पर ही निर्भर करती है। ऐसे प्रान्तोंमें एक ही साल पानी न बरसे या कम बरसे तो फ़सलें नष्ट हो जाती हैं, और अकाल कराल मुँह बाँयें सामने आ खड़ा हो जाता है। अकाल पड़नेके अन्य भी कई कारण हैं; परन्तु उनमें वर्षा प्रमुख है। अतएव राजा और प्रजाका यह एक आवश्यक और पवित्र कर्तव्य है कि वह ऐसे साधनोंकी योजना करें जिससे वर्षा होती रहे।

### जलसंचय

ऊपर लिख आये हैं कि उष्ण देशोंमें नियमित समय पर पानी बरसता है। भारतमें वर्षा तीनसे पाँच मास तक होती रहती है। वर्षके शेष महीनोंमें बहुत कम पानी बरसता है। इसी थोड़े समयमें बरसे हुये पानी पर ही वनस्पतियों और प्राणियोंको गुज़र चलाना पड़ता है।

कई प्रदेशोंमें घास और अन्नकी विपुलता होते हुए भी एक मात्र वर्षाकी कमीके कारण लोगोंको अपना घरबार छोड़कर भागना पड़ता है, क्योंकि बिना जलके प्राणियोंका जीना एक दम असंभव है और कुएं तालाबोंमें पानी कम होनेके कारण बहुत सी ज़मीन परती रह जाती है। धान्यका दुष्काल पड़ने पर जहाज़, रेल आदि द्वारा दूसरे देशोंसे अनाज मँगाया जा सकता है; किन्तु पानी नहीं मंगाया जा सकता।

नदियोंमें बाँध बाँध कर एवं तालाबोंमें संचित किए हुए जल पर प्राणियों और वनस्पतियोंका गुज़ारा चल सकता है। सिंचाईकी फसलोंको तो, नदी नालों, कुओं और तालाबोंसे पानी ऊपर उठा कर पानी दिया जा सकता है, किन्तु वह फ़सलें, जो जलाशयोंसे बहुत दूरवाली ज़मीनमें बोई जाती हैं,

वर्षाके पानी पर ही निर्भर करती हैं। यदि किसी वर्ष जल न बरसे या कम बरसे, तो ऐसे खेतोंमें एक दाना भी पैदा नहीं हो सकता। और अगर पानी ही नहीं बरसेगा, तो कुएं और नदी नालों तथा तालाबोंमें भी तो पानी कहाँसे आयेगा। अतएव यह अत्यन्त आवश्यक है कि वर्षाके पानीको बहकर समुद्रमें न जाने देना चाहिये। नदी नालोंमें बाँध डालकर और तालाब बनाकर जल संचय बढ़ानेकी कोशिश करना चाहिये।

ऊपर भारतकी जिन तीन आवश्यकताओंके बारेमें लिख आए हैं उन्हें प्राप्त करनेमें वनस्पति हमको बहुत ही ज़्यादा सहायता पहुँचाती है। वनस्पति यह काम किस प्रकार करती है, यह बात आगेके परिच्छेदोंमें क्रमशः दिखाई जायगी।

## ब्रेड-फ्रूट

शान्त महासागरके द्वीपोंमें ब्रेड-फ्रूट नामका एक अत्यन्त उपयोगी फल होता है। किसी समय यह फल उन द्वीपोंके अगणित मूल निवासियोंका एक आवश्यक और प्रधान खाद्य पदार्थ था। उन लोगोंका जीवन-निर्वाह प्रायः इसी फल पर होता था। परन्तु अब धीरे धीरे इसके वृक्षोंका नाश होता जा रहा है। यदि उसकी रक्षाका कोई उचित उपाय नहीं किया गया तो एक दिन इस वृक्षका संसारसे लोप अनिवार्य है। इसका फल पौष्टिक, स्वादिष्ट और स्वास्थ्य-प्रद होता है।

कैप्टन कुक की यात्रामें उनके सहयात्री सोलेंडर और एक वनस्पति-विद्ने इस फलको देख कर कहा था कि 'संसारमें यह एक अत्यन्त उपादेय वनस्पति' है। उसके सम्बन्धकी कहानियाँ यात्रियों और जल दस्युओंकी ज़बानी सुन कर विलायतमें लोगोंको बड़ा कौतूहल उत्पन्न हुआ। यही नहीं, ब्रिटिश सरकारने अपने ईस्ट इंडीज़के द्वीपोंमें इसके पेड़ लगानेके लिए ताहितीसे इसे ले आनेको एक जहाज़ भेजा था। इस जहाज़का नाम बाउन्टी था। सन् १७२७ में लेफ्टेनेंट ब्लिघके नायकत्वमें यह जहाज़ इँग्लैंडसे रवाना हुआ था। मार्गमें अनेक विघ्न-बाधाओंको झेल कर यह एक वर्षमें ताहिती के तटमें पहुँच सका था। कोई छः महीने तक उस पर वृक्षके पौधे लदते रहे। ब्लिघ साहब इसके एक हज़ार पौधे लेकर रवाना हुए थे। परन्तु वापस आते समय एक महीना बाद ज़हाजियोंने बीच समुद्रमें बलवा कर दिया। उन्होंने ब्लिघ साहबको उनके पक्षके अठारह साथियों सहित एक नाव पर बिठा कर समुद्र में छोड़ दिया और वह जहाज़ लेकर ताहितीको फिर लौट आये। इन लोगोंने ताहितीनिवासी स्त्रियोंके प्रेममें फँसे रहनेके कारण यह गोल माल किया था। ताहिती आकर उन लोगोंने वहांके कुछ मर्दों और स्त्रियोंको अपने जहाज़ पर आनेको बाध्य किया। इसके बाद इन्हें अपने साथ लेकर वे लोग पिटकैर्न नामक द्वीपको चले गये और वहाँ अपना उपनिवेश क़ायम किया। इस घटनाके पचीस वर्ष बाद अमेरिकावालोंने इस स्थानको खोज निकाला था।

उधर लेफ्टेनेंट ब्लिघ अपने साथियोंके साथ बहते उतराते कोई हज़ार मीलकी यात्रा करके मोलुकासके टिमोर नामक स्थानमें जा लगे। वहाँसे वह इंगलेंड राज़ी खुशी पहुँच गये। उनका हाल जानकर ब्रिटिश-सरकारने 'प्रावीडेंस' नामका दूसरा जहाज़ रवाना किया। यह जहाज़ सन् १७९१ के अगस्तमें इंग्लेंडसे रवाना हुआ था और दूसरे वर्षके अप्रेलमें ताहितीमें जा लगा था। वहाँसे वह ब्रेड-फ्रूटके ७०० पौधे लेकर चला और सन् १७९३ के जनवरी में वेस्ट इंडीज़में जा पहुँचा। इस प्रकार ब्रेडफ्रूटके वृक्ष सभ्य जगतमें पहुँच गये।

ब्रेडफ्रूटका पेड़ शानदार होता है। कभी कभी उसकी ऊँचाई २२ गज़ के लगभग जा

पहुंचती है। इसका सिरा बड़ी बड़ी और गहरे हरे रङ्गकी पत्तियोंसे सुशोभित रहता है। इसमें एक-हरा फल लगता है। पर जो फल शाखोंके सिरेपर लगते हैं वह दो दो तीन तीन तक एक साथ लग जाते हैं। इसके फल एकसे चार किलो* तक वज़न में होते हैं। वह गोलाई लिए हुए लम्बे होते हैं। पर प्रायः उनका डील डौल बेढंगा होता है। किसी किसी जातिके फलका ऊपरी भाग छोटे छोटे और मुलायम spines से आवृत रहता है, परन्तु दूसरी जातियोंके फलका ऊपरी हिस्सा वैसा नहीं रहता है। उस पर spines तो नहीं होते, पर वह खुरदरा अवश्य रहता है।

कच्चा फल हरा होता है और उसका गूदा सफ़ेद तथा रेशेदार होता है। कच्चे फलको लोग नहीं खाते। वह खानेमें अच्छा नहीं लगता है। परन्तु, जब छीलकर उसके मोटे मोटे टुकड़े भून या उबाल लिए जाते हैं, तब वह मीठे आलूकी भाँति स्वादिष्ट मालूम पड़ते हैं। पर जब इसका फल पूरा बढ़ जाता है तब वह पीला पड़ जाता है। उसके गूदाका रङ्ग भी पीला हो जाता है। इसके सिवा उससे एक प्रकारकी मधुर गन्ध निकलती है जो बहुत कड़ी होती है। यदि उसका एक फल किसी कमरेमें रख दिया जाता है तो वह उसकी सुगन्धसे महकने लगता है। बड़े फल का गूदा मीठा और मुलायम होता है। उसे छील और उसके बड़े बड़े टुकड़े करके पका लेने पर वह अकेला या बालाईके साथ खानेमें बहुत स्वादिष्ट मालूम पड़ता है। परन्तु इस रूपमें भी उसकी तेज़ गन्ध बनी रहती है।

क्यूरोस नामक एक पुराने यात्रीका कहना है कि दुनियामें ब्रेडफ्रूटसे बढ़कर कोई फल नहीं होता। प्रसिद्ध वैज्ञानिक वालेसने लिखा है कि समशीतोष्ण या गर्म देशोंमें मांसके साथ खाई जानेवाली एक भी वनस्पति इससे टक्कर नहीं ले सकती। चीनी, दूध या मक्खनके साथ इसकी बहुत ही स्वादिष्ट लपसी बनती है। यही नहीं किन्तु रोटी और आलूकी भाँति इसको भी खाते रहनेमें जी नहीं ऊबता।

कैप्टेन कुकने लिखा है कि जो वनस्पतियाँ ताहितीके निवासियोंके खाद्यका काम देती हैं उनमें प्रधान ब्रेडफ्रूट ही है। इसकी प्राप्तिमें उन्हें अधिक परिश्रम या कठिनाई नहीं उठानी पड़ती, केवल वृक्ष पर चढ़कर फल तोड़ लेने पड़ते हैं। यदि कोई आदमी इसके आठ दस वृक्ष लगा देता है तो उनसे उसका तथा उसके उत्तराधिकारियोंका जीवन-निर्वाह होता रहता है। वह उनकी जीविकाका मुख्य साधन ही नहीं होता किन्तु उससे उनकी आमदनी भी बढ़ जाती है।

इस वृक्षके बाग-बागीचे कहीं नहीं देख पड़ते, अतएव यह नहीं बताया जा सकता कि एक वृक्षमें कितने फल लगते हैं, किन्तु लोगोंका कहना है कि वर्षभरमें एक पेड़में २५ 'मेट्रिक' टन फल लगते हैं।

ब्रेड—फ्रूटमें लगभग १४·५ फ़ी सदी शक्कर, ६·२ फ़ी सदी कारबोहाइड्रेट्स और ०·५ चर्बी होती है। लगभग यही तत्त्व केलेमें भी इतनी ही मात्रामें पाये जाते हैं, परन्तु केलेकी अपेक्षा इसमें १४·५ फ़ी सदी व्यर्थ पदार्थ अधिक होता है। ऐसी दशामें इस बातमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि यह फल अपनी उत्पत्तिके देशके निवासियोंका मुख्य खाद्य पदार्थ बन गया।

यद्यपि ब्रेडफ्रूटके सम्बन्धमें पहलेके समुद्री यात्रियोंने बहुत कुछ लिखा है। तथापि अभी तक इसके सम्बन्धमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया है। सम्पूर्ण ओशेनियामें इसकी अनेक जातियाँ पायी जाती हैं। परन्तु, यदि यह पता लग जाय कि यह भिन्न भिन्न जातियाँ परस्पर मिलती जुलती हैं तो यह सिद्ध हो जाय कि यह वृक्ष एक ही स्थानसे भिन्न भिन्न

*एक किलो अथवा किलोग्राम लगभग सवा सेरका होता है।

द्वीपोंको उस समय पहुँचाया गया था जब पालीनेशियन लोग वहाँ जाकर आबाद हुये थे।

वनस्पति-शास्त्री सोलेंडरने ताहितीमें ब्रेड-फ्रूटकी बीस जातियोंका उल्लेख किया है; परन्तु उसकी सूची कभी प्रकाशित नहीं हुई। इस फलका पता लगनेके सौ वर्ष बाद इसका पूरा विवरण पहले पहल सीयनने प्रकाशित किया। उसने लिखा है कि फिजीमें इसकी तेरह जातियाँ हैं। बेनेटने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकमें लिखा है कि ताहितीमें इस फलकी कोई पचीस जातियाँ मिलती हैं। क्रिस्चियन लिखता है कि कैरोलीन द्वीपोंमें इस फलकी तिरेपन जातियाँ हैं। इसी लेखकने यह भी लिखा है कि मारकीसास द्वीपोंमें इसकी कमसे कम बत्तीस जातियाँ मिलती हैं। पालीनेशियन रिसर्चेज़में एलिस लिखता है कि मिशनरी लोगोंको इसकी लगभग पचास जातियाँ ज्ञात थीं और मुझे उनके नाम मालूम थे।

परन्तु ब्रेडफ्रूटकी यह जातियाँ कहाँसे कब उत्पन्न हो गईं, यह प्रश्न बड़ा मनोरञ्जक है।

पहले पहल यूरोपवालोंने बीजहीन ब्रेड-फ्रूट सन् १५९५में मारकीसासमें देखा था और ज्यों ज्यों महासागरके दूसरे द्वीपोंका पता लगता गया, त्यों त्यों उन्हें इसकी दूसरी जातियोंका भी ज्ञान होता गया। मलाया द्वीप-पुञ्जमें इस वृक्षको रयफ़लियसने सन् १६५३ के लगभग देखा था। उस समय तक इसका पता केवल डच ईस्ट इंडीज़के पूर्वी तथा दक्षिण पूर्वी भागमें ही था।

यह बात सम्भव प्रतीत होगी कि पहले पहल बीजहीन ब्रेडफ्रूड जावाके पूर्वके द्वीपों या मोलुकासमें कहीं पर उत्पन्न हुआ होगा। वहाँसे पालीनेशियन लोग जहाँ जहाँ गये, अपने साथ उसे लेते गये। ओशेनियामें तो इस वृक्षकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक गाथाएं प्रसिद्ध हैं।

'ह्वाइट शैडोज़ आव् दि साउथ सीज़' में फ्रेडरिक ओ 'ब्रीन ने लिखा है कि मारकीसन लोगोंके दिन अब गिने जा रहे हैं। इस मतकी पुष्टि सन् १९१९ में जे० डब्ल्यू चर्चने भी की है। उन्होंने लिखा है कि मारकीसासमें अब केवल १९५० आदमी रह गये हैं। यहाँकी जनसंख्या पिछले पाँच वर्षोंमें २३ फ़ी सदीके हिसाबसे घट गई है और ऐसा समझ पड़ता है कि दस वर्ष बाद असली मारकीसनका अस्तित्व मिट जायगा। किसी समय जो प्रदेश खूब आबाद था वह अब जङ्गलोंसे आवृत हो गया है।

यह जानी हुई बात है कि लगाये हुए वृक्ष जङ्गली वृक्षोंके बीच नहीं ठहर सकते। उनकी रक्षाके लिए मनुष्य की निगरानीकी आवश्यकता है। और मारकीसन लोगोंका विनाश अनिवार्य है, अतएव ब्रेड फ्रूटकी भी खैर न समझनी चाहिये। इसकी कुछ जातियोंका अस्तित्व पहलेसे ही नहीं रह गया या शीघ्र ही मिट जाने वाला है। ऐसी दशामें यह आवश्यक है कि इसकी रक्षाका कुछ आयोजन अवश्य होना चाहिये, अन्यथा एक ऐसी जातिके प्रधान भोज्य पदार्थका संसारसे लोप हो जायगा जिसका विनाश करनेमें यूरोपीय सभ्यताका विशेष हाथ रहा है।

## डाक्टर हैकेनसाका रहस्य

रे सिलास तुम यहाँ कहाँ" एक जहाज़के डेकपर खड़े डाक्टर हैकेनसाने पूछा। यह जहाज़ न्यूयार्कके बन्दरसे यात्रा करनेको तैयार था।

"मैं अपने एक मित्रको विदा करनेको आई थी। पर तुम तो यूरोपको नहीं जा रहे ?"

डाक्टर ने कहा—हाँ, जा तो रहा हूँ। मुझे कुछ अवकाश मिल गया है। अतएव मैं वेसूवियसको वशीभूत करनेके लिए इटली जा रहा हूँ।

"वेसूवियसको वशीभूत करने ? तुम्हारा आशय क्या है ? साफ़ साफ़ कहो।"

"सिलास, तुम देखती हो कि मनुष्य प्रकृति-पर विजयपर विजय प्राप्त करता जा रहा है। अपने डैनेमो चलानेके लिए हमने प्रकृतिके जल-प्रपातोंको सज्जित किया है और अपने वायु-यानों से उसकी आकर्षण शक्तिके नियमोंकी उपेक्षा कर दी है। हमारी सबमेरीनोंने समुद्रकी गहराई-को भी जीत लिया है, पर अभी तक हमने उसके ज्वालामुखी पहाड़ जीतने या भूचालोंको दबाने-के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया।"

"मुझे पता चला था कि वेसूवियसपर एक वेध-शाला स्थापित है। मुझे यह बात भी बताई गई थी कि उसकी ज्वालाओंका निरीक्षण रश्मि-चित्र दर्शक द्वारा किया जा रहा है।"

"हाँ, यह बात तो सत्य है, पर अभी श्रीगणेश ही हुआ है। जो वैज्ञानिक निरीक्षण किये जा रहे हैं उनसे किसी दिन हम यह पहले से ही ठीक ठीक कहनेमें समर्थ होंगे कि कब ज्वालामुखी फूटेगा या भूचाल आवेगा और इन घटनाओंका कितना परिमाण होगा। परन्तु भीतरी शक्तियोंको वशीभूत करना बिलकुल ही एक भिन्न बात है।

"क्या तुम समझते हो कि अपने प्रयत्न में सफल होगे ?"

"मैं कमसे कम प्रयत्न कर सकता हूँ। यदि इस कार्यमें मैं असफल भी होजाऊँगा तो उसी प्रकार के किसी दूसरे कार्यमें सफलहो सकता हूं। मनुष्य जातिके मतलबका मैं वेसुवियसको बना हा लूँगा।"

"किस प्रकार ?"

"वेसूवियसके भीतर सतहके समीप लाल लाल लावाका ढेर अवश्य ही होगा। उससे गरमी, प्रकाश और शक्ति अपरिमित परिमाणमें उत्पन्न हो सकती है। उससे कुछ ही दूर नेपल्स नगर है। वहाँकी ट्रेनों, कारखानों आदिके चलाने तथा गरमी और प्रकाश प्रस्तुत करनेके लिए लाखों मन कोयला बाहर से लाना पड़ता है। अतएव वेसू-वियससे क्यों न काम लिया जाय। वह क्यों बेकार पड़ा रहे।"

"कल्पना तो तुम्हारी बहुत दुरुस्त है, परन्तु तुम इसे कार्यमें परिणत कैसे करोगे ?"

"पहले तो मैं नेपल्सके लिए गर्म जल देकर ही सन्तुष्ट हो जाना चाहता हूँ। कुछ ही मील दूर सोलफटरामें पहले से ही गरम जलका एक सोता मौजूद है। उसी प्रकार गरम जलके कृत्रिम सोते-भी बनाये जा सकते हैं। मेरा विचार है कि बीचों-बीच गरम लावाकी तहमें नल लगा दिये जायँ और उनके द्वारा जल गरम किया जाय। हाँ मुझे वैसे स्थान बेशक चुनने पड़ेंगे, जहाँ गरमीका प्रवाह बराबर जारी रहे।"

"क्या तुम्हारे नल पिघल नहीं जायँगे ?"

"चीनी या किसी दूसरी अद्रवणशील पदार्थके नल बनाये जा सकते हैं। मेरा विचार तो यह था कि ठंढ़े हुए लावाके ही नल बना लिए जायँ और स्वयं ज्वलामुखी ही उन्हें ढाल दे। साँचे बना लिए जायँगे और यथा समय पिघला हुआ लावा पहाड़ के मुखसे उनमें बहा दिया जायगा। सलफ़टरा पहाड़के मुख पर इस सम्बन्धमें मैंने कुछ प्रार-म्भिक प्रयोग भी करके देख लिया है।"

"मैं समझती हूँ कि वेसूवियसपर जल पर्याप्त होगा, क्योंकि तुम्हारी स्कीममें जलका बहुत ही अधिक ख़र्च है।"

"वेसूवियसपर तो जलका पूर्ण अभाव है। परन्तु भूमध्य सागर, या कमसे कम नेपल्सकी खाड़ी, उसके नीचे ही भरी है। जलकी आवश्यक-ताकीपूर्ति उससे पूर्ण रूपसे हो जायगी।"

"परन्तु समुद्रका जल तो खारी होता है"

"जलका स्रवण कर लिया जायगा। उसका स्रवण करनेके लिए पहाड़से ही गरमी भी मुफ़्तमें मिल जायगी। जो नमक निकलेगा उससे सोडियम, पोटासियम आदि पदार्थ तथा कम या अधिक परिमाणमें सोना भी प्राप्त किया जा सकता है"

"परन्तु तुम पहाड़ पर जल कैसे ले जाओगे"

"इसमें क्या है । नल द्वारा पहुँच जायगा । पहली बार जलको नल द्वारा पहाड़पर ले जाने में कोयला ख़र्च करना पड़ेगा । परन्तु जहाँ उसकी भाप बनी तहाँ स्टीम इंजनमें उसका उपयोग करके जल पहाड़ पर पहुँचाया जाने लगेगा और तब कोयलेका काम न पड़ेगा ।"

"तो मेरी समझमें निरन्तर गतिकी समस्या हल हो जायगी ।"

"ऐसा तो न होगा, पर गरमागरम लावेकी सञ्चित शक्ति मौजूद ही रहेगी; जलके ऊपर चढ़ानेमें जो शक्तिका व्यय होगा उसकी पूर्ति इसीसे हो जायगी । यही नहीं, इतनी अधिक शक्ति बच रहेगी कि उससे नेपल्सकी रेलगाड़ियाँ, ट्रामगाड़ियाँ और कारख़ाने चलेंगे । इसके सिवा उसके द्वारा वहाँके घर जाड़ेमें गरम और गरमीमें ठण्डे किये जायँगे ।"

"ज़रा ठहरो तो । तुम मकानको ठण्डा करनेके लिए गरमीका उपयोग कैसे करोगे ।"

यह सुन कर डाक्टर हैकेनसा सिर्फ़ मुसकरा दिये । उन्होंने कहा, हमारे सभी ठण्डा करनेवाले बड़े बड़े यंत्र ठण्डा करनेके काममें 'अमोनिया–पद्धति' का उपयोग करते हैं । यद्यपि यह बात तुम्हें असम्भव जँचेगी तो भी यह सच है कि गरमी ही सर्दीको पैदा करती है । गरमी अमोनियाको भाप बना देती है और अमोनिया भाप बनते समय सर्दी उत्पन्न करता है । मैं नेपल्सके मकानों तथा गलियोंको ठण्डा करनेके लिए वेसूवियसकी गरमीको काममें लानेकी तदबीरमें हूँ, यहाँ तक कि वहाँके अत्यन्त गरमीके दिनोंमें, मैं उन्हें ठण्डा रखूँगा । मैं नेपल्स तक ही न रह जाऊँगा । इससे लाभ उठानेके लिए रोम कुछ बहुत दूर नहीं है । यहाँ तक तो मैंने तुमसे सिर्फ़ गरम जलके सम्बन्धमें कहा है । परन्तु मेरा मुख्य आधार बिजली रहेगी । मैं वेसूवियसपर बिजली उत्पन्न करनेके लिए बड़े बड़े यन्त्र स्थापित करूँगा और वेसूवियसकी भीतरी गरमीसे अपने डैनेमो चलाऊँगा । इस प्रकार बिजली उत्पन्न कर तार-द्वारा उसे इटलीके भिन्न भिन्न नगरोंको पहुँचाऊँगा । ऐसी दशामें रोम और नेपल्सको गरमी, प्रकाश, ठण्डक आदि प्राप्त होनेमें कठिनाई न होगी । वहाँके प्रत्येक घरको बहुत ही अधिक मात्रामें बिजलीकी शक्ति नाम-मात्रके मूल्यमें प्राप्त होती रहेगी ।

"डाक्टर, सौभाग्यकी बात है, जो तुम इस प्रकारकी यात्रा करनेको जा रहे हो । क्या ही अच्छी बात होती, यदि मैं भी तुम्हारे साथ गई होती !"

"सिलास, तब चलो न"

"इस समय मैं नहीं जा सकती । 'न्यू यार्क डेली ग्रोल' का काम कौन करेगा ?"

"अभी जहाज़के छूटनेमें पन्द्रह मिनटका समय है । तुम टेलीफ़ोनसे पत्रके मैनेजरको मेरी यात्राकी सूचना दे दो और उससे छुट्टी माँग लो । इस बातका वादा करदो कि मैं वहाँसे आश्चर्यजनक लेख भेजूँगी ।"

"पर मेरे पास न तो टिकट, न कपड़े और न एक पैसा ही है । इसके सिवा जहाज़में सोनेका कोई कमरा भी नहीं खाली है ।"

"वाह पत्रका संवाददाता सदा सभी प्रकारका प्रबन्ध कर सकता है । उसे सिर्फ़ एक दँतखोदनी ही लेकर यात्रा करनी चाहिये"

"परन्तु मेरे पास तो वह भी नहीं है ।"

"कुछ हर्ज नहीं । टेलीफ़ोन तो करो । मैं तुम्हारे लिए टिकट ख़रीद लूँगा । सोने और कपड़ोंका भी प्रबन्ध हो जायगा ।"

× × × × ×

कुछ हफ़्ते बाद डाक्टर हैकेनसा वेसूवियस पर जा पहुँचे । वह वहाँ शहदकी मक्खीकी भाँति अपने कार्यमें तल्लीन हो गये । उन्होंने सिलाससे कहा—

"पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि पहाड़के भीतर द्रव लावाका ठीक स्थान कहाँ है । इसके

लिए मुझे पहले बहुत से छेद करने पड़ेंगे। इस कार्यमें मुझे इस बातसे सावधान रहना पड़ेगा कि कहीं छेद बहुत गहरे न हो जायं नहीं तो उनमें होकर लावा निकल आयेगा। किये गये छेदके तापक्रमसे ही मेरा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा।"

"तो क्या तुम उस स्थानका क्षेत्रफल जानना चाहते हो जहाँ द्रव लावा मौजूद है।"

"हाँ, नल लगानेके लिए मैं सबसे अच्छी जगह चुनना चाहता हूं। मेरा उद्देश्य नेपल्सको गरमी आदि प्राप्त करानेका उतना नहीं जितना कि वेसूवियसको वशीभूत करनेका है, जिसमें न तो उससे ज्वाला ही निकले और न भूकम्प ही हो।"

"तुम उसे कैसे रोक सकते हो?

"भीतरकी शक्तियोंके लिए स्वतंत्र मार्ग देकर। भूकम्प दो ही बातोंसे आता है। या तो ज्वालामुखीके भीतर अवरुद्ध गैस कोई भयङ्कर धड़ाका करती हैं, जिससे पृथ्वी हिल जाती है या ज्वालामुखीसे निकला हुआ लावा अपने पीछे भीतर खोखले स्थान छोड़ आता है और पृथ्वीकी पपड़ी उसके भीतर गिर जाती है। यदि मैं उसके भीतरसे उतनी ही जल्दी गरमी बाहर ले जानेमें सफल हो सकूँ जितनी जल्दी वह वहाँ तैयार होती है तो गैसें ठण्डी हो जायँगी और वह धड़ाका करके बाहर नहीं निकलेंगी। लावा भीतरसे नहीं निकल पायेगा। अतएव उसके भीतर कोई ख़ाली जगह नहीं होने पावेगी। इस प्रकार मैं ज्वालामुखीका फूटना और भूकम्प दोनों बातें बन्द कर दूंगा।"

"ठीक बात है।"

"हाँ, गैसों और लावाके लिए मुझे स्वतन्त्र मार्ग छोड़ देने पड़ेंगे। यदि मैं लावाको स्वयम् उसके स्वतन्त्र मार्गमें ही ठण्डा कर दूँगा तो उसका मार्ग बन्द हो जायगा। इसका परिणाम यह होगा कि अवरुद्ध गैसें ऐसा भारी धड़ाका करेंगी जैसा शायद पहले कभी न हुआ होगा।"

इस बात चीत होनेके दूसरे दिन सिलास नेपल्सके एक होटलमें बैठी थी। उसके पास वहीं डाक्टर हैकेनसा जा पहुँचे। उनके मुखकी आकृति गम्भीर थी। यह देखकर सिलासने पूछा—

"डाक्टर बात क्या है? क्या तुम्हारे कार्य्योंमें कोई बाधा उपस्थित हो गई है?

"बाधा तो कोई नहीं खड़ी हो गई है, पर एक बात ऐसी है जिससे मुझे समझ पड़ता है कि मुझे अपनी स्कीम छोड़ देनी पड़ेगी। मैं अभी वेसूवियसकी वेधशालामें था। वहाँ एक कर्मचारीसे बहुत बातचीत हुई। उसने हमें ज्वालाके रश्मिचित्र (spectroscopic views) और ज्वालामुखीमें होनेवाली हलचलके ग्राफ़ दिखलाये। उसने मुझे यह भी बताया कि वहाँके वैज्ञानिकोंका कहना है कि ज्वालामुखीका स्फोटन शीघ्र ही होनेवाला है। यह घटना तीन महीनेमें हो या शायद वर्ष दो वर्ष ठहर कर हो, पर होगी अवश्य।"

"यदि ऐसा होवे ही तो?"

"अच्छी कही। जितना काम अब तक हो चुका है वह सब ज्वालामुखीके फूटने और भूकम्प आनेसे चौपट हो जायगा।"

"अच्छा, जो धन तुमने इस सम्बन्धमें व्यय किया है वह व्यर्थ जायगा।

"इस बातका निश्चय रहने पर भी कि मुझे लौटकर एक पाई नहीं मिलेगी मैं इस कार्यमें एक करोड़से दो करोड़ डालर तक लगा देता। परन्तु मैं यों ही रुपया फेंकना नहीं चाहता।"

"पर मैं तो यह समझती हूं कि तुम्हारा सारा प्रयत्न ज्वालामुखीका स्फोटन रोकनेके लिए हो रहा है।"

"ज्वालामुखीका स्फोटन रोकना। ऐसी बात तो नहीं है। पर मैं इस प्रश्नकी मीमांसा अवश्य करता।"

एक सप्ताह बाद एक दिन सिलासकी डाक्टर हैकेनसासे फिर भेट हुई। इस बार डाक्टर पहलेसे

भी अधिक उमङ्गमें था। सिलासके देखते ही उसने ज़ोरसे कहा—

"मैं समझता हूँ कि मैंने उस प्रश्नको हलकर लिया है या मुझे यह कहना चाहिये कि उसे तुमने मेरे लिए हल कर दिया है। मैं अब स्फोटनको रोकने जा रहा हूं।"

सिलासने व्यङ्गमें कहा—"क्या यह बात सच है। यदि मेरा विचार मूल्यवान् सिद्ध हो तो तुमको मुझे अपने सलाहकारोंके समूहमें शामिल करना पड़ेगा। मैं समझती हूं कि तुम वेसूवियसको शान्त हो जानेके लिए हुक्म देनेवाले हो। परन्तु क्या तुम्हें उसके मैनेजरका पता मालूम है? क्या तुम स्फोटन रोकनेके लिए चिट्ठी लिखोगे या तार अथवा बेतारका तार दोगे?"

डाक्टरने गम्भीरतासे कहा—मैं उसे बेतार-का तार दूँगा। तुम्हारी सखी मिस ग्लोरियासे ही तार देनेको कहूँगा।

यह कहकर डाक्टर चुप हो गये। इसके बाद कई सप्ताह तक वह अपने कार्यमें इतने अधिक व्यस्त रहे कि उनसे सिलासकी भेंट न हो सकी। उनका अधिकांश समय ज्वालामुखीके मुखपर ही बीत जाता था। उन्होंने सिलाससे कह दिया था कि मेरे कार्यकी बात किसीको न मालूम होने पावे। उन्होंने कहा था—

"यदि नेपल्स निवासी यह जान पावेंगे कि मैं उनके ज्वालामुखीकी स्वाधीनता अपहरण करना चाहता हूँ तो वह मेरी दुर्गति कर डालेंगे। तुम तो जानती ही हो कि मिथ्या विश्वासोंके कारण लोग क्यासे क्या कर गुज़रते हैं। उनकी अपेक्षा पहाड़के निवासियोंको मेरे साथ दुर्व्यवहार करने-के लिए और भी अधिक बहाना है। इससे ज़रा अपनी ज़बान बन्द ही रखना।"

डाक्टर हैकेनसाने पहले ही सरकारसे आज्ञा प्राप्त कर ली थी। उन्हें पहाड़में छेद करके अपना प्रयोग करनेकी अनुमति मिल गई थी। उन्होंने अपना असली उद्देश गुप्त रखा था और यह कहकर अनुमति प्राप्त की थी कि वेसूवियसमें गन्धकका भाण्डार है। इस बातसे तथा मज़दूरों-को ख़ासी मज़दूरी देनेके कारण उनके काममें किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँची। उनका कार्य शीघ्रतासे चलता रहा। एक दिन सिलासके पास आकर उन्होंने कहा—

"सिलास, सब काम ठीक हो गया। मैंने हुक्म दे दिया है। आजसे दो हफ्ते बाद दोपहर को ज्वाला-मुखीका स्फोटन होगा।"

सिलासने आश्चर्य-पूर्वक व्यंगसे कहा—क्या तुम ज्वालामुखीका स्फोटन उपस्थित करना चाहते हो। मैंने तो तुमसे बन्द कर देनेके लिए कहा था।

"हाँ, तुमने तो ऐसा ही कहा था, परन्तु उसके विपरीत कार्य करना मुझे सुगम समझ पड़ा। इसके सिवा स्फोटन होना अवश्यम्भावी था। यह समझ कर मैंने यह उचित समझा कि यदि ऐसा ही है तो वह किसी निश्चित दिन सङ्घटित हो और उसका विस्तार तथा लावाका प्रवाह परिमित हो। मैंने अपने छेदोंसे जान लिया है कि पृथ्वीके गर्भकी शक्तियाँ किस स्थानपर और कैसा कार्य कर रही हैं। खूब ध्यान दे कर समझने पर मैंने पर्वत-मुखमें एक कमज़ोर स्थान बनानेका निश्चय किया है, जिसमें स्फोटन होने पर लावाका प्रवाह उसी दिशाको जाय जहां हानिकी कम सम्भा-वना है। मैं नहीं चाहता कि पम्पाई तथा कोई दूसरा नगर उसके नीचे फिर दब जाय। मेरे मज़दूर उपर्युक्त स्थान बनानेमें लगे हुए हैं और स्फोटन के लिए अब सब कुछ तैयार हो गया है।

"हूँ"

"निस्सन्देह, मैंने यह बात सर्व साधारण पर नहीं प्रकट की है कि मैं इस स्फोटन को सङ्घटित कर रहा हूं। मैंने सिर्फ़ अख़बारों-द्वारा इस बातकी सूचना देदी है कि अमुक दिन अमुक समय पर ज्वाला मुखी फूटेगा। कोई दुर्घटना न हो जाय, इसके लिए पुलिस पहाड़के आस पास किसीको न रहने देगी। इसके सिवा सर्व साधारणको इस

बातकी सूचना दे दी जायगी कि वह अपना घर छोड़ कर खुले स्थानमें चले जांय, क्योंकि भूकम्पके कारण मकानोंके ढह जानेका भय है।"

सिलास ने पूछा—तुम पहाड़को कैसे फोड़ोगे?

"मैंने छेद कर दिया है और उसमें समुचित परिमाणमें स्फोटक पदार्थ रख दिये हैं। यथा समय उसमें आग दे दी जायगी और उनके भभकने पर पृथ्वीके गर्भमें मार्ग हो जायगा; जिससे लावा बह निकलेगा।"

दो हफ़्ते बीत जानेपर ज्वालामुखीके फूटनेका समय आ पहुँचा। कोई दुर्घटना न हो जाय, इसके लिए पूरी चौकसी की गई थी। ठीक दोपहरके समय पहाड़के मुखसे ज्वाला और धुएंका बादल सहसा फूट निकला। पृथ्वी हिलने लगी; जिसके कारण कई मकान धराशायी हो गये। काम हो गया और वेसूवियसको अपने जीवन कालमें एक वास्तविक नियन्ता मिल गया।

उपर्युक्त घटनाके कई महीने बाद जब डाक्टर अपनी प्रारम्भिक प्रक्रिया पूर्ण करनेमें सफल हुए तब वह अन्तमें नेपल्सको प्रकाश, गर्मी आदि बातें प्रदान करनेमें कृतकार्य हुए।

---

## खटिक-साम्राज्य

प्रभुके इस जगत-वैचित्र्यमें आश्चर्यजनक पदार्थोंका उद्घाटन और उनका जीवनपर अद्भुत प्रभाव कौतूहलजनक है। जिन वस्तुओंको हम सामान्य समझते हैं और जिनका मूल्य हम कम समझते हैं उनमें ही एक वैज्ञानिक दृष्टि परमात्माके अटल नियमोंको निहारकर प्रसन्नता प्राप्त करती है। मिट्टीके सामान्य परमाणुओं से ही विद्वान् लोग बहुत लाभ उठाते हैं। खटिकका साम्राज्य संसारमें इतना अधिक है कि साधारणतः इसकी ओर ध्यान भी नहीं जाता है। इसको अंग्रेजीमें केलसियम (Calcium) कहते हैं। जिस प्रकार सोना चाँदी आदि बहुमूल्य धातु अपने अपने गुणोंके लिए प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार यह भी एक प्रकारका मूल्यवान धातु है। यद्यपि इसका मूल्य अलंकार आदिके निर्माणपर निर्धारित नहीं किया गया है तथापि इसका सांसारिक कार्य्यक्षेत्रमें इतना भाग है कि इसकी उपेक्षा करना सर्वथा ही असम्भव है। यह लोहा, तांबा आदि धातुओंके समान कड़ा नहीं होता है। चाकूसे इसके छोटे छोटे टुकड़े कर देना साधारण बात है। यह चाँदीके समान श्वेत होता है।

बहुत कम धातु ऐसे होते हैं जो प्राकृतिक संसारमें अपने मूल स्वच्छ रूपमें विद्यमान हों। खटिक धातु केवल गड्ढा खोदनेसे ही नहीं मिल जाता है और न यह चाँदीके समान चमकता दमकता खानोंके अन्दर पड़ा ही मिल सकता है। यह बहुत से पदार्थोंके अन्दर गुप्त रूप से ही छिपा रहता है, जिसको केवल वैज्ञानिकोंकी प्रज्ञाचक्षु ही देख सकती है। इसके मुख्य दो लवण, खटिक कर्बनेत तथा खटिक गन्धेत बड़े विस्तार से फैले हुए हैं। इन यौगिकोंमें ही खटिककी प्राप्ति होती है। यह दोनों संसारमें अपनी विचित्र लीला द्वारा चित्ताकर्षक कार्य्य कर रहे हैं। इस लेखमें इन्हीं दो का कुछ विवरण दिया जायगा।

खटिक कर्बनेत ऐसी विचित्र वस्तु है कि बहुरूपियोंके समान भिन्न भिन्न अवस्थाओंमें दृष्टिगत होती है। कहीं एक स्थानपर यह खड़िया मिट्टीके रूपमें विद्यमान है तो दूसरे स्थानमें सफेद संगमरमरके चमकीले सुन्दर रूपमें उपस्थित है। इसके रूपान्तर कहीं चूनेके नामसे प्रसिद्ध हैं तो कहीं शंख-भस्मसे विख्यात हैं। इसका एक रूप कलईका चूना कहा जाता है और दूसरा सीपीका चूना। कत्तलका चूना और संग-ए-यहद भी प्रसिद्ध

हैं। संस्कृतमें इसे चूर्ण, शंख भस्म, शक्ति भस्म आदि अनेक नाम दिये गये थे।

खटिक कर्बनेत (चूनेके पत्थर) से खटिक ओषिद (चूना) भी बनाया जाता है। जब चूनेका पत्थर आगमें रखकर फूँका जाता है तो कर्बन द्विओषिद नामकी गैस निकल जाती है और चूना शेष रह जाता है। यह चूना सफेद रंगका होता है। चूना अग्निमें नहीं पिघलता है, उज्जन तथा ओषजनकी ज्वालामें यदि यह चूना तपाया जाय तो बड़ा तीव्र प्रकाश देगा। यह चूना पानी अथवा कर्बन गैससे विशेष प्रेम रखता है और इन दोनों पदार्थोंसे मिलनेमें बड़ी शीघ्रता दिखाता है। कर्बन गैसके सहयोगसे यह कर्बनेतमें और जलके सम्बन्ध से उज्ज-ओषिदमें परिवर्त्तित हो जाना इसके लिए साधारण सी बात है। त्वचाको काट देनेमें यह विशेषतया सफलीभूत हुआ है। अधिकतर चूनेसे काम करनेवाले लोगोंके हाथ पैर आदि फट जाते हैं तथा जिनको चूनेमें कार्य्य करनेका अभ्यास नहीं है उनके लिए तो यहाँ तक कठिनता है कि यदि वह नंगे पैर चूनेसे बने आंगन पर चलें तो उनके पैर फट जाते हैं। यह चूना जीवाणुओं-के संहार करनेमें बड़ा उपयोगी है। इसी कारण दीवारें इससे पोती जाती हैं। कभी कभी मकानकी देहरीके आगे चूना विशेष कर इसीलिए बिछा दिया जाता है कि जूतोंके साथ आगत कीटाणु, जिनसे रोगादिके फैलनेकी आशङ्का रहती है,मरजायँ और मनुष्य भयंकर प्रकोपसे सुरक्षित रह सके।

खटिक कर्बिद (calcium carbide), जो असीटलीन (Acetylene) गैसके बनानेमें काम आता है, इसी चूनेसे बनाया जाता है। इसको सबसे पहले पातालवासी विलसनने १८६२ ई० में बनाया था और फ्रांसके मोअसाँ नामी वैज्ञानिकने भी इसके निर्माणमें सफलता प्राप्त की थी। चूना और कर्बनको साथ साथ रखकर बिजलीकी भट्टी द्वारा इतना ताप पहुँचाया जाता है कि दोनों मिलकर खटिक कर्बिदके रूपमें परिवर्त्तित हो जाते हैं।

चूने और पानीके संयोगसे खटिक उज्जओषिद बनाते हैं और हरिन (chlorine) गैसके संयोगसे इसका विरंजक चूर्ण बनता है, जिससे वस्तुओंके रंगोंको उड़ानेमें सरलता होती है। यह चूर्ण संसारके व्यापारमें विशेष महत्व रखता है। चूना शीशा बनानेमें भी काम देता है।

यह लगभग प्रत्येक वृक्ष तथा पौधेके भस्ममें विद्यमान रहता है और खाद आदिके लिए विशेष कर उपयोगी है। रंगके बनानेमें भी यह सहायक होता है, और चित्रकारोंके लिए भी उपयोगी है। नीलके काम करनेवाले इसका लाभ विशेषतया जानते हैं। इसके अतिरिक्त भारतवर्षमें चूनेका महत्व इसलिए और भी अधिक है कि पानमें इसका उपयोग करते हैं और आदर तथा सम्मानार्थ चूनेना युक्त पानकी भेंट करते हैं। चूनेसे उत्पन्न उज्ज-ओषिद या चूनेका पानी ओषधिमें तो प्रयुक्त होता ही है पर हमारे वैज्ञानिक प्रयोगोंमें भी बहुत सहायक होता है।

हम यह कह चुके हैं कि चूनेका अस्तित्व खटिक कर्बनेतके ही ऊपर निर्भर है। यह खटिक कर्बनेत भारतवर्षमें तीन रूपमें मिलता है। १. चूनेका पत्थर, जिसमें संगमरमर आदि रूपमें सम्मिलित हैं; २. कंकड़के स्वरूपमें; ३ शंख सिपी तथा मूंगेके रूपमें।

संगमरमरके बने हुए सुन्दर सुन्दर भवनोंसे भारतके अनेक नगर सुसज्जित हैं। बंबई और सिंधके मनोहर निकेत सुन्दरताके प्रमाण हैं। पोरबन्दरके चूनेके चित्ताकर्षक पत्थर जो काठियावाड़से बम्बई पहुँचाये गये हैं अनेक विशाल ग्रहोंके बनानेमें प्रयुक्त हुए हैं। कडापा, कर्नल और गंटूरकी शिलाओंसे निर्मित सदन अवलोकनीय हैं। कटनीकी वज्र शिलाओंसे नागपुर और वारधाके रमणीय स्थान बनाये गये हैं। संयुक्त प्रान्तमें मिरजापुरके पत्थर प्रसिद्ध हैं। वृन्दाबनके संगमरमरके बने हुये विचित्र मन्दिर, आगरेके राजगृह, देहलीकी कलाकुशलता इन पत्थरों पर निर्भर है।

खासिया और जैन्तिया पहाड़ियोंके पत्थर भी उल्लेखनीय हैं।

विशेषकर यह पत्थर इन स्थानोंसे प्राप्त होते हैं—१. हिमालयसे पत्थरोंके ढेरके ढेर फूँक कर और चूना बनाकर संयुक्तप्रान्त तथा पंजाबको भेजे जाते हैं। २. रोहतासगढ़से सोन नदी द्वारा भी पत्थर भेजे जाते हैं। बिस्ता और सिंह-भूमिके पत्थर कलकत्तामें आने लगे हैं। ३. सतना-के, जो रींवा राज्यके अन्तर्गत है, समीपवर्ती स्थान कटनी और जबलपुरसे भी पत्थर भेजा जाता है। यहांका पत्थर सर्वोत्तम समझा जाता है और कलकत्ते तक इसका व्यापार है। यहां चूना भी बहुत उच्च श्रेणीका पकाया जाता है। ४. सिलहटमें, जो खासिया और जैन्तिया पहाड़ियोंके निकट है, पत्थर बहुत अधिक मात्रामें विद्यमान है और पहले कलकत्ते तथा दक्षिणी बंगाल को यहींसे पत्थर जाता था और अब भी बहुत जाता है। ५. पोर्ट ब्लायरके निकट अन्डमनसे पत्थर आता है। इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से ऐसे स्थान हैं जहां चूना और पत्थर दोनोंका व्यापार होता है। इन दोनोंके ऊपर देशकी शोभा निर्भर है।

दूसरे प्रकारका कर्बनेत कंकड़के रूपमें हमारे सामने आता है। यह कंकड़ भी मनुष्यके लिए लाभदायक है। सड़कोंपर कंकड़ कुटते किसने न देखा होगा। बालू मिलाकर इसका चूना भी बनाया जाता है। मकानोंमें भी इसका उपयोग होता है। कहीं कहीं यह कंकड़ एक बड़े समूहमें प्राप्त होते हैं। ऐसे पत्थर स्वरूपी कंकड़ भवन निर्माणमें सहायक होते हैं। गंगा-नहरमें इनका उपयोग किया गया था। प्रश्न यह हो सकता है कि कंकड़ किस प्रकार पैदा होते हैं। इसका उत्तर केवल जलवायुका परिवर्तन ही है। पृथ्वीमें पत्थर होनेके कारण खटिक कर्बनेतका होना स्वाभाविक ही है। जब पानी सूख जाता है तो यह कर्बनेत मिट्टीके अन्य कणोंके संसर्गसे कंकड़के रूपमें परिवर्तित हो जाते हैं। कंकड़के तत्वोंमें कोई नियमित रूपसे सम्मेलन नहीं होता है। ऊसर भूमिमें ये अधिक मात्रामें पाये जाते हैं। कंकड़ोंमें लगभग ५५% ही कर्बनेत होता है।

अब हम तीसरे रूपकी ओर आते हैं। शंख, सीपी, मूंगा आदि ऐसे पदार्थ केवल समुद्रके तट-पर ही मिल सकते हैं। बर्मा और दक्षिण भारतके निकटस्थ समुद्रोंकी कृपाका फल ही है कि इनसे चूना अधिक मात्रामें मिल जाता है। इनमें लगभग ६७% खटिक कर्बनेत होता है। सीपी, मूँगादि अनेक भांतिके देखे गये हैं। वास्तवमें यह जीवित पशुओंकी मुर्दा ठठरी हैं। सामुद्रिक जलमें खटिक कर्बनेतकी मात्रा समुचित रूपमें विद्यमान है। यह जीवित पशु इसका ही आहार करते हैं और उनका शरीर इस कारण इसका ही बना होता है। इनका आखेट इस संसारमें बहुधा हुआ करता है। भारतमें तो इनकी मात्रा इतनी नहीं विद्यमान है, जितनी अन्य देशोंमें है।

इसके साथ ही साथ खड़ियाका भी उल्लेख कर देना आवश्यक प्रतीत होता है जिसमें इस मिट्टी-के विषयमें भी कुछ परिचय प्राप्त हो जाय, क्योंकि यह भी खटिक कर्बनेत ही है। यह भारतमें ही नहीं, संसारके सम्पूर्ण मुख्य देशोंमें समुचित मात्रामें पाया जाता है। इसकी उत्पत्ति अन्य पदार्थोंके समान भूमिमें नहीं होती है, वास्तवमें यह समुद्रका ही कार्य्य है कि संसारके अन्दर सफ़ेद मिट्टीके दर्शन सुलभ हो रहे हैं। यह खड़िया मिट्टी भी सीपी, मूँगे आदिकी भांति छोटे छोटे जीवोंके शवोंकी बनी है। इस बातका अनुमान लगाया गया है कि लगभग एक घन इञ्च मिट्टीके अन्दर कमसे कम दस लाख जीवोंके घर होंगे। जब समुद्र-की तलैटीमें इस प्रकारकी मिट्टीके ढेरके ढेर इकट्ठे हो जाते हैं तब एक समय आता है जब समु-द्रका जल दैवगतिसे उस ओरसे हट जाता है और खड़ियाके पहाड़के पहाड़ दिखाई देने लगते हैं। सचमुच यह आश्चर्यकी बात ही है कि अत्यन्त छोटे

छोटे जीवोंने चूनेके छोटे छोटे कणोंको एकत्रित करके इस मिट्टी पहाड़के पहाड़ बना दिये हैं।

यह तो इस कर्बनेतकी कथा हुई। इस समय यह बात विषय से बाहर न होगी यदि कुछ वर्णन चूने अथवा सीमेंटका भी कर दिया जाय, जिनसे मकान आदिमें ईंटें तथा पत्थर जोड़नेमें सहायता मिलती है। यह चूना, पानी और बालूके संयोगसे तैयार किया जाता है। जब पानी और चूना मिला कर लेई सी बनाई जाती है तो सूखने पर उसमें दरारें पड़ जाती हैं, पर बालू या ईंटका चूर्ण ( सुरखी ) मिला देनेसे यह दोष मिट जाता है। सीमेंट कई प्रकारकी होती है पर पोर्टलेंड सीमेंट विचारणीय है इसमें १०से २५ प्रतिशतकके लगभग अलमूनिया मग्ने सियम (Mg), शिलाकन ( Si )केओषिद, तथा६५ से ८० प्रति शत खड़िया या चूना, २० से ३५ प्रतिशत मिट्टी और ३ से १४ प्रतिशत लोहेका ओषिद विद्यमान रहता है। मद्रास और बंगालमें इसका व्यापार अच्छा है।

इसके अतिरिक्त शुद्ध चूनेमें माँड (चावल का पानी ) मिलाकर एक प्रकारका सीमेंट बनाया जाता है जो बाजोंकी जुड़ाईमें काम आता है। यदि आटा पानीमें गूँध कर चूनेमें मिलाया जाय तो लकड़ीकी चीज़ोंको जोड़ने हेतु अच्छी सीमेंट बनती है, जिससे वस्तुएँ नमीसे बच सकती हैं। इस कर्बनेतको अब हम यहां ही समाप्त करते हैं।

खटिक गन्धेत जिसमें जलका अंश भी विद्यमान रहता है जिप्सम कहलाता है। इसको गरम करनेसे जलके अंश निकल जाते हैं और चूर्ण ही शेष रह जाता है। यदि इसमें फिर पानी मिलाया जाय तो यह फूल जाता है और यह मकानोंमें लगाने, शीशे पर धातु जोड़ने, चित्रों ( models ) के ढांचे बनाने आदिके काममें आता है। इसे प्लास्टर आव् पैरिस (Plaster of Paris) कहते हैं। भारतमें यह गच के नामसे प्रसिद्ध हैं।

इस प्रकारसे खटिक साम्राज्यकी दुन्दभी संसार के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक बज रही है। इससे बने पदार्थ जगतके सौन्दर्यमें विशेष सहायक हुए है।

—सत्यप्रकाश विशारद

---

# भीषण स्वप्न

[ ले०—डा० रामजीवन त्रिपाठी, एल.एम. एस. (नेशनल) ]

( १ )

पन्द्रह वर्ष व्यतीत होगये, पर अब भी उस भीषण घटनाकी याद हृदयको कभी कभी दहला देती है। आह! वह कैसी भयङ्कर घटना थी।

उस समय मैं मेडिकल कालेजके फ़ोर्थ ईयरमें पढ़ता था। नई जवानी और बढ़ता हुआ हौसला; नई उमंगें और नये विचार; बढ़ते हुये खूनका जोश और असाधारण स्फूर्त्ति अवश्य ही इन सबने मुझमें एक नये जीवनका संचार कर दिया था। शरीर शास्त्र (Anatomy and Physiology) में मेरी विशेष रुचि थी। कालेजके समयके पश्चात् मृतदेह (Dead body) की चीरफाड़ मुझे अतीव रुचिकर प्रतीत होती थी।

इस प्रकार मैं जीवनके तीक्ष्ण प्रवाहमें फँसा हुआ बह रहा था।

( २ )

छुट्टीका दिन और फ़ुर्सतका समय; सब विद्यार्थी अपने अपने मनके अनुसार छुट्टीका आनन्द ले रहे थे, परन्तु मैं ? मैं अपनी ही धुनमें मस्त एकान्तमें बैठा हुआ मनुष्य मस्तक सम्बन्धी कुछ विशेष क्रियाओंके करनेमें संलग्न था।

इधर उधर चीर फाड़के औज़ार ( Surgical Instruments ) और सामने अधकटा मृत शरीर यह मेरे कमरेका प्रधान दृश्य था।

बाएँ हाथकी ओर एक छोटी कोठरी थी, जिसमें मेरे अब तकके चीरे हुये नर कंकाल (Skeleton) सजाये हुये थे।

मैं सारा दिन काम करता रहा। शाम हुई, रात हुई, क्रमशः रात्रिने भयङ्कर रूप धारण किया। धीरे धीरे वृष्टि भी होने लगी। बादलोंकी गरज और बिजलीकी चमकसे प्रकृतिका दृश्य और भी वीभत्स होगया। परन्तु मेरा इस ओर ध्यान नहीं था। मैं उस समय भी नीरव, निःस्पन्द हो निर्निमेष लोचनोंसे कटे हुये मस्तिष्क को देख रहा था।

शरीर शास्त्रकी पुस्तकोंने मुझे बताया है कि दिमाग़के ख़ाकी माद्देमें बहुत से उठाव जिनको कन्वोल्युशन (Convolution) कहते हैं, पाये जाते हैं और इस कन्वोल्युशनको एक प्रकारकी खालियां जिनका नाम सलकस (Sulcus) हैं, अलग अलग करती हैं। सलकसोंकी गहराई क़रीब एक इंचके होती है।

जिस मस्तिष्कमें ज़्यादा कन्वोल्युशन और गहरी सलकसें होती हैं, वह विशेष बुद्धि सम्पन्न होता है। परन्तु क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता कि हम किसी तरह इन कन्वोल्युशनोंकी संख्या और सलकसोंकी गहराई बढ़ाकर प्रत्येक मनुष्यको बुद्धि सम्पन्न बना सकें ?

सामने एक दुर्भेद्य फाटक बन्द था और मैं उसके चारों ओर पागलकी भाँति चक्कर लगा रहा था।

( २ )

लगातार काम करते करते शरीर और मन शिथिल हो गये। मुझे एक प्रकारकी तन्द्राने आ घेरा।

मैं कितनी देर तक इस अवस्थामें रहा, यह नहीं कह सकता। एकाएक मेरे बाएँ तरफ़की कोठरीके किवाड़के धीरे धीरे खुलनेकी आवाज़से मेरी नींद टूटी। यह वही कोठरी थी, जिसमें मेरे सजाये हुये नर कंकाल थे। उस समय भी मैं अर्द्ध निद्रित अवस्थामें था। कमरेमें बिजलीका स्वच्छ प्रकाश फैल रहा था। सामने देखा, वे ही बिखरी हुई पुस्तकें, वही अधकटा मृत शरीर और वे ही औज़ार।

दृष्टि अब बन्द होगई थी, परन्तु घोरनिस्तब्धता थी। समस्त संसार मानों शून्यके गम्भीर समुद्रमें गोता लगाये हुये था।

परन्तु ओह इधर यह क्या ?

जो असम्भव था, वही सामने आया, जो बात आधुनिक विज्ञानके सर्वथा विरुद्ध थी, वही प्रत्यक्ष दिखाई देती है। बड़े बड़े सायंसके पोथोंमें जो कहीं भी नहीं लिखा, वह मैं आँखोंसे देख रहा हूँ।

कैसा भीषण व्यापार।

( ४ )

मैंने देखा, धीरे धीरे एक नर-कंकाल आकर किवाड़ोंके सहारे खड़ा हुआ। उस घोर निस्तब्ध रात्रिमें, उस एकान्त कमरे में, बिजलीके स्वच्छ प्रकाशमें वह मांस-चर्म-विहीन अस्थि-कंकाल मुझे अतीव भयङ्कर दिखाई दिया।

एक तरफ़की खिड़कियाँ खुली थीं। मैंने देखा कि आकाश मेघाच्छन्न है, बीच बीचमें एक दो क्षीण-ज्योति तारे अपनी रोनी सूरतसे टिम टिमा रहे थे।

पर बापरे बाप ! इधर यह क्या ? कंकाल अब भी अपनी उसी शानसे खड़ा था। उसके नीचेकी ठुड्डी ( Inferior maxillary ) कुछ नीचे लटक गई थी और उसके तीक्ष्ण दाँतोंकी दोनों पंक्तियाँ स्पष्ट दिखाई देती थीं। मानों वह मुंह बाये मुझीको ग्रास करनेकी प्रतीक्षामें खड़ा था। मैं अवाक् ! भयसे विह्वल और जीवनसे निराश हो गया ! कैसा भयङ्कर समय था !

लोग परीक्षामें जो चाहें सो कहें, परन्तु भयका सामान उपस्थित होनेपर धोती ढीली हो जाती है। आज मैंने जाना कि मैं भी उसी श्रेणीका आदमी हूं। आधुनिक विज्ञानका पक्ष लेकर मैं भी भूत-कथाओंको कई बार निर्मूल सिद्ध करनेकी चेष्टा कर चुका हूं। ज्ञात होता है, दैवही मेरे प्रतिकूल है।

एक बार मैंने अपने हृदयको मज़बूतीसे थाम कर कहा। मैं सायंसका ज्ञाता और मेडिकल कालेजका एक बहुत ही होशियार विद्यार्थी हूँ। तिसपर

भी यह कंकाल मेरा ही बनाया हुआ है! इसके द्वारा मेरी क्या हानि हो सकती है!

कहनेको तो मैं यह कह गया, परन्तु देखा, मेरा हृदय ( Heart ) बड़े ज़ोरसे उछल रहा था।

एकाएक उच्च अट्टहास्य-ध्वनिसे कमरा गूँज उठा। उस भयङ्कर हँसीने मेरे कानके पर्दे फाड़ डाले। वह दिग-दिगन्त व्यापिनी भीषण हँसी मेरे रोम रोममें घुसकर सहस्र सर्प-दंशनवत् पीड़ा देने लगी। वह भीषण हँसी प्रलय-कालीन मेघगर्ज्जन-की भाँति दसों दिशाओंमें व्याप्त हो गई।

ओफ़! कैसी भयोत्पादक हँसी थी!

( ५ )

राम, राम! कैसी जटिल समस्या है! अब कंकालने और मुंह चौड़ा किया, अब उसमेंसे आवाज़ भी निकलने लगी।

कैसा आश्चर्य्य है!

इसमें स्वर-यन्त्र ( Larynx ) नहीं, स्वर यन्त्र-च्छद ( Epiglottis ) नहीं, और श्वास नलीका (Trachea) भी पता नहीं, फिर यह आवाज़ कैसी? मैंने स्वयं अपने हाथसे यह सब चीज़ें काट काट कर निकाल दी थीं। तब मैं यह क्या सुन रहा हूँ?

परन्तु मुझे अच्छी तरह सोचनेका मौक़ा भी न मिला, भयङ्कर बज्र-निर्घोषकी भाँति आवाज़ आईः—

"तुच्छ-बुद्धि मनुष्य!"

आह! मेरी तो आधी जान निकल गई। सारा कमरा गूँज उठा। कोने कोनेसे प्रति ध्वनि हुई।

"तुच्छ-बुद्धि मनुष्य।"

सामने बिखरी हुई पुस्तकों ने कहा—

तुच्छ-बुद्धि मनुष्य।

पास पड़े हुये औज़ार भी झनझना उठे—

तुच्छ-बुद्धि मनुष्य।

अधकटे मुर्दने भी स्वरमें स्वर मिलाया।

तुच्छ-बुद्धि मनुष्य।

कमरेकी प्रत्येक चीज़ खिल खिला उठी, और सबने उसीमें योग देते हुए एक स्वरसे कहा—

"तुच्छ-बुद्धि मनुष्य।

तू यह सब क्या खेल कर रहा है? दुनियांके हर एक प्राणीको बुद्धि-सम्पन्न करके ईश्वरके नियमोंको उलट देना चाहता है? यह तेरी हिमाकत है।"

मैंने अपनी बिखरी हुई शक्तिको एकत्र कर कहाः—यदि ऐसा हो जाय तो कैसा अच्छा हो?

"परन्तु यह सब कब सम्भव है कि सब प्राणी एकसां हो जायं" अस्थिपंजरमेंसे आवाज़ निकली। मैं बोला—"मगर मैं तो किसीको कष्ट नहीं देता। अकेला बैठा बैठा प्रयोग करता हूँ, इसमें किसीका क्या नुक़सान है?"

किसीका क्या नुक़सान है? प्रेत-मूर्त्ति गरज उठी, "किसीका क्या नुक़सान है? अरे बेवक़ूफ़, क्या तुझे मालूम नहीं कि अब तक तूने कितने मनुष्योंके मृतशरीर काट छाँट डाले; ईश्वरके बनाये हुये कितने पुतलोंकी दुर्गति कर डाली?" नर कंकालने और भी तीव्र स्वरमें कहना शुरू किया, "एक मेरी तरफ़ देखो। मैं भी तुम्हारी ही भाँति मनुष्य था, तुमसे कहीं सुन्दर था, अचानक नदी प्रवाहमें मेरी मृत्यु हुई और संयोग-वश मेरा मृत शरीर तुम्हारे हाथ आ गया। तुम्हें क्या अधिकार था कि तुम मेरी देहकी इस प्रकार मिट्टी पलीद करते? ज़रा सोचो तो, यदि तुम्हारा कोई सम्बन्धी मेरी ही भाँति मृत अवस्थामें तुम्हारे पास लाया जाता, तो क्या तुम उसकी भी ऐसी ही दुर्गति करते? कैसी हृदय हीनता है! कैसी निष्ठुरता है!"

"अच्छा तो अब तुम्हारी इच्छा क्या है?" मैंने डरते डरते पूछा।

कंकालने कर्कश ध्वनिमें उत्तर दिया, "इच्छा इच्छा पूछता है? ओ अभिमानी मनुष्य! मैं तुझे अपनी इच्छा बतलानेके लिए ही यहाँ आया हूँ। क्या तुझे मालूम नहीं कि शरीरकी सद्गति न होने-

से आत्माकी भी मुक्ति नहीं होती ? तुम्हारे ही जैसे सिद्धान्तवाले बड़े बड़े विज्ञानाचार्योंने आधुनिक विज्ञानके द्वारा ही छाया मूर्त्तियोंका अस्तित्व स्वीकार कर लिया है, और बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें कहा है कि "इह लोकके साथ मृत्युके पश्चात् भी आत्माका घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है, और विशेष विशेष अवसरों पर आत्मा अपने प्राचीन स्थानके चारों ओर मँडराया करती है"। यह जान कर क्या तुमने कभी इस बात पर भी विचार किया है कि उनको कितना कष्ट होता है ? ज़रा विचार कर, कि अब तक तूने कितनी आत्माओंको असह्य कष्ट दिया है ? एक बार नज़र उठाकर तू अपनी इस कोठरीकी ओर तो देख। देख, तूने कितने नर कंकाल, कितने अस्थिपंजर सजाये हैं ! क्या इनकी आत्माएँ तुझे श्राप नहीं दे रही हैं ? अच्छा अब तू अपने पापका प्रायश्चित्त करनेको तैयार हो जा।"

आह ! मैं कैसी भयङ्कर अवस्थामें फँस गया था ! अवश्य ही यह मेरे जीवनकी अन्तिम घड़ी है। साक्षात् काल सामने मुँह बाये खड़ा है।

( ६ )

मैं अब तक कालेज भरमें असाधारण साहसी प्रसिद्ध था, पर अब मेरा वह साहस कहाँ है ? ओफ़ ! कैसे कायरकी भाँति जान देनी होगी ? अन्तमें क्या मेरे भाग्यमें यही लिखा था ?

अब वह भयङ्कर वस्तु फिर गुर्राई—मरनेके लिए तैयार हो जा, ओ अहङ्कारी जीव !

कैसा भीषण कष्ट था !

मुझसे सिर्फ़ ६ फुटके अन्तर पर सशरीर मृत्यु खड़ी थी।

क्रमशः अस्थिपंजर मेरी ओर अग्रसर हुआ। कैसा भयानक दृश्य था !

उसकी हड्डी हड्डीसे आगकी लौएँ निकल रही थीं। अब मृत्युमें कुछ सन्देह नहीं रहा। परन्तु आख़िरी प्रयत्न ! हाँ, आख़िरी प्रयत्न !

मैं अपना सब बल इकट्ठा करके चिल्लायाः—

"बचाओ।"

परन्तु आह ! यह क्या ? एकाएक दृश्य बिलकुल बदल गया, यहाँ तो कुछ भी नहीं। न वह अस्थिपंजर है और न किसी प्रकारका डर। हैं, केवल वही पुस्तकें, वही औज़ार और वही अधकटा मृत शरीर।

तब यह क्या था ? स्वप्न ! केवल मिथ्या स्वप्न ! परन्तु कैसा—

"भीषण स्वप्न !"

---

# शरीरका रासायनिक संगठन और खाद्य पदार्थों का आपेक्षिक मूल्य

रासायनिक परीक्षा करनेसे शरीरमें दो प्रकारके पदार्थ मिलते हैं—१. खनिज या अनांगारक और २. जैव जांतव या आंगारक। आंगारक पदार्थ जैव इसलिए कहलाते हैं कि वह केवल सजीव सृष्टि ( अर्थात् वनस्पतियों और प्राणियोंमें ) ही पाये जाते हैं; निर्जीव सृष्टि ( जैसे कंकर पत्थर ) में नहीं। शरीरके खनिज पदार्थोंमें जल अमोनिया गैस, नमकका तेज़ाब और भांति भांतिके लवण सम्मिलित हैं। जैव पदार्थोंमें कर्बन अवश्य पाया जाता है। यह दो प्रकारके होते हैं—१ नत्रजनीय और २ अनत्रजनीय। नत्रजनीय पदार्थोंमें कर्बनके अतिरिक्त नत्रजन होना भी आवश्यक है जैसे कई प्रकारकी प्रोटीनें, यूरिया, यूरिक अमल। अनत्रजनीय वर्गमें वह पदार्थ शामिल है, जिनमें नत्रजन नहीं होती, जैसे वसा (चरबी), शर्करा (शकर), श्वेतसार (मांड)। उपर्युक्त वर्णनसे विदित हुआ कि शरीरमें पाँच प्रकारके पदार्थ मिलते हैं—१ प्रोटीन, २. वसा, ३. कर्बोज्ज जैसे शकर, ४. लवण और ५. जल इनका वर्णन अब क्रमानुसार किया जाता है।

### प्रोटीन

विश्लेषण करने पर इनमें यह मौलिक पाये जाते हैं—कर्बन, उज्जन, ओषजन, गंधक, नत्रजन तथा स्फुर। सौ भागोंमें प्रायः कर्बनके ५४, ओषजनके २२, नत्रजनके १६, उज्जनके ७ और गंधकका १ भाग होता है। इन मौलिकोंके परस्पर रासायनिक संयोगसे बने हुए विचित्र यौगिकको प्रोटीन कहते हैं।

प्रोटीनें कई प्रकारकी होती हैं। कुछ जलमें घुलनशील हैं, कुछ नहीं। गरम करनेसे बहुत सी प्रोटीनें (या उनके घोल) जम कर सख़्त हो जाती है। अंडेकी सफ़ेदी एक प्रकारका प्रोटीन है। यदि अंडेकी सफ़ेदी या उसका घोल एक कांचकी नलीमें लेम्पके ऊपर गरम किया जाय तो वह जम कर सख़्त हो जायगा और उसके छिछड़े नलीकी दीवारसे चिपक जायंगे।

प्रोटीन शरीरके प्रत्येक सेलका आवश्यक घटक है। जीवित प्राणीके शरीरमें प्रोटीन और ओषजनके संयोगसे ओषिदीकरण नामक रासायनिक क्रिया होती रहती है, जिसका परिणाम यह होता है कि प्रोटीनसे यूरिया यूरिक अम्ल, अमोनिया, जल इत्यादि नये नये पदार्थ बन जाते हैं और साथ ही उष्णताके रूपमें शक्ति भी उत्पन्न होती है। स्वस्थ मनुष्यके मूत्रमें प्रोटीन नहीं होता। वृक्क प्रदाह या हृदयके रोगमें मूत्रमें एक प्रकारकी प्रोटीन आने लग जाती है। यह मूत्रमें घुली रहती है। मांस, अंडा, दूध, और गेहूँ चने इत्यादिमें प्रोटीन पाई जाती है।

### वसा (चरबी)

वसामें तीन मौलिक होते हैं—कर्बन, उज्जन और ओषजन। वसा अत्यन्त दहनशील होती है और प्रोटीनके समान शरीरके भीतर ओषिदीकरण द्वारा उष्णताके रूपमें शक्ति उत्पन्न करती है और साथ साथ कर्बन द्विओषिद गैस और जलके रूपमें परिणत हो जाती है। एक ग्राम (लगभग एक माशा) वसाके पूर्ण ओषिदीकरणसे उतनी उष्णता पैदा होती है कि यदि वह जल गरम करनेके काममें लाई जावे तो ६४०० माशे जलका तापक्रम एक दर्जा शतांश बढ़ादे, यदि जलका तापक्रम ३७° श था तो अब ३८° श हो जावेगा।

### कर्बोज

इन पदार्थोंमें भी वसाकी भाँति तीन ही मौलिक होते हैं—कर्बन, उज्जन और ओषजन। कर्बोज श्रेणीमें शर्करा, मंड, ग्लाईकोजन (प्राणियोंके शरीरका कर्बोजेत) सम्मिलित हैं। लकड़ी वा शाकोंके रेशे एक प्रकारके कर्बोजसे ही बनते हैं। इसको 'सेल्युलोज़' या 'काष्ठोज' कहते हैं। प्राणियोंके शरीरमें कर्बोजेत श्रेणीके दो ही पदार्थ पाये जाते हैं—१ शक्कर या शर्करा, २. ग्लाइकोजन। शर्कराजन मंड और काष्ठोज प्राणियोंके शरीरमें नहीं होते। यह चीज़ें वनस्पतियोंमें पाई जाती हैं।

कर्बोजेतके ओषिदीकरणसे कर्बन द्विओषिद, गैस, जल और शक्ति उत्पन्न होती है। वसाकी अपेक्षा उष्णता कम बनती है।

शर्कराके रूपमें कर्बोजेत भिन्न भिन्न पदार्थोंमें पाया जाता है—जैसे दूध, अँगूर, गन्ना, इत्यादि। मंड वनस्पति वर्गमें बहुत पाया जाता है। चावलका अधिकांश मंड ही होता है। गेहूँका छिलका उतार दिया जाय तो भीतरसे जो श्वेत द्रव्य निकलेगा उसका अधिकांश मंड ही होगा। मंडके दाने अति सूक्ष्म (अणुवीक्ष्य) होते हैं और हर दाना काष्ठोजकी कई तहोंसे घिरा रहता है।

मंड ठंडे पानीमें अनघुल होता है। उबलते हुए पानीमें वह घुल जाता है। खनिज अम्लोंके साथ मंडको गरम करनेसे अंगूरी शकर बन जाती है।

### लवण

शरीरमें कई प्रकारके खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। यह सोडियम, पोटाखियम, मग्नीसियम, खटिक इत्यादिके लवण होते हैं। अस्थिमें खनिज पदार्थ अधिक होते हैं।

### जल

जल, ओषजन और उज्जनके रासायनिक संयोग

से बनता है। शरीरके १०० भागोंमें ६४ भाग (दो तिहाईके लगभग) जलके होते हैं, रक्त और लसीका-का अधिक भाग जल होता है।

खाद्य पदार्थों (भोजन) का रासायनिक संगठन

भोजनसे शरीरके सेलोंकी क्षतिपूर्ति वा वृद्धि और शरीरकी रक्षा तथा कार्य संचालनके लिए शक्ति पैदा होती है। खाद्यके मुख्य अवयव वही पदार्थ होते हैं जो शरीरमें पाये जाते हैं अर्थात् प्रोटीन, वसा स्नेह, कर्बोजेत, लवण, जल।

अच्छे भोजन के लक्षण

१. अच्छे भोजनमें मूल अवयवोंकी मात्रा शरीरकी आवश्यकताके अनुसार यथेष्ट परिमाणमें होती है।

२. भोजन जल वायु और मनुष्यके स्वभाव और प्रकृतिके अनुकूल होना चाहिये। आयु, ऋतु, मनुष्यका भार, शारीरिक और मानसिक परिश्रम, स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य इन बातोंका भी ध्यान रखना चाहिये।

३. भोजन ऐसा होना चाहिये कि बहुत अच्छी तरह और सहजही पच सके।

भोजनके मूल अवयव कितने खाने चाहियें?

मामूली मानसिक और शरीरिक परिश्रम करने-वाले मनुष्यको जिसका भार डेढ़ मनके लगभग हो, मूल अवयव निम्नलिखित परिमाणमें खाना चाहिये—

| | |
|---|---|
| प्रोटीन | ७०—८६ माशे |
| वसा (स्नेह) | ८६ माशे |
| कर्बोजेत | ३२०—२६० माशे |
| लवण जल | यथेष्ट परिमाण |

इनमेंसे प्रोटीन शरीर निर्माणके लिए और वसा और कर्बोजेत शरीरमें शक्ति उत्पन्न करनेके लिए आवश्यक हैं। कर्बोजेत और वसा एक दूसरे के बदले काम दे सकते हैं। पर प्रोटीनका काम वसा और कर्बोजेत नहीं दे सकते। नत्रजनीय पदार्थोंमें प्रोटीन अवश्य होना चाहिये, विशेष कर वर्धन कालमें (पचीस वर्षकी आयु तक)। यदि पचीस वर्षसे पूर्व प्रोटीन कम मिले तो वृद्धि अच्छा नहीं होता। जो जातियां प्रोटीन कम खाती हैं वह कम-ज़ोर होती हैं।

इन तीनों मूल अवयवोंके अतिरिक्त हमारे शरीरको जल और भांति भांतिके लवणोंकी भी आवश्यकता होती है। शरीरके प्रत्येक सेलमें किसी न किसी प्रकारके लवण पाये जाते हैं। अस्थियां लवणों-के बिना (खटिक यौगिक) मज़बूत नहीं बनतीं। रक्तके कण रंजकोंके लिए लोह संयोजितकी आव-श्यकता है। लवण और जल शक्ति उत्पन्न करने-के काम नहीं आते। खनिज लवणों—जैसे खानेका नमक, खटिक, फोस्फेत, कर्बनेत, लोहके लवण—के अतिरिक्त शरीरको आंगारिक लवणों और अम्लोंकी आवश्यकता है। उनके बिना स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता।

वाइटामीन या जीवामीन*

अबसे कुछ दिन पहले तक (Caloric Theorst) अर्थात् खाद्य पदार्थोंके तापोत्पादक शक्ति अथवा बलो-त्पादक क्षमताके आधार पर ही उनकी उपयोगिता अवलंबित समझी जाती थी और उन पदार्थोंको, जो प्रत्यक्ष रीतिसे शरीर निर्माण अथवा शक्ति-उत्पादनके काम नहीं आते, जैसे लवणइत्यादि भोजनमें अधिक महत्वका स्थान नहीं दिया जाता था। पर हालमें विद्वानोंने जो अनुसंधान किये हैं उनसे यह सिद्ध हो गया है कि प्रोटीन, वसा और कर्बोजके समान ही शरीरका स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए भोजनमें एक और विशेषश्रेणीके पदार्थोंकी आवश्यकता है, जो अधिकतर नाजके दानोंके ऊपरी छिलकों और ताज़ा चीज़ों, जैसे फल और हरे शाकपातमें, पाये जाते हैं। उन पदार्थोंको इनके अनुसंधान कर्त्ता केसिमीट फँक महाशयने वाइटामीन (जीवामीन) का नाम दिया है। चावलके दानोंके ऊपर (यानी)

*The true nature and source of Vitamine or life elements, by Henry Lindhhar M. D. published in 1921

धान की भूसीके नीचे ) लाल रंगके आवरणमें वाइटामीन पाया जाता है। फँक महाशयने रासायनिक रीतिसे इसे प्रथक् भी किया है। इस प्रकार एक टन चावलसे केवल दस ग्रेन ( ७½ रत्तीके लगभग ) वाइटामीन निकला। ताज़ा नीबुओंसे एक लाख भागोंमें एक भाग वाइटामीन निकल सका।

वाइटामीनके अनुसंधानसे यह धारणा कि मनुष्यका जीवन और स्वाथ्य केवल प्रोटीन, वसा और कर्बोजके प्रचुर सेवनपर निर्भर है बिल्कुल निर्मूल हो गई। और इसके साथ ही ताज़ा खाद्य पदार्थों (जैसे फल और शाक भाजी इत्यादि और नाजोंके चोकर जिनमें प्रोटीन वसा या कर्बोजेत अधिक परिमाणमें नहीं पाया जाता) की शारीरिक स्वास्थ्य विषयक उपयोगिता भी भली भांति सिद्ध होगई।

ताज़ा फलों और हरी शाक भाजीके बिना मनुष्यका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। यह बात हमें बहुत पहले से मालूम है। प्राचीन समयमें उत्तरी समुद्रोंमें यात्रा करनेवालोंको जब लगातार कई कई मास जहाज़ पर ही व्यतीत होते थे और इस अंतरमें भोजनके लिए उन्हें सूखा मांस, आटा, घी, शकर, चाय इत्यादिके अतिरिक्त ताज़ा फल या शाक नहीं मिल सकता था तो उनका रक्त दूषित होकर उन्हें स्कर्वी, रक्त दौर्बल्य (अनीमिया), अस्थि दौर्बल्य (रिकिट्स) प्रभृति रोग हो जाते थे, जिससे वह अत्यन्त निर्बल होकर कभी कभी समुद्र यात्राके बीचमें ही परलोक यात्रा ठान देते थे। ऐसे रोगियोंको जब हरे फलों और शाक भाजियोंका विशेष कर ताज़ा नीबूके रसका सेवन कराया जाता था तो अत्यन्त लाभ होता था। धीरे धीरे उनका रोग जाता रहता था।

पेगट ( Paget ) महाशय १६१३ की ब्रिटेनिका इयर बुकमें ( Britannica Year Book ) लिखते हैं कि बेरी बेरी रोगके कारणोंकी खोज करनेसे यह मालूम हुआ कि यह रोग उन्हीं देशोंमें अधिक पाया जाता है जहां milled ( विशेष रूपसे पालिश किये हुए) चावलोंका प्रयोग अधिक होता है। आब देनेके लिए चावलके दानेके ऊपरका स्वाभाविक लाल पर्त रगड़ कर निकाल दिया जाता है, जिसके साथ चावलका वाइटामीन भी जो अधिकतर इसी पर्तमें पाया जाता है निकल जाता है। बेरी बेरी रोगमें त्वचाके नाडी तंतुओंका शोथ ( Peripheral neuntis ) हो जाता है। इसके प्रधान लक्षण शरीरकी सूजन, हाथ पांवकी शिथिलता और मांस पेशियोंकी क्षयी है। मलाया प्राय द्वीपमें केवल तीस वर्षके समयमें ४५,००० मनुष्य इस रोगकी भेंट हो गये। पहले फिलीपाइनमें भी इस रोगका प्राबल्य था पर जब वहांकी सरकारने milled चावलोंका प्रयोग देशमें बंद कर दिया तो यह रोग वहांसे जाता रहा। इसी तरह अन्य स्थानोंमें भी जहां यह रोग पाया जाता था बिना आब दिये हुए (अर्थात् स्वाभाविक लाल पर्त सहित) चावलोंके प्रयोग अथवा चावलोंके साथ उनके दानोंकी टूटनके सेवनसे इस रोगमें कमी हो गई। चूहों और चिड़ियोंके ऊपर भी इसी प्रकारकी परीक्षाएं की गई हैं। जब उन्हें कुछ दिन तक यह आब दिये हुए चावल खिलाये गये तो वह बीमार पड़ गयीं और फिर जब उन्हें बिना आब दिये हुए पूरे चावल, या चावलोंकी टूटन जिसमें वाइटामीन अधिक होता है अथवा खालिस वाइटामीन (बहुत अल्प मात्रामें) दिया गया तो वह भले चँगे हो गये।

इन परीक्षाओंसे अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो गई कि किसी भोजनकी श्रेष्ठता केवल प्रोटीन, वसा या कर्बोजेतके आधिक्यपर ही निर्भर नहीं है प्रत्युत भोजन का यथेष्ट भाग हरे शाक भाजी और ताज़ा फलोंके रूपमें होना स्वास्थ्यके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अब हमें इस प्रसंगमें अपने देशमें प्रचलित प्रथाओंको देखना है कि हमारे यहां इन वाइटामीन प्रधान हरे शाक भाजियों इत्यादिका महत्व भोजनमें कितना समझा जाता है। हमारे यहां फलोंके अतिरिक्त भोजनके कुछ अन्य पदार्थ भी—

जैसे शाक भाजी—कच्चे रूपमें ही खानेका रिवाज है। भोजनके साथ प्रायः हरी मूली खाते हैं। इसी तरह मूलीकी फलों सेंगरीको भी कच्चा ही बड़े चावसे खाते हैं। कच्चा अदरक और हरी मिर्च, हरे धनिये पोदीनेकी चटनी और दालमें निचोड़ा ताज़ा नीबूका रस तो मानों भोजनकी जान समझी जाती है। जाड़ेमें हरे मटर ( मटरकी फली ) और हरे चने, होरोंको, और कहीं कहीं गेहूं और जौ की बालको भी खाते हैं। हरे धानको कूटकर उसका चूड़ा बना कर खाते हैं। चने और मटरका कच्चा साग भी बड़ी रुचिके साथ खाया जाता है। मूलीके पत्तोंका 'कुचा'—मूलीके पत्तोंको कूट कर उसमें नमक मिर्च और यथा रुचि हींग मिलाकर—बड़े स्वादसे खाया जाता है। पियाज़ खानेवाले लोग कच्चे पियाज़को काट कर उसमें घी नमक मिला कर या उसे नीबूके रसमें भिगोकर खाते हैं। नमक मिर्चके साथ कच्चे टिमाटरके कचालू बनाकर खाते हैं। इसी तरह नीबूके रस या कमरखके साथ कच्चे अमरूद नासपाती इत्यादि फलोंके कचालू बनाकर खाते हैं। गाजर, खीरा ककड़ी तो अधिकतर कच्चे ही खाये जाते हैं।

इन प्रथाओंसे पता चलता है कि हमारे पूर्वज जिन्होंने इन प्रथाओंको चलाया हरे भोजन या दूसरे शब्दोंमें वाइटामीनके महत्वसे अनभिज्ञ न थे।

# प्राणियोंमें वीर्य-सँयोग, सन्तानोत्पादन और लिङ्ग-भेदके कारण

सारके निर्जीव वा सजीव पदार्थोंकी उत्पत्तिकी केवल दो मुख्य रीतियां हैं:—एक तो "संयोगात्मक" और दूसरी "वियोगात्मक"। एक पदार्थसे दूसरे पदार्थके संयोगको "संयोगात्मक क्रिया" कहते हैं; जैसे जलकी उत्पत्ति उज्जन तथा ओषजन वायुके संयोगसे होती है। इस "संयोगात्मक क्रियाको" "रासायनिक संयोग" कहेंगे। यदि जलकी उज्जन ( हाइड्रोजन ) एवं ओषजन किसी कारणसे फिर विभक्त हो जायं तो इस विभाजनको "रासायनिक वियोग" कहेंगे। यह प्राकृतिक रीतियां सजीव पदार्थोंमें भी विद्यमान हैं। स्थूल दृष्टिसे निर्जीव वा सजीव पदार्थोंमें भेद तथा अन्तर मालूम होता है; पर सूक्ष्म दृष्टिसे और आधुनिक आविष्कारोंके प्रमाणोंके अनुसार देखा जाय तो यह अन्तर नहीं रहते।

* जीवन मूल (Protoplasm) जो सजीव पदार्थोंका सबसे मुख्य अंश है और जिस पर सर्वजीवन-शक्ति अर्थात् चैतन्यता तथा गति निर्भर है अभी तक

---

* जीवन-मूल एक चैतन्य और सजीव पदार्थ है जो प्राणियों और वनस्पतियोंके कोषमें होता है। वैज्ञानिक अन्वेषणसे निम्नलिखित रासायनिक तत्त्व पाये जाते हैं:—

(१) कर्बन ( carbon )—५१·५ से ५४·५ प्रतिशत
(२) गन्धक ( Sulphur )—०·३ से २·० ”
(३) उज्जन (Hydrogen)—६·६। से ७·३ ”
(४) ओषजन ( Oxygen )—२०·६ से २३·५ ”
(५) नत्रजन (Nitrogen)—१५·२ से १७·० ”

रासायनिक रीतियोंसे पूर्ण रूपसे विभाजित नहीं हो सका है तो भी जो रासायनिक वा भौतिक अन्वेषण अब तक हुए हैं हमारे अनुमानके लिए यथेष्ट हैं।

प्राणियोंको सन्तानोत्पत्ति भी प्रायः संयोगात्मक वा वियोगात्मक क्रियाओं द्वारा होती है। इन रीतियों लिए कोषकी बनावट एवं उसके सूक्ष्म हिस्सोंको जानना ज़रूरी है।

कोषकी रचना

कोष शरीरका एक सूक्ष्म हिस्सा है और निम्न-लिखित तत्वोंसे रचित है:—

चित्र २७—कोष और कोष-विभाजन ( Karyokinesis )
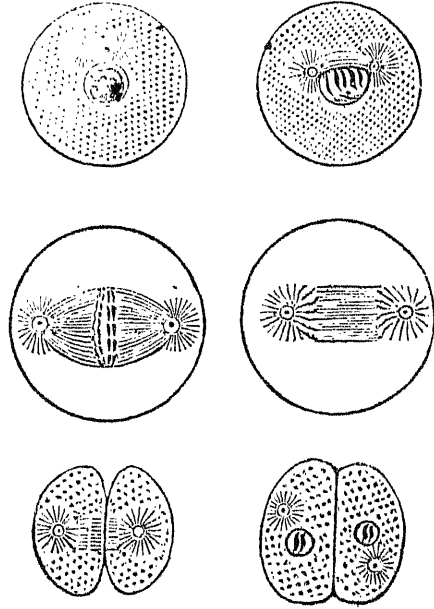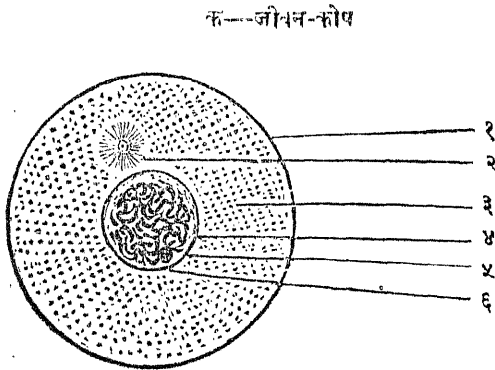
१—कोष की दीवार, २—गति केन्द्र ( Centrosphere or Centrosome ) ३—कोष-मूल ( Cytoplasm )
४—कोष-केन्द्र ( Nucleus ) ५—क्रोमं सोम ( क्रोमेटीनलता ), ६—न्युकलियोलस ( उपकोष-केन्द्र )

के उल्लेखसे पहिले कुछ हाल प्राणीमात्रकी शारीरिक रचनाका देना अनुचित न होगा। सब प्राणियोंकी रचना सेल (cell) से हुई है। यह कोष अर्थात् सेल ( cell ) शरीरकी वस्तुतः इकाई ( unit ) है। प्राणि-विद्याविशारद मेक्स स्कल्ज़ ( Max Schultze ) के परिभाषानुसार ( Ein klumpche protsplasma, in dessu Innerem ein kern liegt.) "कोष जीवनमूल-का एक सूक्ष्म अंश वा कण है जिसमें कि एक केन्द्र स्थापित है।" शरीरके आन्तरिक हाल जाननेके

[१] कोष-मूल (Cytoplasm) यह कोषका बड़ा अंश है और इसमें रासायनिक पदार्थोंके सूक्ष्म कण प्रविष्ट रहते हैं, जिन्हें Proteids वा plastids कहते हैं। कोषके चारों ओर, और कोष-मूलको घेरे हुए, एक पतली झिल्ली होती है, जिसे 'कोषकी झिल्ली' अर्थात् 'कोषकी दीवार' cell-wall कहते हैं। यह झिल्ली वनस्पति आदि के कोषोंमें अधिक मोटी होती है और रासायनिक पदार्थ सेल्यूलोज़ celluloso की बनी होती है; पर प्राणियोंके कोषमें

यह झिल्ली न तो उतनी मोटी ही होती है और न उसमें सेल्यूलोज़ ही पाया जाता है।

[ २ ] कोष-केन्द्र Nucleus:—यह पदार्थ कोषके बीचमें या उसके एक तरफ़ कोष-मूलमें प्रविष्ट रहता है और इसमें एक द्रव्य पदार्थ होता है जिसे 'केन्द्रमूल' (Nucleoplasm) कहते हैं। 'कोषकेन्द्र' भी एक झिल्लीसे घिरा रहता है, इस झिल्लीको 'केन्द्रकी झिल्ली' (Nuclear membrane) कहते हैं। इसके अतिरिक्त केन्द्रमूल अर्थात् केन्द्रमें बारीक और सूक्ष्म तागोंकी लता होती है जिसे 'क्रोमोसोम' ( Chromosome ) कहते हैं। 'क्रोमोसोम' के बहुत से हिस्से, रासायनिक रंग ले लेते हैं। इसलिए उन रासायनिक रंग लेनेवाले हिस्सोंको 'क्रोमेटीन' (Chromatin) कहते हैं।

[ ३ ] गति-केन्द्र ( Centrosphere or Centrosome )—यह सूक्ष्म वस्तु कोष-मूलमें, कोष-केन्द्र के निकट होती है और अपने सूक्ष्म 'धाराओं' के कारण सितारेके सदृश देख पड़ता है।

'गति-केन्द्र' कोषका एक मुख्य अंग है, क्योंकि कोषकी विभाजन शक्ति इसी पर निर्भर है। कोषके और हिस्सोंके विभाजन के पूर्व ही यह स्वयं दो भागोंमें विभाजित हो जाता है यानी एक 'गतिकेन्द्र' के दो 'गतिकेन्द्र' हो जाते हैं जो बारीक सूक्ष्म 'धाराओं' के द्वारा एक दूसरेसे लगे रहते हैं। यह परीक्षा करके देखा गया है कि यदि गतिकेन्द्र और कोष-केन्द्र' कोषसे रहित कर दिये जायं, तो कोष या तो विभाजित नहीं होता या उसका अन्त ही हो जाता है।

उपर्युक्त हिस्सोंके अतिरिक्त कई और भी वस्तुएं आधुनिक खोजसे ज्ञात हुई हैं; जिनका, हम विस्तार भयसे आवश्यक न समझकर, उल्लेख करना नहीं चाहते। हां कोषके विषयमें दो चार बातें ध्यान देने योग्य हैं। वह यह हैं:—(१) हरप्राणी की प्रत्येक जातिके शारीरिक-कोषमें 'क्रोमोसोम' ( Chromosome ) की संख्या निश्चित होती है और संख्या विभिन्न जातिके प्राणियोंमें विभिन्न होती हैं। हेकर ( Haecker ) की खोजके अनुसार सबसे कम संख्या जो देखनेमें आई है वह दो है, जो केंचुये (Ascaris) में मिलती है, और सबसे अधिक संख्या जो ज्ञात हुई है, वह १६०० है जो कि सामुद्रिक सूक्ष्म कीटाणु 'रेडीओलेरियन' ( Radiolarion ) में होती है।

( २ ) वीज़मान ( Wiesmann ) के सिद्धान्तानुसार, पितामह वा उनके पूर्वजोंके गुण, स्वभाव, दोष, इत्यादि 'क्रोमोसोम' के ही द्वारा सन्तानमें आते हैं। वीसमानका यह सिद्धान्त प्रमाणके साथ स्वीकृत हो चुका है। आगे चल कर विज्ञ पाठकोंको मालूम होगा कि 'नर' वा 'मादा' सन्तान का होना भी 'क्रोमोसोम' पर ही निर्भर है।

( ३ ) 'गोडलेवोस्की' (Godlevosky) तथा अन्य प्राणि तत्ववेत्ताओंने परीक्षा द्वारा सिद्ध किया है कि "कोष-मूल' अर्थात् ( Cytoplasm ) द्वारा भी जातीय ( Racial ) गुण सन्तानमें आते हैं।

सन्तानोत्पत्तिकी रीति

प्राणियोंमें सन्तान उत्पत्ति प्रायः चार प्रकारसे होती है:—

( १ ) वीर्यसंयोग ( fertilisation ) एवं वीर्यसम्मेलन ( Conjugation ) द्वारा।

(२) प्राणियोंके शारीरिक विभाजन ( Binary fission or asexual budding ) द्वारा।

( ३ ) बिकल्प ( प्रत्यन्तर ) रीतिसे अर्थात् दो परस्पर विभिन्न सन्तानके होनेसे। ( Alternation of generation )

(४) संयोग-हीन अन्डे (Parthenogeneticeggs) द्वारा।

उपर्युक्त चार रीतियोंमें से (१) वीर्य-संयोग वा वीर्य-सम्मेलन और ( २ ) विभाजनकी रीति तो प्राणियोंमें साधारणतया प्रचलित है, शेष प्रायः कम देखनेमें आती हैं।

( १ ) वीर्य संयोग और वीर्य सम्मेलन—ऊंचे श्रेणीके प्राणियोंमें संतान उत्पादन बहुधा वीर्य-कोष

( Germ or Sex cell ) के मिलनेसे होता है, इन प्राणियोंमें नर तथा मादाका भेद होता है। नरके जननेन्द्रिय ( Reproductive organ ) से जो वीर्य-कोष बनकर निकलता है उसे 'नर वीर्य-कोष ( male germ-cell ) कहते हैं और स्त्री ( नारी ) के जननेन्द्रिय से जो वीर्य कोष तैयार होकर निकले उसे 'स्त्री वीर्य-कोष' अर्थात् 'रजकोष' ( female Sex-cell or ova ) कहते हैं। नर वीर्य-कोषका रूप तथा बनावट रजकोषकी अपेक्षा विभिन्न होती है। यह लम्बे सूक्ष्म कीटाणुकी तरह होते हैं। इसलिए हम इन्हें वीर्यकीटाणु, ( Spermatozoa ) के नामसे प्रसिद्ध करते हैं। वीर्य-कीटाणुके शरीरके तीन भाग होते हैं—( १ ) सिर ( २ ) धड़ और ( ३ ) दुम ( चित्र २८ )। यह कीटाणु बड़े तेज़ चलनेवाले होते हैं और अपने दुमके सहारे द्रववीर्यमें तेज़ीसे तैरते रहते हैं। रज-कोष (Ova) की शकल गोल या बैज़ावी होती है और साधारण कोषकी तरह इसमें सब हिस्से होते हैं (चित्र २८)

उपर्युक्त वर्णनसे यह प्रकट है कि वीर्य-कीटाणु रज-कोषकी अपेक्षा विभिन्न होते हैं। अब जानना चाहिये कि सन्तान इन दो विभिन्न कोषोंके मिलनेसे ही होती है। इसलिए इन दो विभिन्न प्रकार के कोषोंके मिलनेको अर्थात् वीर्य-कीटाणु और रजकोषके मिलनेको अर्थात् वीर्य-कीटाणु और रज-कोष के संयोग को "वीर्य-संयोग ( Fertilisation ) कहते हैं। पर नीचे श्रेणीके प्राणियोंमें न तो नर वा मादाका भेद ही होता है और न उनके वीर्य-कोष एक दूसरे से विभिन्न ही होते हैं। इसलिए ऐसे दो सदृश वीर्य-कोष के सम्बन्धको "वीर्य सम्मेलन" ( Conjugation ) कहते हैं। शब्द 'वीर्य-संयोग' वा 'वीर्य-सम्मेलन' में केवल इतना थोड़ा सा पारिभाषिक अन्तर है।

'वीर्य-संयोग' दो तरहका होता है:—

(१) "आन्तरिक वीर्य संयोग" ( Internal fertilisation ) जिसमें नर वा मादाके आलिङ्गनके समय, वीर्य-कीटाणु स्त्रीके गर्भ ( uterus ) में प्रवेश करता है और वहां गर्भके अन्दर रज-कोषसे 'संयोग' करता है। फलतः वीर्य-कीटाणु तथा रज-कोषके संयोगसे एक 'संयोगात्मक वीर्य-कोष' बनता है, जिसे 'बच्चा' या सन्तान कहते हैं और जो गर्भमें पूर्ण रूपसे पकनेके पश्चात् बाहर निकलता है—जैसा कि समस्त दूध देनेवाले प्राणी (जैसे मनुष्य, बन्दर, कुत्ता, बकरी इत्यादि), पक्षी इत्यादिमें होता है।

चित्र २८—वीर्य्य-कीटाणु, रज-कोष और उनके वीर्य्य संयोग।
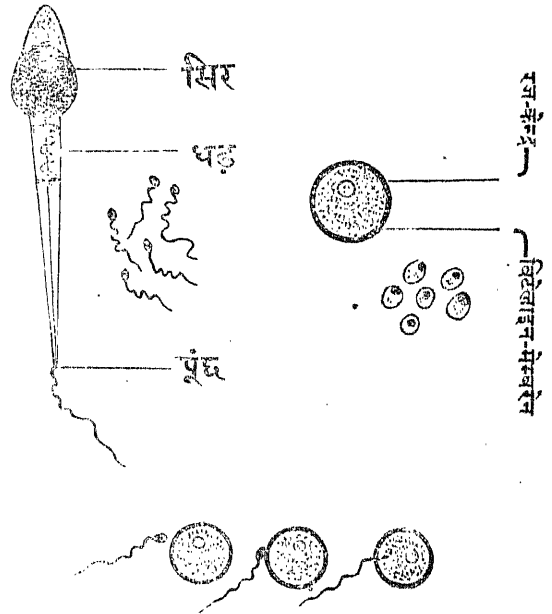
रज-कोष तथा वीर्य्य-कीटाणु का संयोग ( वीर्य्य संयोग )

(२) "बाह्य वीर्य-संयोग" ( External fertilisation ) इसमें सन्तानोत्पत्तिके समय नर तथा मादाकी जननेन्द्रियसे वीर्य बाहरको निकलता है और वीर्य कीटाणुका संयोग रज कोषसे जल वा स्थलमें होता है। फलतः 'संयोगात्मक वीर्य-कोष' अर्थात् 'सन्तान' का पोषण बाह्यजगतमें ही होता है। उदाहरण मेंढ़क, केचुआ, कीट पतङ्ग अन्य मछलियां इत्यादि।

[२] सन्तानोत्पादक वियोग [ अर्थात् विभाजन ]

बहुत से श्रेणीके प्राणियोंमें सन्तानोत्पत्ति एक विचित्र रीतिसे होती है—जिसे वियोगकी रीति (Asexual mode of reproduction) कहते हैं। इस रीतिमें, प्राणीके विभाजनसे या उसके सन्तानोत्पादनेन्द्रियसे वीर्य-कोषके विभक्त होनेसे सन्तान होती है। उदाहरणः—अमीबा (Amoeba), पेरामोशियम (Paramoecium), स्पंज (Sponge) मूँगे (Corals) सूक्ष्म कीटाणु जिन्हें 'बेक्टीरिया' (Bacteria) कहते हैं, हाईड्रा (Hydra) इत्यादि; पूर्वोक्त प्राणियोंमें प्रायः नर वा मादाका भेद नहीं होता और न 'वीर्य संयोग' (fertilisation) ही होता है।

(३) प्रत्यन्तर सन्तान-उत्पादनकी रीति (Alternation of generation)

कुछ श्रेणीके प्राणियोंमें 'वियोग' तथा 'वीर्य संयोग' दोनों प्राणीके जीवन-कालमें होते हैं अर्थात् एक बार सन्तान 'वियोग' द्वारा उत्पन्न होती है और फिर उसके पश्चात् 'वीर्यसंयोग' वा वीर्य सम्मेलन द्वारा दूसरी सन्तान होती है; अतएव इन प्राणियोंमें परस्पर दो विभिन्न सन्तान होती हैं—उदाहरण—ओबेलिया (obelia), मेलेरियाके कीटाणु (malarial parasite) इत्यादि। इस विचित्र रीतिसे पैदा हुई सन्तानकी 'जीवन-लीला' और उनकी प्रकृति भी एक दूसरे से निराली होती है।

(४) संयोग-हीन अन्डे द्वारा सन्तानोत्पादन (Parthenogenesis चित्र २६)

बहुतसे ऐसे भी प्राणी हैं जिनमें 'रजकोष' अर्थात् (मादाके अण्डे) का संयोग बहुधा वीर्य कीटाणुसे नहीं होता और सन्तान बिना संयोगके होती है। इसलिए उन अन्डोंको जिनका कि संयोग (fertilisation) वीर्य कीटाणुके साथ किसी कारणसे नहीं होता 'संयोग-हीन' या 'संयोग-रहित' अन्डे (parthenogenetic eggs) कहते हैं। यह विचित्र रीति प्रायः कीड़े (Insects) श्रेणीकी जातियोंमें जैसे चींटी (ants), बर्र, डांस मधुमक्खी आदिमें देखी जाती है। पूर्वोक्त जातिके प्राणियोंमें 'संयोग-हीन' अण्डोंसे तो सन्तान मादा होती है (चित्र २८)

यहां हम उदाहरणके लिए मधुमक्खीकी सन्तानोत्पत्ति और जीवन कालका कुछ वर्णन करते हैं। मधुमक्खिका प्राणीमें तीन तरहके व्यक्ति होते हैं और प्रत्येक व्यक्तिका कार्य्य एक दूसरेसे विभिन्न होता है। एक तो नर (Drone or male) कहलाता है; जिसका विशेष कार्य्य केवल सन्तानोत्पत्तिका है; दूसरी 'रानी' (Queen) कहलाती है, जिसकी सन्तानोत्पादनेन्द्रिय पूर्ण अवस्थामें होती है और इसका भी विशेष कार्य्य 'नर' के भांति सन्तानोत्पादनका है; तीसरे प्रकार के जीव 'दाई' (worker) के नामसे प्रसिद्ध हैं। 'सेवक' की सन्तानोत्पादनेन्द्रिय कार्य्यके लिए सदा असमर्थ होती है पर यह बड़ी समझदार और तेज़ बुद्धिबलकी होती है। इसके बुद्धि बलका परिचय इसीसे होता है कि यह कैसा सुन्दर छत्ता बनाती है। सेविकाका एक काम मधुको फूलोंसे एकत्र करनेका भी है। सेविकाकी छोटी सखियां भी होती हैं जिनका काम केवल 'रानी' के अन्डे वा बच्चोंकी सेवा करनेका है। चित्र २८ देखनेसे मधुमक्खीके सन्तानोत्पादनका पूरा हाल मालूम होगा। 'रानी' मक्खीके सन्तानोत्पादनेन्द्रियसे विभक्त होकर 'परिपक्व रज-कोष उत्पन्न होता है; जिसमें 'क्रोमोसोम' कीसंख्या शारीरिक कोषकी अपेक्षा केवल आधी होती है। अब यदि इस 'रज-कोष' अर्थात् अन्डेका संयोग न हुआ तो इससे 'नर' (Drone or male) उत्पन्न होंगे और यदि वीर्य कीटाणुसे संयोग हुआ तो 'रानी' वा 'सेविका' उत्पन्न होंगी। यह स्मरण रखनेकी बात है कि 'संयोग-हीन' अन्डेसे प्रायः 'नर' ही उत्पन्न होते हैं। और यह रीति चींटी; बर्र, डाँस इत्यादिमें भी प्रचलित है। (चित्र २६)

क्रोमोसोमके संख्याकी नित्यताका अर्थ

हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि प्रत्येक जातिके प्राणीके शारीरिक कोष (Somatic Cells) में 'क्रोमोसोम' की संख्या विशेष होती है और यह

चित्र २६—संयोगहीन अन्डे द्वारा सन्तानोत्पादन ( Pathenogenesis ) बर, डांस, चींटी इत्यादि जीवोंका
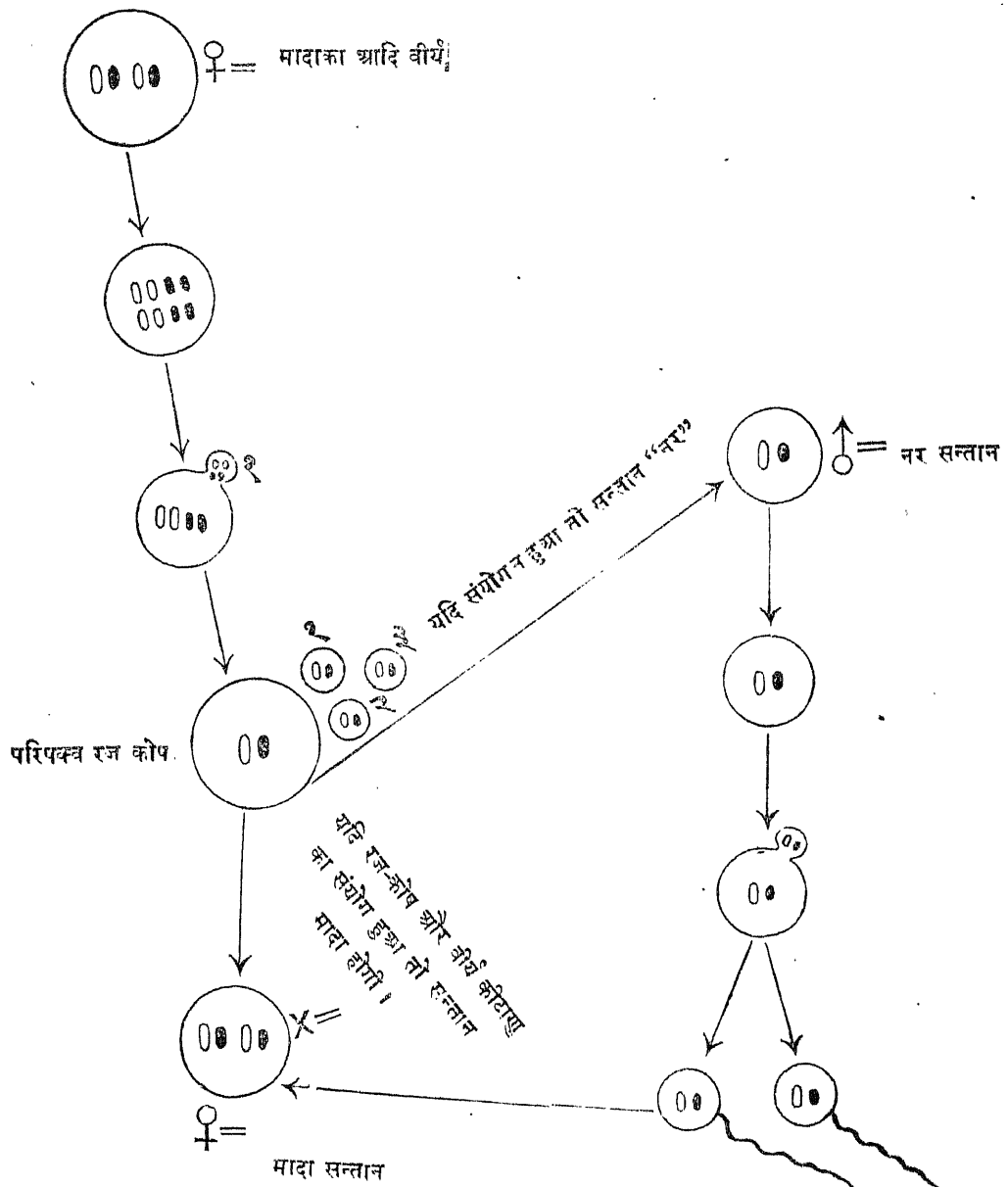
१, २, ३—प्रथम, द्वितीय, और तृतीय ध्रुव-कोष ( उपर्युक्त चित्र के देखने से मालूम होगा कि जब रज-कोष का संयोग वीर्य कीटाणु से न हो तो सन्तान 'नर' होगी, और यदि संयोग हो तो सन्तान मादा होगी )

संख्या विभिन्न जातिके प्राणीके कोषोंमें विभिन्न होती है अर्थात् किसी में अधिक किसीमें कम। इसका क्या कारण है कि प्रत्येक शारीरिक कोषमें 'क्रोमोसोम' की वही संख्या नित्य बनी रहती है और न घटती है और न बढ़ती है ? इसके तीन कारण हैं:—

( १ ) जब शारीरिक-कोषका विभाजन होता है उस समय क्रोमोसोम भी विभक्त होते हैं और उनकी संख्या दुगनी हो जाती है और इन दुगने क्रोमोसोममें से आधी आधी संख्या प्रत्येक विभाजित कोषमें चली जाती है; इसलिए जो पूर्वमें संख्या क्रोमोसोमकी कोषमें थी वही फिर रह जाती है। ( चित्र २७, ख, २ )।

( २ ) द्वितीय कारण यह है कि वीर्य-कीटाणु ( नरवीर्य-कोष ) और रज-कोषमें क्रोमोसोमकी संख्या शारीरिक कोषकी अपेक्षा केवल आधी ही होती है। फलतः वीर्य-संयोगके समय जब रज-कोष और वीर्य-कीटाणुका मेल होता है तो सन्तान में फिर वही ५ संख्या जो आदि कोषमें थी हो जाती है। इस तरह क्रोमोसोमकी असली संख्या जो कोषमें होनी चाहिये वही नित्य बनी रहती है।

( ३ ) तृतीय कारण यह है कि यदि क्रोमोसोम-की संख्यामें कुछ बढ़ाव या घटाव हो और यह नित्यता (क्रोमोसोमकी संख्याकी) न हो तो प्राणी एवं उसकी सन्तानके प्राकृतिक और स्वाभाविक गुण नहीं रह सकते। इसलिए विशेष जातिके प्राणोंमें क्रोमोसोमकी संख्यामें विशेषता होना एक प्राकृतिक नियम है।

अब हम वीर्य कीटाणु एवं रजकोषके उत्पादन-का वर्णन करते हैं, जिससे यह विदित होगा कि हर प्राणीके पूर्वोक्त वीर्य-कोषमें क्रोमोसोमकी संख्यामें न्यूनता (Reduction) होती है और यह संख्या शारीरिक-कोषकी अपेक्षा साधारणतया आधी होती है।

चित्र ३०—वीर्य-कीटाणु-उत्पादन ( Spermatogenesis )( ऐस्केरिस प्राणी )
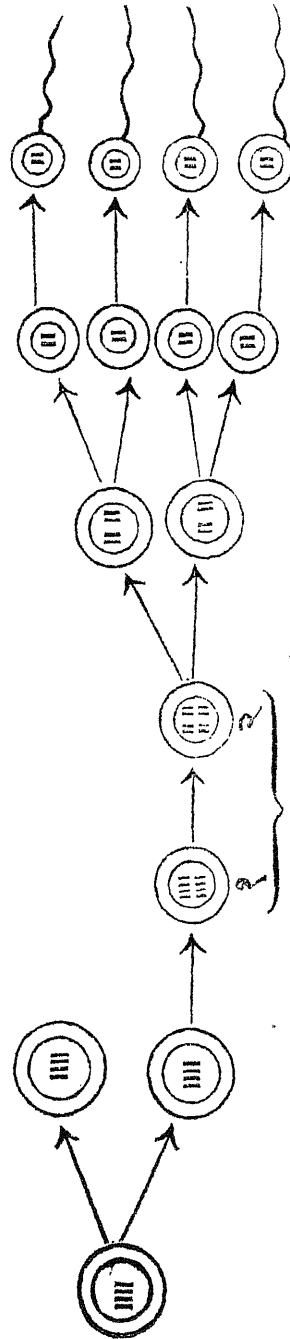


क—आदि-वीर्य-कोष ( ४ क्रोमोसोम दर्शित हैं )। ख—नर जनक कोष (Spermatogenion)। ख—प्रथम नर-जनक कोष (1st. Spermatocyte)। १—पहली अवस्था; क्रोमोसोमका दुगना हो जाना। २—द्वितीय श्रेणी जिसमें क्रोमोसोम जोड़ेमें श्रेणी-बद्ध होकर संयुक्त सोम ( Synopsis ) अवस्था को प्राप्त हुए हैं। ग—द्वितीय नर-जनक कोष ( 2nd Spermatocyte )। घ—कीट उत्पादक कोष (Spermatids) जिसमें क्रोमोसोम की अर्ध संख्या हैं। घ,—वीर्य-कीटा (Spermatozoa)

वीर्य-कीटाणु उत्पादन ( Spermatogenesis )

नर प्राणीकी सन्तानोत्पादनेन्द्रिय सूक्ष्म कोषकी तहों (layers) से बनी होती है। ऊपर वाले तहके सूक्ष्म कोषोंको 'आदि वीर्य कोष' (Primitive germ ealls) कहते हैं और आदि वीर्य-कोषके ही परिवर्तन वा विभाजनसे 'वीर्य-कीटाणु' बनते हैं। अतएव 'आदि-वीर्य कोष'को कई श्रेणियोंमें परिवर्तित होना पड़ता है; तब कहीं अन्तिम वीर्य-कीटाणुका विकास होता है। चित्र ३० के देखनेसे मालूम होगा कि वीर्य कीटाणु (Spermatozoa) की उत्पत्ति आदि वीर्य कोषसे निम्नलिखित रीतिसे होती है:—

(१) आदि वीर्य कोष जिसमें उदाहरणार्थ चार क्रोमोसोम दिखाये हैं ( चित्र ३० क ) विभाजित हुए और उससे दो कोष उत्पन्न हुए जिन्हें नर जनक-कोष ( Spermatocyte ) कहते हैं। प्रत्येक 'नर जनक-कोष' में फिर चार क्रोमोसोम होगये।

(२) इसके पश्चात् 'नर जनक कोष के चार क्रोमोसोम विभाजित होकर आठ क्रोमोसोम हुए, जिसमेंसे चार चार क्रोमोसोम कोषके प्रत्येक ध्रुवकी ओर जा लगते हैं (चित्र ३० ख)। यह कोष 'प्रथम नर जनक' (1st. Spermatocyte) के नामसे प्रसिद्ध है। इसके पश्चात 'प्रथम नर जनक कोष'के क्रोमोसोम एक दूसरेसे जोड़ेमें श्रेणीबद्ध होते हैं अर्थात् आठ क्रोमोसोमके चार जोड़े क्रोमोसोम हो जाते हैं। प्रत्येक जोड़े क्रोमोसोम दो दो क्रोमोसोमके बने होते हैं ( चित्र ३० ख )। क्रोमोसोमके इस अवस्थाको जब कि यह जोड़ेमें श्रेणीबद्ध (group) होते हैं 'संयुक्त सोम' अथवा (Synopais) कहते हैं। 'संयुक्त सोम अवस्था' (Synopsis) के पूर्ण होते ही 'प्रथम नर जनक कोष' का विभाजन होता है और उससे पुनः दो कोष बनते हैं जिन्हें 'द्वितीय नर जनक कोष' (Secondary Spermatocyte) कहते हैं ( चित्र ४ ग ). और प्रत्येक कोषमें दो जोड़े (अर्थात् ४ ) क्रोमोसोम पुनः विकसित होते हैं।

( ३ ) इसके पश्चात् प्रत्येक 'द्वितीय जनक कोष' (2nd Spermatocyte) के विभाजनसे दो दो अर्थात् चार (४) कोष बनें। इन कोषको 'कीट-उत्पादक कोष' (Spermatids) कहते हैं। प्रत्येक 'कीट उत्पादक कोष' में केवल दो क्रोमोसोम होते हैं। यहां यह स्मरण रखनेकी बात है कि क्रोमोसोमकी संख्यामें न्यूनता हुई, जो आदि वीर्य-कोष ( एवं शारीरिक कोष ) की अपेक्षा घटकर केवल आधी रह गई ( चित्र ३० घ )

( ४ ) उपर्युक्त 'कीट उत्पादक कोष' अन्तमें परिवर्तित होकर 'वीर्य कीटाणु' ( Spermatozoa ) बन जाते हैं, जिसमें क्रोमोसोमकी न्यून संख्या केवल दो होती है। ( चित्र ३० घ )

रजकोश-उत्पादन (Ovogenesis)

स्त्रीकी सन्तानोत्पादनेन्द्रिय भी सूक्ष्म कोषोंकी तहोंसे बनी होती है। इन सूक्ष्म कोषोंको वीर्य कोष कहते हैं। रजकोष (ova) का हमने वर्णन किया है; यह वह कोष है जिसका कि वीर्य कीटाणुसे संयोग (fertilisation) होता है और जिससे सन्तान उत्पन्न होती है। सूक्ष्म दर्शक-यंत्रसे देखनेसे रजकोषका संगठन वा रूप एक साधारण जीवन कोषका सा मालूम होता है—इसके चारों ओर एक झिल्ली होती है जिसे 'विटेलाइन मेम्ब्रेन' ( Vitelline membrane ) कहते हैं। यह झिल्ली बाज़ प्राणीके रजकोषमें बहुत मोटी होती है। जैसे पक्षी, सांप इत्यादि। इसके अतिरिक्त कोषमूलमें कोष केन्द्रकी तरह एक वस्तु होती है जो 'रजकेन्द्र' या 'वीर्य केन्द्र' (Germinal Vesicle) के नामसे प्रसिद्ध है ( चित्र (२८) )। इसके अतिरिक्त 'जरमीनल वेसिकिल' से भी छोटी एक चीज़ होती है, जिसे 'जर्मीनल स्पाट' (Germinal Spot) कहते हैं और यह क्रोमोसोमके सूक्ष्म तागोंसे चारों ओरसे घिरे होते हैं। वीर्य कीटाणुकी तरह रजकोषका भी उत्पादन अर्थात् विकास आदि वीर्य कोषके परिवर्तन वा विभाजनसे होता है, जो निम्नलिखित रीत्यानुसार है ( चित्र ३१, क )

चित्र ३१—रज-कोष उत्पादनका ( ovogenesis ) ( ऐस्किरिस प्राणी )

क—आदि वीर्य-कोष (४ क्रोमोसोम दर्शित हैं)। ख—रज-जनक कोष ( oogonium ), ख—प्रथम रज-जनक कोष ( 1st oocyte )—१ क्रोमोसोम की दुगुनी संख्या २—क्रोमोसोम का जोड़े में श्रेणी-बद्ध होना और संयुक्त सोम अवस्था ( synopsis stage ), ग—द्वितीय रजजनक कोष (2nd oocyte) और प्रथम ध्रुव कोष (३) की उत्पत्ति, घ—परिपक्व रज-कोष ( Matured ovum ) जो बहुत बड़ा है। ३—प्रथम ध्रुव कोष ( 1st polor body ) ४—द्वितीय ध्रुव-कोष ( 2nd polor body ) ५—तृतीय ध्रुव-कोष ( 3rd polor body ) जो प्रथम ध्रुव कोष के विभाजन से उत्पन्न हुआ है। रज-कोष तथा ध्रुव कोषमें क्रोमोसोमकी अर्ध संख्या है।
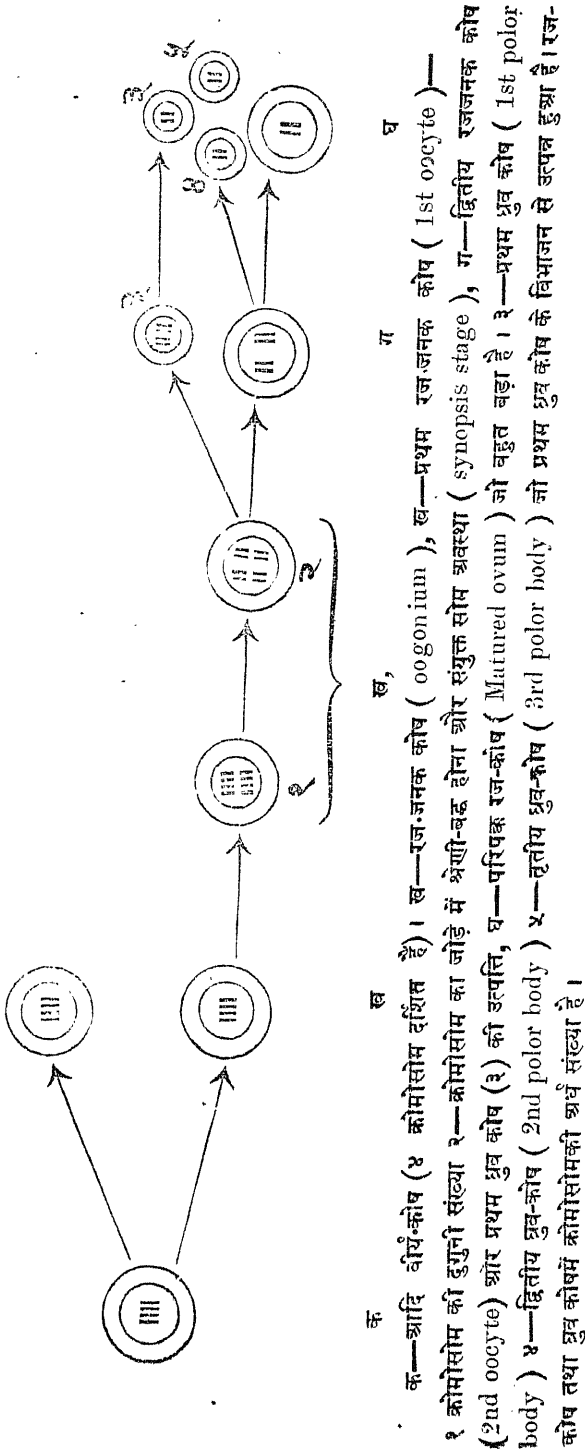
(I) आदि वीर्य कोष जिसमें चार क्रोमोसोम हैं विभाजित हुए और उससे दो कोष बने। इन कोषोंको 'रजजनक कोष' (oocyte) कहते हैं। इसके पश्चात्

(II) रज-जनक कोषके विभाजनसे एक दूसरा कोष बना जिसे 'प्रथम रज-जनक' ( Primary or 1st oocyte ) कोष कहते हैं। इस कोषमें भी जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है क्रोमोसोमकी संयुक्त अवस्था (Synopsis) होती है अर्थात् क्रोमोसोम जोड़ेमें श्रेणी बद्ध होते हैं।

(III) संयुक्तसोम अवस्था ( Synopsis ) के बाद फिर कोषका विभाजन होता है ( चित्र ५, ख ) और दो कोष उत्पन्न होते हैं जिनमें एक तो छोटा होता है और दूसरा बड़ा। छोटे कोषको 'प्रथम ध्रुव-कोष' ( 1st Polar body ) कहते हैं और बड़ेको 'द्वितीय रज-जनक कोष' ( Secondary oocyte ) कहते हैं (चित्र ३१, ग) और इन कोषोंमें प्रत्येकमें चार (४) क्रोमोसोम होते हैं। इसके बाद 'द्वितीय रज-जनक कोष'से विभाजित होकर एक दूसरा कोष बना; जिसे 'द्वितीय ध्रुव कोष' (2nd Polar body ) कहते हैं। प्रथम ध्रुव कोष भी इस समय विभाजित होता है और उससे एक 'तृतीय ध्रुव कोष' ( 3rd Polar body ) उत्पन्न होता है। जिस समय कि तीनों ध्रुव कोष बनकर निकल जाते हैं 'रज जनक-कोष' पूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो जाता है और वीर्य-कीटाणुके योग्य होता है; अत एव ऐसी अवस्थामें रज जनक कोषको 'परिपक्व रजकोष' ( matured ovum ) कहते हैं। एक बात ध्यान देने योग्य है—वह यह कि यहां भी क्रोमोसोमकी संख्यामें न्यूनता हुई,

अर्थात् 'परिपक्व रजकोष' एवं भ्रुव-कोषमें आदि वीर्य-कोषकी अपेक्षा केवल आधी संख्या है। ( चित्र ३१ घ, ३, ४, ५ )

अब उपर्युक्त वर्णनसे यह प्रकट है कि वीर्य कीटाणु और रजकोषमें क्रोमोसोमकी संख्या आदि वीर्य कोषकी अपेक्षा केवल आधी है; फलतः वीर्य संयोगके समय सन्तानमें क्रोमोसोमकी पूर्व संख्या अर्थात् चार (४) क्रोमोसोम फिर हो जाते हैं। (चित्र २८) के देखनेसे यह भली भांति समझमें आजायगा।

( क्रमशः )

---

## ज्वारभाटा

पूर्ण चन्द्रकी स्फुरित प्रभामें नहा नहा कर लहराना,  
वृहत कलेवरके कालेपनमें उज्ज्वल जीवन लाना।  
फिर सागरमें गुरु गभीर गर्जनमय विह्वलता आना,  
सुधा सिन्धु की अधर-सुधाके लिए बाल हठ ठन जाना।  
द्रव गौरवका बहकर शैशव-भूकी निम्नराह लेना,  
प्रकृत सरलताका महोच्चता-हठ की विह्वल थाह लेना।  
कठिन ऐंठका गल कर फिर सारल्य-भावमें लय होना—  
सूरज का आँसू बरसाना, भूका पैर पटक रोना।  
दृढ गांभीर्य-हृदय पर गिरि-गर्भित उछालका चढ़ आना,  
श्वेताधरके लिए ज्वार-जल-मय अधरोंका बढ़ जाना—  
क्षणिक उमंगोंसे प्रेरित हो मानवका उड़ान भरना,  
यत्न मनोगत सतत-शान्ति-मय शशिको पानेका करना।  
उसी उँचाईकी गहराईमें फिर उसका गिर पड़ना,  
पहलेकी ही छोटी लहरोंका सागरमें फिर अड़ना।

—आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

# सांपका काटा

सांपका काटा तीन प्रकारका होता है। १. छूत, २. खुरच, ३. बेध। पहले दो में विषका सम्पर्क नहीं होता। तीसरेमें ही विषका सम्पर्क हो जाता है। जब सांप काटनेके लिए फण फेंकता है तब यदि उसकी दाढ़ें शरीरमें छू जांय, शरीर तुरन्त हटा लिया जाय और दांतोंका चिन्ह मात्र सा दिखाई दे तो काटना 'छूत' कहाता है। इस दशामें विष दाढ़ोंसे बाहर छलक तो आता है परन्तु या तो शरीर पर आ गिरता है या भूमि पर ही गिर जाता है और शरीरमें घुसने नहीं पाता।

जब शरीर तुरन्त न हटाया जा सके पर सांप दांत गड़ा ले और तब शरीर भी खेंच लिया जाय तो शरीर पर दांतोंकी खुरच सी पड़ जाती है। चूंकि दाढ़ोंका छिद्र अधबीचमें समाप्त हो जाता है इसलिए जब तक दाढ़ें काफ़ी गहराई तक नहीं गड़तीं तब तक विष नहीं उतरता और दाढ़ें केवल घाव सा खुरच कर रह जाती हैं। इसीको 'खुरच' कहते हैं।

तीसरे प्रकारका काटना बेध कहाता है। इसमें सांप अपने घातक शस्त्रोंका पूरा प्रयोग कर लेता है। इस आघातमें दाढ़ें जल्दी देहसे नहीं छूटतीं। चमड़ेमें दाढ़ोंके छेद दिखाई पड़ते हैं। जख़मोंसे खून भी फुहारेकी तरह बाहर छूटता है। सांपका यही प्राणघातक चुम्बन कहाता है। बिना फणके सांपोंके काटने पर कभी कभी अन्य दांतोंके भी निशान पड़े दिखाई देते हैं।

पहले दो प्रकारसे काटे जाने पर कोई विशेष चिकित्साकी आवश्यकता नहीं होती। तीसरे प्रकारका काटना सचमुच काल राज मृत्युका कौर ही है। इसकी ओषधि करना पूरे वैद्यका काम है। प्रायः बहुत सी ओषधियां पहले दो प्रकारके काटे हुए स्थानों पर प्रयोग किये जाने पर ही प्रसिद्धि पा जाती हैं। परन्तु उनको तीसरे प्रकारके घाव पर प्रयोग करनेसे उनकी कलई खुल जाती है। विषका वेग इतना तेज़ होता है कि मुखके रास्ते पी हुई ओषधि उस पर कोई प्रभाव नहीं करती।

सांपके काटेका निर्णय करना कई बार बड़ा संदेह जनक होता है। प्रायः सांपके काटने पर कुछ कांटा सा चुभता तथा कुछ जलन सी होती है। बिच्छू भी काटता है; ततैया या मधु मक्खी भी काटती है, कनखजूरा भी चिपट जाता है। इनके काटने पर भी बड़ी पीड़ा होती है। परन्तु सांपका काटना इन सबसे कम पीड़ा जनक है। करैतका काटा पुरुष सबेरे तक प्राणहीन हो जाता है। वह सांपके काटने पर तो जग भी नहीं पाता। खपरा सांपके काटने पर कुछ अधिक दर्द होता है।

जिसको सांप काट जाता है वह अपने दर्दके अनुभवका ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकता। सांपके काटते ही पुरुषके होश उड़ने लगते हैं उसको वर्णन करने की सुध ही नहीं रहती। बहुत अवसरोंपर तो यही नहीं कहा जा सकता कि सांपने काटा या किसी और जीवने काटा है। बिच्छूके काटने से एक छिद्र रहता है; कनखजूरेके काटनेपर दो छिद्र रहते हैं। सांप भी कभी एक दांत और कभी दो दांत गड़ाता है। कनखजूरेके छेद बहुत छोटे होते हैं। वह तुरन्त ही मिट जाते हैं। उसका काटा स्थान लाल हो जाता है। सांपके काटेके छेद दो दो तीन तीन घण्टे तक भी नहीं मिटते और कुछ अपेक्षतः छिद्र भी बड़े होते हैं। उसके आसपासका स्थान लाल न होकर कुछ नीलो या काली सी आभा लिये रहता है। बड़ी पहचान यही है कि सांपके काटेसे खूनकी बूंदें बाहर निकल आती हैं। एक चिन्ह यह भी है कि सांपके काटनेपर विष दंष्ट्राओंके अतिरिक्त दांतोंके निशान भी रहते हैं और कभी कभी उनके आघातसे भी रक्त बहा करता है। सांपके मुखका थूक भी जख़मके आसपास लग जाता है। वह

सूखकर भी सूखे गोंदके चेपके समान चमकता है। औरोंके काटनेपर यह चिन्ह नहीं दिखाई देता। यदि इतनेपर भी संदेह निवृत्त न हो तो जख़मके पास पट्टी बांध कर जख़मपर नश्तर चला दे। यदि सांपका काटा होगा तो या तो खून निकलेगा ही नहीं या निकलेगा भी तो उसका रंग बिगड़ा हुआ होगा।

विष और विष के चिन्ह

ज्योंही सांप ने काटा और दाढ़ोंके निशान पड़े, वह स्थान सूजने लगता है। वह सूजन कुछ देरके बाद ही हट जाती है। आध एक घण्टेके बाद फिर सूजने लगता है। पहली सूजन विषके कारण होती है और दूसरी सूजन ज़खमके कारण होती है। पहली सूजन इसी बातका चिन्ह है कि विष अभी जख़मोंमें है, वह अभी शरीरमें चढ़ने नहीं लगा है। जब वह सूजन हटी तो समझ लें कि विष चढ़ना शुरू हो गया। 'विष चढ़ना' यह मुहाविरा है। 'विष चढ़ना' यह प्रयोग भी बड़ा वैज्ञानिक है। ज्योंही रक्तमें विष प्रवेश करता है वह किसी रक्त वाहिनी नाड़ी द्वारा ही शरीरके ऊपरी भागमें चढ़ने लगता है। कभी कभी जख़म रक्त वाहिनी नाड़ीसे पर्याप्त दूरी पर लगता है। उस समय विष अन्य पदार्थों द्वारा रक्त वाहिनी नाड़ी तक पहुँचता है और फिर चढ़ना शुरू करता है। जब दांत नाड़ी पर ही पड़ता है तब तो तुरन्त विष चढ़ जाता है। मृत्यु भी कुछ मिनटोंमें हो जाती है। विषका ऊपर चढ़ना नीली नाड़ियों (Veins) के द्वारा ही होता है। उन्हींको हमने रक्त वाहिनी नाड़ी कहा है।

सांपकी दोनों दाढ़ें दो ज़खम करती हैं। दोनों एक साथ दो नाड़ियोंको छेदती हैं; इसलिए दोनों विष तरंग समान वेगसे चढ़ने लगती हैं। यदि एक दाढ़ तो नाड़ीको छेदे और दूसरी न छेदे तो एक ही तरंग मनुष्यके प्राण हर लेती है; दूसरी तब तक जख़मसे कुछ इंच ही चल पाती है। दो दाढ़ोंसे शरीरमें केवल विषकी दो बूंदे ही प्रवेश करती हैं; पर वेही प्राण हरणके लिए पर्याप्त होती हैं।

दोनों विषकी बूंदे शरीरमें जिस अद्भुत नियमसे चढ़ती हैं उसको देखकर बड़ा विस्मय होता है। दोनों विषकी तरंगें परस्पर कभी नहीं मिलती हैं। बल्कि दोनों अपने भिन्न भिन्न मार्गोंसे एक दूसरेके साथ बिना मिले ऊपर चढ़ा करती हैं। यदि दोनों दाढ़ोंके जख़म दो भिन्न भिन्न नाड़ियों-पर हैं और तीसरी नाड़ी उन दोनोंके बीचमें है तो उस बीचकी नाड़ी पर दोनों विष धाराओंका कुछ भी प्रभाव नहीं होता। यदि दोनों बीचकी नाड़ीसे भी मिलती हों तो विषधाराओंको अवश्य मध्य नाड़ीमें आजाना चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं होता दोनोंका मार्ग स्वतंत्र ही रहता है।

इस बातको समझनेके लिए निम्न लिखित दृष्टान्त पर्याप्त होगा।

क ख ग

च छ

o o

'च, छ' दो छेद हैं। इनसे विष प्रविष्ट हुआ। 'च' का विष 'क' नाड़ीसे चला 'छ' का विष 'ग' नाड़ीसे चला; वह दोनों कभी 'ख' नाड़ीमें नहीं मिलेंगे।

दोनों विष धारायें बराबर चढ़ती चली जांयगी और आखिरको हृदयकी धड़कनको बन्द कर देंगी। यदि दोनों विषधाराओंके मार्गोंमें कोई किसी प्रकारका विक्षोभ न डाला जाय तो दोनों धारायें समानान्तर मार्गोंसे ऊपर चढ़ती प्रतीत होती हैं। विषकी नीली धारायें स्पष्ट रूपसे ऊपर जाती दिखाई देती हैं। उनके साथ ही साथ रोमराजीमें परिवर्त्तन होता है। जब विष रोमराजिके मूलके पास पहुँचता है तभी रोम पट्ट पड़

जाता है और धाराके निकलजानेपर फिर वैसे ही उठ खड़ा होता है। सांप जैसे वनमें अपने सरकनेका निशान छोड़ जाता है उसी प्रकार सांपके विषकी तरङ्ग भी देहकी त्वचा पर अपना निशान छोड़ जाता है।

पहली रस्सी जखमके पास बांधनी चाहिये। उससे कुछ इंच हट कर फिर दूसरी और उससे कुछ और दूर हट कर तीसरी रस्सी बाँधनी चाहिये। रस्सी या पट्टी बांधनेका फल तभी होता है जब सांप हाथ या पैर या टांग या बाँहमें काट जाता है। यदि सांप पीठपर या पेटपर काटे तो पट्टी या रस्सी बाँधनेका कोई फल नहीं होता।

रस्सी या पट्टी बाँधते ही उसपर शीतल जल छिड़कना चाहिये। इससे वह खूब सट जाती है।

चिकित्सा

माल वैद्य लोगोंमें चार प्रकारकी चिकित्सा प्रचलित हैं। १. साती २. पींग, ३. थूबी, ४. वेरी,

चूसनेकी विधिको कोई विशेष चिकित्सा नहीं माना जाता। विशेष अवसरोंपर यह भी बड़ी लाभदायक होती है। इसका प्रयोग तभी लाभदायक है, जब काटते ही इसका प्रयोग किया जाय।

यदि चूसनेकी विधिके प्रयोगका अवसर न बन पड़े तो तुरन्त पहली पट्टी तो बांध ही दे। क्योंकि विषबिन्दु कभी सहसा रक्तकी नाड़ीमें प्रवेश भी नहीं करता। वह पहले अपनी प्रबलतासे उस स्थानपर 'सूजन ही पैदा करता है। सूजनेसे साफ़ यही प्रकट होता है कि विष अभी ज़खममें ही पड़ा है। यदि इसी वक्त जलता भभकता दहकता अंगारा रख दिया जाय तो सबसे अच्छा इलाज हो जाय। 'संपेरे' लोग इस कार्यके लिए अपने पास लकड़ीके हत्थेमें लगे हुए लोहेकी छाप रखा करते हैं, वह उसे गरम करके जखमको दाग दिया करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि छापोंको गरम करते हुए कुछ समय लगता है तो भी विषकी बून्दें भी फैलने में कुछ समय लगाती हैं। कोरा लाल कोयला तुरन्त बुझ जाता है; परन्तु लोहा देर तक गरम रहता है। अग्निका तीक्ष्ण ताप लगते ही विषका जोर मारा जाता है, और हलकी जलन होने लगती है।

चिकित्सा करते समय यह अवश्य ध्यान रखें कि सांप काटनेके बाद जितनी जल्दी हो सके रस्सी या पट्टी बांध कर विष धाराको ऊपर चढ़नेसे रोक दिया जाय। यदि विषको चूस कर बाहर निकालना कठिन जान पड़े तो पट्टी बांधकर चिकित्सा करना प्रारम्भ कर दे।

यदि विषकी धाराने जख्मोंसे ऊपर चढ़ना शुरू कर दिया है तब थूबी—चिकित्सा अर्थात् गर्म लाल लोहेसे दागनेकी विधि भी निरर्थक हो जाती है। ऐसे समय तो नश्तर या चाकूसे तुरन्त जखमसे कुछ ऊपरका भाग चीर देना चाहिये; जिससे खूब खून बहने लगे। कुछ ऊपर तक चाकूकी नोकसे १०, २० छेद कर देने चाहियें और उसपर नमक भी छिड़क देना चाहिये। इससे खून और अधिक बहता है।

खून बह जानेसे या तो विष सर्वथा शरीरसे बाहर निकल जायगा या बहुत सी मात्रा में निकल जायगा। विषके सम्पर्कसे खून काला हो जाता है। जिन जिन स्थानोंपर विषका प्रभाव होगा उन स्थानोंपरसे काला रक्त ही बहेगा। दूसरे भागोंसे तो यथापूर्व लाल रक्त निकलेगा।

जिन नाड़ियोंमें विषधारा बह कर गयी होगी काटनेपर उनमें कुछ काल तक किसी प्रकारका खून न बहेगा। कुछ कालबाद उनमेंसे काला खून चूने लगेगा। इसी गन्दे खूनके रास्ते सब विष निकाल देना चाहिये। जब जख्मोंसे गन्दा खून बहने लगे समझ लो कि विषकी गति आगे रुक गयी।

चतुर वैद्य या तो चूस कर निकालते हैं या उसी वक्त तपी सलाखोंसे माल वैद्योंकी चौथी विधि 'वेरी'का प्रयोग करते हैं।

वह सबसे प्रथम जखम देख कर विषकी गतिका पता लगावेंगे। और तुरन्त पूछ कर या चिन्हों-

से ही पता लगालेंगे कि कहां तक विष चढ़ा है या रोम राजिके उठने और गिरनेसे ही जान जायँगे।

वह विष धाराओंका पता लगा कर उस स्थान का पता लगाते हैं जहाँ तक विष चढ़ा होता है। उसके एक इञ्च ऊपर नश्तरया चाकूसे नाड़ी काट देते हैं। वहां तक बिष धाराके पहुँचते ही वह अंगूठोंसे दबा दबाकर जहरीला खून सब निकाल देते हैं। इस प्रकार रोगीको कुछ भी अधिक कष्ट नहीं होने देते।

विषधाराको रोकनेके लिए जिस स्थानपर पट्टी बंधी रहती है उस स्थानपर विषकी धारा बार बार धक्के लगाती है और पीछे भी हटती है। बस चतुर वैद्य उस बंधनके आध इंच नीचे विषधारा-वाली नाड़ियोंको काट कर वहां विषैला खून निकाल-नेका यत्न करते हैं। वहांसे विषधारा अपने ही धक्कोंसे बाहर निकल आती है।

परन्तु कई बार पट्टी बाँधनेके स्थान पर भी विषधाराके धक्के मालूम नहीं पड़ते; तब चतुर वैद्य गरम पानी डालकर उस स्थानको खूब मलते हैं इससे विषधारावाली नाड़ी सूज जाती है। उसे ही चाकूसे काट कर खून साफ़ कर देते हैं।

( असमाप्त )

---

( १३६ पृष्ठसे आगे )

ललितासे इस कारण घृणा कर सकता है कि वह सुकुमारता-पूर्ण न होकर पुरुषकी तरह प्रचण्ड है और विमला महादेवसे इसलिए घृणा कर सकती है कि महादेवमें पुरुषोचित्त वीरताके स्थानमें वह नज़ाकत है जिसके कारण उसे 'ज़नाना' कहना अधिक उचित जान पड़ता है। परन्तु हमें ऐसे उदाहरण भी मालूम हैं जब स्त्रीने पुरुषके पुरुषो-चित गुणोंका आदर न करके उसकी सुकुमारता-पर ही स्वयंको निछावर किया है और आवश्यकता पड़नेपर अपने प्रेमको सुखमय न होने देनेवालेसे न केवल घृणा की है, किन्तु विष प्रदानसे परलोक-वासी बनाया है। किन्तु हमारा विचार है कि ऐसे अवसरोंपर संग्राम सुकुमारता और पुरुषोचित वीरतामें न रह कर ग़रीबी और अमीरीमें रहा है, अथवा अप्रसिद्धि और यशस्वितामें रहा है, क्योंकि यदि एक ही आर्थिक तथा सामाजिक श्रेणीके दो पुरुष लिए जायँ तो हमारा विचार है कि स्त्री अधिक वीर पुरुष को अपना प्रेम देगी।

मनुष्यके जीवनमें घृणाका क्या स्थान है, अब इस ओर पाठकोंका ध्यान जाना स्वभाविक ही है। यह स्पष्ट ही है कि हम किसी न किसीसे बिना घृणा किये रह नहीं सकते। इसका कारण यह नहीं है कि प्रेम ही की तरह वह भी हमारे जीवन का पोषक है, किन्तु यह कि साधारण मनुष्यके मस्तिष्ककी स्थिति ऐसी होती है कि वह उत्तेजित हुए बिना रह नहीं सकता। घृणासे मनुष्यकी क्षुद्रता ही प्रकट होती है, गौरव नहीं, और यद्यपि हम यह आशा नहीं कर सकते कि मानव जीवन कभी परि-वर्त्तित हो सकेगा तथा घृणा समूल नष्ट हो सकेगी, साथ ही यद्यपि यह भी निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता कि वैसा होनेसे मनुष्य अधिक सुखी हो जायगा, तथापि इतना तो निर्विवाद है कि व्यक्ति और राष्ट्र एक दूसरेके प्रति घृणाकी मात्रा कम करके अविरल चिन्ता, भय, अस्थिरता आदि-से उत्पन्न होनेवाले दुखोंको दूर कर सकते हैं। घृणाकी चुभ जानेवाली नोकको घिस कर, उसके विषैले डंकको तोड़ कर, हम अपने गार्हस्थ्य जीवनको बहुत कुछ सुखमय बना सकते हैं। बहुधा आपसके व्यवहारोंकी ना समझीके कारण उत्पन्न होनेवाली इस चुड़ैल ने न केवल अनेक घर सत्यानाश किये हैं बल्कि दो साथ रहनेवाली जातियोंमें मनोमालिन्य उत्पन्न करके, दोनोंको लड़ा कर दुर्बल करके, एक तीसरेका गुलाम बनाया है। हमारा देश तो इस बातके लिए प्रसिद्ध है। न जाने कब हममें सहानुभूति और प्रेमका सञ्चार होगा, तथा घृणाके प्रति घृणा उत्पन्न होगी।

—गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश'

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानिभूतानि जायन्ते ।

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १७ | सिंह, संवत् १९८० । अगस्त, सन् १९२३ | संख्या ५


## जातीय शुद्धि

'आत्म-रक्षा' की तरह 'जाति-रक्षा' भी जीव मात्रका धर्म है। आत्म-रक्षाका मुख्य साधन 'आहार' और जाति-रक्षाका 'विहार' (वंश वृद्धि) है। 'मिथ्या-आहार विहार' से ही व्यक्तियोंके साथ साथ जाति भी दूषित हो जाती है, क्योंकि एक दूसरे पर निर्भर हैं। 'व्यक्ति' न केवल 'जाति' का बनानेवाला है, बल्कि उसीका अंग है। दोनोंका हिताहित परस्पर संबद्ध है। इन दोनोंमें जाति ही प्रधान है। अतः यदि दोनोंके स्वार्थ कहीं टकरायें, तो नीतिज्ञ जातिके लिए आत्म बलिदानका ही विधान देते हैं। जातिकी किसी पतित दशामें—"आत्मानम् सततम् रक्षेत् दारैरपि धनैरपि"—की व्यवस्था भी देखनेमें आई है!

प्रकृतिकी शिक्षा भिन्न प्रकारकी है। उच्च श्रेणीके जन्तु, अपनी सन्तानके पालन पोषणके लिए जो त्याग स्वीकार करते हैं वह सबको विदित है। मधु मक्षिका आदि उच्च कोटिके कीट पतंगोंकी जीवन लीला बहुधा सन्तान उत्पत्तिके साथ ही साथ समाप्त हो जाती है। शस्यादि वनस्पति भी बीज लगनेके अनन्तर सूख जाते हैं। यहां तक कि निम्नतम जीवाणु अमर 'अमीबा' का अस्तित्व वा व्यक्तित्व वंश वृद्धिके साथ ही साथ लोप हो जाता है। जीव-विज्ञानकी यह घटनायें केवल यही बता रही हैं कि सन्तानके लिए जनकका, जातिके लिए व्यक्तिका बलिदान प्रकृति सिद्ध नियम है। मनुष्य सर्वोच्च जीव है; देखना चाहिये मनुष्य जातिमें यह नियम कैसे कार्य्य करते हैं।

पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ होगा कि इतर जन्तुओंका स्वास्थ्य सृष्टिके शिखरस्थ नर जातिसे अच्छा होता है। हमारे घरेलू जानवर भी जो मनुष्यके सहवाससे कुछ दूषित हो गये हैं, वह भी हमसे अच्छे हैं। उनमें प्रायः अकाल मृत्यु नहीं होती। इसका प्रधान कारण यह है कि यह

हमारी तरह मिथ्या-आहार-विहारसे अपने शरीर और अपनी जातिको दूषित नहीं कर सकते। यदि कदाचित् कोई पशु रुग्ण या क्षीण हो जाता है तो प्रकृतिकी दृढ मुष्टि उसको पकड़कर तुरन्त अलहदा कर देती है। इसीका नाम है—'प्राकृतिक चुनाव'। इसके प्रभाव से केवल समर्थ और सुजान जन्तु ही भविष्य जातिके जनक बननेका अधिकार प्राप्त करते हैं। सुप्रजननके लिए पशु जगतमें प्राचीन क्षत्रियोंकी तरह कन्याका हरण तथा स्वयंवर होना दोनों ही प्रथायें प्रचलित हैं। आजकलकी पतित जातियोंकी तरह उनमें वर-कन्यायें बिकती नहीं! इसी 'चुनाव' के प्रयोगसे मनुष्यने पांच पत्तीके जंगली गुलाबसे शतदल गुलाब बना लिया है; सूखी जंगली गायोंसे १०।१५ सेरी कामधेनु पैदा करली हैं; उच्च वंशीय घुड़ दौड़के घोड़े भी इसी तरह बनाये जाते हैं। हमारे वर्णाश्रमकी व्यवस्था भी इन्हीं बातों पर अवलम्बित थी।

मनुष्य जातिको सुप्रजनन तथा जन्म संयम्-की उतनी ही आवश्यकता है जैसी कि इतर जन्तु-ओंको। परन्तु मनुष्य एक प्रकारका जन्तु होने पर भी उसकी मानसिक और सामाजिक परिस्थिति अन्य पशुओंसे सर्वथा भिन्न है। सुप्रजननके लिए हम बावूगढ़की तरह कोई नर-अश्व-शाला नहीं खोल सकते, यद्यपि कार्यतः हमारे बहुत से तीर्थ स्थान इस अभावकी पूर्ति करते हैं! प्राचीनोंकी नियोग व्यवस्था युक्तियुक्त दीखने पर भी आधु-निक मनुष्योंकी रुचिके विरुद्ध है। देश काल-पात्र भेदसे हमारे 'सनातन-धर्म' में भी परिवर्तन होता रहा है। अतः इस विषयमें नवीन पाश्चात्य जाति-योंसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

प्राकृतिक दशामें एक स्त्री १५-२० सन्तान प्रसव कर सकती है, पुरुषकी प्रजनन शक्तिका तो ठिकाना ही नहीं। परन्तु इतनी सन्तानका पालन पोषण तथा सुशिक्षा देना साधारण मनुष्यके लिए असम्भव है। यदि किसी व्यक्तिके लिए संभव हो, तो जातिके लिए नहीं। कारण, प्रकृतिकी खाद्य-उत्पादन शक्ति जीवोंकी प्रजनन शक्तिसे बहुत कम है। यदि जनता इस तरहसे बहुत बढ़ जाती है, तो प्रकृति भीषण रूप धारण कर दुर्भिक्ष, महामारी नहीं तो महा युद्ध आदि उपायोंसे प्रजा ध्वंस किया करती है। इससे बहुत संख्यामें योग्य और सुजान व्यक्ति भी नष्ट हो जाते हैं। कहते हैं कि भारतका पतन महाभारतके युद्धसे हुआ। अतः प्रजा-ध्वंस-कारी शक्तिसे बचना चाहिये; प्रकृतिका उद्देश्य प्रजा ध्वंस नहीं। 'प्रजनन् पोषण संसार' इसीकी त्रिमूर्ति है। संसार इन्हीं पर अवलम्बित है। इनमें सामञ्जस्य रखना हमारे अधिकारमें है। नीचे कुछ संकेत दिग्दर्शनार्थ दिये जाते हैं जो शायद पर्याप्त न हों, पर साधक या जिज्ञासुको सत्य गुरुका अभाव नहीं। *

जातीय शुद्धिका पञ्जा

( १ ) जन्म विज्ञानका तत्व यथा समय छोटे बड़े सबको बताना चाहिये और जननेन्द्रियोंके दुरुपयोगसे जनताको बचाना चाहिये।

( २ ) बाल्यावस्थामें अखण्ड ब्रह्मचर्यके प्रबन्ध-के साथ बालक बालिकाओंको यथा संभव सहपठन (Coeducation) द्वारा साहचर्यका मौका देना चाहिये, जिससे कि उनमें भाई बहनका भाव पैदा हो सके।

( ३ ) यथा समय विवाहका प्रबन्ध न हो सके तो ब्रह्मचर्यके अतिरिक्त, अज्ञात स्त्री सहवासके दोष और उनसे बचनेके उपाय भी बताने चाहियें।

( ४ ) दाम्पत्य जीवनका कर्तव्य तथा उसको यथा विधि उपभोग करनेके उपाय ( 'जन्म-संयम्' आदि ) लोगोंको बताने चाहियें।

( ५ ) इन्द्रिय सम्बन्धी रोग व्यक्ति और जाति-के लिए बहुत हानिकर हैं। इनसे बचनेके उपाय सब वयः प्राप्त मनुष्योंको जानने चाहियें और राज-कीय सहायतासे इनका प्रतिशोध होना चाहिये।

बी. के. मित्र, एल्. एम्. एस्.

---

* विशेष ब्योरेके लिए मंत्री "हिन्दोस्तान जन्म-मर्यादा सभा" से पत्र व्यवहार करें।

# भोज्य पदार्थ
## और
# भोजन संबन्धी नियम

अब संक्षेपमें भोजनके पदार्थों और स्वाभाविक खान पानके नियमोंका कुछ वर्णन किया जाता है।

बहुत डाक्टरोंका मत है कि दिनमें दो बार भोजन करना मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए पर्याप्त है। दिनमें भोजनोंके बीचका अंतर रातकी अपेक्षा कुछ कम रहता है। सुबहको ९से ११ बजे तक और सायंकालमें ६ से ७ बजे तक भोजन कर लेना चाहिये। सायंकालका भोजन सोनेसे कमसे कम तीन घंटे पूर्व कर लेना चाहिये। तन्दुरुस्त, काम काजी आदमियोंको कभी कभी इन दो भोजनोंके अलावा प्रातःकाल एक बार जल पान करनेकी और आवश्यकता होती है। जाड़ेके दिनोंमें भी भूक कुछ अधिक लगती है। बच्चों, रोगियों या रोगसे उठने पर और गर्भिणी स्त्रियोंको भी थोड़ा थोड़ा करके दिनमें कई बार भोजन देनेकी आवश्यकता पड़ती है। यह याद रखना चाहिये कि भूकसे कुछ कम खाना ही स्वास्थ्यके लिए लाभदायक होता है; अति भोजन ही आजकल सभ्य-समाजमें बहुत से रोगोंकी जड़ है। भोजन उस समय करना चाहिये जब भूक मालूम हो। बिना भूकके भोजन करलेसे उसका पाचन ठीक ठीक नहीं होता। संक्षेपमें हमें याद रखना चाहिये कि हम जीनेके लिए खाते हैं, न कि खानेके लिए जीते हैं।

वैद्यक ग्रन्थोंमें प्रातःकाल उठने पर आठ चुल्लू बासी पानी पीनेका विधान (ऊषः पान) आया है। इसके बाद कुछ टहल कर दिशा मैदान जाना चाहिये। ऐसा करनेसे दस्त साफ आता है; पाचन ठीक रहता है और पित्तके विकार शांत रहते हैं। पाश्चात्य देशके रहनेवालोंमें ऊषः पानकी तरह (morning tea) (सवेरेकी चाय) पीनेका रिवाज है। वह बिस्तरसे उठनेके पूर्व ही यानी बिस्तर पर लेटे लेटे ही सवेरेकी चाय पीते हैं। फिर कुछ देर बाद हाजत लगने पर शौचके लिए जाते हैं। इसी तरह बहुत से लोग सुबहको हुक्का या सिग्रेट पी कर पाखाना जाते हैं। चाय या हुक्केकी अपेक्षा ऊषःपान यानी केवल ठंडे पानीका सेवन अधिक स्वाभाविक है। जिन लोगोंको सवेरेकी चायकी आदत पड़ गई हो वह उसकी जगह गुन गुने पानीका सेवन कर सकते हैं। चाय या हुक्के का इस्तेमाल बिलकुल अस्वाभाविक है। आजकल हमारे देशमें भी चाय पीनेका रिवाज दिन दिन बढ़ता जाता है। हमें यथा शक्ति उसे रोकने या कम करनेकी कोशिश करनी चाहिये। जैसा हम ऊपर कह आये हैं प्रातःकाल उठने पर शौचसे पहले एक गिलास ठंडा (या यदि ठंडेसे काम न चले तो गुन गुना) पानी पी लेनेसे शौचकी क्रिया ठीक होती है और यह अभ्यास उन लोगोंके लिए विशेष रूपसे उपयोगी है जिन्हें बद्धकोष्ठ (कब्ज़) की शिकायत रहती है। कब्ज़के कारण जो और अन्य रोग पैदा हो जाते हैं जैसे बवासीर आदि, उनमें भी ऊषःपानका सेवन उपयोगी है। यदि कब्ज़ पुराना हो और ऊषःपानसे काम न चले तो जलकी जगह आधा गिलास 'फलोंका रस' जिसके बनानेकी विधि नीचे बताई जाती है पीना चाहिये।

**'फलोंका रस' बनानेकी विधि और उसके गुण—** एक शीशे या पत्थरका प्याला जिसमें दो ढाई छटांक पानी आ सके लो। उसमें एक काग़ज़ी नीबूका रस निचोड़ कर उसके छिलकेके छोटे छोटे टुकड़े करो और उसके बीजोंको भी रसमें भिगो दो। इसके साथ अंजीर, मुनक्के किशमिश और छुहारों से (टुकड़े टुकड़े करके) आधा प्याला भर दो। फिर इसमें इतना ठंडा पानी डालो कि प्याला तीन चौथाई भर जाय। यह काम रातको सोनेसे पहले करना चाहिये और सुबह उठने पर इसका रस छान कर पीना चाहिये। उपर्युक्त परिमाण एक व्यक्तिके लिए है। कुल परिवारके लिए बनाना

हो तो इसी हिसाबसे सब चीजें ज्यादा कर देनी चाहियें। भिगोते समय इस रसमें दिनके खानेसे बचे हुए नारंगी और सेबके बीज और छिलके भी मिलाये जा सकते हैं। छिलके और बीजोंमें जो तेल होता है उसका पुष्टिकारक प्रभाव आंतोंके लिए लाभदायक होता है। इस रसके सेवनसे आंतों-का मल ढीला होकर शीघ्र ही हाजत मालूम होने लगती है और साफ़ पाखाना होता है। जिस घरमें यह 'फलोंका रस' नियम पूर्वक सेवन किया जाता है वहां क़ब्ज़ फटकने नहीं पाता और उसकी तय्यारीमें जो थोड़ा श्रम होता है वह ठिकाने लग जाता है। दुधमुहे बच्चोंको ४ माशे (एक छोटी चम्मच भर) और बड़े बच्चोंको उनकी उम्रके मुताबिक १ तोले से ३ तोले तक यह रस देना चाहिये।

इसके पश्चात् शौच इत्यादि से निवट कर जलपानका समय आता है। उपर्युक्त 'रस' निकालनेके पीछे जो फलोंका फ़ुजला बच जाता है वह और आधे या एक दर्जन बादाम या उनकी जगह कोई दूसरी मींगीदार मेवा खा सकते हैं। बादाम-की मींगी यदि रातको थोड़े पानीमें भिगो दी जाय तो अधिक उत्तम है। यदि इतनेसे तृप्ति न हो तो उसके साथ जलपानमें ताज़ा फलोंका या रातभर भीगे हुए कच्चे चनोंका सेवन भी कर सकते हैं। जिन फलोंका छिलका मुलायम होता है उन्हें बिना छीले ही खाना चाहिये। बाज़े फलोंका छिलका बहुत कड़ा होता है, जैसे आम, केला, खरबूज़ा, तरबूज, नारङ्गी, नीबू, शरीफा इत्यादि; इसलिए इन्हें छीलकर ही खाना उचित है। खानेसे पहले फलोंको ठंढे पानीसे धो लेना चाहिये। छोटे बच्चे चबाना नहीं जानते; इसलिए उन्हें मेवा इत्यादि कुचलकर या छोटे छोटे टुकड़े करके देनी चाहिये।

स्वाभाविक भोजन सादा होना चाहिये। अधिक चटपटी या मसालेदार चीज़ोंका इस्तेमाल अच्छा नहीं। हिन्दुओंमें ऐसा भोजन तामसिक कहलाता है। भोजनके पदार्थोंको अधिक छौंकने बघारने, तलने या देर तक भूनने से उनका पौष्टिक सत ही निकल जाता है। यही हाल बहुत बारीक पिसे हुए आटेका होता है। इसलिए इन चीज़ों-से परहेज करना चाहिये। तरकारियों (आलू इत्यादि) को बक़ल सहित उबालनेसे उनके छिलकोंमें जो स्वाभाविक लवण रहते हैं उनकी हानि नहीं होती, इसलिए इन चीज़ोंको थोड़े पानीमें छिलके सहित उबालना या भापमें पकाना ही उत्तम है। पकानेसे पहले दाल चावल इत्यादि-को धोने से उनके नमक निकल जाते हैं और उनका स्वभाविक स्वाद और गुण कम हो जाता है। आटा बे छना (चोकरदार) इस्तेमाल करना चाहिये; क्योंकि चोकरमें गेहूँका पौष्टिक अंश (सत) रहता है और चोकरदार आटा खाने से कब्ज़की शिकायत नहीं होती। हमारे देशमें साधा-रणतया निम्न लिखित पदार्थोंका स्वाभाविक भोजनमें समावेश हो सकता है।

बेछने आटेकी रोटी
उबाली दाल या सगपहिता
घी या मक्खन
उबाली हुई सादी तरकारियां और शाक
हरे शाक (मूली, गाजर इत्यादि)
दही (ताज़ा)
शहद
भात, खिचड़ी, दलिया
फल और मेवा
रसदार फल (भोजनके अंतमें)
ताज़ा मठा, (भोजनके कुछ देर पहले या बाद)

कोई कोई विद्वान अंडेको भी स्वाभाविक भोजनमें शामिल करते हैं पर हमारी समझमें अंडेकी गिनती ओषधिमें होनी चाहिये; भोजनमें नहीं। इसमें संदेह नहीं कि अंडा एक पुष्टिकारक पदार्थ है, पर भोजनके विचारसे हमारी समझमें अंडेकी गणना तामसिक गुणवाले पदार्थोंमें हो सकती है। सात्विक आहारकी व्याख्या गीतामें की गई है—

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीति विवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृदया आहारः सात्विक प्रियाः ॥१७।८

अर्थ—आयु, सात्विक वृत्ति, बल, आरोग्य, सुख और प्रीतिकी वृद्धि करनेवाले रसीले, चिकने शरीरमें भिदकर चिरकाल तक रहनेवाले, मनको आनन्द दायक आहार सात्विक लोगोंको प्रिय होते हैं।

हमारी समझमें सतो गुण प्रधान भोजनके पदार्थोंकी एक मोटी सी पहचान यह है कि स्वाभाविक अवस्थामें ( बिना धोये पकाये अथवा नमक मिर्च मसाला लगाये ) उन्हें खानेकी रुचि हो और उन्हें देखने, सूंघने या छूनेसे किसी प्रकारकी घृणा उत्पन्न न हो। अंडेमें यह बात नहीं है। कच्चा अंडा खानेमें रुचिकर नहीं होता। यदि अंडेका इस्तेमाल आवश्यक समझा जाय तो उसे कच्चा या थोड़ा उबाल कर खाना चाहिये। ज़्यादा उबालनेसे अंडेकी सफेदी कड़ी होकर गुरुपाक हो जाती है और उसका स्वाभाविक पौष्टिक गुण जाता रहता है। कोई कोई मनुष्य अंडेको तोड़कर गरम पानीमें मिला देते हैं। इस तरहसे भी उसकी सफेदी अधिक कड़ी या गुरुपाक नहीं होने पाती।

तरकारियोंमें केवल मंडसय कंदमूल जैसे आलू, अरवी, शकरकंद इत्यादिका सेवन या उनका अधिक सेवन अच्छा नहीं। इनकी अपेक्षा हरे शाक और तरकारियां अधिक उपयोगी होती हैं। जैसा कि पहले ज़िक्र आचुका है तरकारियोंको उबालनेकी अपेक्षा उन्हें भापमें पकाना ( steaming ), जैसे 'कुकर' में, अधिक अच्छा है; क्योंकि उबालनेके लिए जो पानी इस्तेमाल किया जाता है उसके साथ तरकारीके विविध 'नमक' घुलकर निकल जाते हैं। हलकी आग या राखमें गाड़कर भूननेसे लगभग भापमें पकानेके अनुसार ही प्रक्रिया होती है और तरकारीके अंदरका जल भाप बनकर उसे पका देता है।

शाकोंमें गाजर भी अच्छी चीज़ है। उसके इस्तेमालसे भूक बढ़ती है और खून भी साफ होता है। उसे कच्चा ही खाना अच्छा है। उबालनेसे उसके गुण कम हो जाते हैं।

इसी प्रकार बहुत से लोग मूली, टिमाटर, चुकंदर, शलजम, गोभी, लौकी, कद्दू, तरोई, भिंडी, सेम, करेला, परवल, शकरकंद और अन्य मुलायम हरे शाकोंको भी कच्चा ही खाते हैं। कहते हैं कि ऐसा करने से जठराग्नि प्रबल होकर मनुष्य का पाचन ठीक रहता है और दस्त खुलासा हो कर कब्ज नहीं रहता। कच्चे शाकोंके साथ थोड़ा सा नमक मिलाकर और उन पर नीबूका रस निचोड़ कर खानेसे वह अधिक सुस्वाद और रुचिकर हो जाते हैं।

मांस मनुष्यका स्वाभाविक भोजन नहीं है; इस लिए इसका सेवन ठीक नहीं है। इसके इस्तेमालसे प्रायः 'यूरिक एसिड' सम्बन्धी शिकायतें ( गठिया पथरी इत्यादि ) पैदा हो जाती हैं ( विशेषकर उन लोगोंको जिनकी उम्र चालीस सालसे बीत गई है )। यूरोपमें जहां मांसका इस्तेमाल ज़्यादा होता है बहुत से ऐसे रोग प्रचलित हैं जिनका कारण केवल मांस भोजनका प्रचार है। उनमेंसे गठिया, केन्सर ( ज़हरबाद ) न्यूरेलजिया ( नाड़ी मार्गमें तीव्र वेदना ), कृमि, और मसूढ़ोंसे मवाद जाना (Pyorrhea alveolaris) मुख्य हैं। हर जीवित प्राणी के शरीरमें निर्माण और क्षयका काम होता रहता है। प्रत्येक क्षण नये रगोरेशे बनते और पुराने बिगड़ते रहते हैं। यही बिगड़े हुए विषैले कण (Waste matter) जिनका मुख्य भाग यूरिया और यूरिक अम्ल होता है। शरीरके प्रत्येक भागमें निकासीके लिए उपस्थित रहते हैं और धीरे धीरे शिराओंके द्वारा रक्त प्रवाहमें पड़कर शरीरसे ( मूत्र और श्राव ) मलोंके साथ निकलते रहते हैं। जब कोई जानवर मारा जाता है तो उसकी मांस पेशियोंमें यह क्षीण मल ( Waste matter ) थोड़े बहुत परिमाणमें अवश्य ही मौजूद रहता है। यह मांसके रगोरेशोंमें उतने घनिष्ट रूपसे मिला रहता है कि धोने या पकानेसे उससे पृथक् नहीं होता।

उस तरहसे मांस भोजनमें यह क्षीण पदार्थ भी सम्मिलित रहते हैं और मांस भोजीके पाचन पर अधिक भार डालते हैं पर जब मांसाहारीका शरीर उन्हें यथोचित रूपसे निकालनेमें असमर्थ होता है तो यह उसके शरीरमें इकट्ठा होकर भिन्न भिन्न रोगोंके कारण बन जाते हैं। यह यूरिया या यूरिक अम्ल जो मांसके हानिकारक पदार्थोंका मुख्य अंश है मेवों और फलोंमें नहीं होती जैसा कि ऊपर लिखा गया है। चायकी गिनती मादक द्रव्योंमें है। इसका इस्तेमाल शरीरके लिए आवश्यक नहीं। इसके विपरीत इसके अधिक सेवनसे पाचनशक्ति और नाड़ी मंडल ( nervous system ) निर्बल और शिथिल हो जाता है। सच बात तो यह है कि शराबकी तरह चायका अभ्यास भी देशके लिए एक बड़ी विपत्ति और उसके दुर्भाग्यका लक्षण है।

यदि कब्ज रहता हो तो जैसा ऊपर लिखा गया है 'फलोंका रस' आधा प्याला सोनेसे पहले पी सकते हैं। हमारे देशमें सोनेसे पूर्व प्रायः कुछ दूध पीनेकी चाल है पर दूधका सेवन सोनेसे कमसे कम एक घंटा पूर्व ही कर लेना चाहिये। दूध कुछ गुनगुना ही हो तो अच्छा है। वैद्यकके सिद्धान्तानुसार ऐसा करनेसे दिनमें किये हुए भोजनोंके विकार शांत हो जाते हैं और दस्त साफ होता है।

फलोंके विषयमें कुछ ज्ञातव्य बातें

जैसा हम पहले कह चुके हैं ताज़ा फलोंका सेवन मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए अत्यंत लाभदायक है। अँगूर, अनार, संतरा, सेव, केला, गन्ना इत्यादि-के विचार मात्रसे मुंहमें पानी भर आता है। उस परमात्माकी दी हुई इन स्वाभाविक न्यामतोंके सामने हलवाईकी बढ़ियासे बढ़िया मिठाई भी मात है।

अंगूर अत्यंत पौष्टिक मेवा है। इसमें वह सब उपादान मौजूद हैं, जिनकी आवश्यकता शरीरकी पुष्टिके लिए होती है और जिनके ऊपर मनुष्य जब तक चाहे निर्वाह कर सकता है। बहुत से डाक्टर अँगूरको दूधसे अच्छा समझते हैं, विशेषतः मनुष्यके लिए जो किसी रोगसे उठा हो और निर्बल हो। अँगूर सद्य बलकारक और हृदयको पुष्टि करनेवाला है। इसके सेवनसे शुक्र बढ़ता और चित्तमें प्रसन्नता आती है। दूधसे कभी कभी कब्ज हो जाता है; अँगूरसे ऐसा नहीं होता। अँगूरमें प्रोटीड होता है। यह पदार्थ ( प्रोटीड ) शरीर शक्तिकी पूर्ति करता और नये रगो पट्ठे बनाता है। माताके दूधके प्रोटीडसे अँगूरके प्रोटीडकी मात्रा मिलानेसे जान पड़ता है कि अँगूरमें सौमें १.०३ भाग प्रोटीड होता है और दूधमें १.५३ भाग अर्थात् दूधका प्रोटीड अँगूरके प्रोटीडसे लगभग ड्योढ़ी मात्रामें होता है। प्रोटीडके अतिरिक्त अंगूरके रासायनिक संगठनमें कुछ तेल, खटाई, और विविध नमक भी पाये जाते हैं। खटाईके रूपमें अंगूरके रसमें मैलिक अम्ल ( malic acid ) टारटारिक अम्ल ( Tartaric acid ) और साइट्रिक अम्ल ( citric acid ) पाया जाता है। शरीरके अंदर यह अम्ल ( acid ) कारबोनेट ( carbonic acid ) के रूपमें बदल जाते हैं और खूनको खारी ( alkaline ) रखनेमें मदद देते हैं। उनकी कमीसे स्कर्वी ( Scurvy ) प्रभृति रोग हो जाते हैं। अंगूरमें अधिकतर पोटासियम ( Potassium ) के 'नमक' होते हैं और थोड़ी मात्रामें साधारण खानेका नमक सोडियम हरिद ( Sodium chloride ) हरित सोडियम स्फुरेत ( Sodium Phosphate ) मैग-नीसियम स्फुरेत ( magnesium Phosphate ) और खटिक स्फुरेत ( Calcium Phosphate ) होते हैं। यह सब पदार्थ स्वास्थ्यके लिए आवश्यक हैं और यह शरीरमें ग्लोबुलीन ( Globulen ) को खूनमें घुला मिला रखते हैं और पाचक रस ( Gastric juice ) बनाते और नाड़ी मंडल ( nervous System ) का पोषण करते हैं। अंगूरमें पोटास द्वि-कर्बनेत ( Potash Bicarbonte ) भी होता है उसी-से अंगूरका सेवन ज्वरकी अवस्थामें और बच्चोंके दांत निकलनेमें बहुत लाभदायक होता है। अँगूरमें

जो शकर ( दाख शकर ) होती है वह बहुत जल्द पच जाती है। और शरीरको गर्म और पुष्ट करती है। मीठे अँगूरोंके सेवनसे बिगड़ा हुआ और मंद पाचन सुधर जाता है और रक्तस्राव ( Haemorrhage ) अथवा अधिक परिश्रम या चिंतासे जो रक्त दौर्बल्य ( anaemia ) हो जाता है उसमें भी अँगूरके इस्तेमाल से बड़ा फायदा होता है।

सेब भी स्वास्थ्यके लिए उपयोगी है। सेबमें आंगारक ( Organic ) और लघु पाक रूपमें स्फुर ( Phosphorus ) पाया जाता है और आंगारक स्फुर मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए अति आवश्यक है। सेबमें मैलिक अम्ल ( malic acid ) होता है। यह मनुष्यके पाचक रसका एक आवश्यक अंश है। सेब कच्चे ही खाने चाहियें। उन्हें सूर्य भगवान एक बार अपनी स्वाभाविक ताप ( धूप ) में पका चुके हैं। मनुष्यको कृत्रिम उपायोंसे उन्हें फिर पकानेकी आवश्यकता नहीं है। बहुत बढ़ियासे बढ़िया बनी हुई शकरकी अपेक्षा फलोंकी स्वाभाविक शकर अधिक स्वादिष्ट और गुणकारी होती है। उसीसे बच्चोंको फलोंसे स्वाभाविक रुचि होती है।

नीबू पित्तके विकारोंके लिए बड़ा गुणकारी है और पाचन शक्तिको उत्तेजित करता है। यूरिक अम्ल ( Uric acid ) और दूसरे विषोंको घुलाकर रक्त प्रवाहके द्वारा मल मूत्र रूपमें बाहर निकाल फेंकता है और इस तरह प्रकारान्तरसे रक्त-शोधकका काम करता है; अतः इसका सेवन रक्सी (रक्त-दोष ) गठिया इत्यादि रोगोंमें जो रक्तके विकारोंसे उत्पन्न होते हैं बड़ा लाभदायक है। नीबूके गुण अपार हैं। सेवनसे पूर्व उसमें पानी या शकर मिलानेकी आवश्यकता नहीं है। नीबूकी बहुत किस्म हैं हमारे यहां काग़ज़ी नीबूकी अधिक प्रशंसा की जाती है।

मुनक्का, किशमिश, अंजीर, छुहारा, खजूर, केला और गन्ना प्रभृति फलोंमें और मींगीदार मेवोंमें यथेष्ट रूपमें पौष्टिक अंश होता है; अतः उनकी गिनती सर्वोत्तम भोजनके पदार्थोंमें करना चाहिये। केवल उन्हींके ऊपर निर्वाह करके मनुष्य भली प्रकार स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रह सकता है। मेलट महाशय लिखते हैं कि वह अधिकतर फलोंके ऊपर ही गुज़र करते हैं; जिसका परिणाम यह है कि ५७ वर्षकी उम्रमें वह २० वर्ष पूर्वकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट जान पड़ते हैं। मींगीदारी मेवों (nuts) में अखरोट, काजू, मूँगफली, चिलग़ोज़ा, पिस्ते, चिरौंजी, बादाम, गरी (खोपरा) खरबूजेके बीज इत्यादि शामिल हैं। मींगीदार मेवोंको दूसरे भोजनके साथ खाना ठीक नहीं है। यह खयाल कि मींगीदार मेवे गुरु पाक होते हैं भूल है। हां जब मांस, शाक भाजी, या दूसरे मंड भय भोजन ( रोटी, चावल इत्यादि ) के साथ उनका सेवन किया जाता है तो उन मेवोंके पचनेमें कठिनाई होती है; अतः ऐसे मेवोंको अलहदा खाना ही अच्छा है।

हमारे यहां अमरूद, ककड़ी खीरा इत्यादि बहुधा नमकके साथ खाये जाते हैं। नमकके संयोगसे उन चीज़ोंके पचनेमें सुविधा होती है। हमारे देशमें उन चीज़ोंकी 'ठंडी' तासीर कही जाती है और यह प्रायः देखा भी जाता है कि जब बच्चे या अन्य कोमल स्वास्थ्यवाले मनुष्य इन चीज़ोंका सेवन अधिक मात्रामें, खाली पेट या बिना नमकके करते हैं तो उनके पेटमें दर्द होने लगता है और कभी कभी दस्त भी लग जाते हैं।

इसी तरह हमारे देशमें खरबूजेके साथ शकर, फूटके साथ गुड़ आम और केलाके साथ दूधका सेवन करनेकी चाल है। इन चीज़ोंके संयोगसे उनके साथ खाये हुए फलोंके विकार शान्त होकर उनका पाचन भली भांति होता है।

# प्राणियोंमें वीर्य्य-संयोग, सन्तानोत्पादन और लिङ्ग-भेदके कारण

( गतांक से आगे )

[ लेखक—प्रोफेसर नवलकिशोर सिंह, एम. एस. सी. ]

"लिङ्ग-भेदके कारण और सिद्धान्तोंका निर्णय"

यह उल्लेख किया जा चुका है कि सन्तानका उत्पादन नर वा मादा वीर्य-कोष ( germ cell ) के संयोगसे होता है। अब यह प्रश्न होता है कि नर वा मादा होनेका क्या कारण है ? अर्थात् नर वा मादा सन्तानकी उत्पत्ति किसी वैज्ञानिक नियमोंके आधार पर होती है या नहीं इसके उत्तरमें यह कहना ज़रूरी है कि नर मादा भेदके क्या कारण हैं, इसके विषयमें बहुत मतभेद है। इन मतोंको हम दो श्रेणियोंमें लिखते हैं:—

( I ) प्रथम—कुछ वैज्ञानिकोंका यह मत है कि **'वाह्य अवस्था'** ( External Condition ) ही लिङ्ग भेदका कारण है।

(II) द्वितीय—वीर्य कोषकी 'आन्तरिक अवस्था' (Internal Conditions) के ही कारण नर वा मादा सन्तान होती है। हम उन वैज्ञानिक तत्ववेत्ताओंके कल्पनाओं तथा सिद्धान्तोंपर समालोचनात्मक विचार प्रकट करते हैं:—

(१) फ्रेंच वैज्ञानिक केनेस्ट्रीनी (Canistrini) ने कल्पना की कि लिङ्गभेदकी रचना वीर्य कीटाणुकी संख्या पर निर्भर है, जो वीर्य-प्रयोगके समय हो अर्थात् जितने वीर्य कीटाणु रजकोषसे संयोग करें उसके ही अनुसार मादा व नर होगा। केनेस्ट्रेनीका सिद्धान्त अत्यन्त निर्बल है और वैज्ञानिक प्रमाणोंके अनुसार ठीक नहीं मालूम होता; क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है और यह सर्वमान्य भी है, कि केवल एक ही वीर्य कीटाणुसे रजकोषका संयोग होता है और यदि कभी एकसे अधिक वीर्य कीटाणु रजकोषसे संयोग करे तो परिणाम यह होगा कि कोई विचित्र रूपकी सन्तान होगी जो या तो पूर्ण रूपसे बढ़ ही नहीं पाती या उत्पत्तिके समय ही नष्ट हो जाती है।

(२) प्रोफेसर थुरी (Thury) ने १८६३ में और डूसिंगु (Dusing) ने १८८३ में यह कल्पना की कि यदि वीर्य कीटाणु रजकोषसे तत्काल ही संयोग करे जिस समय कि रजकोषका उत्पादन हो तो मादा होगी और यदि वीर्य कीटाणु रजकोषके उत्पादनके कुछ देर पश्चात् उससे संयोग करे तो नर सन्तान होगी। कुछ प्रमाण तो देरसे वीर्य-संयोग (fertilisation) का ऐसा मिलता है जो नर सन्तान होनेके पक्षमें है; तो भी इन महाशयोंके सिद्धान्त स्वीकृत नहीं किये जा सकते क्योंकि परीक्षा द्वारा सिद्ध नहीं होते।

(३) प्राणीतत्ववेत्ता वान हेन्सन (Van Hensen) ने १८८१ में कल्पना की कि यदि वीर्यकीटाणु और रजकोष अपने पूर्ण वेग अर्थात् तेज गतिकी अवस्थामें हों तो सन्तान मादा होगी। एच. एम. वरणन (H. M. Vernon) ने भी १८९८ में वैज्ञानिक प्रमाणोंसे सिद्ध किया कि वीर्य-कोषकी तत्कालिक उत्पत्ति का भी प्रभाव नर तथा मादाके पैदा होनेपर अधिक और अवश्य पड़ता है। इन वैज्ञानिकोंके विचार लेते हुए भी यह पूरी तौरसे निश्चित नहीं हुआ कि लिङ्गभेद (नर मादा भेद) का असल कारण क्या है।

( ४ ) होफेकर ( Hofacker ) ने १८२३ में और सेडलर ( Sadler ) ने १८३० में कई स्थानोंसे अंक-शास्त्रकी व्यवस्थानुसार बहुत से अंक एकत्रित किये और उनसे यह फल निकाला कि यदि पुरुष स्त्रीसे उम्रमें बड़ा हो तो नर बालक अधिक होंगे और यदि स्त्री बड़ी हो तो सन्तान नारी होगी। उक्त प्रमाणोंके आधार पर इन विद्वानों ने यह सिद्धान्त स्थापित किया कि 'स्त्री पुरुषकी आयु सम्बन्धी अन्तर ही नर वा नारीका मुख्य कारण है'। इस सिद्धान्तसे भी लिङ्गभेदका कारण

ज्ञात नहीं होता; क्योंकि और विद्वानोंको जो अंक Statistics) प्राप्त हुए हैं वह हौफेकर और सेडलरके अंकोंके विरुद्ध हैं। अतएव अंक-शास्त्र द्वारा प्रमाणोंका एकत्र करना व्यर्थ है। बहुत लोगोंका विश्वास है कि माता वा पिताके शारीरिक बल तथा स्वास्थ्यपर नर वा नारी सन्तानका होना निर्भर है अर्थात् पिता बलवान हो तो बालक होगा और यदि माता बलवान हुई तो बालिका। यह विचार भी प्रायोगिक प्रमाणोंके अनुसार ठीक नहीं कहा जा सकता।

(५) बहुत से प्राणिविद्याविशारदोंका मत है कि खान पान (Nutrition) का भी सन्तानपर अधिक असर पड़ता है और यह प्रायः रीढ़धारी अर्थात् पृष्ठवंशीय प्राणियों (Vertebrates) में देखा गया है (यदि यह विचार सही है कि रीढ़धारी प्राणी अपनी गर्भावस्थामें शिखंडवत श्रेणी (Hermaphrodite condition) को प्राप्त होते हैं अर्थात् उनकी गर्भावस्थामें एक ऐसी श्रेणी होती है जिसमें सन्तान न तो मादा कही जासकती है और न नर)।

(i) एक जर्मन प्राणिविज्ञ इंफुंग (Enfung) ने यह प्रयोग किया कि जब मेढ़कके बच्चे (Tadpoles) वानस्पतिक आहार पर रखे जाते हैं तो नर वा मादाका सन्तानका अनुपात (Proportion) लगभग ४३ : ५७ रहता है। यदि वनस्पतिके स्थानमें मांसमय आहार दिया जाय तो मादा की संख्या पहिलेकी अपेक्षा अधिक बढ़ जाती है।

(ii) मिसेज़ ट्रीट (Mrs. Treat) ने भी प्रयोग द्वारा दिखलाया कि यदि पतंग कीड़ेके बच्चों (Caterpillars) को निराहार रखा जाय तो नर हो जाते हैं। पर और वैज्ञानिकोंको विरुद्ध परिणाम मिले हैं।

(६) डारविन (Darwin) का अनुमान था कि नर तथा मादा सन्तानका पैदा होना मनुष्य एवं प्राणियों की स्वाभाविक सन्तानोत्पादन शक्ति पर निर्भर है। यों अनुमान कीजिये कि कोई दो प्राणी क (नर) और ख (मादा) प्राकृतिक 'जीवन-संग्राम' (Struggle for existance) में जीवित रहे और (क) का सम्बन्ध (ख) से हुआ। अब यह देखना चाहिये कि (क) और (ख) में कौन प्राकृतिक समाजके योग्य है। कल्पना कीजिये (क) योग्य है। अब यदि (क) के पूर्वजोंके अधिक नर बच्चे या मादा बच्चे हुए तो (क) की सन्तान भी वैसी ही होगी। अब (ख) को लीजिये। यदि (ख) प्राकृतिक समाजके योग्य हुई तो (ख) भी अपने पितामहके अनुसार नर वा मादा बच्चे उत्पन्न करेगी। डारविनका 'प्राकृतिक सङ्कलनका सिद्धान्त' (Theory of natural selection) सर्व मान्य और बहुत ठीक है; पर कहां तक? हम मानते हैं कि संसारमें नित्य प्राकृतिक 'जीवन संग्राम' होता है और जो इस लड़ाईमें योग्य हो वह जीवित रहता है और अपनी भावी सन्तानमें अपना गुण भी पहुँचाता है; पर लिङ्ग भेदका कारण डारविनके सिद्धान्तसे हल नहीं होता; जिसे हम विज्ञ पाठकोंके विचारके ही लिए छोड़ते हैं।

(७) वैद्यों तथा डाक्टरोंकी यह कल्पना रही है कि दोनों ओरके रजकोषेन्द्रिय (Ovaries) से दो प्रकारके वीर्य-अंडे अर्थात् रजकोष (Ova) उत्पन्न होते हैं—(१) एक तो वह जिससे मादा पैदा होती है (२) दूसरे वह जिससे नर पैदा होता है। मानव जातिमें यह अनुमान किया जाता है कि दोनों रजकोषेन्द्रियां एक साथ ही नहीं रजकोषका उत्पादन करतीं; बल्कि एकके बाद दूसरेसे होता है अर्थात् एक इन्द्रीसे जब रजकोष पैदा हो चुकता है तो वह इन्द्री कुछ समयके लिए निश्चेष्ट रहती है और रजकोषका उत्पादन बन्द कर देती है। फिर दूसरी इन्द्रीसे उत्पादन होता है। इसी तरह एकके बाद दूसरी इन्द्रीकी बारी आती रहती है। इससे यह ज्ञात हुआ कि यदि पहिले वीर्य-संयोग (fertilisation) का फल मालूम हो गया कि नर वा मादा सन्तान हुई तो पश्चात्‌के वीर्य संयोगके परिणामको निश्चय पूर्वक कह सकते हैं कि क्या होगा। पर यह सिद्धान्त भी यथार्थमें प्रमाणोंसे सिद्ध

नहीं होता। यह केवल डाक्टरोंका एक कल्पित विचार है जो कि अप्रायोगिक और बिलकुल प्रमाण-विरुद्ध है; क्योंकि न तो दो प्रकारके वीर्य अन्डे (रज-कोष) ही प्रयोगमें दृष्टिगोचर हुए हैं और न उनका वीर्य संयोग ही देखनेमें आया, जिससे यह ज्ञात हो कि नर वा मादा सन्तान उपर्युक्त कल्पना अनुसार होती है।

(ङ) कल्पनायें तो लिङ्ग-भेदके विषयमें लगभग ५०० के हैं; बल्कि इससे भी ज़्यादा हों तो कुछ आश्चर्य नहीं, पर इनसे कोई निश्चित परिणाम नहीं निकलता। यह अभी हालके अन्वेषणोंसे ज्ञात हुआ है कि स्त्रीत्व वा पुंस्त्वका गूढ़ रहस्य वीर्य कोषमें ही स्थित है। पर इस आन्तरिक सम्भावनाका विचार वैज्ञानिकोंको यथाक्रम प्रकट हुआः—

(I) सबसे प्रथम जो जांच संयोगहीन अन्डे (Parthenogenetic eggo) की की गई उससे यह ज्ञात हुआ कि जिन अन्डोंसे मादा उत्पन्न होती हैं वह उन अन्डोंकी अपेक्षा जो नर उत्पन्न करते हैं विभिन्न होते हैं।

(II) उपर्युक्त भिन्नताके अतिरिक्त उन अन्डोंमें एक और अन्तर संयोग होने वा न होनेका भी है, क्योंकि हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि जिन अन्डों-से नर उत्पन्न होते हैं उन अन्डोंका वीर्य कीटाणुसे संयोग नहीं होता अर्थात् वह अन्डे संयोगहीन होते हैं और जिन अन्डोंसे कि मादा उत्पन्न होती है उनका संयोग होता है।

(III) जब उपर्युक्त (I) और (II) भेद ज्ञात हुए तो कोषतत्ववेत्ताओं (cytologists) ने यह कल्पना की कि "अन्डेका संयोग होना वा न होना ही मादा व नर होनेका मुख्य कारण है।" पर यह कल्पित मत संतोष-जनक न होनेके कारण अस्वी-कृत रहा और डानकेस्टर (Doncaster) इत्यादि कोष-विदोंने 'क्रोमोसोम सिद्धान्त' द्वाराजो व्याख्या की वह ठीक प्रमाणित हुई। यहां यह कहना ज़रूरी है कि संयोगहीन अन्डोंके विषयमें वैज्ञा-निकोंमें बहुत वादविवाद हुआ; पर इस वादावि-वादसे उनको अन्वेषणका एक नवीन मार्ग मिल गया जो बहुत ही सुगम और फलदायक सिद्ध हुआ।

उपर्युक्त वर्णित कल्पनाओं तथा सिद्धान्तोंके समालोचनात्मक विचारसे विदित होता है कि प्रायोगिक प्रमाणोंकी कमीके कारण इनके आधार-पर लिङ्गभेदका कोई विशेष और सन्तोषजनक सि-द्धान्तका स्थापित करना कठिन है। अतएव नर वा मादा होनेके कारणोंके जाननेके लिए हमें और रास्ते ढूँढ़ने चाहियें; पर यह गुप्त भेद केवल वीर्य कोषकी आन्तरिक अवस्था से ही प्रकट हो सकता है। आधुनिक अन्वेषण जो वीर्य-कोषके विषयमें हुए हैं उनसे बहुत निश्चित प्रमाण वा फल मिले हैं। इनका वर्णन हम यहां करते हैं।

### आधुनिक अन्वेषण और लिङ्ग-क्रोमोसोमका वर्णन

ई० बी० विलसन (E. B. Wilson) ने १६०६ में अपने अन्वेषणोंसे सिद्ध किया कि "तितली, पतंग कीड़े, कांतर, मक्खी वा अन्य कीड़ोंकी सैकड़ों जातियोंमें दो प्रकारके वीर्य-कीटाणु होते हैं, जो एक दूसरेसे एक विचित्र क्रोमोसोमके होनेके कारण विभिन्न होते हैं। इस विचित्र क्रोमोसोमको हम विलसन (Wilson) के अनुसार स-क्रोमोसोम अर्थात् लिङ्ग-क्रोमोसोम (X-Chromosome or Sex Chromosome) के नाम देंगे। यह लिङ्ग अर्थात् 'स-क्रोमोसोम' दोनों प्रकारके वीर्य-कीटा-णुओंमें साधारणतया नहीं होता; बल्कि एक वीर्य-कीटाणुमें होता है और दूसरेमें नहीं; इसके अति-रिक्त यह 'स-क्रोमोसोम' वीर्य कीटाणुके साधारण क्रोमोसोमोंकी अपेक्षा कुछ विभिन्न होता है। विल सनने उन प्राणियोंके 'वीर्यसंयोग' (fertilisation) की परीक्षा की जिनमें उपर्युक्त प्रकारके वीर्य-कीटाणु होते हैं और यह देखा कि:—

(१) जब रजकोष (Ova) का संयोग स-क्रो-मोसोम वाले वीर्य-कीटाणु (Spermatozoa) से होता है तो सन्तान मादा होती है (२) और यदि रजकोषका संयोग स-क्रोमोसोम रहित वीर्य-कीटा-

चित्र संख्या (३२)—प्रोटीनर बिलफ्रीजियाई का वीर्य-कीटाणु-उत्पादन ( Morgan के चित्र से कुछ परिवर्तित )
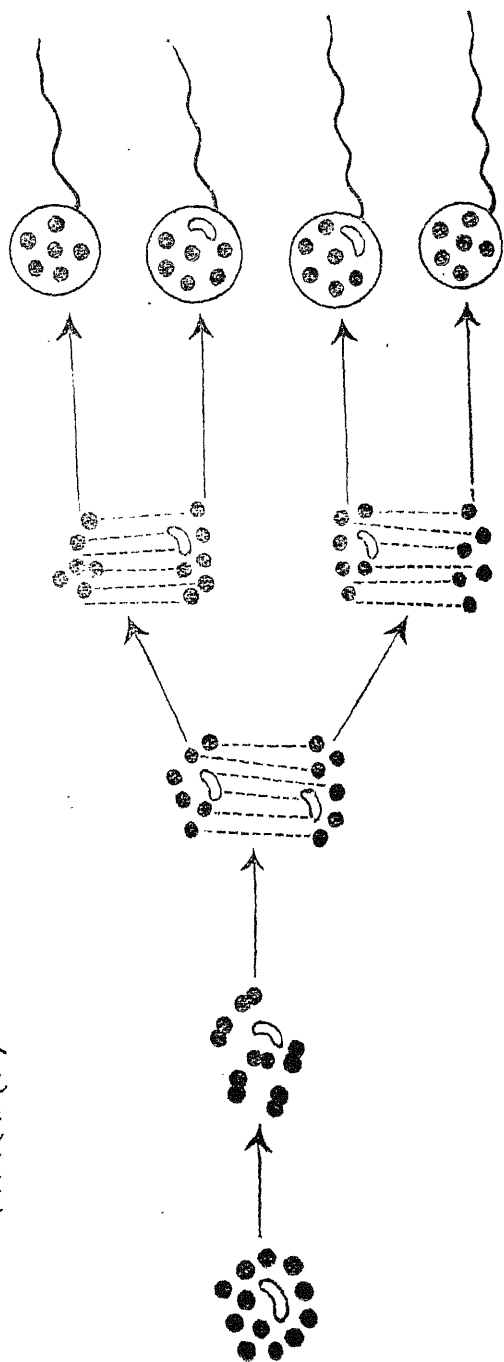
क—आदि वीर्य-कोष (१३ क्रोमोसोम दर्शित हैं—काले बिन्दु वाले १२ तो साधारण और एक सफ़ेद चिन्ह वाला लिङ्ग-क्रोमोसोम है; जो औरों की अपेक्षा लम्बा और बड़ा है।

ख—प्रथम नर-जनक कोष की संयुक्तसोम अवस्था (Synopsis)

ख₁—द्वितीय नर-जनक कोष और लिङ्ग-क्रोमोसोम का विभाजन।

ग—कीट-उत्पादक कोष जो क्रोमोसोम के दलों के कारण संख्या में चार हैं।

घ—वीर्य-कीटाणु (Spermatozoa) जो संख्या में चार हैं जिनमें से दो में तो लिङ्ग-क्रोमोसोम है और दो में नहीं।

णुसे होता है तो सन्तान नर होती है। विलसनके अतिरिक्त और प्राणि-तत्ववेत्ताओंने भी परीक्षा की और उन्हें भी निश्चित फल प्राप्त हुए। उपर्युक्त प्रायोगिक प्रमाणोंसे अब यह प्रकट है कि नर या मादाके भेदका मूल कारण स-क्रोमोसोम ही है। हम यहां प्रोटीनर ( Protenor ) नामक प्राणीका वर्णन करते हैं, जिसमें पूर्वोक्त दो प्रकारके वीर्य कीटाणु होते हैं।

(i) नर प्रोटीनर-बिलफ्रीज़ियाई ( Protenor-Belfregei ) का वीर्य-कीटाणु उत्पादन (Spermato genesis ):—यह कीड़ों (Insect) की एक जाति है। नरप्रोटीनरके शारीरिक कोष (Body-cell ) में १३ क्रोमोसोम होते हैं और यही संख्या इसके आदि-वीर्य-कोषमें भी होती है। इन १३ क्रोमोसोममें १२ क्रोमोसोम तो साधारण क्रोमोसोम की तरह होते हैं; पर शेष एक क्रोमोसोम इन १२ क्रोमोसोमोंकी अपेक्षा बड़ा होता है। यह बड़ा और एकाकी (Unpaired ) क्रोमोसोम

'लिङ्ग—क्रोमोसोम' है और इसे 'स-क्रोमोसोम' नाम ही देना उचित है । अब 'प्रोटीनर' में दो प्रकारके वीर्य-कीटाणु किस तरह उत्पन्न होते हैं और स-क्रोमोसोम उनमें कैसे प्रवेश करता है यह निम्न लिखित वर्णनसे विदित होगा:—

(i) आदि वीर्य-कोष जिसमें कुल १३ क्रोमोसोम हैं (१२ तो साधारण और १ स-क्रोमोसोम) विभाजित हुआ और उससे एक वीर्य-कोष उत्पन्न हुआ, जिसे 'प्रथम नर जनक-कोष' (Primary Spermatocyte) कहते हैं (चित्र ३२, क) । इस प्रथम नर जनक कोषमें पूर्वोक्त क्रोमोसोम जोड़ोंमें श्रेणी-बद्ध होते हैं—अर्थात् १२ साधारण क्रोमोसोममेंसे प्रत्येक दो दो क्रोमोसोमके ६ जोड़े क्रोमोसोम हुए और एक क्रोमोसोम ( स-क्रोमोसोम ) एकाकी अर्थात् विलग रहता है (चित्र ३२, ख ) । क्रोमोसोमके जोड़ेमें श्रेणीबद्ध अवस्थाको 'संयुक्तसोम अवस्था' (Synopsis) कहते हैं । इसके पश्चात

(ii) प्रथम नर जनक कोषके संयुक्त क्रोमोसोमके विभाजन से दो कोष उत्पन्न होते हैं ( चित्र ३२,ख१ ) जिन्हें द्वितीय नरजनक कोष कहते हैं और प्रत्येक कोषमें ७ क्रोमोसोम होते हैं (जिसमें ६ तो साधारण क्रोमोसोम और एक स-क्रोमोसोम) होता है । जिस समय कि प्रथम नर जनक कोषके संयुक्त-क्रोमोसोम विभाजित होते हैं उस समय लिङ्ग—क्रोमोसोम भी विभाजित होता है; स-क्रोमोसोमकी यह विशेषता स्मरण रखने योग्य है; क्योंकि स-क्रोमोसोमका विभाजन केवल द्वितीय नर-जनक कोषके समय ही होता है ।

(iii) प्रत्येक द्वितीय नर-जनककोषके सात सात क्रोमोसोमके दल ( चित्र ३२ ग, ) विभाजित होकर तेरह तेरह क्रोमोसोमके दो दल हो जाते हैं (चित्र ३२, ग) । इस समय लिङ्ग क्रोमोसोम अर्थात् स-क्रोमोसोमका विभाजन नहीं होता । पूर्वोक्त दल तेरह तेरह क्रोमोसोमके चार कीट-उत्पादक कोषमें इस तरह श्रेणी बद्ध होते हैं—दो कीट-उत्पादक कोषमें तो ६ साधारण क्रोमोसोम प्रवेश होते हैं और शेष दोमें ७ क्रोमोसोम ( चित्र ३२ ग )—फलतः दो द्वितीय नर जनक कोषके विभाजनसे चार कीट-उत्पादक कोष उत्पन्न हुए जो दो प्रकारके हैं:—दो तो लिङ्ग क्रोमोसोम रहित हैं, जिनमें से प्रत्येकमें ६ क्रोमोसोम होते हैं और दो लिङ्ग क्रोमोसोम सम्पन्न हैं, जिनमें से प्रत्येकमें ७ क्रोमोसोम होते हैं । पूर्वोक्त चार कीट-उत्पादक कोष अन्तमें परिवर्तित होकर चार वीर्य-कीटाणु (Spermatozoa) बनजाते हैं । यह वीर्य कीटाणु दो प्रकारके होते हैं:—(१) दो तो वह जिनमें स-क्रोमोसोम नहीं होता और (२) शेष दो जिनमें स-क्रोमोसोम होता है ( चित्र ३२, घ ) ।

मादा प्रोटीनरके शारीरिक वा आदि वीर्य कोषके देखनेसे कुल १४ क्रोमोसोम ज्ञात होते हैं, जिनमेंसे १२ तो साधारण क्रोमोसोमकी तरह होते हैं और शेष दो जो लिङ्ग क्रोमोसोम हैं बड़े होते हैं (चित्र ३३ क) । हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं कि प्रत्येक प्राणीके रजकोष या वीर्य-कीटाणुके उत्पादनके समय क्रोमोसोमकी संख्यामें न्यूनता होती है और वह घट कर रजकोष ( या वीर्य कीटाणु ) में आदि वीर्य कोषकी अपेक्षा केवल आधी रह जाती है, पर प्रोटीनरके रजकोषमें एक विशेषता यह है कि साधारण क्रोमोसोमकी न्यूनताके साथ लिङ्ग क्रोमोसोमकी भी न्यूनता होती है, जैसा यह नीचे वर्णनसे विदित होगा:—

(I) आदि वीर्यकोषके १४ क्रोमोसोम 'प्रथम रजजनक कोष'में संयुक्तसोम अवस्था (Synopsis)-में ७ जोड़ोंमें श्रेणी बद्ध होते हैं । (६ जोड़े तो साधारण १२ क्रोमोसोमके और १ जोड़ा दो लिङ्ग क्रोमोसोमका बनता है ।) (चित्र ३३ ख) । इसके पश्चात् 'प्रथम रजजनक कोष ( 1st Oocyte )से विभाजित होकर 'द्वितीय रजजनक कोष, ( 2nd Oocyte ) बनता है और इसमें पूर्वोक्त जोड़े क्रोमोसोमके विभाजित होकर पुनः १४ क्रोमोसोम हो जाते हैं, जिनमेंसे सात सात क्रोमोसोमके दो दल बनकर कोषके प्रत्येक ध्रुवको ( Pole ) ओर जा लगते हैं ( चित्र ३३, ग) । इसके बाद कोषके ऊपरी ध्रुवके क्रोमोसोम-

के दलके विभाजनसे एक ध्रुव कोष (७क्रोमोसोम-का) उत्पन्न होता है, यह ध्रुव कोष प्रथम ध्रुव कोष (1st Polar body) के नामसे प्रसिद्ध है ( चित्र ३३, ग१) । प्रथम ध्रुवकोषके बाद एक और ध्रुवकोष ( ७क्रोमोसोमका ) तैयार होता है जो 'द्वितीय ध्रुव कोष' ( 2nd Polar body )के नामसे कहा जाता है (चित्र ३३, ३) । अब सात क्रोमोसोम जो रजजनक कोषमें रह गये उनका रज-कोष (Ovum) बन जाता है। थोड़े समयके पश्चात् 'प्रथम ध्रुव कोष'से विभाजित होकर एक 'तृतीय ध्रुव कोष ( 3rd-Polar body) भी उत्पन्न होता है। जिस समय कि रजकोषसे सब ध्रुव—कोषबनकर निकल जाते हैं उस समय रजकोष पूर्णताको प्राप्त होता है और 'परिपक्व या पूर्ण रजकोष, (Matured ovum)के नामसे प्रसिद्ध होता है। क्योंकि बिना राजकोषके परिपक्व हुए अर्थात् बिना ध्रुव कोषोंके निकले रज-कोषका संयोग (Fertilisation) वीर्य-कीटाणुसे कदापि नहीं होता और और यह प्राकृतिक नियम हर प्राणीमें प्रचलित है। चित्रके देखनेसे मालूम होगा कि रजकोषमें शारीरिक वा आदि वीर्यकोष-की अपेक्षा क्रोमोसोमकी केवल आधी संख्या है और यह भी ध्यान देने की बात है कि प्रोटीनर के रजकोष वीर्य कीटाणु की तरह दो प्रकार के नहीं होते अर्थात् प्रोटीनरके सब रजकोष एकसे होते हैं और उनमें क्रोमोसोमकी संख्या बराबर होती है अर्थात् कुल ७ ( सात क्रोमोसोम होते हैं जिनमें से ६ तो साधारण हैं और १ स—क्रोमो-सोम (Sex or X-chromosome) है।

अब हम प्रोटीनर, लीज़ियस, आस्केरिस इत्यादि प्राणियोंके वीर्य संयोग (Fertilisation) के फलोंका संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

प्रोटीनर, लीजियस, और एस्किरिसका वीर्य संयोग और उनमें लिङ्ग भेद।

(१) प्रोटीनर ( Protenor )—जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है प्रोटीनरमें दो प्रकारके वीर्य-कीटाणु होते हैं; एक तो स-क्रोमोसोम रहित

चित्र सं० (३३)—प्रोटीनर विलफ्रीजियाई के रज कोष-उत्पादन का (Morgan के चित्र से कुछ परिवर्तित )

क—आदि वीर्य-कोष (१४ क्रोमोसोम दर्शित हैं—१२ काले विन्दी वाले तो मामूली क्रोमोसोम हैं और शेष दो सफ़ेद और बड़े हैं जो लिङ्ग क्रोमोसोम हैं। )
ख—प्रथम 'रज-जनक कोष और क्रोमोसोम का जोड़े में श्रेणी वद्ध होकर संयुक्त-सोम अवस्था में होना।
ग—द्वितीय 'रज-जनक कोष और पूर्वोक्त संयुक्त-क्रोमोसोम का विभाजन।
ग१—१ प्रथम 'ध्रुव कोष' की उत्पत्ति 'द्वितीय रज-जनक कोष से।
घ—परिपक्व रज-कोष (Mafered ovun)—२—प्रथम ध्रुव कोष की विभाजित दशा तृतीय ध्रुव-कोष के लिए। ३—द्वितीय ध्रुव-कोष।

कीटाणु ( जिसमें कुल ६ साधारण क्रोमोसोम होते हैं ) दूसरे स-क्रोमोसोम सम्पन्न कीटाणु ( जिसमें १ लिङ्ग क्रोमोसोम और ६ साधारण क्रोमोसोम होते हैं )। इस प्राणीमें जब रजकोष ( Ova ) का संयोग ( Fertilisation ) स-क्रोमोसोम रहित वीर्य कीटाणु (Spermatzoa) से होता है तो सन्तान नर होती है और यदि रजकोषका संयोग स—क्रोमोसोम वाले वीर्य कीटाणु से होता है तो सन्तान सदा मादा होती है। ( चित्र ३४ क )

( २ ) लीजियस (Lygeus):—इस प्राणीमें भी दो प्रकारके वीर्य कीटाणु होते हैं और दोनोंमें लिङ्ग क्रोमोसोम होता है। भेद केवल इतना है कि एक

चित्र सं० (३४) प्रोटीनर, लीजियस, और एस्केरिस प्राणीके वीर्य-संयोगके फल और उनकी सन्तानोंमें लिङ्ग-भेद—
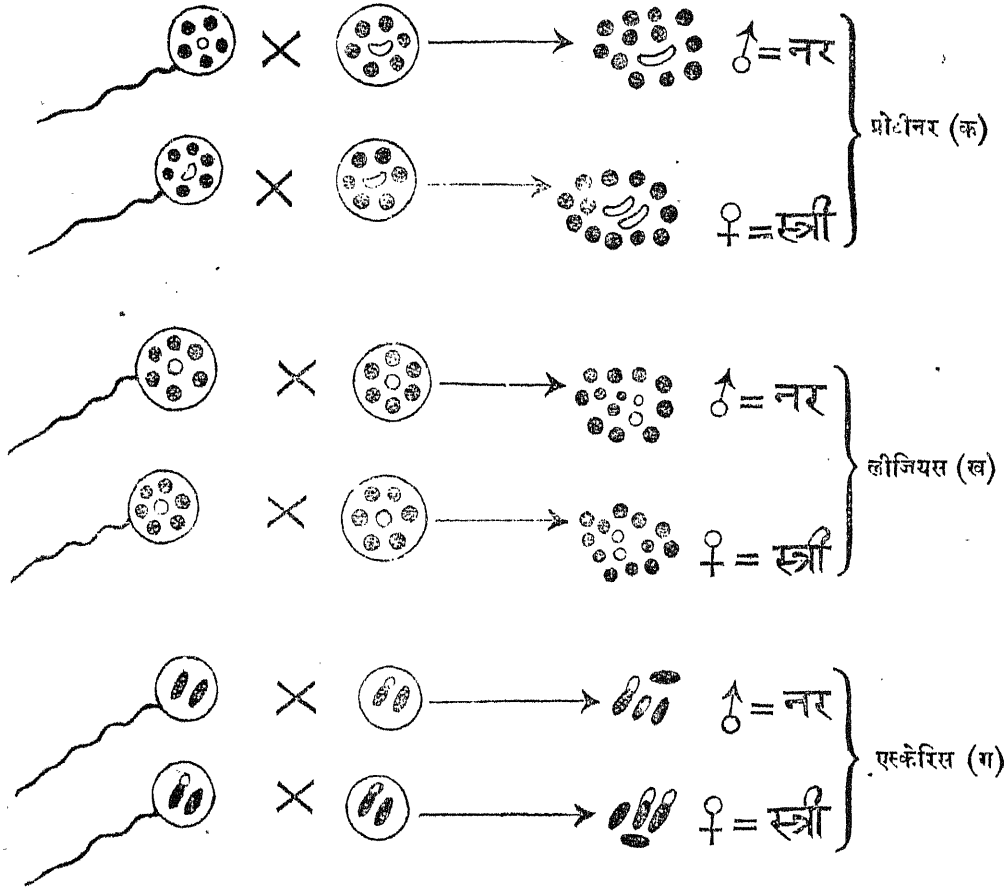
उपर्युक्त चित्रके देखने से विदित होगा कि प्रोटीनर, लीजियस और एस्केरिस प्राणियोंमें से प्रत्येकमें दो प्रकारके वीर्य-कीटाणु ( Dimorphic Spermatozoa ) होते हैं और उक्त प्राणियोंकी सन्तानोंमें लिङ्ग-भेद इन वीर्य-कीटाणुओंके कारण होता है। प्रोटीनर और एस्केरिस प्राणियोंके वीर्य-कीटाणुओंमें से कुछमें तो लिङ्ग-क्रोमोसोम होता है और कुछमें नहीं होता, पर लीजियस प्राणीके कीटाणुओंमें से कुछमें लिङ्ग-क्रोमोसोम छोटा होता है और कुछमें बड़ा।

वीर्य-कीटाणु में स-क्रोमोसोम दूसरे वीर्य कीटाणु की अपेक्षा बड़ा होता है, अतएव इस प्राणीमें जब रजकोषका संयोग छोटे लिङ्ग-क्रोमोसोम-वाले वीर्य-कीटाणुसे होता है तो सन्तान नर होती है और जब बड़े लिङ्ग-क्रोमोसोम वाले वीर्य कीटाणु से होता है तब सन्तान मादा होती है ( चित्र ३४, ख । )

( ३ ) ऐस्किरस ( Ascaris ):—इस प्राणीमें भी प्रोटीनरकी तरह एक वीर्य-कीटाणुमें लिङ्ग-क्रोमोसोम होता है और दूसरेमें नहीं, पर प्रोटीनर और लीजियसकी अपेक्षा इस प्राणीके शारीरिक वा आदि-वीर्य-कोषमें क्रोमोसोमकी संख्या बहुत कम होती है। अतएव इस प्राणीमें जब रजकोषका संयोग लिङ्ग-क्रोमोसोम रहित वीर्य-कीटाणुसे होता है तो सन्तान नर होती है और जब लिङ्ग-क्रोमोसोमवाले वीर्य-कीटाणुसे संयोग होता है तब सन्तान मादा होती है (चित्र ३४, ग)। उपर्युक्त प्राणियोंके वीर्य-संयोगसे अब स्पष्ट विदित होता है कि नर या मादा होनेका मुख्य कारण लिङ्ग-क्रोमोसोम ही है, जिसके विचित्र रूपसे वीर्य-कीटाणुमें होने या न होनेके कारण प्राणियोंमें लिङ्ग भेद होता है ।

मानव जातिके लिङ्ग भेदका वर्णन ( चित्र ३५ )

प्राणियोंके अतिरिक्त मानवजातिमें भी अन्वेषण से सिद्ध हुआ है कि दो प्रकारके वीर्य-कीटाणु होते हैं, जिसमेंसे एकमें तो लिङ्ग क्रोमोसोम होता है और दूसरेमें नहीं होता। इसमें तो वैज्ञानिक लोग सहमत हैं कि मनुष्यमें दो प्रकारके वीर्य-कीटाणु होते हैं पर विवाद और शंका थी और है तो केवल वीर्य-कोष के क्रोमोसोमकी संख्याके विषयमें। मतभेदका होना स्वाभाविक है और इसके कई कारण हैं :—

(i) एक तो यह कि मानवजातिमें अन्वेषण करना एक कठिन कार्य्य है ।

(ii) क्रोमोसोमकी सूक्ष्मता और अधिकताके कारण उसका गिनना बड़े धीर परिश्रमका काम है।

(iii) उपर्युक्त क्रोमोसोमोंका आपसमें चिपके वा जुड़े रहना एक और कठिनताका कारण है।

(iv) अन्वेषणके लिए ताज़ा द्रव वीर्यकी प्राप्ति मुशकिल है ।

(v) विभिन्न जातिके मनुष्योंमें क्रोमोसोमकी संख्यामें विभिन्नता होना। यह अनुमान किया जाता है कि हबशी जाति (Negroes) के वीर्यकोषमें क्रोमोसोमकी संख्या गोरे लोगोंकी अपेक्षा केवल आधी होती है। उपर्युक्त कठिनाइयोंके होते हुए भी हमें निराश न होना चाहिये। मानवजाति सम्बन्धी अन्वेषणने जो रूप यथाक्रम बदला उसका संक्षेपमें हम वर्णन करते हैं :—

(१) सबसे पहिले गायर ( Guyer ) ने १६१० में यह पता लगाया कि पुरुषों में भी दो बेजोड़ीदार अर्थात् एकाकी (unpaired) क्रोमोसोम होते हैं, जो अन्य प्राणियों तथा कीड़ोंके एकाकी (अर्थात् लिङ्ग) क्रोमोसोमके सदृश होते हैं और वीर्य-कोषके साधारण क्रोमोसोमसे कुछ विभिन्न होते हैं। उक्त स-क्रोमोसोम वाले वीर्य-कीटाणुसे तो लड़की होती है और स-क्रोमोसोम रहित कीटाणुसे लड़का। गायर ने १२ क्रोमोसोम एक श्रेणीके वीर्य-कीटाणु में गिने और १० क्रोमोसोम दूसरे श्रेणीके वीर्य-कीटाणुमें । गायरकी बात कुछ कमीके कारण निश्चय पूर्वक स्वीकृत न हो सकी ।

(२) मान्टगुमरी (Mont gomery) ने भी उसी विषयमें खोज की और जो क्रोमोसोमकी संख्या गायर (Guyer) को ज्ञात हुई थी वही मान्टगुमरीको भी मिली पर स-क्रोमोसोका पता मान्टगुमरीको न लगा। जार्डन (Jordon) ने भी कई दूध देनेवाले पशुओंमें अन्वेषण किया है और इनका दृढ़ विचार है कि कइयोंमें दो प्रकारके वीर्यकीटाणु होते हैं जिस तरह कि अन्य कीट, पतंग आदिमें पाये जाते हैं ।

(३) हालमें ही जो खोज हुई है वह प्राणिविज्ञवान विनी वार्टर ( Von Winiwarter ) की है। इन महाशय की विधि गायर मान्ट गोमरी तथा गार्डनकी अपेक्षा उत्तमतर और पुष्ट है। विनी वार्टरको लगभग ४७ क्रोमोसोमके ज्ञात
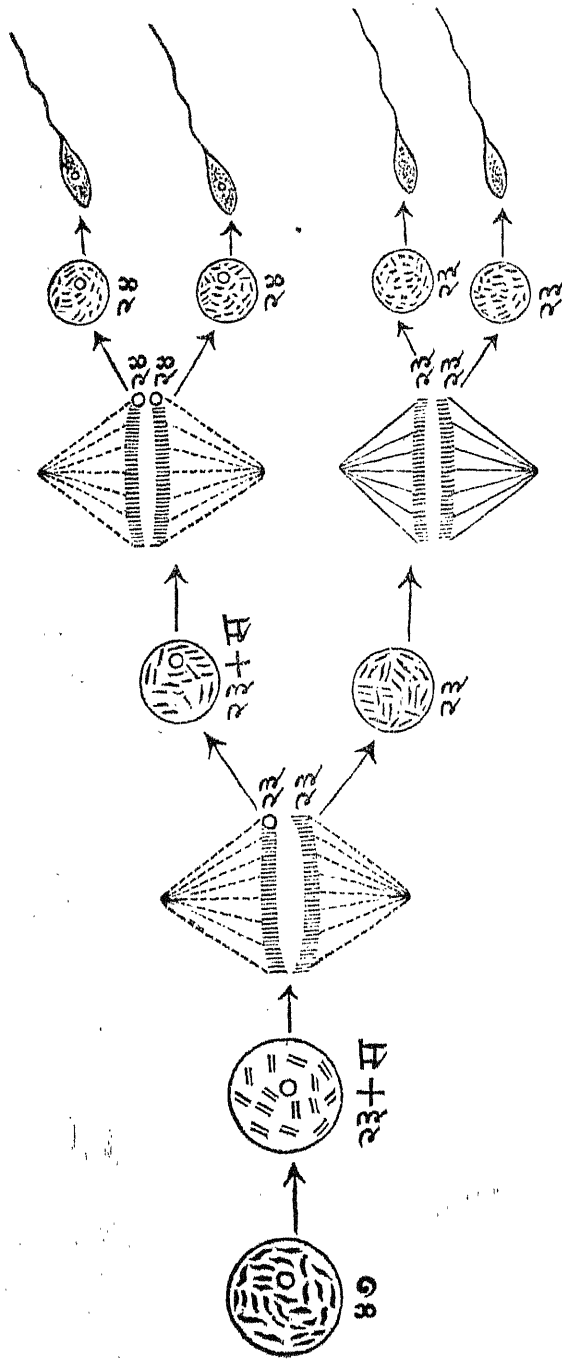
चित्र ३५—मानव सन्तानमें लिङ्ग भेद

हुये हैं (चित्र ३५.क)। उक्त ४७ क्रोमोसोममेंसे ४६ क्रोमोसोम तो कोष विभाजनके समय संयुक्त-सोम अवस्था ( Synopsis ) में जोड़ोंमें श्रेणी बद्ध होकर २३ जोड़े क्रोमोसोमके हो जाते (चित्र ३५, ख) हैं और शेष एक ( अर्थात् सैंतालिसवां क्रोमोसोम ) बिना जोड़ीदार अर्थात् एकाकी रहता है। यह फुटकर क्रोमोसोम ही लिङ्ग क्रोमोसोम है। संयुक्त सोम अवस्थाके पश्चात् ( द्वितीय नर जनक-कोषके लिए ) कोषका विभाजन होता है। उस समय पूर्वोक्त जोड़ीदार क्रोमोसोम भी पुनः विभाजित होते हैं। फलतः २३,२३ क्रोमोसोमका दल कोषके प्रत्येक ध्रुवकी ओर रहता है ( चित्र ३५, ग ) अर्थात् कोषके एक ध्रुवकी ओर तो २४ क्रोमोसोम हुए और दूसरे ध्रुवकी ओर केवल २३ क्रोमोसोम हैं। इसके पश्चात् उक्त क्रोमोसोम दो द्वितीय नर जनक कोषों (2nd Spermatocyte) में प्रवेश करते हैं ( चित्र ३५, ग१ )। तदनन्तर दोनों द्वितीय नर जनक कोषोंके विभाजनसे चार कीटाणु उत्पादक कोष उत्पन्न होते हैं, जिनमेंसे दो कीट-उत्पादक कोष ( Spermatids ) में तो तेईस तेईस क्रोमोसोम होते हैं और शेष दोमें चौबीस चौबीस (चित्र ३५ घ ) क्रोमोसोम होते हैं। इसके बाद पूर्वोक्त कीट-उत्पादक कोष परिवर्तित होकर चार वीर्य कीटाणु बन जाते हैं; जिनमें क्रोमोसोमकी संख्या वही है जो कि कीट-उत्पादक कोषमें होती है। चित्र ३५, ङ के देखनेसे मालूम होगा कि दो

वीर्य कीटाणुओंमें तो लिङ्ग क्रोमोसोम होते हैं और दोमें नहीं। (Winiwarter) विनिवार्टरको रज कोषके क्रोमोसोमके अन्वेषणमें कुछ बाधा और रुकावट हुई। बड़ी कठिनाईसे उन्होंने ४८ क्रोमोसोम तक गिने। यद्यपि और वैज्ञानिकोंका विचार है कि रजकोषमें क्रोमोसोमकी संख्या कुछ इससे ज़्यादा है तथापि विनीवार्टरके घोर परिश्रमके लिए वैज्ञानिक बहुत कृतज्ञ हैं। यदि इस खोजकी पुष्टि अन्य कोष तत्ववेत्ताओं द्वारा और हो जाय तो रही सही भी शिकायतें दूर हो जांय। जैसे कि अन्य प्राणियोंमें विभिन्न प्रकारके वीर्य-कीटाणुके कारण लिङ्ग भेद होता है उसी तरह मानव जातिमें भी उल्लिखित वीर्य-कीटाणु द्वारा लिङ्ग भेद होता है अर्थात् लिङ्ग-क्रोमोसोमवाले वीर्य कीटाणुसे तो सन्तान मादा होती है और लिङ्ग क्रोमोसोम-रहित वीर्यकीटाणुसे नर।

पूर्वोक्त वैज्ञानिक तथा प्रायोगिक प्रमाणोंसे अब स्पष्ट विदित हो गया कि नर या मादा पैदा होनेका कोई मुख्य आन्तरिक कारण है, जो वीर्य कोषमें ही स्थित है। यह सम्भव है कि बाह्य अवस्थाका कुछ प्रभाव सन्तान पर पड़े; पर इस बाह्य परिवर्तनका लिङ्ग भेदसे गूढ़ सम्बन्ध नहीं है। हां यहां तक स्वीकृत किया जा सकता है कि बाह्य परिवर्तनका कुछ प्रभाव विभिन्न प्रकारके वीर्यकीटाणु और रजकोषके संयोग वा सम्मेलन पर पड़े जिससे कि नर वा मादा सन्तानकी संख्याओंमें न्यूनाधिकता हो जाय पर लिङ्ग-भेद ( Sex determination) से उक्त परिवर्तनका कोई सम्बन्ध नहीं है। लिङ्ग-भेदके आन्तरिक कारणकी पुष्टि मेंडीलियन तथा हारमोन सिद्धान्त ( Mende lian and Harmone theory ) से भी होती है, जिसका हम फिर किसी समय वर्णन करेंगे।

# शीतलता प्राप्त करनेके साधन

शीतलता प्राप्त करनेके साधनों पर विचार करते ही सबसे पहले हमारी दृष्टि वनस्पति पर पड़ती है। वनस्पतिकी संख्या जितनी ही अधिक होगी, शीतलता भी उतनी ही अधिक उत्पन्न होगी। यहाँ शीतलता शब्दका स्पष्टीकरण कर देना परमावश्यक है। शीतलता शब्दसे उष्णताका अभाव ही समझना चाहिये। हमको अधिकांश उष्णता प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्षमें सूर्यसे ही प्राप्त होती है। पदार्थोंके जलने, रासायनिक संयोग और पदार्थोंके चलन बलनसे बहुत कम उष्णता प्राप्त होती है। और यह उष्णता भी तो अप्रत्यक्ष रूपसे सूर्यसे ही प्राप्त होती है। अतएव शीतलता प्राप्त करनेके लिए यह बहुत जरूरी है कि सूर्यकी किरणोंसे पैदा होनेवाली उष्णताकी प्रखरता न्यून करनेका यत्न किया जाय। और वनस्पति यह काम भले प्रकार कर सकती है। रंग, रासायनिक व्यापार और वाष्पीभवनकी क्रिया द्वारा ही वनस्पति यह कार्य सम्पन्न करती है। आगे चलकर इन पर अलग अलग विचार किया जायगा।

### रंग

वनस्पतिका रंग हरा-काला होता है; काला रंग तो उष्णता ग्राहक होता ही है। सूर्यकी किरणें सात रंगोंके मिश्रणसे बनी हैं, जिससे उनका रंग सफेद होगया है।

प्रकाशकी किरणें पहले किसी पदार्थ पर पड़ती हैं और वहाँसे उनका परावर्तन होकर वह देखनेवालेकी आंखों पर आकर गिरती हैं; इसीसे उसे पदार्थका ज्ञान होता है। यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि जब तक किसी पदार्थ पर प्रकाश नहीं पड़ता, उसके अस्तित्वका ज्ञान हो ही नहीं सकता।

अब यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि पदार्थ पर तो सफेद किरणें पड़ती हैं, तब पदार्थ भिन्न भिन्न रंगके क्यों दिखाई देते हैं? ऊपर लिखा गया है कि किरणें सात रंगके मिश्रणसे बनी हैं। इसीसे वह श्वेत रंगकी नज़र आती हैं। प्रत्येक पदार्थमें सूर्य किरणोंमेंके सातों रंगोंमेंसे किसी एक या अधिक रंगकी किरणोंको ग्रहण कर शेष रंगकी किरणोंके परावर्तन करनेका धर्म विद्यमान रहता है। लाल रंगके पदार्थ लाल रंगकी किरणके सिवा शेष सब रंगकी किरणोंको ग्रहण कर लेता है। इन्हीं लाल रंगवाली किरणोंका परावर्तन होता है, जिससे वह पदार्थ हमको लाल रंगका नज़र आता है। अतएव यह कह सकते हैं कि किसी विशेष रंगकी किरणोंका परावर्तन करनेका धर्म ही उस पदार्थका रंग है। अंधेरेमें हमको पदार्थ नज़र नहीं आते; इससे यह बात साफ मालूम हो जाती है कि अंधेरेमें पदार्थका रंग नहीं रहता। जो पदार्थ सातों रंगकी किरणोंका परावर्तन करता है वह सफेद रंगका माना जाता है। परन्तु वह असलमें सातों रंगोंके संकरसे बना होता है। जो पदार्थ सभी रंगकी किरणोंको ग्रहण कर लेता है वह काला कहाता है। काला एक रंग माना जाता है तथापि वैज्ञानिक भाषामें वह विशेष प्रकारका रंग नहीं माना जा सकता—वह तो रंगोंके अभावका निदर्शक है। सभी रंगोंकी किरणोंको ग्रहण करनेका धर्म होनेके कारण काला पदार्थ उष्णता-ग्राहक होता है। काले रंगके इस धर्मका अनुभव पाठकोंको अवश्य ही होगा।

चित्र ३६ में एक यंत्र दिखाया गया है। अ यंत्रकी सुईका अग्रभाग है। और ब ब इस सुईके अग्रभाग पर घूमनेवाला एक अर्ध गोलाकार तार है। इस तारके दोनों सिरों पर ड क दो लोहेके छोटे छोटे टुकड़े लगे हैं। इन पतरोंके टुकड़ेके एक बाजूपर काला रंग पोता गया है और दूसरे बाजू पर सफेद रंग। इस यंत्रको एक कांचकी हांडीमें बन्दकर हांडीको वायुशून्य कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे यंत्र हवाके प्रभावसे बचा रहेगा और किरणें भीतर प्रवेश करती रहेंगी। इस यंत्रको अंधेरे स्थानमें रखनेसे तो तार घूमेगा नहीं, परन्तु जरासे प्रकाशमें लाते ही वह घूमने लगेगा। इसका कारण यह है कि सूर्यकी किरणें इस यंत्रके पतरोंके टुकड़ों पर पड़ती हैं। पतरोंका काला रंग किरणोंको ग्रहण कर लेता है, परन्तु दूसरे बाजू परका सफेद रंग किरणोंका ज़ोरसे परावर्तन करता है। इसका प्रत्याघात होनेसे तार घूमने लगता है। यदि काला रंग न पोता जायगा, तो तार कदापि न घूमेगा।

हमारा रोज़का अनुभव भी यही बात सिद्ध करता है कि काला रंग उष्णता ग्राहक है। काले कपड़ेके छातेको लगाकर बाहर जानेसे कपड़ा जलदी गरम हो जाता है, जिससे छाता लगानेवालेको भी गरमी मालूम होने लगती है। और यही कारण है कि गरमीमें अकसर लोग छाते पर सफेद कपड़ा लगा देते हैं। शरीरकी गरमी बनाये रखनेके लिए ही लोग शीतकालमें काले कपड़े पहनते हैं। धूपमें रखे हुए सफेद पदार्थकी ओर देखनेसे आंखें चौंधिया जाती हैं; परन्तु काले या काली झाईं युत पदार्थको देखनेसे आंखोंको किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता। गरमीके दिनोंमें दूबसे भरी पूरी लान या वनस्पतिकी हरियाली कितनी सुखद और आल्हाद-कारक मालूम होती है। ऊपरके विवेचनसे यह बात भले प्रकार सिद्ध हो जाती है कि वनस्पतिके पत्तोंका हरा रंग उष्णता ग्राहक है, जिससे शीतलता उत्पन्न होती है।

### रासायनिक व्यापार

रसायन शास्त्रका नियम है कि रासायनिक रीतिसे दो पदार्थोंका संयोग प्रारंभ होते ही उष्णता उत्पन्न होती है। हमारे रोज़के व्यवहारमें यह बात अनेकों बार देखी जाती है। कलीके चूनेमें पानी डालते ही एक प्रकारका रासायनिक संयोग प्रारंभ हो जाता है, जिससे उष्णता उत्पन्न होती है। लकड़ी तेल आदि जलानेसे उत्पन्न होनेवाली उष्णता भी रासायनिक व्यापारसे ही उत्पन्न होती
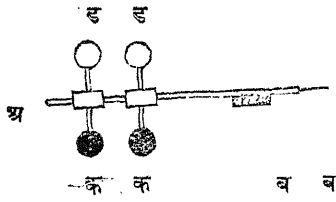
चित्र ३६ (क)

चित्र ३६ (ख)

चित्र ३७ ([illegible])
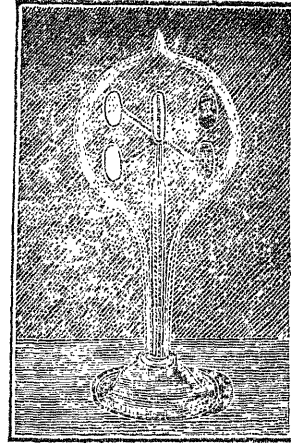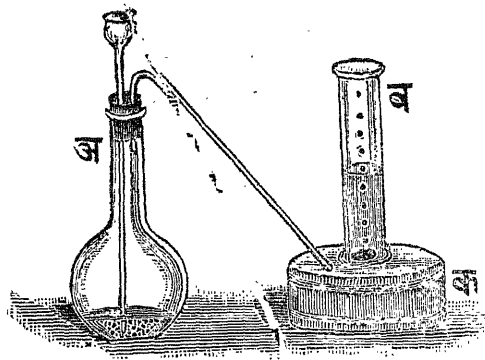
( देखिये पृष्ठ १९४, १९५ )

है। लकड़ी और तेलमेंके हाइड्रोजन और कर्बन-का वातावरणके आक्सिजनसे रासायनिक संयोग होता है, जिससे पानी और कार्बोनिक एसिड गैसकी उत्पत्ति होती है और इसी व्यापारसे उष्णता पैदा होती है। रासायनिक व्यापारके कारण ही गोबर-के खादके ढेरमें भी गरमी पैदा होती है। दूधमें जामन डालनेसे रासायनिक व्यापार शुरू होता है, जिससे बर्तन गरम हो जाता है। अस्तु।

पदार्थोंका विश्लेषण या प्रथक्करण करनेके लिए उष्णता पहुँचानी पड़ती है। चूनेके घोलमेंसे चूना और पानी अलग करनेके लिए उसे गरमी पहुँचानी पड़ती है। स्थानाभावके कारण इस सम्बन्धमें अधिक नहीं लिखा जा सकता। जिस स्थानमें रासायनिक विश्लेषण आप ही आप होता रहता है, वहां आस पासकी उष्णता उक्त व्यापारमें खर्च हो जाती है और उष्णताका अभाव ही शीतलता है।

अब यह देखेंगे कि वृक्ष किस प्रकार विश्लेषण द्वारा शीतलता उत्पन्न करते हैं। वनस्पतिका मुख्य शरीर काष्ठ है। काष्ठमें २५ प्रतिशत कर्बन रहता है और शेष भाग नत्रजन, पानी, पोटेश आदिका रहता है। वनस्पति कर्बनके सिवा अन्य सब खाद्य पदार्थ जड़ों द्वारा ज़मीनमेंसे ग्रहण करती है। कर्बन उसे वातावरणमेंसे प्राप्त होता है। वाता-वरणमें प्रतिसहस्र ४ भाग कार्बानिक ऐसिड गैस रहती है। जिस स्थानपर प्राणी अधिक रहते हैं या ज्वलन क्रिया जारी रहती है, वहां इसका परिमाण भी अधिक रहता है। क्योंकि पदार्थोंके जलने और प्राणियोंकी श्वासोच्छ्वासकी क्रियासे यह पदार्थ अधिक परिमाणमें निर्माण होता रहता है। वाता-वरणमें आक्सिजन और कार्बोनिक ऐसिड गैस रहती है। वनस्पति सूर्यकी किरणोंकी सहायतासे वातावरणमेंसे कर्बन ग्रहण करती रहती है। यह क्रिया दिनमें हमेशा जारी रहती है।

वनस्पतिकी इस क्रियाको समझनेके लिए एक छोटा सा प्रयोग यहां दिया जाता है। यह प्रयोग बहुत ही सरल है।

एक चौड़े मुँहकी बोतलमें पानी और कुछ चाक मट्टीके टुकड़े डालकर उसके मुँहपर काग लगा दो। इस कागमें दो छेद बना देने चाहियें। एक छेदमें कीप ( funnel ) बिठा दी जाय। इस कीपका दूसरा सिरा बोतलमेंके पानी तक पहुँच जाना चाहिये और दूसरे छेदमें एक रबरकी नली लगा दी जाय। एक दूसरे चौड़े और छिछले बरतनमें पानी भरलो चित्र ३७ और तब उसमें एक चौड़े मुँहकी शीशी पानीसे भरकर औंधी कर दो। इस शीशीका मुँह पानीमें रख कर ही उसे औंधी कर देनी चाहिये। रबरकी नलीका दूसरा सिरा इस औंधी शीशीमें लगा दिया जाय। कीप द्वारा अ शीशी में नमक का तेज़ाब डालनेसे एक प्रकारकी गैस उत्पन्न होगी जो रबरकी नलीमें होकर व शीशीमें चली जायगी और पानीमें बुलबुले उठने लगेंगे। इस प्रकार कुछ गैस व शीशीमें चली जानेपर रबर-की नली हटा ली जाय और हरे पत्ते लाकर उसमें रख दिये जायँ। इसके बाद क बरतन व शीशी सहित ज्योंका त्यों धीरेसे उठाकर धूपमें रख दिया जाय। किरणोंकी सहायतासे पत्ते कर्बन ग्रहण करने लगेंगे जिससे व शीशीके पानीमें बुलबुले उठना शुरू हो जायंगे। यह बुलबुले आक्सिजनके हैं।

अब यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि व शीशीमें ओषजन इकट्ठा हुई थी या अन्य कोई गैस ? यह बात जाननेके लिए बरतनके पानीमें ही शीशीको कुछ ऊपर उठा कर उसमें एक मज़बूत काग लगा दो। और तब उसे बाहर निकाल लो। शीशीको सीधी जमीनपर रख कर एक जलती हुई लकड़ी काग हटाकर शीशीके अंदर डालकर पकड़े रहो। परन्तु स्मरण रहे कि लकड़ी पानीसे न छूने पावे। शीशीमें डालते ही ओषजन गैसके कारण लकड़ी ज़्यादा तेज़ीसे जलने लगेगी। ओषजन वायुका धर्म है कि उसमें ज्वालाग्राही पदार्थ ज़्यादा तेज़ीसे जलने लगते हैं। यदि क बरतन व शीशी सहित किसी अँधेरे स्थानमें रखा जायगा, तो कर्बन द्विओषिदका प्रथक्करण न होगा। कारण इसके

लिए उष्णताकी बहुत ही ज़्यादा ज़रूरत है। प्रकाश-में रहनेपर वनस्पति वातावरणमेंसे उष्णता ग्रहण करती है। और यही कारण है कि वृक्षके नीचे और उसके आस पास हमेशा शीतलता बनी रहती है।*

वाष्पीभवन

अब इस बात पर विचार करना रह गया है कि वनस्पति वाष्पीभवनकी क्रिया द्वारा शीतलता किस प्रकार उत्पन्न करती है। वनस्पति जड़ों द्वारा ज़मीनमेंसे पानी सोखती है। यही पानी तब पत्तोंके रंध्रोंमेंसे होकर भाप बन कर हवामें मिल जाता है। वाष्पीभवनके लिए भी उष्णताकी जरूरत होती है। पानीको भापके रूपमें बदलनेके लिए उसके नीचे आग जलानी पड़ती है। पानीका बरतन चूल्हे पर रख कर उसके नीचे आग जलानेसे पानी भाप बन कर उड़ने लगता है। उबाल आनेपर यदि पानीमें थर्मामीटर डाल कर उष्णताका परिमाण देखा जाय, तो वह समुद्रकी सतह पर २१२° फा· होगा। एक सेर पानीको उबालनेके लिए जितना ईंधन दरकार होगा उससे पाँच गुनेसे अधिक ईंधन उस पानीकी भाप बनानेके लिए दरकार होता है। उबाल उठने पर पानीमें जितनी उष्णता रहती है, उतनी ही उष्णता पानीके भाप बन कर उड़ जाने तक बनी रहती है। तब यह पाँच गुनी उष्णता जाती कहाँ है? क्या वह नष्ट हो जाती है। पाठकोंको यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिये कि पदार्थ तथा शक्ति दोनों अविनाशी हैं—वह कभी नष्ट नहीं होते—एक रूपसे दूसरे रूपमें जरूर बदल जाते हैं। यह पाँच गुनी उष्णता भापमें विद्यमान रहती है; परन्तु हम उसको देख नहीं सकते। परन्तु भापसे उष्णता पुनः उत्पन्न की जा सकती है। किसी बरतनमें पाँच कटोरी पानी लेकर उसमें रबरकी नली द्वारा एक दूसरे बरतनसे भाप लेकर छोड़ दी जाय। मान लो कि पहले बरतनके पानीका ताप क्रम ३२° फा हो अर्थात् वह बर्फके समान ठंढा है। रबरकी नली द्वारा पानीकी भाप इस बर्तनमें आकर जलके रूपमें बदल जायगी और तब धीरे धीरे पानीका ताप क्रम बढ़ने लगेगा और २१२° फा. तक बढ़ जायगा। २१२° फा· तक उष्णता बढ़ जाने पर भाप पानी न बन कर पुनः भापके रूपमें उड़ने लगेगी। यदि दूसरे बरतनका पानी नापा जायगा, तो वह प्रायः एक कटोरी ज्यादा उतरेगा। यह एक कटोरी पानी, उस बरतनमेंसे आई हुई भापके पुनः जल बन जानेसे ही बढ़ा है। इसी एक कटोरी पानीने पाँच कटोरी पानीकी उष्णता ३२° फा· से २१२° फा. तक बढ़ाई है। परन्तु इस भापकी उष्णता भी तो २१२° से ज़्यादा न थी। अतएव यह सिद्ध हो जाता है कि जितनी भापसे एक कटोरी जल बना है, उतनी भापमें पाँच कटोरी पानीको २१२° फा· तक गरम करनेके लिए उष्णता विद्यमान थी। इससे यह बात भले प्रकार सिद्ध हो जाती है कि जलके वाष्प रूप धारण करनेमें अतिशय उष्णता अदृश्य हो जाती है।

पानीके वाष्प रूप धारण करना प्रारंभ होते ही उष्णता अदृश्य होने लगती है अर्थात् शीतलता उत्पन्न होने लगती है। रोज़के व्यवहारमें यह बात देखी भी जाती है। पानीका यह धर्म है कि हवा कितनी ही ठंडी क्यों न हो, उसके पृष्ठ भागसे वाष्पीभवन सदा होता रहता है। इस वाष्पीभवनके लिए जो उष्णता चाहिये उसे वह आस पासके पदार्थोंसे ही ग्रहण करता है। एक आध चौड़े बरतनमें पानी भर कर उसको सारी रात खुले स्थानमें रख छोड़नेसे, वह बहुत ही ठंढा हो जाता है। इस पानीमें वाष्पीभवन स्वभावतः ही जारी रहता है। इसलिए इसके लिए लगनेवाली सारी उष्णता पानीमेंसे ही खर्च होती है और यही कारण है कि

* वनस्पति वातावरणमेंसे जितनी उष्णता ग्रहण करती हैं, वह नष्ट नहीं होने पाती। वह वनस्पतिमें अदृश्य रूपमें वर्तमान रहती है; एवं उसे चाहें तब उत्पन्न भी कर सकते हैं। कोयला या लकड़ी जलानेसे जो उष्णता उत्पन्न होती है, वह वृक्षके पोषणके लिए काष्ठ निर्माणमें अदृश्य हुई उष्णता ही है।

पानी ठंडा हो जाता है। गरमीके मौसममें पानी ठंडा करनेके लिए बर्तनके चारों ओर गीला कपड़ा लपेटा जाता है। कपड़ा गीला बनाये रखनेसे पानी ठंडा हो जाता है। गीला कपड़ा लपेटनेका यही उद्देश है कि बरतनके चारों ओरसे वाष्पीभवन होता रहे। वाष्पीभवनके लिए लगनेवाली उष्णता बरतनके पानीमेंसे ली जाती है और यही कारण है कि पानी ठंढा हो जाता है। मट्टीके बर्तनमें पानी क्यों ठंढा रहता है; इसका कारण भी यहां बता देना अप्रासंगिक न होगा। मट्टीके बरतनमें अनेक महीन छिद्र रहते हैं, जिनमेंसे थोड़ा थोड़ा पानी बाहर निकलता रहता है। यह पानी भाप बन कर उड़ता रहता है, जिससे भीतरके जलकी गरमी खर्च हो जाती है। गरमीके मौसममें कपड़े गीले कर छायामें सुखानेसे वह थोड़े ही समयमें ठंडे हो जाते हैं। इसका कारण भी वही वाष्पीभवन है।

इस वाष्पीभवनसे इतनी शीतलता उत्पन्न की जा सकती है कि पानीसे बर्फ बनायी जा सकती है। इस प्रकार बर्फ बनानेकी विधि अति सरल है। परन्तु इसके लिए यंत्रोंकी आवश्यकता होती है।

प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि एक सेर काष्ट निर्माण करनेके लिए करीब दो सौ सेर जलका वाष्पीभवन किया जाता है और एक सेर क्षारांश बनानेके लिए २००० सेर पानीका वाष्पीभवन करना पड़ता है। इस परसे अनुमान किया जा सकता है कि वनस्पति कितनी अधिक शीतलता उत्पन्न करती है।

—शंकरराव जोषी

# सुगन्धित तेल बनानेकी प्रणाली

इस देशके भले घरोंमें सुगन्धित तेलोंका बहुत प्रचार है और दिनपर दिन इसका प्रचार बढ़ता ही जाता है। बाजारमें नित्यप्रति नये प्रकारके सुगन्धित तेल देखनेमें आते हैं—खरीदारोंकी कमी नहीं है और व्यवसायियोंको भी इसमें यथेष्ट लाभ होता है। इसका प्रत्येक परिवारकी स्त्रियां अनायास हो चेष्टा करनेसे घरमें बैठी बैठी तैयार कर सकती हैं; अतएव बाजार से अधिक दाम देकर लेना उचित नहीं है। तेल बनानेकी तरकीब इस लेखमें बतलाना अभीष्ट है।

जो लोग केश-तेलका नियमित रीतिसे व्यवहार करते हैं, उन्हें दो श्रेणीमें विभक्त किया जा सकता है। प्रथमतः वह लोग जो शौकीन हैं; द्वितीयतः वह जो शिरो-रोग, केशरोग तथा वायु प्रकोप सम्बन्धी रोगोंके कारण व्यवहार करते हैं। इन दोनों श्रेणीके मनुष्य व्यवहृत भाषामें केशतेलको 'सुगन्धित तेल' कहते हैं। व्यवहृत केश तेलमें कोई गुण हो अथवा न हो पर इनकी समझ से उसमें सुगन्ध अधिक मात्रामें होनी अत्यावश्यक है। इसीलिए बाजारमें जो तेल प्रचलित हैं उनमें अधिकांश उग्रगन्धयुक्त विदेशी वस्तुओंके संमिश्रण मात्र हैं। तेलकी शुद्धता तथा उत्कृष्टता पर ध्यान नहीं दिया जाता। विश्लेषण द्वारा यह पता लगा है कि बाजारमें प्रचलित प्रति सौ पीछे साठ सुगन्धित तेल केशके लिए अनिष्ट कर तथा सुलभ ह्वाइट (White) वा पाराफिन (Paraffin) तेलसे बनाये जाते हैं। ह्वाइट अथवा पाराफिन (Paraffin) तेलका आपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) नारियल, तिल वा रेंड़ीके तेलकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है तथा इन सब तेलोंके समान इसमें चिकनाहट भी नहीं होती। पाराफिन मट्टीके तेलमेंसे निकाला जाता है। इस प्रकार बनाया हुआ पाराफिन बाजारमें Glycoline

के नामसे बिकता है। साधारणतः इसीको केश तेल बनानेके काममें लाते हैं।

पाराफिन तेलका एक और रूपान्तर गन्ध-हीन पेट्रोलियम ( deodourised petroleum ) है। इसको भी प्रचुर परिमाणसे सुगन्धित तेलमें मिलाते हैं। मोटरगाड़ीमें मोबिल आयल (Mobile oil) नामक जो अपरिष्कृत पेट्रोलियम व्यवहृत होता है उससे ही यह बनता है। यह नारियल तिल आदिके नित्य व्यवहृत तेलोंकी अपेक्षा सस्ता होता है तथा परोक्षभावसे केशको हानि पहुँचाता है। सरमें मैल तथा रूसी बैठ जानेसे ( deodourised petroleum ) निर्गंध पेट्रोलियम उसे सहज ही नरम तथा कोमल कर देता है। यह प्रत्यक्ष रूपसे केशको अधिक घना नहीं होने देता। परन्तु अनेक समय केशको उड़ा भी देता है। इसलिए बाज़ारमें प्रचलित इस प्रकारके महोपकारी 'केशवर्द्धक' तेलोंसे हानि हो तो कोई आश्चर्य नहीं। निर्गंध पेट्रोल आपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) के हिसाबसे नारियल प्रभृति तेलकी अपेक्षा हीन है। इसका अस्तित्व कई उपायोंसे जाना जाता है। यह नारियल, सरसों और रेंडीके तेलके अपेक्षा अधिकतर दाह्य गुण सम्पन्न होता है आठ दस पेट्रोलियम तेलको लेकर आगके समीप रखा जाय तो जल उठता है। यह अन्यान्य तेलोंकी अपेक्षा शीघ्र फैलता है ( Mobile ) तथा हथेलीपर कुछ समय तक रखनेसे उड़ जाता है (Volatile)। एक सोखता ( Blotting paper ) के ऊपर (absorbent cotton) धुनी हुई रूई तथा कुछ अलसी ( Linseed ) रख कर उसपर पेट्रोलियम मिश्रित तेलके छींटा देनेसे, तेलकी कुछ सुगन्ध अलसी तथा कपासमें आ जाती है। निर्गंध पेट्रोलियमको गन्धहीन पेट्रोल कहते हैं किन्तु साधारणतः व्यवसायीगण जिस रीतिसे उसे निर्गंध करनेकी चेष्टा करते हैं उससे नितान्त गन्धहीन होना असम्भव है। इसलिए कुछ नारियल अथवा बादामका तेल और उग्रवीर्य्य विदेशी मसालोंके तेल (essential oils) देकर उसके बचे हुए गन्धको दबा देते हैं।

हम लोगोंको बाजारमें प्रचलित सुगन्धित तेल प्रति शीशी बारह आना एक, रुपया और कभी कभी सवा रुपया अथवा डेढ़ रुपया पर्य्यन्त मिलता है, किन्तु सच पूछिये तो दस बारह पैसे खर्च करनेसे (तीन या चार औन्स) एक शीशी उत्कृष्ट सुगन्धित तथा उपकारी तेल तैयार किया जा सकता है। पाठक यह जाननेके लिए अत्यन्त उत्सुक होंगे कि इसकी क्या तरकीब है। इसी उत्सुकताको यथासाध्य मिटानेकी चेष्टा मैं इस लेखमें करूंगा।

मैं एक सेरको प्रत्येक व्यक्तिके उद्देश्य साधनके उपयुक्त तथा आदर्श परिमाण मान 'सुगन्धित केश-तेल' प्रस्तुत करनेकी प्रणाली लिखूंगा। कारण, एक बार एक सेरसे अधिक तेल प्रस्तुत करनेकी क्षमता साधारण गृहस्थ परिवारमें नहीं हो सकती तथा एक सेर तेल पांच छः मनुष्य आसानीसे एक महीने तक लगा सकते हैं। जो महाशय व्यवसायके लिए प्रस्तुत करना चाहें वह अवश्य अपनी सुविधानुसार पांच सेरसे एक मन तक तेल लेकर कार्य्य क्षेत्रमें प्रविष्ट हों। पहले मैं व्यवसायियोंके लिए निर्गंध पेट्रोलियम द्वारा दो चार प्रकारके सस्ते सुगन्धित केश तेल बनानेकी विधि लिखता हूं।

साधारणतः पेट्रोलियम द्वारा केश तेल प्रस्तुत करनेके लिए व्यवसायी लोग आठ आने और कभी कभी दस आनेके परिमाणमें निर्गंध पेट्रोलियम या पाराफिन औयल मिलाते हैं। इससे केश भली भांति और शीघ्रता पूर्वक नहीं बढ़ते। परन्तु मनुष्यका स्वभाव ऐसा है कि इन सब तेलोंकी सुगन्धसे आकृष्ट हो कर तेलके मुख्य गुणको भूल जाते हैं। अधिक लाभका विचार न कर यदि पेट्रोलियम न मिलाया जाय तो बहुत अच्छा हो। इससे केशका उपकार होगा। यदि तेलको शोधकर सामान्य मात्रामें (Carbon disulphide) कर्बन द्विगंधिद मिला दिया जाय तो इस तेलसे गंज तथा बालों के झड़ जाने (Alopecia) को फायदा हो सकता है।

रसायन शास्त्रमें खनिज प्रभृति पदार्थोंको निर्गन्ध करनेके लिए हजारों उपाय हैं। एक सहल प्रणाली मैं नीचे लिखता हूं:—

चार छटांक (प्रायः आठ औन्स) पेट्रोलियम को सौ बूंद zinc chlorides यशद हरिदके साथ भली भांति मिलाइये। जब जान पड़े कि दोनों पदार्थ खूब मिल गये हैं तब एक बालटी या दूसरे किसी गहरे पात्रके तलभागमें एक मुट्ठी वा एक छटांक पत्थरका चूना डाल उसके ऊपर पेट्रोलियम डाल दीजिये। इस प्रकार दस पन्द्रह मिनट तक उसे रख छोड़िये। तदुपरान्त एक मोटी लकड़ीके सहारे उसे खूब चलाइये। तदनन्तर २४ घण्टे पर्यन्त उसे रख छोड़िये। इस समय चूना बालटी के तलभागमें बैठ जायगा और पेट्रोलियमका गन्ध भी प्रायः पन्द्रह आना उड़ जायगा। उस समय ऊपरके पेट्रोलियमको साइफन (Syphon) द्वारा अन्य किसी पात्रमें निकाल लेना चाहिये। उपरोक्त उपायसे भी सहज एक और उपाय है—केवल सौ बूंद (Amyl Acetate) एमाइल एसीटेट डाल कर कुछ देर रख छोड़नेसे भी अभूत पूर्व सफलता प्राप्त होती है।

एक सेरका चतुर्थांशं अथवा चार छटांक तो गंधहीन पेट्रोलियम (Deodorised Petroleum) लीजिये। शेष बारह आनेमें दस आने नारियल का तेल और दो आने बादामका तेल (oil of almonds) अथवा बारहों आने तिलका तेल मिलाया जाता है। रेंड़ीका तेल पेट्रोलियमके साथ नहीं मिलाया जा सकता। नारियल, तिल वा बादामके तेलको प्रथमतः धीमी आंचमें आध घंटे तक पका लेना चाहिये। थोड़ा गरम रहनेपर ही पेट्रोलियमके साथ मिला देना चाहिये। इसके बाद चार इंच व्यासकी एक शीशे कीपको एक सेरकी बोतलके मुंह पर लगाकर कीपमें एक छन्ना कागज बैठा दीजिये और उस पर थोड़ा सा हलका लकड़ीका कोयला रख दीजिये। अस्थि-कोयला इस कामके लिए अधिक अच्छा होता है। साधारण छन्ना कागज सोखतेको काट कर बना लेते हैं, पर इस कामके लिए बाजारमें एक प्रकारका छन्ना कागज पाया जाता है; जो जर्मनी और आस्ट्रियासे आता है। तैयार करनेके समय उसमें प्रति सौभाग पीछे ५ भाग अस्थि कोयला मिला दिया जाता है। इस प्रकारका छन्ना कागज रहने पर लकड़ीका अथवा हड्डीका कोयला रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं। इसके बाद कीप द्वारा बोतलमें तेलको डालिये। जब जब कीप खाली होती जाय तब तब तेल डालते जाइये। जो लोग व्यवसायके निमित्त तेल प्रस्तुत करेंगे उन्हें इस प्रकार तेल परिष्कृत करनेमें सचमुच ही बहुत समय व्यय होगा। इसलिए उन्हें छाननेका घट खरीदना चाहिये। ७०) से ८०) में एक मामूली आकारका छन्ना घट मिल सकता है। पाश्चर चेम्बरलेण्ड छन्ना (Pasteur Chamberland filter) से भली भांति काम चलता है। अन्य प्रकारके छन्ने भी बाजारमें मिलते हैं या टीनका एक साधारण छन्ना तैयार कराया जा सकता है। तेल भली भांति छन जाने पर कीप, छन्ना और कोयलेके टुकड़ोंको सावधानतापूर्वक रक्षित स्थानमें रख देना चाहिये। इसके बाद उसमें बर्गामट्ट तेल (Bergomat oil) ५ ड्राम (६० बुंद का एक ड्राम होता है) अथवा देशी नीबूका तेल ६ ड्राम, लवंगका तेल (Oil of cloves) एक ड्राम और निरोलीका तेल (Oil of neroli) एक ड्राम तथा लेवेन्डर (Lavender) ३ ड्राम मिला देना चाहिये। ४२ घंटे तक उसे उसी भांति छोड़कर तब व्यवहारमें लाना चाहिये।

एक प्रकारका और पेट्रोलियम मिश्रित सुगन्धित केशतेल बनानेकी विधि है। व्यवसायमें इसकी भी खूब खपत होगी और उपरोक्त तेलकी अपेक्षा उपयोगी भी होगा। दस भाग तिलका तेल, दो भाग निर्गंध पेट्रोलियम (Deodourised petroleum) और चार भाग जैतूनका तेल (olive oil) एक साथ मिला कर एक सेर कर लीजिये। उसके बाद उपरोक क्रियानुसार उसे परिष्कृत कर लेने पर उसमें

एक औन्स (Tincture cantharides) टिंचर कैंथेरिडीज़, अढ़ाई ड्राम बरगोमट औयल (Bergamot oil) और ३० बूंद नीरोली तेल (Neroli oil) और ५ ड्राम जुही अथवा ५ ड्राम बकुलके तेलमें भली भांति मिला कर २ दिन तक किसी ठंडे स्थानमें रख दीजिये। जुही वा बकुलका तेल न मिलाकर उसका इत्र एक ड्राम मिला देनेसे उसकी गन्ध और मनोमुग्धकर तथा स्थायी हो जाती है।

नारियलके तेलके उग्रगन्धके कारण उपरोक्त परिमाणमें गन्ध-द्रव्य मिलाने पर भी आशानुरूप फल नहीं मिलता। इसलिए सर्वप्रथम नारियलके तेलको निर्गन्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। उसकी एक क्रिया लिखता हूं:—

नारियलके तेलको जिस समय अग्नि पर गरम होनेके लिए रखा जाय उसी समय एक दूसरे बर्तनमें थोड़ी सी पिसी हुई फिटकरी और चीनी भली भांति पानीमें मिलाकर रख ली जाय। जब तेल उबलने लगे तब थोड़ा सा चीनी-फिटकरी मिश्रित जल उस पर डाल दीजिये। उसी समय तेलसे फेन उठना आरम्भ होगा। फेनको भली भांति काटते रहना चाहिये। जब फेन न उठे और यह मालूम हो कि मिश्रित जलीय भाग उड़ गया तब तेलको अग्निसे उतार लेना चाहिये।

बाजारमें प्रचलित विदेशी जैतूनके तेलमें प्रायः सौमें साठ भाग बिनौलेका तेल मिला रहता है। कभी कभी ६० भाग बिनौलेका तेल और प्रायः २० भाग बादामका तेल मिश्रित रहता है। बिनौलेका तेल अथवा बादामका तेल केशके लिए अनहित कर नहीं होता। बादामका तेल सिरके रोगका एक प्रधान शत्रु है। स्वच्छ जैतूनका तेल बाह्य तथा आभ्यन्तरिक दोनों प्रकारसे मनुष्यके लिए लाभदायक है। सिरके लिए जैतूनका तेल विशेष लाभदायक है। यह सिरका मैल तथा रूसीको दूर करता है—बालोंको स्वच्छ तथा कोमलकर उनके जड़भागको परिपुष्ट करता है। तो भी व्यवसायके हित जैतूनका तेल सामान्य मात्रामें भी प्रयोग करना एक प्रकार असम्भव है। कारण सब प्रकारके खनिज तथा उद्भिज तेलोंकी अपेक्षा इसका मूल्य अधिक है। यदि कोई इसको व्यवहारमें लाना चाहे तो किसी विश्वास योग्य दुकानसे खरीदे। दस औन्सकी एक शीशी प्रायः सवा या डेढ़ रुपयेमें मिलती है। देशी जैतूनका तेल प्रतिसेर अढ़ाई रुपयेमें मिलता है।

गृहस्थगण जब सुगन्धित केश तेल अपने लिए प्रस्तुत करें तब विशुद्ध तिल, रेंड़ी, जैतून अथवा नारियलका ही तेल व्यवहारमें लावें; कारण कि पेट्रोलियम उपकारकी अपेक्षा अपकार ही करता है और उसमें नाना प्रकारके मिश्रण रहते हैं (Suspended impurities, acids, mineral matters, kerosine, water etc) और गन्धहीन (Deodorised) करनेमें भी अनेक झंझट हैं। पेट्रोलियममें एक अति सराहनीय गुण यह है कि यह किसी एसेन्स, इत्र वा अन्य किसी सुगन्धित द्रव्यको अति शीघ्र अपनेमें ले लेता है और अपना मूलगन्ध छोड़ उस थोड़ी सुगन्धिको अधिक सुगन्धित कर देता है।

तिल, रेंड़ी, नारियल जैतून प्रभृति सब प्रकार के तेल केशके लिए अत्यन्त उपकारी हैं। यदि किसीके सिरमें पीड़ा अथवा किसी प्रकारका रोग हो तो इनमेंसे किसी तेलका प्रतिदिन व्यवहार करनेसे जाता रहेगा। सुगन्धित केश तेल सिरमें मालिश करनेकी ज़रूरत ही क्या है! तो भी यदि सरको सुवासित बनाना हो तो उपरोक्त तेलमें २ से १० बूंद तक नींबू अथवा निरोलीका तेल मिला देनेसे काम चल सकता है।

अब दो एक दवाओंके तेल बनानेकी विधियों पर विचार करेंगे। प्राचीन चिकित्सा शास्त्र टिंचर कैंथेरिडीज़को केशके लिए महा उपकारक बतलाता है। केश दो प्रकार से झड़ता अथवा गिरता है—प्रथम एक प्रकारके जीवाणु केशके जड़ भागको खाकरउसे गिरा देता है (Alopecia); दूसरे साधारण स्नायविक दुर्बलता (Nervous dibility or derangeent) के कारण केश निर्बल हो झड़ जाते हैं,

दुर्बलताके कारण ही सिरमें गंज उपस्थित हो जाती है। सब प्रकारकी गंज तथा केश रोगमें उक्त औषध विशेष फलप्रद होती है। इसके अलावा केश तेलमें और कई प्रकारकी डाक्टरी दवा मिला देनेसे इन सब रोगोंका प्रकोप कम हो जाता है। आयुर्वेदमें भृंगराज केश-बर्द्धकके नामसे प्रसिद्ध है। छोटे छोटे तालाबोंके किनारे छायादार स्थानमें यह बहुत संख्यामें झाड़के सदृश लगा रहता है। पूर्व वर्णित किसी तेलको एक सेर लेकर निम्न-लिखित औषध मिला कर सेवन करनेसे केश सम्बन्धी सब रोग दूर होते हैं—(Tinc. cantharides) टिंचर केनथेराइड्स दो आउन्स, (Tinc. Nux-vomica) टिंचर नक्सवोमिका दो औन्स, (Tinc. cinchona rub.) टिंचर सिंकोना रब एक औन्स—इन सबको मिलाकर एक औन्स बर्गामट तेल (Bergomat oil) और २५, २५ बूंद निरोली, रोजमेरी तथा लवंगका तेल डाल दीजिये। शेषोक्त तीन तेलोंके बदले २० बूंद (otto musk) ओटो मुस्क देनेसे भी काम चल जाता है।

नीचे एक और विधि लिखता हूं :—

आठ छटांक तिलका तेल, चार छटांक जैतूनका तेल और चार छटांक रेंड़ीके तेलको लेकर नारियलके तेलके सदृश गन्धहीन तथा परिष्कृत कर लीजिये। रंग देनेका मसाला परिष्कृत करनेके पूर्वही उसमें डालदेना चाहिये। औषध परिष्कृत करनेके बाद मिलाई जाती हैं। तत्पश्चात् दो ड्राम जिरानियमका तेल (oil geranium) दो ड्राम रोजमेरी तेल और एक ड्राम निरोलीका तेल (Neroli) मिला कर २० बूँद (Otto musk) ओटोमुस्क और दस बूँद हिनाका इत्र डाल दीजिये। व्यवहारमें लानेके पूर्व इस तेलको बोतलमें बन्द कर ठंडे जलमें दो दिन तक डुबो रखिये।

अपने हाथसे आठ दश बार इस प्रकार तेल प्रस्तुत करनेके बाद आप नये नये सुगन्धित तेल बनानेकी प्रणाली सीख जायंगे। भिन्न भिन्न प्रकारके सुगन्धित द्रव्य न्यूनाधिक मात्रामें मिलाना अपनी अपनी रुचिपर निर्भर है। केवल यही स्मरण रखना पर्याप्त होगा कि प्रत्येक सुगन्धित तेलमें लेवेन्डर, निरोली, नींबू वा बर्गामट तेल कुछ परिमाणमें अवश्य मिलाना चाहिये, कारण कि मूल तेलके कटुगन्धको दूर करनेमें यह अद्वितीय हैं। १०।१२ प्रकारका इतर और मौलिक गन्ध-तेल (Essential Oil) मिश्रित करना किसी प्रकार उचित नहीं। एक, दो या तीन प्रकारका सुगन्धित द्रव्य मिलाना ही यथेष्ट है। जो लोग देशी सुगन्धका व्यवहार करना चाहें वह बर्गामट (Bergamot) के स्थानमें नीबू तथा लेवेण्डर और निरोलीके बदले बेला, चमेली, जुही या अन्य किसी फूलका तेलका व्यवहार कर सकते हैं। उसके बाद उसमें जुही, मोतिया, हिना, मुश्क वा गुलाबका इत्र १०, २० बूँद मिला सकते हैं।

### तेलमें किस प्रकार रंग दिया जाता है ?

एक सेर तेलमें आधी छटांक रतनजोत (Alkanet root) भिगो देनेसे प्रायः १२ घण्टेमें तेल लाल रंगका हो जाता है। केश तेलमें इसी प्रकार भिन्न भिन्न रंग दिये जा सकते हैं; किसी तेलमें चार भाग जैतूनका तेल, चार ड्राम लेवेण्डर और दो ड्राम बेलाका तेल मिला देनेसे वह हरित रंगका हो जाता है।

यह औषधें शहरके प्रायः प्रत्येक छोटे बड़े दवाखानोंमें मिलती हैं। खुचरा खरीदनेसे टिंचर कैंथेराइड्स तीन आनेमें एक औन्स तथा अन्य सब दवा दो आने औन्स मिलती हैं।

—श्रीउमेश प्रसाद सिंह

# प्राचीन सर्पजन विद्या

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार ]

प्राचीन कालमें सर्पजन विद्या भी १४ विद्याओंमें एक विद्या समझी जाती थी। यह विद्या सर्पोंके इलाज करनेवाले लोगोंकी थी। यह सब प्राचीन विद्यायें अब लुप्तप्राय ही हैं। प्राचीन विद्वानोंने इन विद्याओंकी रक्षा करनेका बड़ा प्रयत्न किया है। पुराणों और तन्त्रोंमें बहुत सी विद्याओंका स्थान स्थानपर प्रसङ्ग वश वर्णन आया है। उनका संग्रह करलेने पर फिर भी लुप्त विद्याओंकी संख्या पूरी की जा सकती है।

हम पाठकोंको इस लेखमें प्राचीन सर्पजन विद्याका परिचय कराना चाहते हैं। महाभारतमें राजा जनमेजयके सर्पसत्रका वर्णन आया है। उसमें बहुत से नागोंके नाम आये हैं। परन्तु उनका विशेष रूपसे वैज्ञानिक वर्णन वहां नहीं आया है। भविष्य पुराणमें (प्रथम पर्व अ० ३३-३६) नागोंका वर्णन तो आया ही है; साथही उनके विषयमें वैज्ञानिक उल्लेख भी किया है, जिसका वर्णन हम पाठकोंके विज्ञानकी वृद्धिके लिए पूर्ण रूपसे करते हैं।

विषय प्रवेश

**शतानीक उवाच—**

सर्पाणां कतिरूपाणि के वर्णाः किंच लक्षणम्।
का जातिस्तु भवेत्तेषां केषु योनि कुलेषु वा॥

**सुमन्तुरुवाच—**

पुरा मेरौ नगवरे कश्यपं तपसां निधिम्॥
प्रणम्य शिरसा भक्त्या गौतमो वाक्य मब्रवीत्॥ २॥
सर्पाणां कतिरूपाणि किं चिन्हं किं च लक्षणम्॥
जातिं कुलं तथा वर्णान् ब्रूहि सर्वं प्रजापते॥ ३॥
कथं वा जायते सर्पः कथं मुंचेद्विषं प्रभो॥
विषवेगाः कतिप्रोक्ताः कत्येव विषनाड़िकाः॥ ४॥
दंष्ट्राः कतिविधाः प्रोक्ताः किं प्रमाणं विषागमे॥
गृह्णीते तु कदा गर्भं कथं चेह प्रसूयते॥ ५॥
कीदृशी स्त्री पुमांश्चैव कीदृशश्च नपुंसकः॥
किंनाम दशनं चैव एतत्कथय सुव्रतः॥ ६॥

विद्या विनोदिनी टीका

नाग पंचमीका माहात्म्य कहनेके बाद भविष्य पुराणमें शतानीकने सुमन्तुसे प्रश्न किया कि सांपोंके कितने रूप होते हैं; कितने वर्ण होते हैं; उनकी पहचान क्या होती है। क्या क्या जातियां होती हैं। वह किन किन योनि और किन किन कुलोंके उत्पन्न हुए कहाते हैं।

सुमन्तुने इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए गौतम और कश्यपका संवाद सुनाया।

पहले किसी कालमें मेरु पर्वतके शिखर पर तपस्वी कश्यपको नमस्कार करके शिष्य-भावसे गौतम मुनिने सर्पजन विद्याके जाननेकी इच्छासे यह प्रश्न किये थे—सांपोंके कितने रूप होते हैं; सांपोंके क्या चिन्ह होते हैं, क्या लक्षण होते हैं; उनकी क्या क्या जाति होती हैं; कौन कौन कुल होता है; कितने वर्ण (रंग) होते हैं; हे प्रजापते, कश्यप! कृपाकर सब हमें उपदेश कीजिये। और यह भी बतलाइये कि सांप कैसे उत्पन्न होता है, वह विष कैसे छोड़ता है, विषके कितने प्रकारके वेग होते हैं, विषकी नाड़ियां कितनी होती हैं, कितने प्रकार की दाढ़ें होती हैं, कितनी मात्रा विषकी बाहर आती है, सर्पणी कब गर्भ धारण करती हैं और सांपोंको किस प्रकार पैदा करती हैं, सांपनी कै प्रकारकी होती हैं, नर सांप कै प्रकारके होते हैं, नपुंसक सांप कितने प्रकारका होता है, और सांपका काटना किस प्रकारका होता है; कृपाकर आप सभी बातोंका उपदेश कीजिये।

सर्पजन विद्याके विद्यार्थियोंको यहां इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि रूप चिन्ह, लक्षण, जाति कुल और वर्ण क्या वस्तु हैं। रूपसे आकृति

जाननी चाहिये। चिन्ह अर्थात् सांपकी पहचान और लक्षणसे उसकी विशेषता जानिये। जाति अर्थात् उसकी स्पीशीज़, कुल अर्थात्-फैमिली Family और वर्ण उसका रंग स्वभाव और आचार क्या है? सर्प विद्याको जाननेके लिए गौतमके प्रश्नोंमें कोई भी विषय अवशेष नहीं रह गया है। आगे इन्हीं सब बातोंका उत्तर देते हैं।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा कश्यपः प्रत्यभाषत ।
शृणु गौतम तत्वेन सर्पाणामिह लक्षणम् ॥ ७ ॥

गौतमका वह वचन सुन कर कश्यप बोले "हे गौतम। ठीक ठीक प्रकारसे सुनो कि साँप कैसे हुआ करते हैं।"

सांपोंकी उत्पत्ति

मास्याषाढ़े ततो ज्येष्ठे प्रमाद्यन्ति भुजंगमः ।
ततो नागोऽथनागी च मैथुने संप्रपद्यते ॥ ८ ॥
चतुरो वार्षिकान् मासान् नागी गर्भमधारयत् ।
ततः कार्तिक मासेतु अण्डकानि प्रसूयते ॥ ९ ॥
अण्डकानां तु विज्ञेये द्वेशते द्वे च विंशती ।
तान्येवभक्षयेत्सा तु भागैकं घृणया त्यजेत् ॥ १० ॥

आषाढ और ज्येष्ठ मासमें सांप कामोन्मत्त हो जाते हैं, नाग और नागिन अर्थात् सांप और सांपिन जोड़े बनाने लगते हैं। चौमासे भर सांपिनी गर्भ धारण करती है और कार्त्तिकमें अण्डे दे देती है। एक एक सांपिनी २२२ अण्डे तक दे दिया करती है। सांपिनी अपने ही अण्डोंको खाने लगती है। जब बहुत कुछ खा चुकती है तब ग्लानि या घृणा अनुभव करके एक भाग छोड़ देती है।

स्वर्णार्कं वर्णाद्वै तस्या पुमान् संजायतेऽण्डकान् ।
तान्येव खादते सर्प अहोरात्राणिविंशतिम् ॥ ११ ॥
स्वर्णकेनक वर्णा भाद् दीर्घ राजीव सन्निभात् ।
तस्मादुत्पद्यते स्त्री वै अण्डाद् ब्राह्मण सत्तम ॥ १२ ॥
शिरीष पुष्प वर्णाभाद् अण्डाकान् स्यान्नपुंसकः ।

साँपिनीके अण्डोंमें तीन प्रकारके अण्डे होते हैं एक सुनहरी आकके रंगके दूसरे सुनहरी केतकके रंगके, तीसरे सिरसके फूलके रंगके। पहले प्रकारके अण्डोंमेंसे नर बच्चे पैदा होते हैं नर सर्प इसी प्रकारके अण्डोंमेंसे २० दिन तक बराबर खाया करता है।

दूसरे प्रकारके अण्डोंमेंसे मादा बच्चे निकलते हैं। मादा अण्डोंपर लम्बी लम्बी धारियां भी होती हैं। तीसरे प्रकारके अण्डोंमेंसे नपुंसक सांप उत्पन्न होते हैं।

ततो भिनत्ति चाण्डानि षण्मासेन तु गौतम ॥ १३ ॥
ततस्ते प्रीति संबंधात्स्नेहं बर्धन्ति बालकाः ॥
ततो ऽसौ सप्त रात्रेण कृष्णो भवति पन्नगः ॥ १४ ॥

अण्डे देनेके ६ मास बाद सांपिनी अपने अण्डे फोड़ती है। उनमेंसे बच्चे निकल आते हैं। वह बालक भी प्रेम संबन्धसे बंधकर माताके स्नेहसे बंध जाते हैं। सांपका बच्चा अण्डा फूटनेके ७ दिन बाद ही काला 'पन्नग' हो जाता है। अर्थात् वह ७ दिन में ही काला नाग बन जाता है।

सांपों की आयु

आयुः प्रमाणं सर्पाणं शतं विंशोत्तरं स्मृतम् ॥

सांपोंकी आयु १२० वर्ष कही जाती है।

मृत्युश्चाष्ट विधो ज्ञेयःशृणुष्वात्र यथा क्रमम् ॥ १५ ॥
मयूरान् मानुषा द्वापि चकोराद् गोखुरात् तथा ॥
विडालान्नकुलाच्चैव वराहाद् वृश्चिका तथा ॥ १६ ॥
एतेषां यदि मुच्येत जीवेद् विंशोत्तरं शतम् ॥

सांपके जीवनमें उसपर आठ प्रकारकी विपत्तियां प्रायः आती हैं—मोर, मनुष्य, चकोर, गायका खुर, बिल्ली, नेवला, सूअर, और बिच्छू। इन आठ कारणोंसे सांपका जीवन संकटमें रहता है। यदि इन संकटोंसे मुक्त हो जाय तो वह १२० वर्ष तक जीता है।

बाल सर्पकी वृद्धि

सप्ताहेतु ततः पूर्णे दंष्ट्राणांचाधिरोहणम् ॥ १७ ॥

---

टि०—वेदमें सांपका कट्टर शत्रु कीड़ियोंको भी लिखा है। परन्तु ध्यान रहे जब तक सांपके शरीरमें कोई व्रण या ज़ख़्म नहीं होता तब तक कीड़ियां सांपका कुछ नहीं कर सकतीं; जख़्म लगने पर फिर कीड़ियां सांपको मारकर ही छोड़ती हैं। ले०

विषस्या गमनं तत्र निक्षिपेच्च पुनः पुनः ॥
एवं ज्ञात्वा तु तत्वेन विषकर्मारिभेतवै ॥ १८ ॥
एक विंशति रात्रेण विषदंष्ट्रा प्रजायते ।

एक सप्ताह हो जाने पर सांपके बच्चेकी दाढ़ें जमने लगती हैं। मुखमें विष भी आने लगता है। वह बार बार विषको स्वयं बाहर फेंक देता है। विष वैद्यको चाहिये यह ठीक प्रकारसे जानकर विष चिकित्साका कार्य आरम्भ करे।

२१ रातमें सांपके बच्चेके मुखमें विषकी दाढ़ें भी पैदा हो जाती हैं।

नागी पार्श्व समावर्ती बालसर्पः स उच्यते ॥ १९ ॥
पञ्च विंशति रात्रस्तु सद्यः प्राणहरो भवेत् ।
षण्मासाज्जातमात्रस्तु कंचुकं वै प्रमुञ्चति ॥ २० ॥

जो सांपका बच्चा अभी अपनी मांके पास ही रहता है वह बाल सर्प कहाता है। पच्चीस रात बीतने पर वह भी मनुष्यका प्राण ले लेनेवाला हो जाता है। ६ महीनेमें तो वह कैंचुल भी बदलने लगता है।

पादानां चापि विज्ञेये द्वेशते द्वेच विंशती ॥
गोलोम सदृशाः पादा प्रविंशति क्रमन्तिच ॥ २१ ॥
संधीनां चास्य विज्ञेये द्वेशते विंशती तथा ॥
अंगुल्यश्चापि विज्ञेया द्वेशते विंशती तथा ॥ २२ ॥

सांपोंके पैर २४० होते हैं। उनका आकार गायके रोमके समान होता है। पैर कभी शरीर में ही छिप जाते हैं और कभी निकल भी आते हैं। सांपके शरीरमें २४० जोड़ होते हैं। इसी प्रकार अंगुलियां भी २४० होती हैं।

अकाल जाता ये सर्पाः निर्विषास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥
पञ्चसप्तति वर्षाणि आयुस्तेषां प्रकीर्त्तितम् ॥ २३ ॥

जो सांप बिना मौसमके उत्पन्न होते हैं वह निर्विष कहे जाते हैं। उनकी आयु भी ७५ वर्ष ही होती है।

रक्तपीतशुक्लदंता अनीला मंदवेगिनः।
एते अल्पायुषो ज्ञेया अन्ये च भीरवः स्मृताः ॥२४॥

जिन सांपोंके दांत लाल, पीले और सफ़ेद होते हैं; जो शरीरमें नीले नहीं होते और वेगमें मंद होते हैं। आयु भी उनकी बहुत कम समझनी चाहिये। और वह भीरु डरपोक भी बहुत होते हैं।

एकंचास्यभवेद्वक्त्रं द्वेजिह्वे च प्रकीर्त्तिते ।
द्वात्रिंशद्दशनाः प्रोक्ताः पन्नगानां न संशयः ॥२५॥

सामान्यतः सांपोंके एक मुख, दो जीभें और ३२ दांत कहे जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है।

विषदंष्ट्राएं

तेषांमध्ये चतस्रस्तु दंष्ट्राया सुविषावहाः ।
मकरी कराली कालरात्री यमदूती तथैव च ॥२६॥
सर्वासांचैव दंष्ट्राणां देवताःपरिकीर्त्तिताः ।
प्रथमा ब्रह्मदैवत्या द्वितीया विष्णुदेवता ॥२७॥
तृतीयारुद्र दैवत्या चतुर्थी यमदेवता ।
हीनाप्रमाणतः सा तु वामनेत्रं समाश्रिता ॥२८॥
नास्यां मन्त्राः प्रयोक्तव्या नौषधं नैव भेषजम् ।
वैद्यःपराङ्मुखो याति मृत्युस्तस्या विलेखनात् ॥२९॥
चिकित्सानबुधैःकार्या तदन्तं तस्य जीवितम् ॥

उन दांतोंमें ४ दाढ़ें विष लानेवाली होती हैं; जिनका नाम (१) मकरी, (२) कराली, (३) कालरात्री और (४) यमदूती है। इन चारोंके देवता भी नियत हैं। पहलीका देवता ब्रह्मा, दूसरीका विष्णु, तीसरीका रुद्र, और चौथीका यम देवता है। चौथी दाढ़ सबसे छोटी होती है। वह बाईं आंखकी तरफ लगी होती है। इसका जख़म लगने पर न मन्त्रोंका प्रयोग हो सकता है और न औषधियोंका प्रयोग करना ही उचित है। इसका जख़म लगने पर वैद्य भी अपना मुख लेकर लौट जाता है। इसका जख़म देखकर विद्वान वैद्य चिकित्सा न करे; क्योंकि पुरुषका जीवन ही समाप्त हो जाता है।

मकरीं मासिकां विद्यात् कराली तु द्विमासिका ॥३०॥
कालरात्री भवेत्त्रीणि चतुरो यमदूतिका ।
मकरीं गुड़ोदनं विद्यात् कषायाभं करालिका ॥३१॥
कालरात्रिंकुटुयुतं दूतीनैसन्निपातिकम् ।
मकरींशङ्खकं विद्यात् कराली काकपादिका ॥३२॥
कराकृतिःकालरात्रिः याम्याकुर्माकृतिःस्मृतिः ।

चारों प्रकारकी दाढ़ोंकी विशेषता इस प्रकार समझ लें कि मकरी एक मासमें पैदा होती है,

करालो दो मासमें, कालरात्रि तीन मासमें और दूती ४ मासमें पैदा होती है। मकरीको गुड़ और भातका कौर समझे। करालीको कसैला भोजन समझे, कालरात्रिको कडुआ भोजन जाने और यमदूतीको सन्निपात रोगके समान मृत्युकर जाने। मकरीको शस्त्र समझे; करालीको संड़सी समझे; कालरात्रीको हाथके आकारका समझे, यमदूतीको कूर्माकृति समझे।

[ टि०—पाठकगण! सांपकी चारों दाढ़ोंकी विशेषताएं उनके प्रभावोंकी विशेषताको देखकर लिखी जारही हैं। जिस-समय सांप मकरीसे काटता है उस समय बहुत कष्ट नहीं होता; उसका काट लेना अधिक भयजनक नहीं। इस कारण उसको भात गुड़के कौरके समान समझे; करालीके काटनेको कसैले अन्नके समान समझे अर्थात् जैसे कसैला अन्न खा लेने पर वमन हो जाता है और चित्त बिगड़ता है उसी प्रकार करालीके काटनेपर भी रोगीका जी मिचलाता है और वमन हो जाता है। कालरात्रिका काटा कटुभोजनके समान कष्टदायक समझे। इस द्वारा काटे जानेपर वमन, तीव्रदाह, मूर्छा, तथा बहुत अधिक घबराहट होती है। परन्तु इतनेपर भी जीवनके बचने की आशा लगी रहती है। यमदूतीके काटलेनेपर तो सन्निपातके समान रोगीकी मृत्यु ही होती है। ऐसी दशामें रोगीके बचनेकी सर्वथा सम्भावना नहीं होती।

मकरीको शस्त्र ही समझें अर्थात् जैसे चाकू आदिका जखम निर्विष होता है और शीघ्र आराम हो जाता है; उसी प्रकार मकरीका घाव भी शीघ्र आराम हो जाता है। करालीके काटनेपर वैसाही कष्ट होता है जैसा संडसी द्वारा काटनेपर होता है। अर्थात् उस समय रोगीका दम घुटने लगता है। कालरात्रीको हाथके आकारका जाने अर्थात् जैसे हाथ पकड़ लेता है वैसे ही कालरात्री दाढ़ भी जखमको पकड़ लेती है। वह गड़ जानेपर जल्दी ज़खमसे नहीं छूटती। यमदूतीको कूर्म अर्थात् कछुएके आकारका जाने अर्थात् जैसे कछुआ गोल और आगे उसके मुख होता है उसी प्रकार विषकी गोल थैलीके आगे वह दाढ़ लगी होती है। विष भरनेका काम यमदूतीसे ही किया जाता है। मकरी काटती है, कराली संडसीके समान पकड़ती है, कालरात्रि हाथके समान मजबूत पकड़ लेती है और यमदूती संहारी भयानक विषकी पिचकारी लगाती है। इस प्रकार चारों दाढ़ोंका भिन्न भिन्न कार्य है। चारोंके प्रभाव भी शरीर पर भिन्न भिन्न प्रकारके प्रकट होते हैं। ]

मकरी वातुला ज्ञेया कराली पैत्तिकी स्मृता ॥३३॥
कफात्मिका कालरात्रिः यमदूती सान्निपातकी।

मकरी वात प्रधान है। उसके काटने पर देहमें कपकपी, होती है शीत सा लगता प्रतीत होता है। कराली पित्तप्रधान है, उसके कारण देहमें दाह और ज्वरसा प्रकट होता है। कालरात्रि कफप्रधान है। देहमें सूजन, मुखमें झाग आदि प्रकट होता है। यमदूतीमें सन्निपात अर्थात् तीनों दोषोंका प्रकोप होता है। सभी लक्षण प्रबलतासे उत्पन्न होते हैं और पाखाना प्रबलतासे आता है। वमन भी जोरसे आता है। शरीर पर मृत्युका वश हो जाता है।

शुक्ला तु मकरी ज्ञेया, कराली रक्त संनिभा ॥३४॥
कालरात्री भवेत् पीता, कृष्णा च यमदूतिका।
वामा शुक्ला च कृष्णा च रक्त पीता च दक्षिणा ॥३५३॥
समासेन तु वक्ष्यामि यथैता वर्णतः स्मृताः।
शुक्ला तु ब्राह्मणी ज्ञेया रक्ता तु क्षत्रिया स्मृता ॥३६॥
वैश्या तु पीतिका ज्ञेया कृष्णा शूद्रा तु कथ्यते।

मकरीका रंग श्वेत, करालीका रंग लाल, कालरात्रिका पीला और यमदूतीका काला होता है। बाईं तरफ़की दाढ़ें सफ़ेद और काली होती हैं। दायीं तरफ़की लाल और पीली होती हैं। सफेद ब्राह्मणी; लाल क्षत्रिय, पीली वैश्य और काली शूद्र समझनी चाहिये।

### दंष्ट्राका विष

अतः परं प्रवक्ष्यामि दंष्ट्राणां विष लक्षणम् ॥३७॥

अब इससे आगे दंष्ट्राओंके विषका स्वरूप कहेंगे।

दंष्ट्राणां तु विषं नास्ति नित्यमेव भुजङ्गमे।
दक्षिणं नेत्रमासाद्य विषं सर्पस्य तिष्ठति ॥३८॥
संक्रुद्धस्येह सर्पस्य विषं गच्छति मस्तके।
मस्तकाद्धमनीं याति ततो नाड़ीषु गच्छति ॥३९॥
नाड़ीभ्यः पद्यते दंष्ट्रां विषं तत्र प्रवर्त्तते।
तत्सर्वं कथयिष्यामि यथावद नु पूर्वशः ॥४०॥

सांपकी दाढ़ोंमें सदा विष नहीं रहा करता। सांपकी दाएँ नेत्रके पास सब विष इकट्ठा रहा करता है। जब सांपको क्रोध आ जाता है; उसका सब विष उसके माथे पर चढ़ जाता है। माथेसे धमनीमें पहुँचता है; तब विषवाहिनी नाड़ियोंमें आता है। नाड़ियोंसे दाढ़ तक पहुंचता है। सो सब विषका प्रयोग मैं क्रमसे वर्णन करूंगा।

नाना प्रकारके काटने पर विचार

अष्टभिः कारणैः सर्पो दंशते नात्र संशयः।
आक्रान्तो दशते पूर्वं द्वितीयं पूर्व वैरिणम् ॥४१॥
तृतीयं दशते भीत श्चतुर्थो मद दर्पितः।
पंचमंतु क्षुधा विष्टः षष्टं चेह विषोल्लवणः ॥४२॥
सप्तमं पुत्र रक्षार्थं मष्टमं कालचोदितः।

सांप आठ कारणोंसे ही काटा करता है, इसमें संदेह नहीं है। (१) सांप तब काटता है जब उस पर कोई आक्रमण करे या कोई उस पर पैर रख कर चला जाय। (२) सांपका किसीसे पहलेसे वैर बैठ गया हो। (३) सांप बहुत डर गया हो; या उसको अपने ऊपर संकट आनेका भय हो। (४) सांपको मदके कारण बहुत गर्व हो गया हो। (५) सांप बहुत भूखा हो। (६) उसके विषका वेग तीव्र हो गया हो; सांप विषकी तीव्रताके कारण स्वयं उसको धारण न कर सकता हो। (७) पुत्रों पर आघात होता देखे तो उनकी रक्षा करनेके लिए भी वह काटता है और (८) जब विधाता ही उसको किसीके प्राण लेनेके लिए प्रेरित करता है।

(१) यस्तुसर्पो दशित्वा तु उदरं परिवर्त्तयेत् ॥ ४३ ॥
बलभुग्ना कृतिं दंष्ट्रा माक्रान्तं तंविनिर्दिशेत्।

जब सांप काट कर पेटके बल लौट जाय और उसकी दाढ़का चिन्ह भी जोरसे मारे जानेके कारण टेढ़ा सा पड़े उसे देख कर चतुर वैद्य समझ ले कि सांपने पैर पड़ने पर काट लिया है।

यस्य सर्पेण दष्टस्य गभीरं दृश्यते व्रणम्।
वैर दृष्टं विजानीयात् कश्यपस्य वचो यथा ॥४४॥

जिस सांपके काटेमें गहरा घाव दीखे कश्यपके कथनानुसार समझ ले कि यह सांपने वैरसे प्रेरित होकर काटा है।

एकं दंष्ट्रापदं यस्य अव्यक्तं नच कल्पितम्।
भीत दृष्टं विजानीयात् यथोवाच प्रजापतिः ॥४५॥

यदि एक ही दाढ़का चिन्ह और वह भी अस्पष्ट सा दिखाई दे, चर्म पर कोई काटेका चिन्ह न हो, रक्त आदिका जखम न बना हो तो उसे डरे हुए सांपका काटा समझे। ऐसा ही कश्यप प्रजापति ने कहा है।

यस्य सर्पेण दष्टस्य रेखा दन्तस्य जायते।
मद दृष्टं विजानीयात् कश्यपस्य वचो यथा ॥४६॥

जिस सांपके काटेमें दांतकी रेखा खुर्ची हुईसी हो जाय, कश्यपके कथनानुसार उसे मदके कारण काटा हुआ जाने।

द्वेच दंष्ट्रा पदे यस्य दृश्यन्ते महाक्षतम्।
क्षुधा विष्टं विजानीयात् यथो वाच प्रजापतिः ॥४७॥

जिस समय दो दाढ़ोंके चिन्ह और बड़ासा जखम देखे तब प्रजापति के कथनानुसार सांपको भूखा ही समझ ले।

द्वेदंष्ट्रे यस्य दृश्येते क्वचिद् रुधिर संकुले।
विषोल्वणं विजानीयात् दंशतं नात्र संशयः ॥४८॥

यदि कहीं दोनों दाढ़ोंके चिन्ह देखे और दोनों-के जखमों से लहू बह रहा हो तो समझ ले कि निःसंदेह सांपने विषकी तीव्रताके कारण ही काटा है।

अपत्य रक्षणार्थाय जानीयात्तं न संशयः।
यत्तु काक पदाकारं त्रिभिर्दन्तैस्तु लक्षितम् ॥४९॥

जिसमें सांपके तीन दांतोंका निशान कौवेके पैरके समान दिखाई दे उसको अपने बच्चेकी रक्षाके लिए काटा हुआ समझे।

महानाग इति प्रोक्तं कालदष्टं विनिर्दिशेत्।
त्रिविधं दष्ट जातैस्तु लक्षणं समुदाहृतम् ॥५०॥
दष्टानुपीतं विज्ञेयं कश्यपस्य वचो यथा।
विषभागात्तु सर्पस्य त्रिभागस्तत्र संक्रमेत् ॥५१॥
उदरं दर्शयेद् यस्तु उद्धतं तं विनिर्दिशेत्।
छर्दिनं विषवेगेन निर्विषः पन्नगो भवेत् ॥५२॥

असाध्य श्चापि विज्ञेयश्चतुर्दंष्ट्रा भिपीड़ितः ।
ग्रीवाभंगो भवेत् किञ्चि त्संदष्टो विषयोगतः ॥५३॥
इतो दंशस्ततः शुद्धो व्यंतरः परिकीर्त्तितः ॥५४॥

महानागके काटेको काल दष्ट कहा जाता है। काटनेके तीन प्रकारके लक्षण शास्त्रकारोंने और कहे हैं। जिस समय सांपका तिहाई विष जख़ममें आपड़े उस काटेको 'दष्टानुपीत' कहा जाता है। अर्थात् सांपने काटकर उसमेंसे खून भी पिया है। यदि सांप काटते समय अपना पेट पलट दे उसे 'उद्धृत दष्ट' कहा जाता है। सांप विषके वेगसे सब विष उगल दे तो वह "छर्दित" कहाता है जब सांप चारों दाढ़ोंको जमाकर घाव लगाता है तब असाध्य समझे। सांपके काटते समय सांपकी गर्दन लचक पड़े तब जख़म तो कहीं लगता है और विष कहीं जा पड़ता है या किसी जख़ममें विष होता है और किसीमें नहीं होता। ऐसे काटेको 'व्यंतर दष्ट' कहा जाता है।

इति प्रथमोऽध्यायः

---

## सूर्यसिद्धान्त

द्वादशघ्ना गुरोर्याता भगणा वर्तमानकैः ।
राशिभिः सहिताः शुद्धाः षष्ट्यास्युर्विजयादयः ॥५५॥

नुवाद—बृहस्पतिके गत भगणोंको १२ से गुणा करके गुणनफलमें वर्तमान भगणकी जिस राशिमें बृहस्पति हो उसकी क्रम संख्याको जोड़ दे, योगफलको ६० से भाग देने पर जो शेष बचे उसी क्रम संख्याका सम्वत्सर विजयसे आरंभ होकर चल रहा है ऐसा समझना चाहिये।

विज्ञान भाष्य—बृहस्पति मध्यम गतिसे जितने समयमें एक राशि चलता है उसको सम्वत्सर कहते हैं। इसलिए बृहस्पतिके एक भगण कालमें (४३३२'३२०६ सावन दिनोंमें) बारह सम्वत्सर होते हैं और एक सम्वत्सरमें ३६१'०२६७२ सावन दिन होते हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि सौर वर्षकी अपेक्षा संवत्सर ४'२३२०२ सावन दिन छोटा और सावन वर्षसे १'०२६७२ सावन दिन बड़ा होता है।

एक चक्रमें ६० सम्वत्सर होते हैं जिनके नाम क्रमसे यह हैं:—

| | | |
|---|---|---|
| १ विजय | २१ प्रमादी | ४१ श्रीमुख |
| २ जय | २२ आनन्द | ४२ भाव |
| ३ मन्मथ | २३ राक्षस | ४३ युवा |
| ४ दुर्मुख | २४ अनल (नल) | ४४ धाता |
| ५ हेमलम्ब | २५ पिंगल | ४५ ईश्वर |
| ६ विलम्ब | २६ कालयुक | ४६ बहुधान्य |
| ७ विकारी | २७ सिद्धार्थी | ४७ प्रमाथी |
| ८ शार्वरी | २८ रौद्र | ४८ विक्रम |
| ९ प्लव | २९ दुर्मति | ४९ वृष |
| १० शुभकृत | ३० दुंदुभी | ५० चित्रभानु |
| ११ शोभन | ३१ रुधिरोद्गारी | ५१ सुभानु |
| १२ क्रोधी | ३२ रक्ताक्ष | ५२ तारण |
| १३ विश्वावसु | ३३ क्रोधन | ५३ पार्थिव |
| १४ पराभव | ३४ क्षय | ५४ व्यय |
| १५ प्लवंग | ३५ प्रभव | ५५ सर्वजित |
| १६ कीलक | ३६ विभव | ५६ सर्वधारी |
| १७ सौम्य | ३७ शुक्ल | ५७ विरोधी |
| १८ साधारण | ३८ प्रमोद | ५८ विकृति |
| १९ विरोधकृत | ३९ प्रजापति | ५९ खर |
| २० परिधावी | ४० अंगिरा | ६० नन्दन |

वराह मिहिरने बृहत्संहितामें[1] संवत्सर चक्रका आरंभ विजयसे न मानकर ३५ वें सम्वत्सर प्रभावसे माना है। यही प्रथा आजकल भी प्रचलित है। यह प्रथा कबसे आरंभ हुई इसकी खोज करना आवश्यक है। ६० संवत्सरोंके चक्रमें कई छोटे छोटे

---

१—नवलकिशोर प्रेससे १८८८ ई० में प्रकाशित और पं० दुर्गाप्रसाद जी द्वारा अनुवादित पृष्ठ ६०—

आद्यंधनिष्ठांशमाभि प्रपन्नो माघे यदायात्युदयं सुरेज्यः ।
षष्ट्यब्द पूर्वः प्रभवः सनाम्ना प्रवर्तते भूतहितास्तदाब्दः ॥

विभाग हैं; जिनका आरंभ भी प्रभवसे ही होता है जिनकी चर्चा मानाध्याय नामक अंतिम अध्यायमें की जायगी।

जब यह जानना हो कि किसी इष्ट समयमें कौन संवत्सर चल रहा है तब सबसे पहले ५३ वें श्लोकके अनुसार यह जानना चाहिये कि उस समय बृहस्पतिका मध्यम स्थान क्या है। सृष्टिके आदिसे अहर्गण निकाल कर मध्यम ग्रह जाननेकी क्रिया बहुत कठिन है; इसलिए यदि कलियुगके आदिसे अहर्गण साधा जाय तो अधिक सुभीता होगा; क्योंकि इस समय से भी विजय सम्वत्सरका आरंभ हुआ है। जो लोग दशमलव भिन्नको रीति जानते हों उनको अहर्गणकी जगह सौर वर्षोंसे काम लेनेमें और भी सुभीता होगा। इस प्रकार मेष संक्रान्तिके समय बृहस्पतिका जो मध्यम स्थान होगा वह निकल आवेगा; जैसे मान लीजिये कि यह जानना है कि सम्वत १९८१ विक्रमीयकी मेष संक्रान्तिके समय कौन सम्वत्सर वर्तमान होगा और वह कितने दिन तक रहेगा।

कलियुगके आरंभसे १९८१ वि० की मेष संक्रान्ति तक ५०२५ सौर वर्ष बीत चुकेंगे। उस समय तक बृहस्पति कितने भगण पूरा करके किस राशि पर रहेगा, यह जान लेनेसे सम्वत्सरका पता चल जायगा। एक महायुग अर्थात् ४३२०,००० सौर वर्षोंमें बृहस्पतिके ३,६४,२२० भगण होते हैं; इसलिए ५०२५ सौर वर्षोंमें

$$\frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \text{ भगण}$$

$$= \frac{३,६४,२२० \times ५०२५}{४३,२०,०००} \times १२ \text{ संवत्सर}$$

$$= ५०८३\cdot९०४१६६६६ \text{ संवत्सर होते हैं।}$$

जिसका अर्थ यह हुआ कि १९८१ वि० की मेष संक्रान्तिके समय ५०८४वां सम्वत्सर चल रहा है, उसका ·९०४१६६६६ भाग बीत गया है और, ·०९५८३३३४ भाग रह गया है।

६० संवत्सरोंका एक चक्र होता है इसलिए ५०८४ को ६० से भाग देने पर ८४ लब्धि आती है और ४४ शेष होता है जिसका अर्थ यह हुआ कि कलियुगसे ६० सम्वत्सरोंका चक्र ८४बार हो चुका है ८५ वें चक्रका ४४वां सम्वत्सर धाता चल रहा है और मेष संक्रान्ति के समय उसका ·०९५८३३· भाग बीतने को शेष है।

यदि यह जानना हो कि धाता सम्वत्सर १९८१ विक्रमीयमें कितने दिन तक रहेगा तो इस शेषको एक सम्वत्सरके सावन दिनोंसे अर्थात् ३६१·०·२६७२से गुणा कर देना चाहिये। ऐसा करनेसे गुणन फल ३४·५९८४ सावन दिन आता है; इसलिए १९८१की मध्यम मेष संक्रान्तिके समयसे ३४·५९८४ सावन दिन बीतनेपर धाताका अंत और ईश्वर नामक संवत्सरका आरम्भ होगा। यह पहले बतलाया गया है कि स्पष्ट मेष संक्रान्ति मध्यम मेष संक्रान्तिसे २·१७०७ सावन दिन पहले ही होती है; इसलिए स्पष्ट मेष संक्रान्तिसे ३६·७६९१ सावन दिनपर अथवा ३६ दिन ४६ घड़ी ८ पल ४० विपलपर ईश्वरका प्रवेश होगा।

> विस्तरेणैतदुदितं संक्षेपाद्व्यावहारिकम्।
> मध्यमानयनं कार्यं ग्रहाणामिष्टतो युगात ॥५६॥
> अस्मिन कृतयुगस्यान्ते सर्वे मध्यगता ग्रहाः।
> विना तु पातमन्दोच्चान्मेषादौ तुल्यतामिताः ॥५७॥
> मकरादौ शशाङ्कोच्चं तत्पातस्तु तुलादिगः।
> निरंशत्वं गताश्चा न्येनोक्तास्ते मन्दचारिणाः ॥५८॥

अनुवाद—(५६) ग्रहोंके मध्यम स्थान जाननेकी रीति अब तक विस्तारके साथ कही गयी है; परन्तु व्यवहारके लिए इष्ट युगसे ही यह काम संक्षेपमें करना चाहिये। (५७) इस सत्ययुगके अंतमें पातों और मन्दोच्चोंको छोड़कर सब ग्रहोंके मध्यम स्थान मेषके आदिमें समान थे अर्थात् सातों ग्रह मेषके आरंभ स्थानपर पहुँचे हुए थे। (५८) चन्द्रमाका उच्च मकर राशिके आदिमें तथा उसका पात (राहु) तुलाके आदिमें थे। अन्य ग्रहोंके पात और

मन्दोच्च मन्दगतिके कारण किसी पूरे अंशपर नहीं थे; इसलिए इनके बारेमें कुछ नहीं कहा जाता है।

विज्ञान-भाष्य—इस अध्यायके ४५-५० श्लोकोंमें ग्रहोंके मध्यमस्थान निकालनेकी जो रीति बतलायी गयी है वह गणित विस्तारके कारण व्यवहारोपयोगी नहीं है जैसा कि दिये हुए उदाहरणोंसे स्पष्ट है। इसलिए सृष्टिके आदिसे सत्ययुगके अंत तकके वर्षोंका अहर्गण निकालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वर्तमान युगका आरम्भ जबसे हुआ है तभीसे इष्टकाल तकका अहर्गण ४८वें श्लोक के उत्तरार्द्ध और ४९-५० श्लोकोंके अनुसार जानकर ग्रहोंके मध्यम स्थान जान लेने चाहियें।

जिस समय सूर्यांश पुरुषने मयको सूर्यसिद्धान्तका उपदेश दिया है वह इसी अध्यायके दूसरे श्लोकके अनुसार सत्ययुगके अंतका समय है, इसलिए ५७ वें श्लोकमें त्रेताके आदिसे अहर्गण बनानेका संकेत है और यह भी दिखलाया गया है कि इस समय सब ग्रहोंके मध्यम स्थान मेष राशि के आदिमें समान थे। इस नियमके अनुसार कलियुगमें कलियुगके आदिसे ही अहर्गण निकालनेकी रीति सुविधाजनक है जो आजकल प्रचलित भी है। जैसे त्रेताके आदिमें सब ग्रहोंके मध्यम स्थान मेषके आदिमें समान थे वैसे ही कलियुगके आदिमें भी मेष राशिके आदिमें समान थे; क्योंकि त्रेताके आदिसे कलियुगके आदि तक आधा महायुग होता है जितने समयमें सब ग्रह पूरे पूरे भगण करते हैं। हां चंद्रमाका उच्च एक महायुगमें विषम भगण करनेके कारण मकरके आदिमें न होकर कर्कके आदिमें था, परन्तु पात तुलाके ही आदिमें था। यह मत सूर्यसिद्धान्तका है। भास्कराचार्यके* अनुसार कलियुगके आदिमें सूर्य चन्द्रमाके सिवा अन्य ग्रहोंके मध्यम स्थान यह थेः—

* सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ३२—३३; कलकत्तेकी १९१५ ई० की छपी।

| | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि | चंद्रोच्च | राहु† |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| राशि | ११ | ११ | ११ | ११ | ११ | ४ | ५ |
| अंश | २९ | २७ | २९ | २८ | २८ | ५ | ३ |
| कला | ३ | २४ | २७ | ४२ | ४६ | २९ | १२ |
| विकला | ५० | २९ | ३६ | १४ | ३४ | ४६ | ५८ |

यहां तक तो वह रीति बतलायी गयी है; जिससे ग्रहोंका मध्यम स्थान लंका या उज्जैनकी आधी रातके समयका निकलता है। आगेके श्लोकोंमें लंकाके पूरब पच्छिमके देशोंमें आधीरातके समय ग्रहोंका मध्यम स्थान जाननेकी रीति बतलायी जायगी।

योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु।
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ॥५९॥

अनुवाद—(५९) पृथ्वीका व्यास ८०० के दूने १६०० योजन है; इसके वर्गका १० गुना करके गुणनफलका वर्ग मूल निकालनेसे जो आता है वह पृथ्वीकी परिधि है।

विज्ञान भाष्य—यदि पृथ्वीका व्यास 'व' मान लिया जाय तो इसकी परिधि=$\sqrt{व^2 \times १०}$=व $\times \sqrt{१०}$ =व × ३·१६२३जिससे सिद्ध होता है कि परिधि व्यासका ३·१६२३ गुना होती है। आजकल यह सम्बन्ध ३·१४१६ दशमलवके चार स्थान तक शुद्ध समझा जाता है जो ३·१६२३ से बहुत भिन्न है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिये कि सूर्यसिद्धान्तकारको व्यास और परिधिका ठीक ठीक सम्बन्ध मालूम नहीं था; क्योंकि दूसरे अध्यायमें अर्द्धव्यास और परिधिका अनुपात ३४३८ः२१६०० माना गया है, जिससे परिधि व्यासका ३·१४१३६ गुना ठहरती है। इसलिए इस श्लोकमें परिधिको

† राहुकी यह स्थिति कलकत्तेकी छपी सिद्धान्त शिरोमणिमें तथा म. म. पं० बापूदेव शास्त्रीकी संपादित सिद्धान्त शिरोमणिमें लिखी है; परन्तु मेरी गणनासे इसको ६ राशि २६ अंश ४७ कला २.४ वि० पर कलियुगके आरंभमें होना चाहिये; जो १२ राशियोंमेंसे ऊपर दी हुई स्थितिको घटानेसे आती है।

व्यासका $\sqrt{१०}$ सुविधाके लिए, गणितकी क्रिया संक्षेप करनेके लिए, माना गया है जैसे आजकल जब स्थूल रीतिसे काम लेना होता है तब कोई इसको $\frac{२२}{७}$ और कोई ३·१४ मानते हैं और जहां बहुत सूक्ष्म गणना करनेकी आवश्यकता पड़ती है वहां दशमलवके पांच पांच सात सात स्थानों तक इसको शुद्ध मानलेना पड़ता है।

भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंमें इस सम्बन्धका मान क्या लिया गया है यह नीचेके अवतरणसे जान पड़ेगा।

| सिद्धान्त | व्यास : परिधि | | व्यास : परिधि |
|---|---|---|---|
| सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त[1], द्वितीय आर्यभट[2] | १ : $\sqrt{१०}$ अर्थात् | | १ : ३·१६२३ |
| प्रथम आर्यभट[3] | २०००० : ६२८३२ | " | १ : ३·१४१६ |
| द्वितीय आर्यभट[2] भास्कराचार्य[4] | ७ : २२ | " | १ : ३·१४२८ |
| भास्कराचार्य[4] | १२५० : ३९२७ | " | १ : ३·१४१६ |
| ३४३८ कलाकी त्रिज्या माननेसे, जो ब्रह्मस्फुटके लिये सभी सिद्धान्तोंमें पाया जाता है। | ६८७६ : २१६०० | " | १ : ३·१४१३६ |
| आजकलके सूक्ष्म गणितसे | | | १ : ३·१४१५९२७ |

भास्कराचार्य और द्वितीय आर्यभट ने दो प्रकारसे व्यास और परिधिका संबंध बतलाया है, एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल और व्यवहारोपयोगी।

१—ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त गोलाध्याय श्लोक १५।

२—महासिद्धान्त पाटीगणिताध्याय श्लोक ८८,९२।

३—आर्यभटीय पृष्ठ २६ श्लोक १०, ( ब्रह्मप्रेस इटावाका छपा )।

४—लीलावती पृष्ठ ५४ क्षेत्र व्यवहाराध्याय श्लोक ४०।

आगे व्यास और परिधिके सम्बन्धको π चिह्नसे सूचित किया जायगा; जैसी कि आजकल प्रथा है अर्थात् यदि व्यास १ है तो परिधि π है, जब कि π का मान व्यवहारके अनुसार $\frac{२२}{७}$, ३·१४, ३·१४२, ३·१४१६ इत्यादि जैसा आवश्यक हो लिया जा सकता है।

इस श्लोकमें दूसरा शब्द 'योजन' बड़े महत्वका है। आजकल लोग योजनको साधारणतः चार कोसका समझते हैं परन्तु कोसका मान स्वयम् स्थिर नहीं है। किसी किसी प्रान्तमें कोस बहुत छोटा होता है। और किसी प्रान्तमें बहुत बड़ा। इसी प्रकार योजनका भी परिमाण स्थिर नहीं है। यही कारण है कि भिन्न भिन्न सिद्धान्तोंमें भूपरिधि या भूव्यासके मान भिन्न भिन्न अंकोंमें दिये हुए हैं। नीचे लिखे अवतरणोंसे प्रकट होगा कि सिद्धान्तोंमें भूव्यासका मान क्या दिया हुआ है:—

| | | | |
|---|---|---|---|
| पंचसिद्धान्तिकाके[1] मतसे भूव्यास | | १०१८$\frac{६}{१०}$ | योजन |
| आर्यभट[2] और लल्ल " | " | १०५० | " |
| वर्तमान सूर्यसिद्धान्त " | " | १६०० | " |
| सिद्धान्त शिरोमणि[3] " | " | १५८१$\frac{६}{२४}$ | " |
| द्वितीय आर्यसिद्धान्त (महासिद्धान्त) | | २१०९ | " |
| आधुनिक यूरोपीय मतसे[5] | | | |
| विषुवद्वृत्तीय | | ७९२७ | मील |
| " " ध्रुवीय | | ७९०० | " |

ऊपरके अंकोंसे प्रकट है कि वराह मिहिर, आर्यभट तथा लल्लके योजन प्रायः समान हैं

१—डाक्टर थीबो और पं० सुधाकर द्विवेदी संपादित पंचसिद्धान्तिका पृष्ठ ३४ श्लोक १८ में भूपरिधिका मान ३२०० योजन दिया है; जिसको ३·१४१६ से भाग देनेपर १०१८·६ योजन पृथ्वीका व्यास हुआ।

२—आर्यभटीय पृष्ठ १०, प्रथम पादका ५वां श्लोक।

३—गोलाध्याय पृष्ठ २०, भुवनकोश श्लोक ५२।

४—महासिद्धान्त पृष्ठ १६१ भुवनकोश श्लोक ३५।

५—Sir Robert Ball's Spherical Astronomy pp. 44.

और सूर्यसिद्धान्त तथा सिद्धान्तशिरोमणिके भी योजन प्रायः समान हैं; परन्तु पहलेके तीन आचार्योंका योजन इन दोनोंके योजनका प्रायः डेढ़ गुना है। इसलिए इन्हीं दो प्रकारके योजनों-की तुलना वर्तमान मीलसे की जायगी। हमारे सिद्धान्तोंमें पृथ्वीको बिलकुल गोल माना गया है जिससे यह भेद नहीं रखा गया कि विषुवद्-वृत्तीय भूपरिधि ध्रुवीय भूपरिधि से भिन्न है। इसलिए तुलनाके लिए ध्रुवीय भूपरिधि ही लेना उचित होगा क्योंकि आचार्योंने इसकी नापसे भूपरिधिका परिमाण स्थिर किया था। इसलिए,

| आर्य भटके मतसे | सिद्धान्त शिरोमणिके मतसे |
|---|---|
| १०५० योजन=७६०० मील | १५८१ योजन=७६०० मील |
| वा १ योजन= $\frac{७६००}{१०५०}$ मील | ∴ १ योजन= $\frac{७६००}{१५८१}$ मील |
| = ७.५२ मील | = ५ मील |
| यदि १ योजनमें चारकोस होंतो | ∴ १ कोस= $\frac{१}{४}$ योजन= $१\frac{१}{४}$ मील |
| १ कोस= $\frac{७.५२}{४}$ मील=१.८८ मील | |

आजकल १ कोस २ मीलके समान समझा जाता है इसलिए आजकलका योजन आर्यभटके योजन से बहुत मिलता है। सिद्धान्त शिरोमणि-वाला कोस आजकलके 'गऊ-कोस' (गो कोस) के कदाचित् समान हो, जो किसी किसी प्रान्तमें अब तक प्रचलित है।

अब प्रश्न यह रह गया कि भूपरिधि नापी कैसे गयी। सूर्य सिद्धान्तमें इस विषयपर कुछ नहीं लिखा गया है। भास्कराचार्य[1] कहते हैं कि उत्तर दक्षिण रेखा पर स्थित दो स्थानोंकी दूरी योजनोंमें नाप लो। उन दो स्थानोंके अक्षांशोंका भी अन्तर निकालो। फिर त्रैराशिक द्वारा यह जान लेना चाहिये कि जब इतने अक्षांशोंके अंतर होने से दो स्थानोंकी दूरी इतने योजन होती है तब ३६०° पर क्या होगी। इसकी उपपत्ति यह है:-

चित्र ३६ में एक ही उत्तर-दक्षिण रेखापर स्थित दो स्थानों (स, सा) का योजनात्मक अंतर स सा नापना चाहिये। फिर दोनोंके अक्षांशांतर स भ सा कोणको जानना चाहिये फिर यह अनुपात करना चाहिये—

<स भ सा : ३६०° : : स सा : भूपरिधि

$$\therefore \text{भूपरिधि} = \frac{३६० \times \text{स सा}}{\angle \text{स भ सा}}$$

अक्षांश निकालनेकी रीति त्रिप्रश्नाध्याय नामक तीसरे अध्यायमें कई प्रकारसे बतलाई जायगी।

भूपरिधि इसी रीतिसे आजकल भी नापी जाती है; केवल सूक्ष्म यंत्रोंके कारण अब अधिक शुद्धतापूर्वक यह काम किया जाता है।

> लम्ब ज्याघ्नत्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः।
> तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता ॥६०॥
> कलादि तत्फलं प्राच्यां ग्रहेभ्यः परिशोधयेत्।
> रेखा प्रतीची संस्थाने प्रक्षिपेत्स्युः स्वदेशजाः ॥६१॥

अनुवाद—भूपरिधिको (अपने स्थानकी) लम्ब-ज्यासे गुणा करके त्रिज्यासे भाग देनेपर अपने स्थानकी स्फुट परिधि निकलती है। अपने स्थानके देशान्तर-योजनको ग्रहको दैनिक गतिसे गुणा करके गुणनफलको इसी स्फुट परिधिसे भाग देना चाहिये। (यदि दैनिक गति कलामें ली गयी है तो) फल कलामें आवेगा। यदि अपना स्थान लंका से पूरबमें हो तो लंकाकी अर्द्धरात्रिके समयके मध्यम ग्रहमेंसे इस फलको घटाना चाहिये और यदि अपना स्थान लंकासे पच्छिममें हो तो जोड़ना चाहिये। ऐसा करनेसे अपने स्थानकी

---

[1]—गोलाध्याय भुवनकोश पृष्ठ १३ श्लोक १४—

> पुरान्तरं चेदिदमुत्तरं स्यात् तदक्ष विश्लेष लवैस्तदा किम्।
> चक्रांशकैरित्यनुपातयुक्त्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणम् ॥

अथवा गणिताध्याय पृष्ठ ५६ श्लोक १—

> याम्योदक पुरयोः पलान्तर हतं भूवेष्टनं भांश हृत।
> तद्भुक्तस्य पुरान्तराध्वन इह ज्ञेयं समं योजनम् ॥

अर्द्ध रात्रिके समयके मध्यम ग्रह ( ग्रहोंके मध्यम स्थान ) निकल आते हैं।

विज्ञान भाष्य—बीज गणितके अनुसार इन श्लोकोंको इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं:—

$$\text{स्फुट परिधि} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}} \ldots\ldots\ldots\ldots (१)$$

$$\text{देशान्तर फल} = \frac{\text{देशान्तर योजन} \times \text{ग्रहकी दैनिक गति कलामें}}{\text{स्फुट परिधि}} \ldots (२)$$

अपने स्थानकी अर्द्धरात्रिके समयके मध्यम ग्रह =लंकाकी अर्द्ध रात्रिके मध्यम ग्रह ± देशान्तर फल……(३)

यदि स्थान लंकासे पूरब हो तो ऋणात्मक चिन्ह और पच्छिम हो तो धनात्मक चिन्ह लेना चाहिये।

इसकी उपपत्ति समझनेके लिए पहले यह जानना चाहिये कि लम्बज्या, स्फुट परिधि, देशान्तर इत्यादि क्या हैं।
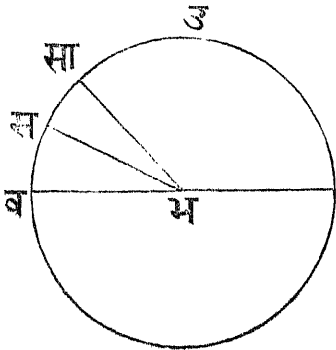
चित्र ३६

भ=पृथ्वीका केन्द्र।

वभ=विषुवद्वृत्तीय त्रिज्या।

उ=उत्तरी ध्रुव या सुमेरु स, सा एक ही उत्तर-दक्षिण रेखा (meridian) के दो स्थान।

स का अक्षांश= < व भ स।

सा " = < व भ सा।

दोनोंके अक्षांशोंका अन्तर = < स भ सा।

ज्या—यदि किसी समकोण त्रिभुजके किसी भुजकी लम्बाईको उसके कर्णकी लम्बाईसे भाग दे दिया जाय तो लब्धि उस भुजके सामनेके कोणकी ज्या कहलाती है। चित्र ३७ में स भा भ
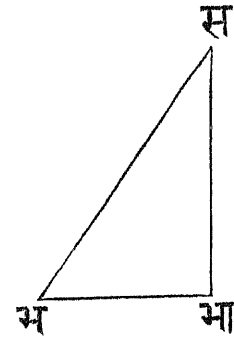
चित्र ३७

एक समकोण त्रिभुज है; इसलिए इसके स भ भा कोणकी ज्या= $\frac{\text{सभा}}{\text{सभ}}$ और भ सभा कोणकी ज्या= $\frac{\text{भभा}}{\text{सभ}}$

समकोण त्रिभुजके कर्णकी लम्बाई किसी भुजकी लम्बाईसे अधिक होती है; इसलिए किसी भुजके सामनेके कोणकी ज्या एकसे कम होगी इसलिए ज्या दशमलव भिन्नमें लिखी जाती है। यह आज कलकी प्रथा है। प्राचीन कालमें जब कि दशमलव भिन्नका प्रचार नहीं था कोणकी ज्या पूर्णाङ्कोंमें लिखी जाती थी।

किसी कोणकी ज्या जाननेके लिए हमारे सिद्धान्तोंमें ऐसा वृत्त लिया गया है, जिसकी त्रिज्या ( अर्द्धव्यास ) ३४३८ इकाइयां और परिधि २१६०० इकाइयां होती थीं, जिससे एक एक इकाई एक एक कलाके समान होती थी क्योंकि परिधि एक चक्रके समान होती है जिसमें ३६० अंश अथवा ३६० × ६०=२१६०० कलाएं होती हैं। फिर केन्द्रसे परिधि तक दो त्रिज्याएं ऐसी खींचते थे जिनके बीचका कोण उस कोणके समान होता था जिसकी ज्या जानना है तथा त्रिज्या और परिधिके मिलन विन्दुसे दूसरी त्रिज्या पर लम्ब डालते थे।

इस लम्बकी लम्बाई जितनी इकाइयां कलाएं होती थीं उसीको उस कोणकी ज्या कहते थे। चित्र ३८में अ केन्द्र है अ आ, अ उ तथा अऊ तीन त्रिज्याएं हैं जो अ से परिधि तक खींची गई हैं। उ या ऊ से

चित्र ३८

उ इ या ऊई से लम्ब अ आ पर डाले गये हैं। त्रिज्याकी नाप ३४३८ इकाइयोंमें मानकर उइ या ऊई की जो नाप इन्हीं इकाइयोंमें होगी वह उ अ इ कोण या ऊ अ ई कोणकी ज्या कहलायेगी। जो लोग केवल आज कलकी प्रथासे परिचित हैं उन्हें भ्रम हो सकता है; इसलिए उन्हें यह भेद अच्छी तरह समझ लेना चाहिये। त्रिज्याका मान ३४३८ इसलिए लिया गया कि जब परिधि कलाओंमें विभाजित की जाती है तब त्रिज्याका मान ३४३७$\frac{3}{4}$ कला आज कल की सूक्ष्म गणना से ठहरता है जिसका निकटतम पूर्णाङ्क ३४३८ है। आजकलके एक रेडियन* (radian) में जितनी कलाएं होती हैं, उतनी ही पूर्ण कलाओंके समान त्रिज्याका परिमाण माना गया है।

स्फुट परिधि—भूतलका वह वृत्त जो उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंसे समान अन्तर पर दोनोंके बीचों बीच होता हुआ भूपृष्ठको दो समान भागोंमें बांटता है विषुवद्वृत्त कहलाता है; विषुवद्वृत्तके उत्तर वाले आधे भूगोलको उत्तर गोल और दक्षिणवाले को दक्षिण गोल कहते हैं। इस वृत्त से आकाशीय ध्रुव (आकाशका वह विन्दु जो पृथ्वीके उत्तरी या दक्षिणी ध्रुवके ठीक ऊपर होता है और उत्तरी ध्रुवतारा जिससे प्रायः १° दूर है) क्षितिजपर दिखाई देते हैं। यहां पर अक्षांश शून्य और लम्बांश ९०° होता है। इसलिए विषुवद्वृत्तको निरक्षवृत्त भी कहते हैं। चित्र ३९ में व वा वि विषुवद्वृत्त है। यदि किसी स्थान 'स' से निरक्षवृत्तके समानान्तर स सा सि वृत्त (Parrallel of latilude) भूतलपर खींचा जाय तो इसके परिमाण को 'स' स्थान की स्फुट परिधि कहते हैं। विषुवद्वृत्तसे जैसे जैसे उत्तर या दक्षिण जाइये तैसे तैसे स्फुट परिधि कम होती जाती है यहां तक कि ध्रुवोंपर स्फुट

चित्र ३९

भ=पृथ्वीका केन्द्र।
उ=पृथ्वीका उत्तरी ध्रुव (सुमेरु)।
द= " दक्षिणी ध्रुव (कुमेरु)।
व=विषुवद्वृत्त का वह विन्दु जो स के ठीक दक्षिण है।
स=अभीष्ट स्थान; उ स व द स स्थानकी उत्तर-दक्षिण रेखा।
$\angle$ व भ स = स का अक्षांश।
$\angle$ स भ उ = स का लम्बांश।
उ द = पृथ्वीका अक्ष।
सभा = स से पृथ्वीके अक्षकी दूरी
= स स्थान की लम्बज्या

परिधि शून्य हो जाती है। इसी तरह अक्षांश बढ़ता जाता है और लम्बांश कम होता जाता है और ध्रुवोंपर अक्षांश ९०° और लम्बांश शून्य हो जाता है। चित्रसे यह भी प्रकट है कि 'स' स्थान की स्फुट परिधि स सा सि की त्रिज्या 'स भा' है

* १ रेडियन=५७°.२९५८ = ३४३७'.७४८ कला

जो 'स' की लम्बज्या भी कहलाती है; क्योंकि स का लम्बांश < स भ उ है जिसके सामने की भुज स भा है।

रेखागणित से यह सिद्ध है कि दो वृत्तोंकी परिधियोंमें वही अनुपात होता है जो उनकी त्रिज्याओं या व्यासोंमें होता है इसलिए,

व भ : स भा :: व वा वि : स सा सि

$$\therefore \text{स सा सि} = \frac{\text{व वा वि} \times \text{स भा}}{\text{व भ}} = \frac{\text{भूपरिधि} \times \text{लम्बज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

जब त्रिज्या ३४३८ हो और लम्बाज्याका मान सिद्धान्तीय पद्धतिके अनुसार कलाओंमें हो जिसकी सारिणी दूसरे अध्यायमें दी हुई है।

यदि आजकलकी प्रथाके अनुसार स्फुट परिधि निकालना हो तो स सा सि=भूपरिधि × लम्बज्या (Sine of Colatitude) जब कि लम्बांशकी ज्या दशमलवमें दी हुई हो ( क्योंकि इस रीतिसे लम्बाज्या $=\frac{\text{स भा}}{\text{स भ}}=\frac{\text{स भा}}{\text{व भ}}$)

देशान्तर—चित्र ४० भूगोलके आधे गोलेके पृष्ठका चित्र है; जिसमें उत्तर गोलके सी अ स सा स्थानों
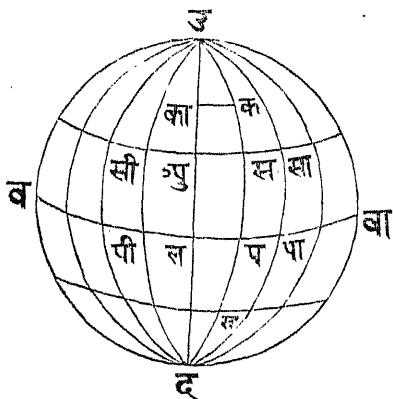
चित्र ४०

के अक्षांश एक ही हैं इसलिए इन चारों स्थानोंकी स्फुट परिधि भी एक ही है। इन स्थानोंकी उत्तर दक्षिण रेखा (Meridian) क्रमसे उ सी पी द, उ अ ल द, उ स प द और उ सा पा द हैं। यदि उ अ ल द रेखापर अ अवन्ती ( उज्जैन ) और ल लंकाके स्थान हों तो इसको भारत वर्षकी मध्य रेखा (standard meridian) कहेंगे; जैसे आजकल ग्रीनिचसे जानेवाली उत्तर दक्षिण रेखा यूरोप और अमेरिका वालोंकी भूमध्य रेखा कही जाती है। किसी स्थानकी स्फुट परिधिका वह खंड जो उस स्थानकी उत्तर-दक्षिण रेखा और मध्यरेखाके बीचमें पड़ जाता है उस स्थानका देशान्तर ( योजनोंमें ) (Difference of longitude in yojan) कहलाता है, जैसे सका देशान्तर सअ, साका देशान्तर साअ और सीका देशान्तर सीअ हुए। इसी तरह पका देशान्तर प ल, पाका देशान्तर पा ल और पीका देशान्तर पी ल हुए। चित्रसे यह भी स्पष्ट है कि यद्यपि प, स एक ही उत्तर-दक्षिण रेखापर है तथापि प, सके देशान्तर ( योजनोंमें ) समान नहीं है क्योंकि सकी स्फुट परिधि पकी स्फुट परिधि ( भूपरिधि ) से छोटी है। यदि इसी रेखापर कोई स्थान क हो तो इसका देशान्तर क का ( योजनोंमें ) और भी छोटा होगा। ६०वें श्लोकमें देशान्तरका शब्द इसी परिभाषाके अनुसार प्रयुक्त हुआ है। परन्तु यह परिभाषा सरल तथा व्यवहारोपयोगी नहीं है। आगे चलकर ६४वें श्लोकमें देशान्तर नाड़ीकी चर्चा है। यह भी देशान्तरकी एक परिभाषा है जो सरल है; इसलिए इस जगह उसको भी समझा देना उचित होगा।

एक ही उत्तर-दक्षिण-रेखापर जितने स्थान हैं सबमें जैसे क, स, प, ख स्थानोंमें मध्याह्न या अर्द्धरात्रि एक ही समय होती है। परन्तु जो स्थान इस रेखासे पूरब है वहां मध्याह्न या अर्द्धरात्रि पहले और जो स्थान पच्छिम हैं वहां पीछे होती है। स पर असे ( मध्यरेखासे ) जितना पहले मध्याह्न होता है उतने ही समयको हम सका पूर्व देशान्तर-काल (Time difference of longitude) कहते हैं। इसे हम समयकी इकाइयोंमें प्रकट कर सकते हैं, यदि घड़ी पलमें लिखें तो इसे देशान्तर घटिका या देशान्तर-नाड़ी कहेंगे और यदि घंटे मिनटमें लिखे

तो देशान्तर घंटा या मिनट कहेंगे। इस परिभाषा-से हमको यह सुविधा होती है कि एक ही बातसे हम क, स, प, ख सबका देशान्तर सहज ही प्रकट कर सकते हैं; जब कि योजनोंमें इनके देशान्तर भिन्न भिन्न लिखने पड़ेंगे।

इसी प्रकार सी पर मध्यरेखासे जितना पीछे मध्याह्न होता है उस समयको सीका पच्छिम देशान्तर काल कहेंगे।

आगे पीछे मध्याह्न या मध्यरात्रि इसलिए होती है कि पृथ्वी २४ घंटेमें या ६० घड़ीमें एक बार अपने अक्षपर पच्छिमसे पूरबकी ओर लट्टूकी

चित्र ४१

तरह घूम जाती है जिससे सूरज चांद तारे इत्यादि आकाशीय पिंड पच्छिमसे पूरबको चक्कर लगाते हुए जान पड़ते हैं। आकाशीय पिंडोंकी इस प्रत्यक्ष गतिको ही हमारे सिद्धान्तोंमें प्रवह वायु जनित गति कहा गया है। आगे सुविधाके लिए सूरजको ही कभी कभी चक्कर लगाता हुआ लिखा जायगा; क्योंकि ऐसा मान लेनेसे हिसाबमें कोई बाधा नहीं पहुँचती।

चित्र ४१में भ पृथ्वीका केन्द्र और प, ल विषुवद्वृत्त परके दो स्थान हैं; प भ पृथ्वीका अर्द्धव्यास है जो चित्रको स्पष्ट करनेके लिए बहुत बढ़ाकर खींचा गया है, यथार्थमें सूर्यकी दूरी पृथ्वीके अर्द्धव्यासकी कोई तेईस हजार गुनी है। सूर्य पृथ्वीके चारों ओर ६० घड़ीमें र रा रि री... मार्गसे एकबार चक्कर लगा लेता है। विषुवद्वृत्तको छूती हुए र प रु एक स्पर्श रेखा है जो पकी क्षितिज कहलाती है। जब सूर्य इसके ऊपर रहता है तब प स्थानसे दिखाई पड़ता है। जब सूर्य क्षितिजसे ऊपर 'र' विन्दु-के पास आवेगा तब प निवासियोंके लिए सूर्योदय होगा। पमें जिस समय मध्याह्न होगा उस समय सूर्य* रि पर रहेगा। जब वह रु पर आवेगा तब प-निवासियोंको वह डूबता हुआ देख पड़ेगा और जब रे पर आवेगा तब पमें मध्यरात्रि होगी। इसी प्रकार ल स्थान-से सूर्यका उदय उस समय देख पड़ेगा जब वह 'रा' पर होगा, मध्याह्न उस समय होगा जब वह 'री' पर रहेगा, सूर्यास्त उस समय होगा जबवह 'रू' पर रहेगा और अर्द्धरात्रि उस समय होगी जब वह 'रै' पर रहेगा।

चित्रसे यह स्पष्ट है कि जिस समय 'प' पर सूर्योदय होगा उस समयसे उतनी देर पीछे 'ल' पर सूर्योदय होगा जितनी देरमें वह 'र' से 'रा' तक जाता है॥ परन्तु र से रा तक जानेमें उसको र च रा कोण अथवा प भ ल कोण घूमना पड़ता है क्योंकि परिधिकी दो स्पर्श रेखाओंके बीचका

* जिस दिन दिनरात सब जगह समान होते हैं उस समय ऐसा होगा।

कोण स्पर्श बिन्दुओंसे खींची गयी त्रिज्याओंके बीचके कोणके समान होता है। यह बात मध्याह्न काल या मध्यरात्रिकी सूर्यकी स्थितियोंसे और भी सरलता पूर्वक समझमें आयगी; क्योंकि यह बतलाया ही जा चुका है कि सूर्यके 'रि' पर आनेसे 'प' पर और 'री' पर आनेसे 'ल' पर मध्याह्न होता है इसलिए जितनी देरमें सूर्य 'रि' से 'री' तक जाता है पकी अपेक्षा उतनी ही देर पीछे ल पर मध्याह्न होगा। इसी समयको 'प', 'ल' के बीचका देशान्तर काल कहते हैं। प, लके देशान्तरको प भ ल कोणसे भी प्रकट कर सकते हैं और देशान्तरको अंश, कला विकलामें भी लिख सकते हैं। चाहे देशान्तर प्रकट करनेकी इकाई घड़ी पलमें हो चाहे अंश कलामें दोनों तरहसे सुविधा होती है और जहां जिसकी आवश्यकता पड़ती है वहां वही लिखते हैं। यह स्पष्ट ही है कि ६० घड़ीमें अथवा २४ घंटेमें सूरज एक चक्कर अर्थात ३६०° चलता है इसलिए एक घड़ीमें ६° और १ घंटेमें १५° चलेगा; इसलिए यदि दो स्थानोंका देशान्तर एक अंश हो तो उन दोनोंके मध्याह्न काल या मध्यरात्रिके समयोंमें १० पल अथवा ४ मिनटका अन्तर होगा। संक्षेपमें यों लिखा जाता है कि दोनोंका देशान्तर १° १० पल अथवा ४ मिनट है। साधारणतः मध्य रेखासे देशान्तर नापनेकी परिपाटी है। जो स्थान मध्य रेखासे पूरबमें हैं उनके देशान्तरके पहले 'पूर्व' और जो पच्छिममें हैं उनके देशान्तरके पहले 'पच्छिम' अवश्य लिख देना चाहिये नहीं तो भ्रम होनेका डर रहता है।

चित्रसे यह भी सहज ही जाना जा सकता है कि यदि लंका (ल) की अर्द्धरात्रिके समयका किसी ग्रहका मध्यम स्थान निकाला जाय तो वह 'प' स्थानकी अर्द्धरात्रिके समयका भी मध्यम स्थान नहीं होगा क्योंकि प लंकासे पूरब है; इसलिए वहां अर्द्धरात्रि पहले ही हो जायगी और ग्रह सदा गतिमान होनेके कारण उस स्थानसे कुछ पहले रहेगा। कितना पहले रहेगा, इसकी जानकारी त्रैराशिक द्वारा करनी चाहिये कि जब ६० घड़ीमें ग्रह इतना चलता है तो 'प' की देशान्तर घड़ीमें कितना चलेगा। जो आवे वह लंकाकी अर्द्धरात्रिके मध्यम स्थानमेंसे घटा देना चाहिये। यदि स्थान मध्य रेखासे पच्छिम हो तो वहां मध्यरात्रि लंकाकी मध्य रात्रिसे उस स्थानकी देशान्तर घड़ीके समान पीछे होगी और ग्रह इतनी देरमें कुछ आगे बढ़ जायगा। इसलिए पच्छिमके स्थानोंके लिए त्रैराशिक द्वारा जो कुछ आवे वह जोड़ना चाहिये।

यदि देशान्तरको योजनमें न लिख कर घड़ी या अंशमें लिखा जाय तो ६० वें श्लोकके नियमका सरल रूप यह होगाः—

६० घड़ीः देशान्तर घड़ी:: ग्रहकी दैनिक गतिः देशान्तर घड़ीमें गति

$$\text{अर्थात् देशान्तर फल} = \frac{\text{देशान्तर घड़ी} \times \text{ग्रहकी दैनिकगति}}{\text{६० घड़ी}} \quad \dots (४)$$

इस एक समीकरणसे ६० वें श्लोकके नीचे दिये हुये पहले दो समीकरणोंका काम निकल जायगा और सरलता भी होगी; क्योंकि उन समीकरणोंके लिए देशान्तर घड़ीसे ही देशान्तर योजन आगेके ६४-६५ श्लोकोंके अनुसार बनाना पड़ता है; इसलिए सीधी ही क्रिया क्यों न की जाय?

आगेके श्लोकमें यह बतलाया गया है कि मध्य रेखा पर कौन कौन नगर पड़ते हैं।

राक्षसालय देवौकः शैलयोर्मध्यसूत्रगाः ।
रोहीतकमवन्ती च यथा सन्निहितंसरः ॥६२॥

अनुवाद—(६२) राक्षसालय अर्थात् लंका और देवलोक अर्थात् सुमेरु पर्वत (उत्तरीध्रुव) के बीच से गयी हुई रेखापर जो देश हैं जैसे रोहीतक, अवन्ती, कुरुक्षेत्र इत्यादि (वे मध्य रेखापर हैं)

विज्ञान भाष्य—पिछले श्लोकके विज्ञान भाष्यमें देशान्तरके संबन्धमें मध्य रेखाकी चर्चा अच्छी तरह हुई है। यहां इतना कहना और आवश्यक है कि उज्जैनसे होती हुई उत्तर दक्षिण रेखा विषुवद्वृत्त से जिस स्थानपर मिलती है उसे ही लंका कहते

हैं। ज्योतिषकी यह लंका वही लंका है, जिसमें रावण रहता था अथवा अन्य कल्पित स्थान है और गणितकी सुविधाके लिए मान लिया गया है; यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग* वर्तमान सिंहल द्वीप (सीलोन) को ही रावणकी लंका और पोलन नरुआको रावणकी राजधानी कहते हैं और अनुमान करते हैं कि यह पौलस्त्य नगर का अपभ्रंश है।

रोहीतक वर्तमान रोहतक है या इस नामका कोई और स्थान था यह विचारणीय है; क्योंकि वर्तमान रोहतकका देशान्तर इंडियन क्रोनोलाजी पृ० १६० में १६२ सेकंड 'पूर्व' दिया हुआ है; जिससे जान पड़ता है कि रोहतक मध्य रेखासे ८ पल पूरब† है। कुरुक्षेत्रका देशान्तर आजकल क्या माना जाता है यह जाननेके लिए यहां कोई साधन नहीं है; इसलिए यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि कुरुक्षेत्र ठीक ठीक मध्य रेखा पर ही है या इससे कुछ पूरब पच्छिम हटा हुआ है।

आगेके तीन श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि चन्द्रग्रहण से देशान्तर घड़ी कैसे जानी जाती है और उससे देशान्तर योजन कैसे निकाला जाता है।

* देखो श्रावण १६८० वि.की माधुरी पृष्ठ ६-७।

† शायद इसीलिए भास्कराचार्यने रोहतकको मध्य रेखापर नहीं लिखा है:—

यल्लङ्कोज्जयिनी पुरोपरिकुरुक्षेत्रादि देशान स्पृशत।
सूत्रं मेरुगतंबुधै. निगदिता सामध्य रेखाभुवं॥

गणिताध्याय पृष्ठ ५७

# सांपका काटा

[ गतांकके आगे ]

ज्ञानतन्तु नष्ट हो जानेसे अंग कमजोर और निकम्मा हो जाता है। जखमीको अच्छा करनेके लिए नारियलका तेल बहुत बढ़िया होता है। कुछ दिनोंमें ही जखम भर जाता है।

पुराने अनुभवी संपेरे तथा मालवैद्य इस चिकित्साको बड़ी सावधानी और चतुरतासे करते हैं। उनसे यह कला अवश्य सीख लेनी चाहिये।

( ६ )

बिना पट्टी बांधे चिकित्सा

कभी सांप ऐसे स्थानों पर काट जाता है जहां पट्टी बंध ही नहीं सकती; ऐसा कम होता है पर तो भी ऐसी दशामें चिकित्सा असाध्य हो जाती है। ऐसे स्थानों पर सांप प्रायः तभी काटता है जब आदमी लेटा या सोता होता है। करैतके काटने पर तो सोते आदमीकी नींद भी नहीं खुलती। वह साधारण नींदसे मृत्यु निद्रामें सो जाता है। प्रायः बच्चे तो इस अनन्त शेषनागी निद्रामें बहुत अधिक संख्यामें सदाके लिए सो जाते हैं।

ऐसी दशामें विषका चूस लेना ही सबसे अधिक अच्छा उपाय है। यदि सांपसे बचनेके लिए वैज्ञानिक लोग विष चूसलेनेकी उत्तम पिचकारी निकाल लें तो सांपके कारण मृत्यु हो जाना असम्भव हो जाय। चूस लेनेपर भी उस स्थानको दहकते लोहे या अंगारेसे दाग दे।

सांपके विषका स्वाद बहुत ही कड़वा होती है। यदि जखमका पता न लगे तो जीभसे चाट कर ही पता लग सकता है कि सांपने कहां मुख मारा है। और चूसते हुए भी उसके स्वादसे विषकी सत्ता और असत्ताका ज्ञान हो जाता है। मनुष्यके रुधि-

रमें नमकका स्वाद होता है। कडुआपन नहीं होता।

यदि जखम पर मुंह देकर चूसा न जा सके तो गहरा घाव लगाकर खून बहा दे और गरम लोहेसे गहरा दाग दे। यदि इन विधियोंका प्रयोग शीघ्र ही किया जाय—जब कि विषकी तेजीसे जखम पहली बार ही सूजता है—तो बहुत लाभ होता है। वहांका सूजा रहना ही विषकी सत्ताको बतलाता है। ऐसी दशामें केवल एक स्थान पर नश्तर देनेसे काम नहीं चलता बल्कि आसपास कई स्थानों पर नश्तर देनेसे विष अच्छी प्रकार निकल जाता है। चतुर लोग विष धाराका मार्ग खोजकर पूर्ववत् चिकित्सा करते हैं।

जब सांप पीठ या चूतड़ों या पेट पर काटे तो मज़बूत आदमीको चाहिये कि अंगूठे और अंगुलीसे उसी जगहको पकड़ कर जोरसे दबाये और उतने भागको ऊपर खेंचकर चाकूसे चाक दे। अधेले या पैसेके बराबर जखम हो जायगा। बस उसे वहीं दाग भी दे।

हमें यह कहना भी आवश्यक नहीं कि उक्त सब विधियां तभी तक लाभकर हैं जबतक विष भण्डार या पेटमें नहीं व्याप जाता। विषके व्याप जाने पर जीवन सदाके लिए संदेहमें रहता है।

इतने पर भी ऊपर कहे सभी उपाय विषका वेग कम करनेके लिए करने ही चाहियें।

मालवैद्य या संपेरोंका मन्त्रों और औषधियों पर कोई विश्वास नहीं होता। यदि उनको किसी औषधियों पर कुछ विश्वास है तो केवल वानस्पतिक तेज़ाब या खटाईयों पर है। जैसे नींबू; खट्टा या इमलीका सत् आदि। यही सांपके विषपर कुछ प्रभाव करते हैं। वह जब देखते हैं कि विष देहमें व्याप रहा है तभी इमली घोल कर पिलाते हैं। उसमें नीलाथोथा और नारियलका तेल भी मिलाते हैं। यदि विष पट्टियोंके बंधनोंसे रुका हुआ होता है तो नीलेथोथेका प्रयोग नहीं करते, क्योंकि वह स्वयं विष है। सांपका विष व्याप जाता है तो नीलाथोथा मिला देते हैं। हर ५, १० मिनटों पर ५ रत्ती तूतिया, इमली और नारियलका तेल घोल घोल कर दिया जाता है। रोगीकी दशा देख कर मात्रा घटाई बढ़ाई जा सकती है।

दूसरी औषध मच्छलीका पानी है। कुछ एक ताजी मछलियां पकड़ कर उनको १ सेर पानीमें खूब मसले। जब उनके ऊपरके झिलके तक उधड़ जायँ और सब पानी भरमें मछलीकी उग्र गन्ध आने लगे तो कपड़ेमें छानकर वह पानी पिलाये। यह सब उपाय रोगीको वमन करानेके लिए किये जाते हैं। वैद्यकके अनुसार वमन करानेके लिए जितने उपाय हों उनका भी प्रयोग किया जा सकता है—जैसे फिटकरीका पानी, नमकका गुनगुना पानी, इत्यादि। पांच चार लगातार कय आजानेपर रोगी अच्छा हो जाता है। जब सब आशाएं छूट जायँ तो भी इमली और तेल या घी जितना पिला सके पिलादे। इससे आपसे आप ही वमन हो जायगा। इसपर भी न हो तो सब कुछ मिलाकर गलेमें अंगुली देकर या गलेमें पक्षीका पंख डालकर कय करा दे। अर्थात् रोगीके पेटमें जो कुछ है सब बाहर आजाना चाहिये। यदि ऊपर लिखे घोल भी वमन करानेमें असमर्थ हो जांय तो फिर समझ ले कि पेट मंदा पड़ गया है। और अब शेष विधियां भी वमन करानेकी व्यर्थ जांयगी। परन्तु ध्यान रहे कि भण्डार या पेट तक विष पहुँचने पर पेटमें झाग उठते हैं जो आपसे आप गले तक उठकर आते है और भीतरी अन्नकी नाली और गलेको सुजाने लगते हैं। आखिर गला सूजकर दम घुट जाता है और आदमी मर जाता है। इसको रोकनेके लिए पेटके भीतर से इस झागवाले विष को ही निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। खट्टापदार्थ इसका जोर मारता है और कय कराता है।

माल वैद्योंका सबसे बड़ा प्रयत्न यही होता है कि किसी प्रकारसे पेटमें यह झागका पदार्थ इकट्ठा न हो और गला घोटनेमें यह सफल न हो सके।

यदि सांप काटनेके बाद काफ़ी देर तक मनुष्य जीवित रह सके तो स्वयं एक प्रति क्रिया होने लगती है और विष आपसे आप उतरने लगता है। फलतः मनुष्यको चिरकाल तक चैतन्य रखनेके लिए ही यह सब प्रयत्न किये जाते हैं।

ऐसी अवस्थाओंमें चिरकाल तक गला न सूजने देनेके लिए बहुत से उपाय किये जाते हैं। जैसे थोड़ी थोड़ी देरके बाद गरम पानी पिलाया जाता है, थोड़ी थोड़ी देरके बाद मुंहसे निकलनेवाले और गलेमें भरनेवाले झाग और थूक गलेमें रूमाल डाल डालकर साफ़ किया जाता है। बार बार गले पर गरम पानीका सेंक दिया जाता है या रोगीको गरम भाफ़का हुक्का पिलाया जाता है।

जब गलेपर विषका प्रभाव देखनेमें आ रहा हो झाग बराबर उमड़ रहा हो, श्वासका मार्ग रुकता जारहा हो; तब सबसे अधिक ध्यान इस बातपर दे कि रोगीके जितनी अधिक देर तक जीनेका उपाय किया जा सके करे। उस समय उसको बड़ी भारी प्यास सताती है। वह अधीर होकर पानी पी डालता है और अपने हाथों अपनी मृत्यु कर डालता है।

यदि पीनेको ही देना हो तो थोड़ा गरम पानी या इमलीका पानी दे या मछलीका पानी दे। कभी कभी वह आप इन वस्तुओंकी घूंट नहीं भर सकता। ऐसी दशामें बांसकी पतली नलकीसे जिससे बछड़ोंको तेल या दूध पिलाया जाता है उसी प्रकार उक्त द्रव पीनेको दिये जायं या रबरकी नीलीसे या पिचकारीसे डाल दिये जायं।

ज्यों ज्यों मौत निकट आती है त्यों त्यों उसका स्वर लुप्त होने लगता है। वह मुखसे न बोलकर नाकसे बोलता है। उसकी स्मृति शक्ति टूटने लगती है। असम्बद्ध बातें बड़बड़ाता है और ऊंघने लगता है। विषकी निद्राका यही रूप है। ऐसी दशामें रोगीको कभी सोने न दे। उसे खूब बुलावे। खूब बात करावे। उसे पीठके बल न लेटने दे। न खाने दे न पीने दे। यदि वह बोल न सके तो उसके कानोंमें आवाजें लगावे, घण्टा बजावे, घण्टियां बाजे और तालियां ही बजावे और हिला हिलाकर जगावे; सोने हरगिज़ न दे। उसको बराबर बचनेकी आशा बंधाये रखे। जब उसकी आंखें लाल पड़ जायँ और सब संसार धुंधला दीखने लगे, तब अच्छा है कि उसकी आंखमें कड़ुआ तेल या आंवलेका रस या नींबूका रस डाल दे। ऐसे मोकेपर नशेदार वस्तु कोई न दे। हुक्का भांग आदि भी न दे।

दो चार कय या वमन होजानेपर उसको होश आजायगा और विषका जोर कम होजायगा। रोगी अपने आप यह बातें कहने लग जायगा। उसे अपना पुनर्जन्म सा होता मालूम होगा। उसे प्रसन्नता, हृदयमें हलकापन और तबियतमें ताज़गी मालूम होगी। उसे टांगें फैलाकर और सहारा देकर बैठा देना चाहिये। प्रायः सांप काट लेनेपर सभी लोग इसी तरहसे बैठते हैं और इसीमें उनको अधिक आराम मिलता है। चंगा हो जानेपर कई घण्टों तक उसे खाने पीने और सोने न देना चाहिये। यह बात ध्यान रखे कि जब भण्डारे ( पेट ) में विष पहुंचता है तब चिकित्सा कुछ दुःसाध्य हो जाती है।

सांपका काटा आदमी अधमरा हो जाता है और उसकी सांस भी रुक जाती है तब भी माल वैद्य उसे बचा लेनेकी हिम्मत रखते हैं। इस दशामें वह उसके सिरपर गरम पानीकी धार छोड़ते हैं। वह उसे एक-छते स्थानपर बैठाकर बहुत ऊंचेसे गरम पानीकी निरन्तर धारा ठीक उसके सिरपर छोड़ते हैं। बहुत से घड़े गरम करनेके लिए आगपर धर दिये जाते हैं और लगातार उसके सिरपर १५,२० मिनट तक यह 'तप्त जलाभिषेक' होता है। १५, २० मिनटके बाद उसके देहमें फिर जीवनके चिन्ह प्रकट होने लगते हैं। वह कांपना शुरू करता है। तब गरम पानी डालना बन्द कर देना चाहिये। यह विधि "जल सर" विधि कहाती है।

( १० )

करैत या कनोर सर्पोंका काटा

ऊपर सांप काटनेके विषयमें हमने जो कुछ लिखा है वह प्रायः फणवाले सर्पोंके विषयमें लिखा है। जिन सांपोंके फण नहीं होता उनके काटनेमें कुछ और भी विशेषता पायी जाती है। कुछ एक सांपोंके काटने पर दांतोंके मसूड़ोंमें से भी खून निकलता है। कई बार जिस स्थान पर सांप काटता है वह गल जाता है या विकृत हो जाता है। प्रायः ऐसी घटनायें पट्टीके बहुत कसकर बांधनेसे भी हो जाती हैं।

दबोया सांपकी दाढ़ें बहुत लम्बी होती हैं; उसके काटने पर बहुत कस कर बांध दिया जाता है। इसीसे कभी कभी मृत्यु भी हो जाती है।

करैत भी बड़ा भयानक सांप है। यह घरेलू सांप है। इसका काटना भी बहुत पीड़ा नहीं पहुँचाता और साथ ही यह पेट और पीठमें अधिक काटता है। यह आधे सोते या गहरे सोतेमें काट लेता है। जब यह काटता है तो केवल कांटा सा चुभनेका भान होता है। मनुष्य नींदमें फिर भूल जाता है। बस उस समय उपेक्षा की नहीं कि सदाके लिए जीवनका सुख छोड़ कर घोर काल निद्रामें सो जाना पड़ता है।

सांप काट लेने पर सो जानेवालेका बचना असम्भव है। देहातमें बहुत से बच्चे इसी प्रकार मर जाते हैं।

करतके काटने पर पूर्वोक्त उपायोंको तो प्रयोगमें लाना ही चाहिये। परन्तु इसका विष जब भण्डार (पेट) में पहुँचता है तब देह भर सूज जाती है। बस, यही करैतके काटेकी पहचान है। कभी विशेष विशेष भागोंमें ही सूजन उठती है, ऐसी दशामें सब देह पर सेक या भपका ही देना चाहिये।

भपके देनेकी यही विधि है कि आदमीके एक तरफ़ जमीनमें एक गढ़ा खोदले; उसमें गोइठे या अरने रखकर आग सुलगा दे और पंखा कर दे। जब आग खूब सुलग जाय, खूब धुआं उठने लगे, तब गढे और पुरुष दोनों पर एक कम्बल उढ़ा दे, पर आदमीकी नाक बाहर निकली रहने दे। आग पर एक बर्तनमें पानी उबाल कर उसका भपारा भी इसी प्रकार दे सकते हैं।

यह भी न हो सके तो बीमारको एक खटिया पर डालकर नीचे उबलते पानीका बरतन रखकर ऊपर कम्बल उढ़ा दे। इस प्रकार खूब पसीना निकलने पर वह स्वयं अपनेको बाहर निकालनेको कहेगा। परन्तु उसकी इस बात पर ध्यान न दिया जाय। यदि बहुत कष्ट हो तो बीच बीचमें उसके नीचेसे आग या खौलता बर्तन उठा लिया जाय पर रोगी परसे कम्बल न उतारा जाय।

इस प्रकार खूब पसीना आने पर उसके देहकी सूजन कम हो जाती है। थोड़ी देरके बाद फिर प्रस्वेद दिया जाय। इसी प्रकार तीन चार बार भफारा देनेसे रोगी चंगा हो जायगा। ख्याल रहे कि पसीनेसे रोगीका कपड़ा भीग जाने पर उसे बदल दे और नया सूखा कपड़ा पहना दे।

जब सूजन घटना शुरू हो जाय तब भफ़ारा देना रोक दे। यदि फिर बढ़ने लगे तो फिर दे।

माल वैद्योंका कहना है कि करैतके काटे पुरुषको कभी मरा हुआ समझ कर छोड़ न देना चाहिये। उसके बेदम हो जानेके २४ घण्टे बाद भी फिर उसमें जान डाली जा सकती है।

ऐसी दशामें वह सदा रोगीको खटिया पर डाल कर भफारा दिया करते हैं।

उपसंहार

पाठक गण हमने इतने प्रकरणोंमें माल वैद्योंकी बहुत सी तरकीबोंका उल्लेख कर दिया। यह उन लोगोंकी क्रियात्मक विद्या है; जिसका वह बड़े ही वैज्ञानिक ढंगसे प्रयोग करते हैं और वर्षों शागिर्द रह कर सीखते हैं।

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले मैं संक्षेपसे एक और भी उपायका उल्लेख करता हूं। यह

उपाय मणिका प्रयोग है। मण्डूक मणि, गरुड़ मणि, हड़गिल्ल मणि, विड़ाल मणि, गृध्र मणि, आदि नाना प्रकारकी मणियां सपेरे अपने पास रखते हैं। उनके पास बहुत सी जड़ी बूटियां भी होती हैं। जैसे नागद मनकी लकड़ी, निर्विसीकी जड़ तथा अन्यान्य जड़ियां होती हैं। सांपके विषको वह मन्द कर देती हैं। सांप उनका गन्ध लेकर प्रसन्न होता है और मत्त हो कर काटना भूल जाता है। मणियां विषको चूस लेती हैं। मणियोंको थूक लगा कर जखम पर रख दिया जाता है और विष उसमें भरने लगता है। जब वह फूल जाती है तो उसको कपड़ेमें रख कर निचोड़ दिया जाता है और फिर लगा लिया जाता है। इस प्रकार शरीर सर्वथा निर्विष हो जाता है। परन्तु ध्यान रहे कि मणिका प्रयोग विषके भण्डारेमें पहुँचनेके पूर्व ही अधिक फायदा करता है। इसी प्रकार केले का पानी बार बार पिलाना भी बड़ा लाभ करता है। केलेके खारसे विष हलका पड़ जाता है।

—जयदेव शर्मा

---

# अपभ्रंश साहित्य तथा उसका महत्व

[ ले०—प्रो० बलदेव उपाध्याय एम० ए० ]
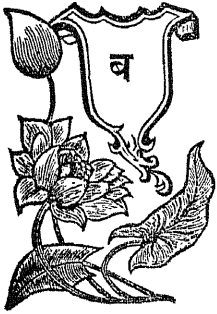
हुत दिनोंसे यूरोपीय भाषा तत्व वेत्ताओंकी दृष्टि भारतकी प्राकृत भाषाओंकी ओर लगी हुई है। सब प्रकारसे वह उनकी परीक्षामें निरत हैं। प्राकृत भाषाओंके ज्ञाताओंमें जर्मनीके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर पिशेल (Pischel) का नाम अग्रगण्य है। इनका प्राकृत भाषाका असीम ज्ञान उनके प्राकृत व्याकरणके प्रत्येक पृष्ठसे स्पष्ट ज्ञात होता है। इस व्याकरणका जर्मन नाम Grammatik der Prakrit Sprachen है। इस पुस्तकमें पिशेलने १८९० तक मिले हुये अपभ्रंशमें लिखे गये ग्रन्थोंका भी यथेष्ट परिचय दिया है। उस समयसे लेकर आज तक अनेक अपभ्रंश ग्रन्थोंका पता लगा है; कितने तो अब प्रकाशित हो गये हैं और कितने अब तक हस्त लिखित ही हैं; उन्हें प्रकाशनका सौभाग्य अब तक प्राप्त नहीं हुआ है। इधर अपभ्रंशके अध्ययनने अनेक भारतीय विद्वानोंको भी अपनी ओर आकृष्ट किया है। पूनाके डाक्टर गुणे (Dr. Gune) भाषा विज्ञानके एक अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने पूर्वोक्त विषय पर प्रथम ओरियन्टल कान्फ्रेन्समें एक लेख पढ़ा था; जिसमें इन्होंने अब तक मिले हुये अपभ्रंश ग्रन्थोंका विवरण दिया है। उसीका सारांश 'विज्ञान' के पाठकोंके सामने उपस्थित किया जाता है।

साधारण रूपसे निम्न लिखित ग्रन्थ ही अपभ्रंश भाषामें लिखे गये मुख्यतः सर्वत्र विख्यात हैं:—

(१) कालिदासके विक्रमोर्वशीय नाटकके चौथे अंकमें बहुत से अपभ्रंशमें रचित पद्य उपलब्ध होते हैं। श्रीयुत एस. पी. पण्डित तथा डाक्टर ब्लाकने इन पद्योंके विषयमें अत्यन्त सन्देह प्रकट किया था; परन्तु अब ऐसा सन्देह दूर हो गया है। हाँ, इन पद्योंका अच्छा संस्करण निकलना चाहिये।

(२) पिंगलके प्राकृत पिंगल सूत्रमें भी अनेक अपभ्रंश पद्य मिलते हैं।

(३) हेमचन्द्रने अपने सिद्धहैम व्याकरणके अन्तिम अध्यायमें केवल अपभ्रंशका व्याकरण ही नहीं दिया है; बल्कि उस समयके प्रचलित साहित्यसे अनेक अपभ्रंश उद्धरण भी दिये हैं। हिन्दीके सौभाग्यसे इन सब पद्योंका हिन्दी अनुवाद स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरीने 'पुरानी हिन्दी (४)' के नामसे नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके दूसरे वर्षके चौथे अंकमें विवरणके साथ दिया है।

(४) कुमारपाल चरितके आठवें अध्यायमें भी कुछ अपभ्रंशके उदाहरण उपलब्ध होते हैं।

( ५ ) सरस्वती कण्ठाभरण, ध्वन्या लोक, दशरूपालोक आदि अनेक ग्रन्थोंमें इधर उधर बिखरे हुये अनेक अपभ्रंश पद्य मिली है।

इनके अतिरिक्त जो ग्रन्थ अब प्रकाशित हुए हैं उनकी सूची दी जाती है:—

१ ( क ) भविसत्त कहा—यह ग्रन्थ बिल्कुल अपभ्रंश में लिखा गया है। इसमें २२ सन्धि या परिच्छेद हैं तथा प्रत्येक सन्धिमें १०से २० तक पद्य हैं। गायकवाड ओरियन्टल सीरीजके लिए यह ग्रन्थ सम्पादित हुआ है। इसके लेखक धनवाल या धनपाल हैं; इनका जन्म वैश्य वंशमें हुआ था; इनके पिताका नाम माईसर तथा माताका धनश्री देवी है। प्राकृत साहित्यमें प्रसिद्ध जैन विद्वान धनपालसे इस अपभ्रंश कथाके लेखक सर्वथा भिन्न जान पड़ते हैं। यह धनपाल ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न हुये थे तथा उनकी रचना—ऋषभपंचाशिका, पाइअलच्छी कोश तथा तिलक मंजरी—सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। यह मुञ्जके समय धारा नगरीकी शोभा बढ़ाते थे।

( ख ) कुमारपाल प्रतिबोध—सोमप्रभाचार्यका बनाया हुआ वृहत् ग्रन्थ अभी जिन विजयजी के सम्पादकत्वमें बड़ोदासे प्रकाशित हुआ है। इसमें कुमारपालको जैन धर्मके सिद्धान्तोंके समझानेके लिए प्रसिद्ध प्रसिद्ध कहानियां सुनाई गई हैं—जैसे जुआके खेलनेसे जो हानि होती है उसे दिखलानेके लिए नलकी कथा तथा व्यभिचारके दोष दिखानेके लिए प्रद्योतकी कथा वर्णित हैं। यह ग्रन्थ अधिकतर महाराष्ट्रीमें लिखा गया है, परन्तु स्थान स्थान पर कई अपभ्रंश पद्य भी सन्निविष्ट हैं तथा कुछ कथायें शुद्ध अपभ्रंशमें ही लिखी गई हैं। ग्रन्थकी रचना ११८५ ई० में हुई थी। इस ग्रन्थके समग्र अपभ्रंश पद्योंका अनुवाद ना० प्र०के द्वितीय वर्षके दूसरे अंकमें गुलेरीजीने प्रकाशित किया है। उत्साही पाठक उसे पढ़ अपनी जिज्ञासाको तृप्त कर सकते हैं।

( ग ) दूसरा ग्रन्थ जिसमें कुछ अपभ्रंश है रत्न मन्दिरगणीका बनाया हुआ 'उपदेश तरङ्गिणी' है। इस ग्रन्थमें प्राकृत तथा संस्कृतके उपदेश मय पद्य उद्धृत किये गये हैं। संस्कृत पद्य तो अधिकांशमें महाभारत तथा शतकसे लिये गये हैं और प्राकृत पद्य जैनोंके आगम ग्रन्थोंसे। इसमें २५ छन्द ऐसे हैं जो निश्चित रूपसे अपभ्रंश कहे जा सकते हैं; अन्य पद्योंमें पुरानी गुजरातीकी छाया दीखती है। यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन नहीं है। इसके लेखक 'नन्दिरत्न' के शिष्य थे।

( घ ) लक्ष्मणगणी के 'सुपासनाह चरियम' नामक ग्रन्थमें भी यत्रतत्र अपभ्रंश पाया जाता है। यह ग्रन्थ हरगोविन्ददास की सम्पादकतामें काशीसे प्रकाशित हुआ है।

इन प्रकाशित ग्रन्थोंके अतिरिक्त ऐसे अनेक हस्तलिखित जैन ग्रन्थ हैं जो बिलकुल अपभ्रंशमें ही लिखे गये हैं।

२ ( क ) महेश्वर सूरीकी संयम मञ्जरी—यह ग्रन्थ भंडारकर इंस्टिट्यूट (Bhandarkar Research Institute) के पुस्तकालयमें हस्तलिखित ही है। यह पूर्णतया अपभ्रंशमें ही रचित है। इसमें ३५ पद्य शुद्ध दोहे हैं; जिनकी भाषा शुद्ध अपभ्रंश है। उदाहरणार्थः—

संजमु सुर सद्धिहिं पुवरु, संजमु मोक्ख दुवारू।
जेंहि न संजमु मणि धरेउ, तह दुत्तर संसारू॥

शान्तिसूरीके कहने पर यह प्रति १५०५ ई० में लिखी गई थी; जिससे जान पड़ता है कि महेश्वरसूरीका समय सोलहवीं सदीके उधर का ही है।

( ख ) इसकी विस्तृत टीका हेमहंससूरीके शिष्यने लिखी है; जो अपभ्रंश भाषाके लिए अत्यन्त महत्वकी है। टीकाकी हस्तलिखित प्रति भी १५०५ ई० में लिखी गई है। इसमें अनेक लम्बे उद्धरण अपभ्रंश भाषामें दिये हुये हैं; बहुत से पद्य तो सुभाषितके ढंग पर हैं, जो टीकाकारके समयमें सर्वत्र प्रसिद्ध थे। उदाहरणके लिए 'कियेहुये कर्म-

का फल सबको भोगना पड़ता है' इस विषय पर नीचेका पद्य उद्धृत है:—

रासहु कंधि चड़ावि अइ लब्भइ लक्ख सहस्स ।
आपहठो करि कम्मडा हिया विसूरहि किस्स ॥

देखकर भी जो न तो प्रसन्न होता है और न कुशल ही पूछता है, उसके पास मनुष्यको कभी न जाना चाहिये—इसी अर्थके द्योतक इस दोहे पर दृष्टि डालिये। कितना सुन्दर है:—

दिट्ठइं जो नवि आलवइ कुसल न पुच्छइ वत्त ।
तसुतणइ नवि जाइई रे हियडा नीसत्त ॥

इस टीकामें भी अनेक संस्कृत ग्रन्थोंसे—महाभारत, वायु पुराण आदिसे अनेक पद्य उद्धृत किये गये हैं।

( ग ) तिसट्ठि महा पुरिस गुणालंकार—इस अपभ्रंश ग्रन्थके लेखकका नामक पुष्फदन्त है और यह भंडारकर इन्स्टिट्यूटके पुस्तकालयमें सुरक्षित है। इसमें २७ सन्धि या परिच्छेद हैं। यह एक महापुराण है, जिसको 'भरत' नामक सभ्यपुरुषके आदेशसे पुष्फदन्तने बनाया था। प्रत्येक सन्धिके अन्तमें यह लिखा मिलता है:—इय महा पुराने तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारे महाकइ पुष्फदन्त विरइचे महाभव्वभरहानु मरिणस महाकव्वे सम्भइ समागमो नाम।

कविताकी दृष्टिसे यह ग्रन्थ बड़ा ही सुन्दर है। ऐसी अनेक उपमायें हैं, जो कालिदासकी समता रखती हैं। आरम्भमें अनेक प्राचीन कवियोंकी स्तुति की गई है। इनमें बहुत से कवि तो ऐतिहासिक हैं तथा अनेकोंके विषयमें कुछ भी ज्ञात नहीं! ग्रन्थका समय कुछ प्राचीन जान पड़ता है; क्योंकि जैन होने पर भी पुष्फदन्तने अपने अलंकार शास्त्रकी निपुणताके वर्णनमें रुद्रटका नामोल्लेख किया है; हेमचन्द्रका नहीं। अतएव यदि वह हेमचन्द्रके पीछे होता तो ऐसे विद्वानके उल्लेखमें वह कभी नहीं चूकता। अतः सम्भवतः यह ग्रन्थ हेमचन्द्रसे भी प्राचीन है। प्रशंसित कवियोंमें कालिदास, बाण, भास आदिके विषयमें तो बहुत कुछ ऐतिहासिक मसाला मिला है; परन्तु अकलंक, कणपर, पुरन्दर, दन्तिल, विसाहिल आदिके विषयमें तो कुछ भी ज्ञात नहीं। हस्तलिखित प्रतिके मार्जिनल नोटसे ज्ञात होता है कि अकलंकने क्यों न्याय शास्त्रका ग्रन्थ बनाया था; कणपर वैशेषिक का और पुरन्दर चार्वाकमतके किसी ग्रन्थका कर्ता था तथा दन्तिल और विसाहिलने संगीत शास्त्रके ऊपर ग्रन्थ लिखा था।

( घ ) पाटणके प्रसिद्ध भंडारमें अनेक छोटे छोटे अपभ्रंश ग्रन्थ हैं, जिन्हें 'सन्धि' कहते हैं; उदाहरणार्थ-आराधना, परमात्मप्रकाश, चौरंगसन्धि, भावनासन्धि आदि। लगभग १५ सन्धि हैं तथा २२ रास। स्वर्गीय चिम्मनलाल दलालने गुजराती साहित्य परिषद्‌के सामने एक लेख पढ़ा था जिनमें इनका संक्षेपमें वर्णन है।

### महत्व

इस अपभ्रंश साहित्यका महत्व भारतकी वर्तमान भाषाओंके लिए विशेष है। संस्कृतसे आधुनिक भाषाओंकी उत्पत्ति कैसे हुई इसका पूरा ज्ञान बिना इस साहित्यके नहीं हो सकता; सच पूछिये तो यह साहित्य भाषाओंकी विकाश-श्रृंखलाकी एक आवश्यक कड़ी है।

( १ ) इनसे पता चलता है कि पुरानी हिन्दी तथा पुरानी गुजरातीके मूल शब्द तथा विभक्तियाँ कैसी होती थीं। उदाहरणार्थ—अल्पार्थक 'डा' प्रत्यय यथा हियडा; भूतकालके अर्थमें 'उ' प्रत्यय यथा गयउ ( गतः ), कर्ताके एक वचनमें उ या ऊ प्रत्यय—आदि को देखकर प्राचीन हिन्दी तथा प्राचीन गुजराती के शब्द अकस्मात् याद आ जाते हैं।

( २ ) इस साहित्यसे अपभ्रंशके व्याकरणके विषयमें भी अनेक ज्ञातव्य बातें जानी जाती हैं। जिन रूपोंको न तो हेमचन्द्रने अपने व्याकरणमें लिखा है और न पिशेलने, ऐसे अनेक शब्द रूप दृष्टिगोचर होते हैं—

( क ) हेमचन्द्रने लिखा है कि अकारान्त शब्दोंके पुं. कर्ता एक वचन में उ या ऊ प्रत्यय लगता है; परन्तु पूर्वोक्त ग्रन्थोंकी आलोचना से यह भी जान पड़ता है कि 'ओ' प्रत्यय भी हुआ करता है।

( ख ) हेमचन्द्रके अनुसार अकारान्त शब्दोंके तृतीय एक वचन के लिये 'आहि' या 'एहि' प्रत्यय जोड़ा जाता है परन्तु कभी 'इहि' भी अवश्य जोड़ा जाता था यथा—पुरिणहि ( पुरुषसे ), कम्महि ( कर्मसे )। सप्तमी एक वचनके 'एति' के स्थानमें भी 'इहि' होता है।

( ग ) सप्तमीके एक वचन में 'म्मि' प्रत्यय भी होता है।

( घ ) सम्बन्धार्थक 'तण' के स्थानमें 'घेर' भी होता है।

( ङ ) 'भविष्यति' के स्थानमें 'होसइ' के साथ साथ 'होहि' रूपका भी पता लगता है।

( च ) अपभ्रंशमें भाव वाचक प्रत्यय 'त्तणं' या 'प्प ुं' है; परन्तु यहाँ इसका रूप 'प्पुण' भी मिलता है तथा कभी कभी 'त्त' भी जोड़ा जाता है।

( छ ) प्रेरणाके अर्थमें 'आलू' प्रत्यय भी जोड़ा जाता है।

हेमचन्द्रमें 'आडू' जोड़नेकी ही व्यवस्था है यथा—दिक्खालमि ( दर्शयामि )

## नकली नगीने

यह नगीने किसी तरह भी असली नगीनोंसे कम नहीं होते। इनकी चमक दमक, रंग और आब असली नगीनों जैसी होती है। यह बड़े युक्ति युक्त कायदेसे बनाये जाते हैं और इनमें ठीक वैसे ही रंग, जैसे असली नगीनोंमें होते हैं, अनेक धातुओंके संमिश्रणसे लानेका प्रयत्न किया जाता है। कभी कभी तो ऐसे नकली नगीने तैयार होते हैं कि वह यदि असलीके साथ मिला दिये जायँ तो बड़े बड़े अनुभवी जौहरियोंको भी उनको पहचान कर अलग कर देना जरा टेढ़ी खीर हो जाय; उनमें सभी गुण असली नगीनोंसे बढ़ कर होते हैं।

हर रंगका नीलम तैयार करनेके अतिरिक्त वैसे भी नीलम तैयार किये गये हैं, जो बहुत ही कम पाये जाते हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यह नकली नगीने उन्हीं धातुओंके मिश्रणसे वैज्ञानिकों द्वारा बनाये जाते हैं जिनके कि आकस्मिक मिश्रणसे प्रकृति-पट परिवर्तन उन्हें सहजमें बना देता है।

इन नकली नगीनोंका मूल्य असली नगीनोंकी अपेक्षा बहुत ही कम होता है। जर्मनीमें Scholle and Lev, Dresden z, 1. ने हर तरहके छोटे बड़े नगीने तैयार किये हैं। वह सोनेमें जड़ कर भी नगीने भेजते हैं; कुछ नगीने नमूनेके तौरपर उससे मंगानेमें कोई हर्ज नहीं है।

अभी तक पन्ना और हीरा तैयार नहीं हुआ है पर वह दिन दूर नहीं है जब जर्मन वैज्ञानिक इनके भी बनानेकी तरकीब खोज निकालेंगे।

—रामप्रसाद पाण्डेय।

## मनुष्य देहका तापक्रम

मानवी देहका औसत तापक्रम ९८.६ फा है। साधारणतः ९७.३ फासे ९९.५ तक तापक्रम मिलता है। जब तापक्रम १° का बढ़ जाता है तो नब्जकी चाल १० प्रति मिनट बढ़ जाती है। कभी कभी १०४° फा तक तापक्रम बढ़ जाने पर भी मनुष्य स्वच्छन्दता पूर्वक चलता फिरता और काम करता रहता है। किन्तु १०६° फा तक बढ़ने पर खटिया का आश्रय लेना पड़ता है।

११०° फा का तापक्रम साधारणतया घातक होता है, किन्तु लू लगने पर इतना तापक्रम हो जानेसे भी मनुष्य नहीं मरता। "लौकजा" के एक रोगीका तापक्रम ११३° फा तक बढ़ गया था, तदुपरान्त उसकी मृत्यु हुई। एक और रोगीके शरीरके दो भिन्न स्थानोंका तापक्रम एक बार ९४° फा और ११४° फा नापा गया था, परन्तु वह चंगा होगया और अब तक जीवित है।

—मनोहरलाल।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १७ } तुला, संवत् १९८० । सितम्बर, सन् १९२३ { संख्या ६

## सर पी. सी. राय की जीवनी और उनका कार्य

मैं एक ऐसे मनुष्यके कुछ महत्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख करना चाहता हूं, जिसके प्रौढ़ मस्तिष्क ने केवल रसायन शास्त्र के विकास पर ही प्रभाव नहीं डाला है, किन्तु जिसके परिश्रमकी फल स्वरूप भारतीय शिक्षा और उद्योगके क्षेत्रमें भी संतोष-जनक उन्नति हुई है। यद्यपि सर पी. सी. राय का सम्बन्ध राष्ट्रीय क्रिया-शीलताके अनेक विभागोंसे है तथापि वह प्रधान रूपसे रसायन वेत्ता हैं और इसीलिए उनकी कीर्त्तिको अपनी ही कहनेका हमें अधिकार है। उनकी जीवनीके सम्बन्धमें कुछ कहनेके पहिले मैं यह उल्लेख कर देना उचित समझता हूं कि मैं आठ वर्ष तक उनका शिष्य रहा। यद्यपि उनका कार्य्य-क्षेत्र बहुत कुछ कलकत्ता और बंगालके बाहर भी है, तथापि मुख्यतः वह कलकत्ता और बंगाल तक ही है, अतएव कभी कभी बंगाल और विशेषकर कलकत्ते की चर्चा करनेके लिए पाठक मुझे क्षमा करेंगे। व्यक्तिगत रूपसे मैं अपने गुरुदेवसे जिस प्रकार परिचित हूं वैसा ही चित्रित करनेका मेरा प्रयत्न भी होगा। सम्भव है लोग मुझमें पक्षपात पावें, परन्तु गुरुके प्रति शिष्यका पक्षपात क्षमाकी दृष्टिसे देखा जाना चाहिये, आशा है ऐसा ही होगा भी।

बंगालमें एक छोटे किन्तु सुन्दर गांवमें सन् १८६० के लगभग सर पी. सी. रायका जन्म हुआ। ग्रामका प्राकृतिक दृश्य बड़ा सुन्दर है; एक नदी ने उसे तीन ओरसे घेर रखा है। उनकी आरम्भिक शिक्षा पुस्तकोंसे नहीं, किन्तु प्रकृतिके सौन्दर्यसे प्राप्त हुई। जब दस वर्षके हुए तब उन्होंने गम्भीरता-पूर्वक पुस्तकोंका पढ़ना आरम्भ किया। उनके पिता हरिश्चन्द्र थे तो छोटी स्थितिके

ज़मींदार, किन्तु अच्छे और उन्नत विचारोंके आदमी थे। उनके पास अच्छा पुस्तकालय था और बालक प्रफुल्ल बड़े चावसे उसमें रखी हुई पुस्तकें पढ़ने लगा। उनके पिता ने स्त्री शिक्षा तथा अन्य परोपकारके-कार्य्योंमें बहुत सा धन खर्च किया था, इस कारण प्रफुल्ल चन्द्रके जन्मके समय उनकी आर्थिक अवस्था संतोष-जनक न थी। प्रफुल्ल-चन्द्रके तीन भाई और तीन बहिनें हैं। उनके पिता ने यह समझ लिया कि गांवमें लड़कोंकी पढ़ाई ठीक न हो सकेगी, इसलिए आर्थिक दृष्टिसे बहुत बड़ा त्याग करके वह कलकत्ते आकर रहने लगे।

कलकत्तेके हेयर स्कूलमें प्रफुल्लचन्द्रका नाम लिखाया गया। वहांसे एन्ट्रेन्स पास होने पर वह स्व० पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर द्वारा संस्थापित मेट्रोपोलिटन कालेजमें साहित्यके विषयोंका तथा प्रेसीडेन्सी कालेजमें सायन्सका अध्ययन करने लगे। राजनीति तथा भारतवर्षकी उन्नतिके प्रयत्नोंमें, विशेष करके उनमें जो निर्माणात्मक होते थे, वह आरम्भसे ही दिलचस्पी लेते थे। जब वह कालेजमें पढ़ते थे तब कई पत्र उत्साह और प्रेमके साथ पढ़ा करते थे। जब वह फोर्थइयर क्लासमें थे तब उन्होंने एक प्रतिद्वन्दितापूर्ण परीक्षा पास करके बाहर पढ़ने जानेके लिए गिलक्रैस्ट स्कालर-शिप प्राप्त किया। इसी घटनाको उनके जीवनमें परि-वर्तन कर देनेवाली समझना चाहिये। उसके अल्पकाल बाद ही वह यूरोप गये और विज्ञान पढ़नेके निमित्त एडिनबरा विश्वविद्यालयमें भरती हो गये। सरस्वतीके इस मन्दिरमें प्रवेश पाने पर गत कई वर्षोंसे परिपक्क होने वाले रसायनके शौक़-को पूरा करनेका पूरा क्षेत्र प्रफुल्लचन्द्रको मिला। एडिनबरा विश्व-विद्यालयमें उन्होंने टेट Tait और क्रमब्रौनसे शिक्षा ग्रहण की। इन महान् आचार्य्यों ने अपने प्रशंसनीय गुणों द्वारा प्रफुल्लचन्द्रको खूब प्रभावित किया। क्रमब्रौनमें विषय पर पूर्ण मनन तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली प्रत्येक बात-की जानकारी पायी जाती थी, और 'प्राकृतिक दर्शन' के लेखक अर्थात् टेट महाशयमें सूत्रीकरण-का हद दर्जेका कमाल था। उन्होंने वहां छः वर्ष पढ़ा और डाक्टरेट पदवीके रूपमें वहांकी सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त की। जैसा कि उनका स्वभाव था, रसा-यन शास्त्र तथा अन्य प्राकृतिक शास्त्रोंके अध्ययनमें व्यस्त रहने पर भी वह अपने देशको नहीं भूले। जब वह एडिनबराकी बी. एस. सी. डिग्रीके लिए तय्यारी कर रहे थे उन्होंने सम्पूर्ण उपलभ्य ऐति-हासिक साहित्यका अध्ययन करके भारतवर्षमें सर्वोत्तम शासन पद्धति पर एक ग्रन्थ लिख डाला। यह ग्रन्थ पढ़ कर अब भी लाभ उठाया जा सकता है। इससे भारतवर्षकी अवस्थासे उनके घनिष्ठ परिचय तथा उसके प्रति उनके अगाध प्रेमका पता चलता है।

सन् १८८७ में वह भारत लौट आये और प्रेसी-डेन्सी-कालेज-कलकत्ता में रसायन शास्त्रके प्रोफ़े-सर हो गये। वहां वह नवयुवकोंमें उत्साह भरते और पच्चीस वर्षसे ऊपर तक मौलिक कार्य्य करते रहे। वहीं उन्होंने अनेक भारतीय रसायन वेत्ता तय्यार किये और प्रेसीडेन्सी कालेज और कलकत्ता विश्व विद्यालयकी प्रतिष्ठा बढ़ायी।

प्रेसीडेन्सी कालेजसे अवकाश ग्रहण करने पर कलकत्ता के यूनिवर्सिटी कालेज आव सायन्समें आपको प्रोफ़ेसरका स्थान मिला, और इस समय उस पद पर रह कर आप बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहे हैं। यही उनकी संक्षिप्त जीवनी है।

अब यह प्रश्न उठता है कि इस महान् पुरुषके महत्वपूर्ण कार्य क्या हैं? सबसे पहिले मैं यह बतलाने की चेष्टा करूँगा कि महत्ता कहते किसे हैं। प्रत्येक व्यक्तिको अल्पाधिक परिमाणमें कार्य्य-कारिणी शक्ति प्राप्त रहती है और बहुधा वह शक्ति भोजनके प्रश्न अथवा अन्य आवश्यकताओंके कारण उठनेवाली समस्याओंके हल करनेमें खर्च हो जाती है। वह मनुष्य जिसमें इतनी शक्ति है कि वह अपनी आवश्यकताओंकी पूर्त्ति करने पर भी कुछ शक्ति बचा रखता है महान् कहलाता है।

जितनी ही अधिक शक्ति बच रहे उतनी ही अधिक शक्ति कला, साहित्य, विज्ञान, धर्म, देश और मनुष्यताके कल्याण-साधनमें व्यय की जा सकती है, परन्तु सच्चे महान् पुरुषको किसी आदर्शसे प्रेम होना चाहिये और स्वार्थ-त्याग करना चाहिये।

इस दृष्टि-कोणसे देखने पर पी. सी. रायको महान् पुरुष मानना ही पड़ता है; क्योंकि उनमें असाधारण परिमाणमें शक्ति है। और उसके साथ साथ आदर्श प्रेम और स्वार्थ त्याग है, यद्यपि देखनेमें आजीवन रोगी ही जान पड़ेंगे, अध्यापन-कार्य्यमें उन्होंने सफलता प्राप्त की है और अपने विषयके प्रति सरलतासे ही वह सबमें प्रेम उत्पन्न कर देते हैं। प्रेसी-डेन्सी कालेजमें आते ही उन्होंने अनुभव किया कि यूनिवर्सिटी कालेजोंमें खोजके कामके प्रति अधिक ध्यान देना चाहिये। मई महीनेको छोड़ कर, जब वह अपने ग्रामको चले जाते हैं, वह बराबर सालभर काम करते रहते हैं। साधारण तातीलोंमें भी वह अपनी प्रयोगशालामें विद्यमान रहते हैं। उन्होंने अनेक पदार्थोंका अनुसन्धान किया है और यूरोपके प्रसिद्ध वैज्ञानिक पत्रोंमें सैकड़ों लेख लिखे हैं। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि उन्होंने यूनि-वर्सिटी कार्यका आदर्श ऊंचा कर दिया और अन्य जनोंके लिए पथ प्रदर्शकका काम किया। अनेक भारतीय विश्वविद्यालयोंमें अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि खोजके कामको यूनिवर्सिटी अध्यापनका अङ्ग कर देना चाहिये और यह कहना कोई अत्युक्ति नहीं है कि इस विचारको उत्तेजना देनेवाले सर जगदीश चन्द्र बोस तथा सर प्रफुल्ल चन्द्रराय हैं। यह प्रसिद्ध बात है कि जब तक मनु-ष्यमें वास्तविक महत्ता न हो वह अपने ही विद्यार्थी नहीं उत्पन्न कर सकता। सर पी. सी. राय अपने विद्यार्थियोंके भविष्य कल्याण और उन्नति-साधन-की बहुत चिन्ता करते हैं। यही कारण है कि विद्यार्थी-समुदाय उनकी ओर आकर्षित होता है और उनके साथ पढ़ कर रसायन-शास्त्रका वैसा ही प्रेमी हो जाता है जैसे कि वह स्वयम् हैं। भारतवर्ष-में रसायन-शास्त्रियोंके मण्डलका उन्हें संस्थापक समझना चाहिये। उनके विद्यार्थी देशके प्रत्येक भागमें रसायन-शास्त्रके अध्यापक हो रहे हैं, और यदि उन्हें भारतीय रसायन शास्त्रियोंके बौद्धिक पिता कहा जाय तो यह केवल तथ्य बात है। सच पूछिये तो तीस बर्षसे ऊपर तक शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्रमें सर पी. सी. रायने जो परिश्रम-पूर्ण कार्य किया है, उसीके कारण बङ्गालके दो वकीलोंने विज्ञानका कालेज खोलनेके लिए ३० लाखका दान दिया। प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान् सिल्वेन लेवीका कहना ठीक ही है कि सर पी. सी. रायकी प्रयोग-शाला भारतीय रसायन-शास्त्रियोंकी जननी है। विज्ञानके अन्य भागोंमें काम करनेवालोंने भी सर पी. सी. रायके विज्ञान-प्रेमसे बल पाया है, उदाह-रणके लिए डाक्टर मेघनाद साह हैं।

पन्द्रह वर्ष तक अपने अवकाश कालको लेखन-कार्यमें लगाकर उन्होंने मौलिक संस्कृत आधारोंपर दो भागोंमें हिन्दू रसायन शास्त्र तैयार किया; इस कार्यके लिए उन्होंने सैकड़ों संस्कृत भाषामें लिखित आत्मजीवनियों तथा हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थोंको देखा। यही नहीं, हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोजमें वह इंग्लैण्ड तक गये, जहां ब्रिटिश म्यूज़ियम लाइब्रेरी, इंडिया आफ़िस लाइब्रेरी और इंग्लिश लाइब्रेरीमें उनके कामकी अनेक पुस्तकें उपलब्ध हो सकती थीं। उनका रसायन शास्त्रका इतिहास प्रकाण्ड ग्रन्थ है और अपने ढंगका यह पहला कार्य न केवल उनके प्रेम-पूर्ण परिश्रमका द्योतक है बल्कि इससे उनकी अपार विद्वत्ता और खोज का पता चलता है। हमारे पूर्वजोंने विज्ञान और ओषधिके क्षेत्रमें कितना काम किया है, इसका पता इस ग्रन्थसे लगता है। चरक, सुश्रुत, तथा अन्य मौलिक आधारोंसे उन्होंने प्रमा-णित किया है कि इस कार्य-क्षेत्रमें अरब निवा-सियोंने भारतवर्षसे बहुत कुछ सीखा और अब यह प्रकट है कि ग्रीक रसायन शास्त्रको अरब-निवासियोंसे, जिन्होंने भारतवर्षसे शिक्षा ग्रहणकी,

बहुत कुछ सहायता मिली। सर पी. सी. रायकी इस खोजसे यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि कि यूनानियोंका भारतवर्षके प्रति कितना ऋण है। प्रोफेसर मैकडानेलने निम्नलिखित शब्दोंमें अपने संस्कृत साहित्यके इतिहासमें भारतवर्षके प्रति यूरोपीय देशोंके ऋणी होनेकी बात यों प्रकट की है—"विज्ञानमें भी यूरोप भारतवर्षका बहुत ऋणी है। पहिली बात तो यह है कि संसार भरमें प्रयुक्त किये जानेवाले अङ्कोंका आविष्कार हिन्दुओंने किया। उन अङ्कोंपर आश्रित दशमलव पद्धतिने जो प्रभाव न केवल गणितके ऊपर किन्तु संसारकी उन्नतिके ऊपर डाला है, उसका पूरा पूरा अनुमान लगाना कठिन है। आठवीं और नवीं शताब्दीमें भारतीयोंने अरब निवासियोंको अङ्कगणित और बीज गणित सिखलाया और अरब निवासियोंसे पश्चिमके राष्ट्रोंने सीखा। इस प्रकार यद्यपि बीज गणितको हम अंग्रेज़ या अरबी नामसे पुकारते हैं, इस ज्ञानका देनेवाला असलियतमें भारतवर्ष ही है। इसके अतिरिक्त अरब-निवासी हिन्दू विद्वानोंको बग़दाद ले गये और वहां उन्हें अपने अस्पतालोंके प्रधान बनाकर उनसे वैद्यक, ओषधि-निर्माण-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र आदि विषयोंपर प्रस्तुत संस्कृत ग्रन्थोंका अरबीमें अनुवाद कराया।" अपने इतिहासमें पी. सी. रायने दिखालाया है कि विज्ञान, हिन्दू रसायन-शास्त्र और ओषधि शास्त्र बौद्ध कालमें बड़ी उन्नति कर चुके थे। इस सम्बन्धमें उन्होंने नागार्जुन नामक एक उत्कृष्ट वैज्ञानिक विद्वान् के 'रस रत्नाकर' नामक ग्रन्थपर बड़ा ज़ोर दिया है। इस पुस्तकसे मैं कुछ उद्धारण देना उचित समझता हूँ।

"जो जीवन मुक्त थे, समस्त प्राणियोंके प्रति जिनके हृदयमें दया थी, जो सबको आशीर्वादसे सुखी करते थे ऐसे नागार्जुनके सामने रत्नघोष हाथ जोड़कर खड़ा हुआ और बोला "कृपा करके मुझे रासायनिक क्रियाके सम्बन्धमें ज्ञान दीजिये।" नागार्जुन ने कहा "शाबाश, शाबाश। मैं तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न हूँ, और जिस ज्ञानकी तुम्हें कामना है, उसे मैं तुम्हें दूंगा; मैं तुम्हें चर्म संकोच, केशोंकी श्वेतता तथा वृद्धावस्थाके अन्य लक्षणोंके नाशकी ओषधि बतलाऊँगा। खनिज पदार्थोंसे तैयार होनेवाली दवाइयोंका प्रभाव धातुओंपर इतना ही अधिक होता है जितना कि शरीरपर। प्राणियोंके हितार्थ बारह वर्ष तक मैंने अनेक प्रकारकी तपस्या की और यक्षिनी देवीकी आराधना की, तब मैंने दिव्य वाणी सुनी।" नागार्जुन ने कहा "यदि तुम मुझपर प्रसन्न हो, तो मुझे पारेके स्थिर करनेकी हिकमत बतलाओ।" रसायन-शास्त्रकी एक दूसरी महत्व-पूर्ण पुस्तकका कहना है "जैसा कि पारा-पद्धतिमें वर्णित किया गया है जीवनकालमें ही मनुष्यकी मुक्ति अन्य शास्त्रोंमें भी बतलायी गयी है, यद्यपि उनकी दलीलोंमें अन्तर है; फिर भी इसमें तो सभी एक मत हैं कि ज्ञानी होना ही मुक्ति है। अजीवित अवस्थामें कोई ज्ञातव्यको नहीं जान सकता अर्थात् ज्ञातव्यको जाननेके लिए जीवनका होना आवश्यक है। पारेमें ही यह विशेषता है कि वह शरीरको अजर अमर कर सकता है; क्योंकि उसे मृत्युसे परे करनेकी यही महौषधि है। इस धातुका गुण वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता है? इसके तो देखने और छूनेसे ही इसके महत्वका पता लग जाता है, जैसा कि रसार्णवमें कहा गया है "इसको देखने, छूने, खाने, रखने, इसकी आराधना करने तथा इसे औरोंको देनेसे छहों उत्तम फलोंकी प्राप्ति होती है। पवित्र पारेकी पूजा काशी तथा अन्य स्थानोंकी मूर्त्तियोंकी पूजासे कहीं बढ़ कर है"।

विद्या-पाठके समारम्भ, प्रयोग शालाके निर्माण आदिके सम्बन्धमें भी उद्धरण दिये जा सकते हैं। रसार्णवके अनुसार शिक्षकको रासायनिक क्रियाओंमें बुद्धिमान अनुभवी और अभ्यस्त होना चाहिये, उसे शङ्कर पार्वतीका भक्त होना चाहिये और शान्ति तथा धैर्य रखना चाहिये। विद्यार्थीको शिक्षकके प्रति श्रद्धा रखनी चाहिये, सदाचारी, सच्चा, परिश्रमी, आज्ञाकारी, गर्व-शून्य और पक्के

विश्वास वाला होना चाहिये। रासायनिक क्रियायें ईश्वर-भक्त, शङ्कर-पार्वतीके उपासक राजाके, अराजकता-शून्य, राज्यमें की जानी चाहियँ और प्रयोग-शाला ऐसे स्थानमें बनायी जानी चाहिये जो आयुर्वेदीय वनस्पतियों और कुओंसे पूर्ण जंगलके बीचमें हो। इसमें विविध प्रकारके औज़ार होने चाहियें, चार दरवाज़े हों और देवताओंके चित्र भी रहें। पूर्वमें पारा, दक्षिण-पूर्वमें अँगीठी, दक्षिण पश्चिममें औज़ार और उत्तर-पश्चिममें सुखानेका प्रबन्ध रखना चाहिये। जो सच्चे हैं, प्रलोभनके वशमें नहीं हैं, देवताओं और सात्विकी भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके भक्त हैं, उन्हींको रासायनिक क्रियायें करनेमें नियुक्त करना चाहिये। ऐसे वनस्पति-शास्त्रका ज्ञान रखनेवाले धोखा नहीं देते, ओषधियों और पौधोंकी पूरी पूरी जानकारी रखते हैं और कार्यमें नियुक्त करनेके योग्य होते हैं।" सच्चे हिन्दू रसायन शास्त्र-वेत्ताकी तरह सर पी. सी. राय ने पारेके अनेक यौगिकोंका आविष्कार किया है और बीस वर्ष तक इसीके सम्बन्धमें कार्य किया है। अंग्रेज़ी शब्द (Chemistry) को संस्कृतमें 'रसायनम्' कहते हैं। इस विषयके समस्त संस्कृत ग्रन्थ रस शब्दसे, जिसका अर्थ पारा है, शुरू होते हैं। इस प्रकार रासायनिक आविष्कारके क्षेत्रमें भी सर पी. सी. राय हमारे पूर्वजोंके सच्चे सपूत कहे जा सकते हैं।

धातु-विज्ञानमें प्राचीन हिन्दुओंकी क्षमता

कुतुब मीनारके विषयमें प्रसिद्ध लेखक डाक्टर फर्गुसनका कहना है—"ईसाके बाद ४०० वर्षको औसत निर्माणकाल मानते हुए भी उसकालमें हिन्दुओंको ऐसे ऐसे लोह-स्तम्भ बनानेकी योग्यता देख कर आश्चर्य्य होता है जैसे कि यूरोपमें उसके बहुत समय बाद तक, और यही क्यों अब भी, नहीं बन पाते हैं। इतना ही आश्चर्य्यजनक यह भी है कि पन्द्रह शताब्दियों तक हवा और पानीकी बौछारें खाते रहने पर भी, इस पर ज़ंग नहीं लग सका है और उसपरका लेख अब भी उतना ही स्पष्ट है जितना कि वह १५०० वर्ष पहले था।" पैरिसके प्रोफ़ेसर प्रसिद्ध रसायन-शास्त्रज्ञ कैटेलियाका कहना है कि कुतुब मीनारके लौहस्तम्भमें जिस प्रकारके फ़ौलादका प्रयोग हुआ है वह यूरोपमें नहीं बन सकता। इस कालके बाद भी हम देखते हैं तो फ़ौलादको काम लायक बनानेकी योग्यतामें भारत वासियोंको निपुण पाते हैं। दमश्ककी तलवार आदिकी धारका बड़ा आदर था, परन्तु सच पूछिये तो फ़ारस-निवासियोंने भारत वासियोंसे ही उनका बनाना सीखा और उनसे अरब-निवासियोंने यह रहस्य पाया। यह बात प्रसिद्ध रसायन शास्त्री वर्थीलोने भी स्वीकार की है।

प्राचीन भारतमें कला और विज्ञानको उच्च जातिके लोगोंने ही अपना रखा था। दुर्भाग्यसे वर्णाश्रम व्यवस्थाके अत्यन्त कड़े रूपमें प्रचलित होने पर इन बातोंका ज्ञान लुप्त हो गया। वैदिक कालमें ऋषियों अथवा पुरोहितों ने अपनी कोई अलग जाति नहीं बनाई थी, बल्कि अपने सुभीते अथवा स्वाभाविक रुचिके अनुसार भिन्न भिन्न कार्य करते थे। उस समय इमर्सन (Emerson) के इस सिद्धान्तसे दूर नहीं थे कि "मनुष्यके चरित्रमें ही उसका पेशा निर्दिष्ट है। प्रत्येक मनुष्य एक ख़ास पेशेके लिए बनाया गया है जिसे उसकी प्राकृतिक क्षमता निश्चित करती है।" परन्तु जब ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्मकी अवनति होने पर अपना सिक्का जमाया तब यह सब परिवर्त्तित हो गया। वर्णाश्रम-व्यवस्था फिर कड़ाईके साथ जमाई गई। मनु और अन्य अर्वाचीन पुराणोंकी प्रवृत्ति ब्राह्मण-वर्गकी मान-वृद्धिकी ओर ही दीख पड़ती है। ब्राह्मणों ने भी मनमाने महत्व वाले ढोंग बढ़ा लिए। सुश्रुतके अनुसार चीरफाड़का काम सीखने वाले प्रत्येक विद्यार्थीके लिए मृतक शरीरकी परीक्षा अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु मनु इसके विरुद्ध हैं। मनुके अनुसार ब्राह्मणसे शरीरको अपवित्र करनेके लिए मृतक शरीरका स्पर्श ही पर्याप्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भागवतके थोड़े समय बाद

ही चीर फाड़के औज़ारोंका प्रयोग बन्द किया जाने लगा, जिसका फल यह हुआ कि शरीर-शास्त्र-का ज्ञान और चीर फाड़की क्रिया में हिन्दुओंकी कुशलता नष्ट हो गई।

हथोड़े और भट्ठीका काम करना भी शानके ख़िलाफ़ समझा जाने लगा। इसीलिए समाजके उच्च मनुष्योंको हम कलाओंका प्रेमी केवल पारस्परिक कथनोंमें देखते हैं, और प्राचीन संस्कृत साहित्यमें चित्रित स्वरूप हमें फिर कहीं नहीं दिखाई पड़ता। इसमें सन्देह नहीं कि वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी सख़्तीके कारण कलाओं और विज्ञानोंके इस प्रकार छोटी जातियोंमें परिमित कर देनेसे कुछ सफ़ाई, अच्छाई और होशियारी पैदा हुई, परन्तु बड़ी भारी हानि भी उठानी पड़ी। जातिके ज्ञानवान मनुष्योंके कलाओंमें भाग लेनेसे इस प्रकार विरत हो जानेके कारण, क्यों और कैसेकी विवेचना, कारण और फलको समझनेकी प्रवृत्ति, बन्द हो गई। दर्शन-शास्त्र और आत्मा-परमात्माके झगड़ोंमें पड़ी रहनेवाली जातिमें फिर उक्त प्रकार-के प्रश्नोंका उत्तर ढूँढ़नेकी इच्छा न रही और धीरे धीरे भारतवर्षसे वह कलायें विदा हो गईं। फिर भारत-भूमिमें बोयल, डेसकार्ट्स, या न्यूटनके उत्पन्न होनेकी सम्भावना न रहगई, और उसका नाम ही वैज्ञानिक संसारके नक़शेसे प्रायः मिट गया। बौद्धिक अप्रगति-शीलताकी इस भूमिमें अपने मां-बापसे पाई हुई अपनी पुरानी बातोंको साधारण समझवाले कारीगरोंने बहुत कुछ बचाये रखा। धातुओं पर सुन्दर डिज़ाइन बनाने, हाथी दाँत पर नक़्क़ाशी करने, बुनने, रंगने और लेस बनानेके काममें अब भी वह अपने ढंगकी आश्चर्य-जनक होशियारी दिखलाते हैं।

ऊपरकी पङ्क्तियोंको पढ़कर पाठक सर पी. सी. रायके समाज सुधारक और इतिहास-वेत्ताके स्वरूपको पहिचान सकते हैं। कट्टर सनातन धर्मी परिवारमें जन्म लेकर भी सर पी. सी. राय हिन्दू समाजकी अनुचित बातोंको नहीं मानते। विशेष करके वर्णाश्रमकी सख़्ती और बाल-विधवाओंकी दशासे तो इन्हें बहुत दुख होता है। अपने विद्यार्थियोंसे वह क्लासमें कहा करते थे कि चमारके हाथ का बना चावल वैसा ही अच्छा है जैसा कि ब्राह्मणके हाथका। अछूत प्रथाके विरुद्ध तो वह अपने विचार बड़े ज़ोरदार शब्दोंमें व्यक्त किया करते थे। इंग्लैण्ड जानेके बहुत पहिले वह ब्राह्मो समाज के सदस्य हो गये थे, परन्तु सर पी. सी. राय जैसे पुरुषकी प्रत्येक वस्तुको समालोचककी दृष्टि से स्पष्ट देखनेवाली चञ्चल कार्य-कारिणी-शक्ति और तेज़ प्रतिभा किसी समाज-विशेषके नियमों द्वारा नहीं बांधी जा सकती, उनका सा उच्च कक्षा का सुधारक किसी सम्प्रदाय-विशेषका होकर नहीं रह सकता; वह तो राष्ट्रके विस्तृत समाजका, नहीं, समस्त संसारका है।

गत तीस वर्षसे वह निरन्तर कर्मका उपदेश दे रहे हैं, इस देशकी सामाजिक असमानताओंके सम्बन्धमें तीखी बातें कहते, और राष्ट्रकी दुर्बलताओं और वर्णाश्रमकी सख़्तियोंकी आलोचना करते हैं। जब कभी वह व्याख्यान देते हैं, अधिक संख्यामें लोग सुनने आते हैं, क्योंकि लोग जानते हैं कि वह जो कुछ कहते हैं उस पर विश्वास रखते हैं, उसके अनुसार स्वयं करते हैं, और इन्हींके लाभके लिए हृदयसे अनुभव करके कहते हैं। कुछ ही समय हुआ इन्होंने मुझसे कहा कि फ्रान्सीसी विद्वान् सिल्वन लेवीने उनसे पूछा कि पहिले तो भारत-वासी बहुत उन्नत थे, फिर वह इतने नीचे क्यों गिर गये हैं। राय महोदय बड़े उदार हृदयके पुरुष हैं और जब वह स्वदेश की दुर्दशा देखते हैं तब उन्हें अत्यन्त क्लेश होता है।

सर पी. सी. राय निर्माणात्मक कार्य और भारतीय औद्योगिक पुनर्जीवनके प्रति प्रयत्नके बड़े समर्थक हैं। ३० वर्षकी अवस्थामें जब वह प्रेसिडेन्सी कालेजमें प्रोफेसर होकर आये तब उन्होंने अपने घर ९१, अपर सर्क्यूलर रोड, पर ही एक औषधालय खोल दिया, उन्होंने कुछ मित्रों

की सहायतासे दवाइयां बनाना और कुछ पौधोंका सत्त निकालना शुरू कर दिया। यह कार्य्य कुल ५००) की पूँजीसे शुरू किया गया था; किन्तु इतने-से ही उन्नति करके आज यह संस्था Bengal Chemical Pharmaceutical Works के नामसे प्रसिद्ध हो रही है, जहाँ कई तरहके रसायन; दवाइयां तथा अन्य उपयोगी वस्तुएँ बनती हैं। इस संस्थाकी पूँजी आज कल कई लाख है और इसके जोड़की दूसरी कोई संस्था आज भारतवर्षमें नहीं है। इस कारखानेके प्रारम्भ कालमें एक शोक-जनक घटना हो गई थी। प्रधान कार्य कर्त्ताओंमेंसे एक हाइड्रोसियनिक एसिड गैसके विषसे परलोकवासी हो गया। सर पी. सी रायने इस संस्थाको विशाल ही नहीं बनाया, जो अब लिमिटेड कम्पनी है, उन्होंने साबुन और चमड़ेके अनेक पुतली घरोंके निर्माणमें प्रधान भाग लिया है और इस समय वह बंगालकी बारह लिमिटेड कम्पनियोंके डाइरेक्टर हैं।

प्रेसीडेन्सी कालेजके भूतपूर्व प्रिंसिपल मि. एच. आर. जेम्स सर पी. सी. रायके बड़े मित्र और प्रेमी थे और उनसे कहा करते थे "जहाँ व्यवसायी पुरुषोंको सफलता नहीं मिली वहां शिक्षक होकर भी आपने सफलता प्राप्त की" इस सम्बन्धमें यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि जिसका चारों ओर प्रभाव पड़ता है वह चरित्र है और राय महोदयका चरित्र अत्यन्त उच्च है। मैं कह चुका हूं कि वह निर्माणात्मक कार्य-कर्त्ता हैं और छोटे छोटे उद्योग धंधोंके समर्थक हैं। पाश्चात्य देशों और अमेरिकाके विशाल औद्योगिक कारखानोंके पक्षमें वह नहीं हैं। वह घरेलू उद्योग-धंधोंके प्रति विशेष उत्साह प्रदर्शित करते हैं; इस उद्देश्य से तथा अपने देश-वासियोंके पारस्परिक आलस्य को मिटानेके लिए वह हाथसे बने कपड़ेके प्रयोग और बनानेके प्रचार निमित्त चारों ओर लोगोंमें चक्कर लगा रहे हैं। बंगालके एक कोनेसे लेकर दूसरे कोने तक वह इसी उपदेशका प्रचारकर रहे हैं। अपनी क्रिया-शीलताके केन्द्र कलकत्तासे वह बंगाल के दूरस्थसे दूरस्थ प्रान्तोंमें घूम रहे हैं। इन हाथके कपड़ोंकी बुनाईमें वह अपने पाकेटसे ३०००० रुपयों के क़रीब ख़र्च कर चुके हैं। वह कलकत्तेमें इन हाथ के बने कपड़ोंकी प्रदर्शिनी प्रति मासमें कर रहे हैं और स्त्रियों और पुरुषों दोनोंको हाथका बना कपड़ा बनानेके लिए प्रोत्साहित कर रहे हैं।

अब मैं सर पी. सी. रायकी प्रकृति और शरीर आदिके विषयमें कुछ बातें बतलाऊँगा। वह भाव-पूर्ण नेत्रोंवाले एक दुबले पतले आदमी हैं। वह बहुत थोड़ा खाते हैं, परन्तु भोजनकी मात्रा देखते हुए उनमें असाधारण कार्य-शक्ति है। अत्यन्त दयालु हैं, सच्चे हैं, और सभी तरहके लोगों से मित्रता स्थापित कर सकते हैं। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि उनमें पूर्व और पश्चिमकी सर्वोत्तम बातें विद्यमान हैं।

पोशाकके मामलेमें इनकी पूर्वीय रंगकी प्रधानता है। स्वार्थ-त्याग, सरल रहन-सहन और उच्च विचार-परायणताके सिद्धान्तके वह परम भक्त हैं। बटन-बंद कोट और हिन्दुस्तानी टोपी लगा कर वह चार बार यूरोप हो आये हैं। उनकी रुचि बहुत साधारण है, अपने व्यक्ति-गत व्ययमें वह १००) मासिकसे अधिक ख़र्च नहीं करते, और चूँकि वह सपत्नीक नहीं हैं, उनकी शेष आय जो १२००-१५०० रुपये होती है, कहीं बालकों और बालिकाओंकी शिक्षामें, कहीं दाई घरोंके लिए दान करनेमें, कहीं विधवा-गृहों और अनाथालयोंकी सहायतामें ख़र्च होती है। उनके कारण ही बँगाल के कुछ ज़िलोंमें उच्च शिक्षाके निमित्त कालेज, और धार्मिक शि[illegible]के निमित्त प्राइमरी स्कूल, खुल गये। इन्हीं संस्थाओंकी सहायतामें इन्होंने अपनी आमदनीका बहुत बड़ा हिस्सा खर्च किया है और अपनी छुट्टियां वह स्थानीय कार्य-कर्त्ताओंसे मिलने और प्रोत्साहित करनेमें बिताया करते हैं। वह अत्यन्त स्वार्थ-त्यागी पुरुष हैं, उसीसे उनकी इच्छाएँ भी थोड़ी हैं।

एक बार उनके पास कुछ आम लाये गये और उन्होंने हर एकका दाम पूछा। उत्तरमें दो आना कहा गया, उन्होंने तुरन्त कहा कि मैं नहीं लूँगा, क्योंकि मेरे लिए यह बड़े महँगे हैं। वह बोले कि यदि एक आमका दाम एक आना होता तो मैं अवश्य ले लेता; कभी कभी मक्खन बिना ही वह रोटी खा लेते हैं। आप कहेंगे कि उनका पहनावा अच्छा नहीं होता; आजकल तो वह कलकत्ता विश्व विद्यालयके सेनेटके अधिवेशनों तथा अन्य कई महत्वपूर्ण सभाओंमें एक कमीज़ और एक खद्दरकी धोती पहिन कर जाते हैं। उन्होंने मुझसे कई बार कहा है कि पूर्व और पश्चिमके धनाढ्य लोग जैसी पोशाक पहिननेके शौक़ीन हैं, उससे मुझे बड़ी घृणा है। अपने पहिनावेके कारण उन्हें अनेक असुविधाएँ सहनी पड़ती हैं, क्योंकि कोई जल्दी विश्वास नहीं करता कि सर पी. सी. राय जैसा बड़ा आदमी इस प्रकारके अपर्याप्त और अरुचिकर पोशाकमें रहेगा। मुझे एक घटना याद है जब कि वह एक सेकंड क्लास रेलवे स्टेशनके वेटिंग रूममें प्रवेश करनेसे रोक दिये गये, क्योंकि जो मनुष्य उसके चार्जमें था उसे यह विश्वास नहीं हुआ कि ऐसी बेढंगी पोशाकका आदमी सेकंड क्लासका यात्री होगा। अपने अस्वास्थ्यके कारण ही वह सेकंड क्लासमें चलते हैं, नहीं तो थर्ड क्लास में ही चढ़ते। वह चार बार यूरोप हो आये हैं और विचार तथा प्रणालीमें पूरे पूरे पाश्चात्य ढंगके हैं। वह सदैव समयके पाबन्द रहते हैं और अपने कार्यको नियमित रूपसे करते हैं। वह अनेक सरकारी कमेटियोंमें काम कर चुके हैं और सदैव स्वार्थ-त्याग-पूर्वक उस दृष्टि-कोणके समर्थक रहे हैं जो भारतवर्षके अनुकूल होता है। उनका स्वभाव बच्चेके ऐसा सरल है। यद्यपि अब वह साठ वर्षसे ऊपर हैं, तथापि वह बच्चोंकी ही तरह हँसते और मुसकराते हैं और कूद सकते हैं। यदि आप उनसे मिलने जायँ तो तुरन्त ही उनका व्यवहार आपके साथ मित्रका सा हो जायगा और वह आपका हाथ पकड़कर आपकी छाती पर कुछ घूँसे भी लगावेंगे, और यदि आप काफ़ी मज़बूत हैं तो वह आपके कन्धों पर भी चढ़ जायँगे। एकत्वकी घनिष्ठता दूसरेके साथ दिखलानेके लिए वह प्रयोगशालाके नौकरको दौड़कर गले लगा लेंगे। उनकेसे महान् पुरुषके लिए छोटे बड़ेमें कोई भिन्नता नहीं है। उनका उदार हृदय सभीसे प्रेम करनेको तैयार होता है। सर पी. सी. रायका यह चित्र मैंने उनके उसी स्वरूपका खींचा है, जिस स्वरूपमें मैंने उन्हें पहिचाना है। मेरा तो विचार है कि उनसे प्रेम न करना उनका आदर न करना, और उनकी भक्ति न करना असम्भव ही है। ऐसे अद्भुत और प्रेम-पूर्ण व्यक्तित्वके सामने हमारे हृदय और शरीर दोनों नम्र हो जाते हैं।

यदि हम इस महान् पुरुषके स्वभावकी प्रधान बातोंकी मीमांसा करें तो हमें यह मानना पड़ेगा कि उनमें मनुष्य जातिके प्रति अपार प्रेम है, स्वार्थ-त्यागका भाव है और आदर्शके लिए अनुराग है, परन्तु चूँकि वह मानते हैं कि उदारता घरसे ही शुरू होनी चाहिये, वह सब दोषोंके रहते हुए भी भारतवर्ष और इसके निवासियोंके पुनर्जीवनमें सहायता देते हैं और उन्हें अत्यन्त प्यार करते हैं। उनकी सम्पूर्ण सहानुभूति दुखी मनुष्य जातिके प्रति सहायता के लिए तैयार होती है, और हमें अच्छी तरह मालूम है कि उन्होंने बंगालके अकाल ग्रस्त ज़िलोंके दुख-निवारणके लिए कैसा उद्योग किया। इन दिनों वह भारतवर्षके आर्थिक प्रश्नों और रोटीको समस्या पर व्याख्यान दे रहे हैं। यद्यपि उनका विशेष प्रेम विज्ञानसे है तथापि वह दुखी मनुष्य-जातिसे सहानुभूति किये बिना रह नहीं सकते। कलकत्ताके निर्धन विद्यार्थी आपको पिता-तुल्य मानते हैं।

कोई पन्द्रह वर्ष हुए जब वह भारतवर्षके भविष्यके सम्बन्धमें अत्यन्त निराश हो गये थे, परन्तु अब उनका विचार फिर परिवर्तित हो गया है। उन्हीं दिनों वह ब्रह्मो समाजके प्रसिद्ध

उपदेशक और धार्मिक पुरुष पं० शिवनाथ शास्त्री-से पूछा करते थे कि भारत वर्षमें कुछ ऐसे रसायन शास्त्री क्यों न उत्पन्न हों जो निस्स्वार्थ भावसे रसायन शास्त्रकी सेवा करें। उनकी सदैव यह इच्छा रही है कि वह कुछ रसायन शास्त्रके विद्यार्थी भारतवर्षमें उत्पन्न करें। इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए उन्होंने दृढताके साथ ३० वर्ष तक कार्य किया है। इसे हमें अपने देशका सौभाग्य कहना चाहिये कि उनके क्रियाशील जीवनके गत पन्द्रह वर्षमें उन्हें सफलता भी अच्छी मिली है और अब वह स्वदेशकी ओरसे पूर्ण आशावादी और सन्तुष्ट हैं, जैसा कि उनके निम्न लिखित वाक्योंसे ज्ञान होगा। "भारतीय राष्ट्रका भूतकाल ज्वलन्त रहा है, उसमें अपार कार्य शक्ति है, मुझे पूर्ण आशा होती है कि उसका भविष्य भी उज्ज्वल होगा।"

उनके जीवनसे हमें निम्नलिखित उपयोगी बातें मालूम होती हैं:—अटूट अध्यवसाय, किसी महान् कार्यको करनेके लिए निरन्तर उद्योग तथा प्रयत्न-शीलता, अपूर्व आत्म-त्याग, मानवजातिके प्रति अपार प्रेम, दुखियोंके लिए सहानुभूति और यह कि साधारण रहन-सहन और उच्च विचारसे ही मनुष्यका जीवन सुखमय तथा उपयोगी हो सकता है।

—नीलरतन धर।

---

## वर्षा और वनस्पति

वर्षा और वनस्पतिका पारस्परिक सम्बन्ध बतानेके पहले ऋतुओं और जल-बरसनेके कारणों पर विचार करना परमावश्यक है। कारण कि इसके बिना वर्षा और वनस्पतिका सम्बन्ध समझमें नहीं आसकता।

### ऋतु

हम भारतवासी मुख्यतः तीन ऋतु मानते हैं। यह तीन ऋतु हैं—गरमी, बरसात और जाड़ा। तथापि प्राचीन संस्कृत ग्रंथोंमें छः ऋतुओंके नाम दिये गये हैं। परन्तु इससे यह नहीं मान लेना चाहिये कि सारे भूमंडल पर तीन ही ऋतु होती हैं। कारण कि भिन्न भिन्न देशोंमें गरमी और शीतकाल तो नियमित समय पर नियम पूर्वक होते हैं; परन्तु वर्षाकालको कोई नियम लागू नहीं होता। कई देशोंमें बारहों महीने पानी बरसा करता है और कुछ देशोंमें नियमित समयपर नियम पूर्वक वर्षाकाल आता रहता है। अतएव वर्षाकालको एक स्वतंत्र ऋतु मान सकते हैं। असलमें दो ही ऋतु हैं। वर्षा कई बातों-पर अवलम्बित रहती है और यह एक स्वतंत्र सृष्टि व्यापार है।

उष्णताके न्यूनाधिक परिमाण होनेसे ही शीत-काल और ग्रीष्मकाल होते हैं। यह बात तो निर्विवाद है कि उष्णता सूर्यसे प्राप्त होती है। तथापि यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब सूर्य और पृथ्वी दोनोंका ही अस्तित्व है, तो उष्णता क्यों न्यूनाधिक होती है?

पृथ्वी भी एक ग्रह है। अन्य ग्रहोंकी तरह यह भी सूर्यके चारों तरफ घूमती है। और उसको एक प्रदक्षिणा पूरी करनेके लिए नियमित समय लगता है। ग्रहोंके घूमनेकी कक्षाएं सूर्यसे भिन्न भिन्न दूरीपर हैं। सूर्य इन सबके केन्द्र स्थानमें स्थित है। परन्तु ग्रहोंकी कक्षाएं वृत्ताकार नहीं हैं; दीर्घ-वृत्ताकार हैं। अतएव परिक्रमा करते हुए कभी तो ग्रह सूर्यके पास आ जाते हैं और कभी दूर चले जाते हैं। जब पास आ जाते हैं तो सूर्यका आकार बड़ा नज़र आता है और उस समय उष्णता भी ज्यादा प्राप्त होती है। परन्तु ग्रहोंके पास आने और दूर जानेमें बड़ा भारी अंतर नहीं है अतएव प्राप्त हुई उष्णतामें विशेष अन्तर अनुभव नहीं होता; फिर कम ज़्यादा गरमी क्यों होती है?

सर्दी और गरमीमें उष्णताके मानमें बड़ा अन्तर रहता है। यह अन्तर, पृथ्वीके पास आ जाने या दूर चले जानेसे नहीं पड़ता। तब ऋतु कैसे होती हैं?

पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है और साथ ही साथ अपनी धुरी पर भी घूमती है। यदि पृथ्वीकी धुरी उसकी कक्षासे समकोण बनाती, तो ऋतु परिवर्तन होता ही नहीं। रात दिनके सिवा अन्य किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं होता। तब विषुववृत्तपर सूर्यकी किरणें लम्ब रेखामें पड़तीं; जिससे वहां अतिशय उष्णता होती। विषुववृत्तके दक्षिण और उत्तरमें किरणें तिरछी पड़ती हैं; जिससे क्रमशः उष्णता घटती जाती है और ध्रुव प्रदेशोंमें बहुत ही ज़्यादा सरदी पड़ती है। यह उष्णताका मान सदा सर्वदा एक सा बना रहता। यह सच है कि दीर्घवृत्तके केन्द्र स्थानके पास, जहाँ सूर्य रहता है, पृथ्वीके आजानेसे उष्णता कुछ अधिक बढ़ जाती तथापि उष्णतामें उतना अधिक अन्तर न पड़ता कि भिन्न भिन्न ऋतुएं होतीं। इतना ही नहीं, वरन् सभी स्थानोंमें दिनरात बारह बारह घंटेके होते; परन्तु हमारा अनुभव इस बातको सत्य साबित नहीं करता।

जिस समय विषुववृत्तके दक्षिणमें शीतकाल होता है, उस समय उत्तर गोलार्धमें ग्रीष्म ऋतु होती है। शीतकाल और ग्रीष्म छः छः मास के होते हैं। ग्रीष्मकालमें रात छोटी और दिन बड़ा होता है और शीतकालमें रात बड़ी और दिन छोटा होता है।

विषुववृत्तके उत्तर या दक्षिणमें जिस समय गरमी होती है, उस समय वहाँके सब भागोंमें उष्णताका मान एक दम नहीं बढ़ता और न एक दम घटता ही है। कल्पना कीजिये कि उत्तर गोलार्धमें उष्णकालका समय निकट है। सबसे पहले विषुववृत्तके पास वाले प्रदेशोंमें ग्रीष्मकाल भासित होने लगेगा और तब क्रमशः उत्तरकी ओर गरमीका प्रभाव बढ़ता जायगा और दक्षिण गोलार्धमें सरदी बढ़ती जायगी। इस प्रकार कुछ महीने बीत जाने पर उत्तर गोलार्धमें उत्तरकी ओर धीरे धीरे उष्णता घटने लगेगी एवं दक्षिण गोलार्धमें धीरे धीरे बढ़ने लगेगी।

ऊपर लिखा हुआ क्रम जारी रहनेपर जहाँ जहाँ अधिकाधिक उष्णता भासित होने लगती है वहाँ सूर्य धीरे धीरे सर पर आने लगता है। अर्थात् उन स्थानोंमें सूर्यकी किरणें लम्ब रेखामें गिरने लगती हैं; जिससे दिन बड़े और रात छोटी होती जाती हैं। अब यह देखेंगे कि किरणोंके लम्ब रेखामें पड़ने और रात दिनके छोटे बड़े होनेसे उष्णताका मान कम ज़्यादा क्यों होता है?

लम्ब किरणोंसे जितनी उष्णता प्राप्त होती है, उतनी तिरछी किरणोंसे प्राप्त नहीं होती। कारण कि लम्ब किरणें जितने स्थान पर फैलती हैं उससे अधिक स्थान तिरछी किरणोंके लिए आवश्यक होता है अर्थात् नियमित स्थानपर कम किरणोंके पड़नेसे गरमी भी कम होती है; इस बातको स्पष्टतया समझनेके लिए नीचे एक प्रयोग दिया जाता है।

सवेरे सूर्योदय होने पर खिड़की या दरवाज़ेमें से होकर सूर्यकी किरणें घरमें प्रवेश करती हैं। इन किरणोंके मार्गमें एक लकड़ीका तख्ता इस ढंगसे खड़ा करो कि वह किरणोंसे सम कोण बनावे। तख्ते पर देखलो कि प्रकाश और उष्णता कितनी है, अब इसी तख्तेको खूब तिरछा रखो, जिसमें किरणें ज़्यादा जगहमें फैल जायँ। तख्ते पर किरणें तिरछी गिरेंगी, जिससे प्रकाश और उष्णता कम हो जायगी। यही कारण है कि शामको और सवेरे कम गरमी मालूम होती है और दोपहर को ज़्यादा।

सूर्यकी किरणें कर्कवृत्तके उत्तरमें और मकरवृत्तके दक्षिणमें सीधी नहीं पड़तीं। सूर्य मकर वृत्तसे कर्कवृत्त तक और वहाँसे पुनः मकरवृत्त तक प्रवास करता है। एक वर्षमें सूर्य यह प्रवास खतम कर अपने पहलेके स्थान पर लौट आता है। और यही कारण है कि मकरवृत्त और ककवृत्तके बीचके प्रदेशोंमें सूर्य वर्षमें दो बार सर पर आता

है, जिससे छाया कभी उत्तरकी ओरको और कभी दक्षिणकी ओरको पड़ती है। मकर वृत्तके दक्षिणमें परछाईं सदा दक्षिणकी ओरको पड़ती है। और कर्कवृत्तके उत्तरमें सदा उत्तरकी ओरको उदाहरणार्थ, काशी कर्कवृत्तके उत्तरमें है। वहाँ सूर्य कभी सर पर नहीं आता। और परछाईं सदा उत्तरकी ओरको पड़ती है। सूर्यका मार्ग बारह राशि और २७ नक्षत्रोंमें बँटा हुआ है। पृथ्वीकी ही गतिके कारण सूर्य भिन्न भिन्न राशि या नक्षत्रोंमें जाता हुआ नज़र आता है। इस मार्गको क्रान्तिवृत्त कहते हैं। इसके बिलकुल दक्षिणमें मकर राशि और उत्तरमें कर्कराशि है। इन राशियोंसे ही वृत्तोंका नाम करण किया गया है।

अयन

सूर्यकी दृश्य गतिको ही अयन कहते हैं। कर्कवृत्तसे दक्षिणमें जब सूर्य मकरवृत्तकी ओरको जाने लगता है तो उसे दक्षिणायन कहते हैं। और मकर वृत्त से उत्तरकी अर्थात् कर्कवृत्तकी ओरको बढ़ने लगे तो उत्तरायण कहते हैं। दक्षिणायनके तीन मास बीतजाने पर हमारे यहाँ शीतकाल प्रारंभ होताहै। एवं उत्तरायण लगनेके पूर्व शीत कालका मध्य रहता है। उसी प्रकार आधा उत्तरायण खतम होते ही गरमीका मौसम प्रारंभ होता है। एवं दक्षिणायनके प्रारंभमें ग्रीष्मका मध्य काल रहता है।

असलमें सूर्य घूमता नहीं है। वह स्थिर है। पृथ्वी जरूर उसके चारों ओर घूमती है। अब यहाँ कोई यह प्रश्न करेगा कि अयन क्यों होते हैं? अतएव इस प्रश्नको हल कर देना भी आवश्यक है।

पृथ्वीकी धुरी अपनी कक्षासे ६६½° का कोण बनाती है। अतएव छः मास तक सूर्य उत्तर ध्रुवका ओरको नज़र आता है और छः मास तक दक्षिण ध्रुवकी ओरको। जिस समय सूर्य दक्षिण ध्रुवकी ओर रहता है उस समय उधरके प्रदेशोंमें सूर्यकी किरणें सीधी पड़ती हैं। और उत्तर ध्रुवके प्रदेशों पर किरणें तिरछी पड़ती हैं। इसी समय दक्षिणायन होता है और जब सूर्य उत्तर ध्रुवकी ओर रहता है, तब उत्तरायण होता है।

अयन गतिसे दो कार्य होते हैं। एक तो सूर्यकी किरणें भिन्न भिन्न स्थानों पर सीधी पड़ती हैं; दूसरे दिन रात छोटे बड़े होते हैं। ऊपर दिखा आये हैं कि सीधी किरणोंसे अधिक उष्णता प्राप्त होती है और गरमोमें दिन बड़ा और रात छोटी होती है।

नियतकालिक वायुका ( Seasonal winds ) इस पुस्तकके विषयसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, अतएव वर्षाके कारणों पर यहाँ कुछ नहीं लिख कर वर्षा पर विचार करेंगे।

वर्षा

हवाकी भापका पानीके रूपमें ज़मीन पर बरसनेकी क्रियाको ही 'वर्षा' संज्ञा दी गई है। हवामें जलवाष्पको अदृश्य रूपमें ग्रहण करनेका गुण वर्तमान है। हवामें पाई जानेवाली भापका परिमाण उष्णता पर अवलम्बित रहता है। हवा जितनी ही अधिक गरम होगी, उतनी ही अधिक जलवाष्प उसमें अदृश्य रूपमें रह सकेगी। उससे अधिक भाप हवामें मिलते ही, वह पानीके रूपमें बरसने लगेगी। परन्तु यदि हवाकी उष्णता बढ़ा दी जाय, तो वह और भी अधिक भाप रख सकेगी। उसी प्रकार यदि हवाकी उष्णता घटा दी जाय, तो अधिकांश जल वाष्प जलके रूपमें बरस पड़ेगी।

प्रयोगार्थ एक काँचका पात्र लीजिये। और उसमें सूखी हवा भर लीजिये। पात्रमें हवा तो रहती ही है; परन्तु उसमें पानीका अँश जरूर रहता है। इसलिए यह जरूरी है कि कोई ऐसा पदार्थ इस बरतनमें डाला जाय, जो पात्रके भीतरकी वायुकी नमी सोख ले। गंधकाम्ल एक जलशोषक पदार्थ है। इसे बरतनमें डाल देनेसे हवा सूखी हो जायगी। बरतनमें गंधकाम्ल डाल कर उसको रबरके एक बड़े टुकड़े पर औंधा रख देना चाहिये; जिसमें काँचके बर्तनमेंकी हवा वातावरणमें से तरी ग्रहण न कर सके। तब किसी

दूसरे बरतनमें पानी रखकर उसे आग पर रखो और इस बरतनकी पानीकी भापको एक रबरकी नली द्वारा सूखी हवा वाले कांचके बरतन में पहुँचा दो।

कल्पना कीजिये कि पहले बरतनमेंकी हवाका तापक्रम ५०° है। इस ताप-परिमाणवाली हवा जितनी जल-वाष्प ग्रहण कर सकती है उतनी भाप दूसरे बरतनमेंसे नली द्वारा पहुँचानेसे, ग्रहण कर लेगी। परन्तु उससे अधिक भाप पहुँचाने पर बरतनकी हवा उसे ग्रहण न कर सकेगी और तब वह भाप पुनः जलमें बदल जायगी। और कांचके पात्रके भीतरी भाग पर पानीकी बूँदें जम जायंगी। यदि इस बरतनको और गरम करें, तो भीतर की हवा भी गरम हो जायगी और तब वह अधिक भाप ग्रहण कर सकेगी। यदि इस बरतनमें और भाप पहुँचाते रहेंगे, तो कुछ समय बाद पुनः बरतनके भीतरी भाग पर पानीकी छोटी छोटी बूँदें जमने लगेंगी।

ऊपरके विवेचनसे यह साफ मालूम हो जायगा कि परिमित ताप-परिमाण युत हवा परिमित सीमामें ही भाप ग्रहण कर सकती है। इस सीमासे अधिक भाप प्राप्त होते ही वह जलरूप ग्रहण कर लेगी। जबतक ताप-क्रम बढ़ाया न जायगा, वायु परिमित सीमासे अधिक भाप ग्रहण न कर सकेगी। अर्थात् ज्यों ज्यों ताप-क्रम बढ़ाया जायगा, त्यों त्यों वायुकी वाष्पधारक शक्ति भी बढ़ती जायगी।

एक और रीतिसे वातावरणकी जलवाष्प जलके रूपमें परिवर्तित की जा सकती है। कल्पना कीजिये कि वायुमें कुछ जलवाष्प वर्तमान है एवं वायुका ताप क्रम भी हम जानते हैं। इस वायुमें भाप इतना कम है कि उसको पानीके रूपमें बदलनेके लिए बहुत ही अधिक जलवाष्प पहुँचानी पड़ेगी। परन्तु उतनी अधिक भापके अभावके कारण हम काफी भाप हवामें नहीं पहुँचा सकते। अतएव हमको अपने उद्देशकी सिद्धिके लिए किसी दूसरे ही मार्गका अवलम्बन करना पड़ेगा। और यह मार्ग है वायुका ताप-क्रम घटाना। क्रमशः ताप-क्रम घटानेसे शीघ्र ही वह अवस्था प्राप्त हो जायगी कि हवाकी भाप जलका रूप ग्रहण कर लेगी। ताप-परिमाण जितना ही कम किया जायगा उतनी ही अधिक भाप जलका रूप ग्रहण कर लेगी। जलवाष्पको जल रूपमें परिवर्तित करनेके लिए उक्त दोनों क्रियाओंमेंसे किसी एकका अवलम्बन करना पड़ेगा। वनस्पति द्वारा यह कार्य किस प्रकार सम्पन्न होता है, यह आगे चल कर बताया जायगा।

नैऋत्य दिशाका वायु प्रवाह (मानसून नामक वायु प्रवाह) अपने साथ पुष्कल जलवाष्प लाता है। भाप वायुमें इतनी अधिक होती है कि कुछ अधिक भापके वायुमें मिलते ही या तापक्रमके घटते ही वह जलरूपमें बरसने लगती है। समुद्रके पृष्ठ भागकी अपेक्षा जमीन पर उष्णता कम रहती है। इसके दो कारण हैं—समुद्रकी सतहसे भूमिकी ऊंचाई और वृक्षों और प्राणियों द्वारा छोड़ी हुई भाप। यही कारण है कि जमीन पर आते ही जलवाष्प पानीका रूप ग्रहण कर बरसने लगती है।

### वनस्पति और वर्षाका सम्बन्ध

शायद यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होगा कि जमीन पर उष्णता कम क्यों होती है? पदार्थ-विज्ञानका नियम है कि समुद्रकी सतहसे ज्यों ज्यों ऊंचे जाइये त्यों त्यों उष्णताका मान घटता जाता है। इसके कई कारण हैं। उनमेंसे दो मुख्य कारणों पर ही यहाँ विचार किया जायगा। पृथ्वीकी सतह की हवा पर वातावरणका भार अधिक रहता है अतएव वह अधिक घन होती है। भूपृष्ठसे ज्यों ज्यों ऊंचे चढ़ते जाइये, त्यों त्यों वातावरणका भार कम होता जाता है, जिससे हवा भी अधिकाधिक हलकी होती जाती है। हवाके हल्के होनेसे और उसकी तापको रोक रखनेकी शक्तिके कम हो जानेसे ऊंचे स्थानोंकी वायु गरम नहीं हो पाती और उसका तापक्रम कम रहता है। **दूसरा कारण है सूर्यकी किरणोंका परावर्तन।**

किरणें परावर्तित होकर भूपृष्ठ भाग पर फैल जाती हैं, जिससे उष्णता अधिक होती है। हमारा रोज़का अनुभव भी यही कहता है कि ऊंचे स्थान पर शीतलता अधिक रहती है। समुद्रकी सतहसे हजारों फुट ऊंची होनेके कारण हिमाचलकी चोटियों पर बहुत ही ज़्यादा सरदी पड़ती है जिससे वहाँ हमेशा बर्फ बनी रहती है। गर्मीके मौसममें लोग शिमला, माँथेरान, महाबलेश्वर, पंचमढ़ी आदि पार्वतीय स्थानों पर जाकर रहते हैं। यह स्थान समुद्रकी सतहसे बहुत ही ऊंचे हैं इस लिए यहाँ सदा सर्दी बनी रहती है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि प्रति ३३० फुट ऊंचा चढ़ने पर तापक्रम १° फा घट जाता है अर्थात् १° उष्णता घट जाती है।

जमीन परकी उष्णता कम करनेमें वनस्पति भी एक बड़ा भाग लेती है। वनस्पति उष्णता किस प्रकार कम करती हैं, यह बात किसी गत परिच्छेदमें बता आये हैं। समान ऊंचाईवाले स्थानोंमेंसे, जिस स्थानपर वनस्पति अधिक होगी वहाँ ठंडक भी ज्यादा होगी। और कम वनस्पति-वाले स्थानमें गरमी ज्यादा होगी। यही कारण है कि समुद्रके पृष्ठभागकी अपेक्षा भूपृष्ठ पर उष्णता कम होनेके लिए, समुद्रकी सतहसे स्थान विशेषकी ऊंचाई और वनस्पतिका अस्तित्व ही कारण होता है। जल वाष्पको जलरूपमें बरसानेके लिए शीत-लताकी आवश्यकता होती है; और वह तो भूपृष्ठ पर स्वभावतः ही विद्यमान रहती है।

पानी बरसनेका दूसरा कारण है जलवाष्पयुत वायुमें अधिक जलवाष्प मिलाना। यह काम भी नैसर्गिक रीतिसे जमीन पर होता रहता है। नदी नाले, तालाब आदि जलाशयोंसे सदा वाष्पीभवन होता रहता है। यह जलवाष्प भूपृष्ठ परकी वायुमें सदा विद्यमान रहती है और जल बरसानेमें पुष्कल सहायता पहुँचाती है।

वर्षा प्रारंभ हो जाने पर, बरसे हुए जलसे भी, अधिक पानी बरसानेमें बहुत सहायता मिलती है। पानी बरसनेसे हवामें शीतलता फैल जाती है और बरसे हुए पानीका भी वाष्पीभवन होता रहता है। इससे भी वर्षा होनेमें सहायता पहुँचती है। किसी गत परिच्छेदमें हम लिख आये हैं कि वनस्पतिके पत्तोंके महीन छिद्रों द्वारा वाष्पीभवन की क्रिया सदा होती रहती है। और यही कारण है कि जहाँ ज्यादा वनस्पति रहती है वहाँकी वायु-में भी ज्यादा भाप मौजूद रहती है। यदि ऐसे जलवाष्प युत स्थानसे भापसे लदी हुई वायु गुजरने लगे, तो वह अवश्य ही जल रूपमें बरस पड़ेगी। क्योंकि प्रथम तो वनस्पतिके अस्तित्वके कारण उस स्थान पर शीतलता अधिक बनी रहती है। और द्वितीय वाष्पीभवनकी कृपासे उस स्थान-की वायुमें जलवाष्प भी ज्यादा मौजूद रहती है। अर्थात् पानी बरसनेके लिए जिन दो कारणोंका होना जरूरी बता आये हैं, वह दोनों ही वनस्पतिकी कृपासे वहाँ मौजूद रहते हैं। किसी स्थानको समुद्र-की सतहसे अधिक ऊंचा करना हमारे हाथमें नहीं है। परन्तु अपने उद्देशकी सिद्धिके लिए हम किसी दूसरे साधनका अवलम्बन कर सकते हैं और वह साधन है झाड़ोंका लगाना।

### पर्जन्य-व्याप्ति

भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें एक सी वर्षा नहीं होती। इसके कई कारण हैं। उन पर यहाँ संक्षेप-में कुछ लिखा जायगा।

वर्षाके न्यूनाधिक मानसे भारतवर्ष चार कल्पित भागोंमें बांटा जासकता है। यह कल्पित भाग हैं—१ अति वृष्टि ( Area of excessive rain-fall); २ अधिक वृष्टि (Area of moderate rainfall); ३ अल्प वृष्टि (Area of precarious rainfall) और ४ अनावृष्टि (Area of no rainfall )।

पन्द्रह इंचसे कम वर्षावाले प्रदेशोंको हमने अनावृष्टिके प्रदेशोंमें गिना है। १५-३० इंचतककी वर्षावाले प्रदेश अल्पवृष्टि, ३०-७० इंच वर्षा वाले प्रदेश अधिक वृष्टि और इससे अधिक पानी जिन

प्रान्तोंमें बरसता हो, वह अति वर्षाका प्रदेश माना जाना चाहिये।

अति वृष्टिका प्रदेश

गोवा, कोंकण, ट्रिवेंड्रम आदि स्थान समुद्रकी सतहसे करीब करीब बराबर हैं। सह्याद्रिसे पश्चिमकी ओरवाले भूभागपर बहुत ज्यादा वर्षा होती है। यह भूभाग ट्रिवेंड्रमसे लगाकर उत्तरकी ओरको दमनतक फैला हुआ है। इस भूभागपर अतिवृष्टि होनेका कारण यह है कि यहाँसे समुद्र बहुत पास है। समुद्रसे आनेवाला जलवाष्पयुत वायुप्रवाह सह्याद्रिके उच्च शिखरोंसे आकर टकराता है। रास्ता रुक जानेसे वायु वहीं रुक जाती है और अधिकाधिक वायुका संचय होता जाता है, जिससे खूब वर्षा होती है। सह्याद्रिके उच्चशृंगोंको पार करनेके लिए जितनी उष्णता आवश्यक होती है, वह सब बादल अपने पाससे ही खर्च करते हैं। और उष्णता कम होते ही भाप जल बनकर बरसने लगती है।

दूसरा अतिवृष्टिका प्रदेश गंगाके मुहानेसे लगाकर ब्रह्मपुत्राके प्रदेशोंमेंसे होकर उत्तरकी ओर आसामके पश्चिमी प्रान्तोंसे हिमालय तक फैला हुआ है। वहांसे यह प्रदेश हिमालयके पास पास काश्मीरतक फैला हुआ है। वर्षाका प्रवाह बंगालके उपसागरसे उत्तरकी ओरको जाता है। वहाँ आसाम और ब्रह्मदेशकी पर्वत श्रेणियाँ उसके मार्गको रोक देती हैं। अतएव यह प्रवाह बंगाल देशकी ओरको झुक जाता है। परन्तु सामने हिमालय पर्वत मार्ग रोक लेता है, इसलिए भागीरथीके तटवर्ती प्रान्तोंमें होता हुआ वह प्रवाह पेशावर तक चला जाता है।

हिमालय पर्वतकी अत्युच्च दीवार सामने आ जानेसे इस वायु प्रवाहका उत्तरी मार्ग बंद हो जाता है; इसलिए इसमेंकी अधिकांश जल वाष्प इन्हीं प्रदेशोंपर बरस पड़ती है।

अधिक वृष्टिका प्रदेश

अल्प वृष्टिके प्रदेशोंको छोड़कर शेष-प्रान्तोंमें अधिक वृष्टि होती है। सह्याद्रिके पूर्वमें अधिक वृष्टिका प्रदेश है। पास ही अतिवृष्टिका प्रदेश आ जानेसे यहां अधिक वृष्टि होना अनिवार्य है। कर्नाटकमें अधिक वृष्टिका कारण है अरबी समुद्र और बंगालके उपसागरके वायु प्रवाहोंका सम्मिलन। इसके अलावा मद्रासके किनारेपर ईशान्यके वायु प्रवाहका भी विशेष प्रभाव पड़ता है। ऊपर लिख आये हैं कि अतिवृष्टिके प्रदेशोंके पासवाले प्रान्तोंमें अधिक वृष्टि होती है। उसी प्रकार बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यभारत आदि कुछ प्रान्तोंमें दो वायु प्रवाहोंके कारण अधिक वृष्टि होती है। इन दो वायु प्रवाहोंमेंसे एक बंगालकी खाड़ीकी तरफसे आता है और दूसरा तापती और नर्मदाके मुखकी तरफसे।

सतपूड़ाके पहाड़ी प्रान्त, जोधपुरका पठार, मध्यप्रदेश और मध्यभारतके देशी राज्योंमें अधिक वर्षा तो होती ही है, साथ ही इन प्रान्तोंमें वर्षा अधिक निश्चित रहती है। कारण कि यह प्रान्त पहाड़ी और वनस्पतिसे भरे पूरे हैं। इसके अलावा नैऋत्य दिशासे अरबी समुद्रका वायु प्रवाह और पूर्वसे बंगालकी खाड़ीका वायु प्रवाह प्रवाहित होता रहता है, जिससे इन प्रान्तोंमें अवश्य ही अधिक वर्षा होती है। क्योंकि इन्हीं प्रान्तोंपर उक्त दोनों वायु प्रवाहोंकी मुठभेड़ होती है। इधर कुछ वर्षोंसे देशी रियासतोंके जंगलोंका नाश होता चला है, जिससे वर्षाकी न्यूनता भासित होने लगी है।

अनावृष्टिका प्रदेश

कच्छ, सिंधभाग, राजपूतानेका पश्चिमी भाग और पंजाबका नैऋत्य दिशावाला भूभाग अनावृष्टिके प्रदेशमें शामिल है। कच्छके पास समुद्रका एक सिरा आ गया है। शेष सारा भूभाग बलूचिस्तान, अफगानिस्तान आदि भूप्रदेशोंसे व्याप्त है। अतएव वर्षाके लिए आवश्यक जल वाष्प इन प्रदेशों तक पहुँचने नहीं पाती मार्गमें ही खर्च हो जाती है। बंगालकी खाड़ीका वायु प्रवाह इन प्रदेशोंमें पहुँचने तक जलवाष्प रहित हो जाता

है। इसके अलावा इन प्रान्तोंमें वनस्पतिका अभाव सा ही है। सारा प्रदेश बालुका-मय है। अतएव यहांकी वायुमें जलवाष्पका भी अभाव सा ही रहता है। इसलिए वायुमेंकी जलवाष्पको जल रूप में बरसानेके लिए वह कुछ भी मदद नहीं पहुँचा सकती।

अल्प वृष्टिका प्रदेश

काठियावाड़ गुजरातका पश्चिमी भाग, राजपूतानेका पूर्वभाग, पंजाबका अतिवृष्टि और अनावृष्टिके बीचका प्रदेश एवं आगरा और प्रयागके बीचका प्रान्त, अल्पवृष्टिके प्रदेशमें शामिल है। अरबके समुद्रसे आनेवाला जलवाष्पयुत वायु प्रवाह खंभायतकी खाड़ीमेंसे गुजरते ही मध्य हिन्दुस्तानकी ओरको झुक जाता है। इस प्रवाहके पूर्वकी ओर झुकनेका कारण यह है कि काठियावाड़, कच्छ, राजपूतानेका पश्चिमी भाग आदि प्रदेशोंपर वायव्य दिशाका वायु प्रवाह बहता रहता है। यह वायु प्रवाह बलूचिस्तान, अरब, ईरान आदिके समान शुष्क देशोंसे आता है। अतएव यह जलवाष्प रहित होता है। और यही वायु नैऋत्य दिशाकी ओरसे आनेवाले वाष्पयुत वायु प्रवाहको उधर आनेसे रोकता है। बंगालकी खाड़ीवाला वायु प्रवाह जलवाष्पसे भरा रहता है। यह बरसता हुआ आगे बढ़ता है, जिससे यहां आनेतक उसका जलवाष्पका संचय बहुत ही कम हो जाता है। और यही कारण है कि यहां पानी कम बरसता है।

दूसरा अल्पवृष्टिका प्रदेश सह्याद्रिके पूर्वमें है। यदि इस भूभागको एक चतुर्भुज मान लेंगे तो उसके चारों कोनोंपर आग्नेयमें चित्तूर, नैऋत्य में मैसूर वायव्यमें धूलिया और वायव्यमें अमरावती पड़ेगी। भारतके मानचित्रमें इन चारों स्थानोंको सरल रेखासे मिला देनेसे एक चतुर्भुज बन जायगा। इस चतुर्भुजकी सीमासे घिरा हुआ सारा प्रदेश अल्पवृष्टिका समझना चाहिये।

सह्याद्रिके अति निकट अल्प वर्षा होनेका कारण यह है कि समुद्रपरसे आनेवाला जलवाष्पयुत वायु प्रवाह सह्याद्रिसे रुक जाता है। पीछेसे और भी जलवाष्प युत वायु आती ही रहती है। पीछेकी वायुके प्रवाहके ज़ोरसे बादल उड़कर एकदम दूर जा गिरते हैं। और यही कारण है कि सह्याद्रिकी पूर्वी तराईसे कुछ मील की दूरी तक वर्षा कम होती है। ऊपर बताई हुई सीमाके पूर्व के प्रदेशोंमें बंगालकी खाड़ीका वायु प्रवाह भी अधिक वर्षा करानेमें मुख्यतः सहायता पहुँचाताहै।

उपसंहार

अतिवृष्टिके प्रदेशोंमें अकाल पड़ना बिलकुल संभव नहीं। अधिक वृष्टिके प्रदेशोंमें बहुत करके अकाल पड़ता ही नहीं। अनावृष्टिके प्रदेशोंमें तो वर्षाके अभावमें अवश्य ही अवर्षण होता है, परन्तु इन प्रान्तोंमें नहरें बनवा दी गई हैं; जिससे अकाल की भीति नष्ट हो गई है। अल्पवृष्टिके प्रदेशोंमें ही अकाल का भय बना रहता है।

भारतमें जितने अकाल पड़े हैं, वह सब इन्हीं प्रान्तोंमें। अतएव यह जरूरी है कि इन प्रान्तोंमें वर्षा बढ़ानेका यत्न किया जाय। वनस्पति लगानेसे यह उद्देश अधिकाँशमें पूर्ण हो सकता है।

ऊपर अनावृष्टिके प्रदेशों पर विचार कर आये हैं। उत्तर भारतके इस भूभाग तक जब जलवाष्प युत वायु प्रवाह पहुँच ही नहीं सकता, तो वर्षा क्योंकर हो सकती है। वायुके भापमें अभावके कारण ही इन प्रान्तोंमें अनावृष्टि होती है। परन्तु वायुमेंके जल वाष्पसंचयको इतना अधिक बढ़ाना मानवी शक्तिके बाहर है। अतएव वनस्पति लगानेसे जलवाष्पसंचय इतना अधिक नहीं बढ़ सकेगा। तथापि यदि वनस्पति लगाई जायगी तो कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा।

दक्षिण भारतमें वनस्पति लगानेसे अधिक लाभ होनेकी संभावना है। कारण कि इस प्रदेश पर अरबी समुद्रका वायु प्रवाह-प्रवाहित होता है। सह्याद्रि पर्वत पर अतिवृष्टि होती है और ऊपर लिखे हुए अल्पवृष्टिके प्रदेशके पूर्वमें अधिक वृष्टिका देश है। सह्याद्रि परसे आनेवाला वायु प्रवाह

भाप लाद कर इसी प्रदेश परसे बहता है। परन्तु वह जलरूपमें नहीं बरसता। यदि वनस्पतिकी वृद्धि की जायगी तो इस भूभाग पर अवश्य ही अधिक वर्षा होने लगेगी।

कई विद्वान इस बातसे सहमत नहीं हैं कि जंगल बढ़ानेसे वर्षाका परिमाण बढ़ जाता है। परन्तु फ्रांसमें यह बात प्रयोगों द्वारा सिद्ध की जा चुकी है। प्रति पक्षियोंका कहना है कि जंगल बढ़ानेसे वर्षाका परिमाण बढ़ जाता होता, तो एक साल कम और दूसरे साल ज्यादा वर्षा क्यों होती? इस प्रश्नको हल करनेके लिए वह इधर उधर भटकते फिरते हैं। कुछ लोग सूर्यके पृष्ठ-भागके काले धब्बोंसे इसका सम्बंध जोड़ते हैं। उनकी रायमें जिस वर्ष सूर्य पर काले धब्बे कम और छोटे होते हैं उस साल गरमी ज़्यादा पड़ती है। अधिक उष्णता पड़नेसे वाष्पोत्पत्ति अधिक होती है और जलवाष्प अधिक होनेसे उस वर्ष पानी भी ज़्यादा बरसता है। परन्तु हम इन दलीलोंमें पड़ना नहीं चाहते। हमारा कहना तो इतना ही है कि पानी बरसानेमें जो अनेक कारण सहायता पहुँचाते हैं, वनस्पति भी उनमेंसे एक है। इतना ही नहीं इस काममें उसका एक बड़ा भाग रहता है। पानी बरसाने के लिए यह आवश्यक है कि हवाकी उष्णता कम की जाय और जलवाष्पकी वृद्धि की जाय। और वनस्पतिसे यह उद्देश अंशतः किस प्रकार साध्य होता है, यह बात गत परिच्छेदों में लिख आये हैं। सूर्यके धब्बोंकी बात भी सर्व सम्मत नहीं है। यह एक अनुभव सिद्ध बात है कि जिस साल पृथ्वीके एक देश या प्रदेशमें अकाल पड़ता है उसी साल दूसरी जगह अच्छा सुकाल होता है। वर्षा पर सूर्यके धब्बोंका प्रभाव पड़नेकी बात कहनेवालोंके मतके अनुसार होना तो यह चाहिये था कि सारी पृथ्वीपर उस साल कम या ज़्यादा पानी बरसना चाहिये था। परन्तु ऐसा नहीं होता है। यदि सूर्यके धब्बोंकी बात मान भी लें, तो भी जितनी ही ज्यादा भाप जल रूपमें बरसाई जा सकेगी, उतना ही अच्छा है। प्रकृति अपना कार्य करती रहेगी और उसके साथ ही वनस्पति भी अपना कर्तव्य पालन करती ही रहेगी।

—शंकरराव जोषी

## मुड़नेवाली किश्ती

बहुत दिनों तक परिश्रम करनेके बाद बवेरिया के जान क्लेपर (Johann Klapper) नामक एक आविष्कारकने एक नाव तैयार की है जो शिकार खेलने और नदीपर सैर करनेके लिए बहुत ही उपयोगी होगी। इस नावकी प्रधान विशेषता यह है कि यह मोड़ी जा सकती है और जहां कहीं भी आसानीसे ले जाई जा सकती है। इसकी लम्बाई ५ मीटर अर्थात् ४ गज १ फुट है और वजन १२ या १५ सेर है। इसमें एकसे तीन तक आदमी मय असबाबके बैठ सकते हैं। इसकी बनावट ऐसी अच्छी है कि न तो यह अधिक डगमगाती ही है और न इसके उलट जानेका ही डर सदा बना रहता है। हलकी होनेके सबबसे यह चलती बहुत तेज है। यह नाव कुछ लकड़ीके डंडों और न सड़नेवाली कानविस (canvas) जिसपर रबड़ लगा होता है, बनती है। वह एक पैडिल (Paddle) घुमानेसे चलती है। चलाना सीखनेके लिए किसी शिक्षाकी आवश्यकता नहीं है। यह नाव पालपर भी उड़ाई जा सकती है। पाल उड़ानेके लिए भी नावके साथ ही सामान होता है।

आवश्यकता होनेसे मोड़माड़का यह नाव एक बंडलकी शकल में बनाई जा सकता है जिसे एक आदमी बड़ी आसानीसे अपने हाथमें ले जा सकता है।

—रामप्रसाद पाण्डेय।

# स्वास्थ्य विषयक कुछ स्मरणीय बातें

[ ले० डा० गिरवर सहाय ]

अनशन व्रत

कभी कभी भोजनमें नागा कर देना भी मनुष्यके स्वास्थ्यके लिए उतना ही आवश्यक है जितना कि दिन भर काम करनेके बाद रात्रिको विश्राम करना है। कुछ लोग इतने पेटू होते हैं कि वह निराहार व्रत या भोजनके क्रममें किसी प्रकारकी कमीको दैवी विपदा या ईश्वरीय कोपसे कम नहीं समझते। उनका जीवन भोजनके लिए होता है, न कि भोजन जीवनके लिए। ऐसे जिह्वाके दासों और पेटके बंदोंका स्वास्थ्य कभी ठीक नहीं रहता। उन्हें कोई न कोई शिकायत सदा बनी रहती है। वह प्रकृतिके नियमोंकी अवहेलना करते हैं और अपने मेदेको ज़रा भी आरामका अवसर नहीं देते। इसीसे आये दिन बदहज़मी, बवासीर, अफारा, दस्त, पेचिश इत्यादि रोग बिन बुलाये मेहमानकी तरह नित्य ही उनके सिरपर डटे रहते हैं।

अनशन ( उपवास ) का अन्तर नियमित होना चाहिये। हमारे देशमें मासमें दो बार व्रत रखनेकी चाल है। हिन्दुओंके घरोंमें पुरानी चालके आदमी अधिकतर बूढ़ी स्त्रियां दोनों पखवारेकी एकादशियों को फलाहार करतीं या निराहार व्रत रखती हैं। पश्चिमी शिक्षाके प्रभावसे आजकल नवयुवकों और युवतियोंमें उसका रिवाज़ कम होता जाता है। परन्तु अब फिर एक नया प्रवाह आरंभ हो रहा है, पश्चिमी देशोंमें भी अनशनके महत्वका प्रचार हो रहा है, वहां भी लोग एक दिनसे एक सप्ताह तकके छोटे व्रतोंसे लेकर तीन तीन मासके लम्बे निराहार व्रत रखते हैं। वह लोग रोग चिकित्सा और स्वास्थ्य लाभके लिए अनशनको अत्यन्त उपयोगी समझने लगे हैं। इस विषय पर कई महत्व पूर्ण ग्रन्थ भी लिखे जा चुके हैं। हमारे उन देशभाइयोंको, जो पश्चिमी सभ्यताके अनन्य भक्त और प्रत्येक बातमें पाश्चात्य विद्वानोंकी दुहाई देने लगते हैं इससे शिक्षा लेनी चाहिये। यह लोग जब तक पाश्चात्य विद्वानोंकी सम्मतिकी मुहर न लग जाय अपने देशी रीति रस्मके अनुसार किसी बातका अनुसरण करना जङ्गलीपन समझते हैं। इस विषय पर अमेरिकाके प्रसिद्ध उपवास-चिकित्सा-प्रचारक डाक्टर डीवीने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम है 'No Breakfast Plan', उसमें उन्होंने डाक्टर यू के 'जीव विज्ञान' (Physiology by Dr. Yeo) के आधार पर लिखा है कि भोजन न मिलनेके कारण मनुष्यकी जो मृत्यु होती है उसमें मृत्युसे पूर्व निम्नलिखित क्रमसे शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंका क्षय होता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| वसा | ९७% | मांस | ३०% |
| प्लीहा | ६३% | रक्त | १७% |
| यकृत | ५७% | नाड़ी केन्द्र | × |

उपर्युक्त अंकोंसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उपवासके कारण मनुष्य शीघ्र मर नहीं सकता, अर्थात् जब तक उसके शरीरकी ९७ प्रतिशत वसा ( चर्बी ), ६३ प्रतिशत प्लीहा (तिल्ली), ५७ प्रतिशत यकृत (कलेजा), ३० प्रतिशत मांस और १७ प्रतिशत रक्तका क्षय न हो जाय तब तक उसके नाड़ी केंद्र अक्षत और चैतन्य बने रहते हैं, और नाड़ी केंद्रोंके निर्विघ्न कार्य-संचालनके ऊपर ही मनुष्यके जीवनका दारोमदार है।

डाक्टर डीवीने अपनी पुस्तकमें ऐसे मनुष्योंके, जिन्होंने लंबे लंबे उपवास किये, अनेक उदाहरण दिये हैं। उन्होंने आयर्लैंडके प्रसिद्ध सत्याग्रही स्वर्गवासी मेक्स्विनी महाशयका भी हवाला दिया है, जिन्होंने केक्सटनके बंदीगृहमें ७४ दिनके लंबे उपवासके पश्चात् प्राण-त्याग किये। इनके साथी कई अन्य निराहारी सत्याग्रही तेरह सप्ताह ( ९१ दिन ) तक उसी अवस्थामें जीवित रहे।

हमारे देशमें भी नवरात्रिके अवसर पर कोई कोई नर नारी नौ दिन तकका निराहार व्रत

रखते हैं। हमारे मतमें स्वस्थ मनुष्यको भी महीनेमें दो बार निराहार व्रत रखना चाहिये। इसके लिए प्रत्येक अमावस्या और पूर्णिमाका दिन अधिक उपयुक्त है। व्रतके दिन बिलकुल निराहार रहना चाहिये। हमारे यहां निराहार व्रतका विधान शारीरिक उन्नतिके विचार ही से नहीं प्रत्युत आध्यात्मिक उन्नतिके लिए भी किया जाता है। आधुनिक पाश्चात्य लेखकोंने ऐसे व्रतोंमें विशेष कर लंबे अनशनमें, जल पीते रहनेका विधान लिखा है। अधिकांश लेखकोंने जलमें खट्टे फलोंका रस मिला कर उसके सेवनकी सलाह दी है। हमारी समझमें यदि निराहार व्रतके दिन मनुष्यको कुछ कष्ट प्रतीत हो जैसे सिरका दर्द, अधिक प्यास, मुह सूखना या मुँहसे दुर्गंध आना इत्यादि तो ऐसी दशामें जलका सेवन करना उचित है, अन्यथा नहीं।

कुछ लोग दिन भरके निराहार व्रतकी जगह केवल एक समयका व्रत रखते हैं, और सायंकालको भोजन कर लेते है। कुछ लोग निराहार न रहकर फलाहार करते हैं। इन सब व्रतोंका मुख्य उद्देश पाचन प्रणालीको किंचित विश्राम देना है। हमारे देशमें ऐसे व्रतोंके साथ धार्मिक विचार सम्मिलित है, और उस दिन विशेष रूपसे यज्ञ, हवन, पूजा पाठ, स्वाध्याय, और दान इत्यादि किया जाता है। बहुधा लोग व्रतके असली सिद्धांतको न समझ कर उस दिन विशेश रूपसे फलाहारका प्रबंध करते हैं। व्रतके बहाने फलोंसे ही तरह तरहके गरिष्ट पक्वान्न, हलुए, और अन्य स्वादिष्ट पदार्थ तय्यार करते हैं, और इस तरह उस दिन अन्य दिनोंसे भी अधिक भोजन करते हैं। यह बड़ी भूल और व्रतके सिद्धांतका स्पष्ट दुरुपयोग है। पाचनको कुछ आराम मिलनेकी जगह उस दिन उसे अधिक कार्य करना पड़ता है, और इस तरह व्रतके दिन किसी प्रकारकी स्फूर्ति या उत्साह प्रतीत होनेके बदले आलस्य और निद्राका ही आधिपत्य रहता है। अतः जब फलाहार करना हो तो थोड़ेसे मीठे रसीले स्निग्ध फलोंका स्वाभाविक रूपमें ही सेवन करना श्रेष्ठ है। इसी अभिप्रायसे दूधका सेवन भी किया जा सकता है। पर फलोंसे बने हुए किसी तरहके पक्वान्न, मिठाई या मलाई रबड़ी प्रभृति गुरुपाकी पदार्थोंका सेवन ऐसे अवसरपर सर्वथा वर्जित है।

मांसाहारियोंके अतिरिक्त पाश्चात्य देशोंमें कहीं कहीं निरामिष भोजी भी चिकनाईकी जगह चरबीका इस्तेमाल करते हैं। चरबी पशुके मृत शरीरसे निकाला हुआ गंदा पदार्थ है, अतः उसका सेवन अस्वाभाविक और अस्वास्थ्य कर है। उसकी जगह मक्खन मलाई, मींगीदार मेवे और तिल, बिनौले और जैतूनके तेलका सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है।

जैसा कि पहले कहा गया है मांस मनुष्यका स्वाभाविक आहार नहीं है। पाश्चात्य देशोंमें आज कल सुखाये हुए मांस, मछली और झींगे इत्यादिका रिवाज़ बहुत बढ़ गया है। यह पदार्थ अत्यन्त अस्वाभाविक और स्वास्थ्यके लिए हानिकारक होते हैं। पाश्चात्य सभ्य-समाजमें प्रचलित भोजनके इन पदार्थोंकी गंध हमारे देशके साधारण जनोंके लिए नितांत घृणोत्पादक और कल्पनातीत है, तो भी पाश्चात्य सभ्यताके भक्त और हमारे कुछ 'नये बिगड़े' भाई अपने देशके स्वाभाविक मधुर भोजनोंको छोड़कर क्लब और होटलोंमें जाकर इन घृणित और अस्वाभाविक पदार्थोंका सेवन करनेमें ही अपने गौरव और सभ्यताकी पराकाष्ठा समझते हैं; इसे सिवाय इस देशके दुर्भाग्यके और क्या कहा जा सकता है।

शकर और मिठाई पेटमें बाई पैदा करती है। यदि इनके बिना काम न चले तो इनका सेवन यथा शक्ति कम ही करना चाहिये। विशेष कर बच्चोंको शकर और मिठाईकी चाटसे जहां तक हो सके बाचाना चाहिये। इसके बदले मीठे मेवे और फलोंसे काम लेना चाहिये। शरीरके पोषणके लिए

फलोंमें काफ़ी मीठा होता है। शाक और फलोंको एक साथ खाना अच्छा नहीं।

बारीक छने हुए आटेकी रोटी पाचनको खराब कर देती है। आजकल शहरोंमें रीति रिवाज़, स्वाद और आटेके उज्वल रँगके कारण तथा कलकी चक्कियोंके आधिक्यसे ऐसे आटेका प्रचार बहुत बढ़ गया है। ऐसे आटेमेंसे गेहूँका असली पौष्टिक तत्व चोकरके रूपमें निकल जाता है। चोकर मिले हुए आटेके इस्तेमालसे पाचन ठीक रहता है और दस्त साफ होता है।

मनुष्यके शरीरके लिए दिन रातमें सवा सेरसे लेकर डेढ़ सेर तक पानीकी जरूरत पड़ती है। जाडेकी अपेक्षा गरमीमें कुछ अधिक पानी पिया जाता है। पानीकी इस मिक़दार को भोजनके समयके दो घंटे पश्चात जै बार में जो चाहे पी लेना चाहिये। मनुष्यके शरीरमें लगभग दो तिहाई भाग जलका है और शरीरमें जो जलकी कमी पेशाब पसीना और सांस लेनेसे हो जाती है उसे पूरा करनेके लिए जल पीनेकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु बहुत अधिक जल का सेवन, या भोजनके साथ जलका सेवन, अच्छा नहीं। कुछ लोग पाचन शक्ति बढ़ानेके लिए भोजनके साथ शराब पीते हैं। उससे भोजन जहरीला हो जाता है और सुधरनेके बदले अंतमें पाचन-शक्ति सर्वदाके लिए शिथिल हो जाती है। पेय पदार्थके रूपमें रसीले फलोंका सेवन शरीरके लिए अत्यंत लाभदायक है। कुछ लोग जल बिल्कुल नहीं पीते, वह रसीले फलोंसे या दूधसे, जलकी आवश्यकता पूरी कर लेते हैं। फलोंमें लोहा, चूना, स्फुर इत्यादि अपने स्वाभाविक रूपमें पाये जाते हैं। रक्त और नाड़ी मंडलमें इन पदार्थोंकी जो आवश्यकता पड़ती रहती है वह फलोंके सेवनसे दूर हो जाती हैं। अस्वाभाविक अथवा अत्यधिक प्यास बुझानेके लिये (जैसे गरमीकी ऋतुमें) रसीले फलोंका सेवन सर्वोत्तम है।

सब फलाहारी इस बातकी साक्षी दे सकते हैं कि फलाहारसे मनुष्यकी मानसिक शक्ति बढ़ती है। फलोंमें स्फुर या दूसरी उपयोगी धातुओंकी उपस्थिति ही उसका एक मात्र कारण नहीं है। फलोंके सेवनसे पाचन प्रणालीका काम हलका हो जाता है, और इस प्रकार मस्तिष्कके लिए अधिक रक्त और शक्ति बच जाती है। फलाहार से रक्तका असाधारण ताप भी कम हो जाता है। मंड-मय भोजनसे यह ताप बढ़ता है और अधिक होने पर ज्वरका रूप धारण कर लेता है।

मनुष्यको दिन भरमें कै बार खाना चहिये, यह तो व्यक्ति गत स्वभाव और स्थिति-विशेषकी बात है। भोजनके समय उसे क्या और कितना खाना चाहिये, यह अधिक महत्वकी बात है। जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं, अति भोजनकी अपेक्षा मनुष्यको भूखसे थोड़ा कम ही खाना अच्छा है। यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिये कि हम जिह्वाके स्वादके लिए नहीं; प्रत्युत शरीरकी रक्षा और स्वास्थ्यके लिए भोजन करते हैं। कुछ आदमी दिन रातमें केवल एक बार ही भोजन करते हैं। और फिर भी उनका स्वास्थ्य दिनमें कई बार खाने वालोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा रहता है। कोई कोई मनुष्य केवल फलाहार ही पर गुज़र करते हैं। उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है और अन्य मनुष्योंकी भांति यह अपना दिनका काम या मेहनत मज़दूरी भी भले प्रकार करते रहते हैं। मेलट महाशय अपनी पुस्तकमें एक फ़ौजके डाक्टरका हवाला देते हैं, जिसने सिर्फ मुनक्के और बादाम खाकर लड़ाईके अवसर पर लंबे लंबे कूच किये और अपने बहुतसे मोटे ताजे साथियोंको, जो साधारण भोजन करते थे, चलनेमें हरा दिया।

अधिक भोजनकी अपेक्षा कम और हलके भोजनके गुण प्रत्यक्ष होते हुए भी आज कलकी सभ्य-समाजके मनुष्य इतने स्वाद-लोलुप और जिह्वाके दास हो गये हैं कि भोजनकी तो कौन कहे वह अपने जलपानमें भी किसी प्रकारकी कमीको

राष्ट्रीय विपदासे कम नहीं समझते। भोजनको खूब चबा चबाकर खाना चाहिये। खाते समय अपना पूरा ध्यान भोजन ही की ओर रखना चाहिये। शायद उसी सिद्धांत पर हमारे यहांकी स्मृतियोंमें भोजन करते समय मौन रहनेका विधान है। भोजनके समय बात चीत करनेसे ध्यान बंट जाता है और भोजन भली भांति चबाया नहीं जाता। भोजन करते समय मनुष्यको पूर्णरूपसे निश्चित और प्रफुल्ल चित्त होना चाहिये। कुछ लोग इतने कार्य-ग्रस्त या पठन-पाठनके प्रेमी होते हैं कि खाते समय भी पुस्तक या समाचार-पत्र सामने रखे रहते हैं और उसका पढ़ना बंद नहीं करते। ऐसा करना स्वास्थ्यके लिए हानिकारक है।

भोजन करनेमें बहुत जलदी नहीं करना चाहिये। प्रत्येक ग्रासको खूब चबा चबा कर धीरे धीरे पूरी निश्चिंततासे भोजन करना स्वास्थ्यके लिए अत्यन्त लाभदायक है। भोजन करनेका स्थान पवित्र, स्वच्छ और रमणीक होना चाहिये। इष्ट मित्रोंके संग भोजन करनेसे मनुष्यका चित्त प्रसन्न रहता है और आयु बढ़ती है। संग भोजन करनेसे एक थाली या एक पात्रमें भोजन करनेका अभिप्राय नहीं है। ऐसा करना स्वास्थ्यके नियमोंके विरुद्ध है। मनुस्मृतिमें इस प्रकार एक पात्रमें पिता पुत्र तकको भोजन करनेका निषेध है। भोजन परोसनेका कार्य भी किसी प्रेमी और सुहृद व्यक्तिके हाथमें होना चाहिये। स्त्रियां इसके लिए अधिक उपयुक्त हैं। हमारे घरोंमें प्रायः माता या स्त्री ही भोजन परोसती हैं और भोजन करते समय सामने उपस्थित रहती हैं, यह बड़ी अच्छी प्रथा है। यह काम नौकरों के ऊपर छोड़ देना ठीक नहीं है।

बहुत गरम भोजन करनेसे हाज़मा कमज़ोर हो जाता है। गीतामें इस प्रकारके भोजनको राजसिक कहा है—

> कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः।
> आहारा राजसस्येष्टा दुःख शोकामय प्रदाः॥ १७।९॥

अर्थ—कटु (चर परे) खट्टे, खारी, बहुत गरम, तीखे (कडुए), रूखे, दाहकारक और दुःख शोक और रोग उपजाने वाले आहार रजोवृत्ति वाले मनुष्यको प्रिय होते हैं।

इसी तरह देरसे रखा हुआ या बासी भोजन करनेसे आलस्य और निद्रा आती है। ऐसे भोजनको गीतामें तामसिक कहा है—

> यात यामं गत रसं पूति पर्युषितं च यत्।
> उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम्॥

अर्थ—कुछ कालका रखा हुआ अर्थात् ठंडा, नीरस, दुर्गन्धमय, बासी, जूठा तथा अपवित्र भोजन तामसी पुरुषोंको रुचता है।

बरफका इस्तेमाल भी पाचनके लिए हानिकर है। अधिकांश डाक्टरोंका मत है कि बरफके अधिक सेवनसे हाज़मा कमज़ोर हो जाता है।

हमारे देशमें विशेषतः हिन्दू समाजमें, भोजनसे पूर्व और उसके बाद हाथ पैर और मुंह धोनेकी प्रथा है। ऐसा करनेसे रक्त प्रवाह का वेग हाथ पैर और मुंहकी ओर को कम होकर अधिकतर पेटकी ओर हो जाता है जहां उस समय जठराग्नि उद्दीपन और पाचक रसके प्रवाहको उत्तेजित करनेके लिए अधिक रक्तकी आवश्यकता होती है। भोजन करनेके पश्चात् कुल्ला कर मुंहको भली भांति साफ करना चाहिये। बहुधा दांतोंमें भोजनके टुकड़े अटक जाते हैं उन्हें खरकेसे निकाल कर मुंह साफ कर लेना चाहिये। जब मुंहकी सफ़ाई भले प्रकार नहीं होती, तो भोजनके टुकड़े जो दांतोंकी दरारोंमें अटके रह जाते हैं सड़ कर मुंहमें छाले, दुर्गंध, और दांतोंमें कीड़ा लग जानेका कारण होते हैं। भोजन करनेके बाद हाथ मुंह धोकर आंखों, मुँह, और पेटपर ठंडे हाथ फेरनेसे आंखोंकी ज्योति, मुखकी कांति और पेटकी पाचन शक्ति बढ़ती है।

हमारे देशमें भोजन के बाद पान खानेकी चाल है। पानके सेवनसे मुँह साफ़ हो जाता है और लाला भी खूब पैदा होती है, जिससे पाचनमें सहा-

यता मिलती है। पानमें साधारणतया जो मसाले डाले जाते हैं उनके गुण इस प्रकार हैः—

पान—रुचिकारक, लालोत्पादक, तृषानिवारक, कृमिनाशक और मुखशोधक।

चूना—कृमिनाशक, संकोचक एवं दांतोंके लिए पुष्टिकारक।

कत्था—संकोचक एवं दांतोंके लिए पुष्टिकारक।

सुपारी—लालोत्पादक, संकोचक, एवं दांतोंके लिए पुष्टिकारक।

इलायची—रुचिकारक, लालोत्पादक, कृमिनाशक और मुखशोधक।

ऊपरके वर्णनसे प्रकट हो जायगा कि पानके सब मसाले भोजन करनेके पश्चात् मुँहकी सफ़ाई और पाचनकी सहायताके विचारसे रखे गये हैं। किसी 'तलब' को बुझानेके लिए नहीं। अतः जो लोग इस सिद्धांतका विचार न करके पानके सेवनमें अधिकता करते हैं; या दिन भर पान चबाया करते हैं वह स्वयं अपने मुंह और दांतोंके शत्रु बनकर मुंहको गंदा और दांतोंको कमज़ोर कर लेते हैं। चूनाके अधिक इस्तेमालसे दांतोंके ऊपर मैल या जनेवा ( Tartar ) की एक कड़ी पर्त जम जाती है जिससे दांतोंका स्वाभाविक सौंदर्य जाता रहता है। इस लिए यदि अपने दांतोंकी चमक, उज्ज्वलता, और मज़बूती क़ायम रखना चाहते हो तो भोजनके पश्चात् एक पानके अतिरिक्त अन्य समय पानका सेवन छोड़ दो। जैसा कि हम पहले भी लिख आये हैं तंबाकू एक मादक द्रव्य है और पानके साथ अथवा पृथक, या सुंघनी के रूपमें उसका सेवन सर्वथा हानिकारक और त्याज्य है। सुंघनी से दांत मांजना भी उचित नहीं है।

### रहनेका स्थान

रहनेका स्थान खूब हवादार होना चाहिये। जाड़ेके दिनोंमें बहुत लोग कमरेके दरवाज़े और खिड़कियां बन्द करके सोते हैं, यह बुरी आदत है। जहां हम रहते या सोते हैं वहांकी हवा हमारी श्वासोच्छ्वाससे गन्दी होती रहती है, इस लिए बाहर से ताज़ी हवाका आना जाना रोकना किसी तरह उचित नहीं। सोते समय भी कमसे कम एक खिड़की या दरवाज़ा अवश्य खुला रखना चाहिये। सोते समय दीपक बुझा दो या बहुत धीमा कर दो। दीपक जलानेसे कमरेकी हवा दूषित होती है।

### कपड़ा

कपड़ा शरीरकी रक्षाके लिए पहना जाता है, इसलिए केवल इतने कपड़े धारण करने चाहियें कि जिनके बिना शरीर रक्षामें बाधा पड़नेका डर हो, या जिनके बिना शरीरको कष्ट प्रतीत हो। केवल फ़ैशनके लिए आवश्यकतासे अधिक कपड़ोंका सेवन करना नितांत अस्वाभाविक और अनावश्यक है। शरीरसे मिले हुए कपड़े हलके और ढीली (जालीदार) बुनावटके होने चाहियें। शरीरका मैल और पसीना लगते रहनेसे यह कपड़े बहुत जल्द गंदे हो जाते हैं; इसलिए उन्हें जल्दी जल्दी बदल कर धुलाते रहना चाहिये।

### स्नान

स्नान नित्य करना चाहिये। इस विषयमें लापरवाही करना ठीक नहीं। नहाते समय शरीरको खूब मलना चाहिये। नहानेके लिए स्वाभाविक ठंडा जल अधिक लाभदायक है। इसी विचारसे बहते जल ( नदी इत्यादि ) में नहाना अच्छा है। प्रातःकाल स्नान कर लेनेसे दिनभर शरीरमें फुरती बनी रहती है। गर्मियोंमें प्रायः दिनमें दो बार स्नान करनेकी आवश्यकता होती है। पर इससे अधिक बार बार स्नान करना हानि कर है।

### व्यायाम

हवामें टहलना अच्छा व्यायाम है। सवारी मौजूद होनेपर भी वायु सेवनके लिए पैदल चलनेका अभ्यास करना चाहिये। सांस हमेशा नथनोंसे लेनी चाहिये। गहरी सांस लेनेकी आदत डालो इससे फेफड़ोंका व्यायाम और शरीरके खूनके सफ़ाई भले प्रकार होती है। आजकल संसारमें,

और विशेषकर हमारे देशमें, क्षयी रोग ( तपेदिक ) का आधिपत्य बढ़ता जाता है, इस भयंकर रोगके प्रसारका एक मात्र कारण यह है कि मनुष्यों-को, विशेष कर उन लोगोंको जो शहरकी तंग गलियों और बंद मकानोंमें रहते हैं, ताज़ी हवा और धूप यथेष्ट नहीं मिलती और न उनके फेफड़ों का आवश्यक व्यायाम हो पाता है।

किसी न किसी प्रकारका शारीरिक व्यायाम मनुष्यके स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है, परन्तु इसके साथ ही खान पान और रहन सहन संबन्धी अन्य स्वाभाविक नियमोंका भी पालन करना चाहिये। अन्यथा कोरे व्यायामसे अधिक लाभकी आशा नहीं हो सकती। व्यायाम आव-श्यकतानुसार उचित मात्रामें करना चाहिये। मर्यादासे अधिक बढ़नेमें हानि होती है। व्याया-मका रूप जहां तक हो सके स्वाभाविक ही होना चाहिये; जैसे दौड़ना, तैरना, उछलना कूदना, वृक्षपर चढ़ना, घोड़ेकी सवारी; खेत गोड़ना, बागवानी, नाव खेना इत्यादि। बच्चोंके लिए रस्सीपर चढ़ना ( Rope climbing ) भी अच्छा व्यायाम है। डम्बल, मुग्दर, इत्यादि व्यायामके अस्वाभाविक रूप हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन कृत्रिम साधनोंसे शरीरके जिस भागका व्यायाम किया जाता है वहांकी मांस पेशियोंकी वृद्धि और संगठन देखनेमें बहुत सुन्दर होजाता है, पर इनका प्रभाव सारे शरीरपर एक सा नहीं पड़ता। व्यायामका अभिप्राय किसी अंग विशेष को सुन्दर या पुष्ट बनाना नहीं है बल्कि सारे शरीर को पुष्ट और फुरतीला बनाना है। कृत्रिम साधनों से जो व्यायाम किया जाता है वह कुछ दिनके बाद बहुधा वेगार सा प्रतीत होने लगता है और नित्य एक प्रकारका व्यायाम करते करते फिर उससे यथेष्ट मनोरंजन नहीं होता। व्यायाम-से शरीरका स्थूल ( बादी ) भाग छटकर उसकी जगह धीरे धीरे सुसंगठित ठोस मांस पेशियां बनने लगती हैं। इसीसे कभी कभी जब व्यायाम आरम्भ किया जाता है तो शरीर कुछ दुबला होता हुआ जान पड़ता है। ठीक ठीक व्यायामसे जठराग्नि प्रबल होकर खूब भूक लगती है।

### प्रसन्नता

सदा प्रसन्न चित्त रहना भी स्वास्थ्यका एक लक्षण है। मनुष्यका जीवन जितना सादा और स्वाभाविक होगा उसीके अनुसार उसका चित्त अधिक प्रसन्न रहेगा। क्रोध, शोक या वैमनस्य भावके कारण जब मनुष्यके चित्तकी स्वाभाविक प्रफुल्लता नष्ट हो जाती है तो उसका प्रभाव उसके स्वास्थ्यपर भी प्रत्यक्ष देख पड़ता है। इसी तरह ठट्ठा मारकर हँसनेसे मनुष्यका पाचन तीव्र होकर उसका स्वास्थ्य बढ़ता है।

### सोना

परमात्मा ने दिन काम करनेके लिए और रात्रि विश्रामके लिये बनाई है। जिस प्रकार अति निद्रा या अति जागरण हानि कर है इसी तरह रात्रिको जागना और दिनको सोना भी अस्वाभा-विक और अस्वास्थ्य कर है। दिन रातमें युवा मनुष्यके लिए अधिकसे अधिक आठ घंटा और कमसे कम छः घंटा या इन दोनोंका औसत सात् घंटा विश्राम काल होना चाहिये। बच्चों, बूढ़ों, और रोगियोंको अधिक विश्रामकी आवश्यकता होती है।

### ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य अथवा वीर्य-निग्रह भी मनुष्यके स्वा-स्थ्यके लिए अत्यंत आवश्यक है। पूर्ण युवा अव-स्थाको प्राप्त होकर संतानोत्पत्तिके लिए ही स्त्री पुरुषोंको अधिकसे अधिक मासमें एक बार समा-गम करना चाहिये और गर्भ स्थापन हो जानेपर फिर पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लेना चाहिये। दो गर्भोंके बीचका अंतर कमसे कम तीन वर्ष होना चाहिये। केवल काम चेष्टाकी तृप्तिके लिए या स्वप्नकालमें भी रज वीर्यकी हानि नितांत अस्वाभाविक और स्वास्थ्य नाशक है। इस विषयमें प्रत्येक मनुष्यको, विशेषतः युवकों और युवतियोंको अत्यंत सावधान रहना चाहिये।

---

# कीमियागरीसे मालामाल

कल दोपहरको मैं विज्ञानकी संख्या २ (भाग १७) में प्रो० माधोलाल जीका लेख पढ़ते पढ़ते कुछ लोभ और मोहमें ग्रस्त हो गया। एक ओर तो कीमिया गरीका नुसखा और दूसरी ओर विज्ञान देवीकी अनुकम्पा! दोनोंमेंसे कौनसा लूं, यही विचार कर रहा था कि कुछ तन्द्रा सी आ गई। बिजलीका पंखा खूब ज़ोरसे चल रहा था; तापमानका रिकार्ड १०५° था। इसी दशामें योगमग्न सा हो गया। मेरी दिव्य चक्षु खुल गई। देखता क्या हूं कि मैं भी उन्हीं (लेखोक्त) आतुरालय आदि देखता हुआ उसी सिद्ध प्रयोग मन्दिरमें पहुँच गया, जहां प्रोफ़ेसर महोदय पर विज्ञान देवी आविर्भूत हुई थीं।

मैंने उनको विनीत भावसे नमस्कार कर चाहा कि उनसे उपर्युक्त दोनों बातोंकी प्रार्थना करूं, पर साहस न हुआ। देवी मेरे भावको देख कर मेरी मंशाको ताड़ गईं और रुष्ट कटाक्षके साथ बोलीं--"अरे धूर्त्त बामन! बिना साधक बने ही तू चन्द्रमा पकड़नेको हाथ बढ़ाता है? तुझे मालूम नहीं कि हमारी कृपा दृष्टि केवल अध्यापक ...पर पड़ी है और तू चोरीसे उस विशुद्ध प्रेमका भागी होना चाहता है?" लज्जाके मारे मैं विवश सा हो गया और चाहता था कि धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊँ। पर तुरन्त ख़याल आया कि वृथा क्यों मरूं, प्रोफ़ेसर साहबके बताये हुये प्रेम-मन्त्रका प्रयोग कर देखूं; जेबमें पिस्तौल तो है ही, क्यों न देवीके चरणोंमें बलिदान होकर अमर बन जाऊं? अन्तर्यामिनी देवीने इस भावको भी भांप लिया और हँस कर बोली कि "तेरे इस पिस्तौल बाज़ीके अभिनयसे मैं खुश हुयी; यह लो कीमियाका नुसखा"।

प्रेमकी बातें मैं सब भूल गया। आग्रहके साथ नुसखेको पढ़ने लगा, देखा कि उसमें दोतीन साधारण सी चीजें थीं, यथाः—नीला थोता, फिटकरी और सरसोंका तेल व्यवहारकी रीति भी बहुत सहज थी। जो पाठक चाहें 'सम्पादक' जीसे पूँछ लें। पर इस समय मेरी कथा ज़रा ध्यान देकर सुनें। मैं सीधा वहां से निकलकर भागा। जाते समय देवी जीको सादर प्रणामादि करना भी भूल गया। छूटते ही बाजारसे २ मन अव्वल दर्जे का इस्पात ५) सेरकी दरसे खरीदा; ऊपरसे पाँच एक रुपये और खर्च हुये; लगभग एक मन ९९ दर्जे का सोना तैयार होगया। फिर क्या था; एक होटल में जाकर डिनर मंगवाया, बिल आया। उठाकर दो मोहर फेंक दीं। टेक्सीमें बैठ बाज़ारमें सोनेका भाव पूँछने निकला। मेरा सोना कसौटीपर ९७-९९ तक उतरा, जैसा कि मैंने पहले ही परख लिया था, बल्कि विशिष्ट भारके बारेमें तो बाज़ार वालोंने कुछ परखा ही नहीं। अब रही भावकी बात; सो किसी ने कहा १।) तो किसीने १।=) सेर. सारांश यह कि १॥) से कोई भी आगे न बढ़ा। मैंने मनमें सोचा कि मुझे विदेशी जान, बाज़ारवाले धोका दे रहे हैं। इसलिए एक बार और देवीके पास चलना चाहिये। सिद्ध-प्रयोग-मन्दिर पर पहुँचते ही देवी के कमरेका 'बटन' (बिजलीका) दबाया। सुवर्ण निर्मित और रत्न खचित एक मूर्त्तिने आकर स्वागत किया और देवीके समीप मुझे ले जाकर उपस्थित किया। मैंने इस बार उनका चरण छूकर सारा हाल कह सुनाया। स्मितास्य होकर देवीने कहा कि "भाव तो ठीक ही है। आजकल सोनेका दर १।) से १॥) सेरका है।" सुनते ही मैं तो स्तम्भित रह गया। गुस्सेके मारे सिरसे पैर तक जल उठा। मैंने कहा-"क्या अन्धेर है कि पीतल सोना सब बराबर; यह भी टके सेरवाली बात है"। देवी हंस कर बोलीं-"तुम तो उस दिन नुसखा लेते ही भाग निकले। ज़रा ठहरते तो मैं इसकी ऊंच नीच समझाती। चीज़की कीमत उसकी

प्राप्याप्राप्यता पर निर्भर है। तुम तो ५) सेर इस्पात से ही घबराते हो। तुम्हें मालूम नहीं कि आजसे २५०० वर्ष पहले इसी देशमें महाराज पुरूने राज कोशसे कुल दो सेर अयस्कान्त लौह (फ़ौलाद) जो ५) तोला भी नहीं मिल सकता था, विश्व विजेता सिकन्दर-महानको भारतका एक वैज्ञानिक चमत्कार स्वरूप उपहार दिया था।"

मारे दुःख और क्रोधके देवीकी एक भी बात मेरे कर्ण कुहर में प्रवेश न कर सकी। मेरे सारे अंगमें पसीना छूटने लगा; कण्ठ सूख गया। दम घुटने लगा। घबराहटसे मैं जाग पड़ा। देखा कि 'करैन्ट फ़ेल' हो गया है; एक और ही देवी मूर्त्ति छोटो सी हाथ पंखी हिला रही है !

—ए. 'अ-भक्त'।

## ब्लाटिंग पेपर

आजकलके पढ़े लिखोंमें कौन ऐसा है जो ब्लाटिंग पेपर (Blotting) या स्याही सोख से परिचित नहीं है। लिखनेकी सामग्रीमें उसका होना अत्यन्त आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। आजकल जो चीज इतनी आवश्यक हो गई है उसके संबंधमें यह सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे कि एक शताब्दीके पहले लोग इसका नाम भी नहीं जानते थे। कुछ लिखनेके बाद स्याही सुखानेके लिए हमारे पूर्व पुरुष सूखी बालू काममें लाते थे। वही प्रथा आज कल भी कोठियोंमें प्रचलित है।

आजकल ब्लाटिंग पेपर तैयार करनेवाले कारखानोंमें सबसे बड़ा कारखाना हैगवर्नमें है। लगभग सौ वर्षके पूर्व जान स्लेड नामक एक व्यक्तिने हाथसे कागज बनानेका कारखाना खोला था। वही मिल एक शताब्दीमें उन्नति करती हुई इस समय संसारकी सबसे बड़ी ब्लाटिंग पेपर बनानेवाली मिल हो गई है।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जिन चीजोंके योगसे कोई नूतन चीज प्रस्तुत की जाती है उन चीज़ोंमेंसे यदि कोई चीज कम कर दें अथवा सम्मिलित वस्तुओंके परिमाणमें न्यूनाधिक्य हो जाय तो अभीष्ट वस्तुकी ठीक ठीक तैयारी होना असम्भव हो जाता है। आरम्भमें उक्त मिलवाले-को इसके कारण बहुत हानि उठानी पड़ी थी। बनने पर पता लगता था कि बंडलके बंडल ब्लाटिंग पेपर बेकार हो गये; जिस कामके लिए वह तैयार किये गये थे उनसे वह काम निकलता ही नहीं। १८५६ तक ब्लाटिंग पेपर हाथसे ही बनाया जाता था। इस वर्ष मि० फोर्डने मिल द्वारा ब्लाटिंग बनानेकी तरकीब ईजाद की। जब मिलसे बनने लगा तो सोखता सस्ता हो गया और उसकी अन्य खराबियां भी ठीक कर दी गई।

पहले जो ब्लाटिंग पेपर बनता था उसका रंग ज़रा पीला होता था; कारण कि जिस चीजसे वह तैयार किया जाता था उसका रंग भी वैसा ही था और रंग हटानेमें अधिक व्यय और परिश्रम की आवश्यकता होती थी। अब तो सफेद लाल आदि सभी रंगोंके ब्लाटिंग पेपर मिलते हैं। हालमें लोगोंने काले रंगका ब्लाटिंग पेपर तैयार किया है। यह रंग खराब न होनेके कारण देखनेमें भद्दा न लगेगा।

—रामप्रसाद पाण्डेय काशी

# शनिग्रह

पुराणों और अन्यान्य शास्त्रोंमें शनिको सूर्य्यका पुत्र बतलाया है। शनिकी जन्म-कथा पुराणोंमें जिस प्रकार वर्णित है, प्रथम हम उसे यहाँ बतला देना चाहते हैं। प्रजापति विश्वकर्माने संज्ञा नामकी कन्या सूर्य्य-देवको प्रदान की थी। किन्तु वह कन्या सूर्य्यदेवके असह्य तेजको न सहन कर सकी, इसलिए वह अपने पिताके घर चली गई। जाते समय वह छाया नामकी कन्याको अपने स्वामीके घर छोड़ गई। इसी छायाके गर्भसे शनिका जन्म हुआ। कुछ लोग कहते हैं कि प्रजापति विश्वकर्माने सूर्य्यदेवके तेजका ह्रास करनेकी आज्ञा दी थी। सूर्य्यदेवके तेजका ह्रास करनेके पहले एक चक्रका निर्माण किया गया।

इस प्रकार शनिकी उत्पत्ति हुई थी। रविसुत, छाया पुत्र, मन्द नील वास, भास्करि, वक्र प्रभृति शनिके नाम कहे जाते हैं। सभीके मतानुसार शनि क्रूर ग्रह है। वह जिस जीवके ऊपर क्रूर दृष्टि करता है उसका सर्वनाश हो जाता है। कहा जाता है कि शनि अपनी स्त्रीके शापके प्रभावसे इतना क्रूर दृष्टि वाला हुआ। इसी कारण शनिसे देवता भी भय खाते हैं। भगवान नारायण शनिके भयसे कई दिन तक गण्डकी नदीमें छिपे रहे। शनिवार भी अच्छा दिन नहीं।

पूर्वकालमें किस कारणसे शनि इतना निन्द्नीय हुआ, इसके विषयमें ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। किन्तु कारण जो भी हो, उसके सम्बन्धसे सर्वनाशकी धारणा पुरातन कालसे चली आती है। संसारमें यह देखा जाता है कि शनिवारको कोई भी शुभ काम नहीं आरम्भ किया जाता। यहूदी जातिके लोग भी शनिवारके दिन कोई शुभ काम नहीं करते। चासर (Chaucr) नामक अँग्रेज़ीके प्रसिद्ध कविने अपने काव्यमें शनिको देवता करके माना है और इस प्रकार लिखा है:—

"हमारा पथ सत्य ही बहुत दूर तक है। मुझे उस मार्गके घूमनेमें बहुत दिन लगते हैं। किन्तु तो भी मैं जैसी क्षमता रखता हूं, क्या कोई दूसरा वैसी रख सकता है? मैं घनघोर वर्षा करके समुद्रको नचाता हूँ, मेरे ही प्रभावसे लोगोंको फांसी हो जाती है। मेरे ही प्रभावसे राजविद्रोह होता है और सारी प्रजा जाग उठती है। कितना रोना, कितने गुप्त रहस्य, कितनी प्रतिहिंसा, कितने दंड सभी मेरे ही प्रभावसे होते हैं। बड़ी बड़ी अट्टालिकायें राख हो जाती हैं, बड़े बड़े क़िले विपक्षियोंके अधिकारमें हो जाते हैं, यह सब मेरे ही प्रभाव से। सर्दी, वात, महामारी, मेरे ही दृष्टिसे प्रकट होती हैं।"

जिस प्रकारसे हम शनिग्रहके प्रभावके संबंधमें इस अंग्रेज़ कविको आलोचना करते देखते हैं, उसी प्रकार रूसके एक बड़े भारी दार्शनिक कविको भी मानव अवस्थाके ऊपर अद्भुत प्रभावके सम्बन्धमें उल्लेख करते देखते हैं। वह कहते हैं "जहां शनिग्रह है, वहीं दुर्दशा है।" उनका मत है कि शनिका नाम लेना ही बड़ा पाप है।

पृथ्वीकी सभी जातियां शनिग्रहको इस प्रकार अनिष्टकारी कहती हैं। इसका कारण क्या है? इस गम्भीर रहस्यके विचारनेमें हम असमर्थ हैं।

दूरबीन यन्त्रके द्वारा देखनेसे शनिग्रहकी दशा इस सौर जगतके और ग्रहोंसे विपरीत दिखलाई देती है। इसके नव चन्द्र हैं और इस ग्रहके निकट कितने ही चक्र हैं। जितनी ही इन चक्रोंके विषयमें विवेचना की जाय उतना ही इनका रहस्य बढ़ता जाता है। इस सौर जगतमें और जितने ग्रह हैं उनमें से बुध और शुक्रको छोड़कर सभी ग्रहोंमें एक या उससे अधिक चक्र हैं। किन्तु शनिग्रहके समान चक्र और किसी भी ग्रहमें दिखाई नहीं देते।

अच्छे दूरबीन (Astronomical Telescope) के द्वारा शनिग्रहको देखनेसे यह चक्र दिखाई पड़ते हैं, और इन चक्रोंके बीचका कुछ अंश सोनेके समान पीत वर्ण और उज्ज्वल दिखाई पड़ता है। इन चक्रोंका कितना ही अंश कुछ स्वच्छ और छाया-युक्त होता है।

पृथ्वीसे सूर्य्य जितनी दूरी पर है उससे साढ़े ९ गुना दूर अर्थात् ९०९०००००० नब्बे करोड़ नब्बे लाख मीलकी दूरी पर शनिका स्थान है। पृथ्वी-से वृहस्पति ग्रहकी जितनी दूरी है उससे प्रायः दूनेपर शनिग्रह स्थिति है। हम पृथ्वीसे जिस प्रकार सूर्य्यको देखते हैं, उसी प्रकार शनिके ऊपरसे देखते तो छोटे तारेके समान दिखलाई पड़ता। सूर्यके उत्तापकी भी वहां कम होनेकी सम्भावना है।

दृष्टि विज्ञान या अलोक तत्वके नियमानुसार समझ सकते हैं कि दूरकी चीज़ छोटी दिखाई देती है और इसी कारण उसका उत्ताप भी कम होगा। अतएव अंक शास्त्र और प्राकृतिक विज्ञान इस विषयमें हम लोगोंके सहायक हैं। हम लोग सब कथा अंक शास्त्रसे समझ सकते हैं। शनिग्रह सूर्य्यसे इतनी दूर स्थित है कि यदि कोई शनिग्रहके ऊपरी भागसे सूर्य्यको देखे तो वह सूर्य्य-को निश्चय नक्षत्रके समान देखेगा।

दूरवीनके द्वारा देखनेसे यह साफ़ प्रकट होता है कि शनिग्रह सूर्यकी ज्योतिसे प्रकाशमय होता है। सभी देशोंके ज्योतिषियोंने बतलाया है कि शनिग्रहके ऊपरी भागमें चक्रोंकी छाया रहती है, और कभी कभी यह भी देखा जाता है कि ग्रह-पिण्डकी छाया चक्रके ऊपर भी पड़ती है।

यहांपर सहजमें ही यह प्रश्न पाठकोंके हृदयमें उदय होगा कि अङ्क शास्त्र और दृष्टि विज्ञानके मतानुसार तो शनिग्रहसे सूर्य्यकी आकृति नक्षत्राकार दिखलाई पड़ती है; किन्तु दूरवीनके द्वारा चक्रकी छाया ग्रह पिण्डके ऊपर अथवा ग्रह पिण्डकी छाया चक्रके ऊपर पड़ती हुई स्पष्ट दिखलाई देती है। यदि सूर्य्यको नक्षत्राकार मानते हैं तो नक्षत्राकार सूर्य्यकी ज्योति शनिग्रहके ऊपर छाया नहीं कर सकती। हमारी इस पृथ्वीपर किसी भी नक्षत्रके आलोकका छाया पात होते नहीं दिखलाई पड़ता। प्रकृति तत्ववित् पण्डितोंने इस विषयपर बहुत विचार किया है कि नक्षत्राकार सूर्य्य किस प्रकार शनिपिन्ड और चक्रोंको आलोकित करता है। यह प्रश्न वर्तमान समयमें भी हल नहीं हो सका है।

शनिग्रहका क्रान्तिपथ इलिप्सके आकारका है। इसी पथके एक ओर सूर्य्य स्थित है। अपने पथपर भ्रमण करते समय शनिग्रह कभी सूर्य्य-के निकट आता है और कभी दूर चला जाता है। जब निकट आता है तब सूर्य्यसे ८५८,०००,००० मील दूर, और दूर जाता है तो सूर्य्यसे ९६०,०००,००० मील दूर रहता है। २९ वर्ष ५ मास १७ दिन में शनिग्रह एक बार सूर्य्यकी परिक्रमा करता है।

पृथ्वीसे हम शनिग्रहको प्रथम श्रेणीके ग्रहकी तरह उज्ज्वल देखते हैं। दूरबीनसे देखनेसे कभी कभी दिखलाई पड़ता है कि चक्रोंकी छाया ग्रहके ऊपर पड़ी है। बिना प्रकाशके इस प्रकारकी छाया कैसे दिखलाई पड़ती। सूर्य ग्रहकी ज्योति शनि-ग्रहको प्रकाशमय करती है। पृथ्वीके समान शनि भी अपने मेरुके अवलम्बनसे घूमता है। इसीसे वहां भी दिन रात होती है। दिनरात वहां पांच घंटेका होता है।

इस ग्रहका उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव स्थान विशेष चपटा मालूम होता है। शनिके मध्य प्रदेश के व्यासकी ध्रुव स्थानके व्याससे तुलना करने से ९८३० मीलका अन्तर मालूम होता है; इससे यह प्रगट होता है कि शनिग्रहका केन्द्रचाप केवल $\frac{१}{३००}$ है। शनिग्रहकी ध्रुवीय परिधि २१४००० मील और विषुवत् रेखाकी परिधि २३६००० मील है।

शनिग्रहके मध्य-प्रदेशमें मेखलाके सदृश छाया युत कितने ही चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं। इन

स्थानोंको ठीक ठीक देखनेसे मालूम होता है कि शनि ठीक १० घंटा २६ मिनट १७ सेकन्डमें अपनी अक्षपर घूम जाता है।

इस ग्रह पिण्डकी आकृति विशाल होने पर भी मंगल, पृथ्वी, बुध और शुक्र ग्रहोंकी अपेक्षा इसकी आन्हिक गति बहुत तेज़ रहती है। हमारी इस पृथ्वी पर ३६५ दिनरात होने पर एक वर्ष समाप्त होता है। शनिग्रहके २४६३१ आवर्तनसे उसका एक वर्ष समाप्त होता है।

बृहस्पति ग्रहके मेरु और विषुवत् रेखाके परस्पर समकोण रहनेसे इस विशाल ग्रहकी शीत और गर्मीके समयके उत्तापका अधिक पार्थक्य नहीं है।

शनिग्रहमें ग्रीष्म ऋतु ७ वर्षसे अधिक होती है, इसी परिमाणसे सर्दी, और वसन्त ऋतु भी होती है। १५ वर्ष (कुछ कम) तक उसके दिनरात बराबर होते हैं, बादको छोटे बड़े होने लगते हैं।

इस ग्रहकी वार्षिक गतिके अनुसार किसी समय उसका उत्तरी केन्द्र और किसी समय उसका दक्षिणी केन्द्र सूर्य्यसे आलोकित होता है। इसीसे उसके चक्र भी पृथ्वीसे नाना प्रकारके दिखलाई पड़ते हैं। जिस समय सूर्य्य शनिग्रहकी विषुवत् रेखाके ऊपर रहता है, उसी समय प्रायः पृथ्वीसे उसके चक्र नहीं दिखलाई पड़ते—छोटे छोटे यन्त्र क्या बड़े यन्त्रोंसे भी ठीक ठीक नहीं दिखलाई पड़ते। ग्रहके दोनों ओर दो सूक्ष्म ज्योतिकी रेखाएँ मात्र दिखलाई पड़ती हैं। गैलिलियोने भी उस समय शनिग्रहके चक्रोंको देखा था। उन्होंने फिर कुछ वर्ष बाद देखा तो शनिके चक्र नहीं दिखलाई पड़े। तब वह बड़े विस्मयमें पड़े किन्तु परवर्ती ३० वर्षके बीचवाले ज्योतिषियोंने विशेष यत्नके साथ चक्रोंके विषयमें अपना मत स्थिर किया है।

मध्यम दर्जेके दूर्बीन द्वारा देखनेसे ग्रहमें तीन चक्र देख पड़ते हैं, ग्रहपिंडसे जो चक्र सबसे दूर देख पड़ता है उसका वर्ण कुछ मलिन जान पड़ता है। मध्यम चक्र सबसे उज्वल और ग्रहके निकटका चक्र सबसे मलिन और छायायुक्त देख पड़ता है। सर जान हारसेलने इस कृष्णवर्ण चक्रके तथा शनि ग्रहके कई चन्द्रोंके विषयमें लिखनेका स्थिर किया था। उनका मत था कि सम्भवतः यह चक्र किसी स्वच्छ वस्तु द्वारा बने हों। इसके कुछ दिन बाद अमेरिकाके प्रसिद्ध ज्योतिषी बंडने अपने बड़े दुर्बीनसे शनिग्रहके निकट कृष्णवर्णका चक्र देखा। उनके बाद एक और ज्योतिषीने ६½ इंच व्यासवाले दूरबीनके द्वारा इस आधे स्वच्छ चक्रको भी देखा। इस चक्रके मध्यसे शनिग्रहकी पार्श्व रेखा (outline) स्पष्ट दिखलाई देती है।

शनिग्रहका यह काले वर्णका चक्र क्रमशः बढ़ रहा है। जिस समय उक्त दोनों ज्योतिषियोंने इसे देखा था उस समय यह किसी अच्छे दूरबीनके न होनेसे ठीक ठीक नहीं दिखलाई पड़ता था।

बाहरी चक्रका व्यास १७३,५०२ मील है। उसका भीतरी व्यास १६३,५०० मील है। इसलिए चक्रका विस्तार १०,००० मील है। बीचके चक्रका बाहरी व्यास १५०,००० मील है और उसके अन्तरका व्यास ११३,२४० मील, इसलिए इसका विस्तार १८,३०० मील है। इन दोनों चक्रोंके बीचमें जो कृष्णवर्णकी रेखा देखी जाती है, वह दोनों चक्रोंकी व्यवधान मात्र है। इसका विस्तार १,७५० मील है। छायायुक्त चक्र बीचवाले चक्रसे मिला है, इससे शनिग्रह पिण्डका व्यवधान १०,१५० मील है, इसलिए शेष चक्रका विस्तार ६,००० मील है।

गैलिलियोने भी पहले सोचा था कि शनिग्रहके दोनों बग़लमें दो तारे हैं, किन्तु वह तारे नहीं थे। जिस समय ग्रहका दिन रात बराबर होता है उस समय वह चक्र पृथ्वीसे रेखाकी तरह दिखाई देते हैं।

क्रमशः शनि घूमते समय सूर्य्यसे जितना ही दूर रहता है उतने ही यह चक्र स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। १८५५ ई० में यह चक्र अधिक विस्तृत दिखलायी देता था।

इस समयके बादसे चक्र फिरने लगता है। फिर सात वर्षके बाद (१८६२ ई०) शनिग्रह सूर्य्यके

विषुवत् पर रहता है। चक्र फिर अदृश्य हो जाता है। सन् १८६९ में चक्र दूसरी और विस्तृत दिखलाई पड़ता था। यह १८५५ ई० के विपरीत अवस्था थी।

हिसाबसे २९ वर्ष ९ मास १७ दिनमें शनिग्रह सूर्य्यके चारों ओर एक बार घूमता है, इसलिए सन् १८१८ ई० में इस ग्रहके चक्र १८४८ ई० के समान दिखलाई पड़े थे।

सूर्य्यकी परिक्रमा करते समय दो बार सूर्य्य के पहिले इन चक्रोंका सूत्रपात घटता है, इस कारणसे १४ वर्ष ८ मास २७ दिन और १२ घंटोंमें यह चक्र हमारी पृथ्वीसे रेखाके समान दिखलाई देता है।

सन् १९०७ ई० में सितम्बर मासकी २६ तारीख़ को यह चक्र अदृश्य (अर्थात् रेखा मात्र) हुआ था। इस तारीख़के बादसे चक्र कुछ बढ़ने लगा। १९१५ ई० की ८ फ़रवरीको यह चक्र सबसे अधिक बड़ा दिखलाई दिया था। १९१५ ई० के दिसम्बर मासमें शनिग्रह सूर्यके ठीक विपरीत स्थितिमें था।

चक्र समय समय पर रेखाके समान दिखलाई पड़ते हैं। लैपलेस नामक फ्रान्सीसी वैज्ञानिकने पहले इसका अनुसन्धान किया था। उन्होंने अंकशास्त्रके द्वारा यह जाना था कि इस प्रकारका पहला चक्र किसी प्रकार नहीं रह सकता। अकारण उन्होंने यह सिद्धान्त स्थिर किया कि बहुतसे पृथक् चक्र समकेन्द्रस्थ होकर (Concentric) पृथक् पृथक् भावसे शनिग्रहको घेर सकते हैं। लैपलेसने यह भी कहा है कि इन चक्रोंमें दस घंटोंसे कुछ अधिकमें कुछ आवर्तन होना आवश्यक है; नहीं तो मूल ग्रहके प्रचण्ड आकर्षणसे यह चूर चूर हो जायँगे। लैपलेसने अंकशास्त्रके द्वारा इन दो विषयोंपर अधिक ध्यान दिया है। परवर्ती ज्योतिषियोंने यह स्थिर किया कि इन दोनों अवस्था ही से शनिग्रहके चक्र विद्यमान हैं। अर्थात् यह चक्र १० घं० ३२ मिनटमें एक बार घूमते हैं। अच्छे दूरबीनसे पता चलता है कि एक ही केन्द्रके अवलम्बनसे कितने ग्रह रहते हैं।

किन्तु इसे छोड़कर और भी कई बात हैं। लैपलेसने जो स्थिर किया है उसमें भी सन्देह है। इस प्रकार कितने चक्र मध्यस्थ प्रकाण्ड ग्रहके आकर्षणसे विपरीत दशामें हो जाते हैं। चक्रोंका मूल ग्रहके साथ भयंकर संघर्षण होनेकी सम्भावना है। इस प्रकारके संघर्षसे चक्रोंके नष्ट होनेकी सम्भावना है। और शनिके अनिष्टकी भी सम्भावना है।

लैपलेसने इन विषयों पर बड़ा ग़ौर किया है। बादको प्रायः आधी शताब्दी पर्यन्त उनकी किसी बात पर किसीने कटाक्ष नहीं किया। लैपलेसकी बातोंका खंडन करनेका किसीको भी साहस नहीं हुआ। इसीसे यह सिद्धान्त बहुत दिन तक प्रचलित रहा।

सन् १८५० ई० के नवम्बर मासमें बंड नामक ज्योतिषीने अमेरिकाके हारवर्डके मान मंदिरसे देखा कि अभ्यन्तरस्थ बैंगनी रंगके चक्रके बीचमें थोड़ा आलोक दिखाई देता था। बादको रात्रिको वह आलोक स्पष्ट दिखाई देने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि वह दूसरा एक छाया युक्त अर्द्धस्वच्छ चक्र है। इसी वर्ष २५ नवम्बरको इंगलैण्डके डावेज नामक ज्योतिषीने इस छाया मय चक्रको देखा। इसके बाद और ज्योतिषियोंने भी ऐसा ही देखा। छाया मय चक्र पहले नहीं था, वह एक नयी चीज़ है; इस प्रकारकी धारणा अनेक वैज्ञानिकोंकी है।

इसके बाद पियर्स और मैक्सवेल नामक दो पंडितोंने स्थिर किया है कि चक्र किसी प्रकारके भी कठिन और तरल पदार्थसे नहीं बने; इन चक्रोंका आकार क्रमशः बढ़ रहा है।

सबसे पहले हाइगेन्स (Huyghens) ज्योतिषीने माप विद्यासे स्थिर किया था कि चक्रोंका विस्तार २३,६६७ मील है। आजकल यह २९,३०० मील माना जाता है। इन सब परिमाणोंके स्वीकार
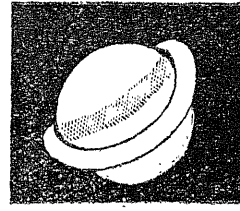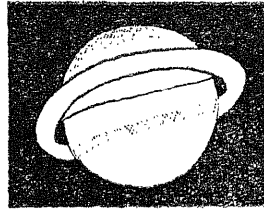
चित्र ४२—सन् १८५५ ई० में शनिका दृश्य

चित्र ४३—कुछ वर्ष बाद सन् १८६९ ई० में शनिका विपरीत दृश्य
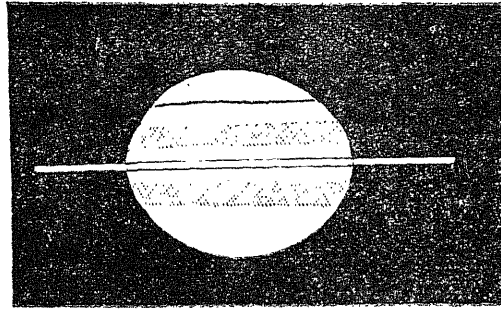
चित्र ४४—सन् १९०७ ई० में शनिका दृश्य
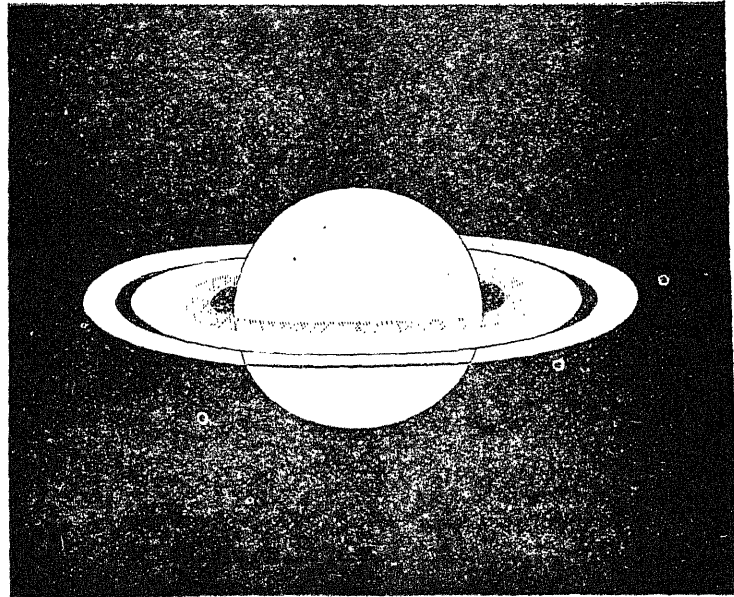
चित्र ४५—८ वर्ष बाद सन् १८१५ ई० में शनिका दृश्य

करनेसे अच्छी तरह समझमें आता है कि प्रतिवर्ष शनिके चक्रोंका आयतन २९ मील बढ़ता है।

शनिके यह चक्र किस पदार्थके बने हैं ?

पहले कह चुके हैं कि लैपलेसने कहा था कि यह चक्र ठोस पदार्थके बने हैं और कई पतले पतले चक्र एकत्र हैं। अंक शास्त्रके मतसे इस प्रकारके कितने ही चक्र कुछ काल तक इस प्रकार स्थित रह सकते हैं; किन्तु मूल ग्रहकी गति और आकर्षणका विचार करते हुए अवस्था बड़ी जटिल और विपद्जनक प्रतीत होती है; क्योंकि थोड़े ही दिनमें मूल ग्रह और चक्रोंके संघर्षणसे एक प्रकारके प्रलयकी सम्भावना होती है।

बंड नामक ज्योतिषीने अनुमान किया है कि छायामय चक्र या और चक्र किसी तरल पदार्थके बने हैं। बंडने यह समझा कि हम जो इस पृथ्वीसे चक्राकार देखते हैं वहाँ एक समुद्रने चक्रको बड़े आकारमें घेर रखा है। यही नहीं यह जलराशि क्रमशः ग्रह पिंडके निकट आती जाती है। और वैज्ञानिकोंने भी इस मतका समर्थन किया है।

चक्र कठिन पदार्थके नहीं है, न तरलके ही हैं। तब किसके बने हैं ? यह प्रश्न वैज्ञानिकोंके हृदयमें बहुत दिनोंसे उदित है।

सन् १८८६ ई० में केम्ब्रिज विश्व विद्यालयमें इस विषयकी मीमांसा करनेके लिए एक पुरस्कार नियत किया गया। क्लार्क मैक्सवेल नामक वैज्ञानिकका लिखा निबन्ध सर्वश्रेष्ठ माना गया था और उन्हींको वह पुरस्कार मिला। उन्होंने यह बतलाया था कि यह जो छोटे छोटे धब्बे दीख पड़ते हैं उन पर जब सूर्य्यकी किरणें पड़ती हैं तो यह और भी स्पष्ट दीखने लगते हैं। जहां यह नहीं हैं वहां कृष्ण वर्ण दिखाई देता है। १८वीं शताब्दीमें ज्योतिषियोंने शनि ग्रहके ८ चन्द्र देखे थे। इन आठों चंद्रोंका प्रचलित नाम, शनिसे दूरी और उनका परिभ्रमण काल नीचे दिया जाता है।

| चन्द्रका नाम | दूरी (माइल) | परिभ्रमण काल दिन | घंटा | मि० | से० |
|---|---|---|---|---|---|
| मिमास | ११७,००० | ० | २२ | ३७ | ५ |
| एन्सिलाडस | १५०,००० | १ | ८ | ५३ | ७ |
| टेथिस | १८६,००० | १ | २१ | १८ | २६ |
| डायोन | २३८,००० | २ | १७ | ४१ | १० |
| ह्रिया | ३३२,००० | ४ | १२ | २५ | १२ |
| टिटान | ७७१,००० | १५ | २२ | ४१ | २७ |
| हाई पारियन | ९३४००० | २१ | ६ | ३८ | २४ |
| जापेटस | २,२२५,००० | ७९ | ७ | ५६ | २३ |

सन् १९०४ ई० में प्रोफेसर ई. सी. पिकारिंने नवें चन्द्रका आविष्कार किया। इस चन्द्रका नाम "फिबि" रखा गया है। वह प्रायः डेढ़ वर्षमें एक बार शनिग्रहके चारों ओर घूमता है और यह शनिग्रह से ८०००,००० मील दूर स्थित है।

शनिग्रहका वायुमण्डल खूब घना है, इसमें सन्देह नहीं है। उसके चक्रके निकट जो मेखलाकार चिन्ह दिखलाई पड़ता है, निश्चय वह मेघ माला है। इन सभी मेघ मालाओंके ऊपर जब सूर्य्यकी किरणें पड़ती हैं तब वह बहुत उज्ज्वल मालूम होता है।

हमने शनिग्रहका जो विवरण दिया पृथ्वीके सभी प्रसिद्ध वैज्ञानिक उसका समर्थन करते हैं। शनिग्रहकी जो वर्तमान अवस्था है वह बड़ी विचित्र है। इस ग्रहका जल समस्त मेघाकार रूपमें विद्यमान है और यह ग्रह अब भी खूब तरुण है। सभी वैज्ञानिक पंडित कहते हैं कि अब भी ग्रह पिंड लोहित वर्ण है। अतएव इस विशाल ग्रहमें वृक्ष, लता, तृण या और किसी प्रकारकी जीवोत्पत्ति अब भी नहीं होती। जब यह पृथ्वी शीतल और चन्द्रकी भांति जल वायुसे शून्य होकर जीवहीन हो जायगी उसी समय शनिग्रहमें जीव-सृष्टि आरम्भ होगी।*

—ज्योतिप्रसाद मिश्र, 'निर्मल'

* श्री आदीश्वर प्रदकके एक लेखका सारांश

# त्रुटियां

संसारमें मनुष्य मात्र अनेक प्रकारकी त्रुटियां करते रहते हैं, उनमेंसे किसीका परिणाम अत्यंत भयंकर होता है, तो किसीका अति सौम्य। यद्यपि "मनुष्यसे गलती हो जाना स्वाभाविक है" ऐसा कहकर बहुत सी ग़लतियोंकी तरफ़ ध्यान नहीं देते, तथापि ग़लती होना अच्छी बात नहीं, जहां तक बने वहां तक ग़लती न होने देना चाहिये।

त्रुटियां कितने प्रकारकी होती हैं। इसकी निश्चित संख्या बतलाना तो बड़ा कठिन है तथापि जैसे सूर्य प्रकाशके अनंत रंगोंमेंसे लाल, पीला इत्यादि सातरंग सामान्यतः हम लोग जान सकते हैं, उसी प्रकार त्रुटियोंमेंसे भी पंचेंद्रिय द्वारा होने वाली कुछ सामान्य त्रुटियां अधिक खोज न करने पर भी हम बतला सकेंगे।

(अ) एक दिन हमारे एक मित्रकी जेबमें डाकमें छोड़नेके लिए एक लिफ़ाफ़ा था, उसी जेबमें दस दस रुपयेके चार नोटभी इकट्ठे लिपटे हुए थे। लेटर बक्सके पास पहुँचते ही उन्होंने लिपटे हुए चारों नोट तो लेटर बक्समें डाल दिये, और लिफ़ाफ़ा वापस जेबमें रखने लगे। जेबमें रखनेके समय उनका ध्यान अच्छी तरह लिफ़ाफ़ेकी तरफ गया! इसके अनन्तर पोस्ट मास्टर साहबकी खुशामद करनी पड़ी, तब नोट वापस मिल सके।

(आ) थोड़े दिनकी बात है कि मद्रास लाइन पर, लाल सिगनल होते हुए भी उसे सफ़ेद समझ कर रेलगाड़ीका ड्राइवर गाड़ीको स्टेशनमें लेगया और दो ट्रेनें टकरा गईं।

(इ) हाथोंमें बहुत नाजुक कांचपात्र लेकर अस्पतालका एक आदमी चल रहा था, उसकी उंगलियोंके किंचित् ढीला पड़नेसे कांचपात्र ज़मीन पर पड़कर फूट गया।

(ई) हमारे घरके कमरेकी ताली छोटी थी, और दफ़्तरके कमरेकी चाबी उससे चौगुनी बड़ी थी। ऐसा होते हुए भी हम एक रोज़ थोड़ी देर तक बड़ी चाबीसे अपने कमरेका ताला बंद करनेका प्रयत्न करते रहे; और दफ़्तर पहुँचनेके बाद वहाँपर घरके तालेकी चाबी लगानेका प्रयत्न करने लगे।

ऊपर दी हुई चार ग़लतियोंके सिवाय और बहुत क़िस्मकी ग़लतियां हम एक साथ कर सकते हैं। जैसे रास्तेमें चलते चलते ठोकर खाना, लिखते समय कोई शब्द ग़लत लिखना, बोलते बोलते किसी शब्दका अशुद्ध उच्चारण करना या शब्दका उच्चारण लुसकर जाना, कहनेका हेतु कुछ होना और वाक्योंका मतलब बिलकुल निराला होना, किसी बातको भूल जाना, रास्तेमें किसी अपरिचित आदमीको परिचित नामसे पुकारना, और उससे बोलनेका प्रयत्न करना, इत्यादि बातें त्रुटियोंमें शामिल हैं।

अब प्रश्न यह है कि त्रुटियां क्यों होती हैं? विज्ञान हमें बतलाता है कि कोई भी कार्य कारण बिना होना असम्भव है। मनुष्य मात्र जो काम जान बूझ कर करता है, अथवा जो हाथ, पांव इत्यादि इन्द्रियों-द्वारा मनुष्यसे न जानते हुए भी हो जाते हैं, वह मनुष्यके मस्तिष्कमें भरे हुए अणुओंकी शक्तिके परिणाम हैं। अनजान अवस्थामें होनेवाली त्रुटियोंका सूक्ष्म विचार किया जाय तो गलती क्यों हुई, और मनकी स्थिति जिसकी वजहसे वह बात मुँहसे निकली क्या थी; इसका पता ठीक ठीक लग सकता है। इस तरहसे विचार करके बहुत सी मानसिक व्याधियोंका नाश करनेका शास्त्र आजकल बहुत प्रगति कर रहा है। जैसे आयुर्वेद, यूनानी, वैद्यक, होमियोपैथिक, एलोपैथिक आदि शास्त्र हैं, वैसे ही त्रुटिके सम्बन्धमें ज्ञान कराने वाला शास्त्र सायकोपैथी (Psychopathy) कहलाता है। हम यह तो जानते ही हैं कि किसी

किसी वृक्ष, मनुष्य अथवा अन्य वस्तु विशेषको देखकर किसी किसी आदमीको उनसे डर मालूम होता है, साथ ही दूसरे आदमीको उनसे कुछ भी डर नहीं मालूम होता। ऐसे समय पर उस आदमी-को इस शास्त्रके अनुसार प्रश्न करते रहनेसे डर या घृणाका पूर्ण कारण मालूम हो सकता है; और कारणका नाश कर देनेसे डरका भी नाश हो सकता है।

१—कल्पना कीजिये कि तुलसी रामकी और हमारी न कोई मैत्री है और न शत्रुता ही। परन्तु जब तुलसी राम हमारे सामने आता है तब हमारे मनमें एक दम भय पैदा होता है; और हम तुलसी रामको टालनेका प्रयत्न करते हैं। बारीक खोज करनेसे यह पता चला कि बचपनमें तुलसी राम सरीखे एक आदमीने हमको बहुत डांटा था और दो चार थप्पड़ भी दिये थे। उस समयका डर और वह चेहरा दिलमें जमा हुआ था; और उसका प्रभाव मालूम नहीं होता था। परन्तु वैसे चेहरेवाले मनुष्यके बहुत वर्षोंके बाद नज़र आनेपर पुराना भय जागृत हो गया! यह सब चित्र हमारी समझमें अच्छी तरह आ जानेसे तुलसी रामसे जो व्यर्थ डर मालूम होता था, वह नष्ट हो गया। मनकी गलत भावनाका यह छोटा सा उदाहरण है।

२—एक समय छोटे भाईने बड़े भाईसे एक महफिलमें चलनेका बहुत आग्रह किया; बड़े भाईको उस महफिलमें जानेकी बिलकुल इच्छा न थी, परन्तु भाईके कहनेपर उसने स्वीकार किया। जानेका समय होनेपर कपड़े पहिननेके लिए वह अपने कपड़ेकी संदूक खोल कर कपड़े निकाल रहा था, कि इतनेमें उसको याद आयी कि मेज़पर कुछ कीमती चीज़ें पड़ी हैं, जिन्हें सम्हाल कर रखना ज़रूरी है। उन चीज़ोंको हिफ़ाजतसे रख कर वापिस संदूकके पास आया तो संदूकका ताला बंद देखा, तालेकी चाबी इधर उधर ढूँढ़नेमें बहुत काल नष्ट हो गया। ताला तोड़नेकी कोशिश करने लगा तो उसमें भी सफलता नहीं हुई। ऐसा होते होते बहुत देर हो गयी और दोनों भाइयोंका महफिलमें जाना रह गया। दूसरे दिन लोहारसे ताला खुलवाया, तो कपड़ोंमें तालेकी चाबी पड़ी हुई मिली।

बाहर जानेकी इच्छा नहीं थी, परन्तु भाईके कहनेपर उसने स्वीकार किया था, और मनकी आन्तरिक विशेष इच्छाके पूर्ण होनेके लिए, अनजान अवस्थामें उससे जलदी जलदीमें चाबी अंदर रह गयी; और तालेकी स्प्रिंग् उसके हाथसे दब गयी। इस बातका पता उसको बिलकुल नहीं रहा। ग़लती क्यों हो गयी, मनकी छिपी हुई शक्ति अपना मतलब किस प्रकारसे सिद्ध कर लेती है इसका बोध बारीक विचार करनेसे हो सकता है।

३-पंडित बैजनाथ जीने अपना अनुभव एक दिन इस प्रकार कहा—"एक दिन मेरे मित्रने एक पुस्तक मांगी और कहा कि कृपया आप कल इधर आते समय साथ पुस्तक लेते आइये। मैंने तुरंत ही उनकी बात मान ली, परंतु अंतःकरणमें कुछ नाखुशीसी मालूम हो रही थी। इस नाखुशी-का कारण समझनेमें ज़रा देर लगी। बात ऐसी थी कि इस मित्रने मुझसे कुछ क़र्ज़ लिया था; और बहुत वर्ष बीतने पर भी क़र्ज़ा वापस करनेका वह नाम भी नहीं लेता था, मैंने इस बातका ख्याल छोड़ दिया था; परंतु उसकी याद दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे आयी, उस समय मैंने अपने दिलमें कहा; कि "देखो मेरी अन्तरात्मा मुझे पुस्तक न ले जाने देगी, परंतु थोड़े दिनके लिए एक पुस्तक अपने मित्रको न देना अत्यंत अनुपकारिता बतलानेवाली बात होगी, इसलिए सावधान रहो और पुस्तकको न भूलो," मैं घर पर आया और पहिले पुस्तक अलमारी से निकाल कर अपने मेज़पर रख दी, जिससे उसपर मेरी निगाह रहे। इसके अनन्तर बहुत सी चिट्ठियाँ लिखनी थीं, उन्हें लिखकर कुछ देर बाद कपड़े पहनकर मैं बाहर निकला। थोड़ी दूर जानेपर

एकदम याद आयी कि लिखी हुई चिट्ठियां तो मेज़ पर ही रह गयीं; घर वापस आया और मेज़पर की चिट्ठियां उठालीं; परंतु आश्चर्य यह कि उन्हींके पास रखी हुई पुस्तक उठानेका ध्यान नहीं रहा। तांगेमें बैठकर चलने लगा, इधर उधरकी बातें दिलमें आ रही थीं; उस समय यह भी याद आयी कि अपने भाईके लिए मेघदूत काव्यकी पुस्तक खरीदनी है। मेघदूत परसे एकदम मित्रको पुस्तक देनेकी याद आयी और पुस्तक घरमें भूल गये, यह समझ कर बहुत खेद हुआ। देखिये, भूलनेका ज़ोर इतना ज़्यादा था कि एक बार मकानमें लौट आने पर भी केवल चिट्ठियां उठायीं गयीं, और पुस्तकका ख़्याल नहीं आया।"

४—बाबू दुर्गादास एक दिन कहते थे "हमारे बैठनेके कमरेमें बहुत सी चीनी मिट्टी, पीतल, शीशे, इत्यादिकी चीज़ें रखी थीं। कमरा छोटा है, परन्तु चीज़ें ख़रीदनेका शौक़ ज़बर्दस्त होनेसे कमरेमें बहुत अव्यवस्था मच गयी है; तो भी सब वस्तुएँ मैंने इस व्यवस्थासे रखी हैं कि मेरे हाथ या पांवसे कोई भी चीज़ फूट न सके। मैं हमेशा बहुत सावधानीसे रहता हूं और मेरे हाथसे कोई भी चीज़ फूटती नहीं। मेरी मेज़पर भी क़लमदान, गुलदस्ता, घूमने वाला केलेंडर, फ़ोटो आदि बहुत सी चीज़ें रहती हैं। एक दिन कुर्सीपर बैठा हुआ था कि मेज़परकी चीज़ोंपर नज़र गयी। उनमें दावातका ढक्कन मुझे ना पसंद सा मालूम हुआ। इसके अनन्तर कुछ दिन बाद, लिखते लिखते हाथ सहज ऊंचा हुआ और ऐसी विचित्र तरह घूमा कि दावातका ढक्कन दावातपरसे उछलकर ज़मीनपर गिर पड़ा, और फूटकर उसके टुकड़े टुकड़े हो गये; दूसरी किसी भी वस्तुका नाश नहीं हुआ; जो वस्तु मेरे दिल को कुछ दिन पेश्तर पसंद न थी उसीको फोड़नेका काम इस विचित्र प्रसंगमें अंतःकरणने हाथोंसे करवा लिया।"

जो जो बातें मनुष्यसे होती हैं, जिनका एकाएक अर्थ भी नहीं समझमें आता उनके होनेके लिए कितनी गहन शक्तियां अंतःकरणके भीतर काम करती हैं, यह समझनेके लिए यहांपर दो चार सच्चे प्रसंग उदाहरणार्थ दिये हैं। आशा है कि पाठकगणका ध्यान इस तरफ़ जायगा और वह अपनी अपनी अनेक त्रुटियोंका बारीक विचार करनेका प्रयत्न करते रहेंगे। ऐसा प्रयत्न करनेसे त्रुटियां कम होने लगेगीं; और अपने अंतःकरणका तथा दूसरोंके अंतःकरणका गुप्त भाव भी पहिचाननेकी शक्ति धीरे धीरे उत्पन्न होगी। कार्यकारणका संबंध जोड़ना विज्ञानका धर्म है; कार्यकारणका संबन्ध समझना प्रत्येक विचारशील पुरुषका कर्त्तव्य है।

—डी० बी० देवधर।

---

## प्राचीन सर्पजन विद्या

कालदष्ट के लक्षण

कश्यप उवाच—

अतः परं प्रवक्ष्यामि कालदष्टस्य लक्षणम्।
शृणु गौतम तत्वेन यादृशो भवते नरः ॥१॥
जिह्वा भंगोऽथ हृच्छूलं चक्षुर्भ्यां च न पश्यति।
दंशं च दग्ध संकाशं पक्व जाम्बू फलोपमम् ॥२॥
वैवर्ण्यं चैव दन्तानां श्यामो भवति वर्णतः।
सर्वेष्वंगेषु शैथिल्यं पुरीषस्य च भेदनम् ॥३॥
भग्न स्कंध कटिग्रीव ऊर्ध्व दृष्टिरधो मुखः।
दह्यते वेपते चैव स्वपते च मुहु र्मुहः ॥४॥
शस्त्रेण छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्त्तते।
दण्डेन ताड्यमानस्य दण्ड राजी न जायते ॥५॥

इसके आगे मैं कालदष्टके लक्षण कहूंगा। हे गौतम जब कालनाग किसीको काट जाता है तब क्या होता है सो ठीक ठीक प्रकारसे सुनो। उस समय पुरुषकी जीभ ऐंठने लगती है। और शिथिलता आ जानेसे बाहरको लटक पड़ती है।

वह जीभको सम्हाल नहीं सकता, इसीको 'जिह्वा भंग' कहते हैं। उसके हृदयमें पीड़ा होने लगती है। आंखोंसे कुछ भी नहीं दीखता; फलतः आंखोंके आगे अंधेरा आने लगता है। जिस स्थान पर सांप ने काटा होता है वह आगसे जले हुए पदार्थके समान झुलस जाता है। उसका रंगभी पकी जामुनके समान नीला नीला हो जाता है। उसके दांतोंका शुभ्र वर्ण नष्ट हो जाता है, उनका रंग भी कुछ नीला-हट लिये हो जाता है। सब अंग ढीले पड़ जाते हैं; अंग बेकाबू होकर गिरने लगते हैं। पाखाना आने लगता है। कंधा टूटने लगता है। कमर और गर्दन भी टूटती सी मालूम होती है। आंखें ऊपर चढ़ती हैं और मुख नीचेको लटक पड़ता है। देह भरमें जलन उत्पन्न होती है। कपकपी उठती है। नींद-का वेग बार बार प्रबल होने लगता है। नींदके झोके आने लगते हैं। विषकी गरमीसे सब खून सूख जानेके कारण देहको शस्त्र या चाकूसे काटने पर भी खून नहीं निकलता। दण्डेसे पीटने पर भी देह पर लाल या नीला निशान नहीं पड़ता।

( १ )

दंशे काकपदं सुनील मसकृज्जम्बू फलादं घन ।
मुच्छूनं रुधिराद्र सेकबहुलं कृच्छ्रान्निरोधो भवेत् ॥
हिक्काश्वास गलग्रहश्च सुमहान् पाण्डुस्त्वचा दृश्यते ।
शुष्कांगं प्रवदन्ति शास्त्र निपुणा स्तत्कालदष्टं विदुः ॥ ६॥

जब सांपके काटने पर कौवेके चरणका सा जामुनके समान नीला नीला घना घना सा निशान पड़ जाय; ऐसे ही निशान और भी बहुतसे स्थानों पर चकत्तोंके समान दीखने लगें; काटा हुआ स्थान सूज जाय; जख़म में होकर बहुत सा खून निकले और रोके भी न रुके; हिचकी आवें और सांस बहुत चले; गला पकड़सा जाय; सारी त्वचा पीली पड़ जाय; अंग सूख जायं शास्त्र निपुण विद्वान उस पुरुषको काल नागसे काटा समझते हैं।

( २ )

दंशे यस्याथ शोथः प्रचलित वलितं मण्डलं वासुनीलं ।
प्रस्वेदो गात्रभेदः स्रवति च रुधिरं सानुनासं च जल्पेत् ॥
दन्तोष्ठाभ्यां वियोगो भ्रमति च हृदयं सन्निरोधश्च तीव्रः ।
दिव्यानामेष दंशः स्थलविपुलमयो विद्धि तं कालदष्टम् ॥ ७॥

जिसके काटेके स्थानमें सूजन हो जाय; वहां नीले छल्ले या नीला गोल निशान दिखाई दें; शरीरमेंसे पसीना निकले; अंग टूटने लगे; रुधिर निकलने लगे; नाकसे आवाज निकले; दांतोंको छोड़कर ओंठ लटक पड़ें; हृदयमें चक्कर आने लगे; गला बड़ी तेज़ीसे घुटने लगे; काटा हुआ स्थान बहुत मोटा हो जाय तो समझ ले कि दिव्य नागों-मेंसे यह काल नागका काटा हुआ है।

( ३ )

दन्तैर्दन्तान्स्पृशति बहुशो दृष्टिरायास खिन्ना ।
स्थूलो देशः स्रवति रुधिरं केकरं चक्षुरेकम् ॥
प्रत्यादिष्टः श्वसिति सततं सानुनासं च भाषेत् ।
पापंब्रूते सकलगदितं कालदंष्ट्रं तमाहुः ॥ ८॥

दांतोंसे दांतोंको बार बार किट किटावे, आंखोंमें थकानके कारण खिन्नता जान पड़े, काटा हुआ स्थान फूल जाय, रुधिर बहे, एक आंख टेढ़ी हो जाय, ठहर ठहरकर श्वास ले, नाकसे बोले, गालियां बके, तो समझ ले कि उस पुरुषको काल नाग ने डंस लिया है।

( ४ )

वेपते वेदना तीव्रा रक्त नेत्रश्च जायते ॥
ग्रीवा भंगश्चला नाभिः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥ ९ ॥
दर्पणे सलिले वापि आत्मच्छायां न पश्यति ॥
मन्दरश्मिं तथा तीव्रं तेजोहीनं दिवाकरम् ॥ १०॥
वेपते वेदना त्रस्तो रक्त नेत्रश्च जायते ॥
सयाति निधनं जन्तुः कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥ ११॥

जिसको कालानाग काट लेता है उसका सारा शरीर कांपता है। उसके सारे शरीरमें तीव्र पीड़ा उठती है; आंख लाल हो जाती है। गर्दन लटक पड़ती है, नाभि चलने लगती है। इसी कारण टूट टूटकर दस्त होने लगते हैं। कालनागके काट लेनेपर पुरुषको अपना प्रतिबिम्ब दर्पण या पानीमें भी नहीं दीखता। विषकी तीव्रताके कारण उसकी आंखकी शक्ति इतनी नष्ट हो जाती है कि सूर्यको मन्द

प्रकाशमें, तीव्र प्रकाशमें या निस्तेज होनेपर भी नहीं देख सकता। वह शरीरमें कपकपी उठनेपर पीड़ाके कारण व्याकुल हो जाता है; उसकी आँख लाल हो जाती है वह मर जाता है। उसीको कालका डसा हुआ समझे।

तिथि विचार

( ५ )

अष्टम्यां च नवम्यां च कृष्ण पक्षे चतुर्दशीषु ।
नाग पञ्चमी दष्टानां जीवितस्य च संशयः ॥१२॥
आर्द्राश्लेषा मघा भरणी कृत्तिकासु विशेषतः ।
विशाखायां त्रिषु पूर्वासु मूलस्वाती शतात्मके ॥१२॥
सर्पदष्टा न जीवन्ति विषं पीतं च येस्तथा ।
शून्यागारे श्मशाने च शुष्क वृक्षे तथैव च ॥१४॥
न जीवन्ति नरादष्टा नक्षत्रे तिथि संयुते ॥

अष्टमी, नवमी और कृष्ण पक्षकी चतुर्दशी तथा नागपञ्चमीके दिन सांप काटनेपर जान बचनेमें संदेह है। आर्द्रा, अश्लेषा, मघा, भरणी और कृत्तिकामें और इसी प्रकार विशाखा, पूर्वाषाढ़ा पूर्वा फाल्गुनी, पूर्वा भाद्रपदा, मूला, स्वाति और शतभिषा, इन नक्षत्रोंके योग होनेपर जिन पुरुषों को साप काट जाय या जिन्होंने विषका पान कर लिया हो वह जीवित नहीं रहते। सूने मकानोंमें, श्मशानमें, सूखे वृक्षके तले, यदि सांपने आदमीको काट लिया है चाहे शुभ नक्षत्रकाभी तिथिसे योग हो तो भी वह नहीं जीता।

मर्म विचार

अष्टोत्तरं मर्मशतं प्राणिनां समुदाहृतम् ॥१५॥
तेषां मध्ये तु मर्माणि दशद्वेचापि कीर्तिते ॥
शंखे नेत्रे भ्रवोर्मध्ये वस्तिम्यां वृष्णोत्तरे ॥१६॥
कक्षे स्कन्धे हृदि मध्ये तालुके चिबुके गुदे ॥
एषु द्वादश मर्मेषु दंशैः शस्त्रेण वा हतः ॥१७॥
न जीवति नरो लोके कालदष्टं विनिर्दिशेत् ॥

प्राणियोंके देहमें १०८ मर्म हैं; उनमें १२ मर्म ऐसे हैं जिनमें यदि सांप आदि काटने वाले विषैले जन्तु काट लें या शस्त्रका व्याघात हो तो मनुष्य नहीं बच सकता। ऐसी दशामें भी उसे कालका डसा ही समझे। वह १२ मर्म यह हैं, १ पुटपड़ी, २ नेत्र, ३ भौंहोंके बीचका स्थान, त्रिपुटी, ४ मूत्राशयका स्थान, अण्डकोषोंका पिछला सीवनका भाग, ५ कांछ, ६ कन्धा, ७ हृदय, ८ तालु, ९ चिबुक (ठोडी), १० गुदा।

दूत विचार

अकचट तपयशां वदंति प्रोक्ता जीवन्ति न तत्र हि ॥१८॥
गतं ब्रूयाद्यदिस्खलति शिरस्तस्य संप्राप्तकालः ॥

जिसको सांपने काटा है वह अ, क, च, ट, त, प, य, श, इन अक्षरोंमें से कोई अक्षर वैद्यके पूछनेपर पहले बोले तो वह जीता नहीं बचता। यदि सिर लटक जाय तब तो उसका काल ही आ गया है; वैद्य उसको मृत्युके मुखमें गया ही समझे।

भवति च यदि दूतो ह्युत्तमस्याधमो वा
यदि भवति च दूत उत्तमो वाधमस्य
आदौ दष्टस्य नाम यदि वदति क्वचिद् वक्ति तस्याथ पश्चात्
विद्यात् तं वर्ण भेदो यदि भवति समः प्राप्त कालस्य दूतः ॥१९॥

यदि किसी बड़े आदमीका छोटा आदमी दूत हो या छोटे आदमीका दूत बड़ा आदमी हो; और वह सांप काटनेकी खबर जब वैद्यको पहुँचावे तब कभी काटे हुए पुरुषका नाम पहले ले और कभी पीछे ले; यदि समान पदका ही दूत हो तो भी बोलते समय दूतके मुखसे शब्द आगे पीछे निकलते हों तो समझ ले कि ऐसा घबराया हुआ दूत ऐसे पुरुषका है जिसपर काल आही गया है।

[ टि०—इस श्लोकके चतुर्थ चरणका अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है "यदि सांप काटे हुए पुरुष और दूतका समान वर्णन हो तो उसपर काल आया समझे।" ]

दूतो वादण्ड हस्तो भवति च युगलं पाशहस्तस्तथा वा ।
रक्तं वस्त्रं च कृष्णं मुख शिरसि गतमेकवस्त्रश्च दूतः ॥
तैलाभ्यक्तश्च तद्वद् यदि त्वरित गति मुक्तकेशश्च याति ।
कुर्याद्वा घोर शब्दं कर चरण युगैः प्राप्त कालस्य दूतः ॥२०॥

यदि दूतके हाथमें दण्डा हो, या सांप काटेकी खबर देने वाले दो पुरुष इकट्ठे हों या दूतके हाथमें जाल हो, दूतके मुख पर या शिर पर लाल या काला वस्त्र हो, या शरीर पर केवल एक ही वस्त्र

हों, या दूत शरीर पर तेलमले हुए हो, दौड़ता हुआ आया हो, उसके सिरके बाल भी बिखरे हुए हों, हाथों और पैरोंसे भयकी सूचना देने वाले घोर शब्द करता हुआ आवे, तो समझ लो कि वह दूत अवश्य ऐसे पुरुषकी खबर लाया है जिसकी मौत या काल आ पहुँचा है।

नाग-ग्रह विचार

नागोदयं प्रवक्ष्यामि ईशानेन तु भाषितम्।
ब्रह्मणा तु पुरा सृष्टा ग्रहानागास्त्वनेकशः॥ २१॥
अनन्तं भास्करं विद्याद् सोमं विद्यात्तुवासुकिम्।
तक्षकं भूमि पुत्रंतु कर्कोटं च बुधं विदुः॥ २२॥
पद्मं बृहस्पतिं विद्यान्महापद्मं च भार्गवम्।
कुलिकः शंखपालश्च द्वावेतौ तु शनैश्चरः॥ २३॥
पूर्वपादः शंखपालः द्वितीयः कुलिक स्तथा।
नित्यंभागे यथो दिष्टे दिनरात्री तथैव च।
शुक्रसोमौ च मध्यान्हे उदयेतं मारुतः॥ २४॥
शनिः प्राताष्टमेभागे दिवारात्रे तिहोच्यते।
ग्रहाश्च भुञ्जते चैव शेषं भाग स्यलक्षणम्॥ २५॥
रविवारे सदाज्ञेयौ पादौदश चतुर्दश।
अष्ट द्वादशवै चन्द्रे दश शष्ठे कुजे तथा॥२६॥
बुधस्य नवमे पादे राहौ च दिवसस्यच।
गुरौ द्वितीयः पष्ठश्च षोडशस्य त्रिवर्जयेत्॥ २७॥
भास्करस्य दिने प्रोक्ते चतुर्थे दशमेऽष्टमे।
शनैश्चर दिने पादं त्यजेचैव सदारुणम्॥ २८॥

ईशान रुद्र महाराज ने नागों और ग्रहोंका उदय जिस प्रकार कहा है वह कहता हूं। ब्रह्माने सृष्टि बनाते समय बहुत से ग्रह और बहुत से नाग भी बनाये। उनमें निम्न सारिणीके अनुसार ग्रहोंको नागोंका प्रतिनिधि समझे

| संख्या | नाग नाम | ग्रह नाम |
|---|---|---|
| १ | अनन्त | सूर्य |
| २ | वासुकि | चन्द्र |
| ३ | तक्षक | मंगल |
| ४ | कर्कोटक | बुध |
| ५ | पद्म नाग | बृहस्पति |
| ६ | महा पद्म | शुक्र |
| ७ | कुलिक और } | शनैश्चरका प्रथमपाद |
| ८ | शंखपाल } | ” ” द्वितीय पाद |

दिन रात्रिके विशेष भागोंमें इनका उदय होता है। और वह दिनरात्रिके विशेष भाग या चरणका उपभोग करते हैं। अपने उपभोगके समय और उदयके समय जिस प्रकार ग्रह विशेष फलदायक या विघातक होते हैं उनका उसी अवसर पर बल होता है। इसी प्रकार उक्त नागोंको भी समझना चाहिये; इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित सारणीमें देखिये।

| नामग्रह | दिन रात्रि उदयकाल | भोगकाल-चरण |
|---|---|---|
| सूर्य | } शेष भाग | दसवां चौदहवां, चौथा |
| चन्द्र | } मध्यान्ह | आठवां बारहवां |
| मंगल | सूर्योदय | दसवां छठवां |
| बुध | } शेष भाग | नवां |
| बृहस्पति | } | दूसरा, छठा, १६वां, |
| शुक्र | मध्यान्ह | + |
| शनि | प्रथम आठवां भाग | १ मपाद |

इन भोगकालके चरणोंमें सर्प आदि काटनेपर उसको असाध्य समझे और उनकी चिकित्साको व्यर्थ समझ कर छोड़ दे।

—जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार।

# कुछ वैज्ञानिक समस्याएं

जकल संसारमें सबको यह पूर्णतया ज्ञात है कि विज्ञानकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही है। नई नई बातें जिन्हें किसीने स्वप्नमें विचारा भी न था आजकल इन्हीं चक्षुओंसे देखनेमें आती हैं। बहुत से पौराणिक कार्य जो कल हमारे पुरखोंको असंभव ज्ञात होते थे

आज वह प्रत्येक पढ़े लिखे मनुष्यके हाथके खेल हैं और जो शेष हैं वह शीघ्र ही पूर्ण हो जावेंगे—अस्तु।

यह सुना करते थे कि प्राचीन समयमें मणियां हुआ करती थीं; वह वर्तमान वैज्ञानिकोंने खोज निकाली हैं; जैसे रेडियम, एकटिनियम आदि ( Radium and actinium ), जिनमें वैसी ज्योति पाई जाती है जैसी कि मणियोंमें सुना करते थे और जो कि अन्धकारमें चमकते हैं। अब पाठकोंके मनमें यह प्रश्न उठता होगा कि यह पदार्थ पाये कहां जाते हैं। इसके उत्तरकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, केवल इतना कहना उचित समझता हूं कि रेडियम सारे संसारमें केवल आठ तोलेसे कम ही बन पाया है; आज कलके वैज्ञानिकोंने ऐसे ऐसे बारीक क्षुद्रवीक्षण यंत्र बना लिये हैं कि जिनके द्वारा मनुष्य छोटेसे छोटे कण देख सकता है यहां तक कि मनुष्य अपने नेत्रोंसे एक सहस्रांशमीटरका सप्तसहस्र भाग $\frac{1}{7,000}$th of a millimetre देख सकता है। इन यंत्रों (Ultra-microscopes) द्वारा मनुष्यने रेडियमकी अ-ज्योति-कणों ( Alpha rays of radium) तकको देख लिया है। वैज्ञानिक रूथर फोर्ड (Rutherford) ने इनको नाप तक लिया है और बतला दिया है कि एक घन सतांशमात्र (1 cubic Centimetre) में २५६ × (१०)$^{१७}$ कण समा सकते हैं। यह कितनी आश्चर्यजनक बात है कि वैज्ञानिकोंने इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणोंको नाप लिया है और तोल भी लिया है! वैज्ञानिकोंने (Ramsay & Soddy) इसका भी प्रमाण दे दिया है कि रेडियम (Radium) की अ-किरणों (Alpha-rays) में सिवाय एक गैस हीलियम के विद्युन्मय परमाणुओं (Electrified atoms of helium with positive charge) के और कुछ नहीं है। यदि रेडियमको शुद्ध जलमें रखा जाय और इसका उद्‍गार (Radium emanations) का प्रवेश होने दिया जाय, तत्पश्चात् जलकी परीक्षा करने पर यह प्रतीत होगा कि उज्जनका भाग लगभग २० फी सदीके अधिक है और एक भांतिकी गैस नियन भी ( Neon ) भी निकलेगी। यद्यपि यह सब विज्ञान वेत्ताओंको पूर्ण प्रकार विदित है कि उज्जन, हीलयम, नियन गैसोंमें ( Hydragen, Helium and Neon ) न तो कोई समता है और न कोई सम्बन्ध! और देखिये; यदि जलमें नीला थोथा वा तूतिया (Blue vitriol or Copper sulphate) डाल कर रेडियम का उद्‍गार ( Radium emanations ) प्रवेश होने दें तो उसमें से न तो हीलियम और न नियन गैस ही निकलेंगी किन्तु उसमेंसे एक तीसरी प्रकारकी गैस आर्गन (Argon) और एक प्रकारका क्षार लीदियम (lithium alkali) भी निकलेंगे।

क्या इससे यह विदित नहीं होता है कि उज्जन हीलियम, नियन, आर्गन, लीदियम ( Hydrogen, Helium, Neon, Argon and Lithium) एक ही मूलतत्वके बने हुए हैं जो विविध रूपधारण कर ( allotropic modifications ) नाना भांतिके प्रतीत होता है। यह संभव है कि कोई युवक वैज्ञानिक इस बातको सन् १९३० ई० तक प्रमाणित कर दे।

बहुत से विज्ञानवेत्ताओंका यह भी मत है कि ऐसा व्यवहार केवल रेडियमका ही नहीं है परन्तु और और मौलिकों का भी है, जैसे थोरियम, एक्टिनियम, यूरेनियम (Thorium, Actinium, Uranium)। प्रोफ़ेसर टामसनका कहना है कि ऐसा आश्चर्यजनक व्यवहार ( कि पदार्थोंमेंसे ज्योति निकले ) बहुत से पदार्थोंमें विद्युतके द्वारा दिखलाया जा सकता है (He has shown that in the intense electric field generated in a Crooke's Tube, subtances give off particles charged with positive electricity; that these particles are independent of the nature of gas from which they originate, and that they are of two kinds: one apparently identical with hydrogen atom, and the other with these very alpha particles

that are projected normally from radio-active subs' tances. – R. K. Duncan's 'Some Problems of today.)

अब पाठकोंके हृदयमें यह प्रश्न उठता होगा कि इन सब बातोंका अन्त क्या होगा और वैज्ञानिक लोग अभी क्या क्या करेंगे? इसका उत्तर केवल यही दिया जा सकता है कि जो ईश्वर ने रच रखा है वही होनहार है। धार्मिक पुस्तकोंमें बहुत स्थानों पर माना गया है कि यह संसार कल्पनामात्र है, स्वप्न है, सत्य नहीं है क्या विज्ञान-का अन्तिम सिद्धान्त भी यही होगा? अवश्य! पहले यह दिखलाया गया था कि अणु (molecule) पदार्थ का अन्तिम भाग नहीं है, किन्तु परमाणु (atom) अन्तिम भाग है; परन्तु लार्ड केल्विन (Lord Kelvin) ने दिखा दिया कि परमाणु से भी छोटे एलेक्ट्रन (Electron) होते हैं? क्या अब हम यह आशा नहीं कर सकते कि कोई विज्ञानवेत्ता एक शताब्दीके भीतर यह प्रमाणित कर दे कि मौलिकों की रचना केवल शून्य से होती है और संसार केवल कल्पना मात्र ही है! संसार असत्य है, यह प्रकृति ईश्वरकी माया है। यदि ऐसा हो जाय तो प्रत्येक व्यक्तिके लिए मुक्तिमार्ग भी सुलभ हो जाय।*

—रमेशचन्द्र गुप्त।

* यह सिद्धान्त वैज्ञानिकोंका भी है। देखिये विज्ञान भाग ७ पृष्ठ १७५

# अलसीका तेल

यह तेल एक प्रकारके बीजों से जिन्हें हम अलसी या तीसी कहते हैं निकाला जाता है। इसकी उपज हालैंड, रूस, आस्ट्रिया जर्मनी और फ्रान्स तथा उत्तरी पूर्वी हिन्दुस्तान और अर्जेन्टाइन में बहुतायत से होती है। अत्यन्त उपयोगी होनेके कारण इसका प्रयोग इतना अधिक हो गया है कि यूरोपमें वहांके बीजों से काम नहीं चलता और वहांके देश वासियोंको हिन्दकी शरण लेनी पड़ती है। इसी कारण हर साल कड़ोरों मन अलसीका बीज पाश्चात्य देशोंमें भेजा जाता है।

इस बीजके तमाम गुणों पर ध्यान देनेसे ज्ञात होता है कि इसकी जन्म भूमि एशिया प्रान्त है; यूरोप नहीं। इस महाद्वीपमें इसका प्रचार अत्यन्त प्राचीन कालसे है। उस समय इसका रेशा तेलसे भी अधिक उपयोगी समझा जाता था और बहुधा अच्छी मलमल और किमख्वाबके कपड़ोंके बनाने के काममें आता था। मिश्र देशके प्राचीन रक्षित शवोंके कफन वाले कपड़ोंको खुर्दबीनसे जांचने पर ज्ञात होता है कि वह अलसीके रेशोंसे बनाये गये थे।

बीजोंसे यह तेल ३ प्रकारसे निकाला जाता है। (१) बीजोंको साफ करके चक्कीमें दलकर फिर कोल्हूमें पेर लेते हैं। इसमें लगभग २० या २१ प्रति सैकड़ा तेल निकल आता है। (२) साफ किये हुए बीज गरम बेलनसे दबाये जाते हैं। इस प्रकार २७-२८ प्रति सैकड़ा तेल निकल आता है; परन्तु यह तेल खानेके काममें नहीं आ सकता। क्योंकि इसकी महक और स्वाद दोनों बहुत बुरे होते हैं। (३) बीज तोड़कर किसी ऐसे द्रवमें डाले जाते हैं, जिसमें तेल घुलनशील हो और फिर उस घोलमेंसे तेल अलग कर लिया जाता है। इस

रीतिसे ३२-३३ प्रति सैकड़ा तेल निकल आता है। पुराने बीजोंका तेल नये बीजोंकी अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है। एक साहबका कथन है कि चाहे जितना दबाव डालें बीजोंमेंसे तमाम तेल कभी निकल ही नहीं सकता। कुछ न कुछ तेल रही जाता है और उसीके कारण खली जानवरोंके लिए उपयोगी होती है। सम्पूर्ण तेल निकालनेके लिए घोलक (Solvent) का प्रयोग होना आवश्यक है।

अब प्रश्न यह उठता है कि कौन कौनसा घोलक काममें लाना चाहिये और कैसे।

प्रयोग द्वारा सिद्ध हुआ है कि इस कार्य्यके लिए कर्बन द्विगन्धिद (Carbon-di-sulphide), पेट्रोलियम ईथर (Petrolium ether); बेनज़ोल (Benzole) इत्यादि काममें लाये जा सकते हैं।

अगर गन्धककी वाष्प Vapour दधकते हुये कोयलों परसे होकर जाय तो यह उससे मिलकर कग$_2$ $CS_2$ नामक एक वाष्प बनाती है। जिसको ठंडा करनेसे कर्बन द्विगन्धिद नामक द्रव प्राप्त होता है। अगर इस द्रवको टुकड़े किये हुए अलसी के बीजोंमें डाल कर हिलाया जाय तो तमाम तेल इसमें घुल जाता है। थोड़ी देर बाद छान कर छने हुये द्रव पदार्थमेंसे, लोहेके बने हुए भभकों द्वारा, अग्निके संसर्गसे, कर्बन द्विगन्धिद अलग कर लिया जाता है और तेल देगमें रह जाता है। परन्तु इस प्रकारके तेलमें बहुत सी आपत्तियां हैं।

पेट्रोलियम ईथरको बीजोंमें मिलाकर लगभग ६०° डिग्रीकी हरारत देनेसे अत्यन्तशुद्ध तेल निकल आता है, जो प्रत्येक काममें लाया जा सकता है।

जो तेल ठण्डे तरीकेसे कोल्हूमें दबाकर निकाला जाता है उसका रंग हलका पीलापन लिये हुए होता है; परन्तु गरम तरीकेका तेल बहुत पीला होता है। घोलक द्वारा निकाला हुआ तेल भी बहुधा पीला ही होता है। इस तेलकी महक और बू खास क़िस्मकी होती है। यह सोलह गुने ईथर, चालीस गुनी शराब (Alcohol), पाँच गुने गरम आलकोहोलमें मिलता है; परन्तु तारपीनके तेलसे वही सम्बन्ध रखता है जो दूध पानीसे। यह तेल २३०° डिग्री पर खौलता है; परन्तु ३६०–४०० डिग्रीपर इसमेंसे एक गैस निकलती है जो जल उठती है। कास्टिक सोडासे यह तेल बड़ी ही सुगमतासे मिलकर साबुन बनाता है। अगर यह साबुन नमकके तेज़ाबमें डाला जाय तो कुछ देरमें बर्तनकी तहमें एक चर्बीका सा पदार्थ बैठ जाता है। अगर तेलको २००° का डिग्रीके लगभगका ताप दिया जाय तो खौला हुआ तेल कहलाता है। इससे अधिक हरारतसे एक चिम्मड़ पदार्थ बन जाता है, जिससे कागज़पर चिकनई नहीं आती। किसी खास ताप तक हरारत देनेसे यह बहुत जल्द सूखता है, परन्तु उससे अधिक हरारत देने पर एक प्रकारका लसलसा पदार्थ बन जाता है जो रबरकी तरह चिमड़ा होता है। यही पदार्थ खौले हुये तेलमें शोरेका पतला तेजाब डालनेसे बनता है।

और तेलोंकी अपेक्षा अलसीके तेलमें सूखनेवाली शक्ति अधिक होती है। यह हवासे अम्लजन oxygen ले लेता है और यही काम धातुओंके भस्मसे भी होता है। जब तेल किसी धातुके भस्मके साथ खौलाया जाता है तो उसे पक्का तेल Boiled oil कहते हैं। पक्के तेलका गुण कच्चे तेलसे बिलकुल भिन्न होता है।

आज कल जो बाज़ारमें पक्का विलायती तेलके नामसे विख्यात है वह शुद्ध नहीं होता। इसमें अक्सर बिनौलेका तेल, पेट्रोलियम, मछलीका तेल, रालका तेल वगैरह मिले रहते हैं। इसकी पहिचान यह है कि पक्के तेलका १० हिस्सा लेकर गन्धकका तेजाब ३ हिस्सा डाल दो और खूब हिलाकर रख छोड़ो। थोड़ी देरमें दो तह दीख पड़ेंगी अगर तेलमें मछलीका तेल मिला होगा तो ऊपरकी सतह कालापन लिये हुए भूरी और नीचेकी नारंजी या या भूरापन लिए हुए पीली होगी; पर अगर तेल शुद्ध होगा तो ऊपरी सतह हरी या पीलापन लिए हुए हरी और नीचेकी पीली होगी। अगर रालका

तेल या कोई और तेल मिला हो तो उसकी जांच इस प्रकार हो सकती है कि पहले तेलको '८८'६६ Sp. gr. की आलकोहोलमें ५ मिनट तक गर्म करो। ठंडा होनेपर नितार लो और फिर आलकोहोलमें घुला हुआ लेड एसिटेट मिला दो। अगर तेल शुद्ध होगा तो केवल गदला होकर रह जायगा; पर अगर मिश्रित होगा तो सफेद तलछट बैठ जायगी।

अलसीका तेल शुद्ध करनेके कई तरीके हैं। अगर तेल धूपमें कुछ दिन तक रखा रहे तो हवामेंसे ओषजन लेकर स्वयं शुद्ध हो जाता है और बहुत जल्द सूखता है। इस कारण वार्निश वगैराके लिए बड़े कामका है। अगर जल्दी तैय्यार करनेकी आवश्यकता हो तो तेलको एक बर्तनमें डालकर गरम करना चाहिये, पर गरम करती समय उसमें गरम हवा पहुंचती रहे। इसके अतिरिक्त रासायनिक क्रियायें भी हैं, जिनका उल्लेख नीचे किया गया है।

रासायनिक क्रिया द्वारा शुद्ध करनेमें गन्धकका तेजाब, नमकका तेजाब, फिटकरी, नमक, पोटास बाईक्रोमेट अथवा पोटास परमङ्गैनेटकी आवश्यकता पड़ती है—

अगर गन्धकका तेजाब काममें लाना हो तो प्रत्येक ३०० या ४०० मन तेलमें १०० मन तेजाब (तेज़) fuming डालकर खूब हिलाना चाहिये। जब खूब मिल जाय तो इसमें तेलकी तिहाई तौल खौलता हुआ पानी डालकर हिलानेके बाद कुछ देरके लिए रख छोड़नेसे तेल ऊपर चला आता है; फिर इसे नितार कर इसमें २% सूखा नमक (Common salt) डालना चाहिये। छाननेके बाद तेलकी तौलका चौथाई नमक पानीमें मिला कर खूब गरम करके इस तेलमें डाला जाय और तबतक हिलाया जाय जब तक फेनन आवे (फेन आने पर तुरन्त हिलाना बन्द कर देना चाहिये नहीं तो तेल मटमैला और गाढ़ा हो जायगा और फिर शुद्ध न हो सकेगा)। तदनन्तर तेलको दो दिन बाद नितार लेनेसे अत्यन्त अच्छा और शुद्ध तेल बन जाता है। अगर आवश्यकता हो तो कपड़े या सूखे बालूसे छान लेना चाहिये।

दूसरी विधि यह है कि तेलका पन्द्रहवाँ हिस्सा Zinc choride जिंक क्लोराइड पानीमें गाढ़ा घोल कर तेलमें डाला जाय और खूब हिलानेके बाद उसमें गरम पानी (वा पानीकी भाप) डाल कर शान्त जगहमें रख दिया जाय। कुछ घंटोंके बाद तेल नितार लिया जाय तो शुद्ध तेल मिल जाता है। तीसरी रीतिमें परमैङ्गनेट (Potassium permanganate) काममें लाया जाता है। यह रीति सबसे सुगम और सस्ती है। इसमें प्रत्येक १०० मन तेलमें ३० मन स्रुत पानी (Distilled water) में १ मन परमैङ्गनेट मिला हुआ घोलड ला जाता और लगभग घंटे भर तक खूब हिलाया जाता है और दो दिनके बाद तेल नितार लिया जाता है। इस प्रकार बनाया हुआ तेल अत्यन्त शुद्ध होता है और प्रत्येक काममें (वार्निश, रंग, इत्यादि) आवश्यकतानुसार लगाया जा सकता है।*

—श्रीकालिका प्रसाद वर्मा

---

## स्वप्न

(ले०—श्री रमेशप्रसाद, बी. एस-सी.)

(गतांकके आगे)

६—पहले जिस इच्छाके विषयमें लिख आया हूं उसके चेतनाके बाहर होने पर भी उसे असम्भव नहीं कहा जा सकता। किसी न किसी समय इस प्रकारकी इच्छा हमारे मनमें उठ सकती है। दूसरेको ठगनेकी इच्छा कोई अद्भुत नहीं है। किन्तु इस बार जिस प्रकारकी इच्छाके विषयमें हम लिखेंगे वह हठात् सुननेसे अद्भुत और असम्भव जान पड़ेगी। इस प्रकारकी इच्छा हमारी चेतनाके बाहर है। इसलिए उसका अस्तित्व

*तेल शुद्धिके प्रथम नियममें जहां पहिली बार पानी मिलानेको कहा गया है वहाँ तत्काल पानी नहीं मिलाना चाहिये बल्कि गन्धकका तेजाब डालनेके कमसे कम ३६ घंटा बाद)

जाननेके लिए केवल अनुमानकी सहायता लेनी पड़ती है। मान लीजिये कि मैं कहूं कि हममें से प्रत्येककी मरनेकी इच्छा है तो सब कोई इस बातको हंस कर उड़ा देंगे। हमारे सिर पर मृत्यु हर समय नाच रही है; किन्तु मरना चाहता हूं यह बात एक बार भी माननेकी इच्छा नहीं होती। इस प्रकारकी इच्छाका निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है, यह उदाहरण देकर समझानेकी चेष्टा करूँगा। मान लीजये राम नाना प्रकारके दुख और कष्टोंके भोगनेसे संसारसे विरक्त हो गया है। वह आत्महत्या करनेके लिए गंगामें कूद पड़ता है। यहां रामके मरनेकी इच्छामें कुछ भी सन्देह नहीं है और यह इच्छा उसकी चेतना के बाहर नहीं है। बूढ़े हो जाने पर हम लोग मरनेके लिए इच्छुक हो सकते हैं या दुःख कष्टके कारण युवावस्थामें भी मृत्यु-कामना कर सकते हैं। इससे जाना जाता है कि मरनेकी इच्छा हमं लोगोंके मनमें लुप्त भावसे अवस्थित है; केवल सुविधा पानेसे वह प्रकाश करती है।

जिस इच्छाका अस्तित्व एकदम नहीं है वह प्रस्फुटित नहीं हो सकती, हमारे पेटमें प्लीहा है, सुस्त अवस्थामें हम उसका अस्तित्व नहीं जान सकते। किन्तु मलेरिया पीड़ित मनुष्य प्लीहाका सहजमें ही ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। मलेरियासे नया प्लीहा नहीं पैदा होता—जो है वही बढ़ जाता है। मलेरिया उसके बढ़नेमें सहायक होता है। इसी प्रकार दुःखके कारण तथा बुढ़ापेमें मृत्युकी इच्छा प्रकट होती है। एक और उदाहरणसे विषय अधिक प्रकाशित किया जा सकता है। श्याम तैरना नहीं जानता। यह बात वह जानता है कि अधिक जलमें जानेसे डूब जायगा। वर्षा ऋतुमें जब आकाश मेघाछन्न है वह अकेला नाव पर चढ़कर सैर करनेको निकला, ज़ोरोंसे आंधी आई, नाव डूब गई और श्याम ने जान दी। यहां यदि कहा जाय कि श्यामकी मरने-की इच्छा थी तो बात असंगत नहीं होगी। यह बात ठीक है कि उसके मरनेकी इच्छा मनमें उदित नहीं हुई थी। मृत्यु सम्भावना रहने पर भी यदि हम लोग विपदाजनक कार्य करने जाते हैं तो यह कहना अन्याय नहीं होगा कि उस समय मृत्यु इच्छाके वश वर्त्ती होकर ही हम लोग काम करते हैं। हां यह मृत्यु इच्छा मनमें लुप्त रहनेके कारण हम लोग अपने किये हुए कामके और ही कारण दिखलाते हैं। Shelley की मृत्यु लोग आकस्मिक समझते हैं। हमारी रायमें वह आत्म हत्या थी। आंधी निकट होने पर भी शेली दो और अनाड़ी मनुष्योंके साथ नाव पर चढ़ कर समुद्रमें सैरके लिए निकले और सबके साथ डूब मरे। जो स्वेच्छासे लड़ाईमें जाते हैं उनमें अनेक मनुष्योंके मरनेकी इच्छा रहती है। यह मृत्यु इच्छा सब समय समान नहीं रहती। जो जान बूझ कर आत्म हत्या करने जा रहे हैं ( जैसे राम ), उनसे जो तैरना नहींजाननेके कारण ( जैसे श्याम ) मरते हैं उनकी मरनेकी इच्छा अपेक्षा कृत कम है। जो लड़ाईमें जाते हैं उनकी मृत्यु इच्छा और भी अप्रकाशित होती है। जो गाड़ी, मोटर आदिकी भीड़में जाते हैं उनकी भी मरनेकी इच्छा है। हम लोग प्रति दिन न मालूम कितने विपदाके कार्य्य करते हैं। अतएव प्रतिदिन हमारी मृत्यु-इच्छा नाना कार्य्योंसे प्रकाशित होती है।

इस इच्छाका अस्तित्व केवल युक्ति और अनु-मान ही द्वारा निर्णय किया जा सकता है। ऐसी इच्छामें विशेषता यह है कि हमारी चेतनाको इस इच्छाका ज्ञान तो होता ही नहीं और जब होता है तब भयका संचार होता है। भीतर तो मरनेकी इच्छा है किन्तु बाहर भय है कि कहीं मर न जाऊं। भय रूपमें इच्छाका प्रकाशित होना हम लोग कभी कभी देखते हैं। चोरकी चोरी करनेकी इच्छा है, किन्तु वह पकड़े जानेके भयसे सदा सशंक रहता है। इच्छाको छिपानेकी चेष्टा करनेसे हमें भय होता है और वह प्रकाशित भी हो जाती है। पीछे किये हुए उदाहरणमें मृत्यु-इच्छाको समझ लेने पर भी चेतनामें जीते रहनेकी ही इच्छा प्रबल रहती है।

यहां यह कहना होगा कि मनमें जीवित रहने तथा मरनेकी दोनों विरुद्ध इच्छाएं रहती हैं। दो विरुद्ध इच्छाएं कभी एक साथ प्रकाशित नहीं हो सकतीं। इसीलिए सुप्त इच्छा आत्म प्रकाशमें बाधा पाकर भयरूपमें दिखलाई देती है। इच्छाका भयरूपमें रूपान्तरित होना एक अद्भुत व्यापार है। यह विषय पीछे आलोचित होगा। गत फ़रवरी मासके 'विज्ञान' में 'ख' को पिताकी मृत्यु-कामना करते देखा गया है। यहां उस विषयमें कुछ कहना चाहता हूं। हमारे मनमें जिस प्रकार अगोचर भावसे मृत्यु-इच्छा छिपी है 'ख' के पिताकी मृत्यु कामना उसी प्रकार मनमें अज्ञात रूपसे छिपी हुई है। चैतन्यावस्थामें उन्होंने कभी इसका आभास नहीं पाया। हमने जब उन्हें इस इच्छाके अस्तित्व का ज्ञान करा दिया तब भी वह उसे माननेके लिए तैयार नहीं थे। पिताकी मृत्यु-कामना तो दूरकी बात है वह इस आशंकासे व्यस्त हो गये कि कहीं पिताकी मृत्यु न हो जाय।

हमारे मनमें अगोचर भावसे नाना प्रकारकी इच्छाएं रह सकती हैं और इन इच्छाओंके वशवर्त्ती होकर हम लोग काम भी करते हैं। यह इच्छाएं चेतनाके बाहर क्यों है—इसीकी आलोचना करूंगा। मनोविज्ञानविद् पण्डित इस विषयमें एक मत नहीं हैं और इस प्रश्नका सविस्तार आलोचना भी नहीं की है। मैं यहां अपना मत दूंगा। मान लीजिये मैं साइकल पर चढ़ना सीख रहा हूं। मुझे ऐसी चेष्टा करनी पड़ेगी कि मैं उस परसे गिर न जाऊं। प्रत्येक मुहूर्त इच्छा शक्तिका प्रयोग करना पड़ता है। कुछ दिनके अभ्यासके बाद पतन-निवारणकी किसी प्रकार चेष्टा नहीं करनी पड़ती। यह काम अपने आप होता रहता है। सब प्रकारके अभ्यस्त कार्य्य में ऐसा ही होता है। इसमें इच्छाके अस्तित्वका कुछ भी पता नहीं लगता। अभ्यस्त होनेके पहले जो इच्छा चेतनाके केन्द्रस्थानमें थी अभ्यस्त होनेके बाद उस इच्छाका अस्तित्व नहीं जाना जाता; जाननेके लिए अनुमानका आश्रय लेना पड़ता है। इच्छाकरके कोई काम करनेसे उसके साथ चेष्टा भी रहती है और बारबार इस चेष्टाका मनमें ध्यान रहता है। हां, अभ्यास हो जानेके बाद इस प्रकारकी चेष्टाकी आवश्यकता नहीं रहती; इसलिए अभ्यस्त कामोंमें थकावट भी कम जान पड़ती है। इससे जाना गया कि इच्छाके चेतनाके बाहर होनेसे लाभ है। काम जितना ही अनायास-साध्य होगा उसमें बाधा भी उतनी ही कम होगी। और इस बाधाके कम होनेके साथ साथ इच्छा भी चैतन्यके अधिकारसे बाहर हो जायगी। इसलिए कहा जाता है कि कार्यमें बाधा रहने से ही इच्छा परिस्फुटित होती है। जो कार्य बाधा हीन हैं उनमें इच्छाका अस्तित्व रूपसे अप्रकाश रहता है। अभ्यास ही बाधा दूर करता है और इच्छाको अप्रकाश रूपक भी करता है। बहुत से मनोविज्ञानविदोंका मत है कि मनुष्यके आदिम जीवनका प्रत्येक काम इच्छा सम्भूत था। विवर्त्तनकी वजहसे हृत्पिण्डकी क्रिया निःश्वास-प्रश्वास आदि की क्रिया क्रमशः इच्छाके बाहर हो गई है। इस प्रकारके कार्यमें भी एक प्रकारकी अज्ञात इच्छाका अस्तित्व माना जा सकता है।

यदि किसी कामके करनेमें बाधा अधिक रहती है तो उसके करनेमें कठिनता उपस्थित होती है। ऐसी जगह भी इच्छा प्रकाशित नहीं होती। एक दम बाधाहीन कार्य्यमें जिस प्रकार इच्छा अप्रकाशित रहती है, बाधाका व्यतिक्रम हो जाने पर भी उसी प्रकार इच्छा प्रस्फुटित नहीं होती। मनमें जब दो विरुद्ध इच्छाएं वर्तमान रहती हैं—जैसे मरने और जिन्दा रहनेकी—तब एकके पक्षमें दूसरी इच्छा द्वारा जो बाधा दी जाती है वह अलङ्घनीय है, इसी लिए इस इच्छाको एक दम चेतनाके बाहर जाना पड़ता है। बाधा जहाँ लंघनीय है वहीं चेतनाका आविर्भाव होता है। अन्यथा नहीं।

हमने चेतनाके केन्द्रस्थलमें अवस्थित इच्छासे आरम्भ कर अज्ञात इच्छा तक विभिन्न प्रकार-

की इच्छाओंके अस्तित्वके विषयमें कहा है। केवल समझानेके लिए हमने इच्छाको छ भागोंमें विभक्त किया है। सच पूछा जाय तो परिस्फुट इच्छासे लेकर अज्ञात इच्छा तक इच्छाके असंख्य प्रकार हैं। इसको चाहे जिस प्रकार भाग कीजिये किन्तु वह काल्पनिक होगा। फ्रयेड़ने इच्छाको केवल तीन भागोंमें बांटा है:—conscious, foreconscious और unconscions, consciousचेतनाके अधिकारके अन्तर्गत है। Foreconscious और unconscious जहां चेतनाका अधिकार नहीं है। किन्तु मैं इसका चार विभाग करनेका पक्षपाती हूँ:—

(१) conscious चेतनाके अन्तर्भूत।

(२) foreconsious—चेष्टा द्वारा जहां चेतना का अधिकार विस्तार किया जा सके।

(३) Subconscious—चेतनाके अधिकारके अन्तर्भूत होने पर भी किसी न किसी दिन जिस इच्छाका मनमें उठना सम्भव है।

(४) unconscious—जो इच्छा किसी दिन मनमें उठ नहीं सकती, जिसका अस्तित्व केवल अनुमान सापेक्ष है।

स्वप्नमें पूर्व लिखित सब प्रकारकी इच्छाओं-का अस्तित्व मिलता है। फ्रयेडका कहना है कि चैतन्यके अधिकारके बाहरकी इच्छाएं साधारणतः स्वप्नमें काल्पनिक परितृप्ति लाभकी चेष्टा करती हैं और वह अन्यान्य प्रकारकी इच्छाओंके साथ संयुक्त होनेके कारण अन्य प्रकारकी इच्छाएं भी स्वप्नमें देखी जाती हैं। तृषार्त होकर स्वप्न देखा कि पानी पी रहा हूं। पाठक समझ सकते हैं कि इससे परिस्फुट इच्छा ही परितृप्त हुई। किन्तु फ्रयेड़का मत है कि इस प्रकारके स्वप्नका विश्लेषण करने पर भी इसमें चैतन्यके बाहरकी किसी न किसी प्रकार की इच्छाका अस्तित्व देखा जायगा।

अज्ञात इच्छा किस प्रकार परितृप्ति लाभकी चेष्टा करता है—इस विषय पर फिर कभी लिखूंगा।

---

## घरेलू मक्खीकी उत्पत्ति

मक्खी दो पंखवाले कीटोंमेंसे है। बर्रे तथा शहदकी मक्खीकी भांति यह भी अंडा रखती है। अंडेमेंसे इल्ली निकलती है, इल्लीका कोष बनता है और तब मक्खीके अंडेमें विद्यमान मक्खीके बच्चेको अपना स्वरूप मिलता है। परन्तु मक्खी और शहदकी मक्खी आदि कीटोंमें एक बड़ा भेद यह है कि घरेलू मक्खीको न तो रानी बनकर बैठे बैठे अंडे ही देने पड़ते हैं और न बांदी बनकर उनका पालन पोषण ही करना पड़ता है। प्रकृति देवी उसपर इतनी कृपालु है कि उसको उसके अपने अंडोंकी देख भाल, इल्लीके लिए खाद्य पदार्थोंके बटोरने रखने देखने आदि सब कामोंसे मुक्त कर दिया है, केवल अंडे देना उसका काम है। शेष सब प्रबन्ध प्रकृति स्वयम कर लेती है। वह प्रबंध भी इतना सहज है कि यद्यपि अंडे देनेके पश्चात मक्खी उस स्थानकी तरफ़को मुंह भी नहीं करती जहां वह अंडे रखती है और अंडे रखनेके पश्चात उसे तनिक भी इस बातकी फ़िक्र नहीं होती कि अंडे बचे या फूटे, उनमेंसे इल्ली निकली या नहीं, तोभी एक एक मक्खीसे एक एक मौसम में असंख्य मक्खियां पैदा हो जाती हैं। कारण यह है कि मक्खीके अंडोंके जीते रहने तथा उनमेंसे इल्ली निकलनेके लिए एक विशेष तापमान मात्राकी ज़रूरत होती है और जब अंडोंमेंसे इल्ली निकल आती है तो उन्हें उस ताप मात्राके साथ साथ अपने खाने योग्य पहले आहार की भी आवश्यकता रहती है। इन दोनों बातोंके साथ साथ यदि यह भी हो कि वह जीव जन्तु, जिनका वह आहार हैं, उन तक न पहुँच सकें तो इन अंडोंको न तो सेये जानेकी ज़रूरत है और न उनमेंसे निकली इल्लीको किसी विशेष भोज्य पदार्थकी आवश्यकता है। अर्थात् यह अंडे और इल्ली इतने दृढ़जीवी सख़्त (resistant) होते हैं कि बिना मारे सहज ही नहीं मरते।

प्रकृति देवी ने अंडोंके लिए तापमान और इल्लीके लिए भोजन तथा स्वरक्षित स्थान प्राप्त करानेका यह प्रबंध किया है कि मक्खीको इस बातका स्वाभाविक ज्ञान रहता है कि कौन कौन स्थान ऐसे हो सकते हैं जहाँ उसके अंडे स्वरक्षित रह सकते हैं तथा नियमित तापमान और इल्लीके लिए भोजन भी वहां मिल सकता है या नहीं। ऐसे उचित स्थान बहुत हैं जहाँ लीद गोबर भिष्टा तथा अन्य मैले पदार्थ सड़ते होते हैं, सड़नेसे उनका तापमान बढ़ जाता है और जहाँ इनका ढेर बहुत होता है वहां उसकी ऊपरी तहोंमें तापमान उतना ही होता है जितना अंडोंके पलने तथा इल्लीके निकलनेके लिए आवश्यक है। साथ ही सड़नेका परिणाम यह होता है कि सजल पदार्थ पतले हो जाते हैं और इल्लीको इन पतले ( liquid ) पदार्थों द्वारा आहार सहज हो में मिल जाता है।

इन सड़ते हुए पदार्थोंमेंसे सड़ायंदकी एक विशेष प्रकारकी गंध उड़ा करती है और दूर दूर फैल जाया करती है। इस सड़ायंदकी गंधको प्रकृतिने यह कार्य्य सौंपा है कि वह मक्खीको सूचना दे दिया करे कि अमुक स्थान पर मैले पदार्थ सड़ रहे हैं, वहां तुम्हारी सौरीका समस्त प्रबंध प्रकृति देवीने कर दिया है; कृपया पधारिए और अंडे रखकर गर्भभार से मुक्त हूजिये।

मक्खीकी गंध ग्रहण शक्ति बड़ी प्रबल होती है। अस्तु जब वह गर्भवती होती है तो स्वयम ऐसे स्थानकी खोज में रहती है जहां अंडे रख सके। सड़ायंदकी गंधसे सूचना पा, वह गंध ग्रहण करती हुई सहज ही में वहां पहुँच जाती है, जहां मैले पदार्थ सड़ रहे होते हैं, और अंडे रख देती हैं।

मक्खीके अंडे रखनेके लिए यह ज़रूरत नहीं है कि सड़ती हुई चीज़ भिष्टा अथवा लीद गोबर ही हो अथवा उसकी कोई नियमित राशि हो। कोई भी मैला पदार्थ और कितनी ही थोड़ी मात्रा में क्यों न हो यदि वह सड़ उठा है और किण्व-क्रिया (fermentation) की गंध उसमेंसे उठ रही है मक्खीके अंडे देनेके लिए उचित और पर्याप्त स्थान हो सकता है। नीचे कुछ हाल हावर्ड लिखित 'दी हाउस फ्लाई' नामक पुस्तकसे दिया जाता है।

"सं० १९६४-६५ में प्रोफ़ेसर फ़ोर्ब्स (Prof Forbes) के मतसे अमेरिकामें उनके दो सहायकोंने इस बातकी खोजकी कि किन मैले पदार्थोंमें मक्खी अंडे देती है। उन्होंने पता लगाया कि :—

सड़े हुए तर्बूज़, गाजर, खीरे, करमकल्लेके डंठल, केलेके फलियोंके छिलके, आलूके छिलके, पकी हुई मटर, शाक भाजीकी छीलन मिली हुई राख, रोटी, पाकशालाका धोया हुआ पानी तथा मांस, लकड़ी के बुरादेमें मिली हुई भाजी, घूरे परका कूड़ा, जानवरोंके बध स्थान परका मांस, सड़क पर पड़ा शव, बधस्थानके कूड़ेमें मिले हुए सुअरके बाल, लकड़ीका बुरादा जिससे बध-स्थान की धरतीको पोंछा गया था, तथा वह लकड़ीका बुरादा जिससे मांसके बाज़ार (meat market) को पोंछा गया था, पशुओंकी लीद गोबर, बध पशुओंके आमाशयमेंसे निकला भोजन, मुर्गीके पर, मुर्गीयोंकी भिष्टा, खादके लिए जमा किया हुआ पशुओंका लीद गोबर तथा आदमियोंका भिष्टा यह सब वस्तु ऐसी हैं जिनमें मक्खी अंडे दे देती हैं। इनमें भेद करना वह नहीं जानती। आवश्यकता इस बात की है कि वह सड़ रहे हैं।

"इसी तरह जब सं० १९६६में वारसेस्टरके अस्पताल (Worcester state hospital) में संग्रहणी रोग फैला तो डा० बारटनको यह फ़िक्र हुई कि अस्पतालमें मक्खियां कहांसे आती हैं जो इस रोगको फैलाती हैं। चूंकि विशेष कर मक्खियां घोड़ोंकी लीदमें अंडे देती हैं अर्थात लीद द्वारा मक्खियोंकी उत्पत्ति होती है, इस कारण उन्होंने अस्पतालके अहातेमें लीदकी ढूंढ आरम्भ की। अस्तबलकी लीद एक पक्के ईंट चूनेके बने ( manure pit ) में दाबी जाती थी। वह अँधेरा और गहरा था उसमें एक भी मक्खीका अंडा न मिला। गौशालामें गोबर तथा

लीद एक जगह एकत्रित रक्खी जाती थी। उस लीदमें अवश्य थोड़ेसे अंडे मौजूद थे। परन्तु वह भी इतने नहीं थे जिनसे इतनी मक्खी पैदा हो जायं। खोजते खोजते वह उस स्थान पर पहुँचे जहां सुअरोंकी विष्टा (Pig manure) खाद बनानेके लिए जमा की जाती थी। उसमें भूसा मिला था और मेंहमें वह भीगता भी था। यह मक्खीकी इल्लीसे गिज गिजा रहा था। उन्होंने उसमेंसे एक औंस अर्थात आधी छटांक उठा कर उसमें जो इल्ली थी उनको गिना तो उनकी संख्या ८६८ निकली। यही हाल हाप और बारलीके फोकस (Spent hops and barley malt) का था। यह फोकस वह था जो शराब खींचनेके बाद रह जाता है और खादका काम देता है (Brewery waste which had been hauled in as a fertilizer) उसके एक औंस अर्थात् आधी छटांकमें इल्लीकी संख्या १०१८ थी। सड़े हुए अख़बार अर्थात काग़ज़ तथा कपड़ेके टुकड़े पर भी अंडे देनेमें मक्खीको संकोच नहीं होता।

"केमब्रजमें डा० जेपसन ने २०० मक्खियोंको पकड़ कर बन्द कर रक्खा और खानेको उन्हें भीगी रोटी दी। रोटीमें जब तक किएव क्रिया fermentation न हुआ मक्खियोंने उनपर अंडे नहीं रक्खे परन्तु जिस रोटीमें खमीर उठ आया था उस पर अंडे रख दिए, और अगले दिन अंडोंसे इल्ली निकल आई। इल्ली ने फफूंदी लगी रोटी (mouldy bread) को छुआ भी नहीं, परन्तु भीगी तथा खमीर उठती हुई रोटीको खा खा कर खूब पल गई और तब अखबारके काग़ज़के नीचे घुस घुस कर कोषावस्था ग्रहण कर ली।"

सं० १६७६ के वृश्चिकमें मैंने थोड़ी सी लीद मंगाई जिसमें मक्खीके अंडे तथा इल्ली मौजूद थी और उसको (glass tubes) परख नलियोंमें भर भर कर रख दिया। लीद सूख न जाय इस कारण उसमें एक दो बूँद पानी तो मैं अवश्य डाल दिया करता था। इसको छोड़कर मैंने कोई देखभाल उन परखनलियों की नहीं की। परन्तु सब ही अंडे तथा इल्ली कोषावस्थाको प्राप्त हो गए और उनकी मक्खी बनकर परखनलियोंमें मौजूद हो गईं। यह एक ऐसा सहज प्रयोग है जिसे हर कोई करके देख सकता है। कारण यह कि भारतवर्ष ऐसा गर्म देश है कि यहां मक्खी प्रायः बारह महीने पैदा हो सकती और होती रहती हैं। और उनकी इल्ली हर जगह गिज गिजाती मिलती हैं। मोहल्लोंके घूरे जहां मोहल्ले भरका मैला लाकर जमा किया जाता है इनके पैदा होने के मुख्य स्थान हैं। खादके लिए जहां मैला जमा किया जाता है सड़े गले फल शाक भाजी जहां फेके जाते अथवा जहां शराब खेंची जाती है वह स्थान यदि भली भांति स्वरक्षित और साफ़ नहीं रक्खे जाते तो मक्खियोंकी उत्पत्तिके केन्द्र बन जाते हैं।
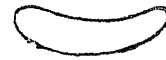
चित्र ४६—अंडे।

अंडे

मक्खीका अंडा बहुत ही छोटा होता है। वह इतना छोटा होता है कि एक इंचमें २० या २५ अंडे आ सकते हैं। आकारमें वह भी और अंडों की तरह गोल तथा लम्बे (ovoid) होते हैं। उनका रंग सफ़ेद चमकदार होता है और वह एक दूसरेसे जुटे रहते हैं। मक्खी एक समयमें १२० से १५० तक अंडे देती है और यह बहुधा एक ढेरीमें एक जगह रखे होते हैं। यह अंडे आंखसे सहज हीमें दीख पड़ते हैं और लीद गोबर तथा शवपर कोई चीज़ सफ़ेद सफ़ेद सी रखी सी मालूम होती है। वैसे तो इनकी ओर कोई ध्यान भी नहीं देता परन्तु जब एक दफ़े देख लिए जाते हैं तो सहजमें ही दीख जाते हैं।

यदि इन अंडोंको सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा देखा जाय (when seen under a maginfying glass)

तो मालूम होता है कि मक्खीका अंडा लम्बाईमें चौड़ाईसे बड़ा होता है। उसका एक सिरा पतला और दूसरा मोटा होता है। वह बीचमें से कमान की तरह मुड़ा होता है और उसकी नतोदर (झुकी हुई) (concave surface) तल पर कुछ धारियां सी जान पड़ती हैं। सम्भवतः यह इल्लीके शरीरके टुकड़ोंका पता देती है (shows the segnents of the larvas through the shell)
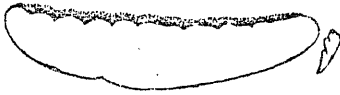
चित्र ४७—इल्लीके शरीरके टुकड़ोंके निशान।

इन अंडोंके ऊपरका खोल (shell) इतना काफ़ी सख्त होता है कि ताप तथा सर्दीका अंडेके अन्दर बैठे जीवपर सहज ही असर नहीं होता। इन अन्डोंके परिपक्व होनेके लिए एक विशेष तापमान (temperature) तथा उष्णता (moisture) की ज़रूरत है, यदि यह मिल जाती है तो अंडा आठ ही घंटेमें पक जाता है और इल्ली निकल आती है। परन्तु साधारणतः गर्मीके मौसममें अंडेसे इल्लीसे निकलनेमें १२ घंटे लग जाते हैं। यदि लीद गोबर भिष्टाको जिसमें यह रक्खे हों लकड़ीसे तितर बितर कर दिया जाय अथवा जैसा कि बहुधा देखनेमें आता है मुर्गियां उसको तितर बितर करदें तो भी यह अंडे एक दो दिन सूर्यके तापकी सहार कर जायंगे। और यदि उस लीद गोबरमें पानी पड़ता रहे अर्थात् वह सूख न जाय तो उनको यथोचित तापमान मिलनेपर उनमेंसे इल्ली निकल आएगी, हां गोबर लीदके सूखनेपर वह अवश्य ही सूर्य्यके तापसे भस्म हो जायंगे।

इसी तरह सर्दीको भी यह बर्दाश्त कर सकते हैं और तीन तीन चार चार दिन तक ठिठरे पड़े रह जाते हैं। नियत तापमात्राके मिलने पर फिर सजीव हो जाते हैं और उनमेंसे इल्ली निकल आती है।

इल्ली जब निकलनेको तयार होती है तो अंडेके पहले शिरेकी ओर एक छिद्र हो जाता है। इस छिद्रको इल्ली बड़ा करती जाती है और अंडेका छिलका फटता जाता है। यहांतक कि इल्ली निकल आती है और छिलका पिचक जाता है।
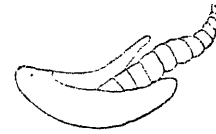
चित्र ४८—इल्ली।

इल्ली

अंडेमेंसे जो कीड़ा निकलता है उसको इल्ली (larva) कहते हैं। सरल भाषामें उसीका नाम कीड़ा है और इन कीड़ोंको गिजगिजाते सबने ही देखा है। जहां कोई चीज़ पड़ी सड़ रही होती है वहां यह कीड़े ज़रूर विद्यमान होते हैं। आकारमें यह कीड़े लम्बे होते हैं और एक तरफ़से इनका सिरा पतला होता है। दूसरी तरफ़से मोटा। पतली ओर इनका मुंह होता। यह मुंह काला अथवा शरीरकी अपेक्षा गहरे रंगका होता है। यह कीड़ा जब चलता है तो इसी मुंहको तरफ़से चलता है। पिछला सिरा मोटा होता है और गुदा उसी ओर होती है। कीड़ेका सारा शरीर सफ़ेद होता है। लीद गोबरमें बहुधा इसका रंग हरा या पीला सा दिखाई पड़ने लगता है। जिसका कारण उसके पेटमें भरी लीद या गोबर होता है। उसके शरीरका यह रंग नहीं है। वह बिलकुल सफ़ेद होता है। यह कीड़े कोई जौ भर लम्बे होते हैं और इनके बदन पर चारों तरफ गोलाईमें धारियांसी होती हैं। यदि इनको सूक्ष्म दर्शक यत्र द्वारा देखा जाय तो यह धारियां और भी स्पष्ट हो जाती हैं और कीड़ा अलग अलग टुकड़ोंके जुड़नेसे बना

मालूम पड़ने लगता है यह बनावट उसको चलनेमें मदद देती है और लीद गोबरमें वह ऐसी जल्दी जल्दी चल फिर लेता है कि देखते देखते नज़रसे ग़ायब हो जाता है। ज़ख़्मोंमें जब कीड़े पड़ जाते हैं तो पट्टी खोलते खोलते बीसियों गिज गिजाते
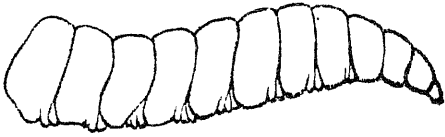
चित्र ४६—इल्लीके बचपनकी अवस्थामें शकल

दिखाई पड़ते हैं परन्तु पट्टी खोलते खोलते ही वह ऐसी जल्दी नजरसे ग़ायब होते हैं कि ज़ख़्मके खुलने पर आधे भी बाहर नहीं रह जाते। ज़ख़्मके अंदर घुस जाते हैं।

इस कीड़ेकी पाचन इन्द्री बहुत ही सरल होती है और यह केवल द्रव पदार्थका ही पाचन कर सकता है। इसकी जीवनअवधि भी केवल चार पांच दिनकी ही होती है। इतने समयमें भी यह तीन बार चोला बदलता है ( molts ) तब कहीं कोष बनकर मक्खीका रूप ग्रहण कर पाता है।

मक्खीकी सृष्टिमें यदि कोई अच्छी चीज़ है तो यह कीड़े हैं क्योंकि इनसे समाजका बड़ा उपकार होता है। यह प्रकृतिके मेहतर (Scavengers) हैं जो समस्त पदार्थोंको खा खा कर मिट्टीमें मिला देते हैं। जङ्गलमें जाइए आपको पड़ा हुआ गोबर मिलेगा जिसको उठाकर देखिए तो बहुत कुछ हिस्सा उसका मिट्टीमें मिल चुका मिलता है शेषमें कीड़े भरे होते हैं। उसका मिट्टीमें मिलना इन्हीं कीड़ों द्वारा हुआ होता है। समस्त पदार्थ जब सड़ते हैं तो उनमें सुरामांड पैदा करनेवाले जीवाणु ( germs of putrefactin ) पहुँचकर उसको सड़ाते और पतला कर देते हैं। यह कीड़े उस तरल पदार्थको खा खा कर मिट्टीमें मिला देते हैं।

यद्यपि यह कीड़े मलको खा डालने वाले हैं परन्तु वास्तवमें यह मलके सूचक हैं और यह कहना अधिक उपयोगी होगा कि इनको भेजकर प्रकृति मनुष्य समाजको यह सूचना देती है कि "देखो यह मल है, यह हानिकारक है, इसको हटा कर सफ़ाई रखना तुम्हारा कर्तव्य होना चाहिए। यदि तुम ऐसा नहीं करोगे तो इस पापका फल तुमको यह भोगना पड़ेगा कि इन्हीं कीड़ोंसे मक्खियां पैदा होंगी और यह मक्खियां तुम लोगों में रोग फैलाएंगी।"

कोषावस्था ( Puparium )

इल्ली जब कोषावस्थाको प्राप्त होनेको होती है तब उसका रंग पीला पड़ने लगता है। कारण यह है कि उसकी ऊपरकी खाल सख़्त होने लगती है और उसके भीतर बैठी हुई भावी मक्खीके खानेके लिए भोजन जमा होने लगता है जिसमें चिकनाई-का भाग शेष होता है। और उसी चिकनाईकी यह पीलाई होती है।

कोषास्थ होनेसे पहले इल्ली लीद गोबरको छोड़ कर उसके किनारोंपर चली जाती है। जिसमें कोषास्थ इल्लीमेंसे निकली मक्खी लीद गोबरमें दब न जाय। यदि समल पदार्थकी राशि अल्प होती है तो वह इल्ली उस पदार्थको छोड़कर उसके नीचेके भागमें चली जाती है। और यदि ज़मीन पोली अथवा मुलायम हुई तो उसमें घुस जाती है अन्यथा आस पासकी घासमें छिप जाती है। जंगलमें पड़े लीद गोबरको यदि उठाकर देखा जाय तो कभी कभी उसमें अथवा उसके नीचेकी ज़मीन में कोषास्थ इल्ली मिल जाती है।

इल्लीके जब कोषास्थ होनेका समय आता है तो इल्लीकी गति मंद पड़ जाती है वह अपनी पाचन नालीको खाली कर डालती है (It empties its alimentary canal ) और सुकुड़ कर छोटी सी हो बैठती है। उसका आकार अंडाकार (ovoid) हो जाता है। और यह इल्लीके अंडज बड़े सुन्दर सुनहरी अथवा नारंगी रंगके गोल मटोल अंडेसे

पड़े दीखते हैं। जिनको यदि हाथमें भी उठा लिया जाय तो कोई हानि नहीं होती। कोषास्थ इल्लीकी अंडेसे मिलान करने पर अंडेकी प्रायः ही बातें उसमें घट जाती हैं। उसका आकार अंडेका सा होता है। उसके ऊपरका छिलका सरल होता है। उसके अन्दर बैठा जीव न चल सकता है न अपने लिए कहीं से खाना दाना ला सकता
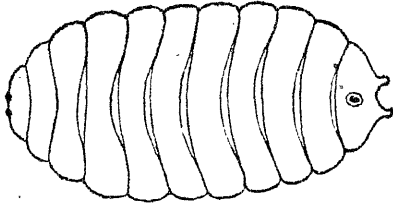
चित्र नं० ४०—कोष

है, उसका भोजन उसके लिए कोषमें रखा होता है वह उसीको खाता और उसीसे पलता है। यदि उस कोषको तोड़ा जाय तो उसमेंसे ऐसी ही बनी बनाई मक्खी निकल आती है जैसे एक पक्षीके अंडेमेंसे उसका गदेला। भेद केवल इतना होता है कि अंडेमेंसे जो बच्चा निकलता है वह आप अपनी सहायता नहीं कर सकता। जब तक उसके पर न निकल आएं और वह उड़ने लायक न हो जाय उसके माता पिताको उसे खिलाना पड़ता है। मक्खी जो कोषमेंसे निकलती है तो पली पलाई हृष्ट पुष्ट नर मादाके संयोगके पश्चात अंडे देने योग्य।

कोषावस्थामें मक्खी पांचसे सात दिन तक रहती है। गर्मीके दिनोंमें जब उसे यथोचित मात्रा ताप तथा उष्णताकी प्राप्त होती है तो तीन चार दिनमें ही मक्खी कोषमेंसे निकल आती है। परन्तु साधारणतः कोषावस्थाको त्यागनेमें मक्खीको पांच सात दिन लग जाते हैं। इसी तरह जाड़ोंके दिनोंमें अथवा जब यथोचित ताप तथा उष्णता प्राप्त नहीं हो पाती तो इल्ली २० वा २५ दिन तक भी कोषास्थ पड़ी रह जाती है। कोषका छिलका इतना सख्त होता है कि मक्खी इससे भी अधिक समय तक कोषावस्थामें पड़ी रह सकती है और उसे कोई हानि नहीं होती। कुछ जन्तु-विद्या-विशेषज्ञों-का तो मत है कि मक्खी युरोपकी तीव्र सर्दी इसी कोषावस्थामें बिताती है और गर्मीके आनेपर कोष को छोड़कर बाहर निकल आती है।

अंडेसे लेकर कोष पर्यन्त मक्खीके बननेकी सब घटना देखनेकी सहज तर्कीब यह है कि उस लीदको जिसमें मक्खीके अंडे अथवा हरे हरे मुंह-के लम्बे लम्बे कीड़े मौजूद हों लेकर एक शीशेकी नली (tube) में भर कर रख लिया जाय और उस-के मुंहपर रुईकी डाट लगा दी जाय। उसे शीशे-की नलीमें रखनेसे सहजमें ही सारी तबदीलियां दिखाई देती रहेंगी। किस तरह अंडोंके कीड़े बनते हैं और फिर यह कीड़े कोषावस्थाको प्राप्त होते हैं। किस तरह यह कोष या तो नलीके नीचे गिर पड़ते हैं अथवा लीदसे प्रथक् होकर नलीकी दीवारसे लग जाते हैं। यदि इन कोषोंमेंसे एकको लेकर सहजसे सूई अथवा आलपीनसे तोड़ा जाय तो पता लगता है कि उसका छिलका कैसा सख़्त है। उसके अंदरसे जो मक्खी निकलेगी उसका आकार बिलकुल इस चित्रका सा होगा। कुछ दिन पश्चात् इन कोषोंमेंसे बन बन कर मक्खियां निकल आयंगी।
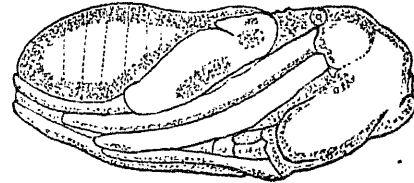
चित्र नं० ४१—कोषसे निकला हुआ बच्चा

इसी तरह जिन लोगोंके यहां उपले पाथे जाते हैं उन्होंने देखा होगा कि बर्सातमें गोबरमें कीड़े पड़ जाते हैं। गोबर पाथने वालियां कीड़े पड़े गोबरको फेंक नहीं देतीं। सब गोबरमें मिलाकर उसको भी पाथ लेती हैं, दूसरे तीसरे दिन जब वह उपलोंको पलटती हैं तो पीले पीले कीड़े उनके नीचे गिजगिजाते दिखाई देते हैं। यह वही कीड़े होते हैं जो उपलोंमें पथ कर पले और

# विषयानुक्रमणिका

## औद्योगिक रसायन ( Industrial Chemistry )



## कृषि शास्त्र ( Agriculture )



## जीव विज्ञान ( Biology )



## जीवनी ( Biography )



## ज्योतिष ( Astronomy )



## दर्शन ( Philosophy )

## पुरातत्व ( Archeology )



## भौतिक शास्त्र ( Physics )



## रसायन शास्त्र ( Chemistry )



## वनस्पति शास्त्र ( Botany )



## वैद्यक तथा स्वास्थ्य-विज्ञान ( Medicine & Hygiene )



## शारीर शास्त्र ( Physiology )



## शिक्षा ( Education )

## समाज शास्त्र ( Sociology )



## साधारण ( General )

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १८ } तुला, संवत् १९८०। अक्तूबर, सन् १९२३ { संख्या १

# जल संचय

म भारतवासियोंके लिए जल-संचय की ओर ध्यान देना बहुत ही जरूरी है; कारण कि भारत कृषि-प्रधान देश है। यहां बरसातमें जितना पानी बरसता है, उसका अधिकांश नदी नालों द्वारा समुद्रमें जा मिलता है। यदि यही पानी बड़े बड़े जलाशयों या बांधोंमें संचित कर लिया जाय, तो कृषिको बहुत लाभ पहुंच सकता है। इस परिच्छेदमें जलसंचय करनेकी विधियों पर संक्षेपमें लिखा जायगा।

### बांध

नदी नालोंके प्रवाहके मार्गको रोकनेके लिए उचित स्थान पर बांध डालना अत्यन्त लाभकारी है। वर्षाकी तो हमारे लिए आवश्यकता है ही, परन्तु फिर भी हम बांध डालनेके कामको उपेक्षा की दृष्टिसे नहीं देख सकते। भारतवर्षके कई प्रान्तोंमें किसी वर्ष कम पानी बरसता है और किसी वर्ष ज्यादा। लोगोंकी धारणा हो गई है कि पानी बरसाना हमारे हाथमें नहीं है। अल्पांशमें हम भी इससे सहमत हैं। परन्तु हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि वनस्पतिकी वृद्धि कर एक सीमा तक पानी बरसानेमें हम सफल हो सकते हैं। भारतवर्षकी सरकार भी यह बात समझने लगी है और जंगल सुरक्षित रखने और वनस्पतिकी वृद्धि करनेकी ओर उसका ध्यान अधिकाधिक आकर्षित होता जा रहा है। इसके अन्य कई कारण भी हैं, परन्तु वह भी उपेक्षनीय नहीं। यदि वनस्पतिकी वृद्धि करने और जंगलोंको सुरक्षित रखनेसे सरकारको अन्य कई प्रकारके लाभोंकी आशा न होती, तो वह शायद ही इस ओर इतना ध्यान देती!

अति प्राचीन कालसे भारतवासी जल संचयके लाभों से परिचित हैं। भारतके प्राचीन ग्रंथोंमें तालाब आदि जलाशयोंके नाम पाये जाते हैं। प्राचीन कालसे भारतीय राजा महाराजा और धनी मानी तालाब बनवाना अपना पवित्र कर्तव्य (धर्म) मानते आये हैं। महाभारतमें एक स्थान पर नारदमुनिने धर्म राजसे पूछा है कि तेरे देशमें काफी जलाशय तो हैं? अस्तु। मुसलमानोंके शासन कालमें भी जल संचयकी ओर ध्यान दिया गया था। मुसलमान शासकोंने गंगा नदीका जल नहरों द्वारा दूर दूरके प्रदेशोंमें पहुँचाया था। भारतवर्षमें स्थान स्थान पर प्राचीन तालाबोंके चिन्ह पाये जाते हैं। आधुनिक कालमें भी देशी राजा इस पर विशेष ध्यान रखते हैं। परन्तु हमारी अँगरेज़ सरकार इस पर जितना चाहिये उतना ध्यान नहीं देती। फिर भी अँगरेजी राज्यमें कई नहरें बनवाई गई हैं, जिनसे हज़ारों एकड़ जमीन सींची जाती है।

तालाबोंके सम्बंधमें तो हमको कुछ नहीं कहना है; कारण कि उनमें तो वर्षाका पानी इकट्ठा हो जाता है। परन्तु नहरोंकी बात इससे जुदी है। नदीमें बांध डालकर दूसरी तरफ पानी ले जानेसे कभी कभी ऐसा होता है कि बाँधके नीचेके गाँवोंमें पानीकी कमी हो जाती है और नहरोंके बन जानेसे कई बार ऐसा होता है कि नदीमें पर्याप्त पानीनहीं रहता। अतएव नहर और बाँध बनवानेका काम विशेष दक्षतासे करना चाहिये।

भारत सरकारने अाब पाशीका (इरिगेशन) विभाग खोल रखा है। इस विभागके दो उद्देश हैं—वर्षाके पानीका संचय करना और नहरों द्वारा दूरके प्रदेशोंको पानी पहुँचाना। इस विभागका उद्देश स्तुत्य है। इस विभागसे पुष्कल लाभ पहुँचा है और पहुँच रहा है। तथापि पानीकी कमीके कारण इससे उतना लाभ नहीं पहुँचा है, जितना कि पहुँचना चाहिये। हमारे मतसे कई स्थानोंमें वनस्पतिकी वृद्धि करनेसे कम खर्चसे पुष्कल लाभ पहुँच सकता है।*

### सोते

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि कुए, नदी, नाले और तालाबोंमें पानी कहांसे आता है? पाठक यह बात तो भले प्रकार जानते होंगे कि कुओंमें सोतों द्वारा जल आता है।

तालाब दो प्रकारके होते हैं। एक प्रकारके तालाबोंमें तो वर्षाका पानी इकट्ठा होता रहता है और दूसरे प्रकारके तालाबोंमें वर्षाका पानी तो इकट्ठा होता ही है, परन्तु साथ ही सोतोंसे भी पानी आता रहता है। दूसरे प्रकारके तालाब ही अच्छे हैं कारण कि वर्षाका पानी तो जल्दी सूख जाता है, परन्तु सोतोंके पानीसे पानीकी कमी नहीं होने पाती। नालोंको हम बहनेवाले झरने कह सकते हैं। नदीका उद्गम भी झरनोंसे ही होता है और उसमें मिलनेवाले नालों और प्रवाहोंका जल भी तो झरनों से ही आता है।

अब यह देखेंगे कि सोते या झरने कैसे पैदा होते हैं। जब तक किसी ऊंचे स्थानपर पानीका संचय न होगा, झरनोंकी उत्पत्ति कदापि न होगी। एक बरतनमें पानी भरकर उसे किसी उंचे स्थानपर रख दीजिये, इस बरतनमें छेद करनेसे पानी झरने लगेगा। यह भी एक प्रकारका झरना ही है। पृथ्वीका ठोस भाग चट्टानोंकी तहों से बना है। इन

* एलेकज़ेंडर व्हैन हम्बोल्ट सन् १८०२ में वेनेजुएलाकी एरागुआ नदीको देखने गये थे। आस पासके पहाड़ोंके पानीके एकत्रित हो जानेसे एक स्थान पर एक तालाब सा बन गया था। इस सरोवरकी मछलियोंसे वहाँके लोगोंका निर्वाह होता था। जंगल कट जानेसे धीरे धीरे तालाबका पानी घटने लगा, जिससे मछलियाँ कम हो गईं। यह देख कर लोग चिन्तित हुए। उक्त महोदय चट समझ गये कि जंगलका नाश ही इसका कारण है। आपने जंगलकी रक्षा और वृद्धिकी ओर ध्यान दिलाया। फल यह हुआ कि सन् १८२५ में तालाबमें पानी फिर पहलेके समान भर गया।

तहोंकी दरारों और चीरोंमेंसे ऊंचे स्थानका पानी, बहकर आता है और बाहर निकलनेका मार्ग मिलते ही वह झरनेके रूपमें बहने लगता है।

कई स्थानों पर आस पास ऊंची जगहें न होनेपर भी ऊंचाई पर झरने पाये जाते हैं। इसका कारण यह है कि कहीं न कहीं किसी ऊंचे स्थान पर पानीका संचय ज़रूर है और उसकी बदौलत वहां झरना निकल आया है। पानीका धर्म है कि वह अपनी ऊंचाई सदा बराबर बनाये रखता है। अर्थात् किसी ऊंचे स्थानपर पानीका संचय रखकर उसमेंसे पानी नली द्वारा कितनी ही दूरी पर क्यों न ले जाया जाय, परन्तु वह उतनी ही ऊंचाई तक चढ़ सकेगा जितनी ऊंचाईपर कि जलका संचय स्थित है। साथकी आकृतिमें अ एक पात्र है जिसकी तलीमें ब नली लगाई गई है। यह नली कितनी ही ऊंची क्यों न हो परन्तु यदि पात्रमें पानी भरा जायगा तो अ और ब में पानीकी ऊंचाई बराबर होगी। दोनों पात्रोंके आकारमें जमीन आसमानका अन्तर ही क्यों न हो, परन्तु पानी अपना धर्म—कदापि नहीं छोड़ेगा। इस चित्रमें अ पात्र बड़ा और ब नली पतली है। परन्तु फिर भी पानीकी ऊंचाई दोनोंमें बराबर है। जमीनके जल संचयको भी यही नियम लागू होता है। अतएव किसी ऊंचे स्थान पर झरनेको देखकर आश्चर्य न करना चाहिये।

झरनेके लिए ऊंचे स्थर जलसंचयका होना अनिवार्य है और पानी तो वर्षासे ही प्राप्त होता है। इसलिए यह अत्यन्त जरूरी है कि ऊंचे प्रदेशों पर बरसा हुआ पानी बहकर नदी नालोंमें से होकर समुद्रमें न जानेपावे। जहाँ तक हो सके वह जमीनमें उतारा जाय। वनस्पति यह काम किस प्रकार करती है, इसपर विचार करना ज़रूरी है।

वनस्पतिकी क्रिया

पर्वत आदि ऊंचे स्थानों पर जितना पानी बरसता है वह सबका सब बह कर समुद्रमें चला जाता है। जमीन उसको सोख नहीं पाती। इसका कारण यह है कि पर्वतोंमें छिद्र नहीं होते और मट्टीके अभावके कारण उनका पृष्ठभाग जल शोषक नहीं होता। और जमीन पथरीली होनेसे जितना पानी बरसता है, वह सब बड़े वेगसे बह कर समुद्रमें जा मिलता है। यदि चट्टानोंमें दरारें छिद्र आदि हुए भी, तो पानीके मार्गमें बिलकुल रुकावट न होनेसे, उसे जमीनके अंदर घुसनेको अवकाश नहीं मिलता; इसलिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि पर्वत दरार, छेद आदिसे पोला हो, वह जितना ही अधिक पोला होगा, उतना ही अच्छा है। इसके अलावा पहाड़ पर जलशोषक मिट्टीका होना भी बहुत ज़रूरी है। एवं पानीके वेगको कम करने या रोकनेके साधनोंका होना भी आवश्यक है। इन उद्देशोंकी सिद्धिके लिए वनस्पति एक उत्तम साधन है।

मूसला जड़वाले पौदोंकी जड़ें भोजनकी तलाशमें जमीनमें बहुत गहरी जाती हैं। पर्वतों पर ऐसे झाड़ लगानेसे उनमें बहुत गहराई तक छेद हो जाते हैं। झांकरा जड़ वाले झाड़ोंकी जड़ें जमीनमें बहुत गहरी नहीं पैठतीं; परंतु उनकी अनेक छोटी छोटी जड़ें जमीनमें दूर तक जालकी तरह फैली रहती हैं। ऐसे झाड़ लगानेसे पहाड़ पोला भी होता है और उसके पृष्ठभाग पर मट्टी भी बढ़ती जाती है। पानी, वर्षा आदि भौतिक शक्तियों द्वारा चट्टानें टूट टूट कर मट्टीमें बदल जाती हैं। वृक्षोंकी जड़ें, ठूंठ आदिके कारण यह मट्टी पानीके साथ बह कर नहीं जाने पाती—पर्वत पर ही रह जाती है। इसके अलावा वनस्पतिके पत्ते आदि गिर कर वहीं सड़ते रहते हैं; जिससे पर्वतका ऊपरी भाग स्पंजके समान जल शोषक हो जाता है। वनस्पतिसे भरी हुई जमीनमें से तरीका वाष्पीभवन भी कम होता है, कारण कि वह वृक्षोंके पत्तोंसे ढकी रहती है। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि जितने समयमें खुली जमीनकी १०० भाग तरीका वाष्पी भवन होता है उतने ही समयमें वृक्षोंसे ढकी हुई जमीनकी ३८ भाग तरी भाप बन कर हवामें मिलने पाती है। और यदि जमीन छोटे

छोटे पौदोंसे ढकी हो, तो यह परिमाण १५ ही रह जाता है।

पौदेका तना पानीके बहावके मार्गमें रुकावट डालता है जिससे पानी वेगसे नहीं बहने पाता। फल यह होता है कि जमीन ज़्यादा पानी सोख सकती है। वनस्पति एक और रीतिसे जमीनको पानी सोखनेमें सहायता पहुँचाती है। वर्षाका पानी पहले पत्तों पर गिरता है और तब जमीन पर टपकता है, जिससे पानी जमीनमें प्रवेश कर सकता है। इस प्रकार वनस्पति जल संचय करनेमें बड़ी मदद पहुँचाती हैं।

सरकारका आबपाशीका विभाग नदी नालोंमें बाँध डालकर नहरों द्वारा दूर दूर तक पानी पहुँचाता है और तालाबोंमें पानी इकट्ठा करता है। परन्तु अकसर पानीकी कमी हो जानेसे नहरों और तालाबोंसे उतना लाभ नहीं होता। यदि उक्त विभाग पहाड़ों पर बनस्पति लगानेकी ओर ध्यान दे तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है।

भारतवर्षके इन प्रदेशोंमें जहाँ नियमित समय पर ही वर्षा होती है, पर्वतोंसे कितना फायदा होता है यह बात किसीसे छिपी नहीं। यदि भारतवर्ष समथल होता, तो वर्षाका सबका सब पानी या तो बह कर समुद्रमें जा मिलता या जमीनमें प्रवेश कर बहुत गहरा उतर जाता। और तब वह झरनोंके रूपमें कदापि प्रकट नहीं होता। कुएं खोदने पर पानी तो ज़रूर निकलता परन्तु वह इतने गहरे होते कि यंत्रों द्वारा पानी ऊपर उठाकर सिंचाईकी फसलें बोना बहुत ही कठिन हो जाता। बीजापुर, धारवाड़ और मारवाड़में कुए बहुत ही गहरे होते हैं।

चालीस पचास वर्ष पहले जिन झरनोंसे बहुत पानी आता था वह अब निरुपयोगी हो गये हैं। इसका एक कारण वनस्पतिका नाश ही है। वर्षाकी कमी भी इसका कारण माना जा सकता है, परन्तु यह गौण है। आज भी भारतवर्षमें साल भरमें जितना पानी बरसता है उसका २० वाँ भाग भी यदि संचित कर लिया जाय, तो पानीकी कमीका अनुभव कदापि नहीं हो सकता। नीचेके उदाहरण से यह बात अच्छी तरह समझमें आजायगी।

कल्पना कीजिये कि किसी स्थान पर २५ इंच पानी बरसता है। अब हम यह देखेंगे कि एक एकड़ जमीन एक सालमें कितना पानी संचित कर सकती है।

एक एकड़ जमीनमें ४८४० वर्ग गज या ४३५६० वर्ग फुट होते हैं। यदि मान लिया जाय कि किसी जमीनमें न तो पानी अन्दर ही उतरता है और न भाप बनकर उड़ता ही है तो एक सालमें एक एकड़ जमीन पर २५ इंच गहरा पानी भर जायगा। अर्थात् $\frac{२५}{१२} \times \frac{४३५६०}{} = ९०७५०$ घन फुट पानी भर जायगा। एक घन फुट पानीका वजन ६२.५ पौंड होता है। इस हिसाबसे उस जमीनमें ५६७१८७५ पौंड पानी भरेगा। इतने पानीका थोड़ा सा भाग भी जमीनमें प्रवेश कर पाये तो पुष्कल लाभ हो सकता है।

ऊपरके विवेचन परसे पाठक यह बात भले प्रकार समझ गये होंगे कि भारतकी तीन आवश्यकताओंको पूर्ण करनेमें वनस्पति कितनी सहायता पहुंचाती हैं।

—शंकर राव जोषी।

# विज्ञानाचार्य सर जगदीशचंद्र बसुकी रचना

पूर्व-वचन

रत्न प्रसवनी भारत माताके सच्चे सपूत आचार्य जगदीश चन्द्र बोसको आज कौन नहीं जानता। आपने ३० वर्षकी एकान्त तपस्यासे ऐसे चमत्कार पूर्ण आविष्कार किये हैं कि जिनका अद्भुत वृत्तान्त पढ़ कर पाश्चात्य देशके विद्याभिमानी पंडितोंने दांतों तले अंगुली दबाई है और आविष्कारोंकी सत्यताका प्रत्यक्ष प्रमाण देख कर बड़ा आश्चर्य प्रकट किया है। आखिरी बात हम यों कह सकते हैं कि बोस महाशयने अपने आविष्कारोंके द्वारा प्रचलित वैज्ञानिक-गवेषणाका स्रोत ही फेर दिया है। यूरोपके बड़े बड़े विज्ञानी आपके नूतन आविष्कारोंके सामने सर झुकाते हैं। विज्ञानके केन्द्रस्थान फ्रान्स, इंग्लैण्ड और अमेरिका आदि देश हैं। इन देशोंकी ज़बरदस्त विद्वन्मंडलीके सामने एक ऊंचा आसन प्राप्त कर, अनेक प्रचलित वैज्ञानिक मतवादोंमें भ्रम दिखाना और विद्वानोंके उठाये हुये कूट तर्कोंका सैकड़ों प्रकारसे खंडन करना केवल जगदीशचन्द्रका ही काम था। इसके पहले यद्यपि राजा राजेन्द्रलाल मित्र और काशीनाथ त्रिम्बक तैलङ्ग आदि कई भारतवासियोंने पुरा तत्व और शास्त्रीय विषयकी गवेषणामें, यूरोपमें आदर पाया था, लेकिन वैज्ञानिक मामलोंमें, यूरोप देशमें, आदर पाने वाला अकेला एक ही भारतवासी जगदीश है। यहांपर हम यूरोप सरीखे कद्र दां देशकी भी तारीफ किये बिना नहीं रहेंगे जो गुणोंकी खूब कद्र करना जानता है। उस बेलजियम को धन्य है जहाँ नोबल सरीखा अतुल-धनशाली व्यक्ति पैदा हुआ, जिसने सिर्फ़ अपने ही उद्योगसे अमित धनराशि संग्रह की और मरते समय अपनी सारी सम्पत्ति विद्वानोंके ख़ातिर छोड़ गया। आज उसी सम्पत्तिके सूदसे विद्वानोंका सन्मान किया जाता है। हमारे देशके गौरव स्तम्भ कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुरका इन्हीं सवा लाख रुपयोंसे सम्मान किया गया है। यह साहित्यके लिये काव्य-पुरस्कार था। भारत इसके लिए बड़ा गौरवान्वित है। अब भारतमें दो महान् आत्माएँ और नोबल-पुरस्कार पानेकी हकदार हैं। विज्ञानके अद्भुत आविष्कारोंके लिए आचार्य जगदीशचन्द्र बोस; और देशमें शान्ति स्थापन करनेके लिए महात्मा गान्धी। आशा है बेलजियम अपने नोबल-प्राइज़से इन दोनों महात्माओंका आदर भी कभी न कभी ज़रूर करेगा।

मातृभाषा प्रेम

बोस महाशय जबसे वैज्ञानिक अनुसंधानमें लगे हैं, अपनी मातृ भाषाको नहीं भूले हैं। पहले पहल आपने वैज्ञानिक और दूसरे कई प्रबन्ध अपनी मातृभाषा बँगलामें ही लिखे थे। यह कितने बड़े महत्वकी बात है। बंगाली इसके लिए बड़े प्रशंसा-पात्र हैं। कविसम्राट् श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरको देखिये, वह अपनी रचना सबके पहले अपनी मातृ-भाषा बंगलामें ही करते हैं। *"गीताञ्जलि"को उन्होंने पहले बंगलामें ही लिखा, बादको अंगरेज़ीमें। ऐसे मातृभाषा भक्त जिस भाषामें मौजूद हों, उस भाषाका साहित्य भला क्यों न उन्नत होगा। इसी प्रकार स्व० लोकमान्य तिलक का "गीता-रहस्य" सरीखा अपूर्व ग्रंथ मराठी-साहित्यकी जैसी

* हर्षकी बात है कि "गीताञ्जलि" का हिन्दी पद्यानुवाद, झालावाड़के राज्यगुरु काव्यालंकार श्रीयुत पं० गिरधर शर्म्मा जी नवरत्नने बहुत ही उत्तम रूपसे किया है, जिसके लिए हालमें ही, इन्दौरकी 'मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति' ने १००० एक हज़ार रुपया स्वरूप पंडितजीको पुरस्कार दिया है।

शोभा बढ़ा रहा है, सबको मालूम है। "सरस्वती-चंद्र" सरीखा उपन्यास-सम्राट् गुजराती भाषा-को जैसा अलंकृत कर रहा है, सब जानते हैं। इधर, हिन्दीके कार्यक्षेत्रमें भी, आजकल, बड़े बड़े अंगरेज़ी दां लगे हुए हैं, यह बड़े सौभाग्यकी बात है। पहले अंगरेज़ी पढ़े लिखे, हिन्दीसे घृणा करते थे और कोई कोई कपूत तो इसे "हिन्दी गन्दी" के नामसे पुकारा करते थे। हर्ष है कि वह भाव अब निकलता जा रहा है और इसके साहित्यको सर्वाङ्ग सुन्दर बनानेकी सभी कोशिश कर रहे हैं।

पहले जगदीशचन्द्र बोसकी रचनाएँ—बँगला-के "मुकुल," "दासी," "प्रवासी," "साहित्य," और "भारतवर्ष" आदि पत्रोंमें प्रकाशित हुआ करती थीं। लेकिन विज्ञानका विषय बड़ा सूक्ष्म और टेढ़ा है; और आजकल इसका प्रधान केन्द्र है यूरोप। अतएव, बोस महाशयको भी विद्युत्तरंग और जीवन सम्बन्धी अनुसंधान करनेके बाद "विदेशी अदालत" की शरण लेनी पड़ी, और उस समय आपको अंगरेज़ीमें ही अपने आविष्कारोंका वर्णन मजबूरन लिखना पड़ा। लेकिन, इसके लिए आपने बड़ा पश्चात्ताप किया है।

आपकी रचनाओंका संग्रह हालमें ही, "अव्यक्त" के नामसे कलकत्तेके गुरुदास एण्ड सन्सने प्रकाशित किया है। उसकी भूमिका लिखी है आपने ही। भूमिकाका नाम "कथारम्भ" रखा गया है। "कथारंभ" में आप लिखते हैं:—

"भीतर और बाहरकी उत्तेजनासे जीव, कभी कलरव कभी आर्त्तनाद किया करता है। मनुष्य अपनी माताकी गोदमें जो भाषा सीखते हैं, उसी भाषामें वह अपना सुख दुख प्रकट किया करते हैं। प्रायः ३० वर्ष पहले मेरे वैज्ञानिक तथा दूसरे कई प्रबन्ध मातृभाषामें ही लिखे गये थे। इसके बाद विद्युत्तरंग और जीवनके सम्बन्धमें मैंने अनु-सन्धान करना आरंभ किया, और इसीके उपलक्ष्य-में कई मामले-मुकद्दमेमें फँसा रहा। इस विषयकी अदालत विदेश है, वहाँ वाद-विवाद केवल यूरोपीय भाषामें ही लिये जाते हैं। इस देशमें भी प्रिवि कौंसिलकी राय न मिलने तक किसी मुक़द्दमेका आख़िरी फैसला नहीं होता।

"जातीय जीवनके लिहाज़से इसके—सिवाय अपमान मेरे लिए और क्या हो सकता है! इसीके प्रतीकारके लिए मैंने इस देश (कलकत्ते) में वैज्ञा-निक अदालत स्थापन करनेकी चेष्टा की है। फल शायद इस जीवनमें मैं नहीं देख सकूँगा—प्रतिष्ठित विज्ञान-मन्दिरका भविष्य विधाताके हाथमें है।"

देखिये, मातृभाषाके लिए-देश-भक्तिके लिए कितना प्रलाप है, कितनी आन्तरिक लगन है। इसीके प्रायश्चित्त स्वरूप आपने "वसु विज्ञान-मन्दिर" की स्थापना की, धन्य है!

ग्रन्थ-परिचय।

आपके प्रबन्धोंका संग्रह जो "अव्यक्त" के नामसे गुरुदास एंड सन्ससे प्रकाशित हुआ है, उसमें कुल २० निबन्ध हैं।* उनके नाम इस प्रकार हैं—

१ युक्तिकर
२ आकाश-स्पन्दन और अकाश-संभव जगत्
३ गाछेर कथा
४ उद्भिदेर जन्म ओ मृत्यु
५ मंत्रेर साधन
६ अदृश्य आलोक
७ पतालक तूफान
८ अग्नि परीक्षा
९ भागीरथीर उत्संधाने
१० विज्ञाने साहित्य
११ निर्वाक् जीवन
१२ नवीन ओ प्रवीन
१३ बोधन
१४ मनन ओ करन
१५ राणी-सन्दर्शन

* लेखक इनका अनुवाद कर रहा है।

१६ निवेदन
१७ दीक्षा
१८ आहत उद्भिद्
१६ स्नायु सूत्रे उत्तेजना प्रवाह
२० हाजिर

इन निबन्धोंमें आपने वैज्ञानिक विषयको बहुत ही सुगम रीतिसे सरलभाषामें मनोरंजक ढंगसे समझाया है। पढ़नेसे बात आसानीके साथ समझमें आजाती है और साथ ही मनोरंजन भी होता है।

यह तो हुआ बंगला ग्रन्थका परिचय। अब आपके अंगरेज़ी ग्रन्थोंका परिचय भी सुनिये।

आपकी प्रथम अंगरेज़ी पुस्तक है—"Response in the Living and Nonliving"

यह पुस्तक जीव और जड़के सम्बन्धमें है। जिस हिसाबसे जीव और जड़में समान चेतना होती है, आचार्य जगदीशने इस पुस्तकमें वही बात दिखाई है। अवस्था विशेषमें एक चीज़ ( जड़ या जीव ) जैसा आचरण करती है, दूसरी भी उसी विशेष अवस्थामें ठीक वैसा ही आचरण करती है—इस सम्बन्धमें दोनोंमें कोई भेद नहीं है। इस विषयको आपने पुस्तकके आख़िरी अध्यायमें, खूब अच्छी तरहसे, सुन्दर चित्र देकर पास पास दिखाया है।

आपकी दूसरी पुस्तक है—"Plant physiology"

इसमें अपने उद्भिद्की बातें और भी विशद रूपसे समझाई हैं। और उद्भिद्के शरीरकी क्रियाकी सूक्ष्म विवेचना की है। इसके सिवा उद्भिद् किस तरह प्राण धारण करते हैं, अर्थात् मिट्टीसे जल सोख कर किस प्रकार उसे खाते हैं यह भी इसमें भली भाँति दिखाया गया है। इतना ही नहीं; बल्कि इसमें और भी कितनी ही बारीक बारीक बातोंका ज़िक्र है। उद्भिद् किस तरह जलको जमीनसे सोखकर अपने पेड़के अन्दर पहुँचाते हैं और किस तरह वह जल वृक्षके पत्तोंमें जाकर उसकी वृद्धि करता है, किस तरह पेड़में फूल और फल पैदा करता है इत्यादि विषयोंकी इस पुस्तकमें संक्षिप्त प्रस्तावना है।

वह प्रस्तावना यह है कि—एक जीवित-कोष बाहरसे आघात पा कर संकुचित होता है, और भीतरसे आघात पा कर फूल उठता है, अर्थात् इसमें शक्ति संचित हो जाती है।

इसी सामान्य नियमसे उद्भिद्-जीवनकी जितनी क्रियाएँ हैं, सब मालूम हो जाती है। रस शोषन, वृद्धि, जीवन धारण, अवनति-और लय, यह बातें जो उद्भिद्की क्रियाओंमें मुख्य हैं, उपरोक्त सामान्य नियमसे सब मालूम हो जाती हैं।

तीसरी आपकी पुस्तक है—"Plant autograph"

यह भी उद्भिद्के ही सम्बन्धमें है। उद्भिद् यंत्रकी सहायतासे, अपने जीवनकी अनेक अवस्थाओंमें, रेखा खींचकर अपने आप ही अपना हाल काग़ज़ पर लिख देता है। यह बात पहलेके यंत्रोंसे भी की जाती थी। लेकिन आचार्य जगदीशचन्द्रके बनाये यंत्रसे जो लेख उद्भिद् तैयार करते हैं, वह पहलेके ऐसे यंत्रोंके लेखकी अपेक्षा सौ गुणा सूक्ष्म, श्रेष्ठ और विवरणात्मक है। इस बातको इस पुस्तकमें अच्छी तरह समझाया गया है।

आजकल विज्ञानका ज़माना है। बिना विज्ञानके ज्ञानके काम चल नहीं सकता। विज्ञानका नवीन नवीन चमत्कार दिन पर दिन दिखाई देता जा रहा है। भविष्यमें विज्ञान न जाने और भी क्या क्या कर दिखलायगा। हिन्दीका वैज्ञानिक-साहित्य अभी बहुत कुछ खाली पड़ा हुआ है, उसकी पूर्त्ति होना बहुत आवश्यक है। अभी जगदीशचन्द्रके आविष्कारोंका विवरण ही हिन्दीमें पूरेतौर पर अनुवादित नहीं हुआ है। हिन्दीमें इनके अनुवाद होनेकी बड़ी ज़रूरत है। आशा है, कोई महानुभाव इसपर क़लम उठानेकी कृपा करेंगे।

—कृष्णगोपाल माथुर।

# प्राचीन सर्पंजन विद्या

( गताङ्कसे सम्मिलित )

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार ]

विषका वेग

सविषा दंष्ट्रयोर्मध्ये यमदूती तु वै भवेत्।
न चिकित्सा बुधैः कार्या तं गतायुं विनिर्दिशेत् ॥१॥

दाढ़ोंके बीचमें यमदूती नामकी विषवाली दाढ़ होती है। उसका जखम लग जाने पर विद्वान लोग चिकित्सा न करें, उस पुरुषकी आयुको समाप्त हुआ ही समझें।

प्रहरार्धं दिवारात्रवेकैकं भुञ्जते वहिः।
एकस्य च समानं च द्वितीयं शोडशं तथा ॥२॥

नागोदयो यमुद्दिश्य हतोविद्धो विदारितः।
कालदष्टं विजानीयात्कश्यपस्य वचो यथा ॥३॥

आधा पहर या दिन रातमें एक एक पहर भुगत जाय, या दूसरा और १६वां पहर भुगते, या नागग्रहका उदय जिसके अनुकूल हो उस पुरुषको कालका डसा समझे। यही कश्यपका कथन है।

यन्मात्रं पतते विंदुर्वालाग्रं सलिलोद्धृतम्।
तन्मात्रं स्रवते दृष्ट्वा विषं सर्पस्य दारुणम् ॥४॥

एक बालके अग्र भाग पर जितना पानीका विन्दु लग जाया करता है सांपकी दाढ़से भी उतना ही घोर विषका विन्दु जखममें टपका करता है।

नाड़ी शते तु सम्पूर्णे देहे संक्रमते विषम्।
यावत्संक्रामयेद् बाहुं कुञ्चितं वा प्रसारयेद् ॥६॥

अनेन क्षण मात्रेण विषं गच्छति मस्तके।
वेपते विषवेगे तु शतशोऽथ सहस्रशः ॥७॥

वर्धते रक्तमासाद्य ततो वातैः शिखी यथा।
तैल बिन्दु र्जलंप्राप्य यथा वेगेन वर्धते ॥८॥

शिखण्डी आश्रयं प्राप्य मारुतेन समीरितः।

देहमें तो सैकड़ों नाड़ियोंका जाल फैला है। इस कारण विष उसमें फैल जाता है। जितने कालमें बाहु फैलाई जाय या फैली हुई बाहुको सिकोड़ लिया जाय इतने कालमें तो विष मस्तक तक पहुँच जाता है। विषके वेगसे मनुष्य सैकड़ों और हज़ारों बार कांपने लगता है। विष रक्तमें पहुँचकर इतने वेगसे प्रचण्ड होकर फैलता है जैसे वायुके झकोरोंसे अग्नि फैलती है। जैसे जलमें तेलका विन्दु फैलता है या आग वायुके झोंकोंसे प्रचण्ड हो जाती है उसी प्रकार देहमें रक्तके साथ विषका वेग भी फैलता और प्रचण्ड हो जाता है।

ततः स्थान शतं प्राप्य त्वचास्थाने विचेष्टते ॥९॥
त्वचासु द्विगुणं विद्यात् शोणितेषु चतुर्गुणम्।
पित्ते तु त्रिगुणं याति श्लेष्मेवै शोडशं भवेत् ॥१०॥
वायौ त्रिंशद्गुणम् चैव मज्जा षष्ठिगुणं तथा।
प्राणे चैकार्णवी भूते सर्वगात्राणि संधयेत् ॥११॥
श्रोत्रे निरुध्यमाने च याति दष्टस्त्वसाध्यताम्।
ततोऽसौ म्रियते जन्तु निःश्वासोच्छ्वासवर्जितः ॥१२॥

तब विष सैकड़ों स्थानोंमें फैलकर त्वचा भाग पर विकार उत्पन्न करता है। त्वचामें विषका वेग दुगुना, रक्तमें चौगुना, पित्तमें तिगुना श्लेष्मा या फेफड़ोंमें १६ गुना, वायुमें तीस गुना और मज्जा भागमें ६० गुना होता है। जब सब प्राणोंमें फैलकर एक विषैले समुद्रके समान हो जाता है तब विषसे सब गात्र अकड़ने लगते हैं। कान रुक जाने पर बहरा हो जाता है। उस अवसर पर सांप काटे हुए पुरुषकी चिकित्सा करना असाध्य हो जाता है। तब प्राणीका श्वास प्रश्वास रुक जाता है और मौत आ जाती है।

निष्क्रान्ते तु ततो जीवे भूते पञ्चत्वमागते।
तानि भूतानि गच्छन्ति यस्य यस्य यथा तथम् ॥१३॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।
इत्येषामेव संघातः शरीरमभिधीयते ॥१४॥
पृथिवीं पृथिवीं याति तोयं तोयेषु लीयते।
तेजोगच्छति चादित्यं मारुतो मारुतं व्रजेत् ॥१५॥

आकाशं चैवमाकाशे सह तेनैव गच्छति।
स्वस्थानं ते प्रपद्यन्ते परस्पर नियोजिताः ॥१६॥
नजीवेरागतः कश्चिदिह जन्मनि सुव्रत।
विषार्तं न उपेक्षेत त्वरितं तु चिकित्सयेत् ॥१७॥

जब मनुष्यका जीव शरीरको छोड़कर निकल जाता है, पांचों भूत अलग अलग हो जाते हैं। तब पाचों भूत जिस जिसके अंश होते हैं उसी उसीमें लीन हो जाते हैं। पृथ्वी, आपः, तेज, वायु और आकाश इन्हीं पांच भूतोंका मिलकर यह शरीर बना है। इन्हींका वह संघात कहाता है। इस कारण पृथ्वीका भाग पृथिवीमें, जलका जलमें, तेजका भाग तेजमें, मरुत या वायुका भाग वायुमें और आकाश आकाशमें लीन हो जाता है। सब एक दूसरेसे प्रेरित होकर अपने अपने स्थानपर चले जाते हैं। इस लोकमें जो जन्म लेता है वह कोई भी बचकर नहीं जाता। इस कारण विषसे पीड़ित व्यक्ति की कभी उपेक्षा न करे; उसकी शीघ्र ही चिकित्सा करे।

एकमस्ति विषं लोके द्वितीयं चोपपद्यते।
यथा नाना विधं चैव स्थावरं तु तथैव च ॥१८॥

जैसा एक विष होता है वैसे ही दूसरा विष है। इसी प्रकार जैसे स्थावर वृक्ष वनस्पतियोंके नाना प्रकारके विष होते हैं उसी प्रकार जंगम सर्प वृश्चिक आदिके भी नाना प्रकारके विष होते हैं।

विषके वेगके भेद

प्रथमे विषवेगे तु रोमहर्षोभिजायते।
द्वितीये विषवेगे तु स्वेदो गात्रेषु जायते ॥ १९ ॥
तृतीये विषवेगे तु कंपो गात्रेषु जायते।
चतुर्थे विषवेगे तु श्रोत्रान्तर निरोध कृत् ॥ २० ॥
पञ्चमे विषवेगे तु हिक्वा गात्रेषु जायते।
षष्ठे च विषवेगे तु प्राणेभ्योऽपि प्रमुच्यते ॥ २१ ॥

प्रथम विष वेगमें रोम खड़े हो जाते हैं। दूसरे वेगमें सब अंगोंमें पसीना आने लगता है। तीसरे विष वेगमें अङ्गोंमें कंपकपी आने लगती है। चौथे विष वेगमें कान बहरे हो जाते हैं। पांचवें विषके वेगमें हिचकियां आने लगती हैं। छठे वेगमें प्राण छूट जाते हैं।

सातों धातुओंमें विषका उपद्रव और चिकित्सा

सप्त धातु वहा ह्येते वैनतेयेन भाषिताः।
त्वचः स्थाने विषे प्राप्ते तस्यरूपाणि वै शृणु ॥ २२ ॥
अंगानि तिमिरापन्ने तपंते च मुहुर्मुहुः।
एतानि यस्य चिन्हानि तस्य त्वचि गते विषम् ॥ २३ ॥

( १ ) त्वग्गत विषका उपद्रव

सातों धातुओंमें विषके बहनेके लक्षण वैनतेय गरुड़ने कहे हैं। त्वचा स्थानमें विष फैलनेके लक्षण सुनिये। सांप काटनेपर अंगों पर झांई आजाती है, अंग वार वार तपने लगते हैं। यह चिन्ह जिसके प्रकट हों उसकी त्वचामें विष फैला होता है।

चिकित्सा

तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम्।
अर्कमूलमपामार्गं प्रियंगु तगरं तथा ॥ २४ ॥
एतदालोड्य दातव्यं ततः सम्पद्यते सुखम्।

उसका उपाय कहता हूं, जिससे रोगीको आराम हो जाता है।

आककी जड़, अपामार्ग, प्रियंगु, तगर, इनको सिलपर कूटकर खिलावे तब विषका वेग शान्त होकर आराम हो जाता है।

( २ ) रक्त गत विष और चिकित्सा

ततस्तस्मिन्कृते विष न निवर्तेत चेद्विषम्।
त्वचः स्थान ततो भित्वा रक्त स्थानं प्रधावति ॥२६॥
विषे च रक्तं संप्राप्ते तस्य रूपाणि मे शृणु।
दह्यते मुह्यते चैव शीतलं बहु मन्यते ॥२७॥
एतानि तस्य रूपाणि तस्य रक्तगते विषम्।
तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२८॥
उशीरं चन्दनं कुष्ठ मुलतं तगरं तथा।
महा कालस्य मूलानि सिन्दुवार नगध्यच ॥२९॥
हिंगुलं मरिचं चैव पूर्वं वेगे तु दापयेत्।

यदि इस प्रकार करने पर भी विष न उतरे तब वह विष त्वचाको फाड़कर रक्तमें प्रवेश कर दौड़ने लगता है। विषके रक्तमें घुसने पर जो रूप प्रकट

होते हैं सो सुनो। उस पुरुषको मूर्छा आने लगती है और बहुत ठण्ड लगने लगती है। उसे सर्दी लगती प्रतीत होती है। ऐसे लक्षण प्रकट हों उसके रक्तमें विषको प्रविष्ट हुआ समझो। उसकी चिकित्सा कहता हूं। इससे आराम हो जाता है।

उशीर (खशखश), चन्दन, कूठ, पद्माख, तगर, महाकाल और सिंदुवार वृक्षकी जड़ हींग और मिरच, इनको मिलाकर दे। इनका प्रयोग विषके पूर्व वेगमें ही करे।

बृहती वृश्चिका काली इन्द्र वारुणि मूलकम् ॥३०॥
सप्त गंध घृतं चैव द्वितीये परि कीर्त्तितम्।

बड़ी कटेरी, बीछी, काली, इन्द्र वारुणी, और सप्त गंधवी, इसका प्रयोग दूसरे विष वेग पर करे।

सिंदुवारं तथा हिंगु तृतीये कारयेद् बुधः।
नस्यपानं च कुर्वीत अंजनं लेपमं तथा ॥३१॥
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम्।

सिंदुवार, और हींगका तीसरे विष वेग पर प्रयोग करे। इन्हींको घोटकर पिलावे। इन्हींका आंखोंमें अंजन करे और इन्हीं का जखम पर लेप करे। इसी उपचारसे उसको आराम हो जायगा।

( ३ ) पित्तगत विष और चिकित्सा

रक्त स्थानं ततो गत्वा पित्त स्थानं प्रधावति ॥३३॥
पित्त स्थानगते विप्र विष रूपाणि मे शृणु।
उत्तिष्ठते निपतते दह्यते मुह्यते तथा ॥३४॥
गात्रतः पीतकः स्याद्दै दिशः पश्यति पीतिकाः।
प्रवला च भवेन्मूर्छा नचात्मानं विजानते ॥३५॥
विष क्रियां तस्य कुर्याद् यथा सम्पद्यते सुखम्।

रक्त स्थान पर आकर फिर पित्त स्थानमें विषका प्रवेश होता है। इस अवसर पर विष पेट या आमाशयमें पहुँचता है। रोगी इस दशामें उठकर खड़ा होता है और गिर गिर पड़ता है। देहमें जलन होती है, मूर्छा आ जाती है। देह पीली पड़ने लगती है। सब दिशाएं पीली पीली दीखने लगती हैं। मूर्छाका बल बढ़ता है। आदमी अपनी सब सुध-बुध भूल जाता है। वैद्य उसके विष उतारनेका उपाय करे। विष खा लेने पर वमन विरेचनका जैसा उपाय करना उचित है वही उपचार इस अवसर पर भी करना चाहिये।

( ४ ) श्लेष्म गत विष और चिकित्सा

पित्त स्थानमतिक्रम्य श्लेष्म स्थानं च गच्छति ॥२६॥
पिप्पल्यो मधुकं चैव मधुखण्डं घृतं तथा।
मधु सारयला तूंच जातिं शकर वालुका ॥२७॥
इन्द्र वारुणिका मूलं गवां मूत्रेण पेशयेत्।
नस्यं तस्य प्रयुञ्जीत पानमालेपनाञ्जनम् ॥२८॥
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम्।

पित्त स्थानको पार करके विष श्लेष्म स्थानमें प्रवेश करता है। फेफड़ोंका स्थान श्लेष्म स्थान कहाता है। इस अवसर पर पिप्पली, महुआ, मधु, खाण्ड, घी, मुलेठीका सत् कडवे तूंबेके बीज, जाति पुष्प, शंकर वालुका, इन्द्रवारुणी, इन औषधियोंको गोमूत्रके साथ पीस ले। उसीको नाकसे चढ़ावे, पिलावे, जखम पर लगावे, और आखोंमें अंजन करे। इसी उपचारसे रोगीको आराम होजाता है।

श्लेष्म स्थानं ततो प्राप्तं तस्य रूपाणि मे शृणु ॥२९॥
गात्राणि तस्य रुध्यंते निःश्वासश्च न जायते।
लाला च स्रवते तस्य कंठो घुरघुरायते ॥३०॥
एतानि यस्य रूपाणि तस्य श्लेष्म गतं विषम्।
तस्या गदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥३१॥

अब विष श्लेष्म स्थान या फेफड़े और कण्ठ भागमें प्रवेश करता है; तो उसके यह चिन्ह प्रकट होते हैं; सुनिये। उसके अंग जकड़ने लगते हैं; सांस रुकने लगती हैं, मुंहसे लार टपकने लगती है। गलेमेंसे घुर घुर आवाज होने लगती है। जिसके यह रूप प्रकट हों उसके शरीरमें विष श्लेष्म स्थानमें पहुँच जाता है। उसके आराम करनेका उपाय यह है—

त्रिकटुकी श्लेष्मानकी लोध्रं च मधुसारकम्।
एतानि समभागानि गवां मूत्रेण पेषयत् ॥ ३२ ॥
नस्यं पानं च कुर्वीत, अंजनं लेपनं तथा।
एतेनैवोपचारेण ततः सम्पद्यते सुखम् ॥ ३३ ॥

त्रिकुटा (अर्थात् सोंठ मिरच, पीपल) लिसोढ़ा, लोध्र, मुलैठीका सत् इनको बराबर लेकर गोमूत्र-

के साथ पीसकर उसको नाकसे पिलावे, मुंहसे पिलावे, अंजन करे और शरीरपर जखमपर लगावे। इस उपचारसे रोगीको लाभ होता है।

(५) वायुगतविष और चिकित्सा

श्लेष्मस्थानमतिक्रम्य वायुस्थानं च गच्छति ॥
तत्र रूपाणि वक्ष्यामि वायु स्थानगते विषे ॥३४॥
आध्मायते च जठरं बांधवांश्च न पश्यति ।
ईदृशं कुरुते रूपं दृष्टि भंगश्च जायते ॥३५॥
एतानि यस्य रूपाणि तस्य वायु गतं विषम् ॥
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥३६॥
शोणामूलं प्रियालुं च रक्तं च गज पिप्पलीम् ।
भार्ङ्गी वचां पिप्पलीं च देव दारु मधूककम् ॥३७॥
मधूक सारं सहसिंदुवारं, हिंगु च पिष्ट्वा गुटिकां च कुर्यात् ।
दद्याच्च तस्यांजन लेपनादि, एषोगदः सर्व विषाणिहन्यात्॥३८॥
अंजनं चैव नस्यं च क्षिप्रंदद्या द्विषान्विते ।

श्लेष्माके स्थानको छोड़कर विष फिर वायु स्थानपर प्रवेश करता है। उसके यह रूप प्रकट होते हैं। पेट फूल जाता है। बांधवोंको भी देखकर पहचान नहीं सकता। ऐसा रूप बना लेता है; आंख गिर जाती है; ऐसे जिसके लक्षण प्रकट हों उसके वायु स्थानमें विष गया समझना चाहिये। इसकी औषध यही है—

शोणा मूल, पियाल, लाल चन्दन, बड़ी पीपल, भार्ङ्गी, वच, छोटी पीपल, देवदारु, महुआ, मुलैठीका सत, सिंधुवार, हींग, इनको पीसकर गोली बनाले। उसीसे आंखोंमें अंजन दे; ज़खम पर लेप लगावे, नाकसे नस्य दे, यही उसके अच्छे होनेका उपाय है। विषका वेग बढ़ने पर जलदी जलदी आंखोंमें अंजन और लेपन आदि करे।

(६) मज्जागत विष और चिकित्सा।

वायुस्थानं ततो मुक्त्वा मज्जास्थानं प्रधावति ॥३९॥
विषेमज्जागते विप्र तस्य रूपाणि मे श्रृणु ॥
दृष्टिश्च हीयते तस्य भृंशमंगानि मुंचति ॥४०॥
एतानि यस्य रूपाणि तस्य मज्जागतं विषम् ॥
तस्यागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥४१॥
घृत मधु शर्करान्वित मुशीरं चन्दनं तथा ॥
एतदालोक्य दातव्यं पाने नस्यं च सुव्रत ॥४२॥
ततः प्रणश्यते दुःखं ततः सम्पद्यते सुखम् ।

विष वायु स्थान छोड़कर मज्जा स्थानपर आजाता है। मज्जामें विषके पहुँच जानेपर उसके यह रूप प्रकट होते हैं—उसकी दृष्टिका नाश हो जाता है और बड़ी पीड़ाके कारण बुरी तरहसे अंग पटका करता है। जिसके शरीरमें यह रूप प्रकट हो समझ लो कि उसके मज्जा भागमें विषने प्रवेश किया है। उसकी औषधि यह है कि घी, शहद, खाण्ड खशखश और चन्दन इनको मिलाकर पीनेको दे और इनका ही नस्य भी दे। ऐसा करनेसे उसकी पीड़ा शान्त हो जाती है और आराम हो जाता है।

अथ तस्मिन् कृते योगे विष तस्य निवर्तते ॥४३॥

इस नुसखेके प्रयोग करनेपर विष उतर जाता है।

(७) मर्मगत विष और चिकित्सा

मज्जास्थानं ततो गत्वा मर्म स्थानं प्रधावति ॥४४॥
विषे तु मर्म सम्प्राप्ते श्रृणु रूपं यथा भवेत् ॥
निश्चेष्टः पतते भूमौ कर्णाभ्यां बधिरो भवेत् ॥४५॥
वारिणा सिंच्यमानस्य रोम हर्षो न जायते ॥
दण्डेन हन्यमानस्य दण्ड राजी न जायते ॥४६॥
शस्त्रेण छिद्यमानस्य रुधिरं न प्रवर्त्तते ॥
केशेषु लुंच्य मानेषु नैव केशान् प्रवेदते ॥४७॥
यस्य कर्णौ च पार्श्वे च हस्तपादौ च संधयः ॥
शिथिलानि भवन्त्याह सगता सुरिति श्रुतिः ॥४८॥
एतानि यस्य रूपाणि विपरीतानि गौतमः ॥
मृतं तु नविजानीयात् कश्यपस्य वचो यथा ॥४९॥
वैद्यास्तस्य न पश्यन्ति ये भवन्ति कुशिक्षितः ॥
विचक्षणास्तु पश्यन्ति मन्त्रौषधि समन्विताः ॥५०॥
तस्या गदं प्रवक्ष्यामि स्वयं रुद्रेण भाषितम् ।
मयूर पित्तं मार्जार पित्तं गन्ध नाड़ी मूलमेव ॥५१॥
कुंकुमं तगरं कुष्ठं कासमर्दं त्वचं तथा ।
उत्पलस्य च किं जलकं पद्मस्य कुमुदस्य च ॥५२॥

एतानि समभागानि गो मूत्रेण तु पेशयेत्।
एषोऽगदो यस्य हस्ते दष्टो न म्रियते स वै ॥५३॥
कालाहिनाऽपि दष्टेन क्षिप्रं भवति निर्विषः।
क्षिप्रमेव प्रदातव्यं मृतसंजीवनौषधम् ॥५४॥
अंजनं चैव नस्यं च क्षिप्रं दद्याद् विचक्षणः ॥

मज्जा स्थान पर जानेके बाद विष फिर मर्म स्थानोंमें जाता है। विषके मर्म स्थान पर पहुँचने पर यह रूप प्रकट होते हैं—मनुष्य निश्चेष्ट होकर भूमि पर गिर पड़ता है; कानोंसे बहरा हो जाता है उस पर ठण्डा पानी डालनेसे रोमांच भी नहीं होता। दण्डेसे जोरसे पीटनेपर शरीरपर निशान नहीं पड़ता, शस्त्रसे काटने पर भी लहू नहीं बहता। केश खींचने पर भी कष्ट नहीं होता; जिसके हाथ, पैर, दोनों बगलें कान और जोड़, सब ढीले पड़ जाते हैं लोग उसको मरा हुआ ही समझा करते हैं। इस प्रकार जिसके सब उलटे रूप दीखने लगते हैं कश्यपके कथनानुसार उसको भी मरा हुआ न समझो। कुशिक्षित वैद्य उस पर कुछ भी ध्यान नहीं देते, वह उसे मरा हुआ जान छोड़कर भाग जाते हैं। विचक्षण विद्वान्, चतुर वैद्य, जिनके पास मन्त्र और ओषधिका बल होता है वह तब भी उसकी चिकित्सा करते हैं। साक्षात् रुद्रने उसकी यह ओषधि बतलाई है।

मोरका पित्त, बिल्लीका पित्त, गन्धनाड़ीका मूल, कुंकुम, तगर, कूठ, कसौंदीकी छाल, लालकमल, श्वेतकमल, पद्म, कुई, इन सबको बराबर लेकर गौ मूत्रके साथ पीस ले और पूर्ववत् पिलावे, लेप करे; नाकसे नस्य दे। यह औषध जिसके हाथमें है वह सांपके काट लेने पर भी कभी नहीं मरता। काला नाग काट ले तब भी उसको विष नहीं चढ़ता। मरे हुएको भी जिला देने वाली यह औषध उसे शीघ्र ही देनी चाहिये और उसीका नस्य अंजन और लेप कराये और खानेको भी दे।

---

# स्वाभाविक चिकित्साके चुटकले

[ ले०—डा० गिरवर सहाय ]

जीर्ण या मंदाग्निके लिए—हलका और निर्जल भोजन; गरिष्ठ भोजन और मिष्टान्नसे परहेज़; भोजनके बाद (विशेष अवस्थाओंमें भोजनके कुछ देरपहले) रसदार फलोंका सेवन; भोजनके पश्चात् कुछ टहलना और कमसे कम दो घंटे तक पठन पाठन या अन्य मानसिक और शारीरिक प्रयास न करना; सामयिक उपवास।

कब्ज़—निर्जल भोजन करना और प्रातः काल जलपान करनेके पूर्व शौच जानेका अभ्यास डालना चाहिये। उसवास मालूम होने पर कभी रोकना न चाहिये। ऊषः पान; रात्रिको सोनेसे कुछ काल पूर्व गरम दूधका सेवन; सुबह 'फलोंके रस' का सेवन; उदर पेशियोंके लिए विशेष व्यायाम; सफ़ेद बारीक आटेकी रोटीसे परहेज़; बेछने या चोकरके आटेकी रोटीका इस्तेमाल और शाक भाजी, ताज़ा फल और मींगीदार मेवोंका सेवन।

आमाशयका व्रण और वृद्धि (Ulcer and Dilatation of stomach)—हलका निर्जल भोजन और नियमित रूपसे 'फलोंके रस' का प्रयोग; जब तक आमाशयका व्रण अच्छा न हो जाय तब तक फलों और मेवोंका ही सेवन करना चाहिये। गाजरका रस भी ऐसी दशामें लाभदायक होता है; भोजन खूब चबा चबा कर करना चाहिये। सब प्रकारका मेद-मय भोजन (रोटी, आलू, हलुआ खीर इत्यादि) बन्द कर देना चाहिये; दो भोजनोंके बीचमें कमसे कम चार घंटेका अंतर होना चाहिये।

बवासीर (अर्श)—निर्जल भोजन; प्रातःकाल एक छटांक 'फलोंका रस' का सेवन। गरिष्ठ और गुरुपाक पदार्थों, मांस, मछली, मदिरा, चाय, कहवा

और मिठाइयों, मंडमय और बादी करने वाली तरकारियों (आलू, अरबी, बैंगन इत्यादि), तेल, गरम मसाले विशेष कर लाल मिर्च, और सब तरहके पेय पदार्थोंसे परहेज़ करना चाहिये। स्थानीय प्रयोगके लिए नीबूके रस (ख़ालिस) की पिचकारी दिनमें दो एक बार लेनी चाहिये। इसके इस्तेमालसे मस्से सिकुड़ जावेंगे और पाखाना भी साफ होने लगेगा। मस्सों पर नीबूके रसमें कपड़ा भिगो कर रखना उपयोगी है। खूनी बवासीरमें भी नीबूके रसकी पिचकारी लेनेसे लाभ होगा। तंबाकू सिग्रेट और हुक़्क़से परहेज़ करना चाहिये या उनका इस्तेमाल बहुत कम कर देना चाहिये। दस्तावर दवाओंसे परहेज़ करना चाहिये।

गुदाके घाव (Fistula in ano)—इस रोगमें भी जैसा मस्सोंके लिए बतलाया गया है, नीबूके रसकी पिचकारी लेनेसे लाभ होता है।

गठिया—निर्जल और निरामिष भोजन और 'फलोंके रस' का नियमित पान। कुछ डाक्टरोंका मत है कि इस रोगमें नीबूके ताज़ा रसके सेवनसे बहुत लाभ होता है। डाक्टर बैलनटाइन नामने इस विषय पर 'नींबू चिकित्सा' नामकी एक छोटीसी पुस्तक लिखी है। वह लिखते हैं कि पहले दो तीन नीबू रोज़से शुरू करके एक नीबू रोजाना बढ़ा कर बारह नीबू तक पहुँचाना चाहिये और फिर इसी तरह एक एक नीबू रोज़ घटा कर पूर्वानुसार दो तीन नीबू रोज़ाना पर आजाना चाहिये। इस इलाजमें नीबूका रस बिना पानी या शकर मिलाये ही शुद्ध रूपमें खाली पेट पीना चाहिये। आरंभसे ही नीबूके रसके सेवन करते रहनेसे जोड़ोंके सूजनकी नौबत नहीं आती।

मोटापा (Obesity)—इसके लिए भी जैसा ऊपर वर्णन हुआ है नीबूके रसका सेवन लाभदायक है। नीबूके रसके नियमित सेवन और अल्प भोजन करने और विशेष कर कच्चे साग भाजियों और फलोंका सेवन करनेसे लाभ होता है। खाना सादा हलका और रूखा (चिकनाई रहित) होना चाहिये। व्यायाम और उपवास चिकित्सासे भी लाभ होता है।

पित्त प्रकोप—नीबूका खालिस रस (आध गिलास तक), भोजनके पूर्व फलोंका सेवन और नीबूके रस की पिचकारी (गुदा द्वारा) भी लाभदायक होती है। प्रातःकाल खाली पेट कच्चा करेला (उसे नमकके साथ खा सकते हैं) का सेवन या नीबू काट कर उसके टुकड़ों पर नमक और काली मिर्च छिड़क कर और आग पर गरम करके प्रयोग कर सकते हैं।

दूध मुंहे बच्चों और छोटे लड़कोंके अपच और दस्तोंमें—दो दो माशे नीबूका खालिस रस (बिना शकर के) आध आध घंटे पर देते रहिये। इससे पेटकी जलन और कै बंद हो जायगी। नीबूका रस खट्टा होता है, पर शरीर पर उसका असर खारी होता है अर्थात् वह आमाशय और रक्तके अम्लाधिक्य और जलनको कम करता है। छोटे बच्चोंको जो अधिक चबा न सकते हों फल और मेवा कुछ कुचल कर देनी चाहिये, दूध मुंह बच्चोंको केवल रसदार फल इनमें (अंगूर सर्वोत्तम है) देना चाहिये। अपचकी शिकायत पैदा होते ही एक खूराक ठंडा पेरा हुआ खालिस रेंड़ीका तेल दे देनेसे पेट साफ़ हो जाता है और शिकायत बढ़ने नहीं पाती। जब तक आंतोंमें बेपचा या अधपचा भोजन बना रहता है रोगकी जड़ नहीं जाती और तरह तरहके विकार उत्पन्न होते रहते हैं। नीबूके रस और गरम जलकी पिचकारी (सम भाग) भी हानिकारक मलको निकालनेके लिए उपयोगी होती है।

मुखकी झांई मुंहासे आदि तथा शरीरके घाव फुड़िया आदि—नीबूका खालिस रस लगाकर उसी जगह सूखने दो। इससे त्वचा पर रसका परत जम जायगा। उस अंगको हवामें खुला रखो;* फुड़ियों

*नीबूका रस कृमिनाशक है और आधुनिक विद्वानोंका मतानुसार समस्त घाव और फुड़ियोंके कारण कृमि ही पाये जाते हैं।

पर मिट्टी बांधनेसे भी उनकी पीड़ा और सूजन कम हो जाती है। इस कामके लिए साफ पिसी, छनी हुई मट्टी (जैसे कच्ची ईंटकी) में पानी मिला कर गाढ़ा गाढ़ा लेप करना चाहिये। मिट्टी-को आवश्यकतानुसार जल्दी जल्दी बदलते रहना चाहिये या बीचमें दो एक बार मिट्टीको केवल पानीसे गीला कर देनेसे भी काम चल सकता है। अधिक फुड़िया निकलती हों तो नियमित रूपसे 'फलोंका रस' पिलाना चाहिये। इससे खून साफ हो जावेगा। ऐसी दशामें बिना रक्त शुद्धि कोरे नशतरके प्रयोग से काम नहीं चलता।

आंखें उठना—आंखोंको नीबूके रस और गुनगुने पानी (सम भाग) से धोओ। त्रिफला (हड़ बहेड़ा आंवला) को रात्रिमें भिगोकर प्रातः उसके पानीसे आंख धोनेसे भी आंखोंके रोग शांत होते हैं।

पुराना जुकाम और नज़ला—इन रोगोंमें लगातार कफ़ जानेसे मनुष्यका शरीर फेफड़े और रक्त निर्बल हो जाते हैं। ऐसी दशामें शरीरको सहजमें सरदी लग जानेका खटका रहता है और क्षयी रोगके बीजारोपणके लिए भी परिस्थिति अनुकूल हो जाती है। इसी लिए नज़ला या जुकाम बहुधा क्षयीके पूर्व रूप होते हैं। ऐसे रोगोंमें शरीरके जिस अंगमें रोग हो केवल उसीकी चिकित्सा करनेसे कोई लाभ नहीं होता। इसलिए शरीरके कुल ढांचेको भीतर और बाहर दोनों प्रकारसे शुद्ध करनेका प्रयत्न करना ही अधिक युक्तियुक्त है। स्वाभाविक भोजन विधिका प्रयोग सब रोगोंके लिए लाभदायक है। यही नहीं रोगके आरंभमें ही भोजनमें स्वभावानुकूल यथोचित परिवर्तन करनेसे रोगकी जड़ जमने नहीं पाती और वह बहुत जल्द शांत हो जाता है। पुराने जुकाम और नज़लोंमें नीबूका रस और गरम पानी सम भागमें मिलाकर और सिरको एक ओर झुका कर एक छोटी चम्मच से उस मिश्रणको बारी बारीसे नाकके दोनों नथनों-में टपकाना चाहिये। इस प्रयोगको कुछ समय तक करते रहनेसे पुराने पुराने रोगी भी अच्छे हुए हैं। गाने और सीटी बजानेका अभ्यास करनेसे भी लाभ होता है।

कानकी पीड़ा—यह शिकायत अकसर यूस्टे-कियन नलिकाओंके सूजनेसे, जो नाककी जड़से दोनों ओर कानके भीतर तक जाती हैं, हो जाती है। नीबूका रस और गुनगुना पानी समभागमें या केवल नीबूका रस गरम करके कानमें टपकानेसे कानकी पीड़ा शांत हो जाती है। लहसुनके जवे तेलमें भूनकर उस तेलको गुनगुनी दशामें कानमें टपकानेसे भी कानकी पीड़ा जाती रहती है।

निद्रा भँग—प्याजके गट्ठेको या कच्चा ही भापसे या थोड़े जलमें उबाल कर रात्रिको सोनेसे पूर्व खा लेनेसे निद्रा आ जाती है।

दस्त और पेचिश (आंव)—किसी ओषधि या भोजनके सेवनसे दस्तोंको रोकनेका प्रयत्न न करो। स्वभावतः जो मल या आंव निकल रहा हो उसे निकल जाने दो। नीबूका खालिस रस (बिना शक्करके) एक एक घंटे पर एक गिलास या कम पिओ। नीबूके रससे आंतें साफ़ हो जावेंगी। नीबूके रसकी पिचकारी (गुदाद्वारा) लगानेसे भी लाभ होता है।

रक्त दौर्बल्य (anaemia)—प्रातःकाल 'फलों-का रस' और भोजनसे पूर्व और रातको सोनेसे पूर्व छटांक भर गाजरका रस पियो। इस इलाजसे बच्चोंको बहुत फायदा होता है। गाजरमें लोहा और संखिया आंगारिक (organic) रूपमें पाये जाते हैं, जो इन पदार्थोंके खनिज रूपकी अपेक्षा अधिक और स्वाभाविक अतः सद्य गुणदायक है।

सरदी, जुकाम, खराई और खांसी—एक चम्मचमें कुछ बूंद नीबूका खालिस रस लेकर, मुंह खोलकर बिल्कुल हलकके पास उतार दो और इस क्रिया को दिनमें कई बार करो। खराई या खांसीमें दवाओंकी कुल्ली करनेसे कोई लाभ नहीं होता। रोगका असली कारण कंठके ऊपर और नासिका की नालीके पीछे होता है। नीबू चूसने या उसका रस पीनेसे कोई लाभ नहीं क्योंकि ऐसा करनेसे

कंठमें पहुँचते पहुँचते नीबूका रस थूकसे मिलकर हलका हो जाता है। उपर्युक्त क्रियासे गवैयों और अधिक बोलने वालोंको भी लाभ होता है।

क्षयी, दमा, खांसी, खराई, नज़ला इत्यादि फेफड़ेके समस्त रोगोंमें स्टाकहोम टारके नाससे (Stockholm Tar inhalation) बड़ा लाभ होता है। इस औषधिको तोला सवा तोलाके परिमाणमें किसी लोहेकी रकाबी या तवेमें रख कर उसे धीमी आंच या शराबकी बत्ती (Spirit Lamp) पर चढ़ा दो। जब रकाबीसे धुआं निकलने लगे तो उसे आंचसे हटा कर धुएंकी नास लो। यह नास आवश्यकतानुसार आध आध घंटे बाद दिनमें कई बार ली जा सकती है। सांस गहरी और नथनों द्वारा लेनी चाहिये।

स्टाकहोमटारके बदले धूपकी लकड़ी जलाकर उसके धुएंसे भी हम इसी प्रकार नासका काम ले सकते हैं। एक और विधि है। एक तोला लोबान पीस लो। एक लोटेमें आध सेर जल आग पर चढ़ा दो। जब पानी उबलने लगे तो उसे आगसे उतार कर उसमें पिसा हुआ लोबान डाल दो। अब एक कंबलका टुकड़ा या साधारण अंगौछा लोटेके मुंह पर इस तरह लपेटो कि लोटेके मुँहसे भापके लिए कपड़ेका नलिका की तरह एक मार्ग बन जाय। इसके दूसरे सिरे पर मुंह लगाकर बफारा लेना चाहिये। बफारा लेते समय और कुछ देर बाद तक रोगीको अपना शरीर कम्बलसे ढका रखना चाहिये।

---

## खाद्य पदार्थोंका रासायनिक संगठन

इस देशमें नित्य व्यवहारमें आनेवाले खाद्य पदार्थों का रासायनिक संगठन नीचे दिया जाता है।

### अन्न वर्ग

प्रति सौ भागमें जितने भाग जिस पदार्थ के हैं वह यहां दिखाये जाते हैं।

| नाम | प्रोटीन | स्नेह (वसा) | कर्बोज (श्वेतसार) | खनिज पदार्थ | जल |
|---|---|---|---|---|---|
| गेहूं | ११·४७ | २·०४ | ७०·६० | ३·१४ | ११·८३ |
| जौ | ८·६२ | १·६० | ७६·१० | २ — ३ | १२·३ |
| मक्की | ९·५२ | ४·४४ | ६८·६ | ३·७५ | ११·५० |
| चावल | ६·६२ | ०·५० | ८१·०७ | १·०४ | ११·०५ |
| बाजरा | ८·७२ | ४·७६ | ७३·४० | १·५ — २·० | ११—१२ |
| चना | १९·६१ | ४·३४ | ५४·२२ | ३ — ४ | १०—११ |
| जुआर | ७·६७ | २·७७ | ६७·१६ | ... | ... |
| गेहूंका आटा छना हुआ | १०·७ | १·१ | ७५·४ | ०·५ | ... |
| ” ” फूल मैदा | ७·३ | १·४ | ७६·४ | ०·५ | ... |
| चोकर (गेहूंका) | १६·४ | ३·५ | ४३·६ | ६·० | १२·५ |

इन सबमें २—३% काष्ठोज होता है। चोकरमें १८% काष्ठोज होता है।

### दाल वर्ग

| नाम | प्रोटीन | स्नेह (वसा) | कर्बोज |
|---|---|---|---|
| मूंग | २३·६२ | १·६९ | ५३·४५ |
| मसूर | २५·४७ | १·०० | ५५·०३ |

| नाम | प्रोटीन | स्नेह (वसा) | कर्बोज |
|---|---|---|---|
| मटर | २२·०१ | १·९६ | ५३·६७ |
| अरहर | २१·७० | २·५० | ५४·०६ |
| उड़द | २२·३३ | १·६५ | ५५·२२ |
| चना | १६·६१ | ४·३४ | ५४·२२ |

इन सबोंमें १०–११% जल, ३–४% खनिज पदार्थ और शेष भाग काष्ठोज होता है

## शाक वर्ग

| नाम | प्रोटीन | स्नेह | कर्बोज | खनिज पदार्थ | जल |
|---|---|---|---|---|---|
| बंद गोभी ( करम कल्ला ) | १·८ | ०·४ | ५·८ | १·३ | ८९·६ |
| फूल गोभी | २·२ | ०·४ | ४·७ | ०·८ | ९०·७ |
| टोमाटो | १·३ | ०·२ | ५·० | ०·७ | ९१·९ |
| खीरा | ०·८ | ०·१ | ३·१ | ०·४ | ९५·९ |
| आलू | २·२ | ०·१ | १५·७—२०·६ | १·० | ७८·३ |
| शलजम | ०·९ | ०·१५ | ५·० | ०·८ | ९०·३ |
| गाजर | ०·५ | ०·३ | १०·१ | ०·९ | ८६·५ |
| हरी मटर | ४·० | ०·५ | १६·० | ०·९ | ७८·१ |
| प्याज | १·६ | ०·३ | १०·१ | ०·६ | ८७·६ |
| मूली | १·३ | ०·७ | १४·५ | १·० | ८२·५ |
| केला | १·३ | ०·६ | २१·० | ०·८ | ७५·३ |
| भिंडी | १·९६ | १·१ | ५·७१ | ०·८ | ९०·४ |
| बैंगन | ०·८९ | ०·९४ | ३·४८ | ०·२६ | ९०·९८ |
| मीठा कद्दू | ०·९० | १·० | ३·९६ | ०·७ | ९३·४० |

इन सब में थोड़ा बहुत काष्ठोज होता है।

## फल वर्ग

| नाम | प्रोटीन | स्नेह | कर्बोज | लवण अम्ल | जल |
|---|---|---|---|---|---|
| सेव | ०·४ | ०·५ | १२·५ | १·४ | ८२·५ |
| नाशपाती | ०·४ | ०·६ | ११·५ | १·४ | ८३·९ |
| आड़ू | ०·५ | ०·२ | ५·८ | १·३ | ८८·८ |
| बेर | १·० | ... | १४·८ | १·५ | ७८·४ |
| शहतूत | ०·३ | ... | ११·४ | २·४ | ८४·७ |
| अँगूर | १·० | १·० | १५·५ | १·० | ७९·० |
| खरबूज़ा ( गूदा ) | ०·७ | ०·३ | ७·६ | ०·६ | ८९·८ |
| तरबूज़ ” | ०·३ | ०·१ | ६·५ | ०·२ | ९२·९ |
| नारंगी | ०·९ | ०·६ | ८·७ | २·० | ८६·७ |
| नीबू | १·० | ०·९ | ८·३ | ०·५ | ८९·३ |

| नाम | प्रोटीन | स्नेह | कर्बोज | खनिज पदार्थ | जल |
|---|---|---|---|---|---|
| अनन्नास | ०·४ | ०·३ | ९·७ | ०·३ | ८९·३ |
| अनार | १·५ | १·६ | १६·७ | ०·६ | ७६·८ |
| खीरा ककड़ी | ०·८ | ०·१ | २·१ | ०·४ | ९५·९ |
| गाजर | ०·५ | ०·३ | १०·१ | ०·९ | ८६·५ |
| अँजीर ( ताज़ा ) | १·५ | ... | १८·८ | ०·६ | ७९·१ |

मिष्ट फलोंमें कर्बोज अधिकतर शर्करा (द्राक्षौज) के रूपमें पाया जाता है। सब फलोंमें २ से ५% काष्ठोज होता है। आधी छटांक नीबू के रसमें २॥ माशे साइट्रिक अम्ल होता है।

## शुष्क फल वर्ग
### ( मेवे )

| नाम | प्रोटीन | स्नेह | कर्बोज | खनिज पदार्थ | जल |
|---|---|---|---|---|---|
| चेस्टनट (पांगर) ताज़ा | ६·६ | ८·० | ४५·२* | १·७ | ३८·५ |
| ,, सूखे | १०·१ | १०·० | ७१·४* | २·७ | ५·८ |
| अखरोट सूखे | १५·६ | ६२·६ | ७·४ | २·० | ४·६ |
| बादाम (मीठा) | २४·० | ५४·० | १०·० | ३·० | ६·० |
| पिस्ता | २१·७ | ५१·० | १४·० | ३·३ | ७·४ |
| मूंग फली† | २७·५ | ४४·५ | १५·७ | २·५ | ७·५ |
| मुनक्का | १·२ | ३·० | ६४·० | २·२ | २७·६ |
| किशमिश | २·५ | ४·७ | ७४·७ | ४·१ | १४·० |
| नारियल नागरी (सूखा) | ६·० | ५७·४ | *३१·८ | १·३ | ३·५ |
| ,, नारियल (कच्चा गूदा) | ५·२ | ३५·९ | ८·४ | १·० | ४६·६ |
| नारियल का दूध | ०·५ | ... | ९·० | ... | ९०·३ |

*इन मात्राओंमें काष्ठोज की मात्रा भी शामिल है; शेष चीज़ोंमें ३—७% काष्ठोज होता है।

†मूंगफलीमें २·२% काष्ठोज होता है।

## साबूदाना और अरारूट

| नाम | कर्बोज (श्वेत सारके रूपमें) | प्रोटीन और लवण | जल |
|---|---|---|---|
| सागोदाना | ८६·७ | प्रोटीन अंश मात्र | शेष भाग |
| अरारूट | ८२·५ | अंश मात्र | ,, |

## दुग्ध वर्ग

| प्राणी | प्रोटीन | वसा | शर्करा | लवण | जल |
|---|---|---|---|---|---|
| स्त्री ( भारतवर्षी ) | १·२ | २·८० | ५·९० | ०·२४ | ८९·८६ |
| गाय | ३·५ | ४·० | ३·५ | ०·७५ | ८७·२५ |
| भैंस | ६·११ | ७·४५ | ४·१७ | ०·८७ | ८१·४० |
| बकरी | ४·३ | ४·७८ | ४·४६ | ०·७५ | ८५·७१ |
| गधी | २·२५ | १·६५ | ६·०० | ०·५० | ८९·६० |

## दुग्ध निर्मित भिन्न भिन्न पदार्थ

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| मक्खन | २·०० | ८५·०० | ... | १·०० | १२·६५ |
| दही | २४·०६ | २·५ | ... | १·१ | शेषभाग |
| तोड़ ( दहीका पानी ) | ०·८२ | ०·२४ | ४·६५ | ०·६५ | ९३·६४ |
| मलाई | २·५ | २०-६५ ( सामान्यतः ४५ ) | ४·५ | ०·५ | शेषभाग |

## दुग्धके लवण

स्त्रीके दुग्धकी राखमें यह लवण पाये जाते हैं।

| | | | |
|---|---|---|---|
| कैल्सियम फ़ौस्फेट | २३·८७ % | पोटासियम सल्फेट | ८·३३ % |
| " सल्फेट | २·२५ " | मग्नेसियम कार्बोनेट | ३·७७ " |
| " कार्बोनेट | २·८५ " | सोडियम क्लोराइड | २१·७७ " |
| " सिलीकेट | १·२७ " | फेरिक ओक्साइड | |
| पोटासियम कार्बोनेट | २३·४७ " | वा अल्युमिनियम | ०·३७ |
| " क्लोराइड | १२·०५ " | | |

योग १००·००

## मांसवर्ग

| प्राणी | प्रोटीन | वसा | शर्करा | लवण | जल |
|---|---|---|---|---|---|
| बकरा | १८·० | ५·० | ... | १·० | ९६·० |
| मछली ( पाइक ) | १८·३ | ०·७ | ०·६ | ०·८ | ७९·३ |
| हिरन | १६·७ | १·६ | ... | १·१ | ७५·७ |
| खरगोश | २२·३ | १·१ | ... | १·१ | ७४·० |
| मुर्गी | २२·७ | ४·१ | १·३ | १·१ | ७०·४ |
| गाय बैल | २०·० | १·५ | ०·६ | १·२ | ७६·७ |
| **डिंब ( अंडा )** | | | | | |
| समूचा अंडा (खोल सहित) | १३·५० | ११·६० | ... | १·२० | ७६·५० |
| अंडेका श्वेत भाग | १२·८७ | ०·२५ | ... | ०·६३ | ८५·५० |
| अंडेका पीला भाग | १६·१२ | ३१·३९ | ... | १·०१ | ५१·०३ |

अंडेका खोल अधिकतर खटित कर्बनितसे बनता है। अंडेके सौ भागमें १० भाग खोल, ६० भाग सुफेदी और ३० भाग जर्दीके होते हैं।

## कुछ भोजनों के नमूने

| भोजन ( २४ घंटेमें ) | | मूल अवयव |
|---|---|---|
| गेहूं का आटा | ६ छटांक | |
| दाल | १½ " | |
| दुग्ध | १२ " | प्रोटीन ८४ माशे |
| घृत | १ " | वसा ६२ " |
| शर्करा | ½ " | कर्बोज ३५१ " |
| शाक | यथेष्ट | |

उपर्युक्त भोजनमें प्रोटीन और वसा यथेष्ट परिमाणमें हैं, कर्बोज कुछ अधिक है। मस्तिष्कके काम करने वालोंके लिए अच्छा भोजन है।

### गुरुकुल विश्व विद्यालय कांगड़ीके विद्यार्थियोंका भोजन

| भोजन ( २४ घंटे में ) | | मूल अवयव |
|---|---|---|
| आटा | ७ छटांक | |
| चावल | २ " | |
| दाल | २ " | प्रोटीन १०५ माशे |
| घृत | १ " | वसा ६३ " |
| दुग्ध | १२ " | कर्बोज ५१४ " |
| शर्करा | १ " | |
| शाक | यथेष्ट | |

उपर्युक्त भोजन १८ से २५ वर्षकी अवस्थाके विद्यार्थियोंको जिनका भार १½ मनके लगभग होता है, दिया जाता है।

## खिचड़ी

| खिचड़ीके पदार्थ | | मूल अवयव |
|---|---|---|
| चावल | ३ छटांक | प्रोटीन ४० माशे |
| मूंगकी दाल | २ " | वसा ५१ " |
| घी | ४ तोला | कर्बोज २१८ " |

## खीर

| खीरके पदार्थ | | मूल अवयव |
|---|---|---|
| दुग्ध | १६ छटांक | प्रोटीन ३७ माशे |
| चावल | १ " | वसा ३६ " |
| शर्करा | ३ " | कर्बोज २६४ " |

# स्वास्थ्यके वैज्ञानिक अध्ययनकी आवश्यकता

( ले०—श्री० मोहनलाल बी० ए० )

बीसवीं शताब्दीकी सभ्य समाजका मुख्य लक्षण वैज्ञानिक विचारोंकी प्रधानता तथा प्रमाणिकता है। अवैज्ञानिक रीतिसे विचार करनेवालोंको कोई नहीं पूछता। जिस विषयको देखिये उसपर अवैज्ञानिक रीतिसे विचार करनेवालेको कोई नहीं पूछता अर्थशास्त्र और इतिहास आदि विषयोंने भी अपना पुराना चोला बदल कर वैज्ञानिक बाना धारण कर लिया है। भारतवर्षकी अवनतिका एक कारण यह भी है कि भारतवासी वैज्ञानिक विचारोंको न ग्रहण करते हैं और न उनके उत्कर्षकी ओर ध्यान ही देते हैं। इसलिए प्रस्तुत विषयपर कुछ लिखनेसे पहिले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि पाठकोंको विज्ञानके यथार्थ रूपसे परिचित कर दिया जाय।

भारतवासियोंके सामने जब 'विज्ञान' का नाम लिया जाता है तो वह विस्मित हो जाते हैं। उनकी समझमें विज्ञान जादू या भूत-विद्यासे किसी प्रकार कम गहन नहीं। परन्तु यह सर्वथा भूल है। विज्ञान हमारे नित्यके ज्ञानके विपरीत नहीं। बल्कि व्यवहारिक ज्ञान ही क्रम-बद्ध (systematized), यथार्थ (precise), और पूर्ण (thorough) होकर विज्ञान बन जाता है। विज्ञान हमारे नित्यके ज्ञानका शुद्ध और विश्वसनीय रूप है। भारतमें विज्ञानका जन्म हुआ, भारतमें ही वैज्ञानिक पद्धतिका सबसे पहले उपयोग हुआ; दर्शन, तंत्र, आयुर्वेद आदि इस बातके कुछ प्रमाण हैं; किन्तु विज्ञान नित्य बर्द्धमान है; वैज्ञानिक शैलीका उपयोग हम लोगोंने बहुत दिनसे छोड़ दिया है, पर अब उसके बिना काम न चलेगा। जैसे और विषयोंपर हमारे विचार अवैज्ञानिक हैं वैसे शरीर तथा इसके पालन पोषणपर भी हम प्रायः शारीरिक शक्ति और उन्नतिके विषयमें बातें करते समय अपने बलवान् पहलवानोंपर घमण्ड किया करते हैं, और कुछ अंशमें यह ठीक भी है। कौन 'राम-मूर्त्ति' जैसे पहलवानको, जिसने देश देशान्तरमें हमारा मुख उज्ज्वल किया है, अपने देशका गौरव नहीं समझता। परन्तु क्या प्रोफेसर राममूर्त्तिका नाम और पुरुषार्थ हमारे अभिमानकी ज्वालाको प्रचण्ड करनेके अतिरिक्त किसी और प्रकारसे लाभदायक होगा? वह अपने भीषण शारीरिक बलसे मोटर भले ही रोक दें, अपने सीने परसे हाथी भले ही उतरवा दें, परन्तु क्या यह सब दो शताब्दिके बाद हमारे लिए अनन्त बल-शाली हनुमान्के पहाड़ उठा लानेकी कथासे किसी प्रकार अधिक लाभदायक हो सकेगा—यह प्रश्न है जो हमें केवल छोटे छोटे पहलवानोंसे ही नहीं, बल्कि अपने बड़े दिग्गज महावीरोंसे पूछना है।

दूसरी ओर देखिये। अमेरिका और यूरोप में भी मनुष्य ही हैं, जिन्होंने न तो मोटर ही रोकी और न हाथी ही सीनेपरसे उतरवाया; परन्तु मनुष्यकी शरीर-रचनाका अध्ययन करके उन्हें पृथक् पृथक् भागोंकी कार्य-प्रणालीका ज्ञान प्राप्त किया और पता चलाया कि मनुष्यके शरीरमें विविध अवयवोंको भली भाँति अपना कार्य करनेके लिए किन किन पदार्थोंकी आवश्यकता है और वह किन किन खाद्य वस्तुओंमें सरलता पूर्वक प्राप्त हो सकते हैं। उन्होंने विशेष प्रकारके व्यायामोंका भी अन्वेषण किया है जिनसे शरीरके विविध अङ्गोंको शक्ति प्राप्तिमें सहायता मिलती है। यह महानुभाव हैं जिन्होंने अपने देशका ही उपकार नहीं किया, परन्तु जिनकी समस्त मानव-जाति ऋणी है।

इन दो प्रकारके मनुष्योंमें क्या अन्तर है। केवल यही न कि हमारे भाई ज्ञानकी कुछ भी परवाह नहीं करते? उन्हें यदि ध्यान है तो केवल

इस बातका कि किसी न किसी प्रकार अपना स्वार्थ-सिद्ध करें। यूरोप और अमेरिकामें लोगों-का विश्वास है कि अज्ञानी अपना काम, वह चाहे कुछ भी क्यों न हो, भली प्रकार नहीं कर सकता। पहले वहाँ भी शारीरिक उन्नतिका काम बे पढ़े लिखे लोगोंके ही हाथमें था। परन्तु जब योग्य वैज्ञानिकोंने इसे सँभाला तो अनपढ़ोंको इससे हाथ उठा लेना पड़ा। अब वहाँ अखाड़ों ( gymnesiums ) में अयोग्य पुरुषोंको नवयुवकोंके स्वास्थ्यकी देखभाल करने और व्यायाम करानेको नियुक्त नहीं किया जाता। परिणाम यह है कि वहाँ सर्वसाधारणकी शारीरिक दशा भारतवर्षसे कहीं अच्छी है, और अनेक प्रकारकी उन्नति हो रही है।

यह सब बातें हमारे लिए नई हैं। हम स्वास्थ्य और शक्तिमें भी कुछ भेद नहीं समझते। यदि कोई स्वस्थ है, तो हम उसमें प्रचण्ड बलका होना अनिवार्य जानते हैं। चाहे कोई पहलवान कहलानेवाला मनुष्य रोगग्रस्त ही क्यों न हो, तो भी वह हमारी दृष्टिमें एक साधारण मनुष्यसे, जिसका शरीर बिलकुल नीरोग है और भली भांति कार्य करता रहता है, कहीं अधिक "स्वस्थ" है।

पाश्चात्य विद्वानोंका विचार इसके सर्वथा प्रतिकूल है। उनकी सम्मतिमें बल और स्वास्थ्यमें बहुत कुछ अन्तर है। शारीरिक बल एक अस्वस्थ मनुष्यमें भी हो सकता है; स्वस्थ होनेके लिए अधिक बलकी आवश्यकता नहीं है। 'स्वास्थ्य' शरीरके अङ्गोंका भली भांति काम करते रहना है। ऐसे लोग बहुधा मिलेंगे जो बलवान् हों परन्तु स्वस्थ न हों। स्वास्थ्यके लिए समस्त अङ्गोंका सामञ्जस्य पूर्वक विकाश (Harmonious development) होना आवश्यक है; समस्त अवयव एक समान पुष्ट और बलवान् होने चाहिये। ऐसा न हो कि पाँव तो सुन्दर, सुडौल बन जायँ; परन्तु हाथ, सीने, और गर्दनके पट्ठे दुर्बल और पतले बने रहें। सबका साथ साथ बढ़ना और पुष्ट होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, हम यह बात भी नहीं जानते कि जीवन-शक्ति ( vitality ) उस ही मनुष्यको प्राप्त हो सकती है जो पूर्णतया स्वस्थ हो। ऐसी शक्ति केवल अखाड़ेमें कुश्ती लड़नेके ही लिए उपयोगी नहीं समझनी चाहिये। बल्कि यह मानसिक और सदाचार-सम्बन्धी उन्नतिका भी आधार है। इसके बिना इस जीवनमें कुछ भी महत्कार्य नहीं कर सकते। वास्तवमें सफलता और उन्नतिकी यही एक सीढ़ी है, जिसको न जाननेके कारण हम आज अधोगतिको प्राप्त हुए हैं।

हमारे यहाँके साधारण पुरुषोंको नहीं पहलवानोंको ही देखिये। उनमें भी जीवन शक्ति बहुत कम होती है। वह यदि कुछ कर सकते हैं तो कसरत और कुश्ती। उन्हें विज्ञानके सिद्धान्तोंसे कुछ तात्पर्य नहीं; उन्हें राजनीतिकी जटिल समस्याओंसे कुछ सम्बन्ध नहीं; उन्हें अपने अङ्ग प्रत्यङ्गका भी पूर्ण ज्ञान नहीं। वह यदि कुछ जानते हैं तो व्यायाम; उनका कोई कार्य-क्षेत्र है तो अखाड़ा। ऐसे मनुष्योंको तो वस्तुतः 'मनुष्य' कहना भी उचित प्रतीत नहीं होता।

जब हम इन लोगोंकी अवस्था पर विचार करते हैं, तो हमें भारतका भविष्य बड़ा ही सन्दिग्ध और कण्टक पूर्ण ज्ञात होता है। अपने और अन्य पुरुषोंके हृदयको आगामी सुखोंके सर्वाङ्ग सुन्दर चित्र खींच कर प्रफुल्लित कर देना एक बात है; और समयकी दशा कुदशा पर विचार कर परिणाम निकालना दूसरी ही बात है। सत्य तो यह है कि हमें भारतका भविष्य बनानेके लिए बहुत कुछ करना है। देशकी उन्नति और अवनति कोई हँसी खेल नहीं है; यह तो जीवन मरणका प्रश्न है। हमारे सामने इस समय एक बड़ा कर्त्तव्य उपस्थित है। हमें भारतमाताका सिर संसारकी उच्च जातियोंमें उन्नत करना है; हमें सजीव और स्वनामधन्य सुपुत्र बनना है; हमें जीवन-क्षेत्रमें अपमान और पराजयको तिरस्कृत

कर देव-दुर्लभ यशो-लाभ करना है। आओ, अपनी पुरानी, अवैज्ञानिक प्रथाओंका परित्याग कर, 'विज्ञान' के भावको ग्रहण करें और शरीरके अवयवों, उनकी रचना, तथा आवश्यकताओं पर विचार कर अपनेको सुदृढ बनायें। तब ही भारत की गणना संसारकी उच्च जातियोंमें हो सकेगी।

---

## श्रीदण्डी

### १—परिचय

मय बड़ा वली है। इसीके हेर फेरसे भारतवर्षकी अनेक प्राचीन कीर्तियोंका लोप हो गया। और तो जाने दीजिये—हमारे बड़ेसे बड़े आचार्योंके जीवनकी मुख्य घटनायें भी किसीको नहीं मालूम हैं। जिन काव्योंको देखकर जर्मनी प्रभृति देशोंके बड़े बड़े पण्डित मुग्ध हो चुके हैं उनके रचयिताओंकी एक भी वास्तविक जीवनी विद्यमान नहीं है। कालिदास, भारवि, दण्डी, माघ और भवभूति इत्यादि महाकवियोंकी रचनायें जगत्प्रसिद्ध हो रही हैं; पर कितने लोगोंको इनकी जाति, जन्मस्थान, शिक्षा अथवा रचना कालका ही ठीक ठीक ज्ञान है? महाकवि दण्डीको ही लीजिये—इसके नाम धेयके सम्बन्धमें भी विद्वानोंको विविध शङ्कायें हैं। प्रायः यही माना जाता है कि या तो इस कविका नाम ही "श्री दण्डी" था अथवा यह उसका उपनाम या साहित्यिक नाम था। एक प्रसिद्ध विद्वान्‌की तो यह कल्पना है कि वह स्वामी शङ्कराचार्य्यके अनुगामी दण्डी सम्प्रदायका था; इसीसे दण्डीकवि नामसे विख्यात हुआ। परन्तु स्वामी शङ्कराचार्य्य बहुमत से आठवीं शताब्दीमें हुए थे और दण्डी कवि छठीमें। हाँ यह हो सकता है कि वह वृद्धावस्थामें वर्णाश्रम धर्मके सिद्धान्तानुसार सन्यासी ही रहा हो। काव्यादर्शके निम्नाङ्कित श्लोकोंसे भी यही प्रकट होता है—

> गतः कामकथोन्मादो गलितो यौवनज्वरः।
> गतो मोहश्च्युता तृष्णा कृतं पुण्याश्रमे मनः ॥२।२४८॥
> वनान्यमूनि न गृहाण्येता नद्यो न योषितः।
> मृगा इमे न दायादास्तन्मे नन्दति मानसम् ॥२।२४९॥

दशकुमारचरितकी पूर्वी पीठिकाके आरम्भमें एक प्रसिद्ध माङ्गलिक छन्द है, जिसमें दण्ड शब्द कई वार आया है। श्रीयुत कालेका मत है कि पूर्व पीठिकाकी रचना सम्भवतः दण्डीके किसी शिष्यने की थी। लेखकको यह मत मान्य नहीं जँचता। किन्तु यदि यह ठीक हो तो पूर्व पीठिकाकारने अवश्य ही मङ्गलाचरणमें अपने गुरुका सङ्केत किया है। वह छन्द इस प्रकार है:—

> ब्रह्माण्डच्छत्र दण्डः शत धृति भवनाम्भोरुहो नाल दण्डः
> क्षोणी नौ कूप दण्डः क्षरदमर सरित्पट्टिका केतु दण्डः।
> ज्योतिश्चक्राक्ष दण्डस्त्रिभुवन विजयस्तम्भ दण्डोङ्घ्रिदण्डः
> श्रेयस्त्रैविक्रमस्ते वितरतु विबुध द्वेषिणां काल दण्डः ॥

पर बहुतोंका यह कथन है कि पूर्व पीठिकाका माङ्गलिक छन्द भी दण्डीकी ही रचना है। लोग कहते हैं कि मङ्गलाचरणमें दण्ड शब्दका अनेक वार प्रयोग करनेसे ही दश कुमार-चरितके रचयिताका नाम दण्डी पड़ा। इस छन्दमें दण्ड नीति या राजविद्याके कई पारिभाषिक शब्द हैं। त्रैविक्रम शब्द द्वारा भी राजा बलिके पराभव एवं वामनकी त्रिभुवन बिजयिनी कलाका निर्देश हुआ है। इस मङ्गलाचरणमें राजनीतिके कतिपय मुख्य लक्षणोंका समावेश तो है ही; इसके द्वारा कविने ग्रन्थका मुख्य विषय भी प्रकट कर दिया है। वास्तवमें ठीक यही जँचता है कि दण्डनीति या राजविद्यामें निपुणताके ही कारण हमारे चरित नायकको दण्डी दण्ड्याचार्य्य एवं आचार्य दण्डी की सम्मानास्पद उपाधि दी गयी। साहित्य और राजनीतिके अनुवर्ती मर्म्मज्ञोंमें उसका बड़ा आदर था तथा उसकी गणना राजविद्याके मुख्य आचार्य्यों में होती थी।

इस महानुभावका नामधेय तो संदिग्ध है ही; इसकी जाति और धर्मका भी ठीक पता नहीं

चलता। दशकुमार चरितके आधार पर इतना कहा जा सकता है कि वह पौराणिक मतावलम्बी हिन्दू था। श्रीयुत कालेने श्रीदण्डीको वैष्णव माना है। परन्तु ग्रन्थोंमें दण्डीने शिवका ही उल्लेख प्रचुरताके साथ किया है। काव्यादर्श एवं दशकुमार चरितमें अन्य देवताओंका नाम भी आया है। उन दिनों जैनियोंकी भी कमी न थी। उस सम्प्रदायमें अनेक बड़े बड़े विद्वान् और कवि हो गये हैं। पर इस मतके विषयमें दण्डीके भाव सङ्कीर्ण थे। अपहार वर्म्म चरितमें जैनमतको पाषण्ड पथ एवं अधर्म्मवर्त्म करके लिखा है। वास्तवमें उस समय हिन्दुओं तथा जैनियोंमें विरोध था। अनुमान यही होता है कि आचार्य्य दण्डी श्रुति स्मृति विहित धर्म्मका अनुयायी ब्राह्मण था। इससे अधिक उसके विषयमें नहीं कहा जा सकता।

श्रीयुत एम. रङ्गाचार्य्यने लिखा है कि दण्डी काञ्ची नगरीमें रहता था। वहां वह पल्लव वंशके राजकुमार या राजकुमारोंको अलङ्कार शास्त्र पढ़ाने के कार्य्य पर नियुक्त था। वास्तवमें वहां वह थोड़े ही समय तक रहा होगा। उसकी पुस्तकमें कावेरी आदि नदियों तथा अन्य कतिपय दूरवर्ती दक्षिणी स्थानोंका उल्लेख अवश्य है पर वह सुदूरवर्ती दक्षिण देशसे अधिक परिचित नहीं मालूम होता। कुछ निश्चय पूर्वक इतना ही कहा जा सकता है कि वह मध्य या नैर्ऋत कोणवर्ती भारतका निवासी था।

इसने काव्यादर्शमें महाराष्ट्री भाषा और वैदर्भी रीतिकी बड़ी प्रशंसा की है। इससे अनुमान होता है कि वह विदर्भ या वरारका निवासी था। उसने मगध और मालवाका वर्णन उच्चकोटिका किया है। मगधकी राजधानी पुष्पपुरी और मालवाकी राजधानी अवन्तीपुरमें थी। पूर्व पीठिकामें लिखा है कि मालवाने मगधकी अधीनता अङ्गीकार कर ली थी। पर पीछे मगध भी मालवाके अधीन हो गया। दण्डीने वहांके राजाकी बड़ी प्रशंसा * की है। फिर पुष्पोद्भव चरितमें उसने† मालवाको भूमण्डलका स्वर्ग माना है। यह ठीक है कि कथा भाग आरम्भ मगधमें ही हुआ है। और ग्रन्थके अन्तिम भागमें पुष्पपुरीमें ही राजवाहनका अभिषेक भी हुआ जिसकी अधीनतामें समग्र भारत वर्षके अनेक राज्य सम्मिलित थे; पर दशकुमार चरितको विचार पूर्वक पढ़नेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि पुस्तककी विस्तृत घटनायें प्रायः मालवा और विदर्भमें अंकित की गयी हैं। उधरके स्थानोंके विषयमें उसका विशेष ज्ञान भी प्रकट होता है। अधिक सम्भावना है कि विदर्भमें श्री दण्डीकी जन्म भूमि थी और अवन्तीपुर या उज्जैनमें वह राज सचिव या राजनीतिका अध्यापक था।

### २—काल-निरूपण

श्रीदण्डीने चाणक्यके अर्थ शास्त्रसे अनेक अंश दशकुमार चरितमें अविकल उद्धृत किये हैं। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि वह दण्डनीति विशारदोंके शिरोमणि विष्णु गुप्त चाणक्यके कई शताब्दी पीछे हुआ था। एक प्रवाद तो यह प्रचलित है कि सरस्वतीने एक समय महाकवि कालिदाससे कहा कि—

कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।

इससे श्रीदण्डी और कालिदासकी समकालीनता प्रकट होती है; परन्तु इस प्रवादकी पुष्टि किसी प्रमाण द्वारा नहीं होती। दण्डीने काव्यादर्श में कालिदासके ग्रन्थोंका भी उदाहरण दिया है। प्रसादोदाहरणका "लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति" वास्तवमें अभिज्ञान शाकुन्तलके "मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति" का ही अंश है। चाणक्य खीष्टके थोड़े ही पूर्व अथवा पश्चात् रहा होगा। काव्यादर्शमें भामह रचित काव्यालङ्कारका भी सङ्केत है।

* रत्नलोक शिखरी रुचिर रत्न रत्नाकर वेला मेखला वलयित धरणी रमणी सौभाग्य भोग्यवान्।

† भू स्वर्गायमाणमवन्तिकापुरम्।

द्वितीय परिच्छेदमें दण्डीने निम्नांकित श्लोक लिखा है—

गतोऽस्त मर्को भातीन्दु र्यान्ति वासाय पक्षिणः।
इतीदमपि साध्वेव कालावस्थानिवेदने ॥ २ ॥ २४४ ॥

इसश्लोकका "अपि" अव्यय भामहके निम्नाङ्कित श्लोकका ही निर्देश करता है—

गतोऽस्त मर्को भातीन्दु र्यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येव मादिकं वाक्यं वार्ता मेनां प्रचक्षते ॥ २ ॥ ८७ ॥

भामहके प्रथम परिच्छेदके २२ वें और २३ वें श्लोककी भी तुलना दण्डीके प्रथम परिच्छेदके २१ वें और २२ वें श्लोकसे करनी चाहिये। राय बहादुर श्रीयुत रङ्गाचार्य्य एम. ए. का मत है कि भामह खीष्टकी पाँचवीं शताब्दीके पहले नहीं हुआ था। अतएव दण्डीको पांचवीं शताब्दीके पीछे ही मानना पड़ेगा। दण्डीने सेतुबन्धका स्पष्ट सङ्केत किया है जो सम्भवतः प्रवरसेनका बनाया हुआ है। इसकारण भी दण्डीका समय पाँचवीं शताब्दी-के बाद ही ठहरता है।

श्रीयुत विल्सनका कथन है कि दण्डीकी रचनाको ग्यारहवीं शताब्दीके अन्तमें अथवा बारहवीं शताब्दीके आरम्भमें स्थान मिलना चाहिये। दशकुमार चरितमें यवनोंका सङ्केत यथा सम्भव अरब निवासियोंके अर्थमें किया है।

भारतवर्षको जीतनेवाली मुसलमान जातियों से इस शब्दका कोई सम्बन्ध नहीं प्रकट होता। महाभारत रघुवंश और मुद्राराक्षस आदि ग्रन्थोंमें भी यवन शब्द आया है। पर उससे कहीं भी मुसलमानोंका अर्थ नहीं लिया जाता। इन ग्रन्थोंमें यवनोंसे हिन्दुओंकी पतित जातियों एवं पश्चिमोत्तर सीमाकी कतिपय जातियोंका अभिप्राय समझना चाहिये। अतएव यवन शब्दके आधार पर श्रीदण्डीका समय निर्देश करना, कल्पनात्मक मात्र है।

श्रीयुत विल्सनने अपने अनुमानकी पुष्टिमें एक और प्रमाण दिया है। विश्रुत चरितमें भोज वंशका उल्लेख मिलता है। विल्सन साहबका कहना है कि दण्डीने मुसलमानोंके भारतीय आक्रमणके पूर्ववर्ती धाराधीश राजाभोजके निकटतम वंशानुगतोंका वर्णन किया है। प्रसिद्ध इतिहास लेखक विन्सेंट ए. स्मिथने राजाभोजका समय १०१८-१०६० खीष्टीय माना है। यों तो बल्लाल सेनके भोज प्रबन्धसे भी राजा भोज और श्रीदण्डीकी समकालीनता प्रकट होती है। पर इस पुस्तकका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है। उसमें कालिदास भवभूति सुबन्धु दण्डी और बाण आदि अनेक ख्यातनामा कवियोंको एकत्र स्थान देनेमें कालभेद-का विचार नहीं किया गया है। हाँ, भोज नाम धारी अनेक नरपति हो चुके हैं। महाभारत और रघुवंशमें भी राजाभोजका नाम आया है। श्रीयुत कालेको भी शङ्का है कि विश्रुत चरितमें किस भोज वंशका निर्देश है। पर श्रीयुत वेबर साहबने आठवीं शताब्दीके किसी भोजसे दण्डीकी समकालीनताकी सम्भावना प्रकट की है। वास्तविक बात तो यह है कि भोज सम्बन्धी प्रमाणके आधार पर श्री दण्डीका समय निर्धारित करना असम्भव है। स्वयं प्रोफ़ेसर विल्सनका भी मत श्रीदण्डीको अधिक प्राचीन समय देनेके प्रतिकूल नहीं है। कविने अमिश्रित हिन्दू रीतियोंका वर्णन किया है। एवं मध्य भारतके तत्कालीन राजकीय विभागोंमें पूर्ण सुव्यवस्था दृष्टिगोचर होती है। रचना शैलीमें भी आठवीं शताब्दीके महाकवि भवभूतिसे अधिक विस्तार नहीं है।

प्रसिद्ध ससैमियन बादशाह नौशेरवांकी आज्ञासे पञ्चतन्त्रका अनुवाद पहलवी भाषामें हुआ था। उसका राजत्वकाल वेबर साहबने ५३१-७९ खीष्टीय माना है। वस्तुतः राजनीतिकी शिक्षा कहानियों द्वारा देनेके मार्गमें पञ्चतन्त्रको आरम्भिक प्रयत्न समझना चाहिये। उसकी रचना खीष्टीय सम्वत्-के आरम्भमें हुई होगी। दशकुमार चरित भी उसी श्रेणीका ग्रन्थ है पर यह उन्नति प्राप्त अवस्थाका बना हुआ मालूम होता है। राजा हर्ष वर्धनका राजत्वकाल ६०६-६४८ खीष्टीय माना जाता है।

उसके यहां रह कर कादम्बरीके रचयिता बाण-भट्टने हर्ष चरित नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखा था। दण्डी और बाणकी रचनायें समकालीन मालूम होती हैं। हां, दोनोंकी शैलीमें थोड़ा भेद अवश्य है पर इसका कारण यह है कि दण्डीने वैदर्भी और बाणने पाञ्चाली रीतिका अनुसरण किया। सोम देवका समय १२वीं शताब्दी अथवा १०७० खीष्टीय माना गया है उसने छन्दोबद्ध कथाओंमें कथा सरित्सागर नामक एक उत्तम नीति ग्रन्थ लिखा है जो दण्डी और बाणके बहुत पीछेका बना हुआ जंचता है। अतएव रचनाकी दृष्टिसे श्रीदण्डी-को छठी शताब्दीमें स्थान देना अनुपयुक्त न होगा।

सुबन्धुने वासव दत्तामें और राजशेखरने काव्य मीमांसाके दसवें परिच्छेदमें छन्दोविचिति नामक पुस्तकका उल्लेख किया है, जिसे* वासव दत्ताके टीकाकार शिवराम त्रिपाठीने दण्डी रचित माना है। राजशेखरने षट् प्रबन्धोंमें भी लिखा है कि—

त्रयोऽग्नय त्रयो वेदा त्रयो लोकास्त्रयो गुणाः।
त्रयो दण्डप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः॥

वेबर साहबने सुबन्धुका समय सातवीं शताब्दी माना है। और गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज़में प्रकाशित काव्य मीमांसाकी भूमिकामें राजशेखरका समय ८८०-९२० खीष्टीय सिद्ध किया गया है। इससे उपर्युक्त मतकी पुष्टि होती है।

काव्यालङ्कार सूत्रके रचयिता वामनने दण्डीके मतका विरोध किया है। कल्हणकी राजतरङ्गिणीमें वामनको आठवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें जायापीड़का मन्त्री करके लिखा है। प्रसिद्ध बौद्ध यात्री हुआ-नत्साङ्गने ६२९-४५ खीष्टीयके बीचमें अपनी यात्रा-का विवरण लिखा था। उसने काशीका कार वामन-का उल्लेख किया है। पर यथा सम्भव यह दूसरा कोई पण्डित था। कनारी भाषामें कविराज मार्ग नामक एक अलङ्कार ग्रन्थ है। उसमें कुछ ऐसे छन्द भी मिलते हैं जो काव्यादर्शके अनुवाद प्रतीत होते हैं। कहा जाता है कि इस पुस्तकको राष्ट्र कूट राजा अमोघ वर्ष नृपतुङ्ग ने प्रायः नवीं शताब्दीके मध्यमें लिखा था। इससे प्रकट होता है कि काव्यादर्श उस समय अलङ्कार शास्त्रका प्रतिष्ठित ग्रन्थ गिना जाने लगा था। काव्यादर्शके तृतीय परिच्छेदमें लिखा है कि—

नासिका मध्या परित श्चातुर्वर्ण्य विभूषिता।
अस्ति काचित्पुरी यस्यामष्ट वर्णा ह्वया नृपाः॥३॥

तरुण वाचस्पतिने इसकी टीका करते हुए लिखा है कि—

काञ्ची नगर्यां पल्लवा नाम क्षितिपतयः सन्तीति अर्थो विवक्षितः।

अब यह पता चला है कि लगभग आठवीं शताब्दीके मध्य तक काञ्चीके पल्लवोंका पतन हो चुका था। काव्यादर्शके* द्वितीय परिच्छेदमें रात वर्म्मा या राजवर्म्मा नामी किसी प्रसिद्ध शैव नर-पतिका भी निर्देश है एवं श्रीयुत एम. रङ्गाचार्य्य ने एक प्रचलित प्रवादके आधार पर लिखा है कि काव्यादर्शकी रचना काञ्चीके किसी राजकुमारको अलङ्कार शास्त्रकी शिक्षा देनेके निमित्त हुई थी। वस्तुतः इन सभी बातों पर विचार करनेसे यही प्रकट होता है कि श्रीदण्डीका समय खीष्टकी छठी शताब्दीमें ही स्थिर करना चाहिये सम्प्रति इससे अधिक पता लगाना दुःसाध्य है। अतएव अब दूसरे विषय पर दृष्टिक्षेप करना होगा।

( असमाप्त )

—शेषमणि त्रिपाठी, साहित्य रत्न, बी. ए.

* छन्दो विचिति रिव मालिवी सवाधा।

* श्लोक संख्या २७८-२७९

# सूर्य सिद्धान्त

अतीत्योन्मीलनादिन्दोः पश्चात्तद् गणितागतात् ।
यदा भवेत्तदाप्राच्यां स्वस्थानं मध्यतो भवेत् ॥६३॥

अप्राप्य च भवेत्पश्चादेवं वापि निमीलनात् ।
तयोरन्तरनाडीभिर्हन्याद्भूपरिधिं स्फुटम् ॥६४॥

षष्ट्या विभज्य लब्धैस्तु योजनैः प्रागथापरैः ।
स्वदेशपरिधिर्ज्ञेयः कुर्याद्देशान्तरं हि तैः ॥६५॥

अनुवाद—(६३) मध्य रेखा पर (उज्जैन या लंकाकी उत्तर-दक्षिण-रेखा पर) किस समय (मध्य रात्रिसे कितनी घड़ी पीछे) पूर्णग्रसित चंद्रमा अंधकारसे बाहर निकलने लगेगा, यह गणितसे जान लेना चाहिये । फिर वेध करके देखना चाहिये कि अपने स्थानमें किस समय (अपने यहांकी मध्य रात्रिसे कितनी घड़ी पीछे) पूर्णग्रसित चंद्रमा अंधकारसे बाहर निकलने लगता है । यदि गणित-सिद्ध समयसे दृक्सिद्ध समय (यंत्र द्वारा वेध करके जाना हुआ समय) अधिक हो तो समझना चाहिये कि अपना स्थान मध्य रेखासे पूर्व है और (६४) यदि गणित-सिद्ध समयसे दृक्सिद्ध समय कम हो तो समझना चाहिये कि अपना स्थान मध्य रेखासे पच्छिम है । इसी प्रकार उस समयको भी देख कर यह बात जानी जा सकती है जिस समय चंद्रमाका पूर्ण विम्ब अंधकारमें चला जाता है । गणित-सिद्ध और दृक्सिद्ध कालोंमें जो अन्तर हो वही अपने यहांका देशान्तर काल या देशान्तर घड़ी कहलाता है (क्योंकि काल प्रायः घड़ियोंमें लिखा जाता है) । इस देशान्तर घड़ीको स्फुट-परिधिसे गुणा करके (६५) गुणनफलको साठसे भाग देने पर जो लब्धि आवे वही अपने स्थानका पूर्व देशान्तर योजन है (यदि स्थान पूर्वमें हो) और पच्छिम देशान्तर योजन है (यदि स्थान पच्छिममें हो) । इसी देशान्तर योजनसे (६०-६१ श्लोकोंमें बतलायी हुई रीतिके अनुसार ग्रहोंका) देशान्तर संस्कार करना चाहिये ।

विज्ञानभाष्य—निमीलन=(१) आंखोंका बंद होना, (२) लुप्त होना, (३) चन्द्रमाके पूरे विम्बका अंधकारमें चला जाना । इसलिए निमीलन काल उस समयको कहते हैं जिस समय खग्रास या सम्पूर्ण ग्रहणका आरंभ होता है । इसको सम्मीलन काल भी कहते हैं ।

उन्मीलन=(१) आंखोंका खोलना, (२) प्रकट होना, (३) पूर्ण ग्रसित चंद्रमाका अंधकारसे बाहर निकलना । इसलिए उन्मीलन काल उस समयको कहते हैं जिस समय चंद्रमाका पूर्णग्रसित विम्ब अंधकारसे बाहर निकलने लगता है ।

स्पर्श काल उस समयको कहते हैं जिस समय चंद्रमाका बिम्ब अंधकारमें घुसने लगता है अर्थात् जिस समयसे यथार्थ ग्रहणका आरंभ होता है ।

मोक्ष काल उस समयको कहते हैं जिस समय चंद्रमाका पूरा विम्ब अंधकारके बाहर आ जाता है ।

चित्र १ में 'र' रविका केन्द्र 'प' पृथ्वीका केन्द्र और 'छ' पृथ्वीकी छायाकी नोक है । चंद्र-कक्षामें चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है । जब चंद्रमाका केन्द्र चन्द्रकक्षाके उस विन्दु पर पहुँचता है जहां '१' लिखा हुआ है तब चन्द्र बिम्ब पृथ्वीकी छायाको स्पर्श करता है, इसलिए चंद्रमाकी यह स्थिति ग्रहणके समय स्पर्शकालकी स्थिति है । इसी समय चन्द्र विम्ब अंधकारमें प्रवेश करता हुआ देख पड़ता है । जब चंद्रमा उस स्थिति पर पहुँचता है जो '२' अंकसे सूचित किया गया है तब उसका पूरा विम्ब अंधकारमें हो जाता है । यह सम्मीलन काल अथवा निमीलन कालकी स्थिति है । जब चंद्रमा उस स्थिति पर पहुँचता है जो '३' अंकसे प्रकट किया गया है तब चंद्रमा अंधकारसे बाहर निकलनेको होता है । यही उन्मीलन कालकी स्थिति है । और जब चंद्रमाका पूरा विम्ब अंधकारके बाहर निकल आता है जैसा कि

'४' अंकसे प्रकट किया गया है तब मोक्ष कालकी स्थिति होती है।

इन चार घटनाओंमेंसे कोई घटना आकाशमें जिस समय होती है उसी समय* भूतल पर भी देख पड़ती है। परन्तु भूतलके सब स्थानोंमें सूर्योदय या मध्याह्न जिससे घड़ियां† सुगमता पूर्वक शुद्धकी जा सकती हैं, एक ही समय नहीं होता जैसा कि ६०-६१ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें देशान्तर की परिभाषा बतलाते हुए सिद्ध किया गया है इस लिए भिन्न भिन्न स्थानोंकी घड़ियोंमें किसी घटना-

चित्र १

के देखनेका समय भिन्न होता है। मध्यरेखासे पूर्वके स्थानोंकी घड़ियां मध्यरेखाकी घड़ीसे देशान्तर कालके समान आगे रहती हैं क्योंकि यहां सूर्योदय पहले होता है। इसलिए यहां जिस समय ग्रहण देख पड़ेगा वह मध्य रेखाके समयसे अधिक होगा और पच्छिमके स्थानोंमें कम। मध्य रेखा पर जिस समय ग्रहण देख पड़ता है वही गणित करने पर भी निकलता है। इसलिए गणितसे यह जान कर कि मध्य रेखा पर कौन घटना कब देख पड़ेगी और अपने स्थानकी घड़ीके अनुसार कब देख पड़ती है, यह सहज ही जाना जा सकता है कि इन दोनों स्थानोंके स्थानीय कालोंमें क्या अंतर है। यही अंतर अपने स्थानका देशान्तर काल कहलाता है।

देशान्तर काल जाननेके लिए उन्मीलन कालकी स्थिति जाननेकी चर्चा पहलेकी गयी है। इसका कारण यह है कि उस समय चंद्रमा अंधकारसे बाहर निकलने को होता है, भूतल पर भी अंधकार छाया रहता है इसलिए ज्योंही चंद्र बिम्ब प्रकाशमें आने लगता है त्योंही स्पष्टता पूर्वक देख पड़ता है और समय जाननेमें बहुत अशुद्धि नहीं होती। सम्मीलन कालके समय चन्द्रमा किस समय अंधकारमें पूरा प्रवेश करता है यह जाननेमें कुछ कठिनाई होती है इसलिए इससे देशान्तर काल निकालनेमें कुछ अशुद्धि हो सकती है। स्पर्श काल और मोक्ष कालके समय तो कई पल तक यह पता नहीं लग सकता है कि यथार्थ घटना किस समय हुई, इसलिए देशान्तर काल निकालनेके लिए इनसे काम नहीं लिया जाता।

देशान्तर कालसे देशान्तर योजन कैसे जाना जाता है यह ६०-६१ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यसे समझना चाहिये। यह बात तो स्पष्ट है कि सूर्य ६० घड़ीमें पृथ्वीकी परिक्रमा कर लेता है जिससे किसी स्थानकी स्फुट परिधिके चारों ओर वह ६० घड़ीमें घूम आता है, इसलिए किसी स्थानके देशान्तर

---

* यदि प्रकाशकी गतिका भी विचार किया जाय तो यह कहना अधिक शुद्ध होगा कि चंद्रमाकी कोई घटना भूतल पर सवा सेकंड पीछे देख पड़ती है।

† समय जाननेके यंत्र।

कालमें स्फुट परिधिका वह खंड पूरा होगा जो उस स्थानसे मध्यरेखाका अन्तर है, त्रैराशिक द्वारा इसे यों प्रकट करते हैं:—

६० घड़ी : देशान्तर घड़ी :: स्फुट परिधि : देशान्तर योजन।

यहां देशान्तर जाननेकी कुछ अन्य रीतियोंकी चर्चा संक्षेपमें करना आवश्यक है।

देशान्तर जाननेकी रीतियां :—एक रीति तो ऊपर लिखी जा चुकी है। यह बहुत पुरानी रीति है और जब आजकलकी तरह सूक्ष्म यंत्रोंका निर्माण नहीं हुआ था तब इससे बढ़कर कोई दूसरी रीति हो भी नहीं सकती थी। आजकल जितनी रीतियां प्रचलित हैं उनमेंसे अधिकांश इसीके रूपान्तर हैं, यदि कुछ अन्तर है तो यह कि आजकल ग्रहण इत्यादि आकाशीय घटनाओंके होनेके समयका सूक्ष्म ज्ञान किया जा सकता है जिससे देशान्तर काल जहां तक संभव है बहुत सूक्ष्मता पूर्वक जाना जा सकता है। जो रीति ऊपर बतलायी गयी है उसमें कुछ अशुद्धि रह जाती है, इसका कारण यह है कि कोरी आंखसे अथवा दूरवीक्षण यंत्रसे यह ठीक ठीक नहीं देखा जा सकता कि चन्द्र ग्रहणका उन्मीलन अथवा सम्मीलन किस क्षणसे आरम्भ हो जाता है। यदि पास ही पासके दो दर्शक अपनी अपनी घड़ी लेकर यह देखने बैठें कि सम्मीलन किस समय आरम्भ होता है और चुपकेसे उस समयको लिखलें जिस समय प्रत्येकको सम्मीलन देख पड़े तो देखा जाता है कि उन दोनोंके देखे हुए कालोंमें दो[1] तीन मिनटका अन्तर होता है। शायद यही कारण है जिससे उज्जैन, कुरुक्षेत्र और रोहतकके देशान्तरोंमें दो तीन मिनटका अन्तर है यद्यपि यह ६२वें श्लोकमें एक ही उत्तर-दक्षिण-रेखा पर अर्थात् भूमध्य रेखा पर बतलाये गये हैं। नीचे ग्रीनिचसे इन स्थानोंके देशान्तरोंकी तुलनाकी जाती है:—

| नगर | ग्रीनिचसे देशान्तर | | उज्जैनसे देशान्तर (कोणात्मक) | उज्जैनसे देशान्तर (कालात्मक) घड़ी पल विपल मिनट सेकंड |
|---|---|---|---|---|
| उज्जैन[2] | ७५°४६′६″ | पूर्व | | |
| कुरुक्षेत्र[3] | ७६°२०′ | ” | ०°३३′५४″ पूर्व | ० ५ ३९ (२ १५·६) |
| रोहतक[3] | ७६°३५′ | ” | ०°४८′५४″ ” | ० ८ ९ (३ १५·६) |
| काशी[4] | ८३°३′४″ | ” | ७°१६′५८″ ” | १ १२ ५० (२९ ८) |

इन अंकोंसे सिद्ध है कि चंद्रग्रहणसे देशान्तर जाननेकी रीतिमें दो तीन मिनटका अन्तर हो सकता है।

दूसरी रीति—जिसप्रकार चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा करता है और उसमें ग्रहण लगता है इसी प्रकार बृहस्पतिके चारों ओर भी ४, ५ पिंड परिक्रमा करते हुए दूरवीक्षण यंत्रसे देखे जाते हैं। यह बृहस्पतिके चन्द्रमा कहलाते हैं। जब यह बृहस्पतिकी छायामें घुसते हैं तो इनमें भी ग्रहण लगता है। बृहस्पतिके चन्द्रमा बहुत छोटे हैं और इनके परिक्रमण काल भी छोटे हैं इसलिए इनमें ग्रहण

१—Godfray's Treatise on Astronomy sixth edition page 261.

२—Indian Chronology page 60.

३—Imperial Gazetteer of India.

४—भारत भ्रमण ( मकरंद सारिणीमें काशीका देशान्तर ६६ पल दिया है जो ऊपरके मानसे ४ पल कम है।

जल्दी जल्दी लगते हैं। ग्रहणके कारण इनके छिपने और प्रकट होनेका समय ग्रीनिच कालके अनुसार नाविक पंचांगों में ( Nautical almanac ) दिया रहता है। इसलिए यदि किसी स्थानमें उसके स्थानीय कालके अनुसार बृहस्पतिके चन्द्रमाके छिपने या प्रकट होनेका समय देखा जाय तो नाविक पंचांगमें दिये हुए समयसे जो अन्तर होता है वही उस स्थानका ग्रीनिचसे देशान्तर है। परन्तु यह रीति भी ऊपर कही हुई रीतिकी तरह स्थूल है क्योंकि बृहस्पतिके चंद्रमाके छिपने या प्रकट होनेका क्षण निश्चित रूपसे दूरवीक्षणसे भी नहीं जाना जा सकता परन्तु इसमें उतनी अशुद्धि नहीं होती जितनी पहली रीतिमें होती है।

तीसरी रीति—टूटनेवाले तारोंके प्रकट होने और लुप्त होनेके क्षणको भिन्न भिन्न स्थानोंके स्थानीय कालोंसे तुलना करनेपर देशान्तर सूक्ष्मता पूर्वक जाना जा सकता है यदि तारोंके टूटनेके समयका निश्चय पहलेसे हो सके और उनके पहचाननेमें कोई गड़बड़ न हो।

चौथी रीति-विद्युत द्वारा समाचार भेजकर देशान्तर जानना—

यदि दो स्थानोंका एक दूसरेसे ऐसा सम्बन्ध हो कि एक स्थानसे दूसरे स्थानको विद्युत् द्वारा समाचार भेजा जा सके तो इन दोनों स्थानोंका देशान्तर सहज ही जाना जा सकता है क्योंकि विद्युत् समाचारके पहुँचनेमें इतना कम समय लगता है कि उससे जो अशुद्धि हो सकती है वह नहींके समान है।

मान लीजिए काशीसे लखनऊका देशान्तर जानना है। दोनों नगरोंके दर्शकोंको एक ही प्रकारकी घड़ी रखनी चाहिये, जैसे यदि एककी घड़ी सावन काल बतलाती हो तो दूसरेकी घड़ी भी सावन काल बतलाती हो। दोनों घड़ियोंको अपने अपने यहांके स्थानीय कालसे मिला लेना चाहिये जिससे प्रत्येक घड़ी अपने यहांका स्थानीय काल शुद्धता पूर्वक बतला सके। काशी लखनऊसे पूर्व है इसलिए काशीका स्थानीय काल लखनऊके स्थानीय कालसे आगे रहेगा और इन दोनोंमें जितना अंतर होगा वही काशीसे लखनऊका देशान्तर है। जिस समय काशीकी घड़ीमें '$स_1$' समय हो उसी समय काशीसे विद्युत-संकेत किया जाय। जिस समय यह संकेत लखनऊ पहुँचे उसी समय लखनऊकी घड़ीमें समय देख लिया जाय। यदि इस घड़ीमें '$स_2$' समय हो और यह मान लिया जाय कि लखनऊमें संकेत उसी क्षण पहुँचा है जिस क्षण काशीसे भेजा गया है तो काशीसे लखनऊका देशान्तर '$द_1$' नीचे लिखे समीकरणसे सिद्ध होगा :—

$$द_1 = स_1 - स_2$$

परंतु इस समीकरणसे देशान्तरका जो मान निकलेगा वह यथार्थ देशान्तरसे कुछ कम होगा क्योंकि काशीसे लखनऊ तक विद्युत् संकेतके पहुँचनेमें कुछ न कुछ समय अवश्य लगता है। यदि इस समयका मान 'य' हो और काशीसे लखनऊका यथार्थ देशान्तर 'द' हो तो पूर्वोक्त समीकरणका रूप यह होगा :—

$$द = ( स_1 + य ) - स_2 = द_1 + य \quad \ldots\ldots\ldots (१)$$

क्योंकि जिस समय लखनऊमें समाचार पहुँचेगा उस समय काशीमें '$स_1 + य$' समय होगा। 'य' का मान जाननेके लिए लखनऊसे काशीको संकेत भेजकर दोनोंके स्थानीय काल फिर जानना चाहिए। मान लीजिए लखनऊसे जिस समय संकेत भेजा गया उस समय लखनऊकी घड़ीमें '$सा_2$' समय था और जिस समय यह संकेत काशी पहुंचा उस समय काशीकी घड़ीमें '$सा_1$' समय था, और यदि मान लिया जाय कि संकेतके पहुँचनेमें कुछ समय नहीं लगता तो इन दोनोंका अंतर $द_2$ लखनऊका देशान्तर होगा जिसका रूप यह है :—

$$द_2 = सा_1 - सा_2$$

परन्तु $द_2$ का मान यथार्थसे कुछ अधिक होगा क्योंकि संकेतके पहुँचनेमें कुछ न कुछ समय अवश्य

लगता है जो 'य' के समान फिर होगा इसलिए यथार्थ देशान्तर

$$द = सा_{१} - (सा_{२} + य) = (सा_{१} - स_{२}) - य = द_{२} - य \quad ...(२)$$

(१) और (२) समीकरणोंके समान पक्षोंको जोड़नेसे

$$२ द = द_{१} + द_{२}$$

$$अथवा\ द = \frac{द_{१} + द_{२}}{२} \quad ............ (३)$$

जिसका अर्थ यह हुआ कि काशीसे लखनऊ संकेत भेजनेसे जो देशान्तर काल आवे उसको उस देशान्तर कालमें जोड़ दो जो लखनऊ से काशी उलटा संकेत भेजनेसे ज्ञात हो। फिर दोनों को जोड़कर आधा कर दो तो यथार्थ देशान्तर काल ज्ञात हो जायगा। देशान्तर जाननेकी और भी कई रीतियां हैं जो जहाज़वालोंके कामकी होती हैं और जिनमें नाविक पंचांगसे अथवा ग्रीनिचसे मिली हुई घड़ीसे सहायता लेनी पड़ती है; इसलिए इस स्थानपर उनका वर्णन नहीं किया जाता है।

वारप्रवृत्तिः प्राग्देशे क्षपार्धेऽभ्यधिके भवेत्।
तद्देशान्तरनाडीभिः पश्चादूने विनिर्दिशेत् ॥६६॥

अनुवाद—(६६) जो स्थान मध्य रेखासे पूर्व दिशामें हैं वहां वारकी प्रवृत्ति अर्थात् दिनका आरंभ उस स्थानकी अर्द्ध रात्रिसे उतने समय पीछे होती है जितना उस स्थानका देशान्तर काल है। मध्यरेखाके पच्छिमके स्थानमें उस स्थानकी अर्द्धरात्रिसे उतने समय पहले ही वारकी प्रवृत्ति हो जाती है जितना इस स्थानका देशान्तर काल है।

विज्ञान भाष्य—इस नियमके अनुसार काशीमें जो उज्जैनसे अथवा भारतवर्षकी मध्य रेखासे ७३ पल पूर्व है, वारकी प्रवृत्ति उस समय होती है जब काशीमें स्थानीय कालके अनुसार रातको १२ बजकर ७३ पल अर्थात् १२ बजकर २९ मिनट १२ सेकंड होता है, और बम्बईमें जो उज्जैनसे कोई २९ पल पच्छिम है वारकी प्रवृत्ति १२ बजे रातसे कोई २९ पल अथवा ११ मिनट ३६ सेकंड पहले ही हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि जिस समय भारतवर्षकी मध्यरेखापर अर्द्धरात्रि होती है उसी समय भारतके अन्य स्थानोंमें भी वार-प्रवृत्ति समझनी चाहिये। इसलिए ग्रहोंका जो स्थान लंका या उज्जैनकी अर्द्धरात्रिके समय गणित-से सिद्ध होता है वह अन्य स्थानोंमें उस समय होता है जिस समय वहां वार-प्रवृत्ति होती है। इसीलिए यदि किसी स्थानकी अर्द्धरात्रिके समय-का ग्रह निकालना हो तो देशान्तर-फल घटाना या जोड़ना चाहिये।

यह मत सूर्यसिद्धान्तका है कि वार-प्रवृत्ति उज्जैनकी अर्द्धरात्रिके समय सब स्थानोंमें होती है। ब्रह्मगुप्त,[1] भास्कराचार्य[2] इत्यादि आचार्योंने वार प्रवृत्ति उस समयसे माना है जिस समय लंकामें सूर्योदय होता है क्योंकि इनके मतसे सृष्टि का आरंभ उस समयसे हुआ जिस समय लंकामें पहले पहल सूर्य देख पड़ा था और इसी समय पहले दिनका भी आरम्भ हुआ था। आजकल यही नियम साधारणतः प्रचलित भी है, हां वैष्णव सम्प्रदायके अनुयायी[3] अर्द्धरात्रिसे ही वारकी प्रवृत्ति मानते हैं और कमसे कम धार्मिक कृत्योंके लिए दिनमें वही तिथि मानते हैं जो पिछली आधीरातके समय वर्तमान रहती है, इसलिए इनकी एकादशी प्रायः द्वादशीके दिन होती है। अधिकांश पंचांगोंमें भी ग्रह-स्पष्ट अर्द्धरात्रिके समयका ही दिया रहता है।

इन दोनों मतोंमें अर्द्धरात्रिसे वार-प्रवृत्तिका मानना अधिक सरल और व्यापक है। एक ही

---

१—जगति तमोभूतेऽस्मिन् सृष्ट्यादौ भास्करादिभिः सृष्टैः।
यस्माद्दिनप्रवृत्तिर्दिनवारोऽर्कोदयात् तस्मात् ॥ ३३ ॥
ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त—मध्यमाधिकार।

२—लङ्कानगर्यामुदयाच्च भानोस्तस्यैव वारे प्रथम बभूव।
मधोःसितादेर्दिन मास वर्ष युगादिकानां युगपत् प्रवृत्तिः ॥१५॥
सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ७

३—माधुरी खंड २ संख्या ४ पृष्ठ ४३७।

उत्तर-दक्षिण रेखापर स्थित जितने स्थान हैं सब जगह अर्द्धरात्रि या मध्याह्न सदा युगपद् होती है परन्तु सूर्योदय वर्षमें दो दिनोंको छोड़कर कभी एक साथ नहीं होता। सूर्योदय सूर्यकी क्रान्ति और स्थानोंके अक्षांशके अनुसार कुछ आगे पीछे होता है जिसकी व्याख्या तीसरे अध्यायमें की जायगी। फिर पूरब पच्छिमके देशोंमें देशान्तर संस्कारके कारण भी सूर्योदय कालमें बहुत अंतर पड़ जाता है। इन सब कारणोंसे वार-प्रवृत्ति कभी कभी सूर्योदयके घंटे भर पीछे या पहले ही हो जाती है जो बहुत पेचदार है। परंतु यदि आधी-रातसे वार-प्रवृत्ति मानी जाय तो सूर्यकी क्रान्ति और स्थानोंके अक्षांशके कारण कोई भेद नहीं पड़ सकता। हां देशान्तर संस्कार फिर भी करना पड़ेगा परन्तु इससे भी वार प्रवृत्ति रातमें ही हो जायगी जिससे कोई गड़बड़ नहीं हो सकता। लोक व्यवहारमें भी किसी दिनकी प्रातः संध्या अथवा यात्रा सूर्योदयके पहले ही की जाती है जिससे जान पड़ता है कि साधारणतः सूर्योदयके दो तीन घड़ी पहलेसे ही दिनका आरम्भ मान लिया जाता है। इस विषयपर धर्म सिंधु †निर्णय सिंधु इत्यादि ग्रन्थोंमें बहुत चर्चाकी गयी है।

आजकल यूरोपीय देशोंमें आधीरातसे ही तारीख बदलती है तथा दिनका आरम्भ माना जाता है, इसीलिए अंगरेजी तारीखें भी आधीरात से ही बदलती है। इससे बहुतसे लोग यह समझते हैं कि आधीरातसे वारकी प्रवृत्ति मानना अंग्रेज़ी मत है, परन्तु यह भूल है। हमारे यहां भी आधीरातसे वार प्रवृत्ति माननेका नियम है।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि किसी स्थानकी अर्द्धरात्रिके समय किसी ग्रहका मध्यम स्थान क्या होता है और कैसे जाना जाता है। अगले श्लोकमें यह बतलाया जा रहा है कि मध्य-रात्रिके सिवा दिनके किसी अन्य समयमें मध्यम ग्रह निकालना हो तो क्या करना चाहिये।

इष्टनाड़ीगुणाभुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम्।
गते शोध्यं युतं गम्ये कृत्वा तात्कालिको भवेत् ॥६७॥

अनुवाद—(६७) (यदि मध्यरात्रिके सिवा किसी अन्य समयका मध्यम ग्रह जानना हो तो) इष्ट घड़ीको अर्थात् मध्यरात्रिसे जितनी घड़ी पहले या पीछेका समय हो उस घड़ीको ग्रहकी दैनिक मध्यम गतिसे (जो कलाओंमें लिखना सुविधा जनक होता है) गुणा करके गुणनफलको ६० से भाग दे दो। जो लब्धि आवे उसे अर्द्धरात्रिके मध्यम ग्रहमेंसे घटा दो यदि इष्ट काल मध्यरात्रिसे पहले ही बीत जाय और जोड़ दो यदि इष्ट काल मध्यरात्रिसे पीछे आवे। ऐसा करनेसे ग्रहका तात्कालिक स्थान निकल आवेगा।

विज्ञान भाष्य—यह स्पष्ट है कि ग्रहका मध्यम स्थान अर्द्धरात्रिके समय जो कुछ होता है वह अन्य समय नहीं रहता क्योंकि ग्रह निरंतर चलते रहते हैं। इसलिए अर्द्धरात्रिके पहले या पीछे किसी इष्ट समयमें किसी ग्रहका मध्यम स्थान जाननेके लिए यह जानना आवश्यक है कि उस समयमें ग्रह कितना हट जायगा। यह बात त्रैराशिकसे सहज ही जानी जा सकती है—

६० घड़ी : इष्ट घड़ी :: दैनिक गति : इष्ट घड़ीमें गति

$$\therefore \text{इष्ट घड़ीमें गति} = \frac{\text{इष्ट घड़ी} \times \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

इसलिए अभीष्ट कालकी ग्रहकी स्थिति

$$= \text{अर्द्धरात्रिकी स्थिति} \pm \frac{\text{इष्ट घड़ी} + \text{दैनिक गति}}{\text{६० घड़ी}}$$

यदि इष्ट काल अर्द्धरात्रिके पहले हो तो ऋण-का चिह्न रखना चाहिये और पीछे हो तो धन-का चिह्न।

यह इतना स्पष्ट है कि उदाहरण देकर पुस्तक-का आकार बढ़ानेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

† सूर्योदयात् प्राक् घटिकात्रयं प्रातः संध्या, सूर्यास्तोत्तरं घटिकात्रयं सायंसंध्या—
धर्म सिंधु प्रथम परिच्छेद पृष्ठ २
निर्णयसागर प्रेसका छपा (शक १८२६)

भचक्रलिप्ताशीत्यंशः परमं दक्षिणोत्तरम् ।
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वक्रान्त्यन्तादनुष्णगुः ॥ ६८ ॥
तन्नवांशं द्विगुणितं जीवस्त्रिगुणितं कुजः ।
बुधशुक्रार्कजाः पातैर्विक्षिप्यन्ते चतुर्गुणम् ॥ ६९ ॥
एवं त्रिघनरन्ध्रार्करसार्कार्का दशाहताः ।
चन्द्रादीनां क्रमादुक्ता मध्यविक्षेपलिप्तिकाः ॥ ७० ॥

**अनुवाद**—( ६८ ) अपने पातके कारण चन्द्रमा अपने पासवाले क्रान्तिवृत्तके विन्दुसे अधिकसे अधिक २७० कला उत्तर या दक्षिण हट जाता है। ( ६९ ) इसका २/९ भाग बृहस्पति, ३/९ भाग अथवा १/३ भाग मंगल और ४/९ भाग बुध, शुक्र और शनि अपने अपने पातोंके द्वारा हट जाते हैं। (७०) इस प्रकार चंद्रादि छ ग्रहों ( चन्द्रमा, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि ) के मध्यम विक्षेप २७०, ९०, १२०, ६०, १२०, १२० कलाएं क्रमसे हैं।

विज्ञान भाष्य—पिछले ३३ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें चंद्रमाके पातका वर्णन है। ४ थे चित्रमें चंद्रकक्षा और क्रान्तिवृत्त एक दूसरेको काटते हुए दिखलाये गये हैं। जिस समय चन्द्रमा अपने पात पर रहता है उस समय यह क्रान्तिवृत्त पर देख पड़ता है, अन्य समय यह क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्षिण कुछ हटा हुआ देख पड़ता है। किस समय कितना हटा रहता है यह गणितसे सहज ही जाना जा सकता है। जिस समय चंद्रमा पातसे ९०° आगे या पीछे रहता है उस समय क्रान्तिवृत्तसे परम अंतर पर होता है। चित्र ४ में यह परम अंतर चासा या चससे सूचित होता है। इसीको चंद्रमाका परम विक्षेप कहते हैं। इसी तरह अन्य ग्रह भी क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्षिण हट जाते हैं जिनके मध्यम विक्षेप ६९-७० श्लोकोंमें दिये हुए हैं। ग्रहोंके विक्षेप और पातोंमें बहुत घना सम्बन्ध है इसीलिए हमारे प्राचीन आचार्योंका विचार था कि पात ही ग्रहोंको उत्तर या दक्षिण ढकेल देते हैं।

ग्रहोंके परम विक्षेप सब आचार्योंके मतसे एकसे नहीं हैं। आजकल सूक्ष्म यंत्रोंके द्वारा जो जानकारी हुई है वह हमारे किसी ग्रन्थके मानोंसे नहीं मिलती। तुलनाके लिए परम विक्षेपोंकी तालिका नीचे दी जाती है:—

| | सूर्य सिद्धान्त | [1]ब्राह्म स्फुट सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि[2] | [3]महा सिद्धान्त | [4]सिद्धान्त दर्पण | [5]टालमी | [6]आधुनिक |
|---|---|---|---|---|---|---|
| चंद्र | ४°३०′ | ४°३०′ | ४°३०′ | ५°९′०″ | ५°०′ | ५°८′४२″ |
| मंगल | १°३०′ | १°५०′ | १°४६′ | १°५१′०″ | १°०′ | १°५१′१″ |
| बुध | २°०′ | २°३२′ | २°१८′ | २°४४′०″ | ७°०′ | ७°०′१०″ |
| गुरु | १°०′ | १°१६′ | १°१४′ | १°१८′०″ | १°३०′ | १°१८′४२″ |
| शुक्र | २°०′ | २°१६′ | २°१०′ | २°२८′०″ | ३°३०′ | ३°२३′३७″ |
| शनि | २°०′ | २°१०′ | २°१०′ | २°२९′०″ | २°३०′ | २°२९′२९″ |

ऊपरकी तालिकासे देख पड़ेगा कि बुध और शुक्रके मध्य विक्षेपोंके आधुनिक मानों और सिद्धान्तोंमें दिये हुए मानोंमें बहुत अंतर है। इसका कारण यह है कि आधुनिक विक्षेप मान रविकेन्द्रगत ( Heliocentric ) है अर्थात् वह हैं जो सूर्यके

१—ब्राह्म-स्फुट सिद्धान्त पृष्ठ ७३, ११२।

२—सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ १७५,२१२।

३—महा सिद्धान्त स्पष्टाधिकार श्लोक ३९,

४—सिद्धान्त दर्पण पृष्ट ३१, श्लोक ३२ ३३, योगेश चन्द्रराय द्वारा सम्पादित और कलकत्तेसे १८९९ ई० में प्रकाशित।

५—भारतीय ज्योतिष शास्त्र पृष्ट ३२४

६—Sir Robert ball's sperical Astronomy pp 491

केन्द्रसे देख पड़ते हैं और हमारे सिद्धान्तोंके मान भूकेन्द्रगत ( Geocentric ) हैं अर्थात् वह हैं जो पृथ्वीके केन्द्रसे देखने पर जान पड़ते हैं। दर्शकके स्थानोंकी भिन्नताके कारण उन ग्रहोंके विक्षेपोंमें बहुत अंतर नहीं पड़ता जो सूर्यसे दूर हैं। परन्तु सूर्यके पास वाले ग्रह बुध और शुक्रके विक्षेपोंमें बहुत अंतर पड़ जाता है जो नीचेके उदाहरणसे स्पष्ट हो जायगाः—
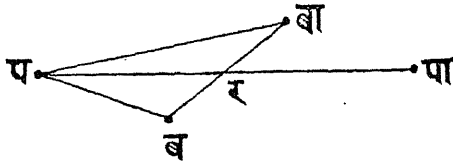
चित्र २

दिये हुए चित्र १४ में र रविका केन्द्र, प पृथ्वी का केन्द्र परपा क्रान्तिवृत्त और बरबा बुधकक्षा हैं। र से देखनेपर बुध कक्षा क्रान्तिवृत्तसे बरप या बारपा कोण बनाता है जो आधुनिक मतसे ७°०'१०" है। परन्तु पृथ्वीके केन्द्र प से देखने पर बुध कक्षा बपर कोण बनाता हुआ जान पड़ता है जिसका मान बरप कोणसे कहीं कम है क्योंकि पब (बुधसे पृथ्वीका मध्यम अंतर) यदि १ है तो बर सूर्यसे बुधका मध्यम अंतर) केवल ·३८७१ है। त्रिकोण मितिसे बपर कोणका मान सहज ही निकल सकता है क्योंकि किसी त्रिभुजके किसी भुजको सामनेके कोणकी ज्यासे भाग देने पर लब्धि समान होती है। इसलिए

$$\frac{\text{ज्या} \angle \text{बपर}}{\text{बर}} = \frac{\text{ज्या} \angle \text{बरप}}{\text{पब}}$$

$$\text{अथवा ज्या} \angle \text{बपर} = \frac{\text{बर}}{\text{पब}} \times \text{ज्या} \angle \text{बरप}$$

$$= \frac{\cdot ३८७१}{१} \times \text{ज्या } ७^\circ ०' १०''$$

$$= \cdot ३८७१ \times \cdot १२१६$$

$$= \cdot ०४७२$$

$$\therefore \angle \text{बपर} = २^\circ ४२'$$

यह आधुनिक मतसे बुधका भूकेन्द्र गत मध्यम विक्षेप है जो सिद्धान्त शिरोमणिके मध्यम विक्षेपसे १०' अधिक है। सिद्धान्त दर्पणके मान आधुनिक मतसे बहुत मिलते हैं।

इसी प्रकार शुक्रका (रविकेन्द्रगत) मध्यम विक्षेप ३°२३'३७" और सूर्यसे मध्यम अंतर·७२३३ है जब कि पृथ्वीका १ है, इसलिए यदि चित्र १४में ब, बा की जगह शु, शू रखकर शु शू को शुक्रकी कक्षा मान ली जाय तो पहलेकी नांई सम्बन्ध यह होगा—

$$\text{ज्या} \angle \text{शुपर} = \frac{\cdot ७२३३}{१} \times \text{ज्या } ३^\circ २३' ३७''$$

$$= \cdot ७२३३ \times \cdot ०५९२$$

$$= \cdot ०४२८$$

$$\therefore \angle \text{शुपर} = २^\circ २७'$$

जो सिद्धान्त शिरोमणिके २°१६' से ११' अधिक और सिद्धान्त दर्पणके २°२८' से केवल १' कम है।

इससे प्रकट है कि हमारे पुराने आचार्योंके अनुसार बुध, शुक्रके मध्यम विक्षेप आधुनिक मानोंसे केवल १० या ११ कला कम हैं जो उस समयकी स्थितिको देखते हुए बहुत सूक्ष्म हैं।

सूर्य सिद्धान्तके मध्यमाधिकार नामक प्रथम अध्यायका विज्ञान भाष्य समाप्त हुआ।

---

## एलूमिनियमका व्यवहार

कई वर्षोंसे इस देशमें एलूमिनियमके बर्तन भोजन पकानेके लिए व्यवहृत होने लगे हैं। पीतल या कांसेके बर्तनके स्थानको धीरे धीरे एलूमिनियम लेने लगा है। इसका कारण शायद यह है कि एलूमिनियमके बर्तन हलके होते हैं और इस लिए

थोड़े दाममें मिल जाते हैं; किन्तु यदि हिसाब लगा कर देखा जाय तो वह पीतल या कांसेके बर्तनसे सस्ते नहीं पड़ते। एलूमिनियमके बर्तन व्यवहार करनेमें कई असुविधा भी हैं। पीतल कांसेके बर्तन यदि टूट जांय या मांजते मांजते घिस जांय तो एकदम नष्ट नहीं हो जाते। ऐसे पुराने बर्तन यदि टूट जांय या अव्यवहार्य्य हो जांय तो उन्हें दूकान पर बेंचनेसे कुछ दाम मिल जाते हैं। टूटे हुए बर्तन यदि जोड़ने लायक हुए तो उनके जोड़ने का भी उपाय है। बहुत से गरीबोंके घरोंके पीतलके बर्तन जोड़े हुए या रँजे हुए मिलेंगे। किन्तु एलूमिनियमके बर्तनोंमें यह सुभीता नहीं है; वह जोड़े नहीं जाते और बेचने पर भी उनसे बहुत कम दाम मिलता है। इससे गृहस्थोंको बहुत असुविधा होती है। पुराने पीतलके बर्तन तो आधे दाममें बिकते हैं किन्तु एलूमिनियमके पुराने बर्तनोंका दशांश भी मूल्य नहीं मिलता और वह इतने हलके होते हैं कि इस मूल्यमें बेचनेसे कोई फायदा नहीं होता। इधर पुराने पीतल कांसे के बर्तन मरम्मत करनेवाले एलूमिनियमके बर्तनोंकी मरम्मत नहीं कर सकते; उसे रांजने या झालनेका मसाला किस प्रकार बनता है यह भी वह नहीं जानते। पीतल-कांसेके बर्तन जिस मसालेसे झाले जाते हैं उससे एलूमिनियमके बर्तन नहीं झाले जा सकते। फ्रांसमें एलूमिनियमके बर्तन झालनेके लिए एक मसाला बना है। यह मसाला पांच प्रकारका होता है, किन्तु प्रत्येक प्रकारके उपादान जस्ता, तामा और एलूमिनियम हैं। यह धातु भिन्न भिन्न अनुपातमें मिलाये जाते हैं। उनकी एक तालिका दी जाती हैः—

| | जस्ता | ताम्बा | एलूमिनियम |
|---|---|---|---|
| १ | ८० भाग | ८ भाग | १२ भाग |
| २ | ८५ ” | ६ ” | ९ ” |
| ३ | ८८ ” | ५ ” | ७ ” |
| ४ | ९० ” | ४ ” | ६ ” |
| ५ | ९४ ” | २ ” | ४ ” |

पहले ताम्बा गला कर उसके साथ एलूमिनियम तीन चार दफे करके मिलाया जाता है। सबसे पीछे जस्ता मिलाया जाता है क्योंकि तांबा गलानेमें जिस दर्जेकी गर्मीकी जितनी देरतक प्रयोग किया जाता है, जस्ता गलानेमें उससे कम तापक्रमका कम समय तक प्रयोग करना पड़ता है। जस्ता अधिक देर आग पर रहे तो उसका कुछ अंश वाष्प बन कर उड़ जाता है; इसलिए अनुपात ठीक नहीं रहता। ताम्बेके साथ एलूमिनियम मिलानेके समय लोहेकी एक छड़से दोनों पदार्थोंको अच्छी तरह चलाते रहना चाहिये; जिससे वह अच्छी तरह मिल जांय। ताम्बा और एलूमिनियमका घनत्व बराबर नहीं है; इसलिए उनके मिलनेमें कुछ दिक्कत होती है। ताम्बेमें एलूमिनियमका अन्तिम टुकड़ा मिलानेके बाद ही सब जस्ता मिला देना चाहिये। साथ साथ थोड़ी सी चर्बी या रजन इस द्रवीभूत मिश्रणमें डालकर अच्छी तरहसे चलाना पड़ता है। ऐसा करनेसे तीनों पदार्थ अच्छी तरह मिल जाते हैं। यथा शीघ्र, धातुमिश्रणको आग परसे उतार कर लोहेके सांचेमें ढाल देना चाहिये। सांचेमें पहलेसे ही थोड़ा सा तेल या बेनजाइन लगा कर रख देना पड़ता है। जस्ता मिलानेके बाद सब काम यथा सम्भव शीघ्र कर डालना चाहिये। इस बात पर लक्ष्य इस लिए रखना पड़ता है कि इसी पर मिश्रणका कामके उपयुक्त या अनुपयुक्त होना निर्भर होता है। जस्ता शुद्ध होना चाहिये। उसमें लोहेका नाम भी न रहे। मिश्रणके साथ चर्बी या रजन मिलानेका कारण यह है कि द्रवीभूत जस्ता बड़ी जल्दी वायुसे ओषजन ले लेता है और ओषिदमें परिणत हो जाता है। चर्बी आदि देनेसे वह ऐसा नहीं कर सकता।

इस मसालेको बनानेसे एलूमिनियमके बर्तन व्यवहार करनेवालोंको बड़ी सुविधा होगी, क्योंकि टूटे फूटे बर्तनोंको झलवा कर वह पुनः व्यवहारोपयोगी बना सकते हैं। यहां एक बात और बतला

देना चाहता हूं कि जो लोग धातु गलाने तथा ढालनेका काम करते हैं उसी प्रकारके अभ्यस्त और अभिज्ञ मनुष्य इस कामको करें। अनाड़ी मनुष्य इससे कोई लाभ नहीं उठा सकते और शायद उन्हें विपदमें भी पड़ना पड़े। इस प्रकार वह बर्तन जो झाल लेने पर भी काममें नहीं आ सकते उनका प्रयोग कर सकते हैं। और जो बर्तन झाल देने पर व्यवहारोपयोगी हो सकते हैं उन्हें मरम्मत कर काममें लाया जा सकता है। इससे 'एक पंथ दो काज' निकलते हैं।

एलूमिनियमके बर्तनोंके नष्ट हो जाने पर अर्थात् अव्यवहार्य्य हो पड़ने पर मनुष्यको जो क्षति होती है उसे पूरा करनेकी एक और रीति है। जब एलूमिनियमके पुराने बर्तनोंको बेचनेमें सुविधा न हो या उसे बेच कर लाभ नहीं उठाया जा सकता हो या उसे अन्य किसी प्रकार व्यवहार भी नहीं किया जा सकता हो तो उसके साथ तांबा मिलाकर एक प्रकारका मूल्यवान धातु-मिश्रण बनाया जा सकता है। ८०-६० भाग ताम्बा लेकर उसके साथ २०-२१ भाग एलूमिनियम मिलाना पड़ेगा। ६० भाग ताम्बा और दस भाग एलूमनियम मिलानेसे जो धातुमिश्रण बनता है उससे गहने बहुत अच्छे बनते हैं। इसमें १-२ भाग सोना मिला देनेसे गहने और अच्छे बनतेहैं।

आंज़के पात्रमें यह धातुमिश्रण बनाया जा सकता है। ताम्बा गलानेके समय उसे लकड़ीके कोयलेसे ढक देना पड़ेगा और उसके गल जानेके बाद कोयलेके भीतर ही भीतर एलूमिनियम डालना चाहिये। एलूमिनियमके गल जाने पर लोहा एक छड़ द्वारा चला कर दोनोंको मिलाना पड़ेगा। इसके बाद सांचेमें ढालना चाहिये। इस मिश्रणको तीन चार बार गलानेसे दोनों धातु अच्छी तरह मिल जाते हैं।

सोना या चांदीकी नाईं इस धातुमिश्रणको पीट कर या दो रोलरोंके बीचसे दबा कर पत्तर बना कर और डाइसकी सहायतासे नकशा काट कर गहना बनाया जा सकता है। इस पर पालिश भी खूब चढ़ती है। ६५ भाग ताम्बा और ५ भाग अलूमिनियमके साथ जो धातुमिश्रण बनता है वह मरे सोनेके समान जान पड़ता है। कसौटी पर कस कर जब तक परीक्षा नहीं की जाती तब तक इनमें फरक नहीं जाना जा सकता। ७८ भाग सोनेके साथ २२ भाग एलूमिनियम मिलानेसे जो धातुमिश्रण बनता है उसका रंग देखनेमें बड़ा सुन्दर होता है।

दो भाग एलूमिनियम और एक भाग चांदी मिलानेसे एक प्रकारका अच्छा धातु मिश्रण बनता है उस पर भी पालिश खूब चढ़ती है।

—श्रीरमेशप्रसाद, बी. एस-सी.

## सूर्य्य नक्षत्र

एक सूर्य्य बीचमें खड़ा होकर बुध, शुक्र, पृथ्वी इत्यादि, छोटे बड़े आठ ग्रहोंको अपने चारों ओर घुमाता है। इसे देखकर हमारे हृदयमें यह विचार उठता है कि सूर्य्य कोई साधारण वस्तु नहीं है। उसके बहुत पास जो शुक्र ग्रह है, उस-पर शासन करना तो सहज है; किन्तु २८० करोड़ मीलकी दूरी पर नेपचून नामका गृह है, उसको अपने चारों ओर घुमाना साधारण बात नहीं है।

सचमुच सूर्य एक प्रकाण्ड वस्तु है। हमारी पृथ्वीसे यह बहुत बड़ा है। यदि इस पृथ्वीकी भांति तेरह लाख पृथ्वी और इकट्ठी कर दी जायं तो कहीं सूर्यका मुकाबला हो सकता है। यदि कोई कुम्हार मिट्टीका घड़ा बनावे, जिसका भीतरी भाग १½ हाथ चौड़ा हो और यदि हम उसमें एक मटर छोड़ दें तो उसकी गणना घड़ेके सामने क्या हो सकती है। लाखों मटरें और भी घड़ेके भीतर छोड़ी जायं तो कहीं घड़ेका मुहं भर सकता है। यही दशा सूर्य और पृथ्वीके सम्बन्धमें है। इससे प्रकट होता है कि सूर्य कितना बड़ा है।

अच्छा अब दूसरे प्रकारसे देखिये। पृथ्वी कितनी भी बड़ी हो किन्तु उसकी परिक्रमा कर आना वर्तमान समयमें कोई बड़ी बात नहीं है। यदि हम कलकत्तेसे जहाज पर चलें तो पहले हिन्द महासागर मिलेगा; फिर स्वेजकी नहरमें होते हुये भूमध्य सागरमें पहुंचेंगे। फिर इङ्गलैण्डके पास अटलांटिक महासागर मिलेगा। क्रमशः अमेरिका, प्रशान्त महासागर, जापान, चीन होते हुए फिर कलकत्ते पहुँच जायेंगे। वर्तमान समयमें कितने ही लोग पृथ्वीकी परिक्रमा कर आये हैं और कर रहे हैं। यह बात अवश्य है कि जहाज़पर सफ़र करनेसे समय अधिक लगता है। मान लिया जाय कि पृथ्वीके चारों ओर एक रेलकी लाइन बनी है, और हम डाकगाड़ीके द्वारा पृथ्वीकी परिक्रमा करना चाहते हैं। गाड़ी किसी स्टेशनपर न ठहरे। दिन रातमें प्रति घंटा पचास मीलके हिसाबसे दौड़े। इस प्रकार हम पृथ्वीकी परिक्रमा कितने समयमें कर लेंगे। हिसाब लगानेसे यह प्रकट होता है कि ३ सप्ताह या इकतीस दिनसे अधिक समय न लगेगा।

इसी प्रकार मान लिया जाय कि सूर्यके चारों ओर भी एक रेलकी लाइन बनी है। हम डाकगाड़ी द्वारा इसकी परिक्रमा करना चाहते हैं। गाड़ी दिन रात चलेगी; तो हम कितने दिनोंमें सूर्यकी परिक्रमा कर डालेंगे? हिसाब लगानेसे प्रकट हुआ है कि हम सात वर्षमें सूर्यकी परिक्रमा कर सकेंगे। अर्थात् हमको सातवर्षके लिए खाना, पानी, कपड़ा सभी ठीक कर लेना होगा। पृथ्वीके चारों ओर घूमनेमें २१ दिन लगते हैं और सूर्यके चारों ओर घूमनेमें ७ वर्ष। इससे प्रकट होता है कि सूर्य्य कितना बड़ा और पृथ्वी कितनी छोटी है। जमीन आसमान का अन्तर है।

किन्तु हम इतने बड़े सूर्य्यको पृथ्वीसे रकाबी की भाँति देखते हैं। देखनेसे मालूम होता है कि सूर्य पृथ्वीसे बहुत दूर है। दूर होनेसे प्रायः सभी वस्तुएं छोटी दिखाई देती हैं। जब हम पतंगको उड़ते देखते हैं तो वह एक छोटी किताबके रूपमें दिखलाई पड़ती है। किन्तु नीचे लाकर देखनेसे मालूम होता है कि वह अधिक बड़ी है। चूंकि सूर्य्य पृथ्वीसे बहुत दूर स्थित है इसीलिए वह रकाबीके ढंगका दिखलाई पड़ता है। यदि दूर न होता तो इतनी बड़ी चीज़ इतनी छोटी क्यों दिखलाई पड़ती।

जो हो, ज्योतिषियोंने पृथ्वीसे सूर्य्यकी दूरी निकाली है। उन लोगोंने एक मोटे हिसाबसे बतलाया है कि दूरीका परिमाण ९ करोड़ ३ लाख मील है। यहांसे इंगलैण्ड लगभग १००० मील दूर है, उसीको सुना कर हम सोचने लगते हैं कि शायद इतनी दूर और कोई देश नहीं है। तो भला ९ करोड़ ३० लाख कितनी दूर है, इसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

अच्छा, अब एक उदाहरण देकर सूर्य्यके दूरत्वके विषयमें कुछ विचार किया जायगा। मान लिया जाय कि हमारी पृथ्वीसे शून्य स्थानमें होते हुये सूर्य्य तक एक रेलकी लाइन बनी है और इस लाइनसे एक गाड़ी प्रति घंटे तीस मीलके वेगसे जाती है। यह गाड़ी कितने दिनमें सूर्य्यके पास पहुँचेगी। हिसाब लगानेसे प्रकट होता है कि वह रेल ३५० वर्षमें सूर्य्यके पास पहुँचेगी। अर्थात् मुगल बादशाह, अकबर जिस दिन सिंहासन पर बैठा, यदि उसी दिनसे यात्रा की जाती तो सम्राट पंचम जार्जका जिस दिन दिल्लीमें अभिषेक हुआ है, उस समय तक भी रेलका सूर्य्यके पास पहुँचना असम्भव होता। कितना दूरी है? विचार करने की बात है।

किन्तु इतनी दूर होते हुये भी तो सूर्यका तेज कम नहीं होता। चैत्र वैशाखके मासमें तो सूर्य्यके प्रचण्ड तेजसे सिर चक्कर खाने लगता है। सूर्य्य मानो अग्नि बरसाता है।

चंद्रमाको हम दूर होनेसे सूर्य्यके समान ही देखते हैं; किन्तु चन्द्रमा तो इतना प्रकाश नहीं देता और न उसकी किरण ही गरम होती हैं। यह सब

देखकर विचार उत्पन्न होता है कि कहीं सूर्य्यमें अग्नि तो नहीं है।

सचमुच सूर्य्य अग्निसे घिरा हुआ है। लाखों करोड़ों वर्षोंसे यह प्रकाण्ड अग्नि सूर्य्य लोकमें जल रही है। उसकी गर्मी इतनी अधिक है कि हम लोग पृथ्वीसे उसका अनुमान कर रहे हैं। यहाँ तक कि वह आलोकित होकर हमको घर द्वारका मार्ग बता रहा है! क्या सचमुच सूर्य्यके चारों ओर अग्नि है? हमारे यहाँ रसोई घरके चूल्हेमें आग जलनेसे हमें कितनी आँच लगती है। करोड़ों मीलकी दूरीसे इतनी गर्मीका आना आश्चर्यजनक नहीं तो क्या है? विचार करनेकी बात है!

बिना किसी वस्तुके जलनेके अग्नि नहीं पैदा होती; चूल्हेमें कोयला रख कर आग जलानेसे कोयला लाल हो जाता है और आस पास आलोकित भी होता है। बिजलीके लैंपके भीतर जो एक पतला तार होता है, जब उसके भीतर बिजली जाती है तो वह गरम हो जाता है और वह गरमीसे लाल होकर जलने लगता है इससे हम बिजलीके लैम्प से प्रकाश पाते हैं। उसके पास हाथ रखनेसे जलन नहीं प्रकट होती।

यदि यह ठीक है तो क्या सूर्य्य जल रहा है? बड़े बड़े ज्योतिषके पंडितोंने इसका उत्तर दिया है। उन लोगोंने यह स्थिर किया है कि जिस प्रकार हमारी पृथ्वी पर मिट्टी पत्थर कंकर हैं उसी प्रकार सूर्य्यमें नहीं है, वहाँ केवल वाष्प है। यही वाष्प उत्तप्तावस्थामें इतना ताप और आलोक देता है। यदि सारा सूर्य्य इसी प्रकारके वाष्पसे प्रस्तुत है तब तो सूर्य्य पृथ्वीसे कितना भी बड़ा हो किन्तु तोलमें उतना अधिक नहीं है। जिस वाष्पसे सूर्य्य प्रस्तुत है यदि उ.. एक हाँडीमें रख कर तोला जाय, और फिर उसी हाँडीको मिट्टी भर कर तोला जाय तो देखनेसे प्रकट होगा कि पृथ्वी की मिट्टी सूर्य्य के वाष्पसे चार गुनी अधिक ठहरती है। सूर्य्य दूर होते हुए इतना चमकता है, किन्तु उसका शरीर बहुत हलका है।

सूर्य्यका शरीर जलते वाष्पमें गड़ा है। वाष्पको यदि हम छोटे पात्रमें बन्द कर दे तो उसका आकार छोटा हो जायगा अर्थात् खूब घना हो जायगा। सूर्य्यका गोलाकार अंश जो हम अपनी आँखोंसे देखते हैं वह इसी प्रकारके घन या तरल वाष्पके द्वारा प्रस्तुत है। मिट्टी कंकरोंके द्वारा पृथ्वी जिस प्रकार एक गोलाकार वस्तु बन गई है, उसी प्रकार खूब घन ज्वलन्त वाष्पके द्वारा सूर्य्य भी एक भयानक गोलाकार वस्तु बन गया है।

केवल मिट्टी पत्थर कंकड़से ही बनी वस्तु पृथ्वी नहीं है। पृथ्वीके ठीक ऊपर प्रायः पच्चीस कोस तक वायु है। इसको पृथ्वीका एक अंश कहना चाहिये। पृथ्वीने वायुको इस प्रकार वायु भी बदलती रहती है। बाँध रखा है कि किसी प्रकारसे भी वायु पृथ्वी छोड़ कर नहीं भाग सकती। इसलिए हम वायुको पृथ्वीकी वस्तुके सिवा अन्य वस्तु नहीं कह सकते।

हमारी पृथ्वीका वायु-मंडल किस प्रकारका है इस पर फिर कभी विचार किया जायगा। वायु प्राकृतिक रूपसे बड़ी स्वच्छ होती है। ईंट, पत्थर, मिट्टी, जिस प्रकार हमारी दृष्टिको रोक देती है उस प्रकार वायु नहीं रोक सकती। काठके भीतरसे या दीवालके भीतर होकर हम बाहरकी कोई वस्तु नहीं देख सकते; किन्तु वायुके भीतर हम सभी वस्तुओंको भली भाँति देख सकते हैं। यही कारण है कि चन्द्र सूर्य्यका प्रकाश पच्चीस कोसके गम्भीर वायुके आवरणको भेद कर पृथ्वी पर आ पहुँचता है। किन्तु वायु-मंडलमें वायु ही नहीं है; बल्कि मेघ भी है। मेघ वायुकी भाँति स्वच्छ वस्तु नहीं है। इसीसे मेघोंके उमड़नेसे सूर्य्य तारे छिप जाते हैं और पानी गिरता है। सूर्य्यके चारों ओर भी वायु-मंडलकी भाँति वाष्पका आवरण है। किन्तु पृथ्वीको घेरे हुये जिस प्रकार एक आवरण है, उसी प्रकार सूर्यको घेरे हुये तीन आवरण हैं। इन तीनोंको लेकर सूर्य्यका आकाश मंडल बनता है। हमारी पृथ्वी सूर्य्यकी भाँति उत्तप्त नहीं है। इसका ऊपरी

भाग बहुत ठंडा है इसीलिए इसका वायु-मंडल भी ठंडा है। किन्तु सूर्य्यका प्रचण्ड ताप है; इसीलिए उसके तीनों आवरण भी जलते प्रकाशित होते हैं।

दूरबीन द्वारा सूर्यको देखनेसे उसका प्रथम आवरण स्पष्ट रूपमें दिखलाई पड़ता है। जिस प्रकार हम पृथ्वीके वाष्प आवरणको वायु-मंडल कहते हैं उसी प्रकार ज्योतिषी लोग सूर्यके इस प्रथम आवरणको आलोक मंडल (Photosphere) कहते हैं। सूर्यका सारा आलोक इसी आलोक मंडल से होकर हमारे पास पहुँचता है। पृथ्वीके नदी तालाबोंका पानी वाष्प बनकर आकाशमें उड़ जाता है और वहां ठंडा होकर मेघ बन जाता है। ज्योतिषी लोग कहते हैं कि सूर्यका आलोक मंडल इन मेघोंसे कुछ मिलता जुलता है; सूर्यके शरीरसे जाज्वल्यमान वाष्प ऊपर उठनेसे और कुछ घना हो जानेसे आकाश मंडलकी सृष्टि होती है।

किन्तु मेघ न तो प्रकाश देते हैं न गर्मी ही। सूर्यके आकाशके मेघ इस प्रकारके नहीं हैं। वह सर्वदा उज्ज्वल रहते हैं और गर्मी देते हैं। सूर्यका आलोक मंडल मेघसे कुछ मिलता जुलता है, यह दूरबीनसे स्पष्ट प्रकट होता है। दूरबीनसे आलोक मंडलका सारा मार्ग बराबर उज्ज्वल नहीं दिखलाई पड़ता है। ड्राइंग कागज पर जिस प्रकार दाने ऊँचे नीचे देखलाई देते हैं सूर्यका आलोक मंडल भी ऐसा ही देखलाई पड़ता है। जलते हुए मेघ सूर्यके आकाशमें इन उज्ज्वल दानोंकी सृष्टि करते हैं।

हमारे वायु मंडलके झोकोंसे कितने बड़े बड़े पेड़ गिर पड़ते हैं, कितने घर गिर पड़ते हैं। सूर्य आलोक मंडलमें भी प्रायः झोके चलते हैं। लाखों मील तक यह झोके १५ दिन २० दिन या कभी कभी महीनों तक चलते रहते हैं। अग्निके समान जलती हुई वाष्प राशियां इस प्रकार आलोकित होकर सूर्य लोकमें कैसा भयानक अग्नि काण्ड उपस्थित कर देते हैं, यह विचारनेकी बात है।*

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'।

* अंगरेजीके एक लेखके आधार पर। —लेखक

# प्रकृतिदेवी

[ ले०—श्रीयुत रमाकान्त त्रिपाठी, बी. ए. ]

नुष्य सृष्टिमें श्रेष्ठ माना जाता है। संसार उसकी शक्तियोंके लिए एक विस्तृत लीला क्षेत्र है। वह अपने चारों ओर प्रकृतिका राज्य देखता है। एक ओर झरनेसे झर झर कर श्वेत फेन-मयी नदी बनोंमें बिहार करती हुई, नाना प्रान्तोंकी भूमिको उर्वरा करती हुई अन्तमें हाथ फैलाकर समुद्रसे मिलती है। दूसरी ओर प्रकृतिके हिंसात्मक दृश्य देख पड़ते हैं। भयानक बनोंमें शेर तथा चीते अपनेसे निर्बल जीवोंका कवल करके रक्तपिपासा बुझाते हैं।

मनुष्य भी जब प्रकृतिमें इस प्रकारके दृश्य तथा शक्तिके प्रयोग देखता है, उसे भी अपने अनुपम बौद्धिक तथा शारीरिक बल पर गर्व उत्पन्न होता है। उसे यह जान पड़ता है कि मैं तो इन बनके जीवोंसे बहुत बातोंमें बढ़ा चढ़ा हूँ, फिर मैं अपनी ईश्वरदत्त विशेष शक्तियोंका क्यों न प्रयोग करूं।

इस अभिमानका विचार उत्पन्न होते ही एक प्रकारकी बिजली सी दौड़ती है और वह अपनी सब शक्तियोंको प्रकृतिके ऊपर विजय प्राप्त करनेमें लगा देता है। प्रकृतिसे मुठभेड़ करनेमें उसके दो उद्देश्य रहते हैं। एक तो वह इस बातका प्रयत्न करता है कि मैं किसी न किसी प्रकार प्रकृतिकी भयपूर्ण आकृतियोंको अपने पाशविक बलसे दबाऊं और उसकी शक्तियोंको अपने काममें लाऊं। यह ध्येय विशेष कर आदिम मनुष्योंमें उन्नत रहा करता है। यह सच है कि विज्ञान भी इसी अर्थसे प्रकृति सेवन अथवा यों कहिये कि प्रकृति-

युद्ध करता है कि जिससे जीवन निर्वाहकी कुछ सामग्री तथा साधनोंका पता लगे। परन्तु वैज्ञानिकोंको केवल इसी बातका ध्यान नहीं रहता। प्रत्युत, प्रकृतिके पीछे पड़नेमें वह अपनी जिज्ञासा तथा कौतूहलको पूर्ण करते हैं; जो अद्भुत बौद्धिक जागृति के कारण उनमें स्फुरित होता है।

इसके अतिरिक्त मनुष्य समुदाय सभ्यताके विकाशके साथ साथ प्रकृति-विजयके परिणाम स्वरूप अनेकानेक वैज्ञानिक आविष्कारोंसे उद्विग्न होकर समय समय पर अपने अस्त्रशस्त्र रख देता है और उलटी गंगा बहानेकी सोचता है। जब वह देखता है कि जहां रेल, तार, जहाज़, मशीनरी आदि वैज्ञानिक खिलौनोंसे जीवनके कुछ कार्य सिद्ध होते हैं और सुविधायें होती हैं तहां नाना प्रकारके दुष्परिणाम भी होते हैं, असुविधाओंकी अभिवृद्धि होती है, तब वह तुरन्त यह सोचने लगता है कि हो न हो प्रकृति-देवीकी भक्तोचित भावसे पूजा करनेमें ही कल्याण है, अन्यथा वह मनुष्योंकी अनुचित विजयाकांक्षाओंसे रुष्ट हो कर किसी न किसी रूपमें अवश्य बदला निकालेगी।

इन्हीं कारणोंसे प्रेरित होकर प्रत्येक आधुनिक युगखण्डोंमें ऐसे ऐसे लोगोंका प्रादुर्भाव होता है जो विज्ञानकी उत्तरोत्तर वृद्धिका प्रतिरोध करते हैं और अपने अपने ढंगसे कुछ सिद्धान्तोंकी धूम मचाते हैं, जिनसे प्रभाव उन लोगों पर पड़ता है जो विज्ञानके नवीन चमत्कारों पर मुग्ध हो कर ऊंचे स्वरसे उसके गुण गाने लगते हैं। एमर्सन (Emerson) थोरो (Thoreau) रस्किन (Ruskin) आदि महापुरुषोंकी गणना इसी प्रकारके लोगोंमें की जानी चाहिये। उनके व्यक्तिगत सिद्धान्तोंका उल्लेख करना यहां अभीष्ट नहीं है। यह दूसरी बात है कि हम उनके उपदेशोंको हंसकर टाल दें पर यह बात अकाट्य है कि प्रकृति-देवी वैज्ञानिकोंकी दूरबीनों, खुर्दबीनों तथा प्रयोगशालाके अगणित साधकयंत्रोंके तले दबाई जाने पर समय समय पर भिन्न भिन्न प्रकारकी हलचलें अचानक छोड़ देती है। कभी तो अतिवृष्टि द्वारा सैकड़ों गांव बह जाते हैं, कभी बज्रपात होता है और कभी महान भूचालसे अगणित जीवोंकी हानि होती है, विज्ञानकी सृष्टि बातकी बातमें नष्ट हो जाती है। अभी हालमें जापानमें जो भूप्रकम्प घटित हुआ था वह प्रकृति देवीकी अप्रसन्नताका एक ज्वलन्त उदाहरण है। उस भूकम्पसे समृद्धिशाली तथा वर्द्धमान जापान साम्राज्यकी नरशक्ति तथा आर्थिक शक्तिको जो धक्का पहुँचा है उसका अनुमान करना कठिन है। इसी प्रकारकी अनेक घटनायें प्रकृति रचा करती है जिन सबका उद्देश्य यही होता है कि उनसे मनुष्योंकी आंखें खुलें और वह उसके साथ प्रतिद्वन्द्वीका सा व्यवहार छोड़कर उसके जीवनमें भाग लें और उसकी लयमें लय मिलाकर उस देवी शक्तिका अनुभव करें जो समस्त सांसारिक पदार्थोंमें अदृश्य रूपमें वर्तमान है।

परन्तु तमाशा तो यह है कि ज्यों ज्यों विज्ञान प्रकृतिसे लड़कर नये नये भेद ज्ञात करता है, वैसे ही मनुष्यके लिए उसके प्रति प्रेम भाव रखना अधिकाधिक असम्भव होता जाता है। वह प्रति दिन देखा करता है कि ब्रह्माण्डके किसी न किसी भागमें प्रकृतिकी नाशक शक्तियोंका स्फोटन होता है, कहीं द्वीप डूब जाता है तो कहीं ज्वालामुखी पर्वतसे अग्निका उद्गार होता है। सारांश यह है कि प्रकृति और मनुष्य दोनोंमें चढ़ा ऊपरी होती रहती है।

सच तो यह है कि यद्यपि वैज्ञानिक योद्धागण बलात्कारसे प्रकृतिके बलको अपने कार्य्योंमें लगानेमें सफल होते हैं पर यह भी निर्विवाद है कि ऐसा करनेसे उसका ह्रास किसी न किसी रूपमें अवश्य होता है। सबसे बड़ा प्रभाव यह होता है कि प्रकृतिसे युद्ध करते करते मनुष्यमें उत्तरोत्तर लौकिक प्रवृत्तियोंकी वृद्धि होती है। वह जब किसी प्राकृतिक सौन्दर्यको देखता है तो उसकी यही भावना रहती है कि किसी न किसी युक्तिसे अपनी वैज्ञानिक प्रयोगशालाके यंत्रों द्वारा इसका

कृत्रिम अनुभव किया जाय। इस प्रकार सौन्दर्य शास्त्रके सिद्धान्तोंके अनुसार वह लोग प्राकृतिक सौन्दर्यका वास्तविक अनुभव नहीं करते; क्योंकि वह प्रकृति-निरीक्षण सौन्दर्यके विचारसे ही नहीं करते, वह तो उनका गौण उद्देश्य रहता है। परिणाम यह होता है कि उन लोगोंके हृदय शुष्कसे हो जाते हैं; क्योंकि उनमें रसका अभाव हो जाता है। भक्तोंकी सी आवेश पूर्णता उनमें नहीं रहती। परन्तु, हां, उनके मस्तिष्क अवश्य हरे भरे हो जाते हैं। ठीक ही है, क्योंकि सदैव वह प्रत्येक पदार्थको मस्तिष्क द्वारा समझनेका प्रयत्न किया करते हैं—कल्पना-शक्तिका तो न्यूनातिन्यून प्रयोग करते हैं। इसीसे कहा जाता है कि ज्यों ज्यों विज्ञानका विजय क्षेत्र बढ़ता जाता है त्यों त्यों कविता एवं अन्य तद्रूप कलायें क्षीण होती जाती हैं।

प्रकृति देवी भी चुपकेसे हंसती है कि 'अच्छा हुआ'। ज्यों ज्यों मेरे ऊपर मनुष्यजाति अनुचित प्रभुत्व स्थापित करती जाती है त्यों त्यों उसके जीवन की गम्भीरता तथा उसके रमणीय अंश दिनों दिन लुप्त होते जाते हैं।" कभी कभी तो प्रकृतिदेवी ऐसी भयानक हँसी हँसती है कि क्षण भरके लिए उसके शत्रुओंकी छाती दहल उठती है, जीवन अनित्य ज्ञात होने लगता है। परन्तु थोड़ी देर बाद ही याद भूल जाती है और प्रकृतिकी सूचनायें संसार के गोरखधन्धोंमें डूब सी जाती है।

आशा है कि कभी न कभी प्रकृति और मनुष्य दोनोंमें एक दूसरेकी ओर उन्हीं प्रेमपूर्ण सद्भावोंका जन्म होगा जो किसी समय सर्वत्र थे। नरसमाज का कल्याण तभी सम्भव होगा जब वर्ड्सवर्थसे प्रकृति पूजक आविर्भूत होंगे जो इस बातका उपदेश देंगे किः

"To her fair works did Nature link,
The human soul that through me ran."

---

# तम्बाकू

सोलहवीं शताब्दीके पूर्व प्राचीन संसारके लोग तम्बाकूसे पूर्णतः अपरिचित थे। कोलम्बसने जब नई दुनियाके अस्तित्वका पता लगाया तो उसने देखा कि वहांके असभ्य निवासी तम्बाकूकी हरी पत्ती को नीचेकी ओर जलाकर पीते हैं और नाकसे धुआँ निकालते हैं। उसे यह देखकर बड़ा विस्मय हुआ। कोलम्बस इसे नवीन वस्तु समझ कर स्पेनके म्यूज़ियममें रखनेके लिए तम्बाकूकी कुछ पत्तियाँ यूरोप ले आया। प्राचीन संसारमें इसी समयसे तम्बाकूका प्रचार हुआ। यह साधारण अनुभवकी बात है कि जिस कामको कुलीन तथा समृद्धशाली लोग करने लगते हैं जन साधारण भी उनका अनुकरण करना आरम्भ कर देते हैं। स्पेनके कुलीनोंने सबसे पहले तम्बाकूका इस्तेमाल आरम्भ किया; बस, फिर क्या था धूम्रपान-का एक नया फैशन चल गया। पहले पहल इस फैशन ने स्पेनके निकट वर्त्ती देशों पर विजय लाभ की और फिर शनैः शनैः इसकी सब जगह चाल चल गई, जिसका फल आज हम यह देखते हैं कि संसारका कोई भी देश इससे बचा नहीं। बुड्ढे, बालक, युवा, स्त्री, पुरुष, धनी तथा निर्धन सभी इसके गुलाम हो गये हैं। और वीसवीं सताब्दीमें शायद ही कोई व्यक्ति होगा जो तम्बाकूसे अभिज्ञ न हो।

मि. बालफोरने हाल हीमें कहा थाः "तम्बाकू जीवनकी आवश्यकताओंमेंसे एक है"। यह कहा जाता है कि ५,५ ०,००० एकड़ भूमि इसीके उगानेके लिए जोती जाती है; जिसका अन्त धुआँ है। १५,००,००० मनुष्य हुक्का बनानेमें लगे हुए हैं और फ्रान्सका एक शहर प्रति वर्ष ४०००००००

मिट्टीके हुक्के तय्यार करता है। इंगलैंडके निवासी १२००००००० पौंड तम्बाकू हर साल पी डालते हैं और आमदनी-करका आधा भाग तम्बाकू से आता है जो १७०००००० पौंड होता है। इन देशके अंकोंसे (Statistics) पता चलता है कि कितना धन और शक्ति इस तम्बाकूके उत्पन्न करनेमें व्यय होती है।

यद्यपि सभ्य देशोंकी सरकारोंने इस निंदनीय आदतको रोकनेके लिए अनेक प्रयत्न किये हैं और कर अधिकाधिक करती रही हैं; किन्तु इसका प्रचार निरन्तर बढ़ता गया है और आज कल भी बढ़ रहा है। नौबत यहां तक आ गई है कि उपज मांगके बराबर नहीं हो पाती। चाय और कहवा की अपेक्षा तम्बाकू पीनेकी आदत डालना अधिक कठिन तथा कष्टदायक है, तोभी हम देखते हैं कि उसका इतना अधिक प्रचार इतनी शीघ्रतासे हो गया है। इसका क्या कारण है! इसका मुख्य कारण मध्यकालीन अमेरिका निवासियोंकी अविद्या है जिसके कारण उनमें इसके विषयमें मिथ्या विचार (Superstitions) फैल गये थे। वह इसे एक देवी प्रसाद समझते थे, जिसका ग्रहण करना समाजके प्रत्येक सदस्यके लिए अनिवार्य्य तथा आवश्यक था। उन लोगोंमें यह विचार कि तम्बाकूका सेवन करनेसे शरीर स्वस्थ रहता है, रोगोंसे निवृत्ति मिलती है और आत्माको स्वर्गीय शान्ति, अच्छी तरह जड़ पकड़ गये थे। यद्यपि यूरोप निवासियोंमें अमेरिका निवासियोंकी भाँति तम्बाकूका पीना एक धार्मिक कार्य्य तो नहीं समझा जाता था, तथापि वह उसकी छूतसे नहीं बच पाये। एक प्रख्यात अंग्रेज लेखक Edmond Spenser ने इसे "पवित्र और स्वर्गीय वनस्पति" कहा है। उसकी इस पवित्रताने उसके साथ साथ यूरोपीय देशोंमें भी प्रवेश किया है। यद्यपि यूरोपके निवासी उसका पीना धर्मानुकूल तो नहीं मानते थे, तथापि वह उसके नैतिक तथा भेषजीय गुणोंसे अवश्य ही प्रभावित हो गये थे। जनसाधारणमें यह विचार फैल गया था कि इसके पीनेसे चित्तको शान्ति मिलती है और रोगोंसे रक्षा होती है। फिर क्या था उसका प्रचार दिन दूना रात चौगुना होने लगा। परन्तु आधुनिक युगमें उसके प्रचारका कारण उसकी व्यापारिक उपयोगिता है। उसकी तिजारत से अमेरिका करोड़ों रुपया खींच रहा है।

मनुष्य तम्बाकूको पीता सूँघता और खाता है; परन्तु इसके अतिरिक्त वह और और कामोंमें भी लाई जती है। जिन लोगोंको अमेरिकाके किसानोंके बुद्धि-वैचित्र्यका पता है वह अच्छी तरह जानते हैं कि उन्होंने कृषीकी उन्नतिके लिए कैसे कैसे आविष्कार कर डाले हैं और किस चतुरता तथा चैतन्यतासे उन सब बाधाओंसे युद्ध करते हैं जिन्हें कि भारतके निरीह कृषक ईश्वरीय रोष समझते हैं। भारतमें कीड़ोंके कारण लाखों जानवरोंकी जानें जाती हैं और करोड़ों रुपयोंका कृषीमें नुकसान होता है। अमेरिकामें ऐसा सम्भव नहीं। वहांके किसान शिक्षित चिन्ताशील, और स्वावलम्बी होते हैं। वह ईश्वरकी कृतिकी दुहाई देकर निरुपाय होकर सिर पर हाथ रखकर नहीं बैठ जाते, प्रत्युत वह प्रत्येक बाधाको मिटाये बिना शान्ति नहीं लेते। अस्तु। तम्बाकू अमेरिकामें बहुतायतसे पैदा होती है। अधिकांश विदेशोंको भेज दी जाती है और शेष देशमें ही खप जाती है। जो भाग देशमें खप जाता है वह चिलममें रख कर ही नहीं फूंक दिय जाता, परन्तु उन कीड़ोंके मारनेमें जो खेतीको चौपट कर देते हैं और जानवरोंके प्राण ले लेते हैं, इस्तेमाल की जाती है। सेवके पेड़की इसके द्वारा तुषारसे रक्षा की जाती है। इङ्गलैंडमें यह चमड़ेके पकानेके काममें लाई जाती है।

ऐसे तो तम्बाकू संसारके सब भागोंमें पाई जाती है, परन्तु अबतक अमेरिका ही इसके व्यवसायकी जननी मानी जाती है। हाँ, रोडेसिया और नियासालैंडके अधिवासियोंने अमेरिकन और टरकिश पत्तियोंका उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया है। हालमें एक विशेष प्रकारकी तम्बाकूने जो कि

समात्रा और बोरनियोमें उत्पन्न होती है, सिगार बनानेवाली फैकृरियोंमें अच्छा स्थान प्राप्त किया है। और उन लोगोंको ७५ फीसदी तक लाभ हुआ है।

अभी तक तो तम्बाकूकी उपयोगिता और उसके महत्व पर विचार किया गया है, अब निम्नलिखित पंक्तियोंमें उसकी काश्तके विषयमें कुछ कहा जायगा।

तम्बाकूका बीज बहुत छोटा होता है। यदि सब बीज उग आवें तो एक औन्स बीजोंसे ३००००० से अधिक पेड़ पैदा नहीं होते। परन्तु प्रायः बहुत से बीज मारे जाते हैं और एक औन्समें ३०००० पेड़से अधिक पैदा नहीं होते। पहले पहल यह क्यारियोंमें घने घने बो दिये जाते हैं और लगभग ६० दिनके अनन्तर क्यारियोंमेंसे उखाड़ कर खेतमें साधारणतः छः छः इंचके फ़ासले पर लगाये जाते हैं। वह पेड़ जो सिगार बनानेके लिए रखे जाते हैं १२ इंचसे १४ इंच तकके फासले पर लगाये जाते हैं। तम्बाकूके पौदेको नमीसे बचाना पड़ता है, इसलिए जहां पर पानी अधिक बरसता है वहां यह तख्तों पर लगाये जाते हैं।

अमेरिकामें एक मनुष्य और एक लड़का ५००० पेड़ एक दिनमें लगा सकते हैं। और एक और लड़का इनमें पानी लगानेके लिए रहता है। परन्तु वहां पर अब पेड़ लगानेवाली मशीनोंका प्रचार बढ़ता जाता है। यह मशीनें पेड़ोंको अभिप्रेत फासले पर लगाती जाती हैं और साथ ही साथ पानी भी देती जाती हैं। आवश्यता पड़ती है तो साथ साथ थ.ड़ेसे परिमाणमें खाद डालनेमें भी समर्थ होती हैं। ऐसी एक मशीनके चलानेमें तीन मनुष्य लगते हैं। एक तो घोड़ोंको चलाने और शेष दो मशीनमें पौदे रखनेके लिए। मशीनसे साधारण तम्बाकूके पाँच एकड़ बोये जा सकते हैं। पौदेके बढ़ावके समयमें ज़मीन नरानेकी आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि तम्बाकूकी जड़ें पृथ्वीमें बहुत दूर तक नहीं जातीं, इसलिए यह अनिवार्य हो जाता है कि आस पासकी घास खुर्पी के द्वारा हटा दी जाय; जिससे पौदेके बढ़ावमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़ने पावे।

तम्बाकूके पकानेका काम उसके उत्पन्न करनेसे कम महत्वका नहीं है। तम्बाकूको पकाना पाश्चात्य देशोंमें बड़ा नाजुक काम समझा जाता है। उसके ठीक तौरसे पकानेके लिए बुद्धि, सावधानता और अनुभव अपेक्षित हैं। क्योंकि तम्बाकूकी पकानेमें काया पलट हो जाता है। थोड़ी सी भी न्यूनाधिक पकानेमें उसका मूल्य बहुत घट बढ़ जाता है। और यही कारण है कि तम्बाकू पकानेके ढँगोंमें वहाँ सदैव परिवर्तन होते रहे हैं। वहांके लोग वैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा तम्बाकूको भिन्न भिन्न भागोंमें बांटते हैं। तम्बाकूको सूर्य्यकी धूपमें सुखानेका प्राचीन ढँग वर्जिनियाके कतिपय भागोंको छोड़ कर कहींपर काममें नहीं लाया जाता। अमेरिकामें तम्बाकू सूर्य्यकी धूपमें सुखानेकी बजाय उसके पत्ते लोहे की लम्बी लम्बी शलाकाओंमें लगाकर धीरे धीरे मध्यम अग्निपर सुखाये जाते हैं। इस क्रियाके द्वारा तम्बाकूके गुण बिलकुल बदल जाते हैं। इस प्रकार से तय्यार की हुई तम्बाकू सिगरेट बनानेके काममें बहुत लाई जाती है।

तम्बाकूके सुखानेमें बड़ी सावधानीसे काम लिया जाता है; क्योंकि गर्मीके कुछ ही न्यूनाधिक होनेसे तम्बाकूका मज़ा बिगड़ जाता है और उसका मूल्य कम हो जाता है। यह गर्मी १७५ तक बढ़ाई जा सकती है जब तक कि डंठलका पानी बिलकुल न सूख जाय। १०० डिग्रीपर उसमें पसेज निकलना आरम्भ हो जाता है। इस पसेजके द्वारा वह सब गन्दी चीज़ें जो तम्बाकूकी स्वाद Quality के लिये हानिकारक हैं बाहर निकल जाती हैं। ज्योंही पसेज निकलना बन्द हो जाता है, आग बुझा दी जाती है और खत्तीके दरवाज़े और रोशनदान खोल दिये जाते हैं जिससे वह हवाकी नमी सोख ले। इसके पश्चात् वह गोदाममें रहती है जब

तक कि उसके बिकनेका समय नहीं आता। जैसे तम्बाकू पुरानी होती है उसके गुण बढ़ जाते हैं और उसका मूल्य बढ़ जाता है, परन्तु दो चार सालसे अधिक पुरानी नहीं होनी चाहिये।

सिगार धूपमें सूखी हुई तम्बाकूके बनते हैं। इनका और सिगरेटों का प्रचार इतना बढ़ गया है कि वह मशीनोंके द्वारा तैय्यार किये जाते हैं। सिगरेट बनानेकी मशीनमें एक मिनटमें ५५० सिगरेट तय्यार होते हैं। एक मील लम्बा कागज़ मशीनके द्वारा अपने आप खुलता जाता है। थोड़ी थोड़ी दूरपर ट्रेड मार्क और कम्पनीका नाम छपता जाता है। इसके पश्चात् वह कागज एक दूसरी मशीनके किनारेपर लगा दिया जाता है जिसमें तम्बाकू भरी होती है और फिर उसकी एक बड़ी सिगरेट बन जाती है। इस बड़ी सिगरेट से एक छोटी सी मशीनके द्वारा नापकी छोटी छोटी सिगरेटें बड़ी ही शीघ्रता से कटती जाती हैं और वह सब एक जगहपर गिरतीं जाती हैं। ज्योंही वह गिरती हैं एक बालिका उनकी गड्डी लगाती जाती है। इन मशीनों के अतिरिक्त एक और मशीन होती है जिसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। यह मशीन एक पतले पट्टे का बक्स सा बना देती है, गिनकर दस सिगरेटें उसमें रख देती है और साथ ही वैसे ही पट्टे पर बनी हुई तस्वीर उसके ऊपर रख देती है और बाज़ार में बेचनेके लिए पैकट तैय्यार कर देती है।

यद्यपि भारतका तम्बाकूका व्यवसाय इस समुन्नत दशाको नहीं पहुँचा है, तथापि गत महायुद्धके पश्चात् बहुत उन्नति हुई है। तम्बाकूका व्यवसाय भी और व्यवसायोंकी भांति वैज्ञानिक ज्ञानके अभावसे जैसी उन्नति चाहिये नहीं कर सकता। तम्बाकू बोने और पकानेके पुराने ढँग ही काम में लाये जाते हैं। यहां पर बीड़ी बहुतायत से तैय्यार की जाती है। और वह सब देशमें ही खप जाती हैं। ब्रिटिश भारतमें १०,००,००० एकड़ भूमिमें तम्बाकू बोई जाती है। यहांसे अधिकांश तम्बाकू कच्चे मालकी हैसियतमें निर्यात होती है। सन् १९१८-१९ में ३१५०६०० पौं० तम्बाकू पौंड ५४६००० की कीमती बाहर भेजी गई थी। यह सब कच्चा माल था। और उसी सालमें पक्का माल १४७७००० पौ० वजन ६३५०६ पौ० कीमती भेजी गई थी। इस व्यवसायमें उन्नतिके लिए बहुत स्थान है।

—सियराम चतुर्वेदी, बी॰ ए.

---

# सांपका काटा*

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकर ]

बंधी रस्सीसे पार निकल जानेके लिए विष धाराके धक्के कुछ देर तक लगते रहते हैं। बादमें जब वह पार नहीं निकल पाती तब वह वहीं फैलने लगती है। और बंधे स्थान पर और उसके नीचे जहां भी काटा वहां से ही विषके चिन्ह दीखने लगते हैं। चतुरता इसीमें है कि जख़मी आदमीको बिना विशेष कष्ट दिये उसकी चिकित्सा हो जाय। विषका बाहर निकल जाना और उसका चंगा हो जाना बहुत साधारण बात है। पर चतुर वैद्यको इस बातका गर्व रहता है कि वह अपने रोगीको अनावश्यक कष्ट नहीं भोगने देगा। या तो वह चूस ले, या ज़खमको दाग़ दे या जहरकी बहती धाराको उसके आगेसे मार्ग खोलकर निकालदे या बँधी पट्टीके नीचेसे ही निकाल दे। इन विधियोंके बर्त लेने पर भी वह दहकते कोयले या लोहेसे ज़खमको दागकर विषका मूल नाश करदे! परन्तु बहुत सी दशाओंमें तो चतुर वैद्यको अपनी चतुराई दर्शानेका अवसर ही नहीं मिलता। इसके सामने

* विज्ञान भाग १७ पृष्ठ १७६ से सम्बद्ध।

सांपसे कटा हुआ पुरुष ला खड़ा किया जाता है और सांपका विष इतना अधिक चढ़ चुकता है कि उसे उक्त सुगम रीतियां बरतनेका अवसर ही नहीं आता।

वैद्य देखता है कि आदमीको सांपने काटा है और पट्टी या रस्सी बँधी है। वह सबसे पहले यह देखे कि विषधारा बन्धनसे रुकी है या उसे पार कर गयी है। पर इसके भी पहले दो दो गिरह ऊपर दो पट्टियां और बांधदे। तब रोगीकी दशाको परखे। प्रायः विष बंधी पट्टीको पार कर ही जाता है। विष बन्धनसे नीचे ही रहे ऐसा शायद ही कभी होता होगा। प्रायः विषधारा बन्धनसे रुकी रहती है। ऐसी दशामें यह नश्तरसे फस्त खोल दे और जहरीला काला खून निकाल दे।

चिकित्सक उसी समय नश्तर रख कर वंधी रस्सीसे लेकर विषकी कालीधारा पर अच्छी गहराई पर चलाता जाता है। सब चीरमेंसे काला खून बहने लगता है। उसी समय उसपर नमक मल दिया जाता है; खून और अधिक निकलता है। जब खून निकलना बन्द हो जाता है तब रुईके फायेसे गरम पानीसे धो डाला जाता है। यदि अधिक जहरका संदेह हो तो धोनेके पहले दहकते अंगारे या लोहेसे दाग दिया जाता है।

'थूबी' की विधि केवल कोरा दाह ही है। दाहसे ही विष नष्ट हो जाता है। छोटे मोटे सांप काटेका तो इलाज दाग देनेसे ही हो जाता है। दागे नहीं तो केवल रेत या नमकको कोथलीमें भर कर उससे सेकनेसे ही काम निकल जाता है। या जख़म पर थूहरके पत्ते रखकर जख़मको कोयला दिखानेसे ही आराम होजाता है। कभी केवल तत्ते पानीकी धारा छोड़नेसे ही आराम आता है। अस्तु

जब एकबार जहरीला खून और नमक आदि धोडाला जाता है तब एक नश्तर फिर लगाकर लहू बहाया जाता है। इस बार खूनका रंग बदला हुआ होता है। उसका रंग अधिक लाल होता है। अबकी बार फिर नमक छिड़क दे और धो डाले। इसी प्रकार तीन या चार बार करे। जब तक खूनका शुद्ध रंग न आजाय तब तक विषको सर्वथा मुक्त हुआ न समझे।

सब क्रियाओंमें सेक बराबर लगाता रहे। आध आध घण्टेके बाद फिर खूनके रंगको परख लिया करे। पहली बारके नश्तर लगनेके बाद भी कई बार फिर पहलेकी नाईं काला खून निकला करता है। इसी कारण ठहर ठहर कर रोगीको आराम दे दे कर आध आध घण्टे या १५, १५ मिनटके बाद बार बार खून निकाल कर विषको साफ़ करे।

कभी कभी जब पहले बन्धनके नीचेका रक्त निकालनेके लिए नश्तर लगाया जाता है तब विषका कोई भाग बन्धनको भी पार कर जाता है; ऐसी दशामें उससे ऊपर लगी दूसरी पट्टीके पास-से भी रक्त स्रावकी विधिसे खून निकाल देना चाहिये। यदि उसमेंसे भी काला खून निकले तो उसको कई बार रक्तस्राव करके साफ़ कर दे। इसी प्रकार यदि संदेह हो तो तीसरे बन्धनके पास भी परख कर देख ले। यदि आवश्यकता जान पड़े चौथी और पांचवीं पट्टी भी बांधी जा सकती है। सांप काटेकी चिकित्सा करते समय यह सिद्धान्त सदा मनमें रखना चाहिये कि जैसे भी हो सके विषका कोप शान्त हो जाय, उसका बल टूट जाय और उसके ऊपर चढ़नेकी गति रुक जाय। तापके लगनेसे विषका बल टूटता है। इसी प्रकार विषैले खूनके निकाल देने पर भी विषका कोप शान्त हो जाता है। विषका थोड़ा सा अंश भी निकलनेपर विषका आगे बढ़ना बन्द हो जाता है।

जब विषकी धारा दो बन्धनोंको भी पार कर जाय तब जान लो कि चिकित्सा दुःसाध्य है। दो पट्टियोंको पार कर जाना केवल इसी कारण नहीं होता कि पट्टियां ठीक प्रकारसे नहीं बांधी गयीं प्रत्युत विषकी दाढ़ें जब बहुत लम्बी होती हैं तो वह गहरा घाव करती हैं और विषकी धार भी गहराई पर होती है। उस समय बाहरके कड़े बन्धन-से भी विषकी धार नहीं रुकती; ऐसी दशामेंव ह

प्रायः दो पट्टियां भी पार कर जाती है। इस समय दाह, सेक और रुधिर स्रावसे ही विषका वेग कम करना चाहिये।

ऐसी दशामें बैरी विधिका प्रयोग किया जाता है। इस विधिका प्रयोग बहुत कम किया जाता है। जब विष दो पट्टियोंको भी पार कर जाय तब जीवन बचानेका एक मात्र उपाय बेरी विधिका प्रयोग ही है। यदि वह दूसरी पट्टीको पार करके तीसरी पट्टीको पार कर जाय तब तो असाध्य ही समझो; तब उसकी रक्षा भगवान ही करते हैं। 'बेरीविधि' को हम 'दात्री दाह' कहते हैं। गोबरके गोहे जलाकर उसमें दो दरांतियां लाल गरम की जांय। दरांती या दात्री हंसुएको कहते हैं। यह जब खूब गरम हो जांय तब उठाये और पट्टीके साथ दरांतीकी लाल सुर्ख गरम धार धर दे। पहले पट्टी जलेगी। फिर चमड़ा और मांस भी जलने लगेगा; तब तुरन्त दूसरा हंसुआ भी लगाकर टांगको दोनों ओरसे जला डाले। जहां मांस कम होता है वहां हंसुएका लाल लोहा हड्डी तक भी पहुँच जाता है। बस तब समझ ले कि अब आदमी न मरेगा। ध्यान रहे कि हंसुओंकी धारसे कमसे कम चौथाई इंच गहरा दाग दे। प्रायः सारा विष पट्टीपर ही जमा होता है। हंसुओं के जुड़ते ही सब एक साथ ही शान्त हो जायगा।

हंसुओंसे दाह करते समय चिकित्सकको इस बातका विचार रखना चाहिये कि इस विधिसे चाहे दो चार रक्त नाड़ियां जायं भले ही जल पर शरीरके ज्ञान तन्तु नष्ट न हों। ( इसके सम्बन्धकी अन्य बातें पृष्ठ २१७ पर दी जा चुकी हैं। )

---

## समालोचना

भारतवर्षका इतिहास—लेखक 'एक इतिहास-प्रेमी'; प्रकाशक ज्ञानमण्डल कार्यालय काशी। आकार मँझोला। पृष्ठ संख्या २+३०४+२६। मूल्य सुन्दर खद्दर की जिल्द सहित २॥।)

भारतवर्षके इतिहास पर कई पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं, परन्तु जैसे गवेषणापूर्ण, विवेचनात्मक और आलोचनात्मक ग्रन्थ अंग्रेज़ीमें अन्य देशोंके इतिहास पर लिखे जा चुके हैं वैसी एक भी पुस्तक हिन्दीमें इतिहास पर नहीं लिखी गई। हिन्दीमें उच्च कोटिके इतिहास ग्रन्थोंका बिलकुल अभाव है। इसका कारण यही कहा जा सकता है कि हिन्दीमें इतिहास-लेखन-कला अभी अपनी बाल्यावस्थामें ही है। परन्तु भारतवर्षका ऐसा इतिहास तो अंग्रेज़ीमें भी अभी तक कोई नहीं लिखा गया, जिसकी गणना हम उत्तम इतिहास-ग्रन्थोंमें कर सकें। आवश्यकता है देशके एक ऐसे सच्चे इतिहासकी जो ऐतिहासिक सामग्रीकी खूब जाँच पड़ताल करके, निष्पक्ष आलोचनात्मक दृष्टि से, सरस सुन्दर भाषामें, सुव्यवस्थित रीतिसे लिखा जाय। भारतवर्षके वर्तमान इतिहास-ग्रन्थोंमें एक बड़ा भारी दोष यह है कि उनमें प्रजाकी तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक और कला-सम्बन्धी बातोंका अभाव सा ही होता है। उनमें प्रायः राजनीतिक घटनाओंका ही समावेश रहता है।

आलोच्य पुस्तकमें इस अभावको दूर करनेका प्रयत्न किया गया है। प्रथम चार प्रकरण—इतिहासका उद्देश, मनुष्य और समाज, राज्यका विकास और जातिका इतिहास—तथा बीचके कुछ अध्याय इस पुस्तककी विशेषताके द्योतक हैं। लेखकने केवल शासकोंके शासनोंका ही इतिहास नहीं लिखा है, परन्तु आर्य, बौद्ध, राजपूत, सिक्ख, मराठे और अँग्रेज़ जातियोंके शासनकालमें प्रजाकी दशा पर भी प्रकाश डाला है। कहीं कहीं व्यापक नियमोंके ढूँढ़ निकालनेमें लेखकको अच्छी सफलता हुई है। तुलनात्मक पद्धति से भी जहाँ तहाँ काम लिया गया है। पुस्तकके पढ़नेसे मालूम पड़ता है कि लेखकने भारतवर्षके इतिहासके साथ साथ यूनान, मिस्र, इँग्लिस्तान, फ्रांस, अमेरिका आदि देशोंका भी मनन किया है।

परन्तु इन गुणोंके साथ साथ पुस्तकमें दोष भी अनेक हैं। सबसे बड़ा दोष तो यह है कि अँग्रेज़ोंके समयके कुछ मुसलमान शासकोंको छोड़कर (जिनसे अँग्रेजोंको राज्यके लिए लड़ना पड़ा है जैसे हैदर अली और बंगालके नवाब) अन्य मुसलमान शासकोंका बहुत ही थोड़ा विवरण है। स्कूली पुस्तकोंमें यह दोष बताया जाता है कि आधी पुस्तकमें तो दो हज़ार वर्षका वर्णन मिलता है और बची हुई आधी पुस्तकके पृष्ठ पिछले २०० वर्षके वर्णनसे रँगे जाते हैं; आलोच्य पुस्तकमें भी इसी प्रकार मुसलमानी समयका ५ शताब्दियोंका इतिहास अत्यन्त संक्षेप रूपसे दिया गया है। पाठकोंको आश्चर्य होगा कि ३०४ पृष्ठोंकी पुस्तकमें दिल्लीके सुल्तानोंका इतिहास ३ पृष्ठोंमें दिया गया है और मुग़लोंका इतिहास ४½ पृष्ठोंमें ही लिखकर अन्त कर दिया है! साथ ही साथ सिक्ख, राजपूत और मराठोंका इतिहास खूब विस्तारके साथ लिखा गया है। दिल्लीके सुलतानों और बादशाहोंमें भी कई प्रतिभाशाली शासक हो गये हैं। जिस पुस्तकमें इनके शासन-कालको उचित स्थान नहीं मिला है वह अधूरी नहीं तो और क्या कही जा सकती है। राष्ट्रीय दृष्टिसे भी यह दिखलाना अत्यन्त आवश्यक था कि अरबोंके शासन-कालमें हिन्दुओंको पूरी धार्मिक स्वतंत्रता थी। यह स्वतंत्रता दिल्लीके सुलतानोंके समयमें न रही, फिर अकबरने इस धार्मिक स्वतंत्रताको पुनुर्जीवित करके उसे जीता जागता रूप दिया। अकबरने भारतवर्षको "राष्ट्र" बना दिया था। जहाँगीर और शाहजहाँ इस नीतिके बाहर न थे। परन्तु यदि औरंगज़ेब और उसके उत्तराधिकारी भी अकबरकी नीतिका अवलम्बन करते तो आज भारतवर्षका इतिहास कुछ और ही होता। दिल्लीके सुलतानोंने हिन्दुओंसे सदा द्वेष रखा। इस लिए कभी वह सुखकी नींद नहीं सोये और राज्यकी दशा बड़ी डांवाडोल रही। अकबरके समयमें राज्यके लिए हिन्दू पसीनेकी जगह खून बहानेको उद्यत रहे। औरंगज़ेबने हिन्दुओंको नहीं अपनाया और इसका फल यह हुआ कि अकबर द्वारा निर्मित और उसके पुत्र तथा पौत्र द्वारा रक्षित विशाल साम्राज्य बातकी बातमें नष्ट भ्रष्ट हो गया। शेरशाह सूरका भी भारतीय इतिहासमें विशेष स्थान है। प्रथम तो उसके समयमें हिन्दुओंको काफ़ी धार्मिक स्वतंत्रता थी और दूसरे उसका शासन अत्यन्त सुव्यवस्थित और प्रजा हितकारी होनेके कारण मध्यकालीन भारतमें अत्युत्तम माना गया है। अकबरने राज्य प्रबन्धमें अधिकांश शेरशाहसे सीखा था और वर्तमान ब्रिटिश सरकार की शासन प्रणाली अकबर और शेरशाह की राज्य-व्यवस्थाकी भित्ति पर बनी है। छत्रपति शिवाजी की शासन-प्रणालीका वर्णन भी कुछ विस्तार रूपसे करना उचित था, क्योंकि उससे भी अँग्रेजोंने बहुत कुछ सीखा है।

लेखकने कई अन्य आवश्यक बातोंका विवरण छोड़ दिया है। पुस्तकमें जैन धर्म तथा उसके प्रवर्तक श्रीमहावीरका कहीं ज़िक्र तक नहीं है। भगवान बुद्धदेवके उपदेशोंका कई शताब्दियों पर्यन्त भारतवर्षकी दशा पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। यद्यपि जैन धर्मके अनुयायी बौद्धधर्मकी अपेक्षा बहुत कम हुए और इसलिए जैन मतका प्रभाव भी कम पड़ा; परन्तु इतना न्यून नहीं कि इतनी बड़ी पुस्तकमें उसका नाम तक भी न लिया जाय। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जैनमतावलम्बियोंने देशके साहित्य और कला-कौशलकी वृद्धिमें एक विशेष भाग लिया है। फिर एक विचित्रता यह है कि बौद्ध धर्म जिसका शासन किसी समय देशके अधिकांश भाग पर था अब अपनी जन्मभूमिमें प्रायः लोप सा हो गया है; परन्तु जैन धर्मावलम्बी जिनकी संख्या कभी बहुत ज़्यादा नहीं हुई थी सारे देशमें फैले हुए अब भी पाये जाते हैं। इसी प्रकार पुस्तकमें गुप्त वंशके विवरणका अभाव भी बहुत खटकता है। इस वंशमें भी समुद्र गुप्त और चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य बड़े प्रतिभाशाली हुए हैं, जिनका विवरण

चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक और हर्षके साथ साथ करना अत्यन्त आवश्यक है। गुप्त वंशके समयमें कला-कौशल तथा साहित्यकी वृद्धि भी विशेष रूप से हुई थी। इसी प्रकार उन वाइसरायोंके कालका विशेष विवरण करना आवश्यक था जिनकी नीतिका देश पर गहरा प्रभाव पड़ा। वारन हेस्टिंग्ज़के समयमें राजा नन्दकुमारका नाम तक नहीं आया है। इसी प्रकार और भी अनेक आवश्यक बातें पुस्तकमें नहीं आई है।

राष्ट्रीयताकी लहरमें हिलोरे लेते हुए लेखकने कहीं कहीं बहुत ही खैंचातानी कर डाली है। लेखकने लिखा है कि महमूद गज़नीको सोमनाथके मंदिरकी मूर्ति तोड़ने पर रत्न नहीं मिले थे। लेखकके पास इस मतकी पुष्टिमें क्या प्रमाण हैं? मुहम्मद तुग़लगके विषयमें लेखककी अभी पुरानी राय ही चली आती है कि वह निरा पागल ही था। छत्रपति शिवाजी और अफ़ज़लखाँके विषयमें यह मत अब स्थिर हो गया है कि अफ़लज़खाँकी हत्यामें शिवाजी बिल्कुल निर्दोष था। मिलनेके समय दोनों हथियार छिपाये हुए थे, परन्तु पहले अफ़ज़लखाँने शिवाजी पर हमला किया और शिवाजीने केवल आत्म-रक्षाके हेतु अफ़ज़लखाँको मार डाला। परन्तु मालूम पड़ता है कि लेखक महोदयको अभी इस मतका पता नहीं लगा। जहाँगीर और नूरजहाँकी पुरानी प्रेम-कथा अब संदेह जनक सिद्ध हो गई है। प्रसिद्ध इतिहास कार स्मिथको भी इस विषयमें संदेह है और प्रो० बेनी प्रसादका मत तो यह है कि यह कथा बिल्कुल ही कपोल कल्पित है।* एक स्थान पर लेखकका कहना है कि "वहाँ (जयपुर) के राजाने देखा कि राजपूताना अकेला मुगलोंको आर्यावर्तसे नहीं निकाल सकता इसलिए उनके साथ मित्रता तथा सम्बन्ध करके उन्हें अपने अन्दर मिला लेना चाहिये। राजाने अपनी कन्याका विवाह अकबरसे कर दिया"। क्या लेखक बता सकते हैं कि किन आधारों पर उन्होंने अपना यह विचित्र मत प्रकट किया है? लेखकका यह मत कि "इतिहासमें सदाचारकी कसौटी केवल सफलता है" सर्वमान्य कदापि नहीं हो सकता, इस दृष्टिसे देखा जाय तो अलाउद्दीन औरंगज़ेब आदि कई शासक जो अपने आत्मीयोंकी हत्या करके सिंहासनारूढ़ हुए थे बिल्कुल निर्दोष थे, क्लाइवका अमीचंदको धोखा देना भी क्षम्य था और जनरल डायरके पंजाबके करिश्मे भी सर्वथा प्रशंसा योग्य थे। ब्लैकहोलकी घटनाके विषयमें अभी मत भेद है; अभी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि घटना हुई ही नहीं थी। हम उसे केवल संदेह जनक कह सकते हैं। प्रत्युत पुस्तकमें ऐसी और भी अनेक बातें मिलेंगी जिनका स्थानाभावसे यहां वर्णन नहीं किया जा सकता।

पुस्तक जलियांवाला बाग़की घटना तक लिखी गयी है। अन्तिम अध्यायमें 'श्री सावर करकी गिरफ्तारी', 'सर कर्जनका वध' आदि कई विषयोंका कुछ विस्तार रूपसे विवेचन किया गया है, हम नहीं समझते कि ऐसी पुस्तकमें इनको इतने विस्तारसे वर्णन करनेकी क्या आवश्यकता थी।

तिथियोंका क्रम बहुधा अस्पष्ट है भारतवर्षके ८ मान चित्र भी दिये गये हैं। इनमें दो नक़शे ज़ियादा ख़राब हैं; प्रथम तो वह भद्दे छपे हुए हैं, स्थानोंके नाम स्पष्ट रूपसे नहीं पढ़े जा सकते और दूसरे बहुधा नगरोंके स्थान नहीं दिखाये गये हैं केवल उनके नाम भर लिख दिये गये हैं। यह बड़ा भारी दोष है। नक़शोंमें इस बातका ख़याल नहीं रखा गया है कि जिस कालके दिखानेके लिए नक़शा बनाया है कि उस समयके मुख्य मुख्य नगरोंका समावेश कर दिया जाय। 'वर्तमान भारत' (रंगीन), हमको पुस्तकमें कहीं नहीं मिला। पुस्तकमें

* लेखकने पुस्तकके अन्तमें भारतीय इतिहास सम्बन्धी उपयोगी पुस्तकोंकी एक वृहत् सूची दी है; उसमें प्रो० बेनी प्रसाद कृत जहांगीरके इतिहासका भी नाम दिया है; परन्तु आश्चर्य है कि स्मिथ जैसे प्रमाणिक इतिहासकारके "अकबर" का नाम नहीं है।

जहांगीर और शाहजहांके दो चित्र भी हैं। न मालूम लेखकको इन्हीं दो सम्राटोंसे विशेष प्रेम क्यों हुआ और उन्होंने अन्य भारतीय इतिहासके पात्रोंपर कृपा नहीं की। अकबर, महाराणा प्रतापसिंह, रणजीत सिंह, छत्रपति शिवाजी आदिके चित्र बिना किसी कठिनाईके उपलब्ध हो सकते थे और उनका देना भी अत्यन्त आवश्यक था। ज्ञान मण्डल द्वारा प्रकाशित पुस्तककी विशेषता, शब्दानुक्रमणिका इस पुस्तकमें भी हैं।

पुस्तक गुणोंसे रहित नहीं है, परन्तु दोष इतने बड़े हैं और इतने अधिक हैं कि हमें अन्तमें यही कहना पड़ता है कि ऐसे लेखकोंको इतिहास जैसे गहन विषय लेखनी उठानेका कष्ट न उठाना चाहिये। इस दृष्टिसे लेखकने कदाचित यह अच्छा ही किया कि पुस्तकपर अपना नाम न देकर पर्देकी ओटमें ही बैठे रहे। प्रकाशकोंको भी आवश्यक है कि पुस्तकोंका चुनाव करते समय विशेष सावधानी से काम लिया करें।

मदनलाल, बी. ए., एल; बी.

**महाराजा रणजीत सिंह**—लेखक श्रीयुत पं० नन्द कुमार देव शर्मा; प्रकाशक गांधी पुस्तक भण्डार, बम्बई; आकार मँझोला; पृष्ठ संख्या २५१; कपड़ेकी पक्की जिल्द सहितका मूल्य २) और सादीका १॥) है।

हिन्दीमें जीवन चरितोंका अभाव सा ही है। जो जीवन चरित नित्य प्रकाशित होते रहते हैं उनसे इस अभावकी पूर्ति नहीं हो रही है। आलोच्य पुस्तक जीवन चरित होकर भी स्वयं लेखकके मतसे भी शुष्क जीवन चरित नहीं है। महाराजा रणजीतसिंहके चरितके सिवा इसमें १७३९से लेकर सन् १८३९ तकका पंजाबका इतिहास भी है। अर्थात् यह जीवनचरित और इतिहास दोनों है। और यह दोनों विषय इस पुस्तकके २५१ पृष्ठोंमें हिन्दी और अंगरेज़ीके २९ ग्रन्थ पढ़ कर लिखे गये हैं। इसी कारण पुस्तकारम्भमें सिक्ख मिसलोंका जो विवरण दिया गया वह इतना संक्षिप्त हो गया है कि उसमें क्लिष्टता आ गई है। हां इसके चरित भागमें वर्णन शैथिल्य नहीं है। उसमें मनोरञ्जकता है। इसमें अनेक ऐसी ज्ञातव्य बातें हैं जो इसी विषयकी दूसरी पुस्तकोंमें नहीं दी गई हैं। इस पुस्तककी हिन्दी दोष पूर्ण है। अर्थ समझनेमें बाधा नहीं पहुँचती तथापि किसी सुन्दर पुस्तककी भाषाका सदोष होना असहनीय है। पुस्तककी छपाई सुन्दर और कागज़ बढ़िया लगाया है। इसे नायनाभिराम बनाने में प्रकाशकने ध्यान दिया है।

**विचार कुसुमाञ्जलि**—लेखक वा प्रकाशक श्रीयुत बदरी दत्त जोशी, पृष्ठ संख्या १३० और मूल्य ॥=) है।

इस पुस्तकमें १४ निबन्धोंका सङ्कलन है। प्रत्येक लेख मनोरञ्जक और स्वतन्त्र विचारोंसे ओत प्रोत है। पुस्तक सामयिक है और विचार पूर्वक लिखी गई है। इसका अनुशीलन उपयोगी सिद्ध होगा। लेखकको काशीपुर आर० के० आरके पते पर लिखनेसे पुस्तक मिल सकती है।

**दिव्य वाणी**—सम्पादक, श्री वियोगी हरि, छोटा आकार, पृष्ठ संख्या ८० और मूल्य ।=) है।

इस दिव्य वाणीमें वर्तमान भारतके सिद्ध तन्त्र योगिराज अरविन्दके मनोहर उपदेशोंका संग्रह है। संग्रहकारने इन उपदेशोंका सङ्कलन ऐसे अच्छे ढङ्गसे किया है कि पुस्तकमें जान आगई है। यदि इस पुस्तकमें दिये गये अरविन्द बाबूके पत्रके स्थानमें केवल वाणियाँ ही होती तो यह एक सुन्दर पुस्तक हो जाती। इसकी एक एक सतर काटकर लेने लायक़ है। इस पुस्तकका प्रचार सामयिक और लाभदायक है। लेखकने इन वाणियोंको अरविन्द बाबूके कुछ पुराने और कुछ नये अंगरेजी लेखोंसे एकत्र कर उन्हें सरल और सरस हिन्दीमें लिख दिया है।

---

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १८ } वृश्चिक, संवत् १९८० । नवम्बर, सन् १९२३ { संख्या २

## प्रचार-कार्य्यका महत्व

मारे जीवनमें पूर्ण सत्य ही सर्वत्र विजयी नहीं दिखाई पड़ता है; सर्वत्र दिखलाई पड़ना तो अलग रहा; कभी कभी तो उसकी विजयके लिए इतनी प्रतीक्षा करनी पड़ती है और कभी कभी वह इतने अस्पष्ट रूपमें आता है कि अनेक मनुष्योंकी दृष्टिमें उसका सारा महत्व ही नष्ट हो जाता है। उदाहरणके लिए पेड़पर बैठे हुए शान्त पक्षीको लक्ष्य कर तीर चलाने वाले बहेलियेके कार्य्य पर दृष्टि-पात कीजिये। यह निर्विवाद है कि निश्चेष्ट जीवकी हत्या करनेकी फल-स्वरूप बहेलियेके हृदयकी कठोरता पहिलेकी अपेक्षा अधिक मज़बूत हो जायगी, उसके चित्तमें पाशविक प्रवृत्तिकी जड़ अधिकतर दृढ हो जायगी और प्राकृतिक नियम उसे इस कठोरताका दण्ड किसी कुपरिणामके स्वरूपमें अवश्य देंगे, परन्तु यह संदिग्ध है कि भविष्यमें संघटित होनेवाले कुपरिणाम और बहेलियेकी उस हत्या-क्रियाका सम्बन्ध-संस्थापन साधारण जनोंकी दृष्टिमें भी उतना ही सम्भव होगा जितना विशेष प्रतिभामयी बुद्धि रखनेवालोंकी दृष्टिमें सम्भव हो सकता है। बदला लेनेमें प्राकृतिक नियमोंके इसी बिलम्बके कारण प्रायः लोग कह दिया करते हैं कि संसारमें पापियों और बेईमानोंकी जीत है। इसी विश्वाससे प्रेरित होकर कभी कभी या तो वह पाप और बेईमानीका मुक़ाबला करनेके लिए कमर बांध लेते हैं या अपनी शक्तिमें अविश्वास होनेके कारण स्वयं भी पापी और वञ्चकके पथ पर अग्रसर होते हैं।

सच्ची बातके प्रचार पर तो किसी सच्चे आदमीको आपत्ति हो नहीं सकती, परन्तु झूठी बातके

प्रचार द्वारा अधिकांश मनुष्योंकी सहानुभूतिको अपने पक्षमें कर लेना नैतिक दृष्टिसे उत्तम नहीं समझा जा सकता, फिर भी इस प्रकारके प्रचारसे प्रचारकोंकी कोई तत्कालीन हानि होती नहीं दीखती। यह ठीक है कि प्राकृतिक नियम अन्तमें बदला लेंगे, अन्तमें धूर्त्तों और वञ्चकोंकी कलई खुल जाने पर मनुष्यके हृदयमें उनके प्रति घृणा और अश्रद्धाके सिवाय और कुछ न रहेगा, परन्तु यह भी मानना ही पड़ेगा कि प्राकृतिक नियम भी सशक्तका ही पक्ष ग्रहण करते हैं और तब तक उसका साथ देते हैं जब तक उन्हें कोई अधिक शक्ति-शाली पक्ष दिखलाई नहीं पड़ता। यही बात दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि चोर और बदमाशकी विजय तब तक अवश्यम्भावी है, जब तक उन्हींका पथ अनुसरण करके हम उन्हें परास्त करना चाहते हैं और हम उनकी कलामें उनकेसे सिद्ध-हस्त नहीं होते। ऐसी दशामें या तो चोरी, वञ्चकता आदिमें हम विशेष दक्ष हों या हममें विशिष्ट आत्म-बल हो, तभी हमारी विजय हो सकती है।

वर्त्तमान कालमें पाश्चात्य देशोंके प्रचारक संसार भरमें भ्रमण कर रहे हैं, उनके पक्षपात-पूर्ण प्रचार-कार्य्यका हमारे दैनिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रचार-कार्य्यकी विजय भी है, क्योंकि हमने अभी उनसे अधिक शक्ति नहीं दिखलाई है, इसी कारण अभी प्राकृतिक नियम हमारे पक्षमें नहीं आये हैं। उक्त प्रभावने हमारे मस्तिष्कके किस किस क्षेत्रको दूषित किया है, यहाँ हमें यही विचारना है।

सबसे प्रधान ढंग जिसके द्वारा उक्त प्रचार-कार्य सञ्चालित किया जाता है साहित्यसे सम्बन्ध रखता है। साहित्य एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ यह आशा की जा सकती है कि न्याय, और सत्य का गला न मरोड़ा जायगा। लेकिन यहाँ होता है उसका ठीक उलटा जिसके होनेकी आशाकी जाती है। सच पूछिये तो साहित्य-क्षेत्रकी सी धाँधली अन्यत्र देखनेमें भी नहीं आती। इसका एक विशेष कारण भी है और वह है इस क्षेत्रमें व्यक्तिकी रुचिका प्राधान्य। साहित्यको छोड़ कर ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ रुचिको इतना बड़ा अधिकार दिया गया हो कि लोगोंके मुँहसे उसी पर अवलम्बित यह कथन सुना जाय कि अमुक रचना नीरस और अमुक सरस है। मत-प्रकाशन-की इस क्षमताके साथ ही साथ जब आर्थिक और राजनीतिक शक्तिका भी किसी व्यक्तिमें सम्मिलन होता है तब तो उसके मतकी महत्ता बहुत ही अधिक हो जाती है। इसका मतलब यह है कि जिस जातिके पास राजनीतिक और आर्थिक शक्ति है तथा जिसमें ऐसे योग्य पुरुषों और स्त्रियोंका बाहुल्य है जो मत-प्रकाशनसे लाभ उठा सकते हैं, वह अपने लेखकों, अपने कवियों, और अपने अन्य महा पुरुषोंके नामको संसार भरमें फैला कर उन जातियों पर अपने दिमाग़, अपने पौरुष, और अपनी योग्यताका सिक्का जमा सकती है जिन्हें अपने महान् पुरुषों और स्त्रियोंको संसारके सामने उपस्थित करनेकी या तो इच्छा नहीं, या इच्छा रहते भी सामर्थ्य नहीं।

हमने अनेक पुस्तकोंमें यह लिखा देखा है कि शेक्सपियर संसारका सर्व्वोत्तम नाटककार और कवि है। शेक्सपियरके हम विरोधी नहीं, उसके काव्य-कौशल और नाटक-कला-प्रवीणताने हमें भी आनन्द दिया है, परन्तु संसारकी सभी भाषाओंके नाटकों और काव्योंका अध्ययन किये बिना हम कैसे मान लें कि शेक्सपियर सर्वोत्कृष्ट लेखक है। और कुतूहलकी बात तो यह है कि इस प्रकारका मत प्रकट करनेवाले समालोचक महोदय ही कभी कभी दो एक भाषाओंसे अधिकके ज्ञाता न ीं होते। यहाँ हम यह नहीं कहेंगे कि सभी आलोचक पक्षपातके वशीभूत होकर ही ऐसा लिखते हैं; नहीं, बहुधा यही होता है कि चूंकि औरोंके मुंहसे ज़ोरदार आवाज़ नहीं निकलती, अन्य लोग अपना विज्ञापन नहीं प्रचारित करते, बस समालोचक समझ लेते हैं कि उनका ही कहना उचित होगा।

पाश्चात्य देशीयोंके इस प्रकारके कार्य्यसे आधुनिक कालमें हमारी बड़ी क्षति हो रही है, हम उन्हें ऐसा करनेके लिए बुरा नहीं कहते क्योंकि ऐसे लोग कम ही हैं जो शेक्सपियरकी प्रशंसा इस लिए करते हैं कि वह उनका स्वजातीय है, और कालिदासको इसलिए छोटा बतलाते हैं कि वह भारतीय है। बड़े छोटेके विवादको यदि हम न भी उठावें, तो क्या यह शोचनीय नहीं है कि हमारे अंग्रेज़ी शिक्षित नवयुवकोंको अपने वीरों, लेखकों, महात्माओं आदिके सम्बन्धमें प्रायः नहींके बराबर ज्ञान रहता है, और जब व्याख्यानोंमें आवश्यकता होती है, तब मिल्टन, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, ऐरिस्टाट्ल, प्लेटो आदिका नाम ही लिया जाता है। क्या वाल्मीकि, वेदव्यास, तुलसीदास, कबीरदास कुछ हैं नहीं ? क्या इनके नाम पर कोई जाति अपना मस्तक उन्नत नहीं कर सकती ? जिनके पास धन है और जिनके पास राजनीतिक प्रभाव है वह तो आत्म-प्रकटीकरणमें लग्न होंगे ही, उनके लिए तो यह सर्वथा स्वाभाविक है कि वह अपने गुणोंका परिचय औरोंको दें, उनसे ऐसा करनेके लिए शिकायत करना व्यर्थ है, किन्तु हमारा कर्त्तव्य भी यह है कि हम अपनी आवाज़को ऊँची करके अपने सच्चे स्वरूपको प्रकट करें।

वर्त्तमान समयमें भारतवर्षके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह प्रचार-कार्य्यकी महत्ताको समझे। महत्ताको समझनेसे हमारा यह मतलब नहीं कि वह झूठी बातोंका प्रचार करे, परन्तु यह अवश्य है कि विदेशियों द्वारा किये जानेवाले झूठी बातोंके प्रचारसे कितने अनर्थ की सम्भावना है, इसे वह समझे और जहां कहीं सत्यको देखे, उसे कहने या लिखनेसे बाज़ न आवे। हमारे देशका प्रायः पक्षपात-पूर्ण इतिहास लिखकर अनेक विदेशियोंने हमारे असली स्वरूप पर परदा डाल दिया है। सच पूछिये तो भारतवर्ष पर इङ्गलैण्डके सफलता-पूर्वक प्रभुत्व-संस्थापनके अनेक कारणोंमेंसे एक यह भी है कि अपने पक्ष-संपोषक साहित्यके प्रचार-द्वारा उसने हमारे देश-वासियोंके मस्तिष्क पर अधिकार कर लिया है।

राजनीतिक क्षेत्रमें प्रचार और सार्वजनिक मत को अपने पक्षमें करनेकी उपयोगितासे राजनीतिज्ञ भली भांति परिचित हैं। कभी कभी नितान्त कपोल-कल्पित बातोंके आधार पर राजनीति-विशारद लोग जनताको ऐसा बहकाते हैं कि वह अपने ही सगोंको, अपने ही हितैषियोंको, पराया समझने लगती है, और जर्जर-शक्ति हो जाती है। यह चातुर्य पूर्ण चालें हिन्दू जातिके साथ अनेक बार खेली गई हैं और व्यर्थकी बातोंमें पड़कर उसने आन्तरिक कलह, द्वेष, वैमनस्य आदिसे उत्पन्न होनेवाले कष्टोंका तीखा अनुभव किया है। इस प्रकार यह देखा जायगा कि प्रचार-कार्य्य द्वारा राजनीतिक और आर्थिक शक्तिकी प्राप्ति, और प्राप्ति हो जाने पर वृद्धि, की जा सकती है। वर्त्तमान अवस्थामें भारतवर्ष अपने सच्चे स्वरूपको संसारके सामने स्पष्ट करनेकी चेष्टा करे, इसीमें उसका कल्याण है। हमारी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कठिनाइयोंका एक बड़ा कारण तो यही है कि विदेशियोंके प्रबल प्रचार-कार्यके कारण हम अपनी असलियतका आभास भी अपने मानसिक नेत्रोंके सामने नहीं ला सकते।

हमने ऊपर बतलाया है कि प्रचार-कार्य्यका प्रधान साधन पक्ष-पोषक साहित्य-निर्म्माण है, परन्तु यह न भूलना चाहिये कि उसके अन्य अनेक साधन भी हैं। जाति-विशेषसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई व्यक्ति जब किसी दूसरे स्थान पर, दूसरे देशमें, जाता है, तब उसकी प्रतिष्ठा और उसके अपमान पर उसकी सम्पूर्ण जाति की प्रतिष्ठा और अपमान निर्भर रहता है। शुभ वेष-भूषा, सम्भाषण-चातुर्य्य, सामर्थ्य-पूर्ण सारल्य, निर्भीकता, उदारता आदि ऐसे गुण हैं जिनके द्वारा व्यक्ति-विशेष अपनी जातिका सुन्दर विज्ञापन-स्वरूप होकर उसके लिए कीर्त्ति अर्जित कर सकता है। पाश्चात्य-देशीयोंमें नैतिक आदर्शोंके प्रति विशेष

श्रद्धा भले ही न हो, परन्तु उनमें व्यवहार-कुशलता और निर्भीकता आदि गुण विशेष मात्रामें हैं। उक्त गुणोंमें उनकी शक्ति प्रकट होती है और यही कारण है जो प्राकृतिक नियम भी उन्नति-पथमें उनके सहायक होते हैं, और हमारा तो विचार है कि यदि प्राचीन आर्य्योंकी तरह उनमें नैतिक आदर्शोंके प्रति प्रेम भी होता तो ईश्वरकी समस्त विभूतियां उन्हींके घर चेरी बनी रहतीं। वर्त्तमान हिन्दू जाति प्रत्येक-प्रकारसे अपनेको दीन दुर्बल रूपमें संसारके सामने प्रस्तुत करती है, नैतिक आदर्शोंके प्रति उसकी श्रद्धा अब सच्ची श्रद्धा नहीं रही, वह केवल ढकोसला मात्र हो गई है, इस दशामें ईश्वर और प्राकृतिक नियमोंका उसके विरुद्ध हो जाना स्वाभाविक ही है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हम अपना प्रचार-कार्य किस प्रकार सञ्चालित करें, अपने सच्चे स्वरूपको किस प्रकार सफलता पूर्वक संसारके सामने प्रस्तुत करें। इसका उत्तर स्पष्ट है—हमें चाहिये कि हम अपनी वाणी और कर्म्मको अनुभवके अनुकूल बनावें, संसार हमसे इसके अतिरिक्त और कुछ चाहता भी नहीं है।

—गिरिजादत्त शुक्ल।

# विज्ञानका चमत्कार
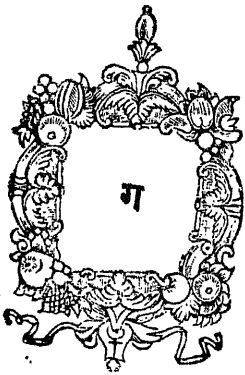
त कई वर्षोंसे सभ्य समाजके सम्मुख एक अत्यन्त जटिल और महत्वपूर्ण प्रश्न प्रस्तुत है। हमारे भारतीय भाई चाहे इसे हास्यजनक ही क्यों न समझें, उनकी समझमें वह 'शेखचिल्लीपना' ही क्यों न सूझ पड़े परन्तु वास्तवमें वह वैसा नहीं। उस पर आज यूरोप और अमेरिकाके अनेक विद्वान् बड़ी गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहे हैं, वह बहुतसे आधुनिक वैज्ञानिकोंके मनको उद्विग्न और चिन्तित बना रहा है। प्रश्न है भावी आशङ्काका। आजकल न्यूयार्क (New York) जैसे उच्च श्रेणीके शहरोंमें नित्य प्रति करोड़ों टन कोयला मशीनोंके चलानेमें व्यय हो जाता है; इस हिसाबसे समस्त संसारका कोयला शीघ्र ही समाप्त हो जायगा। फिर काम होगा तो कैसे? मशीनें चलेंगी तो किस प्रकार?—यही प्रश्न है जो धुरन्धर यूरोपीय विद्वानोंको व्याकुल कर रहा है।

परन्तु कुछ दिन हुए शिकागो यूनीवर्सिटीमें रसायन-शास्त्रके अध्यापक (associate professor) जेराल्ड वेन्ट (Gerald Wendt) ने सी० ई० इरियान (C. E. Irion) महाशयके साथ मिलकर जो प्रयोग किये हैं उनसे संसारकी काया पलट हो जानेकी सम्भावना है। कोयलेके अभाव, वा यों कहिये कि कार्य करनेके लिए शक्तिकी आवश्यकताके प्रश्नका सुलभ उत्तर ही नहीं, परन्तु उनसे प्राचीन रासायनिकों (alchemist) की खोजका विषय—सोना बनाना वा कीमियागरी—भी प्राप्त होना सम्भव है। क्या एक महदाकार जलयान (oceanliner) का न्यूयार्कसे लिवरपूल तक केवल मुट्ठी भर कोयलेको ही व्यय करके चला जाना आश्चर्य जनक नहीं? क्या शिकागोसे न्यूयार्क तक की यात्रा कुछ छटांक ईंधनके सहारे ही करना स्वप्न नहीं ज्ञात होता? क्या यह गप जान नहीं पड़ती कि एक सम्पूर्ण नगर पिनकी नोक पर रखे हुए छोटेसे रेडियमके टुकड़ेसे बीसियों वर्ष तक प्रकाशित रह सकता है?

परन्तु यह सब मिथ्यावाद न समझिये; परमाणु खण्डन (knocking fragments out of atoms of matter) विश्वास दिलाता है कि ऐसा होना कुछ असम्भव नहीं। प्रोफेसर वेन्ट स्वयं कहते हैं:—

"The great promise of atomic decomposition is that means will some day be found to liberate at will terrific energy from common elements. When that happens the future coal supply need worry no one. It is far off, but a new industrial era can be pictured that makes the coal age seem medieval indeed. And beside that prediction, the prospect of ever transmu-

ting lead in to gold becomes of trivial significance.''

"परमाणु-खंडनसे बड़ी आशा होती है कि किसी दिन साधारण मूल तत्वोंसे इच्छानुसार भीषण शक्ति उत्पादन करनेकी रीति ज्ञात हो जायगी। ऐसा होने पर भावी कोयलेके प्रश्नसे किसीको चिन्तित न होना पड़ेगा। ऐसा समय बहुत दूर है, परन्तु कोयलेके समयको मध्यम कालीन बना देने वाले एक नए औद्योगिक समयकी कल्पना करना कठिन नहीं है। और इस भविष्यद्वाणीके अतिरिक्त, तांबेको सोनेमें परिणत करनेका विषय भी कुछ दुःसाध्य नहीं जान पड़ता।"

प्रोफेसर महाशयके युगान्तर उपस्थित करने वाले प्रयोग का स्थूल वर्णन करनेके पूर्व यह उचित ज्ञात होता है कि पाठकोंको परमाणु ( atom ) के विषयमें कुछ बातें बता दें। परमाणु वास्तवमें इतना छोटा होता है कि नेत्र मात्रसे देखना तो एक ओर, अधिकसे अधिक शक्ति वाले सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रसे भी उसके दर्शन होने असम्भव ही हैं। यही नहीं, ई० एल० ब्रेन्डेन महोदयका तो यह कथन है कि यदि इलेक्ट्रिक लाईट बल्ब ( Electric light Bulb ) में एक इतना छोटा छेद किया जा सके कि उसमेंसे ओषजन के १०००,००० परमाणु प्रति मिनट भीतर जा सकें, तो १००,०००,००० वर्षमें कहीं बल्ब भर सकेगा। तिस पर भी, परमाणु-खण्डनके समय जो विद्युत् से भी कहीं अधिक चमकीली दीप्तियां (flashes) होती हैं उनके द्वारा प्रतिभाशाली वैज्ञानिक इन कणोंको तोलनेमें समर्थ हुए हैं। दो हज़ार वर्ष हुए ग्रीक दार्शनिकोंने यह निर्णय किया था कि ठोस द्रव और गैसोंके सूक्ष्मतम कण ( particles ) इतने छोटे होंगे कि वह फिर विभक्त नहीं हो सकेंगे; परन्तु एक्स-रेज़ और रेडियमके ज्ञात होनेके समयसे, परमाणुओंके वास्तविक आकारका भी ज्ञान प्राप्त हो गया है।

सर आइज़क न्यूटनका विचार था कि परमाणु ऐसे ठोस कण है, जिनका विभाग होना असम्भव है और जिनके मिलनेसे पदार्थ बनते हैं। परन्तु वैज्ञानिकोंको पीछेसे यह मालूम हुआ कि परमाणु ठोस नहीं हो सकते, परन्तु गतिमान् भागोंसे बने हुए सौर्यमण्डल-सदृश ही हो सकते हैं। अथवा, यों कहिये कि प्रत्येक परमाणुमें एक सूक्ष्म धन-विद्युत् वाला केन्द्र होता है, जिसके चारों ओर अनेक ऋण विद्युन्मय कण (electrons) घूमते रहते हैं।

परमाणु-खण्डनके विषयमें जो आजकल आन्दोलन हो रहा है उसका मुख्य कारण दो प्रयोग मालाएँ ( series of Experiments ) हैं—पहिली सर अर्नेस्ट ( Sir Ernest Rutherford ) रथरफोर्ड नामक अँगरेज़ी वैज्ञानिककी; और दूसरी वेन्ट ( Wendt ) और इरियान ( Irion ) नामक उपर्युक्त महोदयों की।

सर अर्नेस्ट रथरफोर्डको अपने प्रयोगोंके फल-स्वरूप यह दृढ़ विश्वास हो गया था कि परमाणुके केन्द्र स्थान पर धन-विद्युत-की मात्रा ( a charge of positive electricity ) विद्यमान् है और उसके ही चारों ओर ऋण-विद्युत् वाले कण घूमते रहते हैं। इन कणों वा Electrons का व्यास परमाणुके व्यासका एक लाखवां भाग है। इस हिसाबसे यदि एक परमाणुके आकारको १०० फुट समझ लें, तो प्रत्येक विद्युत्कण (Electron) का व्यास एक इञ्चका १०० वां भाग होगा। इसलिए यह समझना युक्तियुक्त ही है कि परमाणुके भीतर विद्युत्कणोंके घूमने फिरनेके लिए काफी स्थान है।

रथरफोर्डके प्रयोग बड़ेही कौतूहल जनक हैं; विशेषतः वह, जो उन्होंने अपने सिद्धान्तकी पुष्टिमें किया है। एक छोटे से बक्स ( observation chamber ) में उन्होंने सूईकी नोकपर बहुत थोड़ा सा रेडियम रख दिया तथा उससे कुछ दूर ज़िन्क सल्फाइड ( Zinc Sulphide ) से पुता हुआ एक परदा ( Screen ) रखकर नत्रजनसे भर दिया। उस बक्सके दूसरे कोनेपर एक magnifying lens लगा दिया। बीचमें एक ऐसा पर्दा ( partition ) रखा, जिसमें एक छोटासा छेद अलूमिनियम फायल ( Aluminium Foil ) से ढका हुआ था। रेडियमके टुकड़ेमें से तीव्र-गति से अल्फा कण ( alpha-particles ) निकल कर, नत्रजनसे पूर्ण उस स्थानमें छेदके रास्ते धँस जाते थे; और जिन्क साल्फैडके आवरणसे टकरा कर दीप्ति-उत्पादन करते थे। प्रयोगकर्त्ता लेन्सके द्वारा इन दीप्तियोंको देखता था; वह उनकी संख्या और पथ तक जान सकता था।

इस प्रकार रथरफोर्डने परमाणु-खण्डन तो कर दिया परन्तु बहुत छोटे पैमाने पर (on a very minute

Scale) पर वेन्ट और इरियानने व्यापार दृष्टिसे इस कार्यको करनेकी ठान ली। उनके भी प्रयोग कुछ कम आश्चर्य जनक नहीं हैं। इन्होंने परिमाणु खण्डनको अल्फा कणोंके टकरानेसे नहीं, बल्कि अतीव तीव्र तापसे करनेका विचार किया। आजसे पहिले ही यह बात वैज्ञानिकोंको ज्ञात थी कि उष्णतम तारोंमें सबसे हलके मूलतत्त्व निकलते पाये जाते हैं और ज्यों ज्यों तापक्रम घटता जाता है त्यों त्यों भारी मूलतत्त्व उत्पन्न होते जाते हैं। इसका उदाहरण यह समझिये कि जिन तारोंका तापक्रम १५००० और २०००० के बीचमें है उनमें प्रायः हिलीयम (Helium) निकलता पाया जाता है। परन्तु इनसे कहीं ठन्डे ३०००° C के लगभग तापक्रम वाले तारोंमें भारी मूलतत्त्व होते हैं। यद्यपि इस बातसे स्पष्ट यह सिद्ध नहीं हो जाता कि परमाणु-खण्डन अतिशय तापसे हो ही जायगा, परन्तु तो भी इससे यह सम्भव अवश्य ज्ञात होने लगता है।

इन दोनों महाशयोंने अतिशय तापका ही प्रयोग किया और इस प्रकार टंग्स्टन (Tungsten) से हीलियम (helium) बनाया। इनकी रीति सरल न होनेके कारण यहां बतलाना उचित नहीं जान पड़ता। तोभी वेन्ट महाशय इस विषयमें जो लिखते हैं वह उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है। उनका कथन है कि "Atomic decomposition on a much larger scale than ever before seems thus to have been attained. It is conceivable that ultimately it will lead to a synthesis of the smaller atoms into larger ones, and when that becomes possible the manufacture of any metal from Hydrogen and Helium and from other metals will be within range—the transmutation that fascinated the mind of medieval Baron and Alchemist."

अर्थात् "पहिलेसे कहीं अधिक परिमाण पर, इस प्रकार परमाणु-खण्डन सम्भव प्रतीत होता है। यह भी विचारणीय है कि अन्तमें इसके द्वारा, छोटे परमाणुओंको मिलाकर बड़े परमाणु बना लेना सम्भव होगा। और ऐसा होने पर, हैड्रोजन, हीलियम, और अन्य धातुओंसे किसी धातुका बना लेना—अर्थात् माध्यम कालीन धनियों और रासायनिकों को मोहित करनेवाली कीमियागिरी—सम्भव हो जायगी।

पाठक! क्या परमाणु-खण्डन, सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा पत्तियोंके भीतरी आकारके ज्ञान प्राप्त होने जैसा ही—नहीं, नहीं, उससे भी कहीं अधिक—आश्चर्य जनक नहीं है? क्या उसके द्वारा कोयलेके अभावकी समस्याका पूरा करना विचित्र नहीं है?

—बेनीचरण महेन्द्र

---

# अलसीका तेल

( गताङ्कसे आगे )

पिछले लेखमें मैंने अलसीका तेल निकालने तथा शोधनेके रासायनिक विधियोंका वर्णन किया था। इस बार तेलका रंग कैसे उड़ाया जाता है अथवा पक्का तेल कैसे बनता है, यही बतलानेकी चेष्टा की जायगी।

तेल शोधनेके पश्चात यह आवश्यक है कि इसका रंग उड़ा दिया जाय और फिर इच्छानुसार रंगीन बनाया जाय—रंग उड़ानेकी दो विधि हैं एक प्राकृतिक और दूसरी रासायनिक। प्राकृतिक विधिमें देर लगती है पर रासायनिक विधिसे जल्द काम हो जाता है। स्केडलर साहबका कथन है कि प्रकाश या रोशनी से रासायनिक क्रियामें बड़ी मदद मिलती है। इसके द्वारा वायुकी ओषजन आंगारिक पदार्थों ( organic substances ) के उज्जन और कर्बनसे मिलकर नया यौगिक बनाती है; जिससे पदार्थका रंग या तो बिल्कुल उड़ जाता है या हल्का पड़ जाता है; परन्तु कुछ दिन बाद यह हल्कापन भी जाता रहता है। बहुतेरी दशाओंमें रोशनीके द्वारा पदार्थोंके अवयव छिन्न भिन्न होकर ओज़ोन (ozone) अथवा उज्जन परौषिद ( Hydrogen peroxide ) बन जाते हैं जो कि पदार्थके उन हिस्सोंको नष्ट कर देते हैं जिनसे वह रंगीन हुआ है।

सूर्य्यकी किरण द्वारा रंग उड़ानेका नियम यह है कि पहिले एक लकड़ीका आयताकार वर्तन लेकर उस पर रांग ( Tin ) मढ़ देते हैं या सीसे (Lead) का एक ऐसा ही वर्तन ले लेते हैं। सीसेका बर्तन अधिक उपयुक्त होता है। उसके ऊपर एक कांचका ढकना लगा लिया जाता है ताकि रोशनी जाती रहे पर पानी या गर्द न जा सके। इस बर्तनकी बगलमें दो नलिकायें लगा दी जाती हैं जिसमें हवा तेल पर आती जाती रहे। लगभग १५ दिनके बाद बर्तनमें रखा हुआ तेल सफेद हो जाता है और नीचे तहमें तलछट बैठ जाती है। जब तेल आवश्यकतानुसार स्वच्छ हो जाता है तो नितार लिया जाता है, जिसमें रंग जल्द उड़ जाय और बहुत अच्छा तेल निकल आये तो बर्तनमें तेल डालती समय ९६ °/₀ की थोड़ी सी स्पिरिट ( Spirit ) या हीरा कसीस, या उज्ज हरिक अम्ल ( Hydrochloric acid ) अथवा मैंगनीज़ पर ओक्साइड (manganese per oxide ) डाल दिया जाता है ( पर इसका हिस्सा बहुत ही कम होना चाहिये ५ °/₀ से अधिक न हो। )

रासायनिक क्रिया द्वारा रंग उड़ानेमें बहुधा (Hydrogen peroxide) उज्जन परौषिद, गन्धकका तेजाब (Sulphuric acid), गन्धस अम्ल (Sulphurous acid) हरिन गैस ( chlorine ) आदिमें से किसी एकका प्रयोग किया जाता है।

परौषद परौक्सैडसे रङ्ग उड़ाना

यह पदार्थ सोडा पर—औक्सैडपर अम्लका संसर्ग होनेसे बनता है और बाजारमें १०°/₀ घोलके रूपमें मिलता है। इसे लेकर तेलमें मिला दिया जाता है और खूब हिलानेके बाद रख दिया जाता है। २ या ३ दिनमें तेलका रंग बिलकुल उड़ जाता है और वह अलग तहमें दीख पड़ता है; फिर इसे आसानीसे नितार कर अलग कर लिया जाता है। अलसीके तेलके लिए तेलकी तोलका बीसवां हिस्सा १० °/₀ पर-औक्सैडकी आवश्यकता होती है।

पोटासियम परमैङ्गनेट या पोटासियम बाई-क्रोमेट से भी रंग उड़ जाता है। इसमें एक लम्बी चौखूंटी लकड़ीकी रकाबी लेकर सीसे ( Lead ) से मढ़ दी जाती है। फिर तेलको उसमें उंडेल कर धीरे धीरे और थोड़ी थोड़ी तादादमें उपरोक्त रासायनिक पदार्थोंका घोल जिसमें काफ़ी गन्धक-का तेजाब मिला हो डालकर करीब आधे या एक घंटे तक हिलाया जाता है अर्थात् यह काम तब तक जारी रहता है जब तक तेलका रंग उड़ नहीं जाता। फिर १२ या १५ घंटे तक रख छोड़नेके बाद तेल ऊपर आ जाता है; परन्तु इसमें क्रोमकी अथवा मैंगनीज़ की फिटकिरी मिली रहती है; इस लिए यह तेल ३ या ४ बार गर्म पानीसे धो लिया जाता है। अगर सब तेल न निकले तो थोड़ा सा पेट्रोल ईथर डाल देना चाहिये जो फिर भभके द्वारा निकाल लिया जा सकता है। २०० मन तेलके लिए १ या १½ मन मैंगनेट या क्रोमेट और इसके दूने अर्थात् २ या ३ मन गन्धकके तेजाबकी आवश्यकता पड़ती है; परन्तु तेजाबमें पहिले पाँच गुना पानी मिला कर तब मैङ्गनेट या क्रोमेटमें डालना चाहिये।

गंधकाम्ल—अगर गन्धकके तेजाबसे रंग उड़ाना हो तो प्रत्येक १०० किलो तेलमें १ किलो तेज़ाब जो ३० किलो पानीसे पतला किया गया हो मिलाना चाहिये। जब सब तेजाब पड़ जाय तो मध्यम आंचसे मिश्रणको गरम करना चाहिये। गरम करती समय बहुत महीन बुकनी किया हुआ मैंगनीज़ परऔक्सैड डालना चाहिये और खूब हिलाना चाहिये। यह काम तब तक जारी रहना चाहिये जब तक तेलका रंग उड़ न जाय। फिर तेल नितार कर पहिलेकी भाँति गर्म पानीसे धो लेना चाहिये।

गंधस अम्ल—हरिन ( chlorine ) का प्रभाव तमाम तेलोंपर बड़ा भीषण होता है और प्रयोग भी बेढंगा सा है। इसलिए यहां पर उसका वर्णन न कर केवल गन्धस अम्ल ( Sulphurous acid ) की ही तरकीब बतलायी जायगी। इस तेजाबके मिल-

नेमें दिक़त होनेके कारण तथा व्यय पर ध्यान देनेसे यही उचित समझा गया कि कोई सस्ता पदार्थ काममें लाया जाय। जांच परताल करने पर मालूम हुआ कि सोडा बाई सल्फैटसे भी यही काम होता है; अतएव आजकल तेलका रंग उड़ानेमें इसी सल्फैटसे काम लेते हैं।

सल्फैटसे तेलका रंग उड़ानेके लिए पहिले इसका खूब गाढ़ा घोल पानीमें बना लेते हैं और फिर तेलको एक ऐसे बर्तनमें जो सीसे ( lead ) से मढ़ा हो उंड़ेल कर उसमें धीरे धीरे और थोड़ी थोड़ी तादादमें डालकर हिलाते जाते हैं। सब घोल डालनेके बाद थोड़ा सा खूब पतला गन्धक का तेजाब भी डाल दिया जाता है जिससे सल्फैटका कुल अम्ल निकल आता है। प्रत्येक ११०½ पौंड तेलके लिए १ किलोसल्फैटकी आवश्यकता पड़ती है। अर्थात इनका अनुपात ४४:१ है। गन्धकका तेजाब अधिकांशमें हो पर बहुत ही धीरे धीरे और थोड़ा थोड़ा डाला जाय नहीं तो गन्धस अम्लकी गैस इतनी तेज़ीसे निकलेगी कि उसको रोककर रंग उड़ानेके काममें लाना असम्भव हो जायगा। भली भाँति रंग उड़ जानेके बाद तेलको नितार कर पहिलेकी भाँति धो डालना चाहिये।

—कालिकाप्रसाद वर्मा, बी. एस-सी. एल-.टी.

---

## मीराबाईकी कविताकी आलोचना

( ले० साहित्य शास्त्री पं० रामप्रसाद पाण्डेय विशारद, काव्यतीर्थ, काशी )

राबाईकी कविताकी आलोचना आरम्भ करनेके पूर्व आलोचक को इस बात पर ध्यान रखना होगा कि उनके जीवनका प्रत्येक सुर कविताकी रागिनीमें अलापा गया है। उनकी हृदय तंत्रीका प्रत्येक नाद कविताके ही स्वरमें प्रस्फुटित हुआ है। जीवनके सुख दुःखोंकी विचित्रताओं एवं प्रकृतिके सौन्दर्यको अनुभव करके हृदयके कुञ्जसे मानों आत्मा कविताके रूपमें वहिर्गत हुई है। उनके जीवनकी विशेषताओंने ही उनकी वाणीको गानका रूप दिया है। भारतवर्षमें बहुत सी रमणी रत्नोंका जीवन धर्ममय रहा है, किन्तु किसने इस भांति गृह और प्रियजनोंको छोड़ कर उस अनन्तकी आरतीके लिए अपने जीवनका दीपक जलाया है? यही कारण है कि मीराबाईकी कविताने मनुष्योंके हृदयमें उपयुक्त स्थान अधिकृत किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि भारतवर्षकी कामिनी-कवियोंमें उनका स्थान सर्वोच्च है।

अनेक बड़े बड़े कवियोंके जीवनकी अधिकांश घटनायें हम नहीं जानते, किन्तु उनका जीवन और काव्य समाजके हृदयपर जो चित्र अंकित करते हैं उन्हीं चित्रोंके द्वारा अनेक किंवदन्तियोंकी सृष्टि होती है। यद्यपि इनको इतिहासका स्थान नहीं दिया जा सकता तथापि इनमें सत्यका भी अंश अधिक माना जा सकता है। मीराबाईके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार अनेक किम्बदन्तियां प्रचलित हैं। कहते हैं कि एक समय बाल्यावस्थामें अपने पड़ोस की एक कन्याके वरको देखकर मीराने अपनी मांसे पूछा कि मेरा विवाह किसके साथ होगा? प्रश्नोत्तरमें माताने अपने घरमें प्रतिष्ठित श्रीगिरिधरलालजीकी ओर ( इशारा ) निर्देश कर दिया। इसी किम्बदन्तीमें मीराके समस्त जीवन एवं कविताके मूल कारणकी कुञ्जी का पता लग जाता है।

मीराबाईकी कवितामें जड़ता और जटिलताकी मात्रा बहुत नहीं है। उनकी भाषा और भाव सुस्पष्ट हैं। हृदयके भाव बिना किसी आडम्बरके स्वाभाविक रूपसे निकल पड़े हैं। उनका पीहर और ससुराल दोनों ही राजपूतानेमें थे; उन्होंने कविता भी राजपूतानेकी ही भाषामें की है पर उसमें अन्य प्रान्तोंके भी शब्द पाये जाते हैं। इसका कारण उनका अन्य प्रान्तोंमें भ्रमण ही समझना चाहिये। राजपूतानेके उच्चारण और भाषाके कई

विशेष नियमोंके जान लेनेसे फिर मीराबाईकी कविता समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। उनकी कविता निर्मल स्रोतसे बही है; वह पिंगल और अलंकारके बांधको नहीं मानता।

हमारे देशमें साधना और संगीतने परस्पर सहायता की है। एकही व्यक्तिके कवि और साधक होनेके अनेक उदाहरण हैं। मीराकी कवितामें योगी की ज्ञान साधना और प्रेमीकी भाव साधना दोनों ही समान रूपसे वर्तमान हैं। इसलिए उनके ज्ञान और प्रेममें कुछ विशेषता है। उन्होंने न तो दादू-दयाल प्रभृति कवियों और सूफियोंके मतोंका अनुशीलन करके ईश्वरत्वका निष्कर्ष ही निकाला है और न राधाके भाव भंगियोंको ही अंकित किया है। उनकी कविताओंमें उन्हींके अनुभवका वर्णन है। उन्होंने न तो ज्ञानियोंकी तरह शुष्क और नीरस वेदान्तकी ही चर्चा की है और न वैष्णवोंकी भांति हृदयमें राधाकी ही कल्पना करके मनोविज्ञानके घोड़े ही दौड़ाये हैं।

मीराबाईकी सब कविताओंमें वही अधिक सुन्दर हैं; जिनमें प्रतीक्षा और विरह वर्णन है। कारण कि इन कविताओंका भाव हमारे मनको आकर्षित और तन्मय कर देता है। उन्होंने जिस प्रकार आवेग और व्याकुलताके बस हो कर रचनायें की हैं; मानों उनका मूर्तिमान भाव उस कविताके प्रत्येक पद और अक्षरमें अंकित हो गया है। मीराकी कविताका मनोनिवेश पूर्वक पाठ करनेसे इसका प्रत्यक्ष पता लगता है। चिरविरहकी अत्यन्त वेदनाकी झंकारसे मानों उनके हृदयका तार बज उठा है। इसलिए हठात् वह स्वर पाठकके हृदय तंत्रीको निनादित कर देता है।

प्रेम दुःखको ही आलिङ्गन करता है। मीराको भी भीतर बाहर घरमें कितने ही दुःख सहने पड़े थे। यह दुःख छूटनेवाले भी न थे; कारण कि जीवन सर्वस्वसे ही यह प्रेमका दीपक परिपूर्ण है। मिलनकी ही आशासे जीव जन्म जन्ममें इस विरह वेदनाको बर्दाश्त करता है। इस दुःखके किरण समूहसे ही उसका हृदयरूपी कमल विकसित होता है। विरहके अश्रु जलसे जो लता लहलहाती है, उसीमें मिलन रूपीपुष्प प्रस्फुटित होता है। किन्तु मीराको तो इस मिलन रूपीपुष्पकी प्राप्तिसे भी शान्ति नहीं होती। प्रियका दृष्टि पात उनको बेहाल कर देता है, समस्त शरीर और मनमें एक प्रकारकी मादकताका संचार कर देता है। इस उन्मादकताका कारण यह है कि मिलन वियोगसे शून्य तो होता ही नहीं अर्थात् पुनः मिलनमें बिछोहकी आशंका बनी रहती है। ऐसी हालतमें सुख कहां? जब जीव अपनेको प्रियकी प्राप्तिमें पूर्णरूपसे नष्ट कर देता है और फिर भी उसे नहीं पाता तो उसके मनमें अभिमानका आविर्भाव होता है; परन्तु अभिमान करनेसे भी तो काम नहीं चलता, कारण कि प्रियकी प्राप्ति बिना भी तो जीवन व्यर्थ हो जाता है। इसलिए उसकी साधना करनी ही पड़ती है। विनती, क्रन्दन आदिसे उसका मन और उतावला हो जाता है। आत्म निवेदनका स्वर और अधिक करुणरसाप्लुत होकर बजने लगता है। प्रियका आवाहन सुनकर मन नाच उठता है। इस आवेगको कोई चीज रोक नहीं सकती। यही कारण है कि सामाजिक रीति रिवाज और राज·कुलकी मर्यादा मीराबाईके मनके आवेगके आगे न जाने कहां जा छिपी। मीरा दिवानी होकर अपने प्रियके रंगमें रंग गयी। प्रियके बिना मीराको चैन कहां? पिता माता भाई बन्धु कोई भी मीराको अच्छा नहीं लगता था। इन सबको छोड़कर मीराको प्रियतमके पीछे जाना ही पड़ा।

प्रेममें मतवाली होकर मीराने जहां रास लीलाका वर्णन किया है वही उनकी कविताओंमें सर्वोच्च स्थान पाने योग्य पद हैं। रास लीलामें जीव बाहरी आवरणको छोड़ कर विश्वकी समस्त चीजोंके साथ नृत्य लीलामें योग देता है। क्रमशः यह चीजें एक एक करके छूटने लगती हैं; फिर चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु किसी चीजका आभास भी नहीं रह जाता। यदि शेष रह जाता

है तो केवल वही "अविनाशी"; तब उसीके साथ आत्माकी रास लीला आरम्भ हो जाती है।

मीराबाई प्रेमके आकर्षणमें स्थिर न रह सकी। प्रियके सम्मुख उनका मन विवश हो गया और इन्द्रियां शिथिल। प्रियका रूप देखनेसे, अंग स्पर्श करनेसे, अथवा शब्द सुननेसे चित्त चंचल हो जाता है। लोक परलोककी सारी बातें ही भूल जाती हैं, प्रियके प्रत्येक भाव भंगी पर आत्म बलिदान देनेसे ही उसकी रक्षा होती है। जब तक प्रियकी प्राप्ति नहीं होती; तब तक केवल प्रियके नाम स्मरणसे ही उसकी रक्षा होती है। बस, प्रिय ही उसका सर्वस्व है। प्रत्यक्षमें अवलोकन और परोक्षमें सुमरन ही उसका काम है।

प्रकृति ने भिन्न भिन्न समयोंमें नाना प्रकारसे मीराके मनमें प्रियकी स्मृतिको जागृत किया था। जिसके कारण वर्षाकी सरलता और वसन्तकी सजीवता है उसीके साथ मीराके प्राणका स्वर मिल गया था। प्रियको न पानेसे प्रकृतिका होलिकोत्सव मीराके मनको मुग्ध नहीं करता था, जलद की जल-वर्षाकी पूर्ति उनके अश्रु जलसे होती थी। पर प्रिय मिलनके समय वसन्तका समस्त सौरभ और सौन्दर्य मीराके मनमें भर जाता था और वर्षाके मेघोंकी अश्रान्त वर्षासे उनका हृदय पूर्ण हो जाता था। प्रिय मिलन पर ही उनमें सजीवताके लक्षण दृग्गोचर होते थे।

मीराने समाज त्यागके साथ ही साथ उसकी पूजा पद्धतिको भी छोड़ दिया था। अनेक देवताओं को छोड़कर उन्होंने एक मात्र गिरिधर गोपालको ही गले लगाया था। पूजाके बाहरी आडम्बरोंसे उन्हें वैराग्य हो गया था। उन्होंने हृदय-देवताके लिए हृदयका आसन और भक्तिका अर्घ तैयार किया था।

वैष्णव लोग दास, सख्य आदि कई भाव से भक्ति करते हैं। जिस भावका उपासक हुआ, उसकी कवितामें उस भावकी अधिक मात्रा होगी। चैतन्यका "मधुरभाव" मीराबाईकी कविताओंमें अधिक नहीं पाया जाता। कोई कोई उपासक अपने प्रेमके ज़ोरसे प्रियको समान वा हीन मानते हैं पर मीराबाईकी कवितामें यह भाव भी नहीं पाया जाता। उन्होंने अपनेको दासी और ईश्वरको पति माना है। कहीं कहीं सखी भाव भी आ गया है। उन्होंने गोपीकी भाँति उपासना की है। इसी लिए नाभादासजीने उनके प्रेमकी उपमा "सदृश गोपिन प्रेम"से दी है। राधाभाव और गोपीभावकी उपासनामें बहुत अन्तर है। गोपी भावमें संसार की सब चीजें भूल जाती हैं केवल आत्माका ज्ञान बना रहता है पर राधा भावमें इस आत्म-ज्ञानका भी कोई चिह्न शेष नहीं रह जाता।

ऊपर कुछ मीराबाईके प्रेमके सम्बन्धमें ही विवेचन किया गया है। उनकी कवितामें ज्ञानकी भी मात्रा उचित रूपमें पाई जाती है। उनकी कवितामें वेदान्तकी माया, गीताका आत्मवाद, जीवन और पृथ्वीकी नश्वरता दुःखवाद कर्मवाद और जन्मान्तरवाद कोई भी विषय छूटने नहीं पाया है। इन कविताओंमें मीराबाईके उस स्नेह स्निग्ध माधुर्यका पता नहीं चलता।

मध्यकालीन साधकोंकी तरह गुरुवादका भी चर्चा मीराबाईकी कवितामें प्रचुरता से पाई जाती है। गुरुके प्रभाव और प्रतापकी कथा कहनेमें मीराने त्रुटि नहीं की है। गुरुके रैदास होनेपर भी अपने गुरूकी उन्होंने बहुत अधिक प्रशंसा की है। मीराबाईकी कैसी स्वछन्द प्रकृति थी इसका पता इसीसे चल जाता है कि उन्होंने एक चमारको अपना गुरू माना था। रैदास तो रामभक्त थे फिर कृष्णोपासक मीराबाईने उन्हें कैसे अपना गुरु बनाया यह भी एक विचारणीय विषय है।

अन्तमें कहना यह है कि मीराबाईकी कविता की लोक प्रियता बढ़ते देखकर अनेक लोगोंने उन्हींके नाम पर अनेक रचनायें की हैं। ऐसी कविताओंका स्वर उनकी कवितासे नहीं मिलता। कुछ लोगोंने ऐसी भी रचनायें की हैं जिनसे मीराबाईका चरित्र कलंकित होता है। क्या आशा की

जा सकती है कि हिन्दीके लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान् मीराबाईकी कविताओंका संग्रह करके उनमेंसे उक्त क्षेपक अंशोंको निकालनेका कष्ट स्वीकार करेंगे ?

---

# शारीर शास्त्र

रीर शास्त्र वह विज्ञान है जो जीवोंके शरीरोंके धर्मों पर तथा उनमें होनेवाली घटनाओं का प्रतिपादन करता है। इस शास्त्रमें उन क्रियाओंका विवेचन होताहै, जिनसे जीवनकी उत्पत्ति होती है और जो जीवन कालमें होती हैं। जीवन क्या है ? जीवन अस्तित्वकी वह अवस्था है जो पैदा होनेके समय आरम्भ होती है और जिसका अन्त मरनेके समय होता है। अथवा यह वह गुप्त शक्ति या वस्तु है, जिसके प्रभावसे जीवोंके अंग संचालित होते हैं और अपने निजके अथवा पारस्परिक कार्योंको कुछ अवधि तक करते रहते हैं। इस संजीवनी शक्तिको चाहे भौतिक शक्ति और चाहे आत्मा कह सकते हैं।

हर्बर्ट स्पेन्सरने जीवनकी परिभाषा इस प्रकार दी है—"आभ्यन्तर सम्बन्धोंका बाह्य सम्बन्धोंसे निरन्तर समायोग ही जीवन है" परन्तु यह निर्विवाद है कि जीवन जीवित द्रव्यका एक गुण है अथवा उसीके साथ संलग्न सदैव देखनेमें आता है। जीवाद्यम (Protoplasm) की क्रियाशीलता का ही नाम जीवन है। जीवाद्यम अथवा जीवन-मय द्रव्य या तो अत्यन्त सरल स्वतंत्र जीवोंके रूपमें अथवा उनके समूहोंमें दृष्टिगोचर होता है। यह समुदाय ही स्थावर और जंगम जीवोंके देह हैं। सरलतम जन्तु एक-कोषीय होते हैं; जैसे अमीबा अथवा हैड्रा। इनकी बनावट निराली ही होती है। इनमें बड़े जटिल अंगारक पदार्थ कर्बोज प्रोटीन आदि बनते रहते हैं। उनमें गति, क्षोभशीलता, वृद्धि और प्रजोत्पादनकी सामर्थ्य होती है। प्रकृतिकी सर्वोत्तम रचना (मनुष्य) और अमीबा में केवल दर्जेका ही अन्तर है। अमीबा एक-कोषीय जीव है, मनुष्य असंख्य सैलोंका समुदाय है। इन क्षुद्र जीवोंको अथवा उनके समुदायोंको अनेक घटनाओंका सामना करना पड़ता है। घटनाएं भीतरी अथवा बाहरी होती हैं, जिनसे या तो जीव उसी समय अथवा धीरे धीरे मरता है या अपने बनाये हुए पदार्थोंके अटक जानेसे ही उनका नाश हो जाता है। जीवनका प्रादुर्भाव एक अज्ञात रहस्य-पूर्ण विषय है; हां इतना अवश्य मालूम है कि जीवनसे ही जीवनकी उत्पत्ति होती है। निर्जीव पदार्थोंसे जीवोंकी उत्पत्ति असम्भव है। जीवित द्रव्य अमर है। एक बार पैदा होनेके पश्चात् प्रजोत्पादन और विकाश द्वारा उसका तारतम्य सदा जारी रहता है।

मैंने संक्षेपमें सरलतम जन्तु अमीबाके सरल धर्मोंका वर्णन कर दिया है। देखिये वह किस प्रकार आसपासकी निर्जीव वस्तुसे विभिन्नता दरसाता है। यही धर्म उच्च जन्तुओंमें अधिक परमार्जित और विशिष्ट हो जाते हैं और उनका सर्वोत्तम विकास मनुष्यमें पाया जाता है। उदाहरणके लिए गतिको ले लीजिये। दोलनकी प्रारम्भिक चेष्टाएं कम्पनका रूप धारण कर लेती हैं और कम्पन अन्तमें चलने और बोलनेमें परवर्तित हो जाता है। क्षोभ-शीलता और उत्तेजित होनेकी सामर्थ्य ही पांच ज्ञानेन्द्रियोंकी जन्मदात्री है। प्रकाश और छायाके सूक्ष्म भेद, शब्द और सांगीत, अनेक प्रकारके गंध, स्वाद और स्पर्श इन सबका ज्ञान पूर्वोक्त दो गुणों पर ही अवलम्बित है। यह कार्य विशेषता प्राप्त पेशियों और नाड़ियों (ज्ञान नाड़ी अथवा कर्म नाड़ी और उनके छोर जैसे नाड़ी तल) और मस्तिष्क तथा मेरुदण्ड द्वारा सम्पादित होते हैं।

वृद्धि अमीबामें आसपासके पदार्थोंके शोषण-से होती है, परन्तु मनुष्यमें पेचीले पाचन संस्थान से वही काम निकलता है। मनुष्य शरीरमें भोजन चबाया जाता है, उसकी लुगदी बनायी जाती है, कई स्थानों पर वह पचता है, घुलता है, छनता है, परिष्कृत होता और अन्तमें उसका ओषदीकरण होता है, तब कहीं उसका प्रवेश अङ्गोपाङ्गमें हो पाता है।

प्रजोत्पादन भी हैड्रा या अमीबामें बहुत सरल रीतिसे फटन द्वारा हो जाता है। यह कार्य उच्च जीवोंमें पुरुष और स्त्रीके अङ्गों द्वारा पूरा होता है। वीर्य विशेष अङ्गोंमें पैदा होकर थैलोंमें पहुँचता है, जहां उसका परिपाक होता है। गर्भा-धानके अनन्तर प्रायः दस मास तक भ्रूणकी पुष्टि और वृद्धि होती रहती है। तब कहीं बच्चा पैदा होता है, सो भी १८ या २० वर्ष बाद जीवन यात्रा के लिए शिक्षित हो पाता है। हैड्रा तो थोड़े ही समयमें एकसे दो हो जाते हैं और स्वतंत्र रूपसे विचरने लगते हैं।

ज्यों ज्यों सैलोंके जटिल समुदायोंकी रचना होती जाती है त्यों त्यों उनमें कार्य विभाग भी होता जाता है, जिसका सर्वोत्तम नमूना मनुष्यमें मिलता है। मनुष्य खाता पीता है, सांस लेता है—जिससे रुधिर साफ होता है और गरमी पैदा होती है—सुनता है, देखता है सूंघता है, रस और स्पर्श का अनुभव करता है, प्रजोत्पादन करता है और मरनेके पहले अपनी जातिकी उन्नतिके लिए प्रयत्नशील रहता। यह सब काम विशेष सैलों द्वारा कैसे किये जाते हैं ?

इसी प्रश्नका उत्तर खोजना शारीर शास्त्रका काम है। नित्यके जीवनमें जो घटनाएं देखनेमें आती हैं उनके नियमोंका अनुशीलन ही इसका विषय है। इन अङ्गोंके धर्मोंको समझनेके लिए मनुष्य शरीरकी रचनाको जानना चाहिये। इसका अत्यन्त संक्षिप्त वर्णन मैं यहां कर देता हूँ; क्योंकि समय बहुत कम है।

इस चित्रमें मनुष्यका ढांचा दिखलाया गया है। (चित्र १) अस्थियां कोमल अङ्गोंकी रक्षा करती हैं और शरीरकी आकृतिको निश्चित करती हैं। इन्हीं से पेशियां चिपकी रहती हैं और यह डांडियों ( lever ) का भी काम देती हैं, जिनसे गति और अंग चालन सम्भव होता है।

इस ढाँचेमें सबसे ऊपरका भाग ही सर है, जिसमें मस्तिष्क बन्द है और इसीमें चेहरा है; जिसमें चार ज्ञानेन्द्रियाँ स्थित हैं और जो मनो-विकारोंको, सुख दुखके भावों को, दर्शानेके लिए दर्पणका काम देता है।

इसीसे जुड़ा हुआ मेरुदण्डमें है, जिसके अन्दर सुषुम्ना ( spinal colum ) है। मेरुदण्ड-में ही ज्ञान नाड़ियों और कर्म नाड़ियोंके कोष हैं।

सामनेको उर प्रदेश ( thorax ) है। यह एक पिंजड़ा सा है जो छाताकी हड्डियों और मेरुदण्डके पसलियों द्वारा जुड़नेसे बना है। इसी बक्समें फुफ्फुस और हृत्पिण्ड बन्द हैं। बड़ी बड़ी रुधिर प्रणाली भी यहीं बन्द हैं। इसके नीचे उर प्रदेश ( thorax ) और वस्ति देश ( pelvis ) के बीचका स्थान बड़ी बड़ी पेशियोंसे परावेष्टित है। इसीको उदर (abdomen) कहते हैं। इसमें पाचन और मलोत्सर्ग (excretion) के अंग—आमाशय आंत, यकृत, प्लीहा ( spleen ), वृक्क और मूत्राशय-स्थित हैं।

( pelvis ) वस्ति देश कूल्हेकी हड्डी और मेरु-दण्डके निचले भागके जुड़नेसे बना है। स्त्रियोंमें गर्भाशय इसी प्रदेश में रहता है।

धड़से जुड़े हुये हाथ, पैर हैं। धड़से हाथ गेंद और गोलक (ball & socket) जोड़से सम्बद्ध है। हाथ भुजदण्डसे चूलदार ( hinge joint ) जोड़ द्वारा संलग्न है। कलाईमें ( carpus ) आठ अस्थि हैं, जो इस प्रकार जुड़ी हुई हैं कि हर तरफ हर तरहसे गति सम्भव हो जाती है। इस जोड़की सी सरल गति किसी कृत्रिम यंत्रमें नहीं पायी जाती। करभास्थि ( metacarpal bones )

से हाथ बने हैं और पैरवोंसे ( phalanges ) अँगुलियां। गेंद और गोलक जोड़से जांघ धड़से जुड़ी हुई है। ऊपरके जोड़से यह बहुत मजबूत है।

घुटना और टखना बड़े मज़बूत जोड़ हैं, जिनपर कुल शरीरका बोझ रह सकता है। पैरमें प्रपादास्थि (metatarsal bones) और ( phalanges ) पैरवे हैं।

मनुष्य शरीरमें प्रायः २०० अस्थियां हैं। आश्चर्य है कि शेखसादीके ग्रन्थ "बोस्तानमें" इस बातका उल्लेख है, यद्यपि सादी साहब न तो वैद्य थे और न शल्य चिकित्सक।

यह अस्थिपिंजर कार्टिलेज (उपास्थि), अस्थ्यावरण और तैल कोषोंसे ढका हुआ है, जिसमें हड्डियां आपसमें रगड़ न खावें। पेशियां ( गतिके लिए ), मांसावरक ( पेशियोंको अलग अलग रखनेके लिए ), बंधक तन्तु, चर्बीकी तह ( जो गद्देका काम देती है ), चर्म और उपचर्म—भी शरीरमें स्थित हैं, जिससे शरीरकी सुन्दरता सुडौलपन और उपयोगिता बढ़ती है।

पेशियां सूत्रमय होती हैं, उनके सैल लम्बोतरे होकर गुच्छक रूपमें रस्सियोंके समान दीखते हैं। यह रस्सियां भिन्न भिन्न हड्डियोंके बीचमें लगी हुई हैं, इसीसे अंग संचालन अथवा गति सम्भव होती है। पेशियां अङ्गोंकी पारस्परिक स्थिति एक समान रखनेमें सहायक होती हैं। पेशी सब अङ्गोंपर, इन्द्रियोंपर और धड़पर फैली हुई हैं, परन्तु अधिकांश अनैच्छिक हैं। जो पेशियां इच्छानुसार हिलती डोलती हैं ऐच्छिक कहलाती हैं। अब हम भिन्न भिन्न संस्थानों पर संक्षेपतः विचार करेंगे।

पाचन संस्थान

पाचन संस्थान पोषक पदार्थों ( भोजन ) के शोषणके लिए बना है।

पाचन कर्म मुंहसे ही प्रारम्भ होता है। मुंह एक विवर है जिसके सामनेको ओठ हैं, दाएं बाएं गाल हैं, पीछेको टेंटुवा ( Pharynx ) है, ऊपरको तालू है और नीचे जीभका गुदगुदा फर्श बिछा है। ओठके खुलनेपर भोजन, थोड़े थोड़े अंशों (कौरों) में मुंहमें दिया जाता है। यहां दांत उसे चबाकर पीसते हैं। यहीं थूक या लाला ग्रन्थियोंमेंसे निकलती है और जीभ इसको खानेके साथ खूब अच्छी तरह मिला देती है। उलट पुलट कर जीभ खानेके पीसे जानेमें भी सहायता करती है। लाला पहला पाचक रस है जो श्वेतसारको डेक्स्ट्रीन और शर्करामें बदल सकता है। श्वेतसार अनघुल पदार्थ है, परन्तु आप जानते ही हैं कि शकर किस सुगमतासे हल हो जाती है। अतएव चबानेका काम बड़े महत्वका है। गलेसे उतारनेके पहले कौरोंको खूब पीस देना चाहिये, जिसमें बादमें मेदेको व्यर्थ परिश्रम न करना पड़े और पर्याप्त मात्रा लालाकी भी मिल जाय। जीभ पिसे हुए कौरकी एक लुगदी सी बना देती है जो टेंटवे (Pharynx) में होकर अन्न मार्ग ( aesophagus ) द्वारा पेटमें पहुँच जाती है। इस लुगदीके दबावसे एक ढिबरीसी, स्वरयंत्रच्छद, दबकर श्वास पथको बन्द कर देती है। इसीलिए वह श्वासपथमें न जाकर अन्नमार्गमें ही प्रवेश करती है।

आमाशय में पाचनका काम जारी रहता है। उसके एक भागमेंसे नमकका तेजाब और दूसरेमें से ( Pepsin ) पचाइन निकलती है। इन दोनों का प्रभाव भोजनके नत्रजनीय अंश, प्रोटीड, पर पड़ता है। यह पदार्थ प्रोटीडका विघटन करके अधिक सरल और अधिक घुलन शील पदार्थ बना देते हैं। आमाशयके तीन विभाग हैं:—ऊर्ध्वांश ( fundus ), मध्यांश ( body ) और दक्षिणांश ( pyloric )। ऊर्ध्वांशमें खाना इकट्ठा होता है। मध्यांश उसका मन्थन करता है और दक्षिणांश द्वारा वह आंतोंमें पहुँचता है। मांसाहारियोंके आमाशयकी ऐसी ही रचना है। शाकाहारियोंके आमाशयके चार विभाग होते हैं। भोजन एक कोठेमें प्रवेश करता है, वहां अंशतः पचता है, तदनन्तर फिर मुंहमें आता है और जुगालीके बाद दूसरे कोठेमें पहुँचता है।

मनुष्यका आमाशय नरम पदार्थोंके उपयुक्त है और मांसाहारियोंके ढंगका है। दक्षिणांशसे भोजन द्वादशांगुल ( Diodenum ) में प्रवेश करता है। यहां पर वह पित्त ( bile ) से मिलता है, जो यकृत ( liver ) में उत्पन्न होता है। यहां ही क्लोम रस भी उसमें मिलता है। यह दोनों रस श्वेत सारको शर्करामें बदलने, स्नेहके इमलशन बनने और भोजनके सड़ने न देनेमें सहायक होते हैं। छोटी आंत में-जिसके दो भाग हैं ८ फुट लम्बा जेजूनम और १२ फुट लम्बा इलियम ( jejunum and eleum )—भोजनमें आन्त्र रस आ मिलता है, जिसे सेक्रिटिन ( Secretion ) अंग्रेज़ी कहते हैं। यहां पर भोजनके कुछ अंशका शोषण भी हो जाता है, जो निकट तम रुधिर स्रोतमें जा मिलता है। तदनन्तर यह अंश यकृतमें पहुँचता है जहां इसका परिष्कार होता है। वहांसे यह हृदय और फुप्फसमें पहुँचता है।

वृहदंत्रमें केवल फुज़ला, निस्सार अंश, पहुँचता है जो गुदा द्वारा मलरूपमें बाहर निकल जाता है। वृहदंत्रमें भी कुछ शोषण होता है, परन्तु वस्तुतः वृहदंत्रका काम केवल नापदानका सा है।

मुंहसे गुदा तक पहुँचनेमें भोजनको लग भग १८ घंटे लगते हैं:—

½ घंटा चबानेमें

३ घंटे आमाशयमें

६ घंटे क्षुद्रांत्रमें

और ८½ घंटे वृहदंत्रमें

मल तो विष्ठाके रूपमें निकल जाता है। और आहार रस मेसेन्ट्रिक ग्रन्थियों ( Mesentric gland ) में होकर यकृत तक अधिक परिष्कारके लिए पहुँचता है। तदनन्तर वह रुधिरके साथ मिला हुआ हृत्पिण्डके दाहिने भागमें होता हुआ फुप्फुसीया धमनी ( Pulmonary artery ) द्वारा फुप्फुसमें ओषिदीकरणके लिए पहुँचाया जाता है।

श्वास संस्थान नथनोंसे आरम्भ होकर स्वर-यंत्र ( Larynx ) तक और वहांसे टेंटवा ( trachea ) और उसके छोटे विभागों और शाखाओंमें होता हुआ वायुप्रणालियों ( bronchial tubes ) तक फैला हुआ है। इसके अन्तमें वायु कोष्ठ है। या वायुस्थान हैं। यहां पर वायु एक ओर और रुधिर दूसरी ओर होता है। अभिसर्पण ( osmosis) द्वारा और जीवित कोषोंकी क्रियासे रुधिर ओषजन ले लेता है और कर्बन द्विओषिद, जल-वाष्प, मलकण तथा अन्य विषैले कणोंको त्याग देता है। यही उच्छ्वास द्वारा बाहर निकलते रहते हैं। प्रत्येक श्वासमें ओषजन अन्दर जाती है और प्रत्येक उच्छ्वासमें मल बाहर निकलता है। यह प्रायः १७ बार प्रत्येक मिनटमें होता रहता है और जन्मसे मरने तक निरन्तर जारी रहता है।

इधर रुधिर चक्कर लगाता रहता है, उधर हृत्पिण्ड बराबर रुधिरको पम्प करता रहता है। प्रायः एक मिनटमें ७२ बार हृत्पिण्ड स्पन्दन करता है और रुधिरका एक चक्कर ½ मिनटमें समाप्त हो जाता है। यह कार्य भी निरन्तर होता रहता है। इसके बन्द होते ही सब कार्य शरीरके रुक जाते हैं और तत्क्षण मृत्यु हो सकती है।

रुधिर फुप्फसमेंसे हृत्पिण्डके वाम भागमें आता है और महाधमनी (aorta) में होकर चक्कर लगाने लगता है।

पाठकोंको मालूम हो गया होगा कि हृत्पिण्ड-के दो भाग हैं। दक्षिण भागमें अशुद्ध रुधिर शिराओंसे आता है और बांए भागसे फिर धमनियों में पहुंच जाता है। इन अर्द्ध भागोंके भी दो दो और विभाग हैं। इनको ग्राहक कोष्ठ (Auricles) और क्षेपक कोष्ठ ( ventricles ) कहते हैं। ग्राहक कोष्ठ छोटे छोटे भाण्डागार हैं, जिनमेंसे रुधिर क्षेपक कोष्ठ ( ventricles ) में पहुँचता रहता है और वहांसे रुधिरका परिपिङ्ग होता है। दोनोंमें ऐसे कपाट ( valves ) लगे रहते हैं कि रुधिरका प्रवाह एक ही दिशामें होता है। यह प्रबन्ध कैसा जटिल है। जन्मसे मरण पर्यन्त ७२ बार प्रत्येक मिनटमें इतके स्पन्दन होते हैं, फिर

भी रुधिरकी एक बून्द भी उल्टी दिशामें नहीं जाती ( रुग्णावस्थामें कभी कभी पलट सकती है )। हृत्पिण्डसे रुधिर महाधमनी ( Aorta ) धमनी और केशिकाओंमें होकर शरीरके कोने कोनेमें—सूक्ष्मातिसूक्ष्म भाग तकमें भी पहुँचता है। शरीरकी सैलें इसीसे अपना भोजन ग्रहण करती हैं और अपना मल उसमें छोड़ देती हैं। यह रुधिर शिराक, शिरा और महाशिरा (Venules, veins, venacava) में होता हुआ हृतके वाम भागमें फिर पहुँच जाता है। फिर वहांसे फुप्फसमें आकर साफ होता है और हृत्पिण्डके वाम भागमें लौट कर धमनियोंमें चक्कर लगाने लगता है। यह तांता जीवन भर जारी रहता है।

मलोत्सर्ग ( Excretory system ) संस्थान

रुधिरके मलका कुछ अंश तो फेफड़ों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है, कुछ त्वचाके रंध्रोंमेंसे निकल जाता है और शेषको आंतें तथा वृक्क (kidneys) निकालते हैं। वृक्क चक्करदार नली होती है, जिसमें रुधिर स्रोतका घुलनशील मल एकत्रित होता रहता है। वृक्क द्वारा ही नत्रजनीय मल बाहर फेंका जाता है। जाड़ेमें जब त्वचाका कार्य शिथिल हो जाता है तो वृक्कको विशेष काम करना पड़ता है। वृक्कोंमें ही मूत्र उत्पन्न होता है और मूत्र प्रणालीमें होकर ब्लेडरमें आकर जमा होता रहता है। जब पर्याप्त मात्रामें एकत्रित हो जाता है तो पेशाब करनेकी इच्छा होती है।

कर्म नाड़ी और ज्ञान नाड़ी

पाचन, रक्त परिभ्रमण, रुधिरका ओषिदीकरण ( प्रश्वास और उच्छ्वास द्वारा ) और मल त्याग यह हमारे जीवनके स्थावरोंकेसे कर्म हैं। हमारी इच्छा शक्तिका इन क्रियाओं पर कुछ प्रभाव नहीं है। वास्तवमें यह सब काम विशेष नाड़ियों द्वारा सम्पादित होते हैं, जिन्हें हम सहानुभूतीय नाड़ी कहते हैं। ज्ञान और कर्म नाड़ियां अधिक मोटी चीज़ें हैं जो साथके चित्रमें दिखलायी गयी हैं। यह मेरुदण्डसे निकल कर फिर शाखाओं और प्रशाखाओंमें विभक्त हो जाती हैं—ठीक वैसे ही जैसे शिराएँ, धमनियां और केशिकाएं। वस्तुतः नाड़ियां धमनियोंके साथ साथ फैली हुई हैं और उनके कार्योंको नियंत्रण करती हैं।

जहां कहीं आप शरीरको स्पर्श करते हैं, कुछ अनुभव होता है। यह अनुभव ज्ञान नाड़ियों द्वारा मस्तिष्क तक पहुँचता है—मानों तार द्वारा खबर सम्राट् तक पहुँचाई गई हो—और शरीरका सम्राट् कर्म नाड़ियोंका प्रेरित कर उपयुक्त कार्य कराता है। शरीर पर मक्खी बैठते ही मस्तिष्कको खबर पहुँचती है और मस्तिष्क तत्क्षण कर्म नाड़ियों द्वारा हाथको प्रेरित कर देता है।

इन ज्ञान नाड़ियोंके पांच मुख्य केन्द्र हैं, जिनसे ५ भिन्न भिन्न प्रकारके काम सम्पादित होते हैं। इन्हींको हम ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं।

आंख—का सम्बन्ध प्रकाशसे है। प्रकाश और छायाके विविध प्रकारान्तर इसीसे हम देख पाते हैं। यह एक फोटोका केमरा है जो सबके पास है। इसमें सामनेको लेंस लगा है और पीछेको एक अनुभव शील परदा। लेंस अथवा तालके फोकस करनेकी (स्पष्ट चित्र बनानेके उद्देश्यसे आगे पीछे करनेकी) भी व्यवस्था है, जिसमें परदे पर ठीक ठीक चित्र बन जाय और उसका ज्ञान आंखको हो जाय।

कान—शब्द तरंगावलीके लिए बना है। उसका बाहरी भाग तरंगोंको बटोर कर भीतर पहुँचाता है, जहां वह श्रवण ढोलमें कम्पन पैदा कर देते हैं। यह कम्पन हथौड़ी तक पहुँचते हैं और वहांसे अनुभव मस्तिष्क तक पहुँचता है।

नाक—का विषय घ्राण है। यहींसे श्वास कर्म होता है। जो हवा भीतर प्रवेश करती है शुद्ध होनी चाहिये, इसकी परख करनेके लिए ही घ्राणेन्द्रिय द्वारा हवा जानेका प्रबन्ध प्रकृतिने किया है। नाकसे ही तरह तरहकी गंधोंमें हम भिन्नता अनुभव करते हैं। घ्राणेन्द्रियके भीतरकी नाड़ियाँ इन अनुभवोंको मस्तिष्क तक पहुँचाती हैं।

जिह्वा और त्वकका भी यही हाल है। यहां भी नाड़ियोंके गुच्छक इस प्रकार लगाये गये हैं कि अधिकतम स्पर्श हो सके। यही नाड़ियां उत्तेजनाको मस्तिष्क तक पहुँचा देती हैं। मस्तिष्कमें भी भिन्न भिन्न अनुभवोंके लिए अलग अलग भाग निश्चित हैं। ज्ञान और कर्म नाड़ियोंको मेरुदण्डमें होते हुए मस्तिष्क तक पहुँचते हुए हम देख सकते हैं। वहां पहुँच कर भूल भुलइयांमें वह फिर दिखाई नहीं पड़ती। शरीर शास्त्रियोंने पांचों ज्ञानेन्द्रियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले मस्तिष्क विभागोंको जान लिया है, परन्तु पूरे मस्तिष्कका पूरापूरा ज्ञान अभी तक नहीं मालूम हुआ है।

निस्सन्देह मस्तिष्क मनोभावों बुद्धि, स्मृति, इच्छा शक्ति और साम्यका मुख्य स्थान है। मस्तिष्क सब कामोंका संचालक है, चाहे यह काम शरीरके भीतर हों और चाहे शरीर उन्हें करे। सम्भव है मस्तिष्क ही आत्माका आसन हो।

मैं कह चुका हूँ कि प्रत्येक अंग कोषोंका समुदाय मात्र है, जिसने कुछ काम या कामोंमें विशेषता प्राप्त कर ली है और तदनुसार सेलोंकी कर्म विधिमें, उनके स्वभावमें अन्तर पैदा कर दिया है। यह कहना हास्यास्पद समझा जायगा कि एक सेल निर्मित अमीबामें भी मन अथवा बुद्धि है, परन्तु बीजमें पूर्ण वृक्षकी रचनाका सूक्ष्म रूपसे होना उतना ही आश्चर्य जनक प्रतीत होता है। वास्तवमें हमें इतने ही देखनेकी आज्ञा है, शेष रहस्य प्रकृति नटीके रंग मंचके परदोंकी ओटमें छिपे हैं।

—शिवदास मुकर्जी।

# लुई पास्चर

सं० १८२२ ई० की २७ दिसम्बरको लुई पास्चर ( Louis Pasteur ) ने Frauche comete के Dole नामक बस्तीमें एक चमारके घर जन्म-ग्रहण किया था। लड़कपनमें अरबोयाके विद्यालयमें उन्होंने अपनी प्राथमिक शिक्षा पाई थी। इसी समय उनके शिक्षकको उनकी प्रतिभाका आभास मिला था। वह बालक लुईको उत्साहयुक्त बातें कहकर उत्साहित करते थे। वहांकी पढ़ाई समाप्त कर लुइ बेसानसन शहरके रायल कालेजमें भर्ती हुए और सन् १८४० ई० में Bachelier es Letters का डिप्लोमा प्राप्त कर बहुत थोड़े वेतन पर उक्त कालेजमें गणितके सहकारी अध्यापक नियुक्त हुए। इससे उनकी भीषण दरिद्रता कुछ कम हुई किन्तु अध्यापकीसे अवकाश न मिलनेके कारण वह विज्ञान तथा रसायनमें गवेषणा नहीं कर सकते थे। इसके दो वर्ष बाद, जब उन्हें Baccalaureat es Sciences नामक विज्ञानकी परीक्षामें उत्तीर्ण होनेका सार्टिफिकेट मिला तब उस सार्टिफिकेट पर एक परीक्षक महाशयने लिख दिया था कि रसायन शास्त्रमें यह बहुत कच्चे हैं। किन्तु थोड़े समय बाद ही रसायन सागरमें एक बहुत बड़ी तरंग उठाकर इन्होंने वैज्ञानिक जगतको चकित और मुग्ध कर दिया।

J. B. A. Duma की प्रथम रासायनिक आलोचनासे Sorbonne में आपकी दीक्षा रसायन शास्त्रमें हुई। इसी समय A. T. Ballad ने उन्हें अपने यन्त्रागारका सहचर नियुक्त किया।

किस दैवी-शक्तिके प्रभावसे यह व्याधिके जटिल रहस्यको भेदकर उसके कारणको विज्ञानके साथ बांधनेमें कृत कार्य्य हुए थे, यह जाननेकी इच्छा से हम देख सकेंगे कि पदार्थ विज्ञान और रसायन शास्त्रके गम्भीर प्रश्नोंकी मीमांसामें अक्लान्त कर्म्मी, विशाल धैर्य्य शील, नियत कर्म्मयोग निरत,

ध्यान महामति पास्चरने सब प्रकारके बाधाविघ्नोंको कुचल कर बहुत वर्षोंके सुचिन्ता प्रसूत अपने भावोंको शृङ्खला-बद्ध किया है। उनके जीवनका मन्त्र था "Travaile, travailer toeyours" इसीको गीताके शब्दोंमें कह सकते हैं—नियतं कुरु कर्म्म त्वं कर्म्मज्यायोह्यकर्म्मणः।

Isomerism ने नवीन रसायनमें युगान्तर उपस्थित कर दिया है। दो पदार्थोंके बराबर बराबर उपादान होनेपर भी अणुमें परमाणुओंके रचना भेदसे वह भिन्न भिन्न गुणाक्रान्त होते हैं—यह सिद्धान्त पास्चरके पहले तथा उसके समयके वैज्ञानिकोंको अविदित नहीं था किन्तु वह इस रहस्यको समझ नहीं सके थे। जिस दिन युवा पास्चरने असामान्य प्रतिभाके साथ शराबके बर्तनसे निकले हुए टार्टरिक ऐसिडके स्फटिक खण्डों पर प्रकाश डाल Deflection of polarised light कर अज्ञानके कुहरेको दूर कर एक नया पथ दिखलाया उस दिन आनन्दसे उत्फुल्ल होकर गुरुवर वीय महोदयने कहा था—Mon cher enfant, jai tant aime les sciences daus ma vie qne cela me fait batter le cour. अर्थात् प्रिय वत्स! मैं विज्ञानको इतना प्यार करता हूँ कि तुम्हारे गलेकी ओर हमारा हृदय अपने आप खिंच जाता है।"

इसी एक विषयने लुईको उस समयके पृथ्वीके रासायनिकोंमें अग्रगण्य बना दिया और १८५४ ई० में वह लाइली (Lille) की Faculte des Sciences के अध्यापक और Dean नियुक्त हुए।

इसके कुछ दिन बाद Mille Laureant नामक विदुषी और गुणवती महिलाका आपने पाणि ग्रहण किया है।

एक बार शराबकी हौलीमें अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायतासे वह निर्दोष और सदोष शराबकी परीक्षा कर रहे थे। वहां वह जिस सिद्धान्त पर पहुँचे उसने सारे रसायन शास्त्र और जीव विज्ञानमें एक विप्लव पैदा हो गया। एक प्रकारका अनुसन्धान तबसे आरम्भ हो गया जिससे प्रमाणित हुआ कि जीव स्वयम्भू नहीं है (Idea of spontaneous generation of life)। उन्होंने दिखलाया कि पेड़में लगे हुए अंगूरमें अथवा स्वस्थ जीवके शरीरमें किसी प्रकारके जीवाणु नहीं रहते। किन्तु तोड़े हुए अंगूरके गुच्छे या प्राणहीन शरीर यदि हवामें रख दिये जायं तो ख़मीर उठने लगता है तथा फल गलने लगता (Fermentation and putrefaction) है। यदि इन पदार्थोंको इस प्रकार रखा जाय कि जीवाणु उनके पास नहीं जा सकते तो अंगूरके फल या प्राणहीन शरीर अविकृत अवस्थामें रहते हैं।

इसके बाद वह तुलना कर (by analogy) इस सिधान्त पर पहुँचे कि क्षत स्थानोंमें प्रदाह और विभिन्न प्रकारकी व्याधि, जीवित पशु शरीरमें गणनातीत जीवाणुओंका नष्ट होना, मदिराके परिवर्तनके रूपान्तर मात्र हैं।

१८६५ ई० में दक्षिण फ्रांसके आले (Alais) प्रदेशमें पेब्रिन (pebrine) नामक रोग रेशमके कीड़ोंको नष्ट कर रहा था। वहांके कुछ मनुष्य पास्चरके शरणमें आये। जून महीनेमें वह वहां गये और सेप्टेम्बरके अन्तमें इस भीषण उपद्रवके प्रकृत कारणका निरूपण कर उसका अन्त कर दिया। उनका पर्य्यवेक्षणका फल स्वरूप उनका एक अमूल्य ग्रन्थ १८७० ई० में प्रकाशित हुआ।

१८६५ ई० की २८ सितम्बरको St. cloud के निकट इनका देहान्त हुआ। किन्तु समूची पृथ्वीके मनुष्योंने शोकमें अधीर होकर उनके प्रति अपना अन्तिम सम्मान प्रकट कर दिखाया और वह पेरिसके विशाल राजपथमें उनकी संगमर्म्मर पत्थरकी मूर्तिके रूपमें विद्यमान है। उसके नीचे लिखा है Marble Statue of Louis Pasteur built on International subscription at Boulvard Pasteur, Paris.

श्रीरमेशप्रसाद, बी. एस-सी.

## वनस्पतिसे अन्य लाभ

### ओस

भारतवर्षमें दो प्रकारकी फसलें होती हैं—खरीफ और रबी खरीफकी फसलें तो वर्षाके पानी पर ही निर्भर होती हैं; परन्तु रबीकी फसलें खेतकी मट्टीमें संचित किए हुए जल पर अवलम्बित रहती हैं। रबीकी फसलोंको ओससे भी बहुत लाभ पहुँचता है। ओस पड़नेमें भी वनस्पति अधिकांशमें सहायक होती हैं।

ओस पड़नेके लिए दो साधनोंकी आवश्यकता होती है—पानीकी भाप और शीतलता। वायुमें जलवाष्प न्यूनाधिक परिमाणमें सदा वर्तमान रहती है। इसीसे ओसकी उत्पत्ति होती है। पानी बरसनेके लिए हवामें जितनी भापका होना जरूरी है, उतनी भाप ओसके लिए आवश्यक नहीं होती। ज़मीनकी तरी और नदी नालों और तालावोंके जलका वाष्पीभवन होनेसे वायुमें जितनी भाप मिली रहती है, उतनी ही ओसके लिए काफी है। ऊपर दिखा आये हैं कि भापको जल रूपमें परिवर्तित करनेके लिए किस प्रकारकी परिस्थिति आवश्यक होती है। ओसके लिए भी वैसी परिस्थितिका होना अनिवार्य्य है। शीतलताका परिमाण समान रहने पर हवामें जितनी ही अधिक भाप होगी, उतनी ही अधिक ओस गिरेगी। परन्तु यदि भाप और शीतका परिमाण अधिक हो, तो अवश्य ही अत्यधिक ओस गिरेगी।

वनस्पति शीतलता और जलवाष्पको उत्पन्न करती है, जिससे ओस गिरनेमें बहुत मदद मिलती है। परन्तु वनस्पतिमें एक और ऐसा गुण है, जिससे ओस पड़नेमें बड़ी मदद मिलती है।

वनस्पतिके उक्त गुण पर विचार करनेके पहले इस बात पर विचार करेंगे कि शीतकालमें ओस क्यों गिरती है और गरमीके मौसममें क्यों नहीं गिरती? किसी गत परिच्छेदमें वर्षाकी उपपत्तिपर विचार करते समय यह बात सप्रयोग बता चुके हैं कि हवामें नियमित उष्णता होने पर वह नियमित परिमाणमें ही भाप रख सकती है। सीमासे अधिक भाप प्राप्त होते ही, भाप जल रूप धारण कर लेती है। वर्षा ऋतु खतम होनेके बाद हवामें इतनी कम भाप रह जाती है कि वह जल रूपमें परिवर्तित होकर बरस नहीं सकती। परन्तु गरमीके दिनोंमें तो ऐसा होना एक दम असंभव है। तब क्या शीतकालमें जलवाष्प पानीका रूप ग्रहण कर सकती है? शीतकालमें ऐसा होना अधिक संभव नहीं होता। यदि ऐसी स्थिति प्राप्त हो जाय तो फिर ओस न गिरकर पानी ही बरसने लगेगा। तब वर्षा और ओसमें क्या अन्तर है? किसी विशेष भूभाग पर आकाशसे पानीकी बूंदें गिरने लगें, तो हम उसे वर्षा कहते हैं। परन्तु ओस आकाशसे वर्षाकी बूंदोंकी तरह नहीं गिरती। ज़्यादा सरदीके कारण जलवाष्प ठंडे पदार्थों पर बूँदोंके रूपमें जम जाती है; इसे ही ओस कहते हैं।

ओस दो तरह से गिरती है। किसी स्थान विशेषमें जलवाष्पके संचयके अधिक बढ़ जाने और सरदीकी अधिकतासे भूपृष्ठ परकी हवा इतनी भारी हो जाती है कि वह धूंधर जलवाष्पका घन रूप धारण कर लेती है और उसमेंसे पानीके महीन तुषार मंदगतिसे जमीन पर गिरते रहते हैं। दूसरे प्रकारकी ओस धूँधरका रूप शायद ही धारण करती है। यदा कदाचित् धूँधर गिरती भी है तो वह उतनी घनी नहीं होती। न महीन जल तुषार ही गिरते हैं। जलवाष्प विशेष पदार्थों पर छोटे छोटे जलकणके रूपमें जम जाती है। दोनों ही प्रकारकी ओसमें जलविन्दु आकाशसे न गिरकर जमीनके पासकी हवामेंसे ही उत्पन्न होते हैं। दोनों ही अवस्थामें ओस विशिष्ट स्थानों

पर ही गिरती है। ओस पड़नेके लिए जलवाष्पको जल रूप ग्रहण करनेकी अवस्थामें लानेकी ज़रूरत नहीं होती।

ओस बननेकी क्रिया समझनेके लिए हम एक ऐसा उदाहरण देते हैं जो प्रत्येक घरमें सहज ही देखा जा सकता है। अकसर प्रत्येक घरमें चूल्हे पर किसी पदार्थको राँधनेके लिए रखकर उस पर ढक्कन रख दिया जाता है। थोड़ी देर बाद इस ढक्कनको उठाकर देखनेसे उसकी तलीमें छोटी छोटी बूँदें जमी हुई देख पड़ेंगी। जो पदार्थ राँधनेके लिए चूल्हे पर चढ़ाया जाता है उसमेंकी तरी भाप बनकर ऊपरको उठने लगती है। परन्तु बरतनके मुख पर जो ढक्कन लगा होता है, वह उसे बाहर नहीं निकलने देता। ढक्कन ठंडा होता है। इसलिए भाप इसकी तलीसे छूते ही जल कणोंका रूप धारण कर लेती है। काँच पर फूंक मारनेसे वह कुछ समयके लिए धुँधला हो जाता है। इसका भी यही कारण है।

शीत कालमें हवामें एक निश्चित सीमा तक जल वाष्प मौजूद रहती है। अतएव उसे जलकणमें बदलनेके लिए सिर्फ ठंडकी जरूरत होती है उस ऋतुमें इतनी ठंड रातके समय अवश्य ही रहती है। गरमीके दिनोंमें सूर्यसे अधिक उष्णता प्राप्त होती है और रातकी अपेक्षा दिन बड़ा होता है। इसलिए दिन भरमें जितनी उष्णता प्राप्त होती है, उतनी रात भरमें परावर्तन द्वारा शेष नहीं हो पाती। अर्थात् इस ऋतुमें पदार्थ दिनमें बहुत गरम हो जाते हैं परन्तु रातमें वह पूरी तरहसे ठंडे नहीं हो पाते। इसीलिए गरमीकेमौसममें दिन पर दिन गरमी बढ़ती जाती है और यही कारण है कि ओस नहीं गिरती। तथापि इस ऋतुमें भी कृत्रिम उपाय द्वारा ओस बनाई जा सकती है। किसी काँचके बरतनको साफ पोंछ कर उसमें वर्फ रख देनेसे थोड़ी ही देरमें बरतनकी बाहरकी तरफ छोटी छोटी पानीकी बूँदें जम जायंगी। इसका कारण यह है कि बर्फसे पात्रकी उष्णता इतनी घट जाती है कि उसके आसपासकी वायुमेंकी जलवाष्प जल रूपमें परिवर्तित होकर पात्र पर जम जाती है। परन्तु गरमीके दिनोंमें नैसर्गिक रीतिसे इतनी सरदी उत्पन्न नहीं होती कि जिससे ओस गिरने लगे।

शीतकालका हाल बिलकुल निराला है। इन दिनों सूर्यसे उतनी उष्णता प्राप्त नहीं होती। दिनकी अपेक्षा रात बड़ी होती है। अतएव दिन भरमें सूर्यसे जितनी उष्णता प्राप्त होती है उसका परावर्तन करनेके लिए पर्याप्त अवकाश मिल जाता है। अर्थात् पृथ्वी और उस परके पदार्थ दिन भरमें थोड़ेसे गरम होते हैं और रात बड़ी होनेसे वह ज्यादा ठंडे हो जाते हैं। और यही कारण है कि इन ठंडे पदार्थोंके संसर्गसे हवाकी भापकी ओस बन जाती है। परन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नहीं होता। अकसर देखा जाता है कि कुछ पदार्थों पर ओस गिरती है और कुछ पर नहीं गिरती। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि शीतकालमें भी कुछ पदार्थ इतने ठंडे नहीं होते कि उन पर ओस गिरे। थोड़ेसे ही पदार्थ ऐसे हैं जो इतने ठंडे हो जाते हैं कि उनपर ओस गिर सके।

अब यहाँ यह देखेंगे कि किन किन पदार्थों पर ओस गिरती है। पदार्थ दो प्रकारके होते हैं—उष्णताके वाहक और कुवाहक। जो पदार्थ कुवाहक हैं उनमेंसे भी उष्णता तो जरूर जाती है किन्तु अति मंद गति से। सभी वाहक पदार्थोंमेंसे भी उष्णता समान वेगसे प्रवाहित नहीं होती। कुछ पदार्थोंमें वह धीरे धीरे चलती है और कुछ पदार्थोंमेंसे शीघ्र गतिसे। अतएव वाहक पदार्थ दो भागोंमें बाँटे जा सकते हैं—मंद-वाहक और शीघ्रवाहक।

जिन पदार्थोंमेंसे उष्णता मंद गतिसे जाती है वह जलदी गरम भी नहीं होते। ऊन, बाल, लकड़ी आदि पदार्थ उष्णता कुवाहक हैं; अतएव यह जलदी गरम नहीं होते। सभी प्रकारकी धातु उष्णतावाहक हैं अतएव जलदी गरम हो जाती हैं।

घरोंमें इस बातकी सत्यता रोज़ नज़र आती है। लोहेकी संड़सी या चिमटेका एक सिरा गरम होने पर दूसरा भी गरम हो जाता है। परन्तु लकड़ीका एक सिरा जलते रहने पर भी दूसरा उतना गरम नहीं होता और यदि लकड़ी अधिक लम्बी हुई तो ठंडा ही बना रहता है।

पदार्थोंको छूनेसे ही यह बात मालूम हो जाती है कि कौनसे पदार्थ वाहक हैं और कौनसे कुवाहक। सवेरे उठते ही कुछ पदार्थोंको हाथ लगानेसे वह बहुत ही ठंडे मालूम होते हैं और ऊनके समान कुछ पदार्थ गरम मालूम होते हैं। असलमें दोनों ही प्रकारके पदार्थ बहुत देर तक बाहर पड़े रहे हैं। अतएव यह कोई कारण नहीं कि एक पदार्थ ठंडा हो जाय और दूसरा गरम रहे। स्पर्शेन्द्रियसे यह बात नहीं जानी जा सकती कि कौन पदार्थ ठंडा है और कौन गरम। यह परीक्षा तो ताप मापक यंत्रसे ही की जा सकती है। यदि दोनों पदार्थोंका तापक्रम इस यंत्रसे नापा जाय, तो वह बराबर ही मिलेगा। तब हमारे हाथको एक पदार्थ ठंडा और दूसरा गरम क्यों मालूम होता है। इसका कारण वही पदार्थोंकी वाहकता और कुवाहकता है। धातु उष्णताका शीघ्रवाहक है। इसलिए धातुके बरतनको हाथ लगाते ही हाथकी उष्णता खिंचने लगती है, जिससे बरतन ठंडा मालूम होता है। परन्तु ऊन कुवाहक होनेसे छूने पर वह हाथकी उष्णता खींचता नहीं और यही कारण है कि वह गरम मालूम होता है।

इसी प्रकार जो पदार्थ वाहक होते हैं, वह जलदी ठंडे हो जाते हैं और जो कुवाहक होते हैं वह जलदी ठंडे भी नहीं होते* । उष्णता वाहक पदार्थ ठंडके दिनोंमें ज्यादा ठंडे हो जाते हैं और इन्हीं पदार्थोंमेंसे जो बहुत ही ठंडे हो जाते हैं उन्हीं पर ओस गिरती है। वृक्ष भी ठंडे जलदी हो जाते हैं। इसी गुणके कारण वनस्पति पर ओस अधिक पड़ती है। ठंडके दिनोंमें मट्टी, लकड़ी, पत्थर आदि पर ओस कम पड़ती है; परन्तु वृक्षोंके पत्ते और घास आदि पर ओसके कण ज्यादा नज़र आते हैं। जंगलों और खेतोंमें जहाँ वनस्पति अधिक होती है ओस भी ज्यादा पड़ती है। इससे यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि देशमें जितनी ही अधिक वनस्पति होगी ओस भी उतनी ही अधिक गिरेगी।

ज़मीनका बन्धन—वृक्षोंसे एक और महत्वका उपयोग होता है। नदी नालों और प्रवाहोंमें बाढ़ आनेसे प्रतिवर्ष हजारों रुपयोंका नुकसान होता है और सैकड़ों प्राणी अकाल ही कालके गालमें चले जाते हैं। वृक्ष लगानेसे बाढ़का भय बहुत कम किया जा सकता है। ऊंचे स्थानोंपर वनस्पति न होनेसे पानीके प्रवाहके मार्गमें रुकावट नहीं पड़ती, जिससे वह बड़े वेगसे नीचेकी ओरको बह जाता है और उसे जमीनमें प्रवेश करनेका अवकाश ही नहीं मिलता। फल यह होता है कि पहाड़ोंकी मट्टी घुलकर पानीके साथ बह जाती है, जिससे कुछ वर्षों बाद चट्टानें बिलकुल नंगी हो जाती हैं। और तब उस पर घास आदि जमने नहीं पाती। यह पानी पर्वतको ही नुकसान नहीं पहुँचाता, वरन मानव प्राणियोंको भी असह्य दुःख देता है। पर्वतों परसे वर्षाका पानी बड़े वेगसे नीचे उतरता है, जिससे नदी नाले उग्र रूप धारण कर लेते हैं। यही पानी तब गाँव, पुल, खेत आदिको नष्ट करता हुआ समुद्रमें जा मिलता है। इससे हर-साल लाखों रुपयोंका नुकसान होता है और हजारों प्राणी डूबकर मर जाते हैं। पानीके बहावके साथ

* ठंडे होनेमें कुवाहकता या सुवाहकताका ही प्रभाव नहीं पड़ता; ताप विसर्जन शक्ति Radiating power का भी प्रभाव पड़ता है। अच्छे परावर्तक खराब विसर्जक होते हैं और खराब परावर्तक अच्छे विसर्जक। धातु भी बुरे विसर्जक होते हैं; अतएव देरमें ठंडे होते हैं और वनस्पति आदिकी अपेक्षा उनपर ओस बहुत कम जमती है। ठंडे होने की गति विशेष तापपर भी निर्भर है। —सं०

पर्वत परसे कंकड़ पत्थर वगैरा बहकर पर्वतके नीचेके खेतोंमें फैलकर उन्हें निरुपयोगी बना देते हैं और खड़ी फसलको नष्ट कर डालता है। पानीके प्रबल वेगके कारण खेतोंकी महीन मट्टी बहकर चली जाती है; जिससे खेत खराब हो जाते हैं। यदि पानी किसी तालाबमें जाकर गिरता है, तो सारा तालाब रेत मट्टी कंकड़से भर जाता है, जिससे धीरे धीरे वह बहुत ही छिछले हो जाते हैं। नदियोंकी तलीमें भी मट्टी भर जाती है। फल यह होता है कि जिस जगह पहले छोटे छोटे जहाज आ जा सकते थे, वहाँ छोटी छोटी नौकाओंके लिए भी मार्ग नहीं रह जाता है।

पर्वतोंपर वनस्पति न होनेसे जो नुकसान होता है, उसपर संक्षेपमें विचार कर आये हैं। यदि पर्वत छोटे पौदोंसे आच्छादित हो, तो उक्त प्रकारकी हानियाँ मर्यादित हो जाती हैं। वनस्पति पानीके प्रवाहकी गतिमें रुकावट नहीं डालती, वरन वेग कम हो जानेसे कंकड़ पत्थरोंका लुढ़कना भी बंद हो जाता है। *

नदी नालोंके किनारेकी मट्टी बहुत ही उपजाऊ होती है। यदि इनके किनारोंपर पौदे न होंगे, तो तट परकी मट्टी बहावसे कटकर बह जायगी। वनस्पति लगानेसे तटकी मट्टीका कटना बंद हो सकता है।

खादकी उत्पत्ति

वनस्पतिके पत्तों और कोमल शाखाओंका खाद बहुत अच्छा होता है। बगीचोंके लिए यह खाद सर्वोत्तम माना गया है। वनस्पतिके पत्ते प्रतिवर्ष झड़ जाते हैं। कुछ वृक्षोंके पत्ते तो पतझड़के मौसममें सबके सब गिर पड़ते हैं और कुछ वृक्षोंके पत्ते बारहों महीने गिरते रहते हैं। जिन वृक्षोंके पत्ते पतझड़में गिरते हैं उनको 'गलितपत्र' ( Desiduous ) और जिनके पत्ते धीरे धीरे रहते हैं उन्हें 'सदा-पत्री' ( evergreen ) नाम दिया गया है।

प्रतिवर्ष प्रत्येक वृक्षसे कई मन पत्ते और फल जमीन पर गिरते हैं। यदि मान लिया जाय कि एक एकड़ जमीन पर १५ वृक्ष हैं और प्रत्येक वृक्षसे २०० पौंड पत्ते फल फूल आदि गिरते हैं। तो एक एकड़ जमीन पर प्रतिवर्ष ३२०० पौंड पत्ते आदि गिरेंगे।

पत्ते, फल आदिके सड़नेसे बना हुआ खाद उत्तम प्रकारका माना जाता है। खनिज खादोंकी अपेक्षा जैव या वानस्पतिक खाद विशेष लाभदायक होता है। इसके अलावा वृक्षके पत्तोंमें पोटाश और सोडाका क्षार अधिक परिमाणमें रहता है। यह क्षार फसलके लिए अत्यन्त आवश्यक है। पत्तोंमें पोटाशका क्षार इतना अधिक होता है कि पत्तोंको जलाकर पोटाश तैयार किया जाता है। वृक्षके काष्ठमें खादका अंश नहीं रहता। न काष्ठ जलदी सड़ता ही है। लकड़ी जलानेसे बहुत कम राख बनती है। मुख्य खाद पत्तोंसे ही बनता है और वह बहुत होते हैं।

जिस मौसममें खादकी ज़रूरत होती है, उसी मौसममें पत्ते भी गिरते हैं। खरीफ और रबीकी फसलें माघ फालगुन तक निकल जाती हैं, और तब दूसरे सालकी फसलोंके लिए जुताई शुरू की जाती है। इसी मौसममें पत्ते गिरते भी हैं। भारतवर्षमें पत्तोंका उपयोग बहुत कम किया जाता है। घास आदि सड़ कर भी जमीनको खाद देते हैं; परन्तु उससे उतना लाभ नहीं होता।

बड़े वृक्षोंकी जड़ें जमीनमें गहरी जाती हैं। अतएव वह पोषक द्रव्यको जमीनमेंसे खींचकर पत्तों तक पहुँचा देती हैं। यही पत्ते पुनः जमीन पर गिरकर उसको उपजाऊ बना देते हैं। एवं मिट्टीकी उत्पत्ति कर उसका संचय बढ़ाते जाते हैं। जिस पर्वत पर कम मिट्टी होती है, उस पर सबसे पहले घास आदि कम ऊंची बढ़नेवाली

---

* फ्रांसमें होन नदीकी बाढ़से बहुत नुकसान होता रहा है। परन्तु पर्वत पर वनस्पति लगानेसे कम खर्चमें इष्ट सिद्ध हो गया है। अब बाढ़से बहुत कम नुकसान होता है।

वनस्पति लगाई जानी चाहिये, जिससे वर्षा वायु और उष्णताके व्यापारसे चट्टानोंसे जो मट्टी बनती है, उसे उक्त प्रकारकी वनस्पति अपनी जड़ोंसे बाँध रखेगी—बहकर जाने न देगी। वनस्पतिकी जड़ें भी चट्टानोंका चूर्ण करनेमें मदद पहुँचाती हैं। इस प्रकार धीरे धीरे मट्टीका संचय बढ़ता जाता है, जिससे वह बड़े वृक्ष लगाने योग्य हो जाती है। और तब धीरे धीरे पहाड़ परकी जमीन खेती करने योग्य हो जाती है।

हवाकी शुद्धि

हवा शुद्ध करनेमें भी वनस्पतिसे बहुत सहायता मिलती है। वातावरणमें मुख्यतः ओषजन और नत्रजन निश्चित परिमाणमें मिले रहते हैं। नत्रजन निरुपयोगी वायु है। ओषजन वायु ही प्राणियोंके लिए उपयोगी है। यह गंदगीका नाशक है। यह रासायनिक रीतिसे गंदगीके नत्रजनीय द्रव्योंसे मिलकर उनका ओषिद बना डालता है, जिससे फिर किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचती।

अक्सर लोग कहते हैं कि कुओंकी अपेक्षा नदी नालोंका पानी पीनेके लिए अच्छा होता है। और यह बात सच भी है। कुएंके पानीमें आंगारक-द्रव्य मिले रहते हैं। काफी ओषजन न मिलनेके कारण वह शुद्ध नहीं हो पाता। क्योंकि कुएंका पानी स्तब्ध रहता है और उसका बहुत कम भाग ओषजनसे संलग्न हो पाता है। फल यह होता है कि केवल पृष्ठ भाग परका पानी ही शुद्ध हो पाता है। शेष पानी अशुद्ध ही बना रहता है। नदी नालोंके पानीका बहुत बड़ा भाग हवासे संलग्न होता रहता है; जिससे पानी शुद्ध हो जाता है। इसके अलावा कुएंकी हवा बंद रहनेसे उसमें ओषजनका परिमाण भी कम रहता है। परन्तु नदी नालों परकी वायु-खुली रहती है, अतएव उसमें इस वायुका परिमाण बहुत अधिक रहता है।

ओषजन वायु प्राणियोंके शरीरका रक्त भी शुद्ध करती है। प्रत्येक बार श्वासके साथ ओषजन वायु शरीरमें प्रवेश करती है। फेफड़ेमें पहुँचकर वह हृदयके अशुद्ध रक्तको शुद्ध करती है। ओषजनके संयोगसे अशुद्ध रक्तमेंका कर्बन कार्बोनिक एसिड बन जाता है। यह वायु तब उच्छ्वास द्वारा शरीरके बाहर फेंक दी जाती है। यह क्रिया प्रत्येक श्वासोच्छ्वासके वक्त जारी रहती है। अतएव श्वासोच्छ्वासके लिए शुद्ध हवाकी अत्यन्त आवश्यकता है। संसारमें असंख्य प्राणी हैं, जो प्रतिक्षण कार्बोनिक एसिड वातावरण में मिलाते रहते हैं। वातावरणमें इस वायुके परिमाणका बढ़ जाना हानिकारक है। कार्बोनिक एसिड गैसका परिमाण प्रतिशत २५ होते ही संसार में एक भी प्राणी जिन्दा न रह सकेगा।

शुद्ध हवामें ओषजन वायुका परिमाण अधिक होना चाहिये और कार्बोनिक एसिड वायुका कम। किसी गत परिच्छेदमें हम लिख आये हैं कि वनस्पति कार्बोनिक एसिड गैस ग्रहण करती और ओषजन छोड़ती रहती हैं। वह यह काम सूर्यके प्रकाशकी सहायतासे ही करती हैं। अतएव वातावरणमें ओषजन और कार्बोनिक एसिड गैस का परिमाण घट बढ़ नहीं पाता। यह क्रिया दिन को ही होती रहती है। रातको वनस्पति वातावरणमेंसे कुछ ओषजन वायु ग्रहण कर कर्बन छोड़ती है। यही कारण है कि रातको झाड़के नीचेकी और आस पासकी वायु अशुद्ध रहती है। इसीसे रातको झाड़के नीचे सोना हानिकारक है।

वनस्पति एक और रीतिसे मानव प्राणीका हितसाधन करती है। जहाँ मनुष्य रहते हैं वहाँ गंदगी भी ज्यादा फैली रहती है। वर्षाके पानीके साथ यह गंदगी कुओं और तालाबोंमें पहुँचकर उनके पानीको खराब कर डालती है। परन्तु वनस्पति लगा देनेसे यह भय नहीं रहता। क्योंकि वनस्पति इन हानिकारक पदार्थोंको अपने निजके पोषणके लिए सोख लेती हैं; जिससे जमीनके अन्दर घुसा हुआ पानी शुद्ध हो जाता है।

ऊपरके विवेचनसे पाठक यह बात भली भाँति समझ गये होंगे कि वनस्पति और प्राणीमें

चोलीदामनका सा सम्बंध है। प्राणियों द्वारा फेंके हुए मल मूत्र, कार्बोनिक एसिड आदि पदार्थ वनस्पतिका भोजन है, एवं वनस्पति द्वारा फेंके हुए फल, फूल, ओषजन आदि पदार्थ प्राणियों के खाद्य पदार्थ हैं। सारांशमें यह नहीं बताया जा सकता कि वनस्पति प्राणियोंके हितके लिए बनाई गई है या प्राणी वनस्पति के हितके लिए बनाये गये हैं।

रुक्ष वायु प्राणियोंके लिए एकदम हानिकारक है। रुक्ष हवा वाले स्थानोंमें वनस्पति भी नहीं बढ़ सकती। ऐसी हवाको हितकारक बनानेके लिए वनस्पति ही एक उत्तम साधन है।

### वायुका प्रतिबंध

वनस्पतिसे वायुके मार्गमें भी रुकावट पहुँचती है। किसी तरी युत स्थान पर स्तब्ध हवाके होनेसे वाष्पीभवन कम होता है। क्योंकि जितनी तरी-की भाप बनेगी, वह जमीनके पृष्ठभागकी वायुमें मिलकर वहीं बनी रहेगी। जिससे धीरे धीरे आसपासकी वायु अधिकाधिक आर्द्र होती जायगी और तब वाष्पीभवनकी शक्ति भी क्रम क्रमसे घट जायगी। यदि इस भूभाग पर शुष्क हवा बहती रहेगी तो वाष्पीभवन जोरोंसे होने लगेगा, जिससे जमीन सूख जायगी, यही नियम तालाबोंको भी लागू होता है। जिस तालाब परसे रुक्ष हवा हमेशा बहती रहती है वह जल्दी सूख जाता है। तालाबोंके किनारे झाड़ लगानेसे वाष्पीभवन घटाया जा सकता है।

### उद्योग धंधोंकी वृद्धि

वृक्षोंसे अनेक व्यवहारोपयोगी पदार्थ प्राप्त होते हैं। इमारती लकड़ी, नाव, जहाज़ आदिके लिए काष्ठ, लाख, कई प्रकारके रंग आदि अनेक पदार्थ वनस्पतिसे ही प्राप्त होते हैं। पत्थरका कोयला भी वनस्पतिकी कृपासे ही प्राप्त होता है। तेल, ज्वाला ग्राही पदार्थ, फलमूल, औषध आदि वनस्पतिसे ही मिलते हैं।

### जंगल संरक्षण

अति प्राचीनकालमें जंगल रक्षित रखे जाते थे या नहीं और उस जमानेमें वनस्पतिकी समृद्धि कैसी थी आदि बातों पर ही इस परिच्छेदमें विचार किया जायगा।

### भूगर्भशास्त्र काल

भूगर्भशास्त्र वेत्ताओंका मत है कि प्रारंभिक अवस्थामें पृथ्वी पर सिवा वनस्पतिके और कुछ नहीं था। प्राणियोंका कहीं पता न था। लाखों वर्ष पूर्व भारतवर्ष भिन्न भिन्न प्रकारकी वनस्पतिसे परिपूर्ण था। इसके प्रमाण स्वरूप भारतमें कई कोयलेकी खानें पाई जाती हैं और संभव है कि और भी पायी जायँ।

इस कालके बाद, हज़ारों वर्षोंके परिवर्तनके अनन्तर पृथ्वीने आधुनिक रूप ग्रहण किया। इसी जमानेमें भारतवर्षको भी वर्तमान रूप प्राप्त हुआ। इस जमानेकी अवस्था निश्चय रूपसे जाननेके साधन उपलब्ध नहीं। तथापि यहाँकी जलवायुके सम्बन्धमें अनुमान द्वारा कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

वनस्पतिकी वृद्धिके लिए निश्चित सीमासे कुछ अधिक उष्णता और तरीकी जरूरत होती है। पहले लिख आये हैं कि हिमालयके सिवा भारतके अन्य प्रान्तोंमें उष्णता अधिक है। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि भारतवर्षमें उष्णताकी अनुकूलता है। अब तरीके सम्बन्धमें विचार करेंगे। दक्षिण भारतका प्रायद्वीप समुद्रसे घिरा हुआ है। अतएव उसका मध्यभाग छोड़कर शेष भागमें खूब पानी बरसता है। एवं साल भर तक हवामें खूब तरी रहती है। भारतवर्षके अनावृष्टिके प्रदेशोंको छोड़-कर शेष प्रदेशोंकी वायुमें काफी तरी मौजूद रहती है। अनावृष्टिके प्रदेशमें भी नदी तटके भूभागकी वायुमें काफी तरी रहती है। सारांशमें, भारतवर्ष-का थोड़ा सा भाग छोड़कर शेष प्रान्तोंमें आर्द्रताकी न्यूनता नहीं है।

इस प्रकार सारे देशमें वनस्पतिकी उत्पत्ति और वृद्धिके लिए अनुकूलता होनेसे अवश्य ही वनस्पतिकी खूब ही वृद्धि हुई होगी। फिर भी इतना अवश्य ही माना जा सकता है कि आनुकूल्य के न्यूनाधिक्यके अनुसार ही वनस्पतिकी समृद्धि हुई होगी।

### वेद-काल

प्रारंभमें जंगली लोगोंकी ही बसती रही होगी। इन लोगोंसे जंगलोंके नाशकी आशा नहीं की जा सकती; कारण कि वह खेती करना शायद ही जानते हों और न वह एक स्थान पर ही रहते थे। अतएव उनसे जंगलोंका उतना नाश नहीं होता था। कृषिके लिए जितना जंगल साफ किया जाता था, वह उन लोगोंके अन्यत्र चले जाते ही पुनः उग आता था।

सभ्यताके अनुयायी मानव और उनके पालतू जानवर ही जंगलोंके दिली दुश्मन हैं। वह जहाँ जहाँ जाते हैं जंगलोंको नष्ट कर डालते हैं। स्थायी स्थान पर निवास कर कृषि कर्ममें रत रहना ही सभ्यताका चिन्ह माना जाता है। कृषिके लिए जंगल काटकर जमीन तैयार की जाती है। इसके अलावा इमारतोंके लिए भी तो लकड़ीकी जरूरत होती है। पालतू जानवरोंकी उपजीविकाके लिए भी जंगलोंका नाश किया जाता है।

हमारा अनुमान है कि जबसे आर्य लोग भारतमें आकर बसे हैं तभीसे जंगलोंका नाश होना प्रारंभ हुआ है। यह ही अपने साथ कृषि पद्धति लाये। इन्होंने सबसे पहले नदी तटवर्ती उपजाऊ जमीनपर खेती करना प्रारंभ किया। तथापि इनकी संख्या कम होनेके कारण जंगलोंका ज्यादा नाश नहीं हो पाया। इस जमानेमें आर्य लोग उत्तर भारतमें ही रहते थे। अतएव दक्षिण भारतके जंगल ज्योंके त्यों बने रहे।

आधुनिक विद्वानों और अन्वेषकोंके मतानुसार दश हज़ार वर्षसे इधरका काल ही 'वेदकाल' माना जाता है। वेदोंमें अरण्योंका वर्णन तो नहीं पाया जाता है, परन्तु बनोंमें के आश्रमों और राक्षस आदिके बाहुल्य से अनुमान किया जा सकता है कि उस जमानेमें सारा देश अरण्यमय था।

### पौराणिक काल

गत दो हज़ार वर्षोंसे उधरका काल ही पौराणिक काल कहाता है। इस कालमें आर्योंने खूब तरक्की कर ली थी। अनेक राज्य स्थापित हो गये थे। इसी जमानेमें आर्योंने दक्षिण भारतमें प्रवेश किया। कई बड़े बड़े नगर बस गये और आवागमनके सुभीतेके लिए बहुत सा जंगल काट डाला गया। फिर भी जंगल कुछ कम न थे। रामायण और महाभारतमें जंगलोंके वर्णन पाये जाते हैं। दक्षिण भारतका अधिकाँश दंडकारण्यसे व्याप्त था। आर्योंके संसर्गसे अनार्योंने भी खूब तरक्की कर ली थी। और उन्होंने भी अनेक राज्य स्थापित कर लिये थे। महाभारतके जमानेमें आर्योंने और भी तरक्की कर ली थी; और बहुत सा जंगल साफ कर डाला था। दंडकारण्यमें भी विराटने राज्य स्थापित कर लिया था तथापि बचे हुए जंगलका विस्तार भी कुछ कम न रहा था।

### ऐतिहासिक काल

दो हज़ार वर्षसे इधरका जमाना ही ऐतिहासिक-काल माना जाता है। इसे तीन भागोंमें बाँट सकते हैं। यह तीन भाग हैं—१ हिन्दू राजाओंका काल ( सन् १००० तक ). २ मुसलमान राजाओंका काल ( सन् १७५७ की प्लासीकी लड़ाई तक ) और ३ अंगरेजोंका शासन काल। इस कालमें भी जंगलोंका उत्तरोत्तर नाश ही होता गया। इधर सौ वर्षसे सरकारका ध्यान जंगलकी रक्षाकी ओर आकर्षित हुआ है।

यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दूराजाओंके जमानेमें जंगलोंकी व्याप्ति कितनी थी। ईसाकी चौथी सदीमें फाहियान नामक एक चीनी यात्री भारतवर्षमें आया था। वह अपने प्रवास वर्णनमें लिखता है कि भारतकी आबोहवा समशीतोष्ण है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि इससे

दो सदी पहलेसे लगाकर दो सदी बाद तक जंगलों-की खूब समृद्धि थी।

मुसलमानोंके शासनकालमें जंगल सुरक्षित रखे जाते थे और किलोंकी रक्षाके लिए पहाड़ोंपर उनके आस पास जंगल रखे जाते थे। उनकी रक्षा-के लिए कड़े नियम बनाये गये थे।

झासीकी लड़ाईके बाद अंगरेजी शासन प्रारंभ हुआ। इसी समय कई बड़े बड़े जंगल नष्ट कर दिये गये। जमीनकी लगानकी आमदनीके लोभसे जंगल काट कर जमीन जोतनेके लिए तैयार की जाने लगी। उस जमानेमें जंगल रखना कृषिके लिए हानिकारक माना जाता था। और यही कारण है कि पहाड़ों परकी जमीन भी खेतीके लिए देदी गई। उसके अलावा रेल, सड़क आदिके लिए जंगल काटे गये। इस प्रकार अधिकांश जंगलोंके नष्ट हो जाने पर सरकारकी आँखें खुलीं और उसे जंगल सुरक्षित रखनेकी आवश्यकता भासित होने लगी।

माना कि जंगलोंसे लोगोंको कुछ तकलीफें होती हैं, फिर भी लाभ कम नहीं होता। लाभको देखकर कहना पड़ता है कि कष्ट सहकर भी लोगों-को जंगलकी रक्षा करनेमें सरकारकी मदद करना चाहिये।

भारतवर्षमें चार प्रकारके जंगल पाये जाते हैं— १ सदापत्री, २ गलितपत्री, ३ रूक्ष और ४ निर्जल।

उत्तर भारतके विस्तीर्ण मैदानके जंगल प्रथम वर्गके हैं। संयुक्त प्रान्त, विहार और बंगालमें इतनी अधिक जमीन जोत ली गई है कि वहाँ जंगलोंका अभाव सा है।

सदापत्री जंगल—इन जंगलोंके वृक्षोंके पत्ते बारहों महीने धीरे धीरे गिरा करते हैं। ऐसे वृक्ष पूर्व और पश्चिमी समुद्रतट पर पाये जाते हैं। पश्चिमी तटके अति वृष्टिके भागमें साग, शीशम आदि मूल्यवान झाड़ोंके सिवा ताड़ बाँस आदि भी पाये जाते हैं। पूर्वी समुद्र तट पर पानी कुछ कम बर-सता है। इसलिए यहाँके झाड़ कुछ छोटे होते हैं। इसी जंगलमें आबनूस होता है।

काश्मीर आदि हिमालयके जंगलोंमें ओक, देवदार, साल आदिके जंगल हैं।

निर्जल जंगल—सिंध, गुजरात, कच्छ, काठिया-वाड़, राजपूताना, दक्षिण पंजाब, पूर्व मैसूर आदि प्रान्तोंमें पानी कम बरसता है। इसलिए यहाँके जंगलोंमें उत्तम वर्गके झाड़ नहीं पाये जाते।

गलित पत्र—शेष अधिकाँश वृष्टि वाले प्रदेशोंके जंगल इस वर्गके हैं। यह जंगल बड़े महत्वके हैं। व्यापारी, सरकार, किसान, सभीको इन जंगलोंसे बहुत फायदा पहुँचता है। इनमें साग, चंदन, रक्त चन्दन, अंजन, हर्ड, आँवला आदि अधिक होते हैं।

वृक्ष कहां लगाये जायँ?

वनस्पतिसे कितना फायदा पहुँचता है, यह बात ऊपर लिख आये हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्ति-का यह पवित्र कर्तव्य है कि वनस्पतिकी वृद्धिके लिए अहर्निश यत्न करे। आधुनिक कालमें जन-संख्याकी वृद्धिके कारण बड़े बड़े जंगल रख छोड़ना असंभव सा है; कारण कि बढ़ती हुई जनसंख्या-के पोषणके लिए अधिक नाजकी जरूरत है। इस उद्देशकी पूर्तिके लिए अधिक भूमि पर खेती करना अनिवार्य्य है। इसलिए उसी जमीन पर वृक्ष लगाने चाहियें जो खेतीके योग्य न हो। नीचे लिखे हुए स्थानोंपर वृक्ष अवश्य ही लगाने चाहियें।

पहाड़ पर—सबसे पहले, पहाड़, पहाड़ी या ऊंचे टीलोंपर वृक्ष लगाये जाने चाहिये। पहाड़ों पर वृक्ष लगानेसे जो लाभ होते हैं, उनपर गत परिच्छेदोंमें विचार कर आये हैं। पहाड़ी जमीन ढालू और पथरीली होनेसे उसपर खेती नहीं की जा सकती। इसलिए इस जमीनपर वृक्ष लगानेसे लाभ ही है।

नदी नाले, नहर, तालाब आदि के तट—इन स्थानों पर भी झाड़ लगाने चाहियें। यहाँ वृक्ष लगानेसे प्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि जड़ें जालकी तरह फैलकर किनारेकी मट्टीको मजबूत पकड़ लेती हैं,

जिससे मट्टी बह नहीं सकती। इन स्थानोंपर मूसला जड़ वाले झाड़ कदापि न लगाये जायँ।

खेतोंके आस पास—खेतोंके आस पास झाड़ लगानेसे फायदा इतना ही होता है कि पत्ते आदि-का खाद मिलता है; दूसरा लाभ यह है कि झाड़ोंके कारण ओस भी ज्यादा पड़ती है; किसान और पशुओंको वृक्षकी छायामें आश्रय भी मिलता है। इन वृक्षोंसे इंधन भी मिलता रहेगा।

लोगोंकी धारणा है कि खेतोंके पास झाड़ लगानेसे पक्षियोंसे फसलको नुकसान पहुँचता है। परन्तु ऐसा सोचना निराधार है, कारण कि खेतोंपर झुंडके झुंड पक्षी आकर बैठते हैं। यह पक्षी दूसरे स्थानोंसे एक खास मौसममें ही आते हैं। और शीघ्र ही दूसरी जगह चले जाते हैं। यह पक्षी किसी स्थानपर स्थायी रूपसे नहीं रहते। कुछ पक्षी वृक्षोंपर स्थायी रूपसे वस तो जाते हैं, परन्तु उनसे फसलको उतनी हानि नहीं पहुँचती। क्योंकि जब तक कीड़े मकोड़े मिलते रहेंगे, यह पक्षी फसलपर कदापि हमला नहीं करेंगे। यहां यह बात जरूर ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि किसी वस्तुसे नुकसान थोड़ा और फायदा ज्यादा होता हो तो उसे लाभदायक ही समझना चाहिये। अकसर देखा जाता है कि खेतकी मेंड़पर उगे हुए वृक्षोंकी जड़ें जमीनमें फैलकर उसमेंका पोषक द्रव्य ग्रहण कर लेती हैं जिससे फसल मारी जाती है। इस हानिसे बचनेके लिए खेतोंकी मेड़पर वही झाड़ बोये जाने चाहिये जिनकी जड़ें जमीनमें बहुत गहरी जाती हों।

सड़क, रास्ते और रेलकी सड़कके किनारे—यहाँ झाड़ लगानेसे रास्ता चलने वालोंको छाया मिलती रहेगी और लकड़ी इंधन वगैरा भी मिल सकेगा।

शहरों और गांवोंमें—यहाँ झाड़ लगानेसे बड़ा भारी फायदा यह होगा कि हवा शुद्ध रहेगी। इसलिए शहरोंमें जितने ही ज़्यादा झाड़ लगाये जायँ, उतना ही अच्छा है। हमारे हेल्थ आफीसर (Health-officer) अनेक खर्चीली स्कीमें बनाकर लाखों रुपया फूँक देते हैं; परन्तु इस सुलभ उपायकी ओर वह फूटी आँखसे भी नहीं देखते। झाड़ लगानेसे शहरों और गाँवोंकी शोभा बढ़ जायगी। कृत्रिम और प्राकृतिक शोभाके संयोगसे मनको अपूर्व आनंद मिलता है।

हर प्रकारकी परती जमीनमें—जो जमीन कृषि योग्य न हो वहाँ झाड़ लगानेसे उसका उपयोग हो जायगा।

—शंकर राव जोशी

---

## प्राचीन सर्पजन विद्या

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार ]

४—सांपोंके काटनेकी मीमांसा

**गौतम उवाच—**

कीदृशं सर्पदष्टस्य सर्पिण्याः कादृशं भवेत्।
कुमार दष्टः स्यात् कीदृक् सूतिकादंशितस्य च ॥ १ ॥
रूपं नपुंसके नेह व्यंतरेण च कीदृशम्।
एतदाख्या हिये सर्वं मेभिर्दष्टस्य लक्षणम् ॥ २ ॥

गौतम पूछने लगे—हे कश्यप! सांपका काटा किस प्रकारका होता है, सांपिनीका कैसा होता है, सांपके बच्चेका काटा कैसा होता है, बच्चा जनने वाली सांपिनका काटा कैसा होता है, नपुंसक सांपका काटा और दोगले सांपका काटा किस प्रकारका होता है; यह सब भगवन् आप बतलाइये।

नागोंका रूप और लक्षण

**कश्यप उवाच—**

अतः परं प्रवक्ष्यामि नागानां रूप लक्षणम्।
सर्पदष्टस्य च तथा समासात् द्विजपुंगव ! ॥ ३ ॥

कश्यप बोले—इसके आगे मैं सांपोंके रूप और लक्षणका वर्णन करूंगा और सांपोंके काटनेके विषयमें भी पूरी तरहसे कहूंगा।

नर, मादा, कन्या, कुमार और वाल, वृद्ध, युवाके काटेके लक्षण

अथ सर्पेण दष्टस्य ऊर्ध्वं दृष्टिः प्रजापते।
सर्पी दष्टस्य च तथा अधो दृष्टि प्रजापते ॥ ४ ॥

कन्यादष्टस्य वामास्याद् दृष्टिर्द्विज वरोत्तम।
कुमारेणापिदष्टस्य दक्षिणा एव जायते ॥ ५ ॥
गर्भिण्या वाथ दष्टस्य तथा स्वेदश्च जायते।
रोमांचः सूतिकायास्तु वेपथुश्चापि जायते ॥ ६ ॥
नपुंसकेन दष्टस्य अंगमर्दः प्रजायते।

नर सांपके काटनेसे आंखें ऊपरको चढ़ जाती हैं। सांपनीके काटनेसे आंखें नीचेको गिरती हैं। सांपकी बच्ची जिसने कभी नर सर्पका भोग न किया हो उसके काटनेसे आंख बाईं तरफ़ फिर जाती है और इसी प्रकार जिस सांपने अभी संभोग न किया हो ऐसे कुमार सर्पके काटने पर आंख दायीं तरफ़को घूम जाती हैं। ग्याभन सांपिन-के काटनेसे स्वेद या पसीना अधिक छूटता है। बच्चों वाली सांपिनके काटने पर रोमांच और कपकपी बहुत उठती है। नपुंसक सांपके काटनेपर अंगड़ाई अधिक होती है।

पन्नग्यानभवो रात्रौ दिवा सर्पो विषाधिकः ॥ ७ ॥
नपुंसकस्तु संध्यायां कश्यपेन तु भाषितम्।

सांपनियोंका रातके समय विष अधिक प्रबल होता है और दिनके समय नर सांपोंका विष अधिक बलवान् होता है; नपुंसक सांपोंका संध्या समयमें विष प्रबल होता है—कश्यपने इसी प्रकारका उप-देश किया है।

गौतम उवाच—

सांपोंके प्रकार

अंधकारे तु दष्टो य उदके गहने वने ॥ ८ ॥
सुप्तो वा चेत्प्रमत्तो वा यदि सर्पं न पश्यति।
दष्टरूपाण्यजानन् वै कथं वैद्य चिकित्सितम् ॥ ९ ॥

यदि सांप अंधेरेमें काट जाय, पानीमें काट जाय, या घने बनमें काटले या पुरुष सो रहा हो, मद्यपिये नशेमें पड़ा हो और सांप काट जाय ऐसी दशामें सांपको आदमी न देख सके और न बतला सके कि किस प्रकारके सांपने काटा है तब किस प्रकार वैद्य चिकित्सा करे।

कश्यप उवाच—

चतुर्विधा इह प्रोक्ता पन्नगास्तु महात्मना।
दर्वीकरा मण्डलिनो राजिलाव्यंतरास्तथा ॥ १० ॥
दर्वीकरा वातविषाः मण्डलाः पैत्तिकाः स्मृताः।
श्लेष्मला राजिला ज्ञेया व्यंतरा सान्निपातिकाः ॥ ११ ॥

महात्मा कश्यपने चार प्रकारके सांप बतलाये हैं—(१) दर्वीकर, जिनके फण कलछीके समान हों, (२) दूसरे मण्डलीक, जिनके शरीर पर गोल चिट-कने होते हैं, (३) तीसरे राजिल जिनके शरीर पर लम्बी लम्बी धारियां होती हैं, (४) चौथे व्यंतर जिनकी देह पर सब प्रकारके रूप मिले जुले रूपमें दिखाई देते हैं।

दर्वीकर सांपोंके विष वातको उत्तेजित करते हैं, मंडलिक सांप पित्तको कुपित करते हैं राजिल सांप कफ़को कुपित करते हैं; व्यंतर सांप काटकर सान्निपातिक उपद्रवके कारण होते हैं; उनमें वात पित्त कफ़ तीनोंके उपद्रव प्रकट होते हैं।

रक्त परीक्षा

रक्तं परीक्षयेत् देषां सर्पाणां तु पृथक् पृथक्।
कृष्णं दर्वीकराणां तु जायते नाल्पमुल्बणम् ॥ १२ ॥
रक्तं घनं च बहुशः शोणितं मण्डली कृतम्।
पिच्छिलं राजिले स्वल्पं तद्वद् व्यंतरके तथा ॥ १३ ॥

इन सांपोंके काट लेने पर जख़मसे निकलने-वाले रक्तकी परीक्षा करे। दर्वीकर सांपोंके काटने-पर रुधिर काला हो जाता है और बहुत उबलता सा मालूम होता है। मण्डली सांपोंके काटने पर रुधिर और भी घना लाल होता है। राजिलके काटनेपर रुधिरमें फेन बहुत होता है। इसी प्रकार व्यंतरके काटने पर भी रुधिरमें बहुत फेन होता है।

सांपोंमें वर्ण भेद

सर्पा ज्ञेयास्तु चत्वारः पंचमो नोपलभ्यते।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव चतुर्थकः ॥ १४ ॥

वर्ण भेदसे भी सांप चार प्रकारके होते हैं पांचवां प्रकार नहीं होता। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यही चार प्रकार हैं।

ब्राह्मणे मधुरं दद्यात् तिक्तं दद्यात् तथोत्तरे।
वैश्ये कर्षफलं दद्यात् शूद्रे त्रिस्थूणमेव च ॥१५॥

ब्राह्मण सर्पको मधुर पदार्थ दे, क्षत्रियको कडुआ पदार्थ दे, वैश्यको कर्ष फल दे और शूद्रको त्रिकटुक दे।

भिन्न भिन्न वर्णोंके दंशोंमें भेद, उनकी चिकित्सा।

(१) ब्राह्मण सर्पकी चिकित्सा

ब्राह्मणेन तु दष्टस्य दाहो गात्रेषु जायते।
मूर्छा च प्रबला स्याद्वै नात्मानमभिजानते ॥१६॥
श्यामवर्णं मुखं च स्यान्मज्जास्तम्भश्च जायते।
तस्य कुर्यात् प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥१७॥
अश्वगन्धाप्यपामार्गः सिंदुवारं सुरामयम्।
एतत्सर्पिः समायुक्तं पाने नस्ये च दापयेत् ॥१८॥
एतेनैवोपचारेण सुखीभवति मानवः।

जब ब्राह्मण सांप मनुष्यको काट जावे तो देहमें दाह होने लगता है, मूर्छा प्रबल रूपमें आती है और मनुष्य अपने आपको भी भूल जाता है। मुख पर श्याम रंग आने लगता है, मज्जा तन्तु भी अकड़ जाती हैं। उसका उपाय यही करे कि अश्वगन्धा (असगन), अपामार्ग, सिंदुवार इनको कूटकर उसमें शराब मिला कर घीके संग पिलावे और उसीका नस्य दे। इसी उपचारसे मनुष्य चंगा हो जाता है।

(२) क्षत्रिय सर्पके लक्षण और चिकित्सा

क्षत्रियेण तु दष्टस्य कम्पो गात्रेषु जायते ॥१९॥
मूर्छा मोहस्तथा स्याद्वै नात्मानमभिवेत्ति सः।
जायते वेदना तस्य ऊर्ध्वं चैव निरीक्षते ॥२०॥
तस्य कुर्यात् प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम्।
अर्कमूलमपामार्गप्रियंगुमिन्द्रवारुणीम् ॥२१॥
एतत्सर्पिः समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत्।
एतेनैवोपचारेण सुखी भवति मानवः ॥२२॥

क्षत्रिय सांपके काटनेपर अंगोंमें कपकपी उत्पन्न होती है। मूर्छा आने लगती है; मनुष्य अपने आपको भूल जाता है। शरीरमें दर्द उठ खड़ा होता है; आंखें ऊपर चढ़ जाती हैं। उसका यही उपाय करे कि आककी जड़, अपामार्ग, प्रियंगु और इन्द्रवारुणीकी छाल इनको पीस कूटकर घीके साथ देवे। इसीको पिलावे और इसीका नस्य दे। इस उपचारसे मनुष्य सुखी हो जाता है।

(३) वैश्य सर्पके लक्षण और चिकित्सा

वैश्येनापि हि दष्टस्य शृणुरूपाणि यानि तु।
श्लेष्म प्रकोपो लाला च न चोद्वहति चेतनाम् ॥२३॥
मूर्छा च प्रबला यस्य आत्मानं नाभिनन्दति।
तस्य कुर्यात् प्रतीकारं येन सम्पद्यते सुखम् ॥२४॥
अश्वगन्धा सगोमूत्रा गृहधूमं सगुग्गुलम्।
शिरीषार्क पलाशेन श्वेताच गिरिकर्णिका ॥२५॥
गोमूत्रेण समायुक्तं पानं नस्यं च दापयेत्।
एष वैश्येन दष्टानामगदः परिकीर्तितः ॥२६॥

वैश्य सांपके काट लेनेपर मनुष्यके देहपर जो चिह्न प्रकट होते हैं वह सुनो। गलेमें कफ़का प्रकोप होता है। मुंहसे लार टपकती है, चेतनाका नाश हो जाता है। मूर्छा प्रबल हो जाती है। अपने जीमें बड़ा कष्ट अनुभव करता है। उसका उपाय यही करे कि असगन कूटकर उसमें घरके चूल्हेका कालस, गूगल, सिरस और आकके पत्ते और श्वेत गिरिकर्णिका मिलावे; इनको पीसकर जो मूत्रके साथ पिलादे और उसीका नस्य भी दे। वैश्य सांपके काटनेपर यही उत्तम औषध है।

(४) शूद्रसर्पके लक्षण और चिकित्सा

शूद्रेणापि हि दष्टस्य शृणु तत्वेन गौतम।
क्रुध्यते वेपते चैव ज्वरः शीतं च जायते ॥२७॥
अंगानि चुलचुलायंते शूद्र दष्टस्य लक्षणम्।
तत्रागदं प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते सुखम् ॥२८॥
पद्मं च लोध्रकं चैव क्षौद्रं पद्मस्य केसरम्।
मधूकसारं मधुच श्वेतांच गिरिकर्णिकाम् ॥२९॥
एतानि समभागानि पेषयेच्छीतवारिणा।
पान लेपांजनैर्नस्यैः सुखी भवति मानवः ॥३०॥

शूद्र सांप जब मनुष्यको काट ले तब जो चिह्न पैदा होते हैं, हे गौतम! उनको सुनो। मनुष्य उस समय क्रोध करता है, कांपता है; शरीरमें ज्वर चढ़ आता है, सर्दी लगती है, अंग कुड़कुड़ाया करते हैं—यही शूद्रके काटेके लक्षण हैं। इसकी भी औषध

कहता हूं, जिससे बड़ा आराम मिलता है। पद्म, लोध, शहद, पद्मका पुष्पपराग, महुएका अर्क, मुलैठी, सफेद गिरिकर्णिका, इनको समान लेकर ठण्डे पानीके साथ पीस ले। इसे ही पिलावे, इसीका अंजन लगावे, इसीको नाकसे सुंघावे। इसीसे मनुष्यको आराम होता है।

स्वभाव

पूर्वान्हे चरते विप्रो मध्यान्हे क्षत्रिय श्चरेत्।
अपरान्हे चरेद् वैश्यः शूद्रः संध्या चरो भवेत् ॥३१॥

दिनके पूर्व भागमें ब्राह्मण सांप बाहर निकलता है। मध्यान्ह कालमें क्षत्रिय सांप बिचरता है। अपरान्ह या तीसरे पहर वैश्य सांप बिचरता है। शूद्र सांप सायंकालके समय विचरता है।

आहार

आहारो वायु पुष्पाणि ब्राह्मणानां विदुर्बुधाः।
मूषिका क्षत्रियाणां च आहारो द्विज सत्तम॥
वैश्या मण्डूक भक्षाश्च शूद्राः सर्वाशिनस्तथा ॥३२॥

ब्राह्मण सांप वायुका सेवन और वनस्पतियोंके पुष्पोंका आहार करता है, क्षत्रिय सांपोंका आहार मूसा है, वैश्य सांप मेंडक खाता है और शूद्र सब कुछ खा लेता है।

काटनेकी प्रकृति

अग्रन्तो दशते विप्रः क्षत्रियो दक्षिणेन तु।
वाम पार्श्वे सदा वैश्यः पश्चाद्वै शूद्र आदशेत् ॥३३॥

ब्राह्मण सांप आगेसे काटता है, क्षत्रिय सांप बायीं दाढ़से काटता है, वैश्य सांप बायीं तरफ़से काटता है; शूद्र पिछली दाढ़से काटता है।

मद कालेतु सम्प्राप्ते पीड्यमाना महाविषाः।
अवेलायां दशंते वै मैथुनार्ता भुजंगमाः ॥३४॥

विषैले सांप जिस मौसममें मदमत्त होते हैं, वह कामसे पीड़ित होकर थोड़ा कष्ट पाकर भी अपने उचित समयके अतिरिक्त अन्य समयमें भी काट लेते हैं।

सार्पोंकी गन्ध

पुष्पगंधाः स्मृता विप्राः क्षत्रियाश्चन्दनावहाः।
वैश्याश्च घृतगंधाः वै शूद्राः स्युर्मत्स्यगंधिनः ॥३५॥

ब्राह्मण सांपोंके शरीर से फूलोंकी सी सुगन्ध आती है, क्षत्रिय सांपोंके शरीरसे चन्दनकी गन्ध आती है; वैश्य सांपोंकी देहसे घीकी गंध आती है और शूद्र सांपोंके शरीर से मछलीकी गन्ध आती है।

आवास

वासं तेषां प्रवक्ष्यामि यथा वदनुपूर्वशः।
वापी कूप तड़ागेषु गिरि प्रस्रवणेषु च ॥३६॥
वसन्ति ब्राह्मणाः सर्पा ग्रामद्वारे चतुष्पथे।

अब इनका भिन्न भिन्न स्थानोंमें निवास होता है, उसका भी हाल बतलाता हूं।

बावड़ी, कुआ, जलाशय, पर्वतके झरने आदि स्थानोंमें ग्रामके द्वार और चौराहों पर ब्राह्मण सांप रहते हैं।

आरामेषु पवित्रेषु शुचिष्वायतनेषु च।
वसन्ति क्षत्रिया नित्यं तोरणेषु सरेषुच ॥३७॥

उपवन, बाग बगीचे आदि पवित्र स्थानोंमें तोरण और तालाबोंमें क्षत्रिय सांप रहते हैं।

श्मशाने भस्मशालासु पलालेषु तटेषु च।
गोष्ठेषु पथि वृक्षेषु विप्रवैश्याः वसन्ति च ॥३८॥

श्मशान, भस्मके ढेर, मकान, घास फूस, नदी तट, गौशाला, मार्ग और वृक्षों पर वैश्य सर्प रहते हैं।

अविविक्तेषु स्थानेषु निर्जनेषु वनेषुच।
शून्या गार श्मशाने च शूद्रा विप्र वसन्ति च ॥३९॥

हे विप्र! शूद्र सांप एकान्त स्थानोंमें निर्जन वनोंमें और सूने घरोंमें और श्मशानोंमें भी रहते हैं।

रूप-वर्ण भेद।

श्वेताश्च कपिलाश्चैव ये सर्पास्त्वनलप्रभाः।
मनस्विनः सात्विकाश्च ब्राह्मणास्ते बुधैः स्मृताः ॥४०॥

श्वेत पीले और अग्नि शिखाके समान लाल रंगके मनस्वी, धीर, सात्विक प्रकृतिके सर्प ब्राह्मण कहाते हैं।

रक्तवर्णाः सुवर्णाभाः प्रवालमणि सन्निभाः।
सूर्यप्रभास्तथाविप्र! क्षत्रियास्तेभुजंगमाः ॥४१॥

लाल रंगके सोनेकेसे कञ्चनिया रंगके मूंगा मणिके समान रंगके, या सूर्यकी सी चमकती पीत आभावाले सांप हे विप्र! क्षत्रिय होते हैं।

नाना विचित्र राजीभिरतसीवर्ण सन्निभाः।
बाण पुष्प सवर्णाभाः वैश्यास्ते वै भुजंगमाः ॥४२॥

वैश्य सांपके देहपर नाना प्रकारकी धारियां होती हैं। उनका रंग भी अलसीके फूलका सा श्याम और बाणके फूलके समान कान्तिवाला होता है।

काकोदर निभाः केचिद् येच अञ्जन सन्निभाः।
काक वर्णा धूम्र वर्णास्ते शूद्रा परिकीर्तितः ॥४३॥

कौवेके पेटके समान काले और कोई अंजनके समान; काले कौवे और धूएंके रंगके शूद्र कहाते हैं।

दंष्ट्रा मीमांसा

यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशमंगुल मन्तरम्।
बालदष्टं विजानीयाद् कश्यपस्य वचो यथा ॥४४॥

सांपके काट लेने पर यदि एक अंगुल गहरा घाव हो जाय तो उसे बालकका काटा जाने, ऐसा ही कश्यपका वचन है।

यस्य सर्पेण दष्टस्य दंशद्व्यंगुलमन्तरम्।
यौवनस्येन दष्टस्य एतद् भवति लक्षणम् ॥४५॥

सांपके काट लेने पर यदि दो अंगुल गहरा घाव हो जाय तो समझ ले कि जवानी पर चढ़े हुए सांपने यह काटा है।

यस्य सर्पेण दष्टस्य सार्धं द्व्यंगुलन्तरं।
वृद्धदष्टं विजानीयात् कश्यपस्य वचो यथा ॥४६॥

सांपके काट लेने पर यदि किसीके २½ अंगुल गहरा घाव हो जाय तो कश्यपके कथनानुसार उसे बूढ़ेका काटा हुआ समझे।

स्वभाव

अनन्तः प्रक्षते पूर्वं वामपार्श्वे तु वासुकि।
तक्षको दक्षिणेनेह कर्कोटः पृष्ठतस्तथा।
चलते भ्रमतेपद्मः महापद्मो निमज्जति ॥४७॥
विसंज्ञस्तिष्ठते चैव शंखपालो मुहुर्मुहुः।
सर्वेषां कुरुते दर्प कुलिकः पत्र गोत्तमः ॥४८॥

अनन्तस्य दिशा पूर्वा वासुकेस्तु हुताशनी।
दक्षिणा तक्षकस्योक्ता कर्कोटस्य तु नैऋती ॥४९॥
पश्चिमा पद्मनाभस्य महा पद्मस्य वायुजा।
उत्तरा शंखपालस्य ऐशानी कम्बलस्यतु ॥५०॥

जिस समय सांप पकड़ा जाता है या उसे कुछ आहट आती है तब अनन्त नामका नाग आगेको देखता है, वासुकि नाग बायीं तरफको देखता है। तक्षक दायीं तरफको देखता है। कर्कोटक पीछेको देखता है। पद्म नामका नाग चलता ही रहता या घूम जाता है; महापद्म नाग छिप जाता है और शंखपाल उसी समय बेहोश सा होकर दम खींचकर बैठ जाता है; कुलिक नामका सांप सभी छल छन्द रचा करता है।

अनन्तकी दशा पूर्व है, वासुककी आग्नेय, तक्षककी दक्षिण, कर्कोटककी नैऋति, पद्मनाभ की पश्चिम, महापद्मकी वायव्य, शंखपालकी उत्तर और कम्बल नामक नागकी दिशा ऐशानी है।

टिप्पणी—ब्रह्मावर्तको केन्द्र मानकर यह दिशाओंका निर्णय किया गया है।

सर्पोंके चिन्ह

अनन्तस्य भवेत्पद्मं वासुकेः स्यात्तथोत्पलम्।
स्वस्तिकं तक्षकस्योक्तं कर्कोटस्य तु पंकजम् ॥५१॥
पद्मस्य तु भवेत् पद्मं शूलं पद्मेतरस्यच।
शंखपाले भवेच्छत्रं कुलिकस्यार्धचन्द्रकम् ॥५२॥

अनन्तके शिर पर पद्मका चिन्ह, वासुकिके शिरपर लाल कमलका चिन्ह, तक्षकके सिरपर स्वस्तिकका चिन्ह, और कर्कोटकके सिरपर छोटा कमल, पद्मपर भी पद्म, इसके अतिरिक्त सांपपर शूलका चिन्ह, शंखपाल पर छत्र और कुलिकके सिरपर अर्धचन्द्रका चिन्ह अंकित होता है।

अनंत कुलिकौ विप्रौ क्षत्रियौ शंख वासुकी।
महापद्मस्तक्षकश्च वैश्यौ विप्रप्रकीर्त्तितौ ॥५३॥
पद्म कर्कोटकौ शूद्रौ सदा ज्ञेयौ मनीषिभिः।
अनन्त कुलिकौ शुक्लौ वर्णतो ब्रह्म संभवौ ॥५४॥
वासुकिः शंखपालश्च रक्तौह्यग्नि समुद्भवौ।
तक्षकश्च महापद्म ईषत्पीतौ बभूवतुः ॥५५॥

पद्मकर्कोटकौ विप्र सर्पौ कृष्णौ बभूवतुः ॥

अनन्त और कुलिक ब्राह्मण हैं इनका वर्ण श्वेत है। शंख या शंखपाल और वासुकी क्षत्रिय हैं, उनका रक्त लाल है; उनकी उत्पत्ति भी अग्निसे हुई। तक्षक और महापद्म वैश्य कहे जाते हैं; उनका रंग भी हलका पीला होता है। पद्म और कर्कोटक दोनों काले रंगके और वर्णसे शूद्र समझने चाहिये।

हयं यानं वृषंछत्रं रजानमथ पावकम्।
धरणीमुत्पाद्य धृतानेतान् सिद्धि करान्विदुः ॥५६॥

घोड़ा, रथ, बैल, छाता, राजा, अग्नि, पृथ्वी, इन्हें स्वयं अपने बल पराक्रमसे प्राप्त करके रखना कार्य सिद्धि करता है।

पूर्णकुम्भ, पताका च कांचनं मणयस्तथा।
शिरीषं माणिकं कण्ठे जीवं जीवेति सुव्रत ॥५७॥
एतेषां दर्शनं श्रेष्ठ कन्या चैका प्रसूथिका।

भरा हुआ घड़ा, ध्वजा, सुवर्ण, मणियां, शिरीष का वृक्ष, कण्ठमें पड़ी मणि, और जीव जीवक, और एक प्रसववाली कन्या, इनका दर्शन करना उत्तम है।

टिप्पणी—इन दो श्लोकोंका कोई प्रसंग प्रतीत नहीं होता।

सापोंके भेद

चतुः (षट्) षष्ठिः समाख्याता भोगिनो येतु पन्नगाः ॥५८॥
अदृश्यास्तेषु षट् त्रिंशत् दृश्या त्रिंशन्महीचराः।
विंशत्यग्निगणः प्रोक्ताः सप्त मण्डलिनस्तथा ॥५९॥
राजीमन्तो दश प्रोक्ताः षोडष पंच च।
दुदुभी डुडुभश्चैव चेटभश्चश्चेन्द्रवाहनः ॥६०॥
नाग पुष्प सवर्णाख्या निर्विषा येच पन्नगाः।
एवमेव तु सर्पाणां शतद्विनवति स्मृतम् ॥६१॥

भोग अर्थात् फण जिन सांपोंको होता है और जो पन्नग कहाते हैं अर्थात् जो पैरोंसे नहीं चलकर पेटसे चलते हैं उनके ६६ प्रकार हैं जिनमें से ३६ प्रकारके तो कभी आंखसे दीखते ही नहीं। शेष पृथ्वी पर विचरनेवाले और आंखोंसे भी दीखने वाले ३० प्रकार हैं। इसके अतिरिक्त २० माला वाले, सात मण्डली, दस धारियों वाले, और १६ कड़छीके समान फण वाले हैं। और दुंदुभ, डुडुभ, चेटभ, और इन्द्रवाहन और नाग पुष्पके समान रंग वाले सर्प विष रहित होते हैं। इस प्रकार सब सांपोंकी संख्या कुल १६२ कही गयी है।

सामान्य चिकित्सा

वराह कर्णीं गजपिप्पली च गांधारिकां पिप्पल देवदारु।
मधूक सारं सह सिंदुवारं हिंगुंच पिष्ट्वा गुटिकाच कार्या ॥६२॥

सुमन्तुरुवाच—

इत्युक्तवान् पुरावीर गौतमस्य प्रजापतिः।
लक्षणं सर्व नागानां रूपवर्णौ विषं तथा ॥६३॥

वराह कर्णी, बड़ी पिप्पल, गांधारी, पीपल, देवदारु, महुएका सत, सिंदुवार, हींग इनको पीस गोली बना लिया करें।

सुमन्तु बोले—हेवीर ! गौतमके प्रति कश्यप प्रजापतिने सांपोंके सब लक्षण रूप और वर्ण तथा विषके विषयमें उपदेश किया था।

इति चतुर्थोऽध्यायः

**आवश्यक कोष**

अपामार्ग = हि० चिर चिरा, या लटजीरा।
प्रियंगु = प्रियंग।
महाकालमूल = मकाल या लालइन्द्रायण।
सिन्दुवार = संभालू।
वृश्चिका = विच्छूबूटी, विच्छिया।
इन्द्रवारुणी मूल = इन्द्रायण।
काली = धतूरा।
गिरिकर्णिका = अपराजित।
रक्त = नीलाथोथा, ताम्रा।
जाति = जायफल, जावित्री।
शंकर बालुका— ?
भार्ङ्गी हिन्दी = वरंगी।
बचा = बच।

# श्रीदण्डी

## १—देशकी तत्कालीन अवस्था

पिछले परिच्छेदसे यह प्रकट है कि श्री-दण्डी और बाण भट्टकी रचनायें प्रायः समकालीन हैं। श्री दण्डीका छठी शताब्दीमें होना सिद्ध किया गया है। एवं इतिहासज्ञोंने बाण भट्टके आश्रयदाता महाराजा हर्षवर्धनका समय सातवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें स्थिर किया है। अतएव महाराज हर्षवर्धनके पहले भारत-वर्षकी अवस्थाका ज्ञान प्राप्त करनेमें दशकुमार चरितसे बड़ी सहायता मिलती है। श्रीदण्डीने मगध मालवा और विदर्भके साथ साथ सुह्म, कलिंग, अन्ध्र कलिंग, अश्मक, बानवास्य, कुन्तल, मुरला, ऋचिकेश, कोङ्कण, सासिक्य, माहिष्मती, कोशल, सौराष्ट्र एवं काशी आदि राज्योंका उल्लेख किया है। मगध और मालवा बड़े शक्तिशाली राज्य थे एवं विदर्भका राज्य भी छोटा न था। मगधकी राजधानी पुष्पपुरी और मालवाकी अवन्तीपुरमें थी। बहुत से छोटे छोटे राज्य इनकी अधीनता मानते थे। मित्र गुप्त चरितमें श्रावस्तीका भी नाम आया है। पर दण्डीके वर्णनसे पता चलता है कि इन दिनों देशमें अशान्ति थी। युद्धों, राजद्रोहों, और षड्यन्त्रोंकी कमी न थी। वास्तवमें इतिहास का विवरण भी इसके प्रतिकूल नहीं जाता। दण्डी-की पुस्तक सचमुच इतिहास लेखकके लिए बड़े महत्वकी है। पर इस छोटेसे निबन्धमें उसकी ऐति-हासिक आलोचना विस्तारपूर्वक नहींकी जा सकती।

दण्डीने देशकी व्यापारिक समृद्धिका भी वर्णन किया है। उन दिनों विविध पदार्थोंमें आन्त-रिक, वाह्य एवं समुद्रगामी व्यापार होता था। व्यापार द्वारा* मगधकी बड़ी उन्नति थी और †पुष्पपुरीमें वृहत् व्यावसायिक केन्द्र था। कहीं कहीं खानोंसे भी अतुल सम्पत्ति निकाली जाती थी। द्विजोपकृति प्रकरणमें लिखा है कि "शशि शेखर कथिताभिज्ञान परिज्ञातं निःशङ्कं प्रविश्य गृहीत ताम्र शासनः" इत्यादि जिससे तामाकी खानोंका होना और उनसे तामेका निकालना प्रकट होता है। पुष्पोद्भव चरितसे भी खानोंके उपयोग का पता चलता है। विन्ध्यारण्यमें बहुत सी सम्पत्ति भूमिको खोद कर निकाली जाती थी। यथा "विन्ध्या वन मध्ये पुरातन पट्टन स्थाना न्युपेत्य विविध निधि सूचकानां महीरुहाणा मधो निक्षिप्तान् वसुपूर्णान् कलशान्" इत्यादि उद्धृत अंशमें पट्टन शब्दसे वर्तमान पन्नाका निर्देश मालूम होता है। पन्ना मध्य भारतमें है और वहां हीरेकी खानें प्रसिद्ध हैं। अस्तु इतना तो प्रायः निश्चय है कि भारतवासी खानोंसे लाभ उठानेमें दक्ष थे।

पुष्पोद्भव चरितमें लिखा है कि "तत्कालागत मनति दूरे निवेशितं वणिक्कटकं कञ्चि दुपेत्य तत्र बलिनो बलीवर्दान् गोणीश्च क्रीत्वा" इत्यादि। यह प्रत्यक्ष है कि यह विन्ध्यारण्यके समीपवर्ती भाग एवं मालवा स्थित उज्जयिनी नगरीके विषयमें कहा गया है। विश्रुत चरितमें भी माहिष्मतीमें जाकर कतिपय पदार्थोंके विक्रय *का उल्लेख है। प्रकट यह होता है कि मध्य तथा नैऋत कोणवर्ती भारतवर्षमें बैल, बर्तन, चर्म्म एवं चमड़ेके थैले आदिका व्यवसाय अधिक था। आन्तरिक व्यापार आगत वणिक् समूहों द्वारा होता था। एवं इस प्रकारके व्यापारमें नदियोंसे बड़ी सहायता मिलती थी। क्योंकि पुष्पपुरी जैसा वृहत् व्यावसायिक केन्द्र गङ्गाके किनारे बसा था। समुद्रगामी व्यापार जहाज़ों द्वारा होता था। पूर्वपीठिकाके आरम्भमें कालयवन द्वीपका उल्लेख है जिसे डाकृर जार्ज बुहलर ज़ंज़ीबार अथवा अरब देशका किनारा ठह-राते हैं। इस द्वीपसे भारतवर्षका प्रबल व्यवसाय था। वहांके व्यापारी बड़े धनाढ्य होते थे। एवं

* पूर्वपीठिका।

† शश्वदगण्य पण्यविस्तारितमणिगणादिवस्तुजात व्या-ख्यात रत्नाकर माहात्म्य।

* तत्रव्याघ्र त्वचो हसीश्च विक्रीय।

भारतीय वणिकोंका वैवाहिक सम्बन्ध भी उस देश में होता था। यवनोंका उल्लेख व्यापारी, खेवैय्ये, या कदाचित् सामुद्रिक डाकूके रूपमें हुआ है। श्रीयुत विल्सनका मत है कि हिन्दुओंको सम्भवतः अरब निवासियोंका परिचय इसी स्थितिमें था। सामुद्रिक व्यवसायोंमें जलयान कभी कभी नष्ट भी हो जाते थे। इसका भी पता चलता है कि नष्ट हुए जहाज़ोंके कुछ लोग तैर कर अथवा अन्य उपायों द्वारा कभी कभी किनारे भी लग सकते थे। वास्तवमें किसी समय इस देशका व्यापार बड़ी उन्नति पर था।

दश कुमार चरितसे पता चलता है कि उन दिनों भारतीय स्त्रियों * भी विदुषी हुआ करती थीं। अवन्ति सुन्दरीने अपने प्रेमीके पास एक पत्र लिखा था। उस पत्रमें उसने एक आर्य्या लिखा था जिसकी रचना परम सुन्दर है। वह आर्य्या इस प्रकार है।

सुभग कुसुम सुकुमारं जगदनवद्यं निरीच्यते रूपम्।
मम मानस अभिलषति त्वं चित्तं तथा कुरु मृदुलम्॥

श्रीदण्डीके तीन शताब्दी पीछे राज शेखरने भी काव्य मीमांसामें स्त्रियोंके पढ़ी लिखी होनेका संकेत किया है। उसने भी अपनी पुस्तकमें अवन्ति सुन्दरीके पद्योंको उद्धृत किया है। कुछ लोग कहते हैं कि अवन्ति सुन्दरी राज शेखरकी ही धर्म्म पत्नी थी। इस विषय पर निश्चय पूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। यदि यह अवन्ति सुन्दरी दशकुमार चरितकी ही अवन्ति सुन्दरी हो तो उसका समय राज शेखरसे तीन शताब्दीसे भी अधिक पहले मानना पड़ेगा। सारांश इतना ही है कि भारतीय स्वाधीनताके युगमें स्त्री शिक्षा विशेष रूपसे प्रचलित थी। स्त्रियां विदुषी हुआ करती थीं और कविता भी करती थीं। मित्र गुप्त चरितमें वृद्धप्रव्राजिका शब्द आया है जिससे प्रकट होता है कि स्त्रियां भी संन्यास धारण कर सकती थीं। सती प्रथाके भी प्रचलित होनेके प्रमाण दण्डीकी पुस्तकमें मिलते हैं।

कविने दश कुमार चरितमें अनेक विद्याओंके प्रचारका निर्देश किया है। सोमदत्तोत्पत्ति कथासे प्रकट होता है कि वैद्यविद्या उन दिनों भारतीय वनस्पतियों तथा जंगलोंमें विहार करती थी। समाजके आचार व्यवहार एवं विवाहादिक संस्कार * वैज्ञानिक स्थितिको पहुंच चुके थे। सामुद्रिक विद्या अर्थात् हस्तरेखा विज्ञान और आकृतिविज्ञानका भी मान था। मित्र गुप्त चरितमें इस विषयका विशेष विवरण मिलता है। वस्तुतः इस चरितका ऐतिहासिक महत्व अधिक बढ़ा चढ़ा है। इसमें ज्योतिर्विद्याके भार्गव सिद्धान्तका भी उल्लेख है एवं उत्तमोत्तम चित्ताकर्षक चित्रोंके चित्रणमें भारतीय चित्रकारोंकी आशुचातुरीका भी निर्देश है। उसी भागमें भोजन पकानेकी कलाका भी विवरण है। अपहार वर्म्म चरितके अवलोकनसे विदित होता है कि अनङ्ग विद्या एवं उसीके भेद नाचना, गाना, बजाना, पढ़ना, लिखना और वार्तालाप आदि कोमल कलाओंके रूपमें प्रचलित थे। विश्रुत चरित एवं मित्र गुप्त चरितमें भी नाट्य कलाकी बड़ो विचित्र उन्नति शील तथा कौशल पूर्ण अवस्थाका वर्णन है। मित्र गुप्त चरितमें क्रीड़ाका भी अच्छा विवरण है। दश कुमार चरितकी रचनाका राज दरबार से विशेष सम्बन्ध होनेके कारण दण्डीने प्रायः उन्हीं विद्याओं और कलाओंका

---

* भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने एक स्थान पर अधोलिखित दो श्लोकोंको उद्धृत किया है, जिससे प्रकट होता है कि किसी समयमें दो ऐसी भी स्त्रियां थीं जो कालिदास और दण्डी जैसे कवियोंसे स्पर्धा करती थीं—

नीलोत्पल दल श्यामां विज्जिका मामजानता।
वृथैव दण्डिना प्रोक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती॥
तथा—सरस्वतीव कर्णाटी विजयांकर जयत्यसौ।
या वैदर्भ गिरांवासः कालिदासादनन्तरम्॥

* अपहार वर्म चरित इत्यादि।

उल्लेख किया है जो राजधानीमें प्रचलित थीं। किन्तु उस पुस्तकसे विविध विद्याओं एवं कलाओंकी उन्नति शील अवस्थाका पता चलता है।

श्रीदण्डीने राक्षसों और यक्षोंका भी उल्लेख किया है। राक्षस आकाशमें विचरना जानते थे और रामायणके रावणकी भांति पर स्त्रियोंको चुरा ले जाते थे। कविको ऐसे स्थानोंका भी पता था जहां * मनुष्याशन बुरा नहीं समझा जाता था। अब तक कुछदूर वर्ती द्वीपोंमें मनुष्योंका भोजन करने वाले मनुष्य मिलते रहे हैं। वास्तवमें भारतवासी जलयानों द्वारा समुद्रको पार करके दूर दूरकी यात्रा किया करते थे। दण्डीने एक भीषण अकालका भी उल्लेख किया है। उस समय लोग मनुष्योंका भी मांस खानेमें नहीं हिचकते थे। मुसलमान इतिहासकारोंने भी अपनी पुस्तकोंमें कहीं कहीं ऐसे ही भीषण अकालोंका विवरण दिया है। उस समय सड़कोंकी कमी और रेलके अभावसे जीवन निर्वाहकी सामग्री शीघ्रता पूर्वक अकाल ग्रसित स्थानों पर नहीं पहुँच सकती थीं। इस कारण अकालों की भीषणता बहुत बढ़ जाती थी। निदान, पूर्ण आलोचना करने पर इतिहास लेखकको दशकुमार चरितसे अमूल्य सामग्री प्राप्त हो सकती है। किन्तु इस विषयका विस्तार करना इस निबन्धके क्षेत्रके बाहर है।

### ४—श्रीदण्डीका राज्यनीति वर्णन

श्रीदण्डीका दश कुमार चरित राजनीतिका एक अनूठा ग्रन्थ है। पञ्चतन्त्रकी भांति इस पुस्तककी भी रचना सम्भवतः राजकुमारोंकी राजनीतिक शिक्षाके हेतु हुई थी। पर दोनों रचनाओंमें बड़ा अन्तर है। पञ्चतन्त्रमें पशुओंकी कल्पित कहानियां हैं और दश कुमार चरितमें उच्चकोटिकी कूटनीति पूर्ण कथाओंका वर्णन है। श्री दण्डीने अपनी दण्डनीतिको विशेषतः आचार्य चाणक्यके अर्थ शास्त्रके आधार पर स्थिर किया है। उसने अपने ग्रन्थमें कहीं कहीं तो अर्थशास्त्रके कतिपय अंशोंको अविकल उद्धृत किया है। आचार्य्य दण्डीने दण्डनीतिके प्राचीन आचार्य्यों के ग्रन्थोंका भली भांति मनन किया था। विश्रुत चरितमें विष्णु गुप्त चाणक्यके अतिरिक्त मनु, शुक्र, अङ्गिरस, विशालाक्ष बाहुदन्ति पुत्र और पराशर आदि आचार्य्यों का उल्लेख है। वास्तवमें दश कुमार चरितका राजनीतिक वर्णन उच्च कोटिका है।

यों तो प्रत्येक उच्छ्वासमें राजनीतिके विविध अङ्गोंका निर्देश किया गया है पर विश्रुत चरितमें इस विषयके वर्णनकी पराकाष्ठा है। किन्तु कुछ अर्वाचीन पण्डितोंने विश्रुत चरितके कुछ अंशोंको अपने संस्करणोंसे निकाल देना ही उचित समझा है। इससे पुस्तककी सुन्दरता, उपयोगिता एवं पूर्णता भी विकृत हो गयी है। राजनीतिके ग्रन्थों में राज-व्यसनोंका व्यावहारिक वर्णन परमावश्यक है। इस भागको काट छांट करनेसे विश्रुत चरितके कुछ संस्करण राजनीतिके छात्रोंके लिए अधूरे सिद्ध होते हैं। हमें इन संस्करणोंकी समालोचना नहीं करनी है। संक्षेपमें ही आचार्य्य दण्डीके कतिपय राजनीतिक विचारोंका निर्देश मात्र हमारा उद्देश्य है।

विश्रुत चरितमें राजविद्याका सर्वाङ्गीण विवरण मिलता है। परन्तु हम यहाँ उसके कतिपय अंशोंको ही उद्धृत कर सकते हैं। इस उच्छ्वासमें आचार्य्य दण्डीने आदर्श हिन्दू नृपतिका इन शब्दों द्वारा वर्णन किया है।[१] "अति सत्वः सत्यवादी

* न चेद्ब्रवीषि प्रश्नानशनामित्वाम्—मित्रगुप्त चरितम

१—अतिसत्व, सत्यवादी, उदार, विनीत, प्रजाको वशमें रखनेवाला, सेवकोंको प्रसन्न रखनेवाला, यशस्वी, उदग्र, मानसिक एवं शारीरिक उन्नति करनेवाला, शास्त्रोंका प्रमाण रखनेवाला, पण्डितोंका आदर करनेवाला, सेवकों पर प्रभाव डालनेवाला, बन्धु जनोंको उठानेवाला, शत्रुओंको नीचा दिखानेवाला, असम्बद्ध प्रलापों पर कान न देनेवाला, गुणोंमें कभी भी तृष्णा रहित न होनेवाला, कलाओंमें परम

वदान्यो विनीतो विनेता प्रजानां रञ्जितभृत्यः कीर्तिमानुदग्रो बुद्धिमूर्तिभ्यानुत्थान शीलः शास्त्रप्रमाणकः शक्यभव्यकल्पारम्भी सम्भावयिता बुधान् प्रभावयिता सेवकानुद्भावयिता बन्धून् न्यग्भावयिता शत्रून् असम्बद्ध प्रलापेश्वदत्तकर्णः कदाचिदप्य वितृष्णो गुणेषु अति नदीष्णः कलासु नेदिष्ठो धर्म्मार्थ संहितासु स्वल्पेऽपि सुकृते सुतरां प्रत्युपकर्त्ता प्रत्यवेक्षिता कोशवाहनयो यत्नेन परीक्षिता सर्वाध्यक्षाणां उत्साहयिता कृतकर्म्मणाम् अनुरूपैर्दान मानैः सद्यः प्रतिकर्त्ता दैवमानुषीणामापदां षाड् गुण्योपयोग निपुणो मनुमार्गेण प्रणेता चातुर्वर्ण्यस्य पुण्यश्लोकः" ।

इसके बाद राजविद्याकी अवहेलनाके कुपरिणामोंका वर्णन करके यह दर्शाया गया है कि राजनीतिसे अनभिज्ञ नृपति पर शत्रुके भेदियोंका प्रभुत्व जम जाता है । एवं राज्यका विनाश होते देर नहीं लगती । कूट नीतिके प्रभावसे एक बड़ा राज्य भी सरलता पूर्वक जीता जा सकता है । अतएव त्रयी, वार्ता आन्वीक्षिकी और दण्डनीतिकी गणना राजाओंके मनन योग्य विद्याओंमें मुख्य करके हुई है । कुमारोत्पत्तिमें राजकुमारोंको निम्नाङ्कित विद्याओंके अध्ययनका निर्देश है । "सकल लिपि ज्ञानं सकल देशीय भाषा पाण्डित्यं षडङ्गसहित वेद समुदाय कोविदत्वं काव्य नाटकाख्यानाकाख्यायिकेतिहास चित्र कथा समन्वित पुराण गणनैपुण्यं धर्म्म शब्द ज्योतिस्तर्क मीमांसादि समस्त शास्त्र निकर चातुर्य्यं कौटिल्य कामन्दकीयादि नीति पटल कौशलं वीणाद्यशेष वाद्य दाक्ष्यं सङ्गीत साहित्य हारित्वं मणि मन्त्रौषधादि माया प्रपञ्च चाटवं मातङ्ग तुरङ्गादि वाहनारोहण पाटवं विविधायुध प्रयोग चतुरत्वं चौरदुरोदरादि कपट कला प्रौढ़त्वं च ।"

श्री दण्डीने राजाकी आदर्श अहोरात्रि चर्य्याके दृढ़ तथा नियमित अनुसरणका राजनीतिमें विशेष प्रभाव माना है । मृगया, द्यूत, व्याभिचार, और मद्यपानकी गणना मुख्य मुख्य राज-व्यसनोंमें की गयी हैं । इनके प्रादुर्भावके सम्बन्धमें दण्डीने काव्यादर्शमें लिखा है कि—

अनभ्यासेन वेदानामसंसर्गेण धीमताम् ।
अनिग्रहेण चाक्षाणां जायते व्यसनं नृणाम् ॥२।४७॥

इस श्लोककी तुलना मनुस्मृतिके अधोलिखित श्लोकसे करने योग्य है—

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात् ।
आलस्यादन्न दोषाच्च मृत्युर्विप्रं जिघांसति ॥

श्री दण्डीने पञ्चतन्त्रके मित्रलाभकी उपयोगिता दर्शाते हुए वसन्तभानु द्वारा अनन्त वर्म्माके विनाशका वर्णन किया है । एवं प्रकारान्तरमें सुहृद्भेदका भी अच्छा दिग्दर्शन करा दिया है । मंत्रियोंकी उचित शिक्षाकी अवहेलनासे राज्यका पतन

---

चतुर, धर्म्म और अर्थ शास्त्रमें निपुण, स्वल्प सुकृतका भी अधिक प्रत्युपकार करनेवाला, कोष और वाहन (Finance & Army) का विशेष निरीक्षण करनेवाला, सभी अध्यक्षों ( heads of departments ) की यत्न पूर्वक परीक्षा करनेवाला अच्छे कार्य्योंको उचित पुरस्कार और सम्मान द्वारा प्रोत्साहित करनेवाला, दैवी एवं मानुषी आपदाओंका तुरन्त प्रतीकार करनेवाला, छहों गुणोंके उपयोगमें निपुण, तथा चारों वर्णोंको मनुस्मृतिके नियमानुसार चलानेवाला पुण्यवान् राजा होना चाहिये ।

१—सभी लिपियोंका ज्ञान २—सभी देशीय भाषाओंका पाण्डित्य, ३—छहों अङ्गों सहित वेदोंका पाण्डित्य, ४—काव्य, नाटक, अख्यानक, आख्यायिका, इतिहास एवं चित्रकथाओंसे युक्त पुराणोंकी निपुणाई, ५—धर्म्मशास्त्र, शब्दशास्त्र, ज्योतिषमें तर्कशास्त्र, मीमांसा आदि सभी शास्त्रोंमें, चतुराई, ६—कौटिल्य, कामन्दकीय इत्यादि नीतिशास्त्रमें कुशलता, ७—वीणा आदि सभी वाद्योंमें दक्षता, ८—सङ्गीत और साहित्यका ज्ञान, ९—मणि, मन्त्र, औषध इत्यादिके माया प्रपञ्चमें चातुर्य्य, १०—हाथी, घोड़ा आदि वाहनोंके आरोहणकी पटुता, ११—विविध आयुधोंके चलानेकी चतुराई, और १२—चोरों बदमाशों आदिकी कपट पूर्ण कलाओंमें प्रौढ़ता ।

अवश्य होता है। परन्तु प्रायः यही देखा जाता है कि राजाओंका स्नेह इच्छानुवर्ती लोगों पर विशेष होता है। दण्डीने चाणक्यके इस सिद्धान्तका अनुमोदन किया है कि इच्छाके प्रतिकूल उचित शिक्षा भी देने पर लोग विश्रुतकी तरह अपमान-भाजन होते हैं। भारतवर्षमें अनादिकालसे सदाचारको सर्वोपरि स्थान मिला है। आचारहीनतासे राज्योंका भी पतन अवश्य होता है। सदाचारमें सम्पूर्ण प्रकृतिके वशीकरणकी शक्ति वर्तमान है। वसुन्धराके उदाहरण द्वारा श्री दण्डीने यह भली भाँति दर्शा दिया है। वास्तवमें राजाओंका राजनीति निपुण और सदाचारी होना परमावश्यक है। राजनीति एक महान् वृक्ष है, उसके मन्त्र रूपी पांच मूल, प्रभाव रूपी दो तने, उत्साह रूपी चार शाखायें, तथा प्रकृति रूपी बहत्तर पत्तियां हैं।

विश्रुत चरितके अन्तमें मन्त्रि-मण्डलके सङ्गठन का उल्लेख है। आचार्य्य दण्डीने आदर्श मन्त्रीके गुणोंका निदर्शन इस प्रकार किया है।

अभिजनस्य शुद्धि दर्शनमसाधारणं बुद्धि नैपुण्यमति मानुषं प्राण बलम परिमाण मौदार्य्य मत्याश्चर्य्य मस्त्र कौशल मनल्पं शिल्पज्ञान मनुग्रहार्द्रं चेतस्तेजश्चापर विषह्य मभ्य मित्रीणाम् इति*

राजमन्त्रीके व्यवहारके सम्बन्धमें यह वाक्य भली भाँति घटित होता है—

द्विषतां चिर विल्वद्रुमः प्रह्वानान्तु चन्दनतरुः

इसी प्रकार अनेक गुणोंसे संयुक्त मन्त्री नियत करना चाहिये। मन्त्रियोंको सत्यवादी और पवित्र होना चाहिये एवं उनकी सहायताके लिए आवश्यक कर्म्मचारियों तथा गुप्तचरोंकी भी नियुक्ति होनी चाहिये।

मन्त्रि मण्डलका सङ्गठन करके राजा साधारण जनतामें प्रवेश करे एवं प्रजाको निर्लोभी बना कर कर्तव्य ज्ञान सुझावे। उसे उचित है कि वह नास्तिकोंसे घृणा करे, राज्यके बाधक पुरुषोंको दूर करे तथा शत्रुके षड़यन्त्रोंका नाश करे, * चारों वर्णोंको अपने अपने धर्म्म एवं जीविकाके मार्गमें प्रवृत कराना और धनका संग्रह करना राजाका धर्म्म है। धन ही सम्पूर्ण सफलताकी कुञ्जी है। पुष्पोद्भव चरितमें भी समस्त कार्य्योंके निमित्त स्वरूप धनकी महत्ता दिखलायी गयी है। सच है—

"सकल पदारथ जे जगमाहीं। बिना रुपैय्या आवत नाहीं॥"

वास्तवमें विश्रुत चरित ही नहीं; वरन् सम्पूर्ण दशकुमार चरितमें राजनीति शास्त्रके मर्म्मोंका सन्निवेश है। यदि कुमारोत्पत्तिमें युद्ध एवं गुप्तचर; और सोमदत्त चरितमें रक्षा और आक्रमणके उपाय एवं कवच तथा युद्धकी लूट आदिका वर्णन है; तो राज वाहन चरितमें राजसुखोंके उपभोग एवं अपहार वर्म्म चरितमें खाइयों और गढ़ोंका उल्लेख है। अस्तु, दशकुमार चरितकी समालोचना करते समय उसकी राजनीतिक उपयोगिता ध्यानमें रखनी चाहिये। सच बात तो यह है कि इस ग्रन्थकी रचनाका उद्देश्य भी राजनीतिक ज्ञात होता है। श्रीदण्डी उस शास्त्रका मर्म्मज्ञ था और उसकी रचना भी सफल एवं पाण्डित्य पूर्ण है।

१—अभिजनोका शुद्धि दर्शन, असाधारण बुद्धि, नैपुण्य, परम अधिक प्राणशक्ति, अपरिमाण उदारता, परम अद्भुत अस्त्र कौशल, बहुतसे शिल्पोंका ज्ञान, अनुग्रह पूर्ण चित्त, शत्रुओंके लिए असह्य, अभ्यमित्रीण तेज।

* अर्थपाल चरितमें भी लिखा है—
एष खलु क्षत्र धर्म्मः यद्बन्धुरबन्धुर्वा स निरपेक्ष निग्राह्यः।

# रुधिरके आंसू

"आंखोंमें खून उतर आया" यह बात तब कही जाती है जब किसीको बहुत क्रोध आता है और क्रोधके कारण आंखें सुर्ख हो जाती हैं। परन्तु हालमें एक अद्भुत प्राणीका पता चला है जो सताये जाने पर अथवा क्रुद्ध होने पर आंखोंसे रुधिर वर्षा करता है। इस प्राणीका नाम हार्न—टोड है। यह लाखों वर्षसे उसी आकार प्रकारका है, उसमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं हुआ है।

इस प्राणीका सिर बड़ा भयानक है; उसमें कांटे लगे होते हैं और सारे शरीर पर बिन्दु बिथरे होते हैं; उसकी आकृति भयानक अजगरकी सी और लम्बाई केवल ३—५ इंच तक होती है।

शायद ही संसारमें कोई दूसरा होगा। इसके सिर परके कांटे या सींग देखने भरके ही हैं; यदि कोई मांसाहारी इसे समूचा निगल जाय तो भी उसे किसी प्रकारकी हानि न होगी—यह दूसरी बात है कि किसी नाजुक झिल्लीमें सींग अटक जाय और भक्षकको हानि पहुँचायें। इसकी त्वचा ढालकीसी प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः बड़ी कोमल होती हैं। चींटी आदि प्राणियोंके मारे इसका सदा नाक में दम रहता है।

इच्छानुसार हार्न टोड फूल कर दुगना हो जाता है। यह विचित्र प्रकारका पफ़ पफ़ शब्द या बड़ी तीव्र फुंकार भी कर सकता है। जब यह अपनी पूंछ हिलाता है, तब ऐसा मालूम होता है कि रैटिल स्नेक चल रहा है।
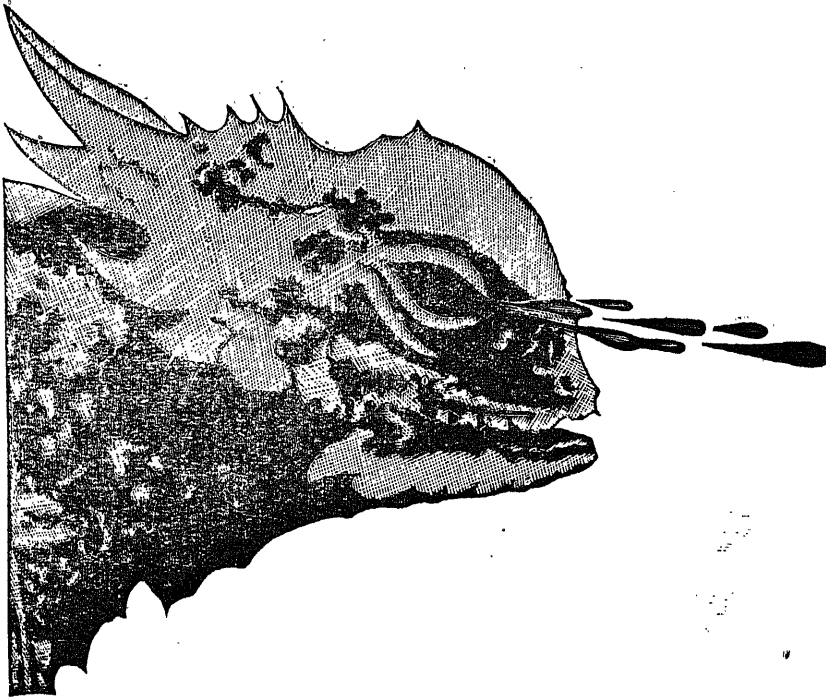
चित्र ३

यद्यपि इसका रूप बड़ा भयानक होता है, तथापि इसकासा धोखेमें डालने वाला प्राणी

इस प्राणीका विचित्रतम गुण जिसने वैज्ञानिक संसारको चकित कर रखा है यह है कि

चौंकने पर या क्रोध आने पर यह प्राणी आंखोंसे खून फेंक मारता है। कभी कभी तो चौथाई टी-स्पून (चायकी चमची) भर खून निकलता है और १५ इंच तक फेंका जाता है। इस कार्यसे हार्न टोडको किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती। उसकी आंखमें क्या यंत्र है जिससे रुधिर इतनी दूर तक फेंका जाता है?

निकले हुए रुधिरमें किसी प्रकारका विष नहीं होता, किन्तु जब आक्रमणकारीके मुंह पर रुधिरके छींटे पड़ते हैं तो वह घृणासे पीछेको ही हटता है।

ज़रा विचार तो कीजिये। छोटासा अज़दहेका प्रतिरूप, जिसके सींघ खड़े होते हैं, जिसका कवच चमक रहा है, जिसकी दुम वेगसे हिलकर शब्द कर रही है और जो बैरी पर खूनकी पिचकारी चला रहा है, उसको देख किसका पत्थरका कलेजा है जो दहल न जायगा।

प्रयोगोंसे पता चला है कि आंखोंके किनारे किनारे चारों तरफ केशिकाएं हैं, (जिनमें रुधिर बहता है) जो इस प्राणीकी इच्छानुसार खूब फूल सकती हैं। जब प्राणी भयभीत या क्रुद्ध होता है तो उसका हृदय वेगसे धड़कने लगता है, रुधिर-का दबाव भी बढ़ जाता है। रुधिर उपरोक्त केशिकाओंमें भरने लगता है। रबरके समान लचीली केशिकाएं बहुत सा खून ग्रहण कर लेती है। खूनके भरनेसे केशिकाओंकी दीवार फैलकर फटनेके लिए तैय्यार हो जाती है, दबाव अधिक होने पर फट जाती है और रुधिर आंखके कोनेकी एक नालीमें आकर जिधर टोड देखता होता है उसी दिशामें उछल कर दूर जा गिरती है। आक्रमण-कारीका जो अंग इस दिशामें होता है उसी पर आ गिरता है। प्रायः टोड आक्रमणकारीके मुंहकी ओर ताकता होता है, अतएव उसके मुंहपर ही खून आ गिरता है। मुंह पर या शरीर पर खूनके छींटे पड़ते ही, उसके चिप चिपे पन और दुर्गंधसे आक्रमणकारी विवश हो भाग जाता है।

केशिकाओंके चिप चिपे रुधिरमें ऐसी चीज़ें रहती हैं जिनके कारण केशिकाओंका घाव फौरन ही भर जाता है।

डा० जी. किंग्सली नोबिलने टोडोंकी जांच की थी। उनका कथन है कि एक बार एक टोडने १५ इंच तक खून फेंका; एक मिनट बाद दूसरी आंखसे फिर खून फेंका और तदनन्तर ३ मिनटके भीतर ही ५ बार उनके ऊपर खून फेंक मारा।

उनका कुत्ता एक टोडके पास गया और सूंघने लगा, कि इतनेमें ही उसके मुंह पर खून आ गिरा, कुत्ता वहांसे भागा और फिर हज़ार कोशिश करने पर भी उसके पास न गया।

---

## एक अद्भुत सुंदरी

### सौन्दर्य शास्त्रका नया आविष्कार

#### क्या १२ इञ्चके ओष्ठ सौन्दर्य बढ़ाते हैं?

सौन्दर्यका विवेचन भी व्यक्तिगत भावों-से प्रभावित होता है। प्रायः दुर्लभ वस्तु सुलभसे अधिक सुन्दर प्रतीत होती है, किन्तु देश और जातिके भेदसे भी सौन्दर्यके विवेचनमें भेद होता है। पौडर सम्पन्न नासिकाएं, रूज-रंजित कपोल और अधर तथा लोलित कुंडल जो यूरोपीय सौंदर्यके मुख्य अंग हैं अफ्रीका निवासियोंको उतने ही अप्रिय लगते होंगे जितने कि एक फुट व्यासवाले होठ यूरोपवालोंको अरुचिकर प्रतीत होते हैं।

होटेंटोट स्त्रियां पीठका मांस बढ़ाकर नीचेको लटकाने लगती हैं, यहां तक कि कुछ वर्षोंमें वह धरती तक लटकने लगता है। कुछ बर्बर जातियों-में खोपड़ीको ठोक ठोक कर चौरस करनेका रिवाज है, कहीं बड़े बड़े भारी कुण्डल पहननेकी प्रथा है, कहीं नाकमें एक या दो भुल्ली पहनी जाती है, कहीं गुदने गुदवाये जाते हैं. आभूषणोंका प्रचार सर्वत्र ही है। किन्तु यह सब प्रथाएं डिंजी औरतोंकी होठ बढ़ानेकी प्रथाके सामने फीकी पड़जाती हैं।

बढ़े हुये होंठोंके कारण यह बेचारी स्त्रियां न तो अच्छी तरह बोल सकती हैं और न खा सकती हैं। प्रायः द्रव द्रव्योंसे ही इन्हें पेट भरना पड़ता है और बड़बड़ाकर ही अस्पष्ट बातें करनी पड़ती है। पहले पहल जब बृहद् ओष्ठोंका हाल मालूम हुआ था तो कहा गया था कि गुलाम बेचनेवालों के हाथसे औरतोंको बचानेके लिए ही उनको विकृत कर दिया जाता है। पर यह बात विश्वास योग्य नहीं है, क्योंकि गुलाम बेचनेवाले तो मर्दों को ज्यादा पकड़ते थे।

प्रोफेसर ग्रेडिडियरने अब उक्त प्रथाका ठीक ठीक कारण बतलाया है। उसका कारण वहां की विचित्र विवाह पद्धति है। मंगनीके समय कन्या ४ या ५ वर्षकी होती है। वर उसके ओष्ठमें छेद करदेता है। इस छिद्रमें पहले तिनके पहना देते हैं। फिर क्रमसे मोटी लकड़ीके टुकड़े पहनाते हैं। प्रत्येकवार जब टुकड़ा बदला जाता है तो वर भी बुलाया जाता है।

अन्तमें सींक या तिनकोंके स्थान पर काठके गोल खण्ड ओष्ठको बिम्बाकार रूप देकर चन्द्र-मुखीकी शोभा बढ़ाते हैं।

जब वर कन्याको एक बार इस पवित्र अनुष्ठान द्वारा अपना लेता है और तदनन्तर धीरे धीरे उसके ओठोंकी वृद्धि करता है तो उसे यह नाता आजन्म निभाना पड़ता है।

रातको दम्पतिका सोना भी आश्चर्य जनक है। पत्नी अपने बढ़े हुए ओष्ठको पतिके कंधेपर रखकर सोती है। इसके स्पर्शसे पतिको यह इत्मीनान रहता है कि पत्नी भाग नहीं गई है। डिंजी दम्पतियोंमें बड़ा प्रेम होता है। ठोस या कड़े पदार्थोंका खाना या चबाना इन स्त्रियोंके लिए असम्भव होता है। हां, पेय पदार्थोंका सेवन सुलभ और सुगम होता है। नीचेका ओष्ठ बहुत से द्रवको एक बारही मुंहमें भर लेनेमें सहायता देता है। ओष्ठ-छेदन संस्कारके कुछ दिन बाद तक ओष्ठ चिड़ियाकी चोंचकी नाईं प्रतीत होता है, परन्तु तदनन्तर जब बहुत बढ़ जाता है तो नीचेको लटक जाता है।
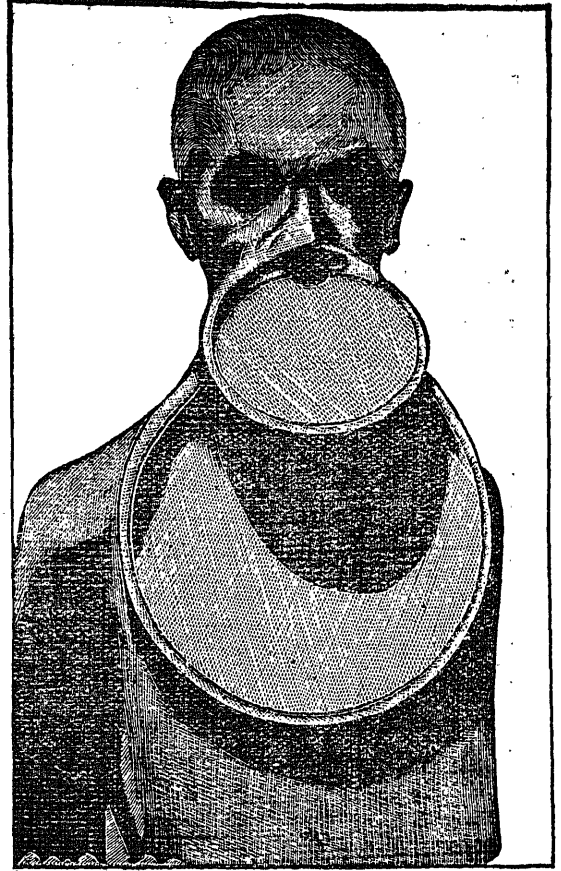
चित्र ४

जब यह सुमुखियां मिलजुलकर खेतोंमें काम करनेके लिए जाती हैं तो अद्भुत मधुर ध्वनि सुनाई पड़ती है जो ओष्ठोंके काष्ठ खण्डोंके टकरानेसे पैदा होती है।

ओष्ठ छेदनके दिन चाकू या कांटेसे छेदकरके तिनका या लकड़ीका टुकड़ा डाल देते हैं। लगभग एक मासमें पेंसिलके बराबर मोटी लकड़ी लगादी जाती है। तदनन्तर प्रत्येक तीन मासमें उत्तरोत्तर बढ़ते हुए व्यासके टुकड़े डाले जाते हैं।

अन्तमें लकड़ीके बिम्ब जो कि दोनों ओरसे नतोदर होते हैं पहरा दिये जाते हैं। १६ वर्षकी अवस्थामें ५ इञ्च व्यासका नीचेके ओष्ठमें और ३ इञ्च व्यासका नीचेके ओष्ठमें पहना दिया जाता है। २५ वर्षकी अवस्थामें ऊपरका बिम्ब ५ इञ्च व्यासका और नीचेका १० इञ्च व्यासका होता है। इस अवस्थामें बिम्ब नीचेको लटकने लगते हैं। बिम्बोंका यह आकार पहुँच चुकनेके बाद प्रतिवर्ष बिम्बका आकार बढ़ाया जाता है।

कुछ स्त्रियां तो १२, १२ इञ्चके बिम्ब भी पहन लेती हैं। ऐसी ही एक सुन्दरीका चित्र यहां दिया जाता है।

---

## (BOILED OIL.) पक्का तेल

पिछले लेखोंमें अलसीके तेलका गुण तथा उसके संशोधनकी विधि और उसमेंका रंग उड़ाने और रंग देने इत्यादिके विषयमें वर्णन कर चुके हैं। इस लेखमें यह बतलानेकी चेष्टा की जायगी कि यह तेल पक्का कैसे बनाया जाता है और बाजारू तेलमें क्या क्या और पदार्थ मिले रहते हैं और उन्हें हम किस प्रकार जान सकते हैं।

यद्यपि अलसीका तेल जल्द सूखता है तथापि उपयोगमें लानेके लिए और भी जल्द सूखनेकी आवश्यकता पड़ती है। इस क्षतिकी पूर्तिके लिए हमें रासायनिक पदार्थोंका अवलम्बन करना पड़ता है। पुराने समयमें लोग बहुधा प्याज, लहसुन, चूना, जस्ता, सीसा, फिटकरी इत्यादिको काममें लाते थे पर आजकल यह बिलकुल बेकार समझे जाते हैं, कारण यह है इनसे उतना अच्छा तेल नहीं बनता जितना बनना चाहिये। इस कार्य्यके लिये आज कल हवाकी ओषजन, सिन्दूर, शूगर आफ लेड (Sugar of lead) (Manganous Borate) मैंगेनस बोरेट तथा एसिटेट (Acetate) और औक्ज़लेट (Oxalat) और सीसेके ओषिद (Lilharge) का प्रयोग होता है। जाँच और पड़तालसे ज्ञात हुआ है कि सबसे अच्छा और उपयोगी तेल सीसा (Lead) और मैंगेनीज़ (Manganese) के लाइनोलियेट (Linoleates) से बनता है। इसी कारण इन दोनों पदार्थोंकी बड़ी खींच रहती है।

चूंकि धातुज पदार्थोंके मिलनेसे तेलका रंग कुछ कालासा हो जाता है और कभी कभी वार्निशको हानि पहुंचती है इसलिए आजकल यह धुन समाई हुई है कि कोई ऐसा सुखानेवाला पदार्थ काममें लाया जाय जो धातुसे न बना हो। दूसरी बात जो कि विशेष ध्यान देनेके योग्य है वह यह है कि तेलमें सुखानेवाले पदार्थ बहुत ही महीन बुकनोंके रूपमें थोड़े थोड़े करके गर्म करते समय डाले जायँ, क्योंकि एक बार ही अधिक मात्रा डालनेमें इतना प्रबल उफान उठता है कि उसका रोकना कठिन हो जाता है। बहुतेरे लोग ठंडे तेलमें उपरोक्त पदार्थ डालकर गर्म करते हैं; पर यह तरीका खराब है और इससे तेलकी ख़ासियत बिगड़ जाती है। लूइस ई०-एण्डीज़ने प्रयोग द्वारा सिद्ध किया है कि तेलकी उम्दगी उसकी सूखनेकी शक्ति पर निर्भर है और यह उपरोक्त पदार्थोंके हिस्सों पर निर्भर है, परन्तु किसी अवस्थामें भी मैंगेनीज़ (Manganese) ३ या ४ $_c/^\circ$ और सीसा ( Lead ) १० $_c/^\circ$ से अधिक न होना चाहिये।

पक्के तेलके मूल सिद्धान्त पर न जाकर मैं यहां पर उस नियमको बतानेकी चेष्टा करूंगा जिससे पक्का तेल बनाया जाता है।

पक्का तेल बनानेके लिए लोहे या ताम्बेके छिछले बर्तनकी आवश्यकता पड़ती है ताकि हवा तेलके अधिक हिस्से पर होकर जा सके। एण्डीज़ साहबके कथनानुसार तेलका तापक्रम २३०—२५० डिग्री शतांश ( Centigrade ) से अधिक कभी न होना चाहिये क्योंकि इससे अधिक गर्मी देनेसे तेलका रंग काला हो जाता है। एण्डीज़ साहबने तेल पक्का करनेकी विधि इस प्रकार बतलायी है:—

पहिले तेलको बर्तनमें डाल कर बहुत धीमी आँच दी जाय और फिर धीरे धीरे आँच बढ़ा कर लगभग २००°श तक गर्म किया जाय। जब तेलमें फेन उठने लगे तो उस समय एकाएक इतनी तेज़ आंच कर दी जाय जितनी कि हो सकती है। तेलका रंग सोनहले से बदलकर हरापन लिए हुये पीला होने पर तुरन्त तेलको आग परसे हटाकर अलग रखना चाहिये। ठंडा होनेपर जब तापक्रम लगभग १२० से १५०°श हो जाय तो सुखानेवाला पदार्थ थोड़ा थोड़ा करके उसमें डालना चाहिये। सब पड़ जानेके बाद तेलको पुनः आग पर रखकर २३०°श से लेकर २५०°श तककी गर्मी थोड़ी देरतक देनी चाहिये। फिर तेल उतारकर काममें ला सकते हैं। यह तेल सदैव हलका पीलापन लिये हुये होता है और कभी नहीं बिगड़ता पर और विधियोंसे बना हुआ तेल समय पा कर कुछ काला हो जाता है।

आंच देनेकी अपेक्षा अगर गर्मी पानीकी भापसे दी जाय तो और भी उम्दा तेल तैय्यार होता है पर यह रीति सुगम न होनेके कारण यहाँ नहीं दी जाती।

पक्का तेल कच्चे तेलसे कुछ गाढ़ा होता है; परन्तु बहुत गाढ़ा न होना चाहिये; अगर किसी विधिसे होही जाय तो प्रयोग करती समय उसमें तारपीनका तेल मिला लेना चाहिये; क्योंकि गाढ़े तेलसे वार्निश टूट जाती है।

इस तेलका रंग उसके बनाने वाली रीति पर निर्भर है पर बहुधा यह हल्का पीला-भूरापन लिए हुए पीला अथवा ललाई लिए हुये पीला होता है; कालापन लिए हुये भूरा कभी नहीं होना चाहिये। कितनी देरतक आंच दी गई, कितने तापक्रमकी आंच दी गई और किस कदर ओषजन इसमें सम्मिलित हुई इन बातोंका भी इसपर बहुत प्रभाव पड़ता है।

बहुतेरे लोग तेलको थोड़ी देर तक तपानेके बाद ही बाज़ारमें बिकनेके लिए भेज देते हैं पर ऐसा तेल बहुत पीला होता है और देरमें सूखता है।

पक्के तेलकी महक जले हुए तेलोंकी तरह होती है। इसका स्वाद कुछ कड़ुआपन लिये हुये कच्चे तेलका सा होता है। पक्के तेलमें मुख्य बात यह होनी चाहिये कि अगर वह काँच या लकड़ी पर पतली सतहमें फैला दिया जाय तो अधिकसे अधिक ३६ घंटेमें बिल्कुल सूख जाय। अगर इससे जल्द सूखे तो और भी अच्छा है; पर इससे देरमें सूखना यह साबित करता है कि या तो तेल ठीक तौरसे पकाया नहीं गया अथवा उसमें कोई और तेल मिलाया गया है या ठंडी रीति काममें लाई गई हैं।

अल्सीके तेलमें कौन कौनसे तेल मिलाये जा सकते हैं, इसके विषयमें हम पहिले लेखमें लिख चुके हैं अतः उनके पुनः उद्धृत करनेकी आवश्यकता नहीं। यहां पर हम केवल वह प्रयोग बतलायेंगे जिससे मालूम हो सकता है कि अमुक तेलमें मैंगेनीज़ Manganese पड़ा है या सीसा (Lead) क्योंकि प्रायः किसी किसी वार्निशमें खास किस्मके तेलकी आवश्यकता पड़ती है।

प्रयोग—जिस तेलको जाँचना हो उसमें उतना ही पतला गन्धकाम्ल (Dilute sulphuric acid) डालनेसे या तो कुछ तलछट बैठ जायगी या कुछ परिवर्तन न होगा। पहिली अवस्था धातुकी और दूसरी ओषजनकी स्थितिको सिद्ध करती है। अब उस तलछट पर ध्यान दिया जाय; अगर उसका रंग उजला हो तो उज्जगन्धिद गैस Sulphuretted Hydrogen डाल कर देखा जाय कि क्या रंग बदलता है। अगर रंग काला हो जाय तो उस तेलमें सीसा होगा पर अगर काला रंग न हो तो सीसा कदापि नहीं हो सकता। अगर तलछट कुछ न हो पर तेजाबके बाद गैसके सम्पर्कसे रंग कालापन लिए हुये हो जाय तो तांबा सिद्ध करता है। अब यह जानना बाकी रहा कि कोई और चीज़ तो नहीं मिली है। इसके लिए तेलमें अमोनिया डाला जाय और अगर तलछट काली हो तो लोहा; मान्सके रंगकी हो तो मैंगेनीज़ (Manganese) और सुफेद हो तो जस्ता समझना चाहिये।

—कालिकाप्रसाद वर्मा बी० एस-सी०, एल० टी०

# शिक्षाकी गैरी प्रथा

[ ले० श्री० विश्वेश्वरप्रसाद, बी. ए. ]

स्कूल चलानेवाले महाशयोंको स्कूल के मकानोंको जितना अच्छा बना सकें बनानेका बड़ा व्यसन है। चाहे अध्यापक निरे कोरे हों पर मकान बहुत बढ़िया हो। अध्यापकोंका वेतन यदि कम न किया जाय तो उन्हें आप महलोंमें बैठा दीजिये उन्हें कोई आपत्ति नहीं।

इस व्यसनका पहले तो इतना प्रभाव था कि अध्यापकोंकी परीक्षाओंमें इस पर प्रश्न पूछे जाते थे। पर अब वह बात नहीं रही। अब लोग यह समझने लगे हैं कि अध्यापकका सम्बन्ध केवल उस कोठरी से है जिसमें उसके पास बालक पढ़ने के लिए इकट्ठा हों। उसे इस सम्बन्धमें स्कूल कैसे बने यह जानना आवश्यक नहीं।

अमेरिका के गैरी नामक नगरकी पाठशालाका वृत्तान्त अत्यन्त मनोहर होगा। १६०६ ई० में वर्ट नामक एक महाशयको एक नई बात सूझी। साधारणतया लोग यह समझते हैं कि स्कूलमें उतने बालकोंके बैठनेका प्रबन्ध किया जाय जितने बालकोंके वहां पढ़ने जानेकी आशा हो पर उक्त महाशयने यह सोचा कि यदि पार्कों और बगीचोंमें उतनी बैठनेकी जगह नहीं बनाई जाती जितने मनुष्य वहां आते जाते हैं तो स्कूलोंमें ऐसा प्रबन्ध क्यों हो। इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेमें इन्हें अनेक कठिनाइयां हुईं। जब स्कूलके मैनेजर महोदयसे यह बात कही गई कि स्कूलमें यदि ५०० विद्यार्थी हैं तो केवल २५० के लिए बैठनेका प्रबन्ध किया जाय तो कोई हानि नहीं होगी। इन्होंने इसे तुरन्त स्वीकार किया और एक ऐसा स्कूल बनानेके लिए वर्ट महोदयको रुपया मिल गया जिसमें विद्यार्थियोंकी गिनतीसे आधेके लिए स्थान बनाया गया। यह नई चर्चा शीघ्र ही अमेरिका भरमें फैल गई। वर्ट महोदयने अपना नया स्कूल बनाया। इसमें जितने लड़कोंके बैठनेकी जगह रखी उसके दूने लड़के पढ़ सकते हैं। केवल इतना ही नहीं, नगरके रहने वाले भी इसे काममें लाते हैं। वर्ट महोदयने कमरे तो उतने ही बनाये जितने आधे विद्यार्थियोंके लिए आवश्यक थे। पर दो कमरे जरा बड़े बड़े बनवाये।

इन बड़े कमरोंका प्रयोग नागरिक सन्ध्या समय दिल बहलाव तथा और कामोंके लिए करते हैं। इतने पर भी वर्ट महोदयको संतोष न हुआ। वह चाहते थे कि बालक ही स्कूलसे लाभ उठावें। अब बारहों महीने यह स्कूल लगता है। सप्ताहमें ६ दिन तो होता ही है। कुछ कार्यके लिए सातवें दिन भी खुलता है। पाठकगण यह विचार करें कि इस प्रकार वर्ट महाशयने कितना व्यय कम कर दिया।

अमेरिकाके बालकोंमें और अन्य देशके बालकोंमें कुछ विशेष अन्तर है। वह अन्तर यह है कि अमेरिकन बालक अपनी जिम्मेदारी छुटपनसे ही समझने लगते हैं अर्थात् उन्हें यदि कोई काम दे दिया जाय तो अध्यापकको यह आवश्यक नहीं कि उनके सिर पर चढ़ा रहे; वह स्वयं काम करते हैं। इससे वहां पढ़ाईमें अधिक सुभीता होता है। वर्ट महोदयकी प्रथा से पूर्व वहां बड़े लड़के ही डिपार्टमेंटल प्रथासे पढ़ते थे। इस प्रथासे तात्पर्य यह है कि भिन्न भिन्न विषयोंके लिए अलग अलग कमरे बने रहते हैं। और बालक अपने समयके ब्यौरेके अनुसार एक कमरेसे दूसरे कमरेमें जिसे जो विषय पढ़ना है जाते हैं। वर्ट महोदयने इस प्रथाके अनुसार छोटे बालकोंकी पढ़ाई भी आरंभ कर दी।

आधुनिक स्कूलोंपर यह एक दोष लगाया जाता है कि अध्यापक और विद्यार्थी का साथ थोड़ी ही देरके लिए होता है। इसके विपरीत गुरुकुलोंपर यह दोषारोपण होता है कि बालकोंपर घरमें रहनेका, माता पिता भाई बहिनके साथ रहनेका जो प्रभाव पड़ता है उससे वहां विद्यार्थी वंचित रहते हैं। वर्ट महोदयने इन दोनों दोषोंका निवारण किया है। विद्यार्थी उनके स्कूलमें अधिक समयतक

अध्यापकोंके साथ रहते हैं और प्रायः प्रातःकाल से संध्या समय तक स्कूलमें किसी न किसी कार्यमें लगे रहते हैं। खेलना मन बहलाव इत्यादि सभीका समय रहता है—वास्तवमें यह सब बातें शिक्षाके अन्तर्गत समझी जाती हैं। संध्या समय जब नागरिक स्कूलके बड़े कमरोंका प्रयोग करते हैं तो उनके समागमसे दूसरे दोषका भी निवारण हो जाता है।

गैरी स्कूल सवा आठ बजे सबेरेसे सवा ४ बजे संध्या तक लगता है। बीचमें एक घण्टेकी छुट्टी भोजनके लिए होती है। साधारणतया स्कूल चार पांच घण्टे लगा करते हैं पर गैरी स्कूल सात घण्टे रहता है। कारण यह है कि निर्धारित कोर्सके अतिरिक्त और भी बातें बढ़ायी जाती हैं; जिनसे मनोरञ्जन और शिक्षा दोनों ही प्राप्त होती हैं। बालक गलियोंमें नहीं घूमते, व्यायामका विशेष प्रबन्ध रहता है और व्याख्यानादिका और सुभीता होता है। बालकोंमें जो अकेले गलियोंमें घूमने फिरनेसे दुर्व्यसन आ जाते हैं वह इस प्रकार नहीं आने पाते।

अध्यापकोंको यह प्रथा रुचि कर नहीं। दो घण्टेकी पढ़ाई बढ़ गई। वेतन कुछ न बढ़ा। यह ध्यान रहे कि जिन स्कूलोंमें ५ घण्टेकी पढ़ाईका नियम है वहां भी अध्यापकोंको खेलके निरीक्षण तथा नोट बुक देखनेके लिए और समय देना होता है; पर अध्यापक महोदय तो यह कहते हैं कि ५ के स्थान में ७ घण्टे तो स्कूल ही रहेगा। पहले तो ५ घण्टे के ऊपर और समय देना था अब तो वही समय ७ घण्टे के उपरान्त देना होगा। इसमें भूल है। गैरी स्कूलमें समयका ब्यौरा सब के लिए भिन्न है। अध्यापकोंके लिए एक सप्ताहमें कै घण्टे उनकी ड्यूटी होगी यह नियत रहता है।

इस नये क्रमके लिए एक नवीन ही प्रकारके अध्यापकोंकी भी आवश्यकता होती है। विश्वविद्यालयोंमें जो कार्य डीन महोदय करते हैं वही कार्य अध्यापकोंको यहां करना पड़ता है। टर्मके पहले ही कार्य विवरण तैय्यार करना होगा। अध्यापकगण प्रत्येक बालकके लिए कार्य्य निर्धारित करेंगे और उनका यह कर्तव्य होगा कि दस पन्द्रह जितने विद्यार्थी उनके निरीक्षणमें रखे जायं वह देखें कि उनका कार्य ठीक ठीक हो रहा है।

इस प्रथाके अनुसार एक बात और होगी। अध्यापक प्रत्येक बालकके विषयमें उतनी व्यक्तिगत बातें न जान सकेंगे जितना वह प्राचीन प्रथाके अनुसार जान सकते थे। पर इसका भी उपाय सोचा गया है। प्रत्येक क्लासके लिए एक और अध्यापक होगा जिसका कर्तव्य विद्यार्थियोंकी आचरण सम्बन्धी बातों पर ही विशेष ध्यान रखना होगा। जिन पाठकोंने डाल्टन विधिके सम्बन्धमें कुछ भी पढ़ा होगा उन्हें यह स्पष्ट हो जायगा कि एक गैरी प्रथाके अनुसार जिन अध्यापकोंको डीन, अध्यापक अथवा आचरण निरीक्षक कहेंगे उनका कार्य बहुत कुछ डाल्टन विधिके अध्यापकों के अनुसार होगा।

कुछ अध्यापक और ऐसे भी रहते हैं जिनका विशेष कार्य कमजोर अथवा पिछड़े हुए विद्यार्थियोंकी सहायता करना है। इसमें यह दोष बताया जाता है कि इनके रहनेसे और अध्यापकगण अपने अपने काममें कदाचित शिथिलता करें। इससे आशा है कि यह अध्यापक हटा दिये जायं।

एक आधुनिक धारणा यह है कि प्रतिदिन विद्यार्थियोंको थोड़े समयके लिए अवश्य कहीं एकत्र होना चाहिये। इसके लिए हालका प्रयोग किया जाता है। विशेषज्ञोंकी यह सम्मति है कि जिस स्कूलमें इतना बड़ा हाल न हो जहां सब बालक एकत्र हो सकें, उस स्कूलमें यह बड़ी त्रुटि है। गैरी स्कूलमें यह तो असम्भव है कि सब विद्यार्थी एक ही समय एकत्र हों। क्योंकि वह तो इसी धारणा पर बनाया गया है कि आधे विद्यार्थियोंके लिए स्थान रहे, अतएव वहां यह बात कई बार करके होती है। दिन भरमें किसी न किसी समय जितने बालक हालमें जिसे वह व्याख्यानशाला कहते

हैं बैठ सकते हैं। एकत्र किये जाते हैं। यहां एक बार वही क्लास लाये जाते हैं जिनके विद्यार्थी ऐसे हों जो एक कोटिके व्याख्यानसे लाभ उठा सकें। इस प्रथाकी समूह-शिक्षा ( mass teachnig ) के सम्बन्धमें लोगोंकी भिन्न भिन्न सम्मति हैं। पर गैरी स्कूलमें देखा जाता है कि शनैः शनैः काम अच्छा हो रहा है। उसके लिए ऐसे अध्यापक चुनने चाहियें जो इस कार्यके लिए विशेष उपयोगी हों।

## विकाशवादका इतिहास

विकाशवादके इतिहासके निम्नलिखित विभाग किये जा सकते हैं—

१ आरम्भिक काल—थेलीज़से लुक्रेटिअसके समय तक ( ई० से ६०० वर्ष पू० से सन् ५० ई० तक )

२ माध्यमिक काल—आगस्टाइनसे लार्ड बेकन् के समय तक ( सन् ४०० से १६०० ई० तक )

३ परिवर्त्तन काल—( १६०० ई० के पश्चात् )

४ आधुनिक काल—जिसके नेता—( अ ) डार्विन और वेलेस, ( आ ) हर्बर्ट स्पेन्सर, ( इ ) तथा टामस हेनरी हक्सले हैं।

इन विभागोंके अनुसार ही इस लेखमें क्रमशः विकाशवादका विवरण लिखा जायगा। विकाशवादकी गाथा बड़ी मनोरञ्जक तथा कौतूहलजनक है। १९ वीं या २० वीं शताब्दीमें बैठे हुए विद्वान सृष्टिके आदि कालकी मीमांसा करनेको तत्पर हों तो केवल अनुमानके सिवा और उनका आश्रय ही क्या है। यहाँ केवल भिन्न भिन्न प्रकाण्ड पण्डितों की विचार माला को प्रस्तुत करना ही अभीष्ट है, न कि उनपर कुछ आलोचना करना।

### प्रारम्भिक काल

पश्चिमीय पुरातत्त्वका आरम्भ सदा ग्रीससे ही किया जाता है। यहाँ हमें भी उसी देशका आश्रय लेना है। वैज्ञानिक विचारोंका प्रारम्भिक केन्द्र आयोनियाका प्रसिद्ध प्रान्त मिलीटस था। वहाँके 'सप्तर्षियों' का नेता थेलीज़ था, जिसका जन्म ईसासे ६०० वर्ष पूर्व माना जाता है। थेलीज़ का मुख्य सिद्धान्त यह था कि अभावसे किसीकी उत्पत्ति नहीं हो सकती तथा भाव कभी अभावमें परिणत नहीं हो सकता। तात्पर्य्य यह है कि मूलतत्त्व अनादि तथा अनन्त हैं; संसारमें परिवर्त्तन हो रहे हैं और एक वस्तु दूसरी वस्तुमें परिणत होती जा रही है। इन सब पदार्थोंका मूल कारण क्या है? थेलीज़ने 'जल'को सृष्टिका आदि मूल माना है।

थेलीज़का शिष्य एनेक्ज़ीमैण्डर अपने गुरुके मतका विरोध करते हुए कहता है कि जलके समान कोई भी तत्त्व आदि कारण नहीं है। आदि कारण 'अव्यक्त' ( Infinite ) है, इसीसे संसार का उद्भव हुआ है और इसीमें पराभव भी होगा। इसके सिद्धान्तानुसार चैतन्यकी उत्पत्ति जड़से हुई है और मनुष्यका आदि रूप 'मछली' है। कोलोफन नगरका ज़ीनीफ़ेन सृष्टिके आदि तत्त्वको ही स्वीकार नहीं करता। वह अपने समयके देवताओंके विषयमें, जिनमें जनताका अन्ध विश्वास था, कहता है कि 'मनुष्य देवोंको अपनेसे रूपका ही समझते हैं अर्थात् वे भी उन्हींके समान पैदा होते हैं तथा उन्हींके तुल्य शरीरधारी हैं। वास्तवमें देवोंका देव महादेव एक ही है।

एफीससका हेराक्लिटस एक विचित्र व्यक्ति था। उसके सिद्धान्तोंका जनता बड़ा विरोध करती थी। उसके सिद्धान्तके अनुसार मूलतत्त्व 'अग्नि' है। एम्पीडोक्लीज़ने चार मूलतत्त्व बताये हैं अर्थात् अग्नि, वायु, पृथ्वी तथा जल। यह तत्त्व नित्य हैं। अनेकज़ीमीनीज़ केवल 'वायु' को ही मूलतत्त्व मानता था और पाइथोगोरस 'संख्या' को।

अब हम अनक्ज़ागोरसके सिद्धान्तोंका वर्णन करना चाहते हैं, जिसने सबसे प्रथम एथेन्सके सुधारमें भाग लिया था और जो सत्यकी वेदीपर बलिदान हुआ था। उससे पहले ग्रीसवासी सूर्य्य, चन्द्र आदिको देवता मानते थे, पर इस व्यक्तिने इस सिद्धान्तके विरुद्ध आवाज़ उठाई। इसका

सिद्धान्त है कि 'प्रत्येक पदार्थमें प्रत्येक पदार्थका कुछ न कुछ भाग अवश्य है और पदार्थ भिन्न भिन्न प्रकारके अनेकानेक बीजोंके मिश्रण हैं,' अनक्ज़ागोरस एक वाह्यसत्ताको स्वीकार करता है; जिसका नाम नाउस (nous) है। यह एक भौतिक सूक्ष्मतम पदार्थ है जिसका आधिपत्य सबके ऊपर है। इस सत्ताके प्रभावके कारण ही उपर्युक्त बीजोंसे वृक्ष तथा अन्य प्राणी उत्पन्न हुए हैं।

एब्डीराका डिमोक्रिटस परमाणुवादका प्रथम अन्वेषक था; उसका जन्म ४६० वर्ष ई. से पू. हुआ था। ल्यूकिपसने जिसके जन्म आदिका कुछ भी पता नहीं है, परमाणुवादकी ओर डिमोक्रिटससे पूर्व कुछ संकेत किया था। यह दोनों असंख्य परमाणुओंकी सत्तापर विश्वास करते हैं, जिनकी गति अनन्त है। यह परमाणु एक दूसरेसे भिन्न हैं और इनकी पारस्परिक क्रियाओंके द्वारा ही संसारमें परिवर्तन होता है। इनके अनुसार 'जो नहीं है' उतना ही वास्तविक है जितना 'जो है' तथा दोनों ही क्रियाओंमें समान भाग लेते हैं। 'जो है' से तात्पर्य परमाणुकी गठित तथा भरी हुई अवस्थासे है तथा जब उनमें गति होती है तो वह 'जो नहीं है' कहलाते हैं।

इन व्यक्तियोंकी ओर संकेत करनेके पश्चात् ग्रीसके एक बड़े भारी व्यक्तिकी ओर भी दृष्टि डालना आवश्यक प्रतीत होता है। यह अरस्तू हैं। यह वैज्ञानिक पितामह हैं। विकाशके विषयमें इनका कथन है कि सबसे पूर्व कीटाणुओंकी उत्पत्ति हुई होगी, क्योंकि एकदम पशु आदि उत्पन्न नहीं हो सकते। यही बात वृक्षोंके विषयमें भी सत्य है। वह भी अकस्मात् पैदा नहीं हो सकते। भिन्न भिन्न लताओंके सम्मेलन मिश्रणसे कालान्तरमें उन्होंने यह रूप पाया है।

इस प्रकार इन विद्वानोंकी भिन्न भिन्न सम्मतिको हम निम्न १० विभागोंमें संग्रहीत कर सकते हैं:—

(१) सृष्टिका एक मूल तत्व अवश्य है।

(२) अभावसे भाव नहीं होता।

(३) मूलतत्व अविनाशी है।

(४) संसार अविभाज्य परमाणुओं द्वारा बना हुआ है, जिनके सम्मेलनसे अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

(५) परिवर्तन वस्तुओंका स्वाभाविक गुण है और विपरीति शक्तियोंके प्रभावसे अनित होता है।

(६) जीवनका आवश्यक विभाग जल है।

(७) चैतन्यका विकाश जड़ पदार्थोंसे हुआ है।

(८) पेड़ोंकी उत्पत्ति जीवोंकी उत्पत्तिसे पूर्व हुई है।

(९) विपदावस्थामें कुछ जीवों (Organisms) का अभाव हो गया और उनका स्थान अन्यने ले लिया।

(१०) मनुष्य सबके पश्चात् उत्पन्न हुआ है, उसकी पूर्वावस्था जंगली थी, उसकी सभ्यता भी हीनतम थी। शरीर तथा आत्मा परमाणुओंसे बने हैं और मृत्युके समय आत्मा क्षीण हो जाता है।

### माध्यमिक काल

यह पहले लिखा जा चुका है कि माध्यमिक काल सन् ४०० से १६०० ई० तक है। वास्तवमें इस कालका आरम्भ सन् ५० ई० से ही हो जाता है। तात्पर्य यह है कि ईसाके समयके थोड़े ही समय पश्चात् इस कालमें प्रवेश होता है। यह वह समय है कि जब यूरोपके अन्य देशोंके नेत्र खुले और सभ्यताकी सीढ़ी पर उन्होंने भी पैर बढ़ाया। यह समय धार्मिक खेलके हेतु विशेष महत्वका था। जातीय सङ्कीर्णताकी सीमाका उल्लंघन-कर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का राग अलापनेको लोग आगे बढ़े। अनुमानके ही भरोसे रहकर लोग अपना ज्ञान संकुचित नहीं रखना चाहते थे। उन्होंने प्राकृतिक निरीक्षणके हेतु कमर कसी। यह निरीक्षण कवियोंका सा काल्पनिक निरीक्षण न था, प्रत्युत एक सत्यके जिज्ञासुका प्रयास था। इस समय जनता तीन विभागोंमें बट गई थी, एक तो वह सङ्कीर्ण अन्धविश्वासी जनता जो बाइबिलके सिद्धान्तोंको

ही अग्रसर करके कार्य करना चाहती थी, उसके किसी अंशका विरोध करना उसके लिए असम्भव था और दूसरी जनता उस कोटिकी थी जो सत्य की जिज्ञासाके हेतु बाइबिल की उपेक्षा करनेको भी तत्पर थी; तीसरी जनता खुल्लमखुल्ला इस पवित्र पुस्तकका विरोध न करके उसके वाक्योंके ही नये अर्थ निकालनेके यत्नमें थी।

बाइबिलके मतके अनुसार सृष्टि-उत्पत्तिके जो सिद्धान्त हैं वह कुछ इस प्रकारके हैं—

१. इस सृष्टिकी उत्पत्ति अभावसे हुई।

२. सबसे पूर्व पृथ्वी और आकाश बना और परमात्माकी आत्मा जलके ऊपर उतराती थी। फिर प्रकाश और अन्धकार बनाये गये, जल बनाया गया और भूमि बनाई गयी। फिर फल फूल बने। दिन, रात्रि, ऋतु बनीं। फिर नाज या पानी बने और तत्पश्चात् जलजन्तु। इतना होने पर चौपाये पशु बने। तत्पश्चात् परमात्माने अपने स्वरूपका मनुष्य बनाया, नर और मादा दोनों बने। यह सब काम ६ दिन हुआ सातवें दिन परमात्माने विश्राम लिया।

अस्तु आगस्टाइन जो ईसाई धर्मका कट्टर विश्वासी था, इन सिद्धान्तोंके विरुद्ध न जा सका। उसने भी यही कहा कि संसारकी उत्पत्ति अभावसे हुई है। इसके साथ ही साथ उसने यह भी कहा कि परमात्माने भौतिक पदार्थोंको कुछ ऐसी शक्ति प्रदान की है कि जिनसे वह स्वयं अपना विकास कर सकें और इसकी शक्तिसे वृक्ष तथा अन्य प्राणी उत्पन्न हो गये। इस प्रकारसे आगस्टाइनने दोनों ओर अपनी धाक जमाई। न उसने धर्मवादियोंका ही विरोध किया, न वैज्ञानिकोंका ही। उसका यह कथन कितना कौतूहल जनक है कि 'कुछ बहुत छोटे पशु पाँचवें अथवा छठे दिन नहीं पैदा किये गये होंगे; उनका विकास भौतिक पदार्थोंसे हुआ होगा।'

इसकालको हम यहीं छोड़ना चाहते हैं और अब दूसरे कालमें पदार्पण करना अधिक उपयुक्त होगा।

परिवर्त्तन काल

सन् १६०० ई० के पश्चात्का काल वैज्ञानिक संसारमें विशेष उल्लेखनीय है। सन् ९८० से १०३७ तक एविसीनाका काल रह चुका है, जिसका जन्म बुखारामें हुआ था। हम इसका उल्लेख पहले नहीं कर सके। इसने एक मनोरञ्जक सिद्धान्त पहाड़ों-के विकाशका उपस्थित किया है। वह कहता है कि 'पहाड़ दो कारणोंसे बने होंगे, एक तो तब जब कि मिट्टीके एक स्थानपर एकत्रित हो जानेसे कोई सबल भूडोल आया होगा; दूसरे तब जब कि किसी स्थानसे भूमिके कोमल भागको ही वायु या पानी बहा ले गया होगा और पथरीला दृढ भाग उस स्थानपर रह गया होगा; यह भाग ही पहाड़ोंके रूपमें उपस्थित है।'

हम ऊपर लिख चुके हैं कि इस समय कुछ लोग अपने सिद्धान्तोंको दृढता पूर्वक प्रकाशित करते थे—चाहे वह सिद्धान्त धर्म पुस्तकके विरुद्ध ही क्यों न हों। ऐसे समयमें धर्माचार्य्योंने वैज्ञा-निकोंके विरुद्ध जो ध्वनि उठाई वह बड़ी हृदय विदारक थी। पेरिसके धर्मशास्त्रके मुख्याधिष्ठाता सोरबोन ने भूगर्भ वेत्ताओंकी पुस्तकोंके भस्म करने-की क्रूर आज्ञा प्रकाशित की थी, इसी तरह बफनके विरुद्ध भी विशेष प्रतिरोध किया था जिसने निम्न सिद्धान्त बाइबिलके प्रतिकूल प्रचारित किया था—'समुद्रके जलने पहाड़ और खाइयां बनाई हैं; आकाशका जल उन सबको समतल करके किसी दिन समुद्रमें बहा देगा। एक समय आयगा जब समुद्र अपना स्थान छोड़ कर दूसरे स्थानमें जायगा और नवीन सूखे, महाद्वीप निकल आयंगे जो वर्त-मान महाद्वीपोंके ही समान होंगे। जब उसके विरोधमें धर्माचार्य्यों ने बड़ा अन्दोलन किया तो उसने गेलीलियोके समान निम्न वाक्य प्रकाशित किये—'मैं इसकी घोषणा करता हूँ कि मैंने कोई भी सिद्धान्त इस उद्देश्यसे प्रकाशित नहीं किया है कि धर्मपुस्तकोंका विरोध हो, उनमें जिस उत्पत्ति क्रमका वर्णन है उसपर मुझे पूर्ण विश्वास है—

इत्यादि" यह युग ही ऐसा था कि विशेष प्रतिरोध होते हुए भी वैज्ञानिकोंके कार्योंकी प्रगति न रुक सकी। जब धर्माचार्य अपने प्रयासमें असफल हुए तो उन्होंने यह घोषणा की।

'वैज्ञानिकोंके अन्वेषणों और ईश्वरीय धर्म पुस्तकोंके सिद्धान्तोंमें कभी विरोध हो ही नहीं सकता। जो कुछ विरोध हमें प्रत्यक्ष होता है वह केवल इस कारणसे कि हम भ्रममें पड़कर धर्म-पुस्तकोंके वाक्योंके वास्तविक अर्थ नहीं समझते।'

इस युगमें शरीर विज्ञानके मुख्य नेता चार हुए हैं—१. लिनीअस २. बफन ३. कुविअर तथा ४. लेमार्क। लिनीअस रोशल्ट (स्वेडन) में १७०१ ई० में पैदा हुआ था। इसने वर्तमान विभाजन तथा नामावलीका आरम्भ किया था। बफन भी इसी वर्ष उत्पन्न हुआ और सन् १७८८ में मर गया। वह जातियोंकी स्थितिमें विश्वास नहीं रखता था। अन्य विकासवादियोंके समान वह भी परिवर्तन स्वीकार करता था। वह उदाहरण देता है कि सूअरिया वास्तवमें एक जाति नहीं है वरन कई जातियोंका सम्मेलन है। उसका कथन है कि भूमि तथा समुद्रोंके परिवर्त्तनोंके कारण बहुतसे परिवर्त्तन हुए हैं। जलवायुका भी समुचित प्रभाव पड़ा है। बफनको धर्माचार्य्य सोरबोनका बड़ा भय था इसी हेतु उसने कभी अपने सिद्धान्त खुल्लमखुल्ला नहीं कहे। वास्तवमें वह मनुष्य और बन्दर, घोड़ा और गधाके वैकासिक सम्बन्धसे परिचित था; पर आचार्य्यके डरसे इनका विरोध करता रहा क्योंकि बाइबिल इनका विरोध करती है। बफन और लेमार्कके बीचमें ही जगत् प्रसिद्ध चार्ल्स डारविनके बाबा इरेसमस डार्विनका समय आता है जो सन् १७३१ ई० में पल्टनमें पैदा हुए थे। वह अपने विकासवादकी पुष्टिमें निम्न हेतु प्रस्तुत करते हैं—

(१) हम एक प्राणीका दूसरे प्राणीमें परिवर्त्तन होनेका विचार कर सकते हैं, जैसे उपमेंढक (tadpoled) का मेंढक हो जाना।

(२) वाह्य साधनों द्वारा (artificial cultivation) जनित प्रभाव-जैसे घोड़े, कुत्ते, भेड़ आदि के पालनेमें।

(३) जलवायु तथा ऋतुओंका प्रभाव—गर्म देशकी भेड़ोंके बाल छोटे होते हैं, और सर्द जगहोंकी भेड़ोंके घने।

(४) परिश्रम तथा स्वभावसे शारीरिक गठन में परिवर्त्तन होना जैसा कि भिन्न भिन्न व्यवसाय-वाले मनुष्योंकी गठनमें परिवर्त्तन प्रतीत होता है।

(५) अंग भंग (artificial mutilation) का तथा जन्मके पूर्वका प्रभाव।

(६) प्राणियोंमें एक नियमित समानता मिलना।

इन कारणोंसे इरेसमस डार्विनको विकासवाद में विश्वास हुआ था। उसका कथन है कि बहुत सम्भव है कि मनुष्यका विकास बन्दरोंसे हुआ हो।

लेमार्क सन् १७४४ में बीज़ण्टीन (पिकार्डी) में उत्पन्न हुआ था। इसने एक नियमित अवतार (regular descent) का सिद्धान्त निकाला। इसका कथन है कि जीवनके आरम्भमें सबसे पहले छोटे छोटे 'साधारण' जीवजन्तु और पौधे ही थे, इनसे 'विशेष' की उत्पत्ति हुई। बानरोंके समान मेमलों से ही उत्तरोत्तर कालमें मनुष्य बना। लेमार्क जीवनको भौतिक क्रिया मानता है; जिसका आधार भौतिक, यान्त्रिक तथा अन्य कारण हैं जो प्रकृतिके अन्दर ही वर्तमान हैं। वह आङ्गिक (organic) विकासके यह कारण बताता है—(१) जीवन अपनी आन्तरिक शक्तियोंसे प्रत्येक जीवित अंगका आयतन बढ़ानेका यत्न करता है। (२) पशुओंकी नवीन आवश्यकताओंसे नवीन गति उत्पन्न होती है और उससे नये अंग उत्पन्न होते हैं। (३) अंगोंका विकास उनके कार्योंका समानुपाती है। (४) नवीन विकास नवीन जातियोंमें परिवर्त्तित हो जाते हैं।

लेमार्क अपने इन हेतुओंकी पुष्टिमें अनेक उदाहरण प्रस्तुत करता है, जो विस्तार भयके कारण नहीं लिखे जाते।

वान बेअर सन् १७६२ में उत्पन्न हुआ और १८७६ में इसकी मृत्यु हुई। इसने प्राणियोंकी आरम्भिक अवस्था ( गर्भ होनेके समयसे बालक उत्पन्न होनेके पूर्व तककी अवस्था ) का अध्ययन किया था। इसका कथन है कि मैंने उन उन पशुओंके भ्रूणोंकी इस अवस्थाका अध्ययन किया जो बड़े होने पर एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न प्रतीत होते हैं और आश्चर्य्यकी बात है कि उनमें मुझे इतनी समानता मिली कि उनमें भेद करना असम्भव था।

आधुनिक काल

आधुनिक कालके प्रसिद्ध नेता ४ व्यक्ति हैं—(१) चार्ल्स-रावर्ट-डार्विन (२) अलफ्रेड रसल वैलस (३) हर्बर्ट स्पेन्सर तथा (४) टामसहेनरी हक्सले। इनमेंसे प्रथम दो तो वैज्ञानिक विकाश वादसे सम्बन्ध रखते हैं तथा शेष दोनोंका अधिक सम्बन्ध दार्शनिक विकाशवादसे है। भौतिक परिवर्त्तनोंका उल्लेख वैज्ञानिक विकाशके अन्तर्गत है पर विचार तथा सभ्यताका विकाश दर्शनसे अधिक सम्बन्ध रखता है।

डार्विन महोदयका जन्म १२ फर्वरी १८०६को श्रूअस बरीमें हुआ था। देशी पाठशालाओंकी शिक्षा समाप्त करके एडिनबरा और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंमें इसने प्रवेश किया। १८५६ ई० में उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'ओरिजिन आव स्पेशीज' ( Origin of Species ) प्रकाशित की। २६ अप्रेल १८८२को वह कालका ग्रास बना और न्यूटनके निकट वेस्टमिन्स्टर अबेमें उसे स्थान मिला। डार्विनने सन् १८३१ से १८३६ तक बीगिल नामकके जहाज़ पर कार्य किया था, अतः उसे सामुद्रिक यात्राका सौभाग्य मिला। इस समयमें उसने प्राकृतिक निरीक्षण भली प्रकार किया, भिन्न भिन्न पशु-पक्षियों के प्राकृत-रूपका विवेचन ही उसका मनोरञ्जन था। इस समयमें उसने पारस्परिक प्रतिद्वन्द्वता तथा जीवन-कलनके सिद्धान्तका विशेष अवलोकन किया। इन सबका वर्णन उसने अपनी उपर्युक्त पुस्तकमें किया है।

वैलसका जन्म ८ जनवरी १८२३ को यस्कमें हुआ था। अमेज़न नदीके कूलवर्त्ती प्रान्तोंमें इसको कार्य्य करनेका अवसर मिला और वहाँका निरीक्षण करनेके पश्चात् उसने कई पुस्तकें लिखीं। मलाया-द्वीप समूहमें भी इसको जाना पड़ा। वहाँसे उसने बहुत से लेख लिखे और वहाँका वर्णन भी पुस्तकाकार प्रकाशित किया। डार्विन और इसके सिद्धान्त मुख्यतया समान ही हैं। कहीं कहीं कुछ भेद अवश्य हो गया है। सन् १६१३ में वैलसकी मृत्यु हो गई।

२७ अप्रेल १८२० को डर्बीमें हर्बर्ट स्पेन्सरका जन्म हुआ था। इसने अपनी पुस्तक 'Principles of Psychology' में विकाशवादकी ओर कुछ संकेत किया है। शारीरिक विकाशके साथ ही यह सामाजिक विकाश भी मानता है। उसका कथन है कि शारीरिक विकाशके जो सामान्य नियम हैं वह समाजके विषयमें भी उसी प्रकार लागू हो सकते हैं। १६०३ ई० में इसकी मृत्यु हुई।

हक्सलेका जन्म ४ मई १८२५ ई० को ईलिङ्गमें हुआ था। वह एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। उसने अपने अन्वेषणोंका एक विस्तृत वर्णन लिखा है। डार्विनकी Origin of Species प्रकाशित होने पर उसे विकाशवादमें दृढ विश्वास हो गया था। 'मैन्स प्लेस इन नेचर' (प्रकृतिमें मनुष्यका स्थान) नामक पुस्तकने उसे विशेष प्रसिद्ध प्राप्त कराई। इसका मृत्यु सन् १८६५ ई० में हुई।

यहां हम इन लोगोंके विस्तृत सिद्धान्तोंका कुछ भी वर्णन नहीं दे सके हैं। पर तब भी इस संक्षिप्त इतिहाससे विकाशवादकी प्राचीनता तथा स्पष्टता प्रकट हो जायगी। आजकल विकाशवादको सभी पश्चिमीय विद्वान स्वीकार करते हैं पर पूर्वीय जनताको तो यह कौतूहल-जनक ही प्रतीत होता है कि उनके पूर्वज बन्दर थे। बस प्रसिद्ध कवि अकबरका यह पद याद रखना चाहिये—

मशरिक़ीको है ज़ौक़े रूहानी। मग़रिबीमें है मेले जिस्मानी॥
कहा मन्सूर ने खुदा हूं मैं। डारविन बोले बूज़नां हूं मैं॥

—सत्यप्रकाश विशारद

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति॥ तै० उ०। ३। ५॥

भाग १८ } धन, संवत् १९८०। दिसम्बर, सन् १९२३ { संख्या ३

## अणुवीक्षण-यन्त्रके कुछ विचित्र उपयोग

उन बहुत से वैज्ञानिक यन्त्रोंमेंसे, जिनका प्रयोग व्यापार तथा व्यवसायमें किया जाता है; बहुत कम ऐसे हैं, जो अणुवीक्षण-यन्त्र-के समान आवश्यक हैं।

रेल-गाड़ीमें निश्चिन्त होकर सफ़र करना अणुवीक्षण-यन्त्र सम्बन्धी अन्वेषण पर आश्रित है, जिसके कारण फ़ौलादी रेलोंमें (जिन पर गाड़ी चलती है) अत्यावश्यक सुधार हुए हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि जहां पहले आकस्मिक दुर्घटनाएं बहु-संख्यामें सुननेमें आती थीं, रेलोंकी फ़ौलाद पहलेसे अधिक अच्छी होनेसे अब कभी ही कोई ऐसी दुर्घटना समाचार-पत्रोंमें पढ़नेमें आती है।

फ़ौलाद बनानेवालेके लिए वास्तवमें अणुवीक्षण-यन्त्र एक अमूल्य वस्तु है, क्योंकि इसीसे वह अपने कामकी सच्ची फ़ौलाद चुन सकता है। हालमें ही विज्ञानविदोंने यह सिद्ध किया है कि फ़ौलादके गुणोंका अनुमान उसके अवयवोंके ज्ञानसे नहीं लगाया जा सकता, प्रत्युत अणुवीक्षण यन्त्रसे देखी गई उसकी बनावट ही उसके गुणोंकी परीक्षाका एकमात्र साधन है।

फ़ौलादको तोड़ कर उसका एक टुकड़ा ले लिया जाता है। टूटी हुई तरफ़को साफ़ करके उसकी सतह एक-सी की जाती है। तदनन्तर तेजाब डालकर उसकी सतह खुरदरी बनायी जाती है। अम्ल फ़ौलादका ऊपरी भाग खा जाता है, भीतरी ढलाई बाहर निकल आती है। उसे तब अणुवीक्षण-यन्त्र द्वारा देखा जाता है, जिससे वास्तविक गुणोंका ज्ञान हो जाता है।

अणुवीक्षण-यन्त्र यह बताता है कि तीक्ष्णसे तीक्ष्ण उस्तुरेकी धार भी बिल्कुल सीधी नहीं होती; उसमें आरेकी तरह दाँते होते हैं। बनानेवाला तो केवल यही देखता है कि यह दाँते नियमसे लगे हैं या नहीं, क्योंकि यदि यह क्रमसे न लगे हों तो ब्लेड (फल) हजामत बनवानेवालेकी त्वचाको नोच डालेगा।

ग्रामोफ़ोनके रिकार्ड बनानेवाला रिकार्ड-की दोनों ओरकी समताकी परीक्षा करनेके लिए अणुवीक्षण-यन्त्रका प्रयोग करता है। परीक्षाके बाद उसमें ध्वनि-तरंगें भरी जाती हैं। परन्तु इस यन्त्रसे जब ध्वनि-तरंगें मनुष्यको पहाड़ियां और तराइयां प्रतीत होती हैं तो वह चकित हो जाता है।

रुईका कच्चा तार जब अणुवीक्षण-यन्त्र द्वारा देखा जाता है तो केवल उसके छिद्रोंका ही ज्ञान नहीं होता प्रत्युत् उसके गुणोंका भी; जितने अधिक उसमें तन्तु होते हैं उतनी अधिक उसमें जीवन-शक्ति होती है। इसी प्रकार इस यन्त्र द्वारा ही असली और नक़ली रेशममें, वनस्पति तथा कोलटारसे बने रंगोंमें भी पहचान की जाती है।

इनके अतिरिक्त अन्य व्यवसाय तथा उद्योग धन्दे जिनमें अणुवीक्षण-यन्त्र बड़ी सहायता देता है यह हैं—कृषि तथा फलकी खेती,* जौहरी तथा सुनारका काम, घड़ीसाज़ी, काग़ज़ बनाना, बर्तन बनाना, काँचका काम, इंजिनियरिंग तथा फ़ोटो-ग्राफ़ी।

कई बड़े नगरोंमें धोबी भी अणुवीक्षण-यन्त्रका प्रयोग करते हैं। इस यन्त्र द्वारा धोबी यह देखता है कि क्या वास्तवमें ही वस्त्र उससे फटा वा जला है या वैसे वस्त्रकी आयु ही उतनी थी, क्योंकि इस यन्त्रसे तो कपड़ेके तार ख़ासे मोटे रस्से मालूम होते हैं।

धर्मवीर, लाहौर।

* अधिकतर अमेरिका तथा यूरोपके कृषक ऐसा करते हैं। भारतमें भी लङ्का, आसाम तथा शिमलामें कई कृषक अणुवीक्षण यन्त्रका प्रयोग करते हैं—लेखक।

## वृक्षोंकी खोजमें

हमारे देशमें कुछ ऐसे वृक्ष लतादि हैं जिनके फल या रसके व्यवहार करनेसे मनुष्य बहुत दिन तक स्वस्थ रह सकता है। ऋषि विश्वामित्रने राम और लक्ष्मणको ऐसी ही जड़ी बूटियोंका पता बताया था। उनके खानेसे मनुष्यको भूख प्यास नहीं सताती, शरीरमें अतुल बल और तेजकी वृद्धि होती है। किन्तु हम लोगोंको ऐसे लतादिका पता नहीं है। हम उन्हें भूल गये हैं। हां, खोजने पर उनका पता लग सकता है। किन्तु उन्हें ढूँढे कौन? जंगलोंमें भूत-प्रेत हिंस्र पशु रहते हैं; इस काममें प्राणोंका भय है। प्राणोंका भय सभी प्राणियोंको होता है; अनावश्यक बन जंगलोंमें घूम कर अकालमें प्राण देनेकी अपेक्षा भारतवासी एक वक्त खाना—आधा पेट भरना—और घर में निश्चेष्ट होकर बैठे रहना कहीं अच्छा समझते हैं।

यूरोप और अमेरिका आदि देशोंकी बातें जुदी हैं। वहांके लोग मृत्युको पराजित कर जीना चाहते हैं। जितने दिन वह जीते हैं मनुष्यकी तरह जीते हैं। किसी कामसे अपनी और दूसरोंकी सुख वृद्धि तिलमात्र भी होनेकी सम्भावना देखते हैं तो अपने प्राणोंको तुच्छ समझ उस काममें लग जाते हैं। अमेरिकाके संयुक्तराष्ट्रके कृषि विभागके कुछ मनुष्य गत २५ वर्षसे पृथ्वीके जंगलोंके नये नये वृक्ष लतादिकी खोज कर रहे हैं। इस खोजसे उन्होंने ५१,००० नई तरकारियोंका आविष्कार किया है। उन्हें वह अपने देशमें खेती करनेके लिए भेज रहे हैं। संयुक्तराष्ट्र उनकी खेती कर मालामाल हो रहा है और भारतवासी मुंह ताक रहे हैं।

प्रायः प्रतिदिन एक दो नये प्रकारके अन्न या फल संयुक्तराष्ट्रके कृषि विभागमें परीक्षाके लिए आते हैं। रशियामें एक प्रकारका गेहूँ होता है। सन् १९२१ ई० में संयुक्तराष्ट्रके कृषि विभागने उसकी

खेती अपने देशमें करना आरम्भ किया। आज कल यही गेहूँ प्रायः दस करोड़ रुपये सालका पैदा हो रहा है। अमेरिकामें ईजिप्टकी रुईकी खेती हो रही है। उसका वार्षिक मूल्य प्रायः दो करोड़ रुपया है। जापानी चावल और सुड़ानी घाससे भी संयुक्तराष्ट्रके मनुष्य सालमें प्रायः आठ करोड़ रुपया पैदा कर रहे हैं।

इन पदार्थोंके आविष्कारके लिए वहांके मनुष्य ऐसे घने जंगलमें जाते हैं जिसकी कल्पना भी हम लोग नहीं कर सकते। अफरीकाके जिन जंगलोंमें प्रायः दो हज़ार वर्षसे सूर्य्यकी किरणें प्रवेश नहीं कर सकी हैं; बाघ, सिंह, भालू आदि पशु जहां मनुष्यकी ताकमें हमेशा बैठे रहते हैं, जहां मच्छड़ मनुष्यको पाते ही खा जानेकी फिक्रमें लग जाते हैं उन्हीं स्थानोंमें संयुक्तराष्ट्रके वीर देशके कल्याणके लिए प्रवेश करते हैं। उन्हें केवल एक मात्र धारणा यही है कि यदि मरें तो एक मात्र देशके कामके लिए मरें। ज्वर बीजसे पूर्ण दलदली भूमिमें जो भ्रमण करते हैं, जहां सौ मनुष्योंमें एकके बचनेकी सम्भावना रहती है—उनमेंसे न मालूम कितने मनुष्योंने प्राण गँवाये हैं। इतना कष्ट उठाने पर यदि वह मनुष्यके खाने योग्य कोई एक नया फल, शस्य आविष्कार करते हैं तो यह सोच कर अपने श्रमको सार्थक समझते हैं कि उनके आविष्कृत पदार्थ द्वारा देशका कुछ धन बढ़ेगा।

सब विषयोंके जानने पर भी यह मनुष्य अफरीका चीन, मंचूरिया, दक्षिण अमेरिका और पृथ्वीके अन्यान्य देशोंके जंगली स्थानोंमें वर्षोंसे निर्ज्जन वास कर रहे हैं। जब कोई नया पदार्थ मिलता है तो वह संयुक्तराष्ट्रके कृषि परीक्षागारमें भेज दिया जाता है—वहां उसके दोष-गुणकी परीक्षा की जाती है। यदि परीक्षा द्वारा वह भोजनकी श्रेणीका सिद्ध होता है तो उसकी खेती होने लगती है। कौन पदार्थ किस प्रकारकी मिट्टी, किस प्रकारकी आबहवामें जमता है यह उस पदार्थका जन्म स्थान देखकर बतलाया जा सकता है। अमेरिकाके संयुक्तराष्ट्रमें जो ज़मीन पहले बेकार पड़ी हुई थी उसीमें आजकल नये नये शस्योंकी खेती हो रही है।

उत्तर प्रदेशके कृषक आजकल अधिकतर रशियासे आये हुए एक विशेष प्रकारके गेहूंकी खेती कर रहे हैं। इस गेहूंका नाम Durum wheat है। इस समय प्रायः एक करोड़ बीघोंमें इसकी खेती होती है। कैलिफोर्नियामें एक नये प्रकारके नीबूकी खेती हो रही है। यह नीबू पहले पहल ब्राज़िलसे लाया गया था।

इस कार्य्यमें सर्व प्रथम मि० बारबर लैथरपई लगे। उन्होंने और मि० डेविड फेराव चाइल्डने प्रायः तीन वर्ष तक पृथ्वीके अनेक देशोंमें घूम फिर कर नाना प्रकारके अन्न और फल अमेरिकाको भेजे। उन्हींके कार्य्य पर कृषि विभागका विराट कार्य्य—परीक्षा करनेका—अवलम्बित है। फ्राङ्क एनमेयर यही काम करते करते मर गये। वह अकेले चीन, साइबेरिया, तुर्किस्तान, कोरिया प्रभृति स्थानोंमें अकेले नये नये खाद्य द्रव्योंकी खोजमें नौ वर्ष तक घूमते रहे। वह प्रायः दस हजार माइल पैदल चले। समय समय पर चीनी दस्युओंका आक्रमण उन्हें अकेले सहना पड़ा। किसी मनुष्यका मुंह देखे बिना उन्हें जंगलमें आठ आठ नौ नौ महीने तक रहना पड़ा। उन्होंने अपने देशमें हज़ारों प्रकारके फल भेजे हैं। इन फलोंका व्यवसाय कर बहुत से मनुष्य लखपती हो गये हैं और हो रहे हैं। वह शायद और बहुत सा काम करते किन्तु देश लौटनेके समय हठात् जहाजके डूब जानेसे उनकी अकाल मृत्यु हो गई। उनके नामसे एक पदक है। कृषि-सम्बन्धी सबसे अधिक कौशल दिखाने वालेको कृषि विभाग यह पदक देता है।

डी. एच. एल. सानदृज़ एक और नामी आदमी हैं। उन्होंने अफरीकाके प्रायः सभी जंगलोंको अकेले ही छान डाला है। उन्होंने प्रायः ६००० मील भ्रमण किया और १६०० प्रकारके नये नये पदार्थोंको अफरीकासे संयुक्तराज्यमें भेजा। केप कलोनीमें उन्हों-

ने पशुओं (घोड़ा, बैल, भैंस आदि) के खानेके योग्य एक प्रकारकी घासका पता लगाया, संयुक्तराष्ट्रका पच्छिमीय भाग जो पहले परती पड़ा हुआ था आजकल इसी घाससे परिपूर्ण मिलता है। पूर्व अफरीकामें उन्होंने एक प्रकारके कद्दूका पता लगाया जो प्रायः तीन फुट लम्बा होता है। उसका बीज खानेमें बादामका सा लगता है और सुगन्धयुक्त होता है। यह बीज पुष्टिकारक भी है।

डा० जे. एफ. रफ ब्रह्मामें चालमुगराकी खोजमें आये थे। चालमुगराका तेल कुष्ट रोगकी महौषधि है। इस नामके बहुत से वृक्ष हैं, किन्तु असली चालमुगरा बहुत कम जगहोंमें मिलता है। बड़े कष्ट सहकर बड़ी मेहनतके बाद उन्होंने चालमुगराका यथेष्ट बीज जमा कर अमेरिकाको भेजा। आजकल अमेरिकाके हवाई प्रदेशमें चालमुगराकी खेती अच्छी तरह हो रही है।

हमारे घरके आस पास ही कितने ही प्रकारके फल उत्पन्न होते हैं; किन्तु हम लोग उनका नाम जाननेकी भी परवाह नहीं करते। दूसरेके बागीचेमें कोई अच्छा फल उत्पन्न होते देख हम उसे पानेके लिए लालायित होते हैं; किन्तु उसे उत्पन्न करनेका कष्ट उठाना नहीं चाहते। हमारे पिता पितामह आदिने आम जामुन कटहल आदि खाकर जीवन धारण किया था; हम भी उससे अधिक कुछ नहीं चाहते? लोभ ही मनुष्यको पापी बनाता है और वही मृत्युको बुलाता है। इसीलिए हम लोग ज्ञानीकी नाईं जो सामने पाते हैं खाकर जीवन निर्वाह करते हैं और दूसरे देशके लोगोंको जो जहां तहां घूम फिर कर अपने प्राण दे देते हैं बेवकूफ समझते हैं; किन्तु "हम गरीब हैं; खाना नहीं पाते" इसे बुलन्द आवाज़ से पुकारते भी हमें लज्जा नहीं आती।

—श्री० रमेशप्रसाद बी. एस-सी.

---

# लड़ाईके नये शस्त्र

[ले० साहित्यशास्त्री पं० रामप्रसाद पांडेय, विशारद, काव्यतीर्थ]

यूरोपीय महासमर समाप्त हो जाने पर भी पाश्चात्य देशके आविष्कारक नये नये संहारकारक शस्त्रोंके आविष्कारसे विरत नहीं हुए हैं। वह नूतन शस्त्र प्रस्तुत कर रहे हैं। उस सम्बन्धमें पियसन्स मेगज़ीनमें एक लेख प्रकाशित हुआ है, उसीके आधार पर हम विज्ञानके पाठकोंको कतिपय नये शस्त्रोंसे परिचित कराते हैं।

### अग्नि-वर्षक यंत्र

फ्रांसमें यह अस्त्र बना है। इसमें तेल और स्फोटक पदार्थ भर देते हैं। यह जमीन अथवा हवाई जहाज परसे फेंका जा सकता है। स्फोटक के कारण तेल चारों ओर विक्षिप्त हो जाता है। इस अग्नि वृष्टिसे रेजिमेण्ट्सके रेजिमेंट नष्ट हो सकते हैं।

### जर्मनीकी तोपसे भी बड़ी तोप

फ्रांसवालोंने इस तोपका निर्माण किया है। इसके द्वारा गोला २०० मील फका जा सकता है, विशेषता यह है कि छूटनेके बाद उसकी तेज़ी बढ़ती ही जाती है।

### शेल गोलोंकी माला

एकके बाद दूसरे गोलेको पिरोकर एक माला तैयार की जाती है और एकके बाद दूसरा छूटता जाता है। यह गोले १२५ मील तक फेंके जा सकते हैं। आशा है कि और परिश्रम करनेसे गोले और दूर फेंके जा सकेंगे। इसके द्वारा बर्लिनसे लण्डन, और वायनासे पेरिस पर गोले फेंके जा सकेंगे। यह भी फ्रांसवालोंकी ही कारीगरीका नमूना है।

### मोटर तोप

जर्मनीवालोंने मोटरयुक्त तोप बनाई है। यह एक घण्टेमें ५०, ६० मील दौड़नेके साथ ही गोले भी बरसाती जायगी।

विक्षेपास्त्र

गत ६ महीनेमें इसकी फेंक बहुत बढ़ गई है। अब इसके द्वारा बड़ी सरलता से सौ सौ मील गोले फेंके जा सकेंगे।

चालक हीन टारपेडो

अब टारपेडो बिना चलानेवालेके भी चल सकेंगे। यदि लक्ष्य दृष्टिगोचर न भी हो तो भी यह उस पर चलाये जा सकेंगे। इसमें सैकड़ों टन स्फोटक पदार्थ भरे जा सकते हैं। यह अपने लक्ष्य पर जाकर फट जाता है और नगरका नगर ध्वंस हो जाता है।

आकाशमें चलने वाला बृटिश १० इञ्ची टारपेडो तारहीन यन्त्रके द्वारा चलाया जाता है। जब यह फटता है तो ५० फुटके भीतरकी सभी चीजोंको ध्वंस कर देता है इसलिए लड़ाकू जहाजोंको नष्ट करनेके लिए इसे किसी दूसरे अस्त्रकी सहायताकी जरूरत न पड़ेगी। यदि वह ५० फुटके अन्दर पड़ गये तो उनका खातमा समझिये।

बिजली वाला स्फोटक

वैज्ञानिक हार्ज (Hetrz) ने यह यंत्र तैयार किया है जिसके द्वारा बिजलीकी लहरें पैदा करके शत्रुके बारूद गोलेमें आग लगाई जा सकेगी। इस यंत्रका चलाना इतना सरल है कि एक लड़का भी इसका एक बटन दबा कर हजारों टन बारूद और गोलाका नाश कर सकता है।

विषैली गेसकी टंकी

एक टंकमें जहरीली गेस भर कर उसका मुँह शत्रुकी ओर कर देते हैं। बस उसमेंसे वह विषैली हवा निकल कर ऐसा मटियामेट करती है कि किसी चीजका चिन्ह भी शेष नहीं रह जाता। यह निश्चय है कि इससे आत्म रक्षा करनेका कोई भी उपाय नहीं है।

बृटिश बिजलीकी तोप

अंगरेजी वैज्ञानिकोंने एक तोपका आविष्कार किया है जिसके द्वारा निकली बिजलीकी लहरोंसे ही शत्रुका प्राण नाश हो जायगा किसी गोले बारूदकी जरूरत न पड़ेगी।

चालक हीन लड़ाकू जहाज

जर्मनीके विद्वानोंने इस जहाजका निर्माण किया है। यह आकाशमें रहनेवाले हवाई जहाजके द्वारा चलाया जायगा। हवाई जहाजमें बेतारके तारवाले यंत्रसे निकली बिजलीकी लहरोंसे इसका नियंत्रण होगा। यह कभी आगे कभी पीछे कभी इधर कभी उधर चलाया जा सकेगा। इस तरह वह ठीक उसी तरह चलाया जाता है जैसे कोई ड्राइवर चलाता हो। मालूम पड़ता है कि मानों कोई भूत ही इसे नियंत्रण करता हो। यह जहाज उड़ भी सकेगा। आकाशमें चलनेकी इसकी शक्ति और भी तेज हो जायगी। विद्वानोंका मत है कि यह बड़े बड़े जहाज कुछ ही मिनटोंमें डुबा देगा।

यह यूरोपीय शिक्षाका सुफल है। भगवान करे ऐसी शिक्षाका भारतमें कभी प्रचार न हो; हमें तो यह वर्णन पढ़कर एक पुराना श्लोक याद आता है:—

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद्, ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय॥

---

## कुछ विवाहकी रस्में

[ ले० श्री० जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार ]

पंजाब प्रान्तमें विवाहके अवसर पर कुछ रस्में हुआ करती हैं। लोग उनका वास्तविक अभिप्राय तो समझते नहीं; परन्तु परम्परासे चली आई रस्मोंको ऐसे आग्रहसे करते हैं जैसे वह उनकी शास्त्रीय विधियां हों। यदि वह रीति रिवाज न बरती जायँ तो स्त्री संसारमें बड़ा विक्षोभ उत्पन्न होता है। उनके करनेमें पुरोहितोंका भी कोई भाग नहीं होता है। बंगलामें इन रीतियोंको 'स्त्री-आचार' के नामसे पुकारा जाता है। इनमेंसे कुछका उल्लेख करते हैं।

१. चक्कीचंग—खत्रियोंमें विवाहके पहले सब सम्बन्धी लोग वरके घरपर इकट्ठे होते हैं और पुरोहित माषकी दाल और चक्की लाता है। और दाल दलता है। उस दालकी बड़ियां बनाकर सुखाकर सब सम्बन्धियोंको बांटी जाती हैं, कई स्थानों पर यह रिवाज मुसलमान लोग भी करते हैं। इसीको संयुक्तप्रान्तमें चकरी टीकना कहते हैं।

२. माइयां या साहे बैठाना—विवाहकी तिथिसे ७ या ८ दिन पूर्व वर बधू अपने घरसे तब तक बाहर नहीं निकलते जब तक डोलीका रिवाज न हो ले। यही रिवाज माइयां या साहे बैठना कहाता है। इन दिनोंमें वर बधूके शरीर सौंदर्यकी वृद्धिके लिए घरकी औरतें उन्हें उबटना आदि लगाती हैं। इन दिनों वह प्रायः मैले कपड़े ही पहना करते हैं।

३. मेहँदी—इन ७, ८ दिनोंमें रातको प्रतिदिन दोनोंके हाथोंमें मेहँदी भी लगाई जाती है।

४. बारी और खाट—विवाहके अगले दिन कन्याके गृहपर सब बिरादरीके सामने दहेज और दोनों तरफ़से दिये जानेवाले कपड़े और आभूषण आदि एक सुन्दर पलंग पर रखे जाते हैं और बिरादरी-को दिखाये जाते हैं।

५. छन्द कहानी—वरकी योग्यताकी परीक्षाके लिए कन्या पक्षके सम्बन्धी वरको विवाहके पहले दिन या रातको कभी किसी समय बुलाकर उससे छन्द और दोहे सुनकर परीक्षा लेते हैं यह रसम 'छन्द' या छन्द कहानी कहाती है।

६. सिया सुपारी—विवाहके दो एक दिन बाद कन्या पक्षके लोग एक कपड़ेमें सुपारी और अन्य वस्तुएं बाँधकर किसी नौकर या लोहार बढ़ईके घर पर छिपा देते हैं। वर उन्हें ढूंढकर लाता है। वह हरेकसे सुपारीकी पोटली ढूंढ लानेमें सहायता मांगता है और घूंस देता है और आखिर ढूँढकर ले आता है। यह मानों रावणके घर छिपी सुपारी रूप सीताके अन्वेषण कर लानेकी 'राम-परीक्षा' है। यह रिवाज खत्रियोंमें है।

७. घोड़ी—वर यात्रा करके वर कन्याके घर पर पहुँच कर भी घोड़ीसे तबतक नहीं उतरता जब तक कन्या काले कम्बलमें लिपटकर घोड़ीके नीचे से नहीं गुज़र लेती। यह रिवाज प्राचीन कालके कन्यापहरणका शेषांश है। क्षत्रियोंमें जब विवाह रचा जाता था तो योग्य योग्य राजकुमार स्पर्धासे कन्याका पाणिग्रहण करने आते थे। तब नवयुवती वीर क्षत्रिय कन्या अपने हृदय स्वामीके पास कम्बल आदिमें अपनेको छिपाकर उसके घोड़ेके नीचे आ छिपती थी अर्थात् वह स्वयं उसके पास आजाती थी। उसीके साथ कन्याका पिता विवाह करनेको बाधित होता था। मानों कन्या अन्य अभिलाषुक राजकुमारोंसे खिन्न होकर उसीके पास त्राण चाहती थी।

८. लस्सी मुन्दी या कंगन खेलना—विवाह संस्कारके बाद अगले दिन, एक बड़े थाल या परातमें दूधकी कच्ची लस्सी बना कर डाल दी जाती है और कुछ दूबके साथ रुपया चवन्नी या दुअन्नी या अंगूठी थालमें छोड़ दी जाती है। दोनों उसको ढूँढ़ते हैं और लोग देखते हैं कि वर बधूमेंसे कौन पहले खोज निकालता है। जो खोज ले वही वीर विजयी समझा जाता है।

वास्तवमें यह विनोद विवाह होने पर परस्पर परिचय वृद्धिके लिए किया जाता है, जिससे दोनों परस्परके व्यवहारमें एक दूसरेसे संकोच न करें।

९. खड़कने—खत्रियोंमें बिदाईके अवसरपर वर को घरपर बुलाकर कन्याके सम्बन्धी वर बधू दोनों के सामने एक प्यालेमें सत्तू या चूर्मा ढककर रख दिया जाता है। उसका ढक्कन वर बधूमेंसे एक उठाता है और दूसरा उसको बन्द करनेकी कोशिश करता है।

१०. मुट्ठी खोलना—वर बधू दोनोंके हाथोंमें रुपया रखकर मुट्ठी बन्द कराई जाती है। वरकी मुट्ठी बधू खोलती है और बधूकी मुट्ठी वर खोलता है।

वस्तुतः यह भी परिचय वृद्धिके लिये एक विनोद है। मुट्ठी खोलना वस्तुतः परस्परका हृदय खोलना है।

११. लोट पटा—नीच जातियोंमें वर बधू अग्निकी प्रदक्षिणा न करके एक स्तम्भकी फेरी लेते हैं। ६ फेरी लेनेके बाद बधू वरके दायें भागसे बायें भाग में आजाती है। इसीको 'लोटपटा' कहा जाता है।

१२. दूध साड़ी—घरिया लोगोंमें वर पक्षके लोग कन्याकी माताके सामने जो कपड़े आदि चढ़ाते हैं वह सब एक प्रकारसे कन्याके पालन पोषणका व्यय समझा जाता है; वही दूध साड़ी कहाता है।

---

## मलावरोधका सर्वोत्तम इलाज

[ लेखक—श्री विद्यानिधि, कविराज, डा० वेदव्यास दत्त शर्मा L. M. S., M. D., Ph. D., D. Sc. ]

### वस्तिकर्म (मलाशयको पिचकारीसे धोनेकी विधि)

शरीरोपचयंवर्णं बलमारोग्यमायुष ।
वृद्धिं मल विशुद्धिं च वस्तिः कुर्यादुपासितः ॥

वस्ति ( Colon flushing ) के प्रयोगसे वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती। सुख, आयु, बल, वर्ण, बुद्धि, अग्नि, स्वर, वीर्य और स्थिरताकी वृद्धि होती है। सम्पूर्ण रोग नष्ट होते हैं। बिना किसी तकलीफके बालक, वृद्ध और जवान सब अवस्थाओं वाले स्त्रि-पुरुषोंको सब प्रकारसे लाभ पहुँचता है। अंतड़ियोंका मल कफ, वायु, पित्त और मूत्र, आदिकी शुद्धि होती है। बहुत दिनसे जमकर चिपके हुये स्थिर मलकी सफाई होकर रोगोंकी शान्ति होती है। चरक संहितामें मलावरोधको दूर करनेके उपायोंमें सबसे उत्तम तात्कालिक फलदायक उपाय वस्तिविधि अर्थात् पिचकारी अथवा इनेमा लेना है। गुदद्वारसे पानी चढ़ा कर मलाशयके अन्दर भरे हुए कचरेको धोकर वाहर निकाल देनेको वस्ति या पिचकारी लेना कहते हैं। प्राचीन आयुर्वेद शास्त्रमें वस्ति यंत्रके उपयोगकी बहुत महिमा कही गई है और इसका महत्व आधे चिकित्सा शास्त्रके समान बतलाया गया है।

वस्तिभिर्दीयतेयस्मात् तस्माद् वस्ति रिति स्मृतः ॥
(चरक संहिता सिद्ध स्थान प्रथम अध्याय)

प्राचीन भारतीय वैद्यगण, दस्त और पेशाबकी रुकावट, रक्तविकार, विषमज्वर, मूर्च्छा, उदररोग, तृष्णा, अफरा, मूत्ररोग, प्रदर, वीर्यरोग, मंदाग्नि, अशक्ति, शूल, अम्लपित्त, हृदयरोग ( Heart Disease ) आदि अनेक रोगोंमें और खास कर वायुकी बीमारियोंमें इसका अनेक प्रकारसे बहुत सफलताके साथ उपयोग किया करते थे। किन्तु आजकल देशी वैद्योंकी चिकित्सामें वस्ति-प्रयोगका प्रायः अभाव है। यूरोप और अमेरिकामें इस समय इसका प्रचार बहुत बढ़ गया है। वहांके बड़े बड़े कृतविद्य अनुभवी डाक्टरोंने इस प्रयोगकी महिमा प्रकट की है। इस उपाय द्वारा वह लोग फुप्फुसशोथ, उरोग्रह, सर्व प्रकारके मूत्ररोग, अजीर्णविकार, मंदाग्नि, अतिसार, मलाशयकी दुर्बलता, कृमि, प्रवाहिका, पित्तविकार, रक्तविकार, बेचैनी, सुस्ती, अशक्ति, आदि अनेक रोगोंकी चिकित्सा करते हैं।

#### वस्ति निर्माण

सामान्यतः दो प्रकारकी पिचकारियां बनाई जाती हैं—एक गुदा द्वारा ओषधि प्रवेश करनेको गुद वस्ति दूसरी लिङ्गेन्द्रिय द्वारा द्रव्य पहुँचानेको उत्तर वस्ति। मलावरोधमें निरूहण और अनुवासन ओषधियोंको भीतर प्रवेश करानेवाली गुद वस्तिकी आवश्यकता होती है; इससे इसीके विषयमें विशेष रूपसे यहां पर लिखा जायगा; जैसे कहा भी है।

यः स्नेहैर्दीयते तस्यादनुवासन नामकः ।
कषायक्षीर तैलैर्योनिरूहः सनिगद्यते ॥

जिसमें तैलादि स्नेह युक्त पिचकारी दी जाती है उसको अनुवासन वस्ति कहते हैं और जिसमें

काढ़ा, दुग्ध, तेल, इत्यादि मिश्रित ओषधियाँ करके पिचकारी देते हैं उसको निरूहण वस्ति कहते हैं।

पुरातन कालकी वस्ति निर्माण विधि।

पूर्व कालकी पिचकारीके दो भाग होते थे—एक गुदामें प्रवेश करनेके लिए नली जिसे संस्कृतमें नेत्र कहते हैं, दूसरी द्रव्य भरनेके लिए चमड़ेकी कोथली।

नली किसी धातु या हाथीदाँत सींग, हड्डी, नरसल बांस आदिकी बनानी चाहिये, जो कि साफ चिकनी और गौके पुच्छकी समान नीचे कम मोटी और ऊपर अधिक मोटी होनी चाहिये। नलीका प्रमाण आठ वर्ष तकके बालकके लिए ६ अंगुल और ८ वर्षसे १६ वर्ष तककी आयु वालेके लिए ८ अंगुल, पच्चीस वर्षवालेके लिए १० अंगुल और इससे अधिक आयुवालेके लिए १२ अंगुल होना चाहिये; और क्रमसे वह नलियां कनिष्ठिका, अनामिका, मध्यमा और अंगूठेके बराबर मोटी हों और जिनके अग्रभागका छिद्र मूंगसे लेकर झरबेरीकी गुठली तक बड़ा हो। नलियोंके प्रवेश होनेवाले पतले भागकी तरह क्रमशः आध, दो, अढ़ाई, और तीन अंगुल लम्बी जगह छोड़कर एक किनारा निकला हुआ रहना चाहिये; जिससे वह नली उतनी ही भीतर जा सके। पिचकारीकी मोटाईकी तरफ़ भी दो किनारे निकले रहने चाहियें जो द्रव्यसे पूर्ण होनेवाली चमड़ेकी कोथली बाँधनेमें काम आ सकें। वस्ति बैल, भैंसे, शूकर, बकरेकी मूत्राधार चामकी बनानी चाहिये। यदि यह न मिल सकें तो किसी मुलायम चामकी वा गाढ़े कपड़ेकी बनावे। ऐसी थैलियोंको सर्वदा साफ रखना चाहिये। बाहिर भीतर तेल लगा कर रखना जरूरी है; न लगानेसे खराब हो जाती है। कोथलीमें कोई पदार्थ चिपटा न रहे। उस वस्तिके तंग मुंहमें नलीको प्रवेश कर ऊपरसे उन दोनों किनारोंके बीचमें सूतकी डोरीसे कसकर बाँध देवे जिसमें पतला द्रव्य न निकल सके। ऐसी वस्तिमें दूसरे तर्फके खुले मुंहसे द्रव्य ओषधि भरे। नलीके छिद्रको किसी लकड़ीकी डाट लगाकर रोके रहे; जिससे ओषधि न निकल जावे; पीछे चामकी कोथलीके मुँहको बाँध कर और डाट निकालकर गुदामें नलीको लगावे तथा उस वस्तिको दाब देवे। इस प्रकार पहले पिचकारियां बना कर लगाई जाती थीं।

पाश्चात्य चिकित्सक डाक्टर हालके इसकी प्रशंसाके संबन्धमें निम्नलिखित वाक्य कहते हैं "मलाशयको साफ करनेसे मलके दुष्ट कणोंको शरीरके जीवन रस, रक्त, में प्रवेश करनेका मार्ग नहीं मिलता; इसलिए वह शरीरमें चूसे जाकर एक रूप नहीं हो सकते, जिससे निश्चित है कि वातरोग, सन्निवात, ज्वर, शोथ, जुखाम, आधा सीसी, कण्ठशोथ, उरोग्रह, हृदयरोग, आदि सब प्रकारके रोग शरीरमें बहुत दिनोंके लिए टिक ही नहीं सकते।" इन डाक्टर महोदयने इस प्रयोगके यंत्रमें भी उन्नति की है। पहले जिस यंत्रका उपयोग किया जाता था, उससे पानी अन्दर बहुत कम जा सकता था; जिससे अंतड़ियोंका सिर्फ थोड़ा सा आगेका हिस्सा ही साफ हो सकता था, और वेगकी अधिकतासे कुछ पीड़ा भी मालूम होती थी। किन्तु आजकलके प्रचलित उत्तम यंत्रसे पांच सात सेर तक पानी बहुत आसानीसे बिना किसी दूसरे आदमीकी सहायताके भरकर सम्पूर्ण बड़ी अंतड़ीको धोया जा सकता है, जिसका विस्तृत वर्णन आगे लिखते हैं।

वर्तमान कालकी पाश्चात्य पिचकारियां

पूर्व समयकी अपेक्षा अन्य वस्तुओंकी तरह पिचकारियोंकी बनावटमें भी बहुत फेर फार हुआ है। आजकलकी पिचकारियां जो यूरोपसे आती हैं बहुत साफ सुथरी शीघ्र काम देनेवाली होती हैं। इनके लगानेमें न अधिक वैद्यको परिश्रम करना पड़ता है और न रोगी ही अधिक समय तक क्लेश पाता है। नवीन ढंगकी पिचकारियोंका वर्णन लिखा जाता है—

इस पिचकारीको अँग्रेजीमें "पोर्टेब्लडाऊस" सर्व साधारण "डोश" और विज्ञापनी लतीफेदार भाषामें योनीयंत्र कह कर पुकारते हैं। इसे एनीमा कहते हैं। इस पिचकारीको कोई भी आदमी आसानीसे समझ कर उपयोग कर सकता है। इसमें एक टीनका डोल होता है। जिसमें बाहिर की तरफ एक काच लगा रहता है। पानीका भार समझनेके लिए इसपर १, २, ३, ४, ५, ६, सेर तकके अंक लिखे हुये रहते हैं। और उस पात्रकी पेन्दीमें एक रबरकी चार पांच फुट लम्बी नली जुड़ी हुई रहती है। इस नलीमें आखिरी हिस्सेके पास एक टोंटीका सा यंत्र होता है, जिसके फिरानेसे आवश्यकतानुसार पानीका जाना कम ज्यादा या बंद किया जा सकता है। इससे आगे गुद स्थानके रखनेके लिए एक लकड़ी या सींग आदिकी नली होती है। यह नलियां छोटी बड़ी कई प्रकारकी इसके साथ आती हैं। इस यंत्र द्वारा रोगीसे दूर खड़े होकर पिचकारी लगाई जा सकती है।

( २ ) एंपिङ्ग एनीमा ( पिचकारी )

पहली पिचकारीसे द्रव्य ओषधि साधारण वेगसे प्रवेश करती है, परन्तु जब मल जमकर सख़ सुद्दोंके रूपमें हो जाता है तो उस मलको फोड़ कर निकालनेके लिए इस पिचकारीको काममें लाना चाहिये। जब शुष्क मल गुदाके बाहिर नहीं निकला करता उस समय उसको फोड़ कर निकालनेकी आवश्यकता रहती है। इस पिचकारीमें एक रबरको मुठियामें दो नलियां लगी रहती हैं। एक गुदामें लगानेके लिए; दूसरी नीचे झुकी हुई रबरकी नली पानीके प्यालेमें रखनेके लिए यह नलियां बहुत लम्बी नहीं होतीं। किसी प्यालेमें ओषधियां भरकर कांच आदिकी नली उसमें डाल देते हैं और तब रबरकी मध्यवाली मुठियाको बारम्बार दबानेसे प्यालेकी ओषधि खिंचती जाती है और साथ साथ गुदामें प्रवेश करती जाती है। अत्यन्त मल भेदन करनेके लिए तीक्ष्ण वेग वाली तीसरे प्रकार की धातु की पिचकारी निर्माण की गई है। यह होलीमें खेलनेकी पिचकारीके माफिक बनी हुई रहती हैं। साधारण वेगके लिए काँचकी सीधी पिचकारी काममें लाई जा सकती है।

मलाशय धोनेके लिए सबसे अच्छा समय प्रातःकाल या रातको सोते समयका है। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी अनुकूल समय पर धोया जा सकता है, किन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि भोजनके पीछे एक प्रहर तक इसका उपयोग न किया जाय।

पिचकारी देनेकी विधि

रोगीको मल मूत्रादिके वेगोंसे निवृत्त कराके जिस स्थानमें हवा साधारण जाती हो तथा जो साफ और सुथरा हो उसमें एक मामूली बिछौने पर बाईं करवटसे लिटावे; दाहनी जांघको सिकोड़ ले और बांईको फैली रहने दे, फिर नली कास्टरआयल ( अरण्डीका तैल ) से चिकनी करके तथा गुदामें भी चिकनाई लगाकर प्रवेश करे। बांये हाथसे पिचकारी पकड़कर दाहने हाथसे पिचकारीको दावे। यदि डोशसे द्रव्य पहुँचाना ( देनी ) हो तो उसमें ओषधि भरकर उस यंत्रको तीन चार फुटकी ऊंचाई पर किसी कुर्सी पर रखना या दीवारमें टांग देना चाहिये। अच्छी तरह साफ करके साधारण गर्म पानीसे पात्रको भरकर थर्मामीटर हो तो ९८ डिग्रीका गर्म पानी नापकर लेना चाहिये। थर्मामीटरके न रहनेपर अनुमानसे ले सकते हैं। पानी १०० डिग्री तक गर्म हो तो कोई हानि नहीं है।

पानी बनानेकी विधि

पानी गर्म ६ सेर, सोप १ तोला, अरण्डीका तैल २॥ तोला—इन सबको मिलाकर पिचकारी देनी चाहिये। पिचकारी लेते समय रोगी जंभाई न ले और न खांसे, न छींक लेवे। जब ओषधि प्रवृष्टि हो जावे तब नलीको धीरे धीरे निकाल ले, चार पांच मिनट तक रोगीको वैसे ही लेटा रहने दे।

शुरूमें दो सेर पानीको अन्तड़ीमें भरना चाहिये; फिर धीरे धीरे बढ़ाकर ६ सेर तक भर सकते हैं। साधारण मनुष्योंको अपने शरीर और शक्तिके अनुसार चार से छः सेर तक पानीका उपयोग करना चाहिये। बहुत कम लेनेसे भी कुछ लाभ नहीं होता, क्योंकि उससे अन्तड़ीका कुछ भाग ही साफ होता है। जब तक बड़ी अन्तड़ीके सब हिस्से नहीं धुल जाते तब तक इस क्रियाका पूरा गुण भी मालूम नहीं होता। इसलिए बहुत अड़चन नहीं हो तो पांच सेर पानी अवश्य ही लेना चाहिये।

अब आगे एनीमा ( पिचकारी ) की डाक्टरी ओषधियोंकी विधि लिखते हैं।

१—एनीमा मगनेसिया सल्फ

पेटका अफरा उतारनेके लिए ६ माशे नमक जुल्लाब (मग्नीसिया सल्फ), ६ माशे साबून, ५ सेर पानी। इसकी पिचकारी देनेसे दस्त साफ पतला होकर अफरा उतरता है।

२—ऐनीमा एलोज

पानी गर्म २ सेर; सत्व एलोज ( एलवा ) ½ माशेसे १ माशे तक पानीमें घोलकर पिचकारी देनेसे बच्चोंके चुन्ने मर जाते हैं।

३—एनीमा असेफिटीडा ( हींग )

पानी गर्म ५ सेर, टिंचर असेफिटीडा १ से ३ ड्राम तक पानीमें घोलकर पिचकारी लगानेसे पेटका दर्द, अफरा, वायगोला आदिको आराम होता है।

४—एनीमा टेरेबिन्थ

नित्य प्रतिका कब्ज ( बद्धकोष्ठता ) और पेट के केंचवे मारनेके वास्ते तथा कँपकँपी, मरोड़ और एंठनके वास्ते टेरेविन्थकी पिचकारी गुदामें लगाना उपयुक्त है। साबुनका पानी ५ सेर और टेरेविन्थ ½ रत्तीसे १ रत्ती तक काममें ला सकते हैं।

५—एनीमा कालो सिन्थीडिस

अत्यन्त कब्ज और पेटके दर्दमें इसकी पिचकारी गुदामें लगानेसे फायदा होता है। २ रत्तीसे ६ रत्ती तक ५ सेर गर्म पानीमें मिलाना चाहिये।

६—ऐनीमा ऐलब्युमिनम

अलसीके काथमें २ या ३ अण्डेकी जर्दी मिलाकर पिचकारी लगानेसे पुराने दस्त आने बन्द हो जाते हैं।

७—एनीमा सबडिला

इसके अर्ककी पिचकारी बच्चोंकी गुदामें लगानेसे चुन्ने मर जाते हैं।

८—एनीमा क्रियाज़ोट

पेचिश और आम ( रक्तातिसारमें ) इसकी पिचकारी कुनकुने पानीमें मिलाकर देनेसे आराम मिलता है।

९—एनीमा ग्लिसरीन

ग्लिसरीन और टरपेन्टाइनकी पिचकारी देनेसे पेटके कृमि नष्ट होते हैं और बद्धकोष्ठता दूर होती है।

१०—एनीमा पिलमबाई

इसकी पिचकारी अण्डकोशमें आंत उतर आने पर तथा अण्डकोशमें पानी जमा होने पर देनी चाहिये।

११—एनीमा एटान्या

इसकी पिचकारी गुदा फट जाने पर तथा अर्श रोगको फायदा करती है।

आयुर्वेदमें कथित ओषधियां

अण्डीकी मींगी, महुएकी छाल, पीपरछोटी, सेंधा नमक, बच, हाऊबेर, इनका बल्क, सेन्धा-नमक, मैनफल, तैल, जल डालकर बस्ति देवे।

सावधानताके लिए नियम

पात्रमें पानी भरकर उसको ढक देना चाहिये; जिससे पानी ठंडा न हो और उसमें कुछ कचरा भी न पड़ जाय। फिर टोंटीको खोलके कुछ पानी निकाल दिया जाय और फिरसे वह बन्द कर दी जाय, लकड़ीकी नलीके चारों ओर तैल या वैसलीन चुपड़ देना चाहिये। फिर घुटने ऊंचे करके सिरके नीचे एक तकिया लगाके लेट जाना चाहिये। नलीको सम्भालकर गुदस्थानमें, दो अढ़ाई अंगुल प्रवेश कराके टोंटीको खोल देना चाहिये। बवासीर ( अर्श ) के रोगीको नलीके प्रवेशके समय कुछ

अड़चन मालूम होती है; इस लिए धीरजके साथ नलीको प्रवेश करना चाहिये। अब आगे काचके पात्रकी तरफ देखनेसे मालूम होगा कि पानी धीरे धीरे अँतड़ीमें चढ़ता चला जा रहा है। यदि कभी पानी चलता हुआ न मालूम हो तो नलीको धीरेसे फिराने अथवा कुछ हिस्सा बाहर निकालनेसे पानी चलने लगेगा। पानी चढ़ाते समय पात्र बिलकुल खाली नहीं होना चाहिये, कमसे कम उसमें आधा सेर पानी बाकी रहने पर टोंटी बन्द करदी जाय। ऐसा न कर सब पानी जाने देनेसे, पानीके साथ अंतड़ीमें वायु भी चढ़कर पेटमें दर्द पैदा कर देगी। इसलिए जितना पानी लेना हो उससे एक सेर अधिक भरना चाहिये। चार पांच मिनटके अन्दर अन्तड़ीमें ४—५ सेर पानी चढ़ जाता है। इसके बाद रोका जा सके तो ५—७ मिनट पानीको अन्दर रोककर तब टट्टीमें जाना चाहिये। वहां जाकर पानीको स्वाभाविक रीतिसे निकलने देना चाहिये, बलप्रयोगकी आवश्यकता नहीं है। पानी कभी जल्दी कभी देरसे निकल जाता है। इसलिए बहुत उतावली न करके दससे बीस मिनटके समयमें पानीको धीरे धीरे निकल जाने देना चाहिये। यदि मल पर पानीका अच्छी तरह असर होगा तो मलकी जमी हुई सख्त गांठें, हरे और काले बदबूदार टुकड़े निकलेंगे और पेट हलका हो जायगा। उन अरुचिकारक पदार्थोंको देखकर कमजोर विचार वालोंको इससे घृणा पैदा होती है, किन्तु बुद्धिमान आदमी समझ सकते हैं कि ऐसे वीभत्स पदार्थोंको भीतर रखनेकी अपेक्षा बाहर निकाल देना ही अच्छा है। जिन लोगोंकी बड़ी आंत विविध प्रकारके अनियमित खान पान, व्यसन और दुराचरण द्वारा अनेक वर्षोंके एकत्रित मलसे भरी हुई और लिपटी हुई हों, उनके मलको ५—७ सेर तक भरा हुआ पानी भी बिना उखाड़े सिर्फ स्पर्श करके ही बाहर निकल जाता है; जिस प्रकार बहुत वर्षोंसे न धुली हुई गटरको धोने पर पानी उसके ऊपरी भागको धोकर ही बह जाता है। उसमें चिपटकर एक रूप बने हुए मलको नहीं निकाल सकता। वैसे ही साधारण उष्णता (९८ से १०० ) वाला पानी वीभत्स अंतड़ियों वाले रोगियोंके पुराने जमे हुए मलको बाहर नहीं निकाल सकता। यद्यपि कहा जा चुका है कि साधारण उष्ण पानीका ही प्रायः उपयोग करना चाहिये। किन्तु ऐसे पुराने रोगियोंके लिए धीरे धीरे अनुभव करके १०५ से १०६ डिग्रीतकका गर्म पानी लेना चाहिये। ११० डिग्रीसे अधिक गर्म पानीका प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये।

वस्ति कर्म ( पिचकारी ) का आयुर्वेद शास्त्रमें लेनेका कितना महत्व लिखा है सो बतलाकर हम अपने लेखको समाप्त करते हैं।

> शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः।
> कुरुते परिवृद्धिं च वस्तिः सम्यगुपासितः॥

अच्छे प्रकार वस्तिकर्म होनेसे शरीर पुष्ट और बलवान मस्तक पर रौनक आरोग्यता और आयुकी वृद्धि होती है।

> वीर्येण वस्तिरादत्ते दोषानापादमस्तकात्।
> पक्वाशयस्थोऽम्बरगोभूमेर्को रसानिव॥

सु० चि० अ० ३५

जैसे आकाशमें उदय हुआ सूर्य अपनी किरणोंके बलसे पानीको खींच लेता है उसी प्रकार पक्वाशयमें स्थिर हुई वस्ति अपनी ताकतसे पैरसे सिर तकके दोषोंको नाश कर देती है।

> सकटी पृष्ठ कोष्ठ स्थान्वीर्य्येणा लोड्य सञ्चयान्।
> उत्खात मूलान्हरति दोषाणां साधु योजितः॥

विधिपूर्वक दी हुई वस्ति ( पिचकारी ) अपने पराक्रमसे कमर, पीठ और कोठेमें सञ्चित दोषोंको नाशक देती है।

# वेदमें सर्प-विद्या

प्राचीन आर्यकालमें सर्पदेव जन विद्या भी एक विशेष विद्या थी यह भी एक विज्ञानकी शाखा थी। छान्दोग्य उपनिषद्में नारदने अपनी विद्याओंका परिचय देते हुए सर्पदेवजन-विद्याका भी परिचय दिया है।[१]

इस नाममें दो विद्याएं प्रतीत होती हैं एक सर्प विद्या और दूसरी देवजन विद्या। हम इस लेखमें संक्षेपसे वैदिक सर्प-विज्ञानका कुछ वर्णन पाठकोंके भेंट करते हैं।

अथर्व वेदमें सर्पोंके विषयमें बहुत उत्तम ज्ञान दिया है। उसमें (अथर्व १०।४) सर्पोंके यह नाम आये हैं—अहि, कसर्णील, श्वित्र, असित, रथर्वी, पृदाकु, पृदाकी, अघाश्व, स्वज, तिरश्चिराजी, दर्वी, करीक्रत, दशोनसी, अजगर[२], आलिगी, विलिगी[३], आशीविष[४], कनिक्रत[५], कल्माषग्रीव, जूर्णी[६], तैमात, दर्वी[७], नाग, महानाग, रज्जुदत्वती[८], लोहिताही[९], वाहस[१०], सेरभ, सेवृध[११], सतीन, कंकत[१२]। इस प्रकार यह सब मिलाकर ३० नाम हैं।

महाभारत तथा भविष्यपुराणमें भी सर्पोंका बड़ा विज्ञान भरा है; परन्तु प्रसंग न होनेसे इस लेखमें उसका उल्लेख न करेंगे।

अथर्ववेदका सिद्धान्त है कि जब 'जननी (त्रिलोकी) उठ खड़ी हुई। वह सर्पोंके पास आयी। सर्पोंने उससे कहा—ऐ विषवती तुम यहां आओ। उसका वैशालेय तक्षक बछड़ा था; अलाबु पात्र (तूँबा) बर्तन था; धृतराष्ट्र ऐरावतने उसे दुह लिया। उसने विष ही विष ही दुहा। विषपर सर्प ही जीते हैं। (अ० ८।१४)'*

अर्थात् जगतमेंसे सर्पोंके राजा धृतराष्ट्रने विषरूप ही अमृत पाया; वही उसकी आजीविका का साधन है। तक्षक विशालाका पुत्र है। जिसका अपना रहनेका कोई घर नहीं वह विशाला कहाती है। इसलिए तक्षक वैशालेय कहाता था। दांतोंसे काटनेवाला जन्तु तक्षक कहाता था। इस जन्तुके लिए विषका दोहन किया गया। फलतः परमात्मा ने उन जीवोंको जो सर्प हैं अर्थात् पेटके बल रेंगते हैं और मुखसे काटते हैं और जिनको रहनेके लिए कोई घर भी नहीं उनको विष ही अपनी जीवन रक्षाका एक साधन दिया है।

सांप और विच्छू मल पदार्थ खाकर जीते हैं, तीखा काटते हैं और उनके काटनेसे पियास लगती है। वर्षा कालमें वह बहुत विचरते हैं। यह बात वेदमें बड़ी स्पष्टतासे लिखी है—

'यस्ते सर्पो वृश्चिकस्तृष्टदंश्मा, हेमन्त जब्धो भृमलो गुहाशये कृमिर्जिन्वत् पृथिवि यद्यदेजति प्रावृषि तन्नसर्पन् मोपसृपद् यच्छिवं तेननो मृड। अथर्व २।१।१६

सांपका काटा

वेदमें तीन प्रकारके काटनेका वर्णन किया गया है—१ खात, २ अखात, ३ सक्त, †

जो विष ऊपर त्वचा पर छू ही जाय भीतर न जाय तो सक्त कहाता है। जो दाढ़ें कुछ गड़ जायं पर विष न गया हो तो 'अखात' कहाता है। यदि विष भीतर चला जाय और गहरी दाढ़ें गड़ें तो 'खात' कहाता है।

१—छा० उ० ७।१।२ २—अथर्व० ११।२।२५ ३—अथर्व० ५।१३।७ ४—ऐ० ब्रा० ६।१ ५—अथर्व १०।४।१३ ६—अथर्व २।२४।५ ७—अथर्व० १०।१।१३ ८—अथर्व० ४।३।२ ९—तै० सं० ३।१४।१२ १०—तै० सं० ५।५।१३।१ ११—अथर्व० २।२४।१ १२—ऋ० १।१६१।१

*सा उदक्रामत्। सा सर्पानागच्छत्। तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवति एहि इति। तस्याः तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम्। तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक्। तां विषमेवाधोक्। तद्विषं सर्पा उपजीवन्ति। अथर्व ८।१४

† खातमखात मुतसक्त…विषं अथर्व ५।१३।१

चिकित्सा

वेदके कालमें भी सांप काटेकी चिकित्सा अग्निसेकी ही जाती थी। वेद ( ऋ० १० । १६ । ६ अथर्व।१८।३।५५) में लिखा है—

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उतवाश्वापदः ।
अग्नि स्तद्विश्वादगदं कृणोतु । सोमश्च यो ब्राह्मणं आविवेश ॥

यदि तुझे काले पक्षी (उड़ने वाले कीड़े) ने, चिऊंटेने, सांपने या जंगली हिंसक सियार कुत्ते आदिने काट लिया है तो इन सबसे अग्नि तुझे नीरोग करे। और वेदके विद्वानके पास आया हुआ सोम भी आरोग्य देवे।

फलतः वेदमें दो विधि, सर्प चिकित्साकी हैं, एक अग्नि दाह, दूसरी सोम। सोम शब्दसे ओषधिका रस लिया जाता है।

इनका प्रयोग वेद ने इस प्रकार बतलाया है— (अथर्व १०।४।२६)—

"आरे अभूद् विषमरौद् विषे विषमप्रागपि ।
अग्निर्विषमहेर्निरधाद् सोमो निरणीयत ।
दंष्टारमन्व गाद् विष महिरमृत ।"

विष दूर होता है। विष रोने (आग पर चट चटाने) लगता है। आग उस विषके वेगको रोक लेता है; सोम बाहर निकालता है। काटने वाला सांप भी उस विषको खा ले तो मर जाता है।

वेदमें लिखा है

"अहीनां सर्वेषां विषं परावहन्तु सिंधवः" ( १० । ४ । २० )

'सब सांपोंके विष 'सिंधु' दूर बहा ले जायँ।' अर्थात् 'सिंधु' भी विषको दूर कर देती है। यह सिंधु क्या पदार्थ है। इसका निर्णय करना कुछ कठिन है। हम अपनी बुद्धिके अनुसार सिंधुका कुछ अर्थ लगा सकते हैं। परन्तु युक्त आयुर्वेद्य लोग उचित रूपसे कह सकेंगे। कोशकारोंने सिंधुके अर्थ निम्न लिखित किये हैं। समुद्र, नदी, हाथी की सूंड़से निकली जलधारा, हाथीकी मद धारा, सफेद सुहागा (Borax), नमक, समुद्रका खारा पानी, नीला सिंधुवारका वृक्ष, वमन कराना, श्वेत रंगण (Lead Sulph)। हमारी सम्मतिमें नमकका पानी, श्वेत रंगण, सुहागा, वमन, व तीव्र जलधारा आदिका प्रयोग विषकी चिकित्सामें किया जाता है। सर्प चिकित्सामें वमन विरेचनका प्रयोग ही उत्तम है। वेदमें सिंधुओं द्वारा विषका बहाना लिखा है। अर्थात् पेटमें प्रवाहिका नाली देकर भी विषको पेटसे बाहर किया जा सकता है। वमन भी चाहे नमकके पानीसे हो या अन्य पदार्थसे हो।

वेदमें एक ओषधिका वर्णन किया है जो तौदी या घृताची है। उसका प्रभाव यही लिखा है कि यह एक एक अंगसे विषके विषको निचोड़ कर दूर कर देती है। तौदी या घृताची कौनसी ओषधि हैं, यह नहीं कहा जा सकता। इन नामोंको देखनेसे यही मालूम होता है कि तौदी ओषधि कांटेदार है और ( घृताची ) लसदार है। और इसकी जड़का प्रयोग किया जाता है।

तौदी नामासि कन्या घृताची नाम वा असि ।
अधस्पदेन ते पदम आददे विषदूषणम् ॥
अंगादंगात् प्रच्यावय हृदयं परिवर्जय ।
अधा विषस्य यत्तेजोऽवाचीनं तदेतु ते ॥

इसके प्रयोगसे विष उतर जाता है।

तोदपर्णी औषध कदाचित् तौदी है। उसीको घृताची कन्याके नामसे भी पुकारा गया है। घीकुआंर जिसे घृतकुमारी कहा जाता है वही घृताची कन्या हो सकती है। परन्तु इस ओषधका प्रयोग विष पर नहीं होता। एक ओषध 'घृतकरञ्ज' है, जिसका प्रयोग विषके प्रभाव दूर करनेके लिये होता है। उसे हिन्दीमें 'करमुआ' कहते हैं। यह कांटोंसे भरा होनेके कारण 'तौदी' भी कहा जा सकता है। इसका वीज पीसकर विष उतारनेके लिए दिया जाता है।

अथर्व में ( ७ । ५६ ) में एक ओषध और लिखी है।

इयं वीरुन्मधुजाता मधुश्चुत्, मधुला मधूः ।
साविहृतस्य भेषजीअथो मशकध्वंसिनी ॥

यह लता मधुसे पैदा हुई कूट कर मधुरस ही चुआती है। मधु रसवाली और मीठी है। वही सांपकी औषध है। मच्छरोंका भी नाश करती है। यह औषध शायद महुआ है, मुलैठी है या कोई और है, यह नहीं कहा जा सकता।

एक उपाय वेदने विष उतारनेका और लिखा है वह है 'वचन प्रयोग'।

ददिर्हिमह्यंवरुणो दिवःकविः वचोभिरुग्रैः निरिणामि ते विषम्।
खातमखात मुनसक्तमग्रभमिरेवधन्वन् निजजास तेविषम्॥
( ५। १३। १ )

दिव्य वरुण ने मुझे ( एक उपाय ) दिया है। उग्र वचनोंसे तेरा विष दूर करता हूं। चाहे विष अन्दर गया हो या न गया हो या ऊपर लगा हो, सब ऐसे नष्ट हो जायँगे जैसे मरुस्थलमें पानी।

सांपकाटेका ऐसा इलाज करनेवाले भी हैं जो घुड़ककर धमकाकर या चपत मारकर विषको दूर कर देते हैं। इसका तात्विक रहस्य मन्त्र शास्त्री ही बतला सकते हैं।

वेदमें ( अ० ५। १३ ) एक मन्त्र है—

चक्षुषा ते चक्षुर्हन्मि विषेण हन्मि ते विषम्।
अहे म्रियस्व मा जीवीः प्रत्यगभ्येतु त्वाविषम्॥

अपनी आंखसे तेरी आंखको नष्ट करता हूं; विषसे विषको मारता हूं। रे सांप मरजा, मतजी, तेरा विष लौटकर तुझपर ही आपड़े।

वस्तुतः विचार करनेसे यही प्रतीत होता है कि काटनेवाले सांपको आंखकी मोहिनी शक्ति (मेस्मरिक पावर) से बांध लिया जाता है और जिसको काटा है उसका ठीक उपचार किया जाता है। यह उपाय 'सक' दंशके लिए उचित प्रतीत होता है। इस प्रकारके काटेमें रोगी भयके कारण ही मर जाता है। इस भय रूप विषको रोकनेके लिए यह मन्त्र प्रयोगका उपाय उत्तम है। वह निर्बल सर्पको देखकर तथा आश्वासन सुनकर भयसे मुक्त हो जाता है।

वेदमें ताबुव और तस्तुव दो पदार्थ और विष नाशक ( अ० ५।१३ ) लिखे हैं। हम नहीं कह सकते कि यह पदार्थ क्या हैं।

महावैद्य वाग्भटने लिखा है कि जिसको सांपने काटा हो वह यदि तुरन्त सांपको काट ले तो वह अच्छा हो जाता है।

वेदमें भी लिखा है—

अहेः विषं दष्टारं मन्वगात् अहिरमृत (१०।४।२६)

सांपका काटनेवाले सांप पर ही पड़े तो सांप मर जाता है और वह बच जाता है।

उपसंहार

वेद कालमें सांपको बहुत तुच्छ समझते थे। उस पर सदा तुच्छ दृष्टि रखते थे। लिखा है (७।५६।७)

"अदन्तित्वा पिपीलिका विवृश्च्यन्ति मयूर्यः॥"

हे सांप! तुझे तो कीड़ियां भी खा जाती हैं, मोरनियां भी काट काट कर फेंक देती हैं। इससे वेदने यह बतला दिया कि इन जीवों पर विषका प्रभाव नहीं पड़ता। मई मासकी (२२ तिथि १६२३) के पोप्युलर सायंसके पृ० १६२ में कीड़ियोंके विषयमें यह एक अद्भुत बात लिखी है कि कीड़ियों पर संखियाका भी प्रभाव नहीं पड़ता। एक मुरब्बे में संखिया मिलाकर रख दिया; कीड़ियां उसे मज़ेमें चाट गयीं। यदि वस्तुतः कीड़ियां विष नाशक हैं तो क्या उनसे विषका प्रतीकार नहीं हो सकता।

कदाचित् तौदी घृताची कन्या कीड़ीका ही नाम हो। वह काटती है, इसलिये तौदी कहाती है। कन्या छोटी होती है; घृताची लेसदार। परीक्षण करने वाले वैज्ञानिक परीक्षण करके देखें के कीड़ीका रस विष पर क्या प्रति क्रिया करता है। कीड़ीमेंसे एक तेजाब निकलता है जिसके स्पर्शसे फफोले पड़ जाते हैं।*

यदि यह 'घृताची' कीड़ी ही है तो इसका पिछला भाग ही वेदके अनुसार विष नाशक है। वेद लिखता है—

'अध स्पेदनते पदमाददे विष दूषणम्'

पैरोंसे निचला भाग विषको नाश करता है।

यही बात मोरनीमें है । उसपर भी विषका प्रभाव नहीं पड़ता । इन पक्षियोंके नखोंका विष सांपके विषका नाशक होता है । मोरके तो पंख भी विषके प्रभावको कम करते हैं । मोर पंख विषको झाड़नेके काममें लाये जाते हैं । जहां मोर पंख रहते हैं वहां सांप नहीं खटकता ।

वेदने 'अर्वती' और 'पैद्व' दो वस्तुएं और लिखी हैं । यह भी विषका नाश करती हैं । कई लोग इन शब्दोंका अर्थ घोड़ा घोड़ी करते हैं । परन्तु हमें अश्वगन्धा, अश्वघ्न, अश्वपुत्री, आदि ओषधियां ही प्रतीत होती हैं, जिनके गुण निम्नलिखित हैं ।

अश्वगन्धा—के बीजोंमें कुछ विषका अंश भी होता । इसके पत्तोंमें और मूलमें तमाकूका सा गुण होता है ( देखो Ayurvedic System of Med. by K. N. N. Sangupt P. 27 Art. Aswagandha)

भविष्यपुराणमें सर्प चिकित्सामें अश्वगन्धाका बहुत प्रयोग लिखा है ।

राज निघण्टमें धन्वन्तरिने अश्वगन्धाके निम्नलिखित नाम भी लिखे हैं वाजिगन्धा, अश्वारोहक, तुर्णी । और गुण लिखे हैं

अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्ता वातकफापहा ।
विषव्रणक्षयान् हन्ति कान्ति-वीर्य-बल-प्रदा ॥

अश्वगन्धा, कसैली, गरम, तीखी, वात-कफका नाश करने वाली; विष ज़खम, और क्षयका नाश करने वाली; क्रान्ति, वीर्य और बल देने हारी है । इसी प्रकार अश्वघ्न कर वीर कहाता है । उसको भी धन्वन्तरिने "व्रणार्ति विष विस्फोट शमनः" अर्थात् जखम, पीड़ा, विष, फुन्सी आदिका नाशक लिखा है ।

अश्वपुत्री सल्लकी कहाती है । इसका भी बड़ा वृक्ष होता है, जिसे व्रण दोषका नाशक कहा है ।

इस प्रकरणको समाप्त करनेके पहले हम पाठकोंका ध्यान दो एक और बातों पर खेंचना चाहते हैं॥ वेद झपटते हुए सांपको दण्डेसे मारने की आज्ञा देता है—अहिं दण्डेन आगतम् । (अथर्व १०।४।६) सर्पके साथ वेदमें अन्य विषेले प्राणी भी उसी कोटीमें रखे हैं । इसलिए उनका भी संक्षेपसे यहां उल्लेख कर देते हैं—विच्छूके लिए लिखा है—

"न ते वाह्वोर्वलमस्ति न शीर्षे न मध्यतः ॥ (७।५६)
अथकिं पापया अमुया पुच्छे बिभर्ष्यर्भकम् ॥

तेरी बाहुओंमें बल नहीं, सिरमें नहीं, बीचके धड़में नहीं । पर यह काली सी पाप करने वाली पूंछमें यह छोटासा जहरका कांटा क्या लगाये है ।

कई विष प्राणी मुख और पूंछ दोनोंसे विषमय प्रहार करते हैं ।

'य उभाभ्यां प्रहरसि पुच्छेन चास्येन च' (७।५६)

जो दोनों तरफसे प्रहार करता है; पूंछसे भी और मुखसे भी

पूंछकी थैलीको वेदने 'पुच्छ धि' कहा है ।

### कुछ पारिभाषिक शब्द

१—सक्त दंश = (Touch) स्पर्शमात्र ।
२—खात = गहरा काटनेका घाव ।
३—अखात = थोड़ासा जखम ।
४—अरस = विषका वेग न रहना ।
५—विषका रोदन = अग्नि पर विषका चटचटाना ।
६—अगद करना = चंगा हो जाना ।
७—रस = विष ।
८—उत्तमरस = तेज़ विष, मध्यमरस=मध्यम वेग और अवमरस=मन्दवेग विष ।

पूर्वमें लिखे सर्पके नामोंकी हमने कोई विशेष व्याख्या नहीं लिखी; पाठक संक्षेपसे उनका अर्थ निम्न लिखित समझ लें ।

अहि = न मरनेवाला ।
असित = काला ।
श्वित्र = सफेद सांप ।
तिरश्चि राजी = तिरछी धारियां वाला ।
दशो नसी = दांढ़ोंसे काटने वाला ।
कल्माष ग्रीव = चितकबरी गर्दनवाला ।
तक्षक = काटनेवाला ।
कंकपर्ग = कौवेके समान पोरुओंवाला ।
आलिगी = चिपटनेवाली कनखजूरा ।

विलिगी = अन्दर घुस जानेवाली जोंक।
अरुगुला = सांपनी—उरगकी स्त्री।
सर्प = सांप सरकनेवाला।
नाग = पर्वतवासी, या चञ्चल।
दर्वी, दर्वीकर = कड़छीके समान, फणी, काटनेवाला।
पृदाकु = मूसा खानेवाला।
शरकोट, काकोट = सरकण्डोंमें घूमनेवाला, तेज काटनेवाला, सरक सरक कर चलनेवाला।
धृतराष्ट्र = फणोंदार, चक्कर।
उरग = छातीसे चलनेवाला।
दासी = काटनेवाली।
असिक्नी = काली सांपन।
दद्रुषी = जिसके काटने पर दद्रुके समान सूजन आ जाय।
कर्णी = कानवाली।
श्वावित् = साही।

इस लेख लिखनेका यही उद्देश्य है कि पाठक भली भांति जान जांय कि वैदिक कालमें भी सर्प किचित्सा कैसी उत्तम थी। दूसरे वर्तमानमें यदि कोई विद्वान सर्प विषयक हिन्दी साहित्यमें ग्रन्थ बनावें और उसमें पाश्चात्य विद्वानोंके अनुशीलनके आधार पर विशेष सर्पवर्गी जन्तुओंका वर्गीकरण करना चाहें तो उनको इन प्राचीन वैदिक नामों पर और परिभाषाओं पर भी ध्यान देना चाहिये। नये नामोंके गढ़ लेनेकी अपेक्षा अपने प्राचीन साहित्य कोशमेंसे ही संग्रह करना बुद्धिमत्ता है।*

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार।

* मासिकपत्र "वैदिक धर्म" के सम्पादक पं० श्रीपाददामोदर सातवलेकर वेदके अच्छे विद्वान हैं। उन्होंने 'वैदिक सर्प विद्या' नामक पुस्तक अच्छे श्रमसे बनायी है। उनके परिश्रममें बहुत सी बातें अस्पष्ट भी रह गयी हैं। उनकी पूर्ति करने और सर्वसाधारणके सामने वैदिक ज्ञान रखनेकी इच्छासे यह लेख लिखा गया है। शेष जो ग्रन्थियां अब भी रह गयी हैं उनपर आशा है और कोई विद्वान् प्रकाश डालेंगे।

(लेखक)

## संखिया ( Arsenic )

[ लेखक—कविराज श्रीप्रताप सिंहजी ]

यह विष बहुत से खनिज पदार्थोंमें मिला रहता है। उष्णताके द्वारा यह उनसे पृथक् कर लिया जाता है। यह भारी और सफ़ेद रंगके चूर्ण या डलीके रूपमें आता है। इसका एक भाग सौ भाग शीतल जलमें तथा एक भाग दस भाग उष्ण जलमें घुल जाता है।

प्रायः लोग इसमें, शीशा, सुरमा, वंग, सेलखड़ी और खड़िया मिला देते हैं। इसके टूटे हुए टुकड़े चीनी जैसे चमकदार होते हैं।

पहिचान—चीनीके समान चमक और भारीपन इसकी पहिचान है। इसका चूर्ण पहिचानना कठिन है। यदि जलते हुए कोयलोंपर डालनेसे यह लहसुन जैसी गन्ध दें, अथवा चूनेके पानी, हीराकसीस और संकोचक पदार्थोंमें डालनेसे तलछट बैठ जाय तो असली समझना चाहिये।

प्रभाव—यह रसायन, शक्तिप्रद, ज्वर नाशक और दाहक है।

मात्रा—इसकी मात्रा $\frac{1}{160}$ रत्तीसे $\frac{1}{10}$ रत्ती तक दी जा सकती है। यदि एक ही मात्रा देनी हो तो $\frac{1}{24}$ रत्ती देनी चाहिये। नित्य संखिया खानेवालों के लिए डेढसे चार चावल तककी मात्रा उचित है। ऐसी सूक्ष्म मात्राएं बनानेकी विधि यह है कि एक रत्ती संखियाकी भस्म लेकर रत्तीके जितनी अंशकी मात्राएं बनानी हों उसमें उतनी ही रत्ती दुग्ध शर्करा ( Milk sugar ) डालकर खूब मिलावे पुनः उसकी एकएक रत्तीकी मात्रा बनावे। जैसे एक रत्ती का बारहवां भाग प्रयोग करना है तो एक रत्ती इसकी भस्म लेकर उसमें बारह रत्ती दुग्ध शर्करा मिलाकर तेरह मात्रा बना लेनी उचित है।

संखियाका शरीरपर प्रभाव—स्वस्थ दशामें चर्मपर लगाने से कोई प्रभाव नहीं करता; किन्तु व्रण

शोथपर लगानेसे जलन उत्पन्न करता है और दाहक होता है।

महा श्रोत—यह छोटी मात्रा ( १/१२० रत्तीसे १/६० तक ) में आमाशयके मांसकी गति और उसके रसोंको बढ़ाता है, जिससे क्षुधा और पाचन शक्ति बढ़ती है। इस कारण इसको आमाशयिक उत्तेजक और पाचक मानते हैं। बड़ी मात्रामें यह आमाशयिक और आन्तरिक भयंकर दाहोत्पादक है। यह चर्म द्वारा शरीर में व्याप्त होनेपर भी आमाशयमें पहुँच जाता है।

रक्त—यह रक्तमें शीघ्र शोषित हो जाता है और साधारणतया कोई विशेष प्रभाव उत्पन्न नहीं करता, किन्तु भयंकर पाण्डु रोगमें रक्तके लाल कणोंकी वृद्धि करता है।

हृदय और रक्त परिभ्रमण—यह अल्प अर्थात् १/१२० रत्तीसे १/६० रत्तीकी मात्रामें प्रयोग करनेसे हृदय-स्पन्दनकी गतिको बढ़ाता है और अधिक मात्रामें प्रयुक्त होनेसे रक्तके दबावको कम करके नाड़ीकी गतिको मन्द करता है।

शरीरके धातुओंपर प्रभाव—यह प्रत्येक अवयवोंकी धातुओंमें प्रवेश करके और वहां कुछ देर ठहर कर बहुत उपयोगी कार्य करता है, वहांपर अम्बर पीयूष (oxygen) को देता हुआ स्वयं रूपान्तरित हो जाता है। यह यकृतके अन्दर यकृत-शर्करा (glycogen) को न्यून करके और वहां अधिक देर तक ठहर कर वसाको विकृत करता है। इसी भांति अन्य अवयवोंमें प्रवेश कर उनके कार्योंमें बाधा करके वसाकी वृद्धि करता है। संक्षेपसे यह अवयवोंको शक्ति देकर उनमें इस ढंगसे परिवर्त्तन करता है कि जिससे दुर्बल मनुष्यको लाभ पहुँचे, इस कारण यह सर्वाङ्ग शक्तिप्रद और रसायन कहलाता है।

श्वास—अभी तक यह विदित नहीं हुआ कि श्वासके अवयवों पर इसका कैसा प्रभाव होता है। यह देखने में आता है कि जो मनुष्य नित्य संखिया खाते हैं वह बिना किसी कष्टके शारीरिक परिश्रम अधिक कर सकते हैं और उनके श्वासमें कोई विकृति नहीं होती।

वात संथान ( Nervous system )—यह अल्प मात्रामें वात नाड़ियोंको शक्ति देता है। अधिक मात्रामें ज्ञान शक्तिको न्यून करके मस्तिष्कपर प्रभाव उत्पन्न करता हुआ सुषुम्नाकाण्डके पीतांश (Grey matter) में जमा होकर धीरे धीरे चेष्टावह नाड़ियोंपर प्रभाव करता है।

चर्मपर प्रभाव—चर्मपर इसका प्रभाव अधिक होता है। चर्मकी-शक्ति को बढ़ा कर उसके नीचे रहनेवाली चर्बीकी वृद्धि करता है। यह स्वेदके साथ बाहर निकलता है, जिसके कण्डू और फुन्सियां उत्पन्न होती हैं। यह फुन्सियां अनेक प्रकारकी होती हैं। चर्मका रंग काला होकर धीरे धीरे गहरे भूरे रंगका हो जाता है। यदि मेंढककी चमड़ीपर संखिया लगाया जाय तो वह आसानीसे उतर जाती है।

अस्थिपर प्रभाव—यह अस्थिके कठिन अंशको बढ़ाता है।

रोगोत्पादक कृमियों वा जीवाणुओं पर प्रभाव—यह विश्वास है कि यह कुछ जातियोंके रोगोत्पादक कृमियों और जीवाणुओंका नाश करता है, जैसे कम्पज्वर ( Malarial fever ), क्षय ( Phthisis ) इत्यादि।

संशोधन—यह नीचे लिखी वस्तुओंके साथ शरीरसे बाहर निकलता है—मूत्र, पित्त, स्वेद, लाला (थूक), आंसू आन्त्र रस,। यह दूधके साथ नहीं निकलता है।

क्षमता—अधिक मात्रामें खाया जानेसे यह तुरन्त ही मार देता है; क्योंकि इसकी बड़ी मात्रा खाकर मनुष्य अधिक दिन तक जीवित नहीं रह सकता।

तातकालिक विष लक्षण—इस विषके यह मुख्य लक्षण हैं—उदर शूल, भयंकर वमन, विरेचन, पैरोंमें ऐंठन, तीव्र प्यास, शिथिलता, मूर्च्छा आदि। उपरोक्त लक्षणोंको देखकर विषूचिका (cholera)

का भ्रम हो जाया करता है। इस भ्रमको मिटानेका विशेष उपाय यह है कि विषूचिकामें नेत्र अन्दर घुस जाते हैं, रोग ग्रस्त हो कर भी विषूचिका-रोगी तीन चार दिन तक जीवित रहता है, किन्तु इस विषसे कुछ ही कालमें मृत्यु हो जाती है। मरने-पर शवच्छेद किया जाय तो आमाशय तथा आन्तों में सूजन, यकृत, वृक्क और हृदयमें वसाकी विकृति दृष्टि पड़ती है ( जब कि रोगी अधिक समय तक जीवित रहा हो)। कभी कभी आमाशय और आन्तों-में कोई कष्ट न होकर अधिक देर अचेतन्य दशामें ही मृत्यु हो जाती है।

प्रतिविष—इसके प्रतिविष वमन कारक औषध और अफीम ( Apomorphine ) का प्रयोग है। विशेष कर आमाशयको पम्प द्वारा धोनेके लिए बड़ी सावधानी करनी चाहिये। यदि अच्छी लोह भस्म न मिले तो सामुद्र विरेचक ( Magnesia ), जान्तव कोयले, ज़ैतूनका तेल (Olive oil), चूनेका पानी बार बार देना उचित है। स्नेह न प्रयोग कर अरण्डीके तेलसे आन्तोंको शुद्ध करके शक्तिप्रद औषधियां दे और और गरम पानीकी बोतलका सेक करे।

चिरकालिक विष लक्षण—इसका विषैला प्रभाव उन्हीं मनुष्योंमें देखा जाता है जो संखिया मिश्रणका व्यवसाय करते हैं या दीवार पर लगने वाले संखि-याके लेपके पत्रों की गन्ध अथवा कपड़ोंके अन्दर संखियाके मिश्रण लगे हुए पोशाकों ( Dresses ) का व्यवहार करते हैं। निम्न लिखित लक्षण भी उन मनुष्योंमें मिलते हैं—अग्निमान्द्य, उतक्लेद, वमन, उदरशूल, प्रवाहिका, नेत्रोंके नीचेके पलक-का शोथ, नेत्राभिष्यन्द, जोड़ोंकी सूजन आदि। यदि संखिया चिरकाल तक अधिक मात्रामें औषध रूपसे सेवन कराया जाय तो यह लक्षण भी दृष्टि पड़ते हैं—शारीरिक कम्प, हाथके मांसोंका वातिक कम्प, हाथ पैरोंमें शूल।

आयुर्वेद मतसे संखिया चार प्रकारका माना गया है यथा स्फटिकके समान, संख जैसा चमक-दार, हल्दीके समान पीला और कहीं कहीं काला और लाल भी माना गया है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका विशेष वर्णन नहीं मिलता। इसके विषयमें केवल इतना ही ज्ञात है कि यदि इसको करेलेके फलमें रखकर दोला यन्त्र द्वारा स्वेदन किया जाय तो यह शुद्ध हो जाता है। इसको सेवन करते समय हरतालके समान पथ्य रखना चाहिये; क्योंकि यह हरतालकी जातिका द्रव्य है। विशेष उपचार हरतालके वर्णनमें लिखेंगे।

—कविराज श्रीप्रतापसिंह

---

# स्पष्टाधिकार नामक दूसरा अध्याय
## ( संक्षिप्त वर्णन )

[ १–११ श्लोक—शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक कालकी अदृश्य मूर्तियां ग्रहोंकी गतिमें कैसी भिन्नता उत्पन्न करती हैं। १२–१३ श्लोक—ग्रहोंकी अष्ट प्रकारकी गतियोंके नाम। १४ श्लोक—गणित सिद्ध और प्रत्यक्ष देखे हुए ग्रहके स्थानोंकी तुल्यताके लिए स्पष्टीकरणकी आवश्यकता। १५–१६ श्लोक—समकोणके २४ खंडोंकी ज्या जाननेकी रीति। १७–२१॥ श्लोक—किस खंडकी ज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २१वें श्लोकका परार्द्ध—उत्क्रमज्या जाननेकी रीति। २३–२७ श्लोक—किस खंडकी उत्क्रमज्या क्या होती है, इसकी सारिणी। २८ श्लोक—परम विक्षेपकी ज्यासे क्रान्ति जाननेका गुर। २९–३० श्लोक—मन्दकेन्द्रसे भुजज्या और कोटिज्या बनाना। ३१–३२ श्लोक—सारिणीमें दिये हुए कोण खंडोंके सिवा अन्य कोणकी ज्या अनुपातसे जाननेकी रीति। ३३ श्लोक—ज्या ज्ञात हो तो धनु या कोण कैसे जाना जाय। ३४–३५ श्लोक—सातों ग्रहोंकी मंद-परिधिके मान विषम और सम पदोंमें क्या होते हैं। ३६–३७ श्लोक—पांच ग्रहोंकी शीघ्र परिधिके मान विषम और समपदोंमें क्या होते हैं। ३८ श्लोक—पदके बीचमें किसी विन्दु पर मंद तथा शीघ्र परिधिका क्या परिणाम होता है। ३९ श्लोक—मन्द फल जाननेका नियम। ४०–४१ का पूर्वार्द्ध—शीघ्र कर्ण जाननेका नियम। ४१ श्लोकका उत्तरार्द्ध—४२ श्लोक—शीघ्र

फल जाननेकी रीति। ४३-४४ श्लोक—ग्रहोंका स्पष्ट स्थान जाननेके लिए मंदफल और शीघ्रफलका संस्कार कैसे किया जाय । ४५ श्लोक—मेषादि केन्द्रमें मंदफल या शीघ्रफल जोड़ना चाहिये और तुलादि केन्द्रमें घटाना चाहिये । ४६ श्लोक—भुजान्तर संस्कारकी आवश्यकता । ४७-४६ श्लोक—ग्रहोंकी मध्यगतिसे मन्द स्पष्टगति जाननेकी रीति । ५०-५१ श्लोक—मन्द स्पष्टगतिसे स्पष्टगति जाननेकी रीति; वक्र गति कब होती हैं । ५२ श्लोक—वक्र गतिका कारण । ५३-५४ श्लोक—भौमादि पांच ग्रह शीघ्रोच्चसे कितनी दूरी पर वक्री होते हैं और कहां पहुँच कर वक्र गतिको त्यागते हैं । ५५ श्लोक—शीघ्र परिधिके भिन्न भिन्न परिमाणके कारण वक्रगति भिन्न भिन्न अंतर पर होती है । ५६-५७ श्लोक—ग्रहोंका विक्षेप जाननेका नियम । ५८ श्लोक—ग्रहोंकी स्पष्ट क्रान्ति जाननेका नियम । ५६ श्लोक—ग्रहोंकी अहोरात्रिका मान जाननेका नियम । ६० श्लोक—धुज्या जाननेकी रीति । ६१—क्षितिज्या और चरज्या जाननेकी रीति । ६२-६३ श्लोक—चरज्याके धनुसे दिन और रातका परिमाण जाननेका नियम । ६४ श्लोक—नक्षत्र और तिथिके मान तथा यह जाननेकी रीति कि ग्रह किस नक्षत्रमें है । ६५ श्लोक—योग जाननेकी रीति । ६६ श्लोक—तिथि जाननेकी रीति । ६७ श्लोक—चार स्थिर करणोंके नाम और उनके समय । ६८ श्लोक—सात चरकरण महीनेमें कितने फेरे करते हैं । ६६ श्लोक—आधी तिथि एक करणके समान होती है । ]

मध्यमाधिकार नामक पहले अध्यायमें मध्यमगतिके अनुसार ग्रहोंके स्थान जाननेकी रीति बतलायी गयी है । परन्तु इस रीतिसे ग्रहका जो स्थान मालूम होता है वह उससे बहुत भिन्न होता है जहां ग्रह प्रत्यक्ष देख पड़ता है । इस भिन्नताको मिटानेके लिए कुछ संस्कार करनेकी आवश्यकता पड़ती है। इस अध्यायमें यह बतलाया गया है कि यह संस्कार कैसे किये जाते हैं। इन संस्कारोंसे ग्रहोंका स्थान गणितसे भी वही आता है जो स्पष्ट आकाशमें देख पड़ता है । इसलिए इस अध्यायका नाम स्पष्टाधिकार रखा गया ।

अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्तयो भगणाश्रिताः ।
शीघ्र मन्दोच्च पाताख्या ग्रहाणां गति हेतवः ॥१॥
तद्वातरश्मिभिर्बद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः ।
प्राक् पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिङ्मुखम् ॥२॥
प्रवहाख्यो मरुत्तांस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत् ।
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यान्ति पृथग्विधाम् ॥३॥
ग्रहात्प्राग्भगणार्धस्थाः प्राङ्मुखं कर्षति ग्रहम् ।
उच्च संज्ञोऽपराद्धस्थस्तद्वत्पश्चान्मुखं ग्रहम् ॥४॥
स्वोच्चापकृष्टा भगणैः प्राङ्मुखं यान्ति यद् ग्रहाः ।
तत्तेषु धनमित्युक्तमृणं पश्चान्मुखेषु तु ॥५॥

अनुवाद—(१) शीघ्रोच्च, मन्दोच्च और पात नामक कालकी मूर्तियां जो आंखसे देखी नहीं जा सकतीं और जो स्वयम् क्रान्ति वृत्त पर चक्कर लगाती हैं ग्रहोंकी गतिके कारण हैं। (२) यह मूर्तियां अपने दहने और बायें हाथोंसे यदि (ग्रहोंसे) पूरब हुई तो पूरबकी ओर और पच्छिम हुईं तो पच्छिमकी ओर जैसी दूरी हो उसके अनुसार ग्रहोंको जो उन (मूर्तियों) से वायु रूपी रस्सियोंसे बंधे हुए हैं अपनी ओर खींच लेती हैं । (३) प्रवह नामक वायु भी इन ग्रहोंको इनके उच्चोंकी ओर ढकेल देती है । इसी कारण पूरब या पच्छिमकी ओर खिंचे हुए ग्रहोंकी गतियोंमें भिन्नता हो जाती है । (४) यदि ग्रहका उच्च ग्रहसे पूरब हो और ६ राशियां १८०° से अधिक दूर न हों तो वह ग्रहको मध्यम स्थानसे पूरबकी ओर खींच लेता है, परन्तु यदि उच्च १८०° से अधिक दूर हो तो (ग्रहसे पच्छिम होनेके कारण) वह ग्रहको पच्छिमकी ओर खींच लेता है । (५) अपने अपने उच्चोंसे खिंचे हुए ग्रह मध्यम स्थानसे जितना पूरबको ओर बढ़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थानमें) जोड़नेसे तथा जितना पच्छिमकी ओर पिछड़े रहते हैं उतना (मध्यम स्थानमेंसे) घटानेसे स्पष्ट स्थान निकलता है । जोड़े जानेवाले संस्कारको धन संस्कार तथा घटाये जाने वाले संस्कारको ऋण संस्कार कहते हैं । (१-५)

विज्ञान भाष्य—इन पांच तथा अगले ६—११ श्लोकोंमें हमारे आचार्योंकी आकर्षण सम्बन्धी

कल्पनाएं हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि वह कितने सूक्ष्म निरूपणसे काम लेते थे। वह देखते थे कि चक्कर लगाता हुआ ग्रह किसी समय ऐसे स्थान पर पहुँचता है जहां उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मन्द पड़ जाती है। बस इसीको उन्होंने ग्रहके मन्दोच्च† का स्थान निश्चय किया था। मन्दोच्चका स्थान भी स्थिर नहीं है, वरन् अत्यन्त मन्द गतिसे चल रहा है, इसलिए इसको भगणाश्रित अर्थात् राशिचक्र पर चलता हुआ माना है। राशिचक्रमें ग्रहोंकी साधारण गति पच्छिमसे पूर्वको होती है। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर पहुँचता है तब उसकी गति अत्यन्त मंद होनेके कारण मध्यम गतिसे कम होती है। इसलिए जब ग्रह मन्दोच्चसे आगे बढ़ता है तब दिन भरमें मध्यमगतिसे जहां पहुँचना चाहिये वहां न पहुँच कर पीछे ही रह जाता है। इस प्रकार ग्रहके मध्यम तथा स्पष्ट स्थानोंमें अंतर पड़ जाता है। यह अंतर प्रतिदिन बढ़ता जाता है और जब ग्रह मन्दोच्चसे ९०° आगे (पूर्वकी ओर) बढ़ जाता है तब यह अंतर सबसे अधिक होता है। इसके बाद यह अंतर कम होने लगता है, परन्तु ग्रह मध्यम स्थानसे पीछे ही रहता है जब तक कि ग्रह मन्दोच्चसे १८०° आगे नहीं बढ़ जाता। मन्दोच्चसे १८०° पर ग्रहका मध्यम और स्पष्ट स्थान एक हो जाता है। इससे यह कल्पना करना स्वाभाविक है कि जब ग्रह मन्दोच्चसे १८०° से कम अंतर पर पूर्वकी ओर रहता है तब मन्दोच्च उसको मध्यम स्थानसे कुछ पच्छिमकी ओर जिधर वह है खींच लेता है। इसलिए मध्यम स्थानमें ऋण संस्कार करनेसे ग्रहका स्पष्ट स्थान निकलता है। जैसे जैसे ग्रह मन्दोच्चसे दूर होता जाता है तैसे तैसे स्पष्ट गति अधिक होती जाती है; इसलिए यह समझा गया कि आसन्नताके अनुसार मन्दोच्चका आकर्षण बढ़ता घटता है।

जिस समय ग्रह मन्दोच्चसे १८०° पर पहुँचता है उस समय उसकी गति अत्यन्त अधिक होती है। यही ग्रहका नीच स्थान है। इस विन्दुसे जब ग्रह आगे बढ़ता है तब उसकी दैनिक स्पष्टगति मध्यम गतिसे अधिक रहती है; इसलिए उसको मध्यम गतिसे जहां पहुँचना चाहिये उससे भी आगे बढ़ जाता है और प्रति दिन आगे बढ़ता जाता है। इसलिए ग्रहके मध्यम स्थानमें धन संस्कार करनेसे स्पष्ट स्थान ज्ञात होता है। जब ग्रह मन्दोच्चसे १८०° आगे हो जाता है तब मन्दोच्च ग्रहसे १८०° के भीतर पूर्वकी ओर होता है। इसलिए यहां भी ग्रह मन्दोच्चकी ओर खिंचा हुआ जान पड़ता है। इसी कारण यह कल्पना निश्चय हो गयी कि ग्रहको मन्दोच्च अपनी ओर अर्थात् पूरबमें हुआ तो पूरबकी ओर और पच्छिममें हुआ तो पच्छिमकी ओर खींच लेता है।
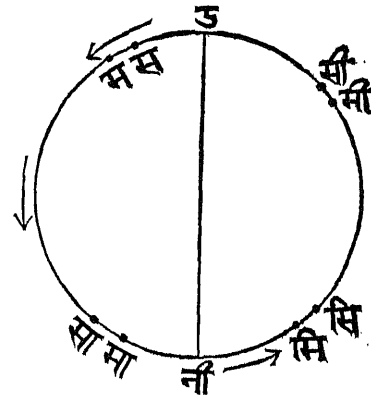
चित्र ५

दिये हुए चित्र ५में उ म नी मी सूर्यका मार्ग है। प पृथ्वीका केन्द्र है जो सूर्य मार्गके केन्द्रपर नहीं है।

सुविधाके लिए किसी ग्रहको हम दो नामोंसे पुकारेंगे मध्यम ग्रह और स्पष्ट ग्रह, जिनका अंतर यह है—मध्यम ग्रह वह काल्पनिक ग्रह है जो मध्यम गतिसे राशि चक्र पर पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ माना गया है और स्पष्ट ग्रह वह ग्रह है जो पृथ्वीकी परिक्रमा करता हुआ प्रत्यक्ष देखा जाता

† मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पातकी कुछ चर्चा विज्ञान भाग १६ पृष्ठ १८७-१९१ में अथवा मध्यमाधिकारके २९-३३ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें है।

है। मध्यम ग्रहकी गति सदैव समान होती है; परन्तु स्पष्ट ग्रहकी गति घटती बढ़ती रहती है। प्रति दिनकी स्पष्ट गतियोंकी औसत निकालनेसे जो कुछ आता है वही मध्यम गति है। इसलिए यह स्पष्ट है कि स्पष्ट गति मध्यम गतिसे कभी कम होती है और कभी अधिक। जब ग्रह अपने मन्दोच्च पर रहता है तब उसकी स्पष्ट गति अत्यन्त मन्द होती है। इस जगह मध्यम और स्पष्ट ग्रह एक साथ होते हैं। परन्तु इसके आगे मध्यम ग्रह स्पष्ट ग्रहसे तीव्र होनेके कारण आगे बढ़ जाता है और स्पष्ट ग्रह पीछे रह जाता है। चित्रमें म, मा मध्यम सूर्यके स्थान और स, सा स्पष्ट सूर्यके स्थान हैं। इसलिए स या साका स्थान जाननेके लिए म या माके स्थानमेंसे घटानेकी आवश्यकता होती है। जब मध्यम सूर्य नी पर पहुंचता है अर्थात् मन्दोच्चसे १८०° आगे हो जाता है तब स्पष्ट सूर्य भी नी पर देख पड़ता है। इस जगह स्पष्ट सूर्यकी गति अत्यन्त अधिक होती है और वह मध्यम सूर्यसे बहुत तीव्र होता है इसलिए नी से आगे चलकर स्पष्ट सूर्य ही मध्यम सूर्यसे आगे बढ़ा रहता है। सि, सी स्पष्ट सूर्यके और मि, मि मध्यम सूर्यके स्थान है। यहां भी स्पष्ट सूर्य उच्चकी ओर हटा हुआ देख पड़ता है और मध्यम सूर्यसे आगे है; इसलिए इसका स्थान जाननेके लिए मध्यम सूर्यके स्थानमें जोड़नेकी आवश्यकता होती है।

सूर्य और चन्द्रमाके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंकी भिन्नताका कारण तो इतनी ही कल्पनाके समझाया जा सकता है परन्तु मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि इन पांच ग्रहोंके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें और भी भिन्नता होती है। इसलिए मन्दोच्चकी कल्पनाके साथ शीघ्रोच्चकी कल्पना भी की गयी। इसकी कल्पना कैसे हुई इसका अनुमान भास्कराचार्य जीके अनुसार †यों हैः—

'जब शनि, गुरु और मंगल इन तीन ग्रहोंसे सूर्य आगे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रहसे आगे होते हैं अर्थात् यह ग्रह सूर्यकी ओर बढ़े हुए देख पड़ते हैं। परन्तु जब इनसे सूर्य पीछे रहता है तब स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रहसे पीछे रहते हैं अर्थात् यह ग्रह सूर्यकी और पिछड़े हुए देख पड़ते हैं। इसलिए विद्वानोंने यह कल्पना की कि इन तीनों ग्रहोंके शीघ्रोच्च सूर्यके साथ रहते हैं। इसलिए यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि इन ग्रहोंको इनके शीघ्रोच्च भी जो सूर्यके समान या साथ रहते हैं खींचते हैं। यदि इस कल्पनाको और बढ़ा दिया जाता तो सूर्यको ही शीघ्रोच्च अथवा इन ग्रहोंका आकर्षण मान लेनेमें न्यूटनका सिद्धान्त ज्ञात हो जाता।

ऊपर मन्दोच्च और शीघ्रोच्च स्थानोंकी जो कल्पना की गयी है, उनकी ओर ग्रह कुछ खिंच जाते हैं यह जानकर यह अनुमान होता ही है कि यह स्थान कुछ विशेष शक्ति रखते हैं और अदृश्य भी हैं; इसलिए इनको विशेष शक्तिमान समझनेके कारण अदृश्य देवमूर्तियां कहा गया है जो अदृश्य वायुरूप रस्सीसे ग्रहोंको अपनी ओर खींचे रहते हैं और इनको प्रवह नामक वायु भी सहायता पहुँचाती है।

पातके बारेमें पहले लिखा जाचुका है। वहां चन्द्रमाके पातके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा गया है वही अन्य ग्रहोंके पातोंके लिए भी लागू है। जब ग्रह उत्तर पातपर आता है तब क्रान्तिवृत्तपर देख पड़ता है। जब यहाँ से आगे बढ़ता है तब क्रान्तिवृत्तसे उत्तर हो जाता है और जब तक वह दक्खिन पात पर अर्थात् उत्तर पातसे १८०° आगे नहीं पहुँच जाता तब तक क्रान्तिवृत्तसे उत्तर ही रहता है। ऐसी दशामें उत्तर पात ग्रहसे पच्छिम रहता है। इसीलिए आगेके ७वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि ग्रहसे १८०° तक पच्छिममें स्थित पात (उत्तर पात) ग्रहको उत्तरकी ओर ढकेलता है और १८०° तक पूर्वमें स्थितपात उसको दक्खिनकी ओर ढकेलता है। यह भी अदृश्य है और क्रान्तिवृत्तसे

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ २०

ग्रह को उत्तर या दक्खिनकी ओर ढकेलते हुए जान पड़ता है। इसलिए इसमें भी दैवीशक्ति मानी गयी है। परन्तु यथार्थ कारण यह है कि सूर्य और ग्रहों की कक्षाएं एक ही तलमें नहीं हैं, जिससे प्रत्येक ग्रहकी कक्षा सूर्यकी कक्षाको विन्दुओं पर काटती हुई जान पड़ती है।

आगेके ६—११ श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि जिन ग्रहोंका आकार बड़ा है वह भारी होनेके कारण अपने मन्दोच्चों, शीघ्रोच्चों इत्यादि के द्वारा कम खिंचते हैं और जो हलके हैं वह बहुत खिंचते हैं। यह अनुमान सूक्ष्मनिरूपणका फल है और आकर्षण सिद्धान्तके बिलकुल अनुकूल है।

सूर्य सिद्धान्तके इन्हीं आठ श्लोकोंके आधार पर कुछ विद्वान यह कहते हैं कि आकर्षण सिद्धान्तके आविष्कारक न्यूटन नहीं कहे जा सकते वरन् हमारे ही प्राचीन ज्योतिषाचार्य हैं। निष्पक्ष भावसे विचार करनेपर यह सिद्ध होता है कि हमारे पूज्य आचार्योंने प्रत्यक्ष देखकर अपनी कल्पना और तर्क शक्तिसे जितने अनुमान किये थे वह उस समयकी दशाको देखते हुए परम सराहनीय हैं। उन्होंने यह अवश्य समझा था कि ग्रहोंकी गतिकी भिन्नताका कारण कोई शक्ति है, परन्तु यह नहीं ज्ञात हो सका था कि यह शक्ति किस प्रकार काम करती है, केवल पृथ्वी तथा ग्रहोंके शीघ्रोच्चों मन्दोच्चों और पातोंमें ही है अथवा जगतके सब पदार्थोंमें और गणितकी किस क्रिया द्वारा उपपत्ति बतलायी जासकती है। आकर्षण सिद्धान्तके इस व्यापक नियमका आविष्कारक न्यूटन है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि ज्योतिषका अध्ययन आध्यापन भारतवर्षमें उसी प्रकार चला आता जैसा भास्कराचार्य, गणेश दैवज्ञ इत्यादिके समयमें था या जैसा यूरोपके फ्रांस, जर्मनी और इंगलैंडमें कोपरनिकस, टाइकोब्राही, केपलर, न्यूटन इत्यादिके समयमें १६, १७वीं शताब्दीमें था तो संभव है कि आकर्षण सिद्धान्त हमारे आचार्योंको पहले ही उस रूपमें प्रकट हो जाता जिस रूपमें न्यूटन ने स्थिर किया है। हमारे यहां आकर्षण सम्बन्धी कल्पना (Hypothesis) के रूपमें ही रह गयी और न्यूटनने इसे सिद्धान्त (Theory) के रूपमें परिणत दिया।

इस जगह ग्रहोंकी भिन्न गतियोंके कारण पर विचार करते हुए आकर्षण सम्बन्धी कल्पनाकी गई है इसलिए यह असंगत न होगा यदि ग्रहोंकी गति संबंधीको परनिकस, केपलर और न्यूटनके सिद्धान्त संक्षेपमें बतला दिये जायं।

### कोपरनिकसकी कल्पना

१५८७ वि० (१५३० ई०) में कोपरनिकसने जो ग्रन्थ लिखा उसमें दिखलाया कि यदि पृथ्वी तथा अन्य ग्रह सूर्यकी परिक्रमा करते हुए मान लिये जांय तो ग्रहोंकी प्रत्यक्ष टेढ़ी, सीधी गतियां सहज ही समझायी जा सकती हैं इसीको कोपरनिकसकी रीति कहते हैं।

### केपलरके नियम

(१) ग्रह सूर्यकी परिक्रमा जिस कक्षामें करता है वह दीर्घ वृत्तके आकारकी होती है, जिसकी एक नाभि पर सूर्यका केन्द्र होता है।

(२) सूर्य और किसी ग्रह के केन्द्रोंको मिलानेवाली रेखा समान कालमें समान क्षेत्रफल बनाती है।

(३) दो ग्रहों के भगण कालोंके वर्गोंका परस्पर सम्बन्ध वही होता है जो सम्बन्ध सूर्यसे उनकी मध्यम दूरियोंके घनोंका होता है।

अब संक्षेपमें यह बतलाया जाता है कि केपलर ने किस गणनासे यह नियम निकाले थे।

यह सबको अनुभव होगा कि जैसे जैसे कोई वस्तु दूर होती जाती है तैसे तैसे देख पड़ता है कि वह छोटी होती जाती है क्योंकि दूर हो जानेसे उस वस्तुसे जो कोण नेत्र पर बनता है वह छोटा होता जाता है। मान लो न नेत्रका स्थान है और क ख एक वस्तु है जो दूर होती जा रही है। जब वह क ख स्थान पर होगी तब न पर उससे क न ख कोण बनेगा और जब वह का खा स्थान पर पहुँच जायगी तब न पर उससे का न खा कोण बनेगा जो

क न ख कोण से छोटा है। इसी कारण का खा स्थान पर वही वस्तु छोटी देख पड़ेगी; यद्यपि वस्तुतः उसके आकारमें कोई भेद नहीं पड़ा।
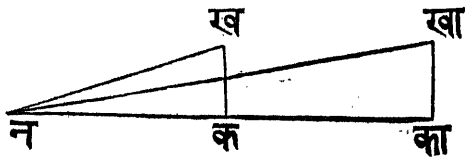
चित्र ६

यदि सूर्य विम्ब प्रतिदिन वेध करके देखा जाय तो प्रतिदिन वह एक ही आकारका नहीं देख पड़ता। जब सूर्य धनुराशिके कोई १८° पर होता है (३ जनवरीको) तब सूर्य विम्ब सबसे बड़ा देख पड़ता है। इस दिन इसके विम्बका मान ३२'३५.२" होता है। इसी दिन इसकी दैनिक स्पष्ट गति भी तीव्रतम अर्थात् ६१'८.८" होती है। इसके बाद शनैः शनैः सूर्य बिम्ब छोटा होता जाता है और गति मंद होती जाती है। जब सूर्य मिथुन राशिके कोई १८° पर होता है अर्थात् पहले स्थानसे १८०° बढ़ जाता है तब विम्ब सबसे छोटा अर्थात् ३१' ३०.७" का होता है और दैनिक स्पष्ट गति मन्दतम अर्थात् ५७'११.५" हो जाती है। विम्बके छोटा बड़ा देख पड़नेका कारण यह तो नहीं है कि सूर्यका आकार ही वास्तवमें छोटा बड़ा हो जाता है वरन् यह है कि सूर्यकी दूरी ही घटती बढ़ती रहती है। यह मत हमारे सिद्धान्तों † का भी है।

यदि सूर्य विम्बके अर्द्धव्यासका मान स हो और पृथ्वीसे सूर्यकी निकटतम दूरी क हो तो सूर्यके अर्द्धविम्बसे जो कोण पृथ्वीपर बनेगा उसकी

$$\text{ज्या} = \frac{\text{स}}{\text{क}}$$

परन्तु इस दिन सूर्यका विम्ब ३२'३५.२" होता है, इसलिए अर्द्धविम्ब १६'१७.६" होगा,

$$\text{इसलिए ज्या } १६'१७.६'' = \frac{\text{स}}{\text{क}}$$

परन्तु जब कोण बहुत छोटा होता है तब कोण और कोणकी ज्या के मानोंमें कोई अन्तर नहीं होता जब कि कोणका मान (Circuular measure)में हो या ज्या का मान भारतीय* रीतिसे लिखा जाता हो।

$$\therefore \frac{\text{स}}{\text{क}} = १६'१७.६'' \text{ या } \text{स} = \text{क} \times १६'१७.६''$$

इसी प्रकार जब सूर्यका बिम्ब ३१'३०."७ अथवा विम्बार्द्ध १५'४५.४" होता है तब यदि सूर्यकी अत्यन्त अधिक दूरी 'का' हो तो।

$$\frac{\text{स}}{\text{क}} = १५'४५.४'' \text{ या } \text{स} = \text{क} \times १५'४५.४''$$

$$\therefore \text{क} \times १६'१७.६'' = \text{का} \times १५'४५.४''$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{क}}{\text{का}} = \frac{१५'४५.४''}{१६'१७.६''} \cdots\cdots\cdots (१)$$

जिस स्थान पर सूर्य सबसे बड़ा देख पड़ता है उससे जब १८०° आगे जाता है तब सबसे छोटा देख पड़ता है। इसलिए ऊपर निकाली हुई क, का दूरियां एक रेखामें होती हैं। इसलिए यदि दिये हुए चित्र ७में प पृथ्वीका स्थान हो तो स और सा सूर्यके स्थान होंगे जब कि सूर्य क्रमानुसार सबसे बड़ा और सबसे छोटा देख पड़ता है अर्थात् जब प स = क और प सा=का

समीकरण (१) का प्रत्येक पक्ष यदि १ मेंसे घटा दिया जाय तो,

स ———————— प म ———————— सा

चित्र ७

$$१ - \frac{\text{क}}{\text{का}} = १ - \frac{१५'४५.४''}{१६'१७.६''}$$

$$\text{वा } \frac{\text{का} - \text{क}}{\text{का}} = \frac{३२.२''}{१६'१७.''} \cdots\cdots\cdots\cdots (२)$$

और यदि समीकरण (१) के प्रत्येक पक्षमें १ जोड़ दिया जाय तो,

$$\frac{\text{का} + \text{क}}{\text{का}} = \frac{३२'३.''}{१६'१७.६''} \cdots\cdots\cdots\cdots (३)$$

† सूर्यसिद्धान्त चन्द्र ग्रहणाधिकार श्लोक १-३

* मध्यमाधिकारके ६०-६१ श्लोकोंका विज्ञान भाष्य देखो।

अब यदि समीकरण (२) को समीकरण (३) के समपक्षोंसे भाग देदें तो,

$$\frac{\text{का}-\text{क}}{\text{का}+\text{क}} = \frac{३२\cdot२''}{३२'३''} = \frac{३२\cdot२''}{१६'२३''} = \frac{१}{६०} \text{ के लगभग}$$

इस सम्बन्धसे प्रकट होता है कि प उस दीर्घवृत्तकी नाभि है, जिसका दीर्घ अक्ष स सा और जिसका केन्द्र स सा का मध्यविन्दु म है; और $\frac{१}{६०}$ उस दीर्घवृत्तकी च्युति (eccentricity) है क्योंकि किसी दीर्घवृत्तके केन्द्रसे उसकी नाभि तक जो दूरी होती है उसको दीर्घ अक्षके आधेसे भाग देने पर च्युतिका मान निकल आता* है। यहां का–क केन्द्रसे नाभिकी दूरीका दूना और का + क दीर्घ अक्ष की लम्बाई है।

इस प्रकार यदि स सा दूरी को दीर्घ अक्ष मान कर और प को उसकी एक नाभि तथा $\frac{१}{६०}$ को च्युति मानकर दीर्घवृत्त खींचा जाय तो किसी कर्ण ( Radius vector ) प सि की दूरी जो स प रेखाके साथ इ कोण बनाता है इस गुर† से जाना जा सकता है—
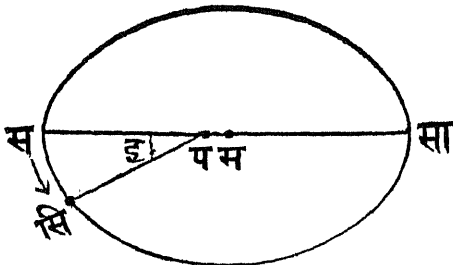
चित्र ८

$$\text{प सि} = \frac{\text{मस}(१-\text{च}^२)}{१+\text{च}\times\text{कोज्या इ}}$$

जब कि च = $\frac{१}{६०}$ = ·०१६७ और मस सूय और पृथ्वीका मध्यम अंतर स्थिर है।

* आशुतोष मुखोपाध्यायकी Geometry of Conics, Chapter. II. proposition III.

† Loney's Elements of Coordinate Geometry pp. 307 and 229 (1910 edition.)

इसलिए $\frac{१}{\text{पसि}}$ का मान १ + च × को ज्याके मानानुसार बदलता है जिसको संक्षेपमें यों लिखते हैं:—

$$\frac{१}{\text{क}} \propto १+\text{च को ज्या इ}$$

जहां क सूर्यका पृथ्वीसे अंतर ( कर्ण या Radius vector ) है। यह सम्बन्ध वेधसे ठीक उतरता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सूर्य दीर्घवृत्तमें चक्कर लगाता है और पृथ्वी इस दीर्घ वृत्तकी नाभिपर है। इसकी जगह यह कहना अधिक शुद्ध है कि पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती हुई दीर्घवृत्तके आकारकी कक्षा बनाती है और सूर्य केन्द्र इस कक्षाकी नाभिपर रहता है। इसका प्रमाण विज्ञान भाग ११ पृष्ठ ७५-७६, १८८-१८६, २०३ से २०७ में दिया गया है। यही केपलरका पहला नियम है।

ऊपर बतलाया गया है कि सूर्यकी तीव्रतमगति ६१' १०" और इसी समय इसका महत्तम विम्ब ३२' ३५" होता है तथा मंदतम गति ५७' १२" और इसी समय न्यूनतम विम्ब ३१' ३१" होता है। इसलिए यह स्पष्ट है कि तीव्रतम और मन्दतम गतिमें जो अंतर होता है वह मध्यम गति का $\frac{३'५८''}{५६'११''}$ अथवा स्वल्पान्तरसे $\frac{१}{१५}$ के समान है और स्पष्ट विम्बके महत्तम और न्यूनतम आकारोंमें जो अंतर होता है वह मध्यम विम्बका $\frac{१'४''}{३२'३''}$ अथवा स्वल्पान्तरसे $\frac{१}{३०}$ के समान है। इसलिए स्पष्ट विम्बके परिवर्तनका सम्बन्ध १ : १ + $\frac{१}{३०}$ है, स्पष्ट गतिके परिवर्तनका सम्बन्ध १ : १ + $\frac{१}{१५}$ है।

परन्तु $१+\frac{१}{१५} = (१+\frac{१}{३०})^२$ स्वल्पान्तर से

∴ गतिके परिवर्तनका सम्बन्ध $१ : (१+\frac{१}{३०})^२$ है। चाहे जिस समय देखा जाय यही पाया जायगा कि किसी ग्रहका कोणीय वेग स्पष्ट व्यासके वर्गके अनुसार बदलता है। परन्तु सूर्यका स्पष्ट व्यास सूर्यकी दूरीके प्रतिलोमके अनुसार बदलता है, इस लिए

कोणीयवेग स्पष्ट व्यासके वर्गके अनुसार अथवा कर्णके वर्गके प्रतिलोमके अनुसार बदलता है। संक्षेप में

$$\text{कोणीयवेग} \propto (\text{स्पष्ट व्यास})^२$$

$$\propto \left(\frac{१}{\text{कर्ण}}\right)^२$$
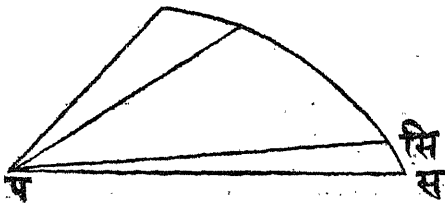
चित्र ६

चित्र ६में प पृथ्वीका स्थान है, स सूर्यका स्थान है और स प सि वह कोण है जो सूर्य १ दिनमें चलता है। इसी प्रकार सा सूर्यका दूसरा स्थान है और सा प सी वह कोण है जो सूर्य १ दिनमें चलता है। स, सि या सा, सी परस्पर बहुत पास हैं इस लिए पस और पसि के मानोंमें इतना कम अंतर है कि दोनों समान समझे जा सकते हैं। इसी तरह प सा और प सी समान समझे जा सकते हैं। ऐसी दशामें पससि त्रिभुज उस वृत्तका एक खंड समझा जा सकता है, जिसका केन्द्र प है और त्रिज्या पस या पसि है। इसलिए

$$\text{इस वृत्त खंडका क्षेत्रफल} = \angle \text{ सपसि} \times \frac{(\text{पस})^२}{२}$$

$$= \text{स स्थानका कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पस})^२}{२}$$

$$\text{और सापसी का क्षेत्रफल} = \angle \text{ सापसी} \times \frac{(\text{पसा})^२}{२}$$

$$= \text{सा स्थानका कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पसा})^२}{२}$$

परन्तु ऊपर बतलाया जा चुका है कि कोणीयवेग $\propto \frac{१}{(\text{कर्ण})^२} = \text{अ} \times \frac{१}{(\text{कर्ण})^२}$ जब कि अ कोई अचल राशि है।

$$\therefore \frac{\text{सपसि वृत्त खंडका क्षेत्रफल}}{\text{सापसी वृत्त खंडका क्षेत्रफल}}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पस})^२}{२}}{\text{सा का कोणीयवेग} \times \frac{(\text{पसा})^२}{२}}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीयवेग} \times (\text{पस})^२}{\text{सा का कोणीयवेग} \times (\text{पसा})^२}$$

$$= \frac{\text{स का कोणीयवेग} \times (\text{स का कर्ण})^२}{\text{सा का कोणीयवेग} \times (\text{सा का कर्ण})^२}$$

$$= \frac{\text{अ} \times \frac{१}{(\text{स का कर्ण})^२} \times (\text{स का कर्ण})^२}{\text{अ} \times \frac{१}{(\text{सा का कर्ण})^२} \times (\text{सा का कर्ण})^२}$$

$$= \frac{१}{१}$$

इससे सिद्ध हुआ कि सपसि और सापसी दोनों वृत्त खंड समान हैं। यही केपलरका दूसरा नियम है।

केपलरके तीसरे नियमसे सूर्यसे सब ग्रहोंकी दूरियोंका सम्बन्ध जाना जा सकता है। जैसे शुक्र और पृथ्वीके भगणकाल क्रमशः २२४·७ दिन और ३६५·३ दिन हैं, इसलिए इनके भगणकालोंके वर्गोंका सम्बन्ध $= \frac{(३६५·३)^२}{(२२४·७)^२} = २·६४५$

परन्तु केपलरके तीसरे नियमके अनुसार

$$\frac{(\text{सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी})^३}{(\text{सूर्यसे शुक्रकी दूरी})^३} = \frac{(३६५·३)^२}{(२२४·७)^२} = २·६४६$$

यदि सूर्यसे पृथ्वीकी दूरी १ मान ली जाय तो

$$\text{सूर्यसे शुक्रकी दूरी} = \left(\frac{१}{२·६४५}\right)^{\frac{१}{३}}$$

$$= (·३७८)^{\frac{१}{३}}$$

$$= \left(\frac{३७८}{१०००}\right)^{\frac{१}{३}} = \frac{१}{१०}(३७८)^{\frac{१}{३}}$$

$$= \frac{१}{१०} \times (७^३ + ३५)^{\frac{१}{३}} = \frac{१}{१०} \times ७(१ + \frac{३५}{३४३})^{\frac{१}{३}}$$

$$= \frac{७}{१०}(१ + \cdot१०२)^{\frac{१}{३}}$$

$$= \frac{७}{१०}\Big\{१ + \frac{१}{३} \times (\cdot१०२) + \frac{१}{\underline{|२}} \times \frac{१}{३}\left(\frac{१}{३} - १\right)(\cdot१०२)^{२}$$

$$+ \frac{१}{\underline{|३}} \times \frac{१}{३} \times \left(\frac{१}{३} - १\right)\left(\frac{१}{३} - २\right)(\cdot१०२)^{३} + \cdots\Big\}$$

$$= \frac{७}{१०}(१ + \cdot०३४ - \cdot००११६ + \cdot००००६६ + \text{एक बहुत सूक्ष्म संख्या})$$

$$= \frac{७}{१०} \times १\cdot०३२९ = \frac{७\cdot२३०३}{१०} = \cdot७२३$$

केपलर ने यह तीनों नियम ग्रहोंके सूक्ष्म निरूपणोंसे सं० १६६४–१६७४ वि० (१६०८-१६१८ ई०) में बनाये थे। उसको इस बातका पता नहीं था कि किन शक्तियोंसे ग्रहोंमें इन नियमोंके अनुसार गतियां होती हैं। कोई ७५ वर्ष तक इन नियमोंकी उपपत्ति नहीं बतलायी जा सकी। इसके पश्चात् न्यूटन ने यह सिद्ध किया कि विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण ही इन सबका कारण है। न्यूटनने जिन तीन नियमोंके आधार पर यह सिद्ध किया है वह गतिके नियम कहलाते हैं, जो उसीके नामसे प्रसिद्ध हैं और यह हैः—

पहला नियम—यदि कोई बाहरी शक्ति न लगायी जाय तो प्रत्येक वस्तु या तो अपनी अचल दशामें, या सीधी रेखामें समान गतिसे चलती हुई दशा में, रहना चाहती है।

दूसरा नियम—गतिका परिवर्तन लगायी जाने वाली शक्तिके मानानुसार होता है और यह परिवर्तन उस सीधी रेखाकी दिशामें होता है जिस दिशामें शक्ति लगायी जा रही हो।

तीसरा नियम—प्रत्येक क्रियाकी प्रतिक्रिया होती है, जो परिमाणमें सदैव समान, परन्तु दिशामें विरुद्ध होती है अर्थात् प्रत्येक क्रियाके समान परन्तु उसके विरुद्ध दिशामें प्रतिक्रिया होती है।

यह नियम स्वयम सिद्ध हैं। विशेष जानकारीके लिए गति विज्ञान ( Dynamics ) के किसी ग्रन्थको पढ़ना चाहिये।

केपलरके पहले और दूसरे नियमोंसे न्यूटनने यह सिद्ध किया कि प्रत्येक ग्रह एक ऐसी शक्तिके कारण चल रहा है, जिसकी दिशा सूर्यकी ओर है और जिसका परिमाण सूर्यसे ग्रहकी दूरीके वर्गके विलोम मानानुसार होता है। केपलरके तीसरे नियमसे न्यूटनने यह सिद्ध किया कि एक ग्रहकी गतिकी वृद्धि दूसरे ग्रहकी गति वृद्धिसे क्या सम्बन्ध रखती है और इसीसे उसने विश्वव्यापी गुरुत्वाकर्षणका सिद्धान्त निकाला, जो यह हैः—

द्रव्य ( matter ) का प्रत्येक कण दूसरे कणको उस शक्तिसे आकर्षित करता है, जो इन कणोंकी मात्राओंके गुणनफलके अनुसार तथा इन दोनोंके बीचकी दूरीके वर्गके विलोम मानानुसार बदलती है।

अब यह सिद्ध करना है कि यदि किसी स्थिर विन्दुसे किसी गतिमान कण तक रेखा खींची जाय और वह समान कालमें समान क्षेत्रफल बनावे तो वह कण जिस शक्तिसे चल रहा है उसकी दिशा उसी स्थिर विन्दुकी ओर है। यह बात चलन कलन (differential calculus) तथा गति विज्ञानके आधार पर संक्षेपमें सिद्ध हो सकती है, जो पीछे दी जायगी। इस जगह साधारण गणितके ही आधार† पर कुछ विस्तारके साथ सिद्ध की जाती है।

मान लो कि 'स' एक स्थिर विन्दु है और किसी वस्तुका कोई विन्दु स के चारों ओर घूमता हुआ क ख ग घ च बहुभुज क्षेत्र बना रहा है और क ख, ख ग, ग घ, घ च भुज समान कालमें अथवा १ पलमें चलता है। यह भी मान लो कि इन भुजोंके मान भिन्न भिन्न हैं और जब तक विन्दु किसी एक भुजपर रहता है तब तक उसकी गति एकरूप (uniform) रहती है। स क ख, स ख ग, स ग घ, स घ च त्रिभुजोंके क्षेत्रफल भी समान समझ लेने चाहियें।

अब यह प्रत्यक्ष है कि समान कालमें वह विन्दु स के चारों ओर घूमता हुआ समान क्षेत्रफल बनाता है। गतिके पहले नियमके अनुसार जब तक विन्दु बहुभुज क्षेत्रकी कोई सीधी भुज बना रहा है। तब तक उसपर कोई शक्ति काम नहीं कर रही है,

† यह युक्ति Heroes of Science : Astronomers के पृष्ठ १७३–१७५ के आधार पर है।

और वह अपनी प्राप्त शक्तिसे सीधी रेखामें जा रहा है, परन्तु एक भुजसे दूसरी भुजपर जैसे ही मुड़ने लगता है तैसे ही क्षणभर के लिए कुछ न कुछ शक्ति उसपर अवश्य लगनी चाहिये, जिससे वह अपनी पहलेकी सीधी चालसे बदल कर दूसरी सीधी चालपर आ जाय।
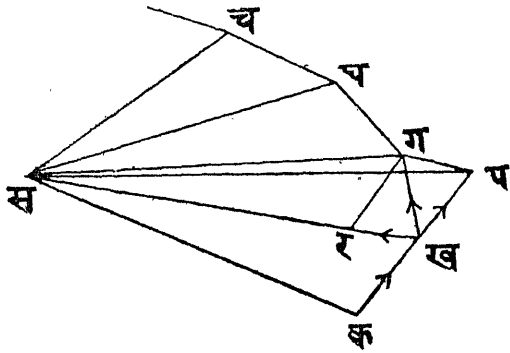
चित्र—१०

जिस समय विन्दु ख पर है उस समयकी दशा पर ध्यान दो। यदि इस समय कोई शक्ति न लगे तो दूसरे पलमें वह क ख की ही सीधमें ख प राह पर जायगा और क ख प रेखा सीधी रेखा होगी तथा ख प और क ख समान होंगे क्योंकि गतिमें कोई अन्तर नहीं होगा। प को ग और स से मिला दो। स ख प त्रिभुजका आधार ख प है जो क ख के समान है और क ख की ही सीधी रेखामें है, इसलिए रेखा-गणितके अनुसार दोनों त्रिभुज स क ख और स ख प के क्षेत्रफल समान हैं। परन्तु यह आरम्भमें ही मान लिया गया है कि स क ख, स ख ग इत्यादि त्रिभुजों-के क्षेत्रफल समान हैं। इसलिए यह सिद्ध हो गया कि स ख प और स ख ग त्रिभुज भी परस्पर समान हैं जो एक ही आधार स ख पर हैं, इसलिए रेखा गणितके अनुसार यह दोनों त्रिभुज स ख और ग प समानान्तर रेखाओंके बीचमें हैं अर्थात् ग प रेखा स ख के समानान्तर है। ख प के समानान्तर ग र रेखा खींचो जो स ख रेखासे र विन्दुपर मिले। तब ख प ग र समानान्तर चतुर्भुज क्षेत्र होगा। जिस समय विन्दु ख पर था उस समय यदि कोई शक्ति न लगी होती तो वह विन्दु प पर पहुँचता; परन्तु शक्ति लगनेसे वह ग पर पहुंचा, इसलिए प्रकट है कि ख पर विन्दुकी प्रथम गति ख प थी और शक्ति लगनेके कारण वह ख ग में बदल गयी। इसलिए गति विज्ञानके 'गतिके समानान्तर चतुर्भुज-नियम' (parallelogram of velocities) के अनुसार लगी हुई शक्तिके कारण विन्दुमें ख प की गतिके साथ ख र गतिका संयोग हो गया, अर्थात् ख विन्दु पर कणमें जो गति ख प दिशाकी ओर थी उसमें ख र की दिशामें ख र के समान ही दूसरी गति मिल गयी, जिससे वह कण ग विन्दु पर पहुँचा। इस-लिए इस मिलने वाली शक्तिके कारण वह वस्तु स की ओर मुड़ी इसी प्रकार यह सिद्ध हो सकता है कि बहुभुज क्षेत्रके कोण विन्दुओं ग, घ, च पर भी जो शक्ति लगती है वह स की दिशामें ही लगती है।

अब कल्पना करो कि यह बहुभुज क्षेत्र करोड़ों अत्यन्त छोटी छोटी भुजोंसे बना है और स के चारों ओर घूमने वाला कण प्रत्येक छोटी छोटी भुजको पलके करोड़वें भागमें चल कर पूरा करता है तो यह प्रकट है कि उस कण पर स की दिशामें करोड़ों बार शक्ति लगेगी। इसलिए यह सिद्ध है कि कण ने प्रायः वक्र (curved) मार्गको स की ओर ले जानेवाली एक अनवच्छिन्न (continuous) शक्तिके कारण पूरा किया। यदि कल्पनाको और बढ़ा दिया जाय और बहुभुज क्षेत्रकी भुज इतनी छोटी हो जांय कि उनकी कोई सीमा ही न बंध सके और उनकी संख्या असंख्य हो तब भी यही तर्क लागू हो सकता है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि यदि कोई कण किसी स्थिर विन्दुके चारों ओर ऐसे मार्ग पर चले कि उससे समान कालमें समान क्षेत्रफल बने तो इस कण पर जो शक्ति निरन्तर लगी हुई है वह उस स्थिर विन्दुकी दिशामें है अर्थात् वह स्थिर विन्दु उस कणको निरन्तर आकर्षित किये हुए है।

यदि स को सूर्यका केन्द्र मान लिया जाय और क, ख, ग इत्यादि किसी ग्रहके स्थान, तो केपलरके दूसरे नियमसे सिद्ध होता है कि सूर्यके चारों ओर घूमनेवाले ग्रहोंको उनकी कक्षामें थांभनेके लिए जो शक्ति काम कर रही है वह सूर्यकी ही आकर्षण शक्ति है। इसी प्रकार ग्रह भी अपने उपग्रहोंको खींच रहे हैं।

—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव।

## दण्डीरचित काव्य

पहले दशकुमार चरित और काव्यादर्शका निर्देश हो चुका है। वस्तुतः यही दोनों ग्रन्थ निश्चयात्मक रीतिसे दण्डी रचित कहे जाते हैं। कतिपय विद्वानोंका कथन है कि पूर्वपीठिका और उत्तरपीठिका दण्डीके किसी शिष्यकी रचनायें हैं, जो बादको दशकुमार चरितमें जोड़ दी गयीं। पूर्व पीठिकाके अनुप्रास अस्वाभाविक और उसकी शैली कृत्रिम बोध होती है। पर सहसा यह विश्वास नहीं होता कि श्रीदण्डी ने चरितके मध्य भागकी ही रचना की थी। पीठिकाओंमें चरितके मुख्य अंशसे कुछ विषमता अवश्य प्रकट होती है पर समताका ही अंश विशेष है। हाँ, सम्प्रति इस विषय पर कोई निश्चय मत प्रकट करना कठिन है। वर्तमान हिन्दीके जन्मदाता सुकवि एवं नाटककार भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने मल्लिका मारुत नामक प्रकरण* को भी दण्डी रचित लिखा है। मल्लिका शब्द दण्डीके काव्यादर्श† में भी आया है। काव्य मीमांसा‡ और वासवदत्तामें छन्दोविचितिका उल्लेख है, जिसे श्रीयुत शिवराम त्रिपाठीने दण्डी रचित माना है। वास्तवमें छन्दोविचिति काव्यादर्शका सहचर ग्रन्थ है।

* बड़े नाटकको प्रकरण कहते हैं।

† द्वितीय परिच्छेद—२१५

‡ दशम

प्रसिद्ध प्रकरण मृच्छकटिककी रचनाका श्रेय शूद्रक नामक राजाको दिया जाता है। प्रस्तावनामें उसकी बड़ी प्रशंसा की गयी है; पर विद्वानोंका अनुमान है कि इस ग्रन्थका रचयिता राजा शूद्रकका आश्रित कोई विद्वान् रहा होगा। श्रीयुत प्रोफ़ेसर पिशेल (Pischel) का तो मत है कि यह प्रकरण श्रीदण्डीकी ही रचना है। पुस्तकका दृश्य उज्जयिनी और उसके पड़ोसमें स्थापित किया गया है। एक ब्राह्मण व्यवसायीकी सारी सम्पत्ति परम उदारताके कारण नष्ट हो गयी। वह दरिद्र तो हो गया, पर उसके आचरणमें सज्जनता थी। उसका नाम चारुदत्त था। इसके साथ साथ रङ्गभूमि पर वसन्त सेना नामकी एक धनाढ्य रमणी प्रकट होती है जो उस दरिद्र सौजन्यपूर्ण ब्राह्मणको प्यार करती थी और अन्तमें उसकी सहधर्म्मिणी भी हो गयी। तृतीय अङ्कमें चौर्य्यकलाका मनोरञ्जक वर्णन है और चतुर्थ अङ्कमें वसन्त सेनाके भवनका विस्तृत विवरण मिलता है। वस्तुतः मृच्छकटिक और दशकुमार चरितमें बहुत कुछ समानता है। इस प्रकरणमें आनन्द जनक वर्णन अधिकतर हैं तथा बहुत से करुणाजनक दृश्य भी हैं, जिनमेंसे कुछ तो दुःखमय अवस्थाकी सीमा तक पहुँच जाते हैं। यदि यह ग्रन्थ दण्डीका ही ठहरे तो निस्सन्देह भारतीय नाटकके मञ्च पर उसको उच्च स्थान प्राप्त होगा। श्रीयुत मैकडानलका कथन है कि यदि काव्यके सौष्ठव एवं कोमलता और भावकी गम्भीरतामें कालिदासका स्थान सर्वोच्च है, तो मृच्छकटिक-कार भी प्रौढ़ता, सजीवता और कर्मण्यता एवं पात्र योजनाके चमत्कार आदि विशिष्ट नाटकीय गुणोंमें, प्रसिद्ध यूरोपीय नाटककार शेक्सपियरकी प्रतिभाके समान ही भारतीय नाटककारोंमें अग्रगण्य ठहरता है। मृच्छकटिक मौलिकता तथा सद्भावनासे अङ्कित है। श्रीयुत मैकडानलके मतानुसार भी यह ग्रन्थ दण्डीके ही युगका बना है।

संस्कृतके प्राप्य अलङ्कार ग्रन्थोंमें भामह रचित काव्यालङ्कारको छोड़ कर दण्डीका काव्यादर्श ही

सबसे पुराना मालूम होता है। इसके रचयिताको पण्डितों ने आचार्य्यकी उपाधि दी है। वास्तवमें यह ग्रन्थ बड़े महत्वका माना गया है। यहाँ तक कि भोज जैसे पश्चाद्वर्ती लेखकने अपने प्रसिद्ध अलङ्कार ग्रन्थ सरस्वती कण्ठाभरणमें काव्यादर्शसे बहुशः पद्योंका उद्धरण किया है। दण्डी ने महाकाव्यके यह लक्षण गिनाये हैं—

१—महाकाव्यका विषय इतिहाससे लेना चाहिये।

२—उसका आकार विस्तृत होना चाहिये।

३—उसमें नगर, समुद्र, पर्वत, ऋतु, सूर्य्योदय, विवाह और नायकके संग्राम आदिका वर्णन होना चाहिये।

काव्यादर्शसे तत्कालीन साहित्यिक आदर्शोंका विस्तृत ज्ञान प्राप्त हो सकता है, पर इस विषयकी पूरी आलोचना इस छोटे निबन्धमें नहीं हो सकती। आचार्य्य दण्डीके समयमें गौड़ी और वैदर्भी नामकी दो निश्चित प्रान्तीय रीतियां प्रचलित थीं। कालान्तरमें चार अपर रीतियोंका भी प्रचार हुआ जो पाञ्चाली, लाटी, अवन्तिका और मागधी नामसे प्रसिद्ध हुईं। काव्यादर्शमें परिगणित काव्यके दसों मुख्य गुण विशेष कर रीतिसे ही सम्बन्ध रखते हैं। यथा—

> श्लेषः प्रसादः समता समाधि
> माधुर्य्यमोजः पद-सौकुमार्य्यम्।
> अर्थस्य च व्यक्तिरुदारता च
> कान्तिश्च काव्यार्थ गुणा दशैते॥

श्री दण्डीने काव्य रचनाके अधोलिखित दोष भी गिनाये हैं—

> गूढार्थमर्थान्तरमर्थहीनं
> भिन्नार्थमेकार्थमभि प्लुतार्थम्।
> न्यायादपेतं विषमं विसन्धि
> शब्दच्युतं वै दश काव्य दोषाः॥

वास्तवमें काव्यादर्शके रचयिताका स्थान संस्कृत काव्यके आचार्योंमें परम उच्च है।

गद्य काव्यकी श्रेणीमें दण्डीके दशकुमार चरितका मान विशेष है। श्रीदण्डीका सिद्धान्त था कि ओज अर्थात् समास बाहुल्य ही गद्य काव्यका प्राण है। यथा

> ओजः समास भूयस्त्व मेतद्गद्यस्य जीवितम्

दशकुमार चरितमें समासोंकी अधिकताका यही कारण है। पर उसके विवरण प्रायः बोधगम्य, सूक्ष्म और स्वाभाविक हैं। श्रीदण्डीका अवतार ऐसे युगमें हुआ था जब संस्कृत रचना शैलीकी सादगीका परिवर्तन दुरूहता और अस्वाभाविक विस्तारकी ओर हो रहा था। उसकी भी गणना नवीन शैलीके प्रवर्तकोंमें होने योग्य है। उसकी रचना पञ्चतन्त्र एवं कथा-सरित्सागर और वासवदत्ता एवं कादम्बरीके बीचकी मालूम होती है। व्याकरणकी दृष्टिसे पुस्तकमें कुछ कृत्रिम विशेषतायें भी हैं। इसमें यौगिक शब्दों एवं प्रेरणार्थक और इच्छार्थक रूपोंका व्यवहार अधिकतासे किया गया है। पर एक विचित्र बात यह है कि विविध रूपोंके प्रयोग बाहुल्यके बीच यङ्लुगन्तका व्यवहार कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। श्रीदण्डी का भाषा पर पूरा प्रभुत्व था। उसने एक पूरा परिच्छेद ओष्ठ्य अक्षरोंके बिना ही सफलताके साथ लिख डाला है। पर हां, इतना निश्चय है कि भट्टिकाव्यकी तरह व्याकरणके रूपोंको उद्धृत करनेके लक्ष्यसे ही यह ग्रन्थ नहीं लिखा गया था। और न इस चरितकी रचनामें केवल काव्य ग्रन्थ लिखनेका ही उद्देश्य था। पुस्तकका मूल लक्ष्य राजनीतिक था। तथापि उसमें श्रीदण्डीकी विशिष्ट योग्यता और विशाल काव्यानुरागका सन्निवेश है। भाषा और शैलीकी उत्तमत्ता देखते हुए श्रीदण्डीको कालिदास, बाण और भवभूति जैसे कवियोंकी श्रेणीमें स्थान देना उचित है। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रकृति प्रेम और विवरण विशिष्टतामें उपर्युक्त तीनों कवि दशकुमार चरितके रचयितासे बढ़ कर निकलते हैं।

श्रीदण्डीका रचना-नैपुण्य

ऊपर लिख चुके हैं कि दशकुमार चरित तथा काव्यादर्श, यही दोनों ग्रन्थ निश्चित रीतिसे दण्डी रचित माने जाते हैं। काव्यादर्श तो अलङ्कार शास्त्रका ग्रन्थ है, पर दशकुमार चरित दण्डी रचित गद्य काव्य है। कोई छन्दोबद्ध काव्य ग्रन्थ अभ्रान्त रूपसे दण्डी रचित नहीं माना गया है। तथापि एतद्देशीय पण्डितोंके मुखसे श्री दण्डीके विषयमें अधो लिखित समालोचनात्मक श्लोक प्रायः सुननेमें आता है—

जाते जगति वाल्मीके कविरित्यभिधा भवत्।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

वाल्मीकि और व्यास ने छन्दोबद्ध काव्योंकी रचना की थी। और इनके ग्रन्थ उच्च कोटिके हैं हैं भी। निश्चय नहीं कहा जा सकता कि वाल्मीकि और व्यासकी श्रेणीमें स्थान देते समय समालोचक-की दृष्टि दशकुमार चरित पर ही थी अथवा अन्य किसी ग्रन्थ पर जो इस समय उपलब्ध नहीं है। एक श्लोक और भी प्रचलित है, जिसका अभिप्राय इस शङ्काको दूर करनेका मालूम होता है। यथा—

कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।

परन्तु इससे भी कोई निश्चित बात नहीं प्रकट होती। इसी प्रकार एक दूसरे श्लोकमें किसी समालोचकने श्री दण्डीको कलिदास, भारवि और माघेकी श्रेणीमें गिनाया है यथा—

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पद लालित्यम् माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥

प्रथम श्लोकमें यदि दशकुमार-चरित-कारकी गणना रामायणकार और महाभारतकारके साथ की गई है तो इस श्लोकमें भी रघुवंश, किराता-र्जुनीय और शिशुपाल बध सरीखे महा काव्योंके रचयिताओंकी श्रेणीमें उसे स्थान मिला है। पर सम्प्रति दण्डी रचित कोई महाकाव्य उपलब्ध नहीं है। मृच्छकटिक प्रकरण भी निश्चयात्मक रीतिसे दण्डी रचित नहीं सिद्ध हो पाया है। अत-एव दशकुमार चरित नामकी आख्यायिकाके ही आधार पर सम्प्रति श्री दण्डी की रचना-चातुरी का निरूपण करना उचित है।

वास्तव में गद्य काव्य होने पर भी दशकुमार चरित में पद्य काव्यकी सरसता है। उसके पदों की सुन्दरता एवं मधुर, सुहावने और परितुलित वाक्योंकी पुनरावृत्ति बड़ी चित्ताकर्षक है। चरित-की शैली अत्यन्त परिष्कृत है और उसकी भाषा भी विषयके अनुकूल एवं आवश्यकतानुसार बोध गम्य, सुहावनी और प्रौढ़ है। नायकके शुद्धाचरण-का निर्वाह अन्त तक किया गया है। उसके सदा-चार पर परम कठोर नीतिज्ञ भी आक्षेप नहीं कर सकता। श्रीयुत विल्सन को तत्कालीन हिन्दू समाजमें सिद्धान्त और आचारकी शिथिलता दृष्टिगोचर होती है। हां, विश्रुत चरितमें राज-नीतिक आदर्शोंसे पतित अनन्त धर्म्माकी राजधानी में सिद्धान्तों और आचारोंकी शिथिलता प्रदर्शित-की गयी है। पर पुस्तकमें आचारकी पवित्रता, शक्ति और सत्यताका वर्णन ही विशेष है। इसी आधार पर श्रीयुत कालेने श्रीयुत विल्सनके मत-का खण्डन किया है। सच है; भारत भूमिमें अनादि कालसे पूर्ण आचारिक सत्यता एवं पाति-व्रत धर्म्मको सभी सांसारिक निधियोंके ऊपर स्थान दिया गया है।

दण्डीके मतानुसार उस समयके राजाओंमें गान्धर्व विवाह प्रचलित था। पर उन दिनों राज-कुलमें तो यही प्रथा उत्तम समझी जाती थी और मनुस्मृतिका मत भी इसीके अनुकूल है। पातिव्रत धर्म रुधिरकी स्वच्छताके विषयमें दण्डीका आदर्श ऊँचा था। प्रेम कोई खिलौना नहीं था और न यह धन प्राप्तिका व्यवसाय ही था। पूर्वपी-ठिकाके चतुर्थ उच्छ्वासमें 'भयङ्कर ज्वालाकुल हुत भुगवगाह मान साहसिका मुकुलिताञ्जलि पुटा वनिता'का चित्र भक्ति पूर्ण शब्दोंमें अङ्कित किया गया है। सर्वदाके लिए अदृश्यताको प्राप्त पतिदेव-के प्रेम-मार्गमें स्वतःरोहण द्वारा जीवनका बलिदान

करनेवाली भारतीय रमणियोंमें कैसा आत्मत्याग भरा था !

अर्थपाल चरितमें स्त्री धर्म्मका इस प्रकार निरूपण किया गया है—

स्त्री धर्म्मं श्चैषः यददुष्टस्य दुष्टस्य वा भर्तुर्गतिर्गन्तव्येति ।
तदहममुनैव सह चिताग्निमारोक्ष्यामि अभिजनानुरूपः
पश्चिमो विधिरनुज्ञातव्य इति ।

इसी कथामें स्त्री जातिको "अनन्य शरणाय स्त्री जनाय" की उपाधि दी गई है और विश्रुत चरितमें महादेवी वसुन्धराकी परीक्षित पवित्रताका वर्णन है । वास्तवमें पतिव्रता स्त्रीके प्रति जनताकी बड़ी भक्ति रहती है ।

पूर्वपीठिकाके प्रथम उच्छ्वासमें एक पतिव्रता की यह प्रार्थना कितनी सुन्दर, सरस और भाव पूर्ण है ।

लावण्योपमितपुष्प सायक ! भूनायक, भवानेव भाविन्यपि जन्मनि वल्लभो भवतु ।

काव्यादर्शमें भी अनेक अनूठे श्लोक उदाहरण रूपमें स्थान स्थानपर लिखे गये हैं । एक स्त्री अपने प्रेमीको सन्मार्ग पर लानेके हेतु कितनी मनोहर रीतिसे प्रलोभन दे रही है—

सत्यंब्रवीमि न त्वं मां द्रष्टुं वल्लभ ! लप्स्यसे ।
अन्यचुम्बनसंक्रान्त लाक्षा रक्तेन चक्षुषा ॥ ११२५ ॥

अपहार वर्म्म चरितमें एक विषयी पुरुष कहता है कि—

न धर्म्मस्तत्वदर्शिनां विषयोपभोगेनोपरुध्यत इति ।

परन्तु दण्डी ने उसे मूढ़ात्मा करके ही लिखा है । राजवाहन चरितका अधोलिखित भाव कितना पवित्र और सहृदयता पूर्ण है !

नूनमेषा पूर्वजन्मनि मे जाया यज्ञवती नो चेदेतस्यामेवंविधोऽनुरागो मन्मनसि न जायेत ।

इस वाक्यकी तुलना महा कवि तुलसीदासकी इन चौपाइयोंसे करनी योग्य है—

जासु विलोकि अलौकिक शोभा ।
सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥
सो सब कारन जान विधाता ।
फरकहिं सुभग अङ्ग सुनु भ्राता ॥
रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ ।
मन कुपन्थ पगु धरै न काऊ ॥

वास्तवमें श्रीदण्डीके ग्रन्थमें आचारिक पवित्रता, शक्ति और सत्यताका विवरण है । स्थान स्थान पर मनोरञ्जनके साथ साथ सान्त्वना, उत्साह एवं अनेक अनुभव पूर्ण शिक्षाओंका समावेश है । कष्टके समय पुष्पपुरीके राजवंशको वह कैसी अच्छी सान्त्वना दे रहा है—

सकल रिपुकुल मर्दनो राजनन्दनो नूनं सम्भविष्यति ।
कञ्चन कालं तूष्णीमास्वेति

रहीम कवि ने भी तो यही कहा है—

रहिमन चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर ।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै बेर ॥

सोमदत्त चरितमें दानकी योग्यता इस प्रकार प्रकट की गयी है—

विप्रोऽसौ बहुतनयो विद्वान् निर्धनः स्थविरश्च दानयोग्यः

इसी प्रकार राज वाहन चरितमें हंस बन्धन पर यह अनुभव पूर्ण भाव अङ्कित किया गया है ।

लोके पण्डिता अपि दाक्षिण्येनाकार्य्यं कुर्वन्ति ।

उसी चरितमें राजकुमारके प्रति ऐन्द्र जालिक के शब्द कितने अर्थद्योतक और भक्ति पूर्ण हैं—

देव भवदनुचरे मयि तिष्ठति तव कार्य्यमसाध्यं किमस्ति ।

वस्तुतः दशकुमार चरितमें उत्साह पूर्ण शक्ति, एवं दृढता, मित्रों और सहवर्गियोंके प्रति अखेद्य भक्ति तथा प्रेम पात्रोंके प्रति कोमल एवं आदर्श संयोग आदि गुणोंसे अलंकृत नायकोंका वर्णन है ।

पुस्तकमें अलङ्कारोंकी सुन्दरता तथा रसोंकी मधुरता कहीं भी घटी नहीं है । श्रीदण्डीने शृङ्गार रसके भी चित्रण में अपूर्व पटुता दिखलाई है । राज वाहन चरित तो परम सरस है । उसमें वसन्त ऋतु एवं वाटिका मनोरञ्जन का विवरण परम सुन्दर है । यह चरित तथा मित्र गुप्त चरित भी मानव सौन्दर्यके साथ प्रकृतिके शृङ्गारमें भी स्वाभाविक, सरस तथा सबल भावोंके बीच ऊँचे

उड़ान करते हैं। अपहार वर्म्म चरित, कुमारोत्पत्ति और पुष्पोद्भवचरित भी अच्छे बने हैं। राज वाहन चरितका "शिरीष कुसुम सुकुमाराथाः" गोस्वामी तुलसीदासके "सिरिस सुमन किमि बेधइ हीरा" से कैसा मिल जाता है!

"सुधाकरस्यापनीत कलङ्कया कान्त्या वदनम्"

की भी तुलना राम चरित मानसकी तादृश कल्पनाओंसे करनी योग्य है। श्रीदण्डीकी सांसारिक सुन्दरीकी लक्ष्मीसे तुलना परम सुन्दर हुई है—

"किमियं लक्ष्मीः? नहि नहि तस्या हस्ते विन्यस्तं कमलम्।
भुक्त पूर्वा चासौ पुरातनेन पुंसा पूर्वराजैश्च,
अस्याः पुनरनवद्ययातयामं यौवनम्"

इस भागको रामचरित मानसके प्रथम सोपानमें सीताके सौन्दर्य्य चित्रणके साथ पढना कितना चित्ताकर्षक है! पुनः दण्डीके अधोलिखित वाक्योंमें बड़ा अनोखा और भाव पूर्ण शृङ्गार अङ्कित है।

ललना जनं सृजता विधिना नूनमेषा घुणाक्षर न्यायेन निर्म्मिता। नोचेदब्जभूरेवंविधनिर्माणनिपुणो यदि स्यात्तर्हि तत्समान लावण्यामन्यां तरुणीं किं न करोति?

उसी परिच्छेदमें अवन्ति सुन्दरीने कामकी पञ्चवाण उपाधिका खण्डन किया है। भला यदि वह पञ्चवाण होता तो उसके प्राणोंको न हर कर वियोगके दुःख क्यों सहाता? उस वियोगिनीके लिये तो चन्द्रमा वडवानलसे भी अधिक भीषण है। अथवा ऐसे खलका नाम भी क्यों लिया जाय जो अपनी ही बहिन लक्ष्मीके निवासस्थान कमल का नाशक है? वियोगाग्निके धधकते हृदयकी गर्मी मलय मारुतको भी सुखा देती है। वास्तवमें इस वियोगका मूल वर्णन बड़ा हृदय ग्राही है। उसका चित्र अङ्कित करना इस निबन्ध लेखकके सामर्थ्यके बाहर है। श्रीदण्डीकी रचना चातुरीका परिचय मूल पुस्तकके पाठसे ही प्राप्त हो सकता है।

---

# लाठी बाँधना

[ ले०—श्री० हरिनारायण शर्मा वैद्य आयुर्वेदाध्यापक ]

यह शब्द या वाक्य बहुत पुराना है। इसकी वैज्ञानिक उपयोगिता तो बहुत ही अच्छी है, लेकिन प्रायः लोग इसका उद्दण्ड अर्थ करते हैं। अक्सर लोग लाठी बाँधनेवालेको गुंडा कहा करते हैं। "लाठी बाँधने" का अर्थ होता है—हाथमें लाठी (दण्ड) रखना। भारतीय चिकित्सामें इसे "दण्ड धारण" कहते हैं। दण्डधारण मानव समाजके स्वास्थ्यके लिए बड़ा ही उपकारी है। मनुष्यको चाहिये कि जब कभी घर से निकले तो हाथमें एक दण्डा लेकर ही निकले।

डंडा रखनेसे आदमी रातमें फिसलने वगैरहसे गिर नहीं सकता, दण्डधारी पुरुषसे उसका दुश्मन भी भय खाता है। शरीर झुकता नहीं—सीधा खड़ा रहता है। हाथमें डंडा रखनेसे आधिभौतिक (मनुष्य पशु पक्षी सांप बिच्छू पेड़ आदिसे होने वाले) दुःख आदिसे किसी तरहका भय नहीं रहता। अतएव इतने गुणोंके होते हुए कहा जा सकता है कि दण्डा मनुष्यकी आयु बढ़ानेवाला होता है।

स्खलतः सम्प्रतिष्ठानं, शत्रूणाञ्च निषेधनम्।
अवष्टम्भनमायुष्यं भयघ्नं दण्डधारणम्॥
—चरक संहिता।

हम भारतीयोंके अभाग्यसे ऐसा कानून बना है कि कोई भी आत्मरक्षाके लिए शस्त्र धारण नहीं कर सकता, पर जहां तक मालूम है डंडा बाँधनेके लिए मनाई नहीं है, इसलिए हम लोगोंको चाहिये कि हाथमें दण्डा अवश्य रखा करें। यदि डंडेके लिए भी गवर्नमेन्ट द्वारा हम लोग वंचित कर दिये जायँ तो इसे स्वास्थ्य अपहरण ही कहना होगा।

सबसे अच्छा दण्डा बाँसका होता है। कमसे कम लम्बाईमें हर एक मनुष्यकी कमर तक डंडा होना चाहिये।

---

# आधुनिक दिनचर्या

[ ले०—पं० हरिनारायण शर्मा वैद्य ]

विज्ञानकी विगत संख्यामें डा० बी० के० मित्र महाशयका लिखा हुआ इसी शीर्षकका एक लेख निकला था। लेख बहुत ही उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण था, लेकिन उसमेंकी दो बातें खटकती हैं।

पहली यह है कि शौचके विषयमें मित्र महोदय ने लिखा है कि—पहले कपड़ा, कागज़, पत्ता वग़ैरहका व्यवहार किया जाय; उसके बाद शरीर-को धो लियाजाय।

अन्य देशोंमें यह प्रथा भले ही अच्छी हो पर भारतके लिए यह ठीक नहीं, क्योंकि शुद्धिके काम-में लाये गये कपड़े वग़ैरह उड़ उड़ कर सब जगह फैलेंगे, जिससे उल्टी बीमारी हो सकती है। दूसरे दिनमें दो बार साफ करनेके लिए, सबको रोज इतने कपड़े मिल नहीं सकते। नियम ऐसा होना चाहिये जो सब जगह सुलभ और सरल हो, पत्ते आदिसे मल वहीं पुत जायगा। इसलिए पानी-की धारासे ही शुद्धि ठीक होती है। उसीसे पुरीष-द्वार साफ करना चाहिये। भारतमें ऐसी प्रथा जहां तक मालूम है कभी प्रचलित नहीं थी।

दूसरी बात भोजनके विषयकी है। आप लिखते हैं—भोजन........प्रियजनोंके साथ वार्तालाप करते हुए करना ही अच्छा है। परन्तु यह नियम भी ठीक नहीं, क्योंकि जिस राहसे भोजन पेटमें जाता है उसे हलक कहते हैं; उसमें कई दर-वाज़े होते हैं। एक कानकी तरफ, एक नाककी तरफ, एक मुँहकी तरफ, एक पेटकी तरफ और एक फेफड़ेकी तरफ। भोजन करते समय और सब दरवाजे बंद हो जाते हैं, केवल मुंह और पेट वाला द्वार खुला रहता है, परन्तु भोजनके समय वार्तालाप करनेसे फेफड़ेवाला दरवाज़ा जा सकता है, जिससे भोजनका कुछ अंश उसमें चला जाता है। फेफड़ेवाला दरवाजा केवल सांस लेनेके ही लिए है। इस दरवाजेमें भोजनावयवके चले जाने पर फेफड़ेसे बड़े ज़ोरके साथ हवा निकलती है। जिससे भोजनका वह अंश जो फेफड़ेवाले दरवाजे-में चला जाता है, लौट आता है। इस कारण बहुत खांसी आती है। और जब तक भोजनके कण निकल नहीं जाते तबतक बड़ी बेचैनी रहती है, जिसे "नाथू चढ़ना" कहते हैं। इसीलिए हिन्दू-धर्म शास्त्रोंमें मौन होकर खाना धर्म माना गया है। धर्म नियमका पर्याय है। चरकमें भी लिखा है—"नाकीर्णे" अर्थात् जहां बहुतसे मनुष्य हों ऐसी जगह भोजन न करना चाहिये।

भोजन करते समय वार्तालाप करनेसे मनके दूसरी ओर रहनेसे भोजनका ठीक स्वाद और भोजन कच्चा है अथवा पक्का, यह भी ठीक ज्ञात नहीं हो सकता। वार्तालापमें रत रहनेसे भोजन अधिक मात्रामें खाया जा सकता है; जो अजीर्णके रूपमें परिणत होकर महान् दुःखदायी हो जाता है। इसलिए प्रायः एकान्तमें और मौन होकर ही भोजन करना अच्छा है।

---

# ऋतुचर्या

[ ले०—पं० अभयचन्द्र जैन, वैद्यराज ]

विश्व परिवर्तनशील है। इसमें कोई भी ऐसा सजीव अथवा निर्जीव पदार्थ नहीं है, जिसमें प्रतिक्षण कुछ न कुछ परिवर्तन क्रिया न होती हो—चाहे वह क्रिया दृश्य हो या अदृश्य। यद्यपि यह परिवर्तन क्रिया प्रत्येक पदार्थमें स्वभावतः होती रहती है फिर भी व्यवहारिक दृष्टिसे इसका कर्ता काल माना जाता है; जैसा कि श्रीमान् आचार्य उमास्वामी जी ने कहा है—

वर्तना परिणाम क्रिया परात्वापरत्वे च कालस्य ।

तत्वार्थसूत्र अ० ५ सू० २२वाँ

वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व ये कालके उपकार हैं।

कालके दो भेद हैं—एक निश्चय काल दूसरा व्यवहार काल। निश्चयकाल अनादि और अनंत है; व्यवहार काल सादि और सान्त है। व्यवहार कालके अनेक भेद हैं; उनमेंसे कुछका दिग्दर्शन यहां पर कराया जाता है—

निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष, युग, आदि।

निमेष—जितना काल एक ह्रस्व अक्षरके उच्चारणमें लगता है उतने कालको १ निमेष कहते हैं।

काष्ठा—१५ निमेषकी एक काष्ठा होती है।

कला—३० काष्ठाकी एक कला होती है।

मुहूर्त—२० कला और ३ काष्ठाका एक मुहूर्त होता है।

दिनरात्रि—३० मुहूर्तकी एक दिनरात्रि होती है।

पक्ष—१५ दिन रातका १ पक्ष होता है।

मास—२ पक्षों ( कृष्ण, शुक्ल ) का १ मास होता है।

ऋतु—२ मासकी १ ऋतु होती है।

अयन—३ ऋतु अर्थात् ६ महीनेका १ अयन होता है।

वर्ष—[1]दक्षिणायन, और [2]उत्तरायण इन दो अयनोंका १ वर्ष होता है।

युग—५ वर्षका १ युग होता है।

कालके भेदोंमेंसे यहां पर सिर्फ ऋतु पर विचार किया जाता है। ऋतुका अर्थ प्रकृति परिवर्तन कहा जाय तो अयुक्त नहीं होगा। मैं पहिले बता चुका हूँ कि ऐसा कोई भी क्षण नहीं है जिसमें कि प्रत्येक पदार्थमें कुछ न कुछ परिवर्तन न हो परन्तु ऋतुरूप परिवर्तन स्थूल होता है। ऋतुओंमें जो जो परिवर्तन होते हैं वे स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होते हैं। इन ऋतुओंमें केवल बाह्य (जड़) जगत में ही परिवर्तन नहीं होते हैं किन्तु संसर्गसे अध्यात्म जगत में भी महान् परिवर्तन उपस्थित होते हैं।

वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त, शिशिर—इनमें से एक एक ऋतुके अनंतर जब दूसरी ऋतुका आगमन होता है तब प्रकृति वा प्राणियोंमें जो जो अपूर्व परिवर्तन होते हैं वे सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं। यह परिवर्तन प्रति वर्ष ६ होते हैं इन परिवर्तनोंका कारण सूर्यकी गतिकी विशेषता है। आचार्य शार्ङ्गधर ने लिखा है—

चयकोपशमाः यस्मिन् दोषाणां संभवन्ति हि ।
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवेः राशिषु संक्रमात् ॥

शार्ङ्गधर सं० अ० २ श्लोक २१

ज्योतिष-शास्त्र-प्रसिद्ध सूर्यके १२ मार्ग-विभाग हैं, जिनको राशियां कहते हैं। प्रत्येक राशि पर सूर्य १ मास तक गमन करता है, जिससे महीनेकी निष्पत्ति होती है। इसी तरह दो राशियों पर गमन करनेसे २ महीनों अर्थात् १ ऋतुकी निष्पत्ति होती है। इन ऋतुओंमें स्वभावतः ही दोषोंका संचय, प्रकोप और उपशम होता है। यह साधारण नियम

---

(१) सूर्य जिस समय दक्षिण दिशासे होकर गमन करते हैं उस समयको दक्षिणायन कहते हैं। इसमें श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अगहन, पौष, यह ६ मास होते हैं। इसका दूसरा सार्थक नाम विसर्ग काल है। इसमें सूर्य ठंढा पड़ जाता है। ग्रीष्म-ऋतु-संतप्त महीतल जलसे भरे हुए बादलोंसे आकाश मंडलके छा जानेसे, वर्षासे, और शीतल वायु (झंझावात) के बहनेसे क्रमशः अतिशीतल हो जाता है, पृथ्वी प्राणियोंमें सौम्यगुणोंकी वृद्धि करके बलप्रदान करता है।

(२) जिस समय सूर्य उत्तर दिशा से होकर गमन करते हैं उस समयको उत्तरायण कहते हैं। इसमें माघ आदि ६ महीने होते हैं। इसका दूसरा सार्थक नाम आदान काल है। इस कालमें सूर्य और हवा अत्यन्त तीक्ष्ण, उष्ण और रूक्ष होते हैं; इसलिये पृथ्वीके मन्द, शीतल और स्निग्ध आदि सौम्य गुण क्रमशः क्षीण हो जाते हैं।

है कि थोड़ा सा अपराध मामूली दंड-शिक्षा देकर माफ कर दिया जाता है और यदि उग्र अपराध हो तो फिर तदनुसार ही उग्र दंडकी योजना की जाती है। यही नियम प्रकृतिका है। प्रकृतिके अनुकूल चलने वाले न अपराध करते हैं और न दंडके भागी ही होते हैं; सदा स्वस्थ रहते हैं। जो ग्रीष्म ऋतुमें कालके प्रभावको दमन करने वाले आहार विहारका सेवन नहीं करते हैं उनका वात दोष संचित होता है, वर्षा ऋतुमें प्रकुपित होता है और शरत्कालमें अपने आप शान्त हो जाता है। इसी तरहसे पित्त और कफ भी वर्षा और हेमन्त ऋतुमें संचित होते हैं. शरत्काल और वसन्त ऋतुमें प्रकुपित होते हैं और वसन्त और प्रावृट् ऋतुमें अपने आप शान्त हो जाते हैं।

१२ राशियोंके नाम

१ मेष, २ वृष, ३ मिथुन, ४ कर्क, ५ सिंह, ६ कन्या, ७ तुला, ८ वृश्चिक, ९ धनु, १० मकर, ११ कुंभ, १२ मीन।

इनमें से दो दो राशियों पर सूर्यके गमन करनेसे क्रमशः ग्रीष्म, प्रावृट्, वर्षा, शरत, हेमन्त, वसन्त- यह ६ ऋतु होती हैं। इनमें नीचे लिखे क्रमशः दो दो महीने होते हैं।

वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, अगहन, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र।

ऋतुओंके विषयमें मत भेद

कोई कोई आचार्य प्रावृट् ऋतु नहीं मान करके हेमन्तसे आगे शिशिर ऋतु मानते हैं। इसका कारण यह है कि सूर्य की दूरी सब जगह से एक सी नहीं होती है; अतः जहांपर जितनी दूरी है वहां पर उसीके अनुसार सूर्यकी मन्द मध्यम वा तीक्ष्ण किरणें पड़ती हैं और इसीके अनुसार ऋतुओं में भी भिन्नता होती है। इसके अतिरिक्त समुद्रकी सन्निकटता वा दूरी, पर्वत बाहुल्य, प्रदेशोंकी उच्चता वा नीचता-आदि बहुतसे कारण है। इन कारणोंसे जहां पर वर्षाका आधिक्य होता है वहां पर ४ मास वर्षा होती है; अतएव प्रावृट् और वर्षा ऋतु होती है और जहां पर उपर्युक्त कारणोंसे शीत अधिक अर्थात् ४ महीने पड़ती है वहां पर प्रावृट् ऋतु न हो कर शिशिर ऋतु अधिक होती है। इस विषयमें महर्षि कश्यप ने भी प्रकाश डाला है—

भूयो वर्षति पर्जन्यो गंगायाः दक्षिणे जलम्।
तेन प्रावृट् वर्षाख्यौ ऋतू तेषां प्रकल्पितौ॥ १॥
गंगाया उत्तरे कूले हिम वदंबु संगमे।
भूयः शीतमतस्तेषां हेमन्तशिशिरावृतू॥ २॥

गंगाके दक्षिणी तट पर वर्षा बहुत, अधिक समय तक होती है; इसलिए इन प्रदेशोंमें प्रावृट् और वर्षा यह दो ऋतुयें होती हैं। वर्षा ऋतुसे पहिले कालको प्रावृट् (प्रथमः प्रवृष्टः कालः) जिसमें पहिले जल बरसा हो कहते हैं। और उसका आधिक्य जिसमें हो उसे वर्षा ऋतु कहते हैं।

गंगाजीके उत्तरीय तट पर जहां पर हिमालय पर्वतके ऊपरका बर्फ़का जल पिघल कर बह आता है और इकट्ठा होता है वहां पर शीतल जल कणोंसे भरी हुई वायुका प्रचार होनेसे शीत अधिक पड़ती है; इसलिए इन प्रदेशों में हेमन्त और शिशिर ऋतुयें मानी जाती हैं।

भारतवर्षके अलावा इङ्गलेण्ड आदि देशोंमें ऋतुओंमें बहुत अधिक भिन्नता पायी जाती है; वहां पर ग्रीष्म ऋतु तो नाम मात्रको होती है।

एक वर्षकी तरह एक दिन रातमें भी छहों ऋतुओंके चिन्ह पाये जाते हैं जैसे समरात्रिंदिव काल (जिसमें दिन और रात्रि १२—१२ घंटेकी होती हैं) में प्रातः काल ६ बजेसे १० बजे तक वसन्त ऋतुके चिन्ह, १० बजेसे २ बजे तक ग्रीष्म ऋतुके चिन्ह, २ बजेसे ६ बजे तक प्रावृट् ऋतुके चिन्ह, रात्रिके ६ बजेसे १० बजे तक वर्षा ऋतुके चिन्ह, १० बजेसे २ बजे तक शरद् ऋतुके चिन्ह और २ बजेसे ६ बजे तक हेमन्त ऋतुके चिन्ह मालूम पड़ते हैं। यद्यपि प्रसिद्ध ऋतुयें तो वर्षा आदि ही हैं परन्तु उनका स्वरूप दिन रात्रिके इन भागोंमें भी

पाये जानेसे ऋतुओंकी कल्पना करना असंगत नहीं है। यह कल्पना निरर्थक भी नहीं है क्योंकि उन समयोंमें तदनुरूप ऋतुओंकी चर्या पालन करनेसे स्वास्थ्यकी पूर्ण रूपसे रक्षा होती है। कोई भी कार्य बिना पूर्ण सामग्रीके निष्पन्न नहीं होता, यही नियम ऋतुओंके ऊपर भी लागू है। ऋतुओं-की उत्पत्ति भी जबतक सूर्यकी गतिकी विशेषता से तीक्ष्ण, मंद, मध्यम किरणोंका पड़ना वा वायुकी तीक्ष्ण मन्द मध्यमगति आदि यथा योग्य सामग्रीका लाभ नहीं होता तब तक नहीं हो सकती बल्कि ऋतु बदल जानेपर भी नवागत ऋतुकी पूर्ण-सत्ता १ सप्ताहके अनंतर होती है और ज़ोर भी १ सप्ताहके पहिलेसे ही घट जाता है। आचार्यों ने इस कालका नाम ऋतुसंधि रखा है।

आचार्य वाग्भट ने लिखा है—

ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहा वृतुसंधिरितिस्मृतः।
तत्रपूर्वोविधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात् ॥

पूर्वोक्त दो दो ऋतुओंके अन्तिम और प्रथम सप्ताहको ऋतुसंधि कहते हैं। उस ऋतुसंधिमें पूर्व ऋतुकी चर्याका शनैः शनैः त्याग और आगामी ऋतुकी चर्याका शनैः शनैः सेवन करना चाहिये। ऐसा न करनेसे अनेक असात्म्यज व्याधियाँ पैदा हो जाती हैं।

ऋतुचर्या

पूर्वोक्त ६ ऋतुओंमें जिन जिन आहार विहारों-से स्वास्थ्यकी पूरी रक्षा हमेशा होती है उन्हीं आचरणोंको ऋतुचर्या कहते हैं। ऋतुचर्याका परिपालन करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। अहित-कर वस्तु भी जो नित्य सेवन करनेसे हमारे शरीर-में सात्म्य (रुचपच) हो जाती है वह विशेष बाधक नहीं होती। फिर हितकर समयानुकूल वस्तुका क्या कहना; वह तो बहुत जल्दी सात्म्य होकर हमारे शरीरमें बल तथा कान्तिकी वृद्धि करती है; परन्तु विश्वमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो सबको सब कालोंमें फायदा ही करे। यद्यपि दुग्धके समान हित कर दूसरा पदार्थ नहीं है; परन्तु वह भी किसी किसीको फायदा न करके उलटा नुकसान पहुँ-चाता है। इससे यह सिद्धान्त स्थिर होता है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और अवस्था आदिके अनुकूल होने पर विष भी क्यों न हो हित कर हो सकता है और प्रतिकूल होने पर अमृत भी विषमें परिणत हो जाता है। ऋतुचर्या भी यही बात सिखलाती है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और अवस्थाके अनुकूल प्रवृत्ति करो। यदि इनके अनुकूल प्रवृत्ति न करोगे तो जो व्यवस्थायें तुम्हें किसी समय सुख कर, बलवर्धक और उत्साहजनक थीं वही दुःख कर, बल का नाश करनेवाली और उत्साहको घटानेवाली होंगी। जो करेला शीतल हलका और तिक्त होनेकी वजह से ज्वर, पित्त विकार, कफ विकार, रक्त विकार, पांडुरोग, प्रमेह, और कृमि को नाश करता था वही द्रव्य आदिके अनुकूल न होनेसे आश्विन मास में ज्वर, पित्त विकार आदि रोगों को उत्पन्न करके प्राणघातक हो जाता है; ऐसी प्रसिद्धि भी है—

चैते गुड़, वैशाखे तेल, जेठे पन्थ अषाढ़े बेल।
सावन मरसा, भादौं दही, कुंआर करेला कातिक मही ॥१॥
अगहन धनियां, पूषे जीरा, माघे मिस्थी, फगुने चना।
इनका सेवन जो नर करहीं, मरहैं नहिं तो परहैं सही ॥२॥

आयुर्वेद शास्त्रके दो प्रधान उद्देश्य-लक्ष्य हैं? एक स्वस्थोंके स्वास्थ्योंकी पूर्ण रक्षा और रोगोंके जालमें फँसेहुए प्राणियों का परित्राण।

स्वास्थ्यकी पूर्ण रक्षा करनेके लिए आचार्यों ने पद पर गंभीर विवेचना की है। आचार्य भाव मिश्र जी लिखते हैं—

दिनचर्यां निशाचर्यामृतुचर्यां यथोदिताम्।
आचरन् पुरुषः स्वस्थः सदा तिष्ठतिनान्यथा ॥
प्रभाव प्रकाश चतुर्थ प्रकरण श्लोक १३

जो मनुष्य आयुर्वैदिक शास्त्रोंमें कही गयी दिन चर्या रात्रिचर्या, ऋतुचर्या का भली भांति पालन करते हैं वह हमेशा तन्दुरुस्त रहते हैं और जो नहीं पालन करते हैं वह हमेशा रोगोंके जाल में फँसकर अकालमें ही कालकवलित हो जाते हैं।

---

# महाकवि नरहरि महापात्र

गत वर्ष मैं भ्रमण करता हुआ असनी (जिला फतहपुर) में पहुँचा और वहां कुछ दिन रहनेका अवसर भी मुझे मिला। उसी ग्राममें महाकवि नरहरि भट्ट महापात्रके वंशज भी रहते हैं। आज भी असनीमें लालजी और बेंती (जिला रायबरेली) में ब्रजेश जी प्राचीन शैलीके अच्छे कवि हैं तथा उदैपुर रींवा आदि राज्योंमें उनका अच्छा मान है और उन्हें जागीर भी मिली है।

महाकवि नरहरि बादशाह अकबरके दरबारी कवि और नवरत्नोंमें थे। सम्राट् अकबरने ही इनको महापात्रकी पदवीसे विभूषित किया था। उनके वंशका परिचय उन्हींके वंशज महापात्र मदनेश कवि ने इस प्रकार दिया है—

अब[१] निज कुल अरु वंशकौं थोरो देउँ जताय।
जाते जाने जातु हैं सकल सुकवि समुदाय ॥१॥
प्रथम वास परना सुढिंग भये धीरधर विप्र।
भट्ट बुंदेल सुखंडमें कविता जानत छिप्र ॥२॥
वब्बर साहि दिलीसके पास रह्यो सो जाइ।
कविता करिकैं रीझि सो लेत रहत सुखपाइ ॥३॥
तिनके कुल मणि भट्ट भे तिन नरहरि हरिरूप।
अतिहि हिमायूं साहकी कीरति कियो अनूप ॥४॥
तिनके सुत हरनाथ ने अपने मनमें चाहि।
कान्य कुब्ज चौदाहि लै अस्वनी ग्राम बसाहि ॥५॥
धन दै तिनि घर सवन कौ दियो बनाइ विचारि।
ताहीमें सो आपनी गढ़ी रच्यौ मंझ धार ॥६॥

इसका आशय यह है कि नरहरि महापात्रके पूर्वज परना (बुन्देलखंड) ग्राममें निवास करते थे। उनमें धीरधर नामक विप्र हुए जो कि भाट जातिके थे। वे बाबर बादशाहके यहां रहे और कविता करके उनको प्रसन्न करते रहे। उनके कुलमणि हुए, जिनके पुत्र नरहरि महापात्र हुए जिन्होंने हिमायूं बादशाहकी कीर्तिका बखान किया। उनके पुत्र हरनाथ हुए, जिन्होंने चौदह घरानेके कान्य कुब्जोंको लेकर असनी ग्राम बसाया और उनको धन देकर गृह आदिका प्रबन्ध कर दिया तथा बीचमें अपनी गढ़ी बनवायी। सरस्वती पत्रिकामें वर्णित है कि नरहरि कवि सुकुलपुर[२] निवासी थे जो असनीके समीप ही है। संभव है परनासे जाकर उनके पूर्वज सुकुलपुरमें रहे हों; क्योंकि असनी महापात्र हरनाथ द्वारा बसायी बतलायी जाती है और उक्त पद्यसे भी यही भाव प्रकट होता है।

आगे हरनाथके वंशका पता नहीं चलता; कुछ पीढ़ी पश्चात् हरनाथके वंशमें सभासिंह[३] के पुत्र शिवनाथ नामक अच्छे कवि हुए जो बलरामपुरके राजकुमार भैया अर्जुनसिंहके आश्रित सं० १८६१ में वर्तमान थे।

सुजान विनोदमें हरनाथके वंशका परिचय इस प्रकार दिया है—

तिनही[४] के ए वंशमें भये सुकवि सिवनाथ।
तिनके सुत अजवेस भे तिनके सो सुखराय ॥
तिनके सीतल विदित हैं रींवा हो सुभठाम।
लघु भ्राता परमेसके सुत सो दौलतराम ॥
पुनि सर्वेस तृतीय सो कवि भवनेस ललाम।
जेठे दौलत रामके भये सुकवि मदनेस ॥
राजा सजन सुजानकी कविता करी विशेष।

---

(१) देखो सज्जन प्रकाश पृ० ३

(२) देखो सरस्वती भाग ७ अंक १ पृ० ५०

(३) देखो सिंहासन बत्तीसीका निर्माण काल पृष्ठ ५२
संवत ससि रितु वसु अलख कृष्ण पच्छ गुरुवार।
मधु नौमीमें बनि भयो सुंदर ग्रंथ विचार ॥
भाषा कीन्हीं जानि कै अर्जुनसिंहके हेत।
बानी संस्कृतमें रही स्वच्छ कथा सिरनेत ॥
महापात्र शिवनाथ कवि असनी बसै हमेश।
सभासिंहको सुत सही शेवक चरन महेश ॥

(४) देखो सज्जन प्रकाश पृ० ४

नरहरि कवि महापात्रका जन्म शिवसिंह[5] सरोज ने सं० १८९८ वि० माना है, जो कि नितान्त अशुद्ध है। एक नरहरिदास[6] नामक अन्य कवि भी हो गये हैं जैसा कि विनोदने वर्णन किया है। इसी भ्रमसे नरहरि महापात्रके स्थानमें नरहरिदासका जन्मकाल दे दिया गया है। यथार्थमें उनका जन्म काल नरहरि[7] चरित्रमें सं० १५६२ वि० माना है और मृत्यु सं० १६६६ वि० में असनीमें हुई बतलायी गयी है। कहा जाता है कि नरहरिके पिता एक दीन व्यक्ति थे और नरहरि गायें चराया करते थे। एक दिन उनके पास एक साधू आया और भोजन मांगा। इन्होंने दीनता पूर्वक कहा कि आप वस्तीमें जाइये, यदि मैं ग्राममें लेने जाऊंगा तो गायें तितर बितर हो जायंगी। साधू ने कहा आप भोजन ला दीजिये मैं आपकी गायोंको देखता रहूंगा। नरहरि अपने घर गये और अपनी मांसे जौका आटा और दूध ला दिया। साधूने भोजन बनाया और उसमें दो टिक्कर नरहरिको भी दिये, परन्तु उन्होंने उनको खाया नहीं बल्कि अपने कपड़ोंमें छिपा लिया। साधूके पूछनेपर कहा कि मैंने उनको खा-लिया। तब साधूने कहा कि यदि तू इस प्रसाद-को खालेता तो अवश्य राजा होता; परन्तु जा राजाओंका कृपापात्र अब भी रहेगा। इसके पश्चात् साधू चला गया।

नरहरिको तभीसे विद्या पढ़नेकी अभिरुचि हुई। काशीमें जाकर संस्कृत भी पढ़ी और कविता करना भी सीखा; अतः साधूके प्रसादसे अच्छे कवि हो गये। इस प्रकारकी कथाएँ बहुधा प्रतिभा-शाली और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके साथ जोड़ दी जाती हैं; इसमें कहाँ तक सचाई है यह नहीं कहा जा सकता।

(५) देखो शिवसिंह सरोज पृ० ४३६

(६) देखो मिश्र बन्धु विनोद पृ० ११६७

(७) देखो नरहरि चरित्र और सरस्वती पत्रिका भाग ७ अंक १ पृ० ४६

उनके विषयमें कहा जाता है कि वे बाबर, हुमायूं, अकबर, शेरशाह और सलीमशाहके दर-बारमें रहे थे। सम्राट् अकबर ने ही उनको महा-पात्रकी पदवी दी थी। इनकी कविता बड़ी ओज-स्वनी होती थी।

बाबरके[8] दरबारमें रहकर इन्होंने फ़ारसी भी सीख ली थी; जिसका एक नमूना यहाँ दिया जाता है।

नेकबख़्त दिल पाक सख़ी ख्वां मर्द शेर नर।
अव्वल अली खोदाय दिया विसियार मुल्को ज़र॥
तुम ख़ालिक वर वेस रुकुन सालिया अमालिम।
दौलत वख़्त बुलंद जंग दुश्मन पर ज़ालिम॥
इन्साफ तुरा गोयद खलक कवि नरहरि गुफ़्त न चुनी।
बब्बर न बरोबर बादशाह मन दिगर न दीदम दर दुनी॥

यह फ़ारसी का छप्पय बाबरकी प्रशंसामें बनाया था। अकबरके दरबारमें[9] रहते समयकी इनके विषयमें एक कथा प्रचलित है कि दो कसाई एक गाय को घेरते हुए आये; गाय काँपती हुई नर-हरिके घरमें घुसगयी। पीछेसे दोनों कसाई भी आ पहुँचे और अपनी गाय मांगी। कविजी ताड़गये कि ये कसाई हैं और गाय उनको नहीं दी। बधिकों ने न्यायाधीशकी शरण ली और उन्होंने यह मामला बादशाहके पास भेज दिया और बादशाहने महा-पात्रजी पर अनीति करने तथा नियम तोड़नेका अभियोग लगाया। इस पर गायकी अपीलके रूपमें निम्नलिखित दो छप्पय रच कर सुनाये।

[10] तृण जो दंत तर धरहिं तिन्हें मारत न सबल कोइ।
हम नित प्रति तृन चरहिं बैन उचरहिं दीन होइ॥
हिन्दुहि मधुर न देहिं कटुक तुरकहि न पियावहिं।
पय सु विसुध अति श्रवहिं वच्छ महि थम्भन जावहिं॥
सुनु शाह अकब्बर अरज यह कहत गऊ जोरे करन।
सो कौन चूक मोहि मारियतु मुए चाम सेवहिं चरन॥१॥

(८) देखो सज्जन प्रकाश पृ० (९) देखो सरस्वती भाग ७ अंक १४-४६ (१०) देखो सज्जन प्रकाश पृ० ४-५।

को सिखवत कुलबधुन लाज यह काज रंग रत।
हंसन को सिष्खवत करत पय पानि भिन्न गत॥
सज्जन को सिष्खवत धरम गुन सील सुलच्छन।
सिंहन को सिष्खवत हनत गज कुंभ ततच्छन॥
बिधि रच्यो जगत नरहरि निरखि कुल सुभाव को भिक्खवे।
गोरक्ख अकब्बर साहिकों कहौ सु को नर सिक्खवै॥२॥

उपरोक्त दोनों छन्दोंको सुनकर बादशाह ने अति प्रसन्न हो तुरन्त भारतसे गोबध उठादेनेकी आज्ञा प्रचारित कर दी।

इस संबंधमें एक दन्तकथा और भी प्रचलित है कि नरहरि जी ने एक गायके गलेमें उपरोक्त प्रथम छप्पय लिखकर बांध दिया और गायकी बादशाहके दरबारमें भेज दिया; बादशाहने उस छप्पयको पढ़कर अपने राज्यमें गौबध बन्द करने की आज्ञा देदी।

इन दो कहावतोंमें कौन सी ठीक है, यह नहीं कहा जा सकता; परन्तु अनुमानतः प्रथम घटनाका होना अधिक संभव प्रतीत होता है।

[११] इसी प्रकार यह भी किम्वदन्ती है कि अकबर बादशाह कोई रासमंडल करना चाहते थे और स्वयं कृष्ण बनकर बड़े बड़े घरोंकी कुल बधुओंको बुलानेकी इच्छा थी; जैसा कि मीना-बाजारमें किया जाता था जो बीकानेर नरेश पृथ्वीराजकी स्त्री ने राजाको उचित शिक्षा देकर बंद कराया था। नरहरि महापात्र ने निम्न-लिखित छप्पय सुनाकर बादशाहको इस दुष्कर्मसे रोका—

[१२] नरहरि धरहरि को करै जननि सुतहिं विष देइ।
वारि जो खेती हठि चरै साहु परदन लेइ॥
साहु परदन लेइ नाव करिया गहि बोरै।
बोइ पहरु बोइ चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै॥
नृपति प्रजहिं दुख देइ कौन समरत्थहिं धरि हरि।
छितिपति अकबर शाह सुनो बिनती कर नरहरि॥

अकबरके दरबारी सरदारों और नगरकी प्रशंसामें किसीने एक कवित्त बनाया है, जिससे प्रतीत होता है कि नरहरि महाकविका उनके दरबारमें बहुत मान था। यह कवित्त इस प्रकार है—

[१३] दिल्ली सो न तखत बखत मुगलन कैसो नगर ननीको कोऊ आगरा नगर सो। गंगसे न गुनी तान सेन से न तान-सेन फैजीसे प्रवीन औ न वीर बिप्रवर से॥ खान खाना खानसे न भूप राजा मानसे न टोडरसे टंडन न कवि नर हरसे। तीन लोक सात दीप सात हू रसातलमें साह न जला-लुद्दीन साह अकबरसे॥

इससे भली प्रकार विदित होता है कि यह अकबरके दरबारके नवरत्नोंमें से थे और बादशाह उनकी बातको बहुत मानते थे।

[१४] नरहरि कवि अपने पिताकी मृत्युके पश्चात् दिल्लीसे घर चले आये थे। उसके पश्चात् ३३ वर्ष तक यह अपने घर पर ही रहे। तत् पश्चात् फिर धनकी प्राप्तिके लिए प्रस्थान किया और अकबरके दरबारमें पहुंचे थे। कहाजाता है कि एक बार यह हुमायूंकी सेनाके साथ कन्नौज तक आये थे। इनके ६० वर्षकी अवस्था तक कोई पुत्र न हुआ; फिर परमात्माकी कृपासे एक पुत्र हुआ जिसका नाम हरनाथ रखा जो वैसे ही प्रतिभाशाली और प्रतापी हुए जैसे नरहरि थे। उदारतामें तो वह नरहरिसे भी बढ़कर निकले। हरनाथका जन्म सं० १६३१ में हुआ था। सरस्वती[१४] का यह कथन कि हरनाथका जन्म सं० १६२२ में हुआ अशुद्ध है।

[१५] एक बार बादशह अकबरसे एक लाख

---

(११) यह कथा व नं० ६ की कथा नरहरि महापात्र के बंशज बच्चूलाल भट्ट ने सुनायी थी।

(१२) देखो छप्पय नीति और नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग ७ अंक १ पृ० ४०।

(१३) यह कविता असनीवासीलालजीके पुत्र पं० कन्हैया-लाल महापात्र ने लिखायी थी।

(१४) १४ दे० सरस्वती भाग ७ अङ्क १ पृ० ४६ तथा नरहरि चरित्र।

(१६) देखो सज्जन प्रकाश पृष्ठ ४ और असनी के बहुत से लोगों ने मौखिक भी सुनायी यही कथा कुछ परि-वर्तन के साथ पं० रामचरण त्रिपाठी ने सरस्वती में दी है।

रुपया नरहरि महा पात्रको दिया; उन्होंने वह धन हरनाथको सुरक्षित रखनेको दे दिया।

हरनाथ ने काशीसे उत्तम रेशमी वस्त्रादि मंगवा कर असनीके कान्य कुब्जोंमें वितरण कर दिया। जब नरहरि ने रुपये मांगे तो उन्होंने उक्त ब्राह्मणोंको बुला कर उपस्थित कर दिया, जिनको नरहरि ने सम्मान पूर्वक विदा कर दिया और हरनाथसे इस अप व्ययके लिए कुछ ताना दिया। इसपर हरनाथ घर छोड़ कर चले गये और बहुत सा धन पैदा किया, जिस पर उदारता पूर्वक वितरण करते रहे। नरहरि कवि ने हुमायूं बादशाहकी स्त्री चोली बेगमकी रीवानरेशके दरबारमें रक्षा करवायी थी। इम्पीरियल[17] गज़ेटियरमें भी इसका वर्णन पाया जाता है। उसमें बेगमका नाम नहीं दिया और न नरहरि कविका ही वर्णन दिया था परन्तु सज्जन प्रकाश[18] में उक्त वर्णन है तथा नरहरिके वंशजों में भी यह कथा बहुत प्रचलित है।

अब नरहरि कविकी कविताके कुछ उदाहरण छप्पय नीति तथा रुकमिणी मंगलसे यहां दिये जाते हैं, जिससे आपको भली प्रकार विदित हो जायगा कि वे कितने प्रतिभाशाली कवि थे।

छप्पय नीतिसे

सर[19] सर हंस न होंहिं बाजि गजराज न दर दर।
जन जन सुमति न होहि नारि पति व्रता न घर घर॥
तरु तरु होत न सुफल मलयागिरि होत न बन बन।
फन फन मनि नहिं होत स्वांति जल बुंद न घन घन॥
रन रन होत न सूर सब तन तन होत न भक्ति हर।
नर हरि सुकवि कवित्त किय ये सब होत न एक सर॥१॥
जदपि कुसंग संग लाभ तदपि वह संग न किजिय।
जदपि धनक ह्वै निधन तदपि घटिप्रकृति न लिजिय॥
जदपि दान नहिं शक्ति तदपि सनमान न चुकिय।
जदपि प्रीति उर घटै तदपि मुख उपर न दुकिय॥
सुनि सुजस दुआर किवार दै कुजस जमाल न थुकिये।
जिय जाय जदपि भल पन करत तदपि न भल पन चुकिये॥२॥

रुक्मिणी मंगलसे

तत[20] छन दरत तनक अरचत जन,
गन गन सघन कनक दरखत दर।
तरल नयन धन धरत अधर तल,
करतल करलस सरल गरल धर।
अटत गहन धन रटत अजर जस,
नगन सजत रज रजत अचल धर॥
दहत सकल अध दरसत दरसन,
दरद न रहत कहत नर हर हर॥१॥

इससे विदित हो जायगा कि नरहरि कितने उत्तम कवि थे और उनकी कविता ने कितना अच्छा प्रभाव जतना पर डाला था। अब भी उनके बहुतसे छप्पय सर्वसाधारणकी जिह्वा पर यत्र तत्र सुने जाते हैं।

नरहरि महापात्रके पुत्र हरनाथ भी बड़े अच्छे कवि हो गये हैं तथा इसी वंशमें सभासिंह शिवनाथ, अजवेश, शीतल, मदनेश, सर्वेश, परमेश, दौलतराम, अच्छे कवि हो गये हैं तथा उन्हींके वंशज असनी (फतहपुर) में लालजी और वेती (रायबरेली) में ब्रजेश जी बहुत अच्छे कवि हैं।

यदि अवकाश मिला तो उनके वंशके अन्य कवियोंके विषयमें भी फिर कुछ सेवा करनेका प्रयत्न करूंगा।

—भागीरथप्रसाद दीक्षित

---

(१७) इम्पीरियल गज़ेटियर जिल्द १२ पृष्ठ ४६ तथा इम्पीरियल गज़ेटियर जिल्द २१ पृष्ठ २८१। देखो सज्जन प्रकाश पृष्ठ ५

(१६) देखो छप्पय नीति नरहरि कृत। (२०) दे० रुक्मिणी मंगल नरहरि महापात्र कृत।

# देहाती पशुविज्ञान

मैं घरसे निकल कर एक बार सलकिया (कलकत्ता) की बनारस रोडसे जा रहा था। मार्गमें मैंने पांच छः देहातियोंको इकट्ठा हुए देखा। मैं भी कौतुक देखनेके लिए खड़ा हो गया। देखा कि उनके बीचमें एक बैल जकड़ा पड़ा है। एक उसकी पूंछको दो टांगोंमेंसे निकाल कर और खेंच कर बैठा है। दूसरा उसके पिछले पैर रस्सीसे बांध कर कसे बैठा है। एक उस बैलके मुँह पर रस्सी कसे सिर पर सवार है। एक बैलकी जीभको बाहर खेंच कर उसे कसे हुए है। एक उस्तरेसे जीभ छील रहा है। कुछ देर तक मैं देखता रहा। कुछ भी बात मेरी समझमें न आयी। मैंने उनसे पूछा कि 'क्यों भाई, क्या कर रहे हो।'

उनमेंसे एक बोला—"बाबू, इसकी जीभ पर कांटा जम आया है; सो नांदमें सानी पर मुंह नहीं देता; इसलिए कांटा साफ करते हैं।"

मैं सोचने लगा कि यह जीभ पर कांटा कैसा। बैलकी जीभ तो खुरदरी होती ही है। फिर और कांटा कैसा। मैंने तुरन्त पूंछा—"भाई कांटा कैसा।"

"बाबू यह देखो; जीभपर हाथ फेरकर देख लो।"

मैंने बिना संकोचके उस बैलकी जीभ पर हाथ फेरा तो देखा कि जीभ पर चौथाई इञ्चके लगभग ऊंचे ऊंचे काले बाल ऐसे कड़े रूपमें जमे हैं जैसे बहुत काल तक दाढ़ी बनवानेके बाद ठोड़ी पर पांच सात दिन हजामत न कराने पर कड़े कड़े बाल सुईके माफिक निकला करते हैं। या जैसा लोहेके तारोंका बना हुआ ब्रश होता है। मैं देखकर अचम्भेमें रह गया, जीभ पर बाल कैसे। पूछने पर मालूम हुआ कि पशुओंको यह रोग हो जाता है। उनकी जीभ पर प्रायः बहुत ही कड़ा बालोंका जंगल पैदा हो जाता है। मैंने तो यहां तक देखा कि उस बैलके गालोंके भीतर अगल बगल और जीभ पर बाल ही बाल उग आये थे।

देहातियोंकी वह चौकड़ी उस बैलका इलाज कर रही थी। एक ने कहा कि 'बाबू जब गोरूकी जीभ पर रोआं उठ आता है तब वह नांदमें मुंह नहीं देता, सानी भूसेको सूंघ कर छोड़ देता है। पानी पी पी कर धांसता है। उसके मसूड़े दर्द करते हैं; और सूज जाते हैं; गला बढ़ आता है।'

यह सब निदान मैंने उस बैलके शरीर पर प्रकट रूपसे देखा। मैं सब क्रिया बड़ी सावधानीसे देखने लगा।

एक आदमीने उस्तरेसे जीभको उसी प्रकार मूंडा जैसे नाई उस्तरेसे दाढ़ी साफ करता है। पर वह बाल या सूईयां बड़ी कड़ी होती हैं; जल्दी साफ नहीं होतीं। एक प्रकारसे वह तो उस्तरेसे जीभको खुरचता था। खुरचते खुरचते कुछ कुछ रक्त भी निकल आया। इस पर वह बोला कि कांटा जड़से निकाला जा रहा है। इसकी जड़में कील होता है। उसको निकाल देनेसे रोग दूर हो जायगा, नहीं तो फिर कांटे उग आवेंगे।

उस्तरेवालेने जीभके अगले भागको खूब साफ किया और शेष को वैसे ही रहने दिया। गालके भीतरके बालोंको भी वैसे ही रहने दिया; पूछने पर मालूम हुआ कि वह उसको कष्ट नहीं देते हैं। जीभके अगले कांटे घास आदिसे छूते ही दर्द करते हैं और बैल मुंह हटा लेता है।

जब वह उस्तरेसे जीभको खूब खुरच चुका तब उसने पिसा हुआ नमक उसकी जीभ पर डालकर जोरसे अंगूठेसे मसल दिया। खुरचनेसे कुछ कुछ रक्तके बिन्दु जीभ पर आगये थे। नमक मसलनेसे कुछ और पीड़ा हुई; बैल उस समय तड़पा। परन्तु हितैषी देहाती बैलको अभी क्यों छोड़ते; वह तो पूरी दवा दारू करके हटे।

अब दूसरी चिकित्सा शुरू हुई। एक बोला कि "दो छोटे छोटे लकड़ीके टुकड़े लाओ; उसके तालुके छेद भी बन्द करने हैं। उनमेंसे पानी दिमागमें चढ़ता है।"

एक देहाती बड़ी पतली सुईके समान दो लकड़ियोंकी सीकें १½ इंच लम्बी ले आया। दो आदमियोंने बैलका मुंह खोल कर तान लिया और चतुर सियानेने एक एक करके दोनों फांस बैलके ऊपरके जबड़ेके सख़ मसूड़ेके पीछे तालूके पास ही छोटे छोटे छिद्रोंमें दे दीं और कहा "यह भी हो गया, अब यह लकड़ी फूल जायंगी छेद बन्द हो जायंगे।"

पूछनेपर मालूम हुआ कि यह छेद सभी बैलोंके होते हैं। एक ने कहा बाबू यह छेद 'बरमराड' तक जाते हैं, इनसे पानी पीते समय पानी नाकमें चढ़ता है और माथेमें पहुँच जाता है।

मैं सोचने लगा कि "यह अजब ईश्वरकी रचना है कि मुखमें एन जीभके अग्र भाग पर ब्रह्माएडसे दो छिद्र ईश्वरने खोले हैं। क्या यही ब्रह्मरन्ध्र तो नहीं हैं, जो मनुष्यके शरीरमें किसी कारणसे लुप्त हो गये हैं।"

अब तीसरी गलेकी चिकित्सा भी सुनिये। एक आदमी इसी बीचमें एक लोहेकी पत्ती गरम कर लाया। दो आदमियोंने बैलका मुंह खोल कर तान लिया। तीसरेने जीभ पकड़ कर बाहर निकाली और चौथे सियानेने लोहेकी गरम पत्तीसे जीभके मूल भागमें दाग़ दिया। अब दाग़ तो दिया पर उतनेसे तो काम पूरा नहीं हुआ जाता था। सियानेने अपने हाथसे लोहेकी पत्ती फैंक कर बैलके गलेमें हाथ डाला और जिस भागको दागा था वहांका दगा हुआ चमड़ा हाथसे उखाड़ बाहर फेंक दिया। वहां भी कीलके दानेसे उठे हुए थे। वह बैलके गलेमें चुभते थे। भोजन निगलनेके समय कष्ट देते थे।

अब चौथी चिकित्सा भी सुनिये। बैलके निचले जबड़ेके अगले दांत हिलते थे, मसूड़े फूले हुए थे। एक लोहेकी सींख गरम करके लाई गयी। दांतोंकी जड़में मसूड़ोंको ढकता हुआ तेलमें भीगा रूईका फाया रखा गया और उसपर गरम सींख रखी गयी। फल यह हुआ कि गरम गरम तेलसे मसूड़ोंपर अच्छा सेक हो गया। एकने बिना रूईके दांतों पर गरम सलाख छुआना चाहा तो दूसरेने कहा—'अनाड़ी, क्या कभी बगैर तेलवाली रूईके भी सलाख रखी जाती है। बैलके मसूड़ोंमें जख्म हो जायगा।"

मैंने उस समय कहा कि यह बे पढ़ोंकी विद्या है। इसपर दो एक खिलखिला उठे और मैंने भी अपना रास्ता लिया।

—जयदेव शर्मा, विद्यालङ्कार

---

## प्राचीन दानवाकार जन्तु

हालमें ही एक नये प्राचीन दानवाकार जन्तुका पता चला है। इसका शरीर वाराहका सा, पैर हाथीकेसे और सर गैंडेका सा था। इसकी अश्मीभूत हड्डियां मध्य एशियामें पाई गई हैं।

अनुमानतः दो वर्षमें इन अस्थि-खरडोंको जोड़ जोड़ कर और मिला मिला कर संपूर्ण अस्थिपिंजर खड़ा कर दिया जायगा। जब यह काम हो चुकेगा तो इसीके नमूने पर एक और कृत्रिम अस्थि पिंजर बनाया जायगा और विशेषज्ञ उसपर गोश्त और पोस्त भी चढ़ा कर दिखायेंगे कि सुदूर भूतकाल में उसका आकार कैसा था।

इस प्राणीकी खोपड़ी और ६०० अन्य अस्थिखरड मिले हैं। वह सब बड़ी सख्त चट्टानोंमें गड़े हुए हैं। उनको चट्टान काट काट कर और छील छील कर अलग करनेमें बड़ा व्यय और बहुत सा समय लगेगा, बड़ी सावधानीसे काम भी करना होगा; क्योंकि अस्थि खरड बहुत भंजनशील हो गये हैं। मध्य एशियाके जंगलोंमें ऐसे कुशल कारीगरोंका मिलना असम्भव है, जो इस कामको कर सकें; अतएव चट्टानकी बड़ी बड़ी शिलाएं और टुकड़े जहाज़ोंमें भर भर कर न्यूयार्कके अद्भुतालयमें भेज दिये जायंगे। वहां पहले तो अस्थि-खरडोंको अलग कर लिया जायगा, तब

विशेषज्ञोंकी बारी आयगी। उन्हें इस बातका पता चलाना होगा कि कौनसा अस्थि-खण्ड कहांका है और कौनसे अस्थि-खण्ड गायब हैं। जो न मिलेंगे उनके स्थानपर नये बनाकर लगाने होंगे। यह काम बहुत कठिन है; क्योंकि केवल अनुमान और अनुभवके सहारे यह निश्चय करना पड़ेगा कि यह अप्राप्य अस्थि-खण्ड किस आकारके कितने मोटे या पतले, कितने लम्बे चौड़े गोल या चपटे थे; यह निश्चय कर लेनेके बाद सांचे बनाने होंगे और प्लास्टरके कृत्रिम अस्थि-खण्ड ढालने होंगे।

अस्थि पिंजर जब खड़ा करके पीतलकी छड़ोंसे कस दिया जायगा, तब अनुमानसे यह निर्णय किया जायगा कि कौन सा अंग कितने मांससे ढका हुआ था और उसपर खाल कैसी और कितनी मोटी चढ़ी हुई थी। मसालोंसे अस्थि पिंजरको ढकने और रंगनेपर जीवित प्राणीका नमूना दीखने लगेगा। अन्य अद्भुतालयोंके लिए फिर इसी नमूनेसे पीतल या प्लास्टरकी प्रति मूर्तियां बनाकर भेजी जा सकेंगी।

चित्र ११—आदमी, बेलूचिथेरियम और गंडा

इस प्राणीका नाम करण हो चुका है। विज्ञानविद् इसे बेलूचिथेरियम ( Baluchitheruim ) कहा करेंगे। इसे स्थल-चर प्राणियोंका सम्राट् समझ सकते हैं; इसका डील डौल समस्त स्थलचरोंसे बड़ा था, यदि इसकी तुलना की जा सकती है तो केवल व्हेलसे। इसका कंधा धरतीसे ८ हाथ ऊंचा था। विख्यात हाथी जुम्बो (Jumbo) से प्रायः दो फुट ऊंचा था, किन्तु इस प्राणीकी लम्बाई ( लगभग १६॥ हाथ ) जुम्बोसे प्रायः तिगुनी थी। अनुमानतः यह कहा जा सकता है कि उसकी मोटाई हाथीकी मोटाईसे दुगनी या तिगना थी।

मारस्यूपियल जातिके प्राणियोंको छोड़ कर शायद यह प्राचीनतम पशु था। आधुनिक गेंडेसे यह बहुत मिलता जुलता था। गेंडा लगभग ७ फुट ऊंचा होता है और ८ या ६ फुट लम्बा; तथापि वह बेलूचिथेरियमके पेटके नीचेसे निकल जा सकता था, इसके दांत भी बड़े भयंकर थे। खड़िका-कालकी शार्क मछलीके दाँतोंके* आकारके यह दांत इतने मज़बूत थे कि सराट् जातिके प्राणियोंके कठोर कवचोंको बातकी बातमें कुचल डालनेमें समर्थ होते थे। इन्हीं दांतोंके बलपर वह निर्भय विचरता था। दांत आरेके दांतोंके आकारके तिकोने होते थे।

बेलूचिथेरियम घास पार्टीका सदस्य था, तथापि जो कुछ उसके आगे आ जाता था उसे हड़प जाता था। क्योंकि यह बड़ा बड़ पेटू था और लगभग एक समयमें २८ मन खा जाता था।

बेलूचिस्तानसे लेकर सैबेरिया तक यह प्राणी पाये जाते थे। शायद इनके पद चिन्होंको देखकर सभी प्राणियोंके होश उड़ जाते थे। गोबी नामके

* खड़िका-कालकी शार्क मछलियोंमेंसे सबसे बड़ी कारकेरोडोन ( chorcharodon ) थी, जिसकी लम्बाई १०० या १२५ फुट थी और जिसका मुख विवर इतना बड़ा था कि छोटी सी किश्ती उसमें चली जा सकती थी।

के जंगलमें इनके अस्थि खण्ड मिले हैं—इसी जंगल में मारको पोलोके नगरके भग्नावशेष गड़े हुए हैं। इस प्रदेशके प्राचीन प्राणियोंकी अब खोज हो रही है।

आदमी, गेंडा और बेलूचिथेरियमके आकारों-की तुलना करनेके उद्देश्यसे तीनोंके चित्र यहां दिये जाते हैं।

—गङ्गा प्रसाद, बी० एस-सी०

## क्या चिड़ियोंके दांत होते हैं?

पचास लाख वर्ष पहले खड़िका-कालमें उत्तरीय अमेरिका चौड़े और उथले समुद्रोंसे ढका हुआ था, जिसमें इधर उधर बहुत से द्वीप दिखाई देते थे। इन्हीं द्वीपोंमें एक अद्भुत प्रकारके पक्षी रहते थे, जो चल तो सकते न थे, किन्तु जिनके दांत होते थे।

चित्र १२—हेस्पेरोर्निस

पश्चिमी कंसासमें इन प्राणियोंके अश्मीभूत अस्थि-खण्ड पाये गये हैं। यहांकी खड़िया उस प्राचीन कालमें कीचड़के रूपमें थी। जब उपरोक्त प्राणियोंमेंसे कोई मरता था तो उसका शरीर कीचड़में दब जाता था। कालान्तरसे यह कीचड़ सूखकर कठोर चट्टानोंमें परिणत हो गई और उसी के साथ उक्त अस्थिपिंजर भी दबे पड़े रहे। अब वही यहां निकाले जाते हैं और विशेषज्ञ उनका निरीक्षण कर प्राणियोंका आकार प्रकार रहन सहन, खान पान और स्वभावका पता लगानेका प्रयत्न करते हैं।

हेस्पेरोनिस (Hesperornis) के पर बिलकुल निकम्मे थे, वह पानीमें तैर सकता था, पर केवल पैरोंकी सहायतासे। उसकी मज़बूत टांगें और गद्दी इस काममें बड़ी सहायता देती थीं। इसके दांत पीछेकी तरफ को मुड़े होते थे, अतएव एक बार जो
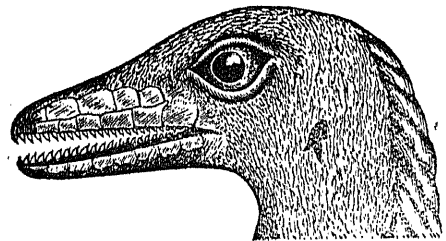
चित्र १३—आर्कियोपटेरिक्स

मछली मुंहमें पहुँच जाती थी उसका निकलना मुश्किल हो जाता था, जितना वह निकलनेके लिए बल लगाती थी उतनी ही वह छिद कर फंसती थी।

सम्भवतः वह इधर उधर तैरता हुआ फिरता था, जब वह किसी मछलीको देखता

था तो उसके पीछे तीरकी तरह गोता लगाकर पहुँचता था। उसका शरीर पनडुब्बीकी तरह बना था, और उसकी गर्दन बड़ी मजबूत थी।

खुशकीमें उसकी फुर्ती गायब हो जाती थी। उसका शरीर इतना लम्बा था, टांगें दुमके इतने निकट थीं और उसके पैर ऐसे गद्दीदार थे कि खुश्कीमें चलना मुश्किल था। घिसट घिसट कर ही वह एक स्थानसे दूसरे स्थानको जा सकता था।

विज्ञान विदोंको दांत वाले पक्षियोंमें इसीका पहले पहल पता चला था; इस आविष्कारके कुछ दिन बाद ही आर्कियोपटेरिक्सका पता चला, जिसके सिरका चित्र यहां दिया जाता है। हेसपेरोर्निसका भी चित्र देखनेसे उसकी बैठने और चलनेकी कठिनाइयोंका अनुमान हो सकता है।

## चांद शुक्ल पक्षका है या कृष्ण पक्षका?

यह दम्पति चन्द्रकी छटा निहार रहे हैं? क्या आप बतला सकते हैं कि चन्द्रमाकी कला क्षीण हो रही है या बढ़ रही है?

चित्र १४—चन्द्रदर्शन

चन्द्रमाकी कलाएं उसकी मासिक यात्राके कारण दिखलाई पड़ती हैं। चन्द्रमाका सदैव एक तरफका भाग ही हमको दिखाई पड़ता है। वह अपनी अक्ष पर इस प्रकार घूमता है कि मासिक यात्राके कारण जितना उसका दूसरा भाग दिखाई पड़ता है उसके स्थानमें पहले भागका उतना ही अंश आजाता है। जब पृथ्वीके एक ओर चन्द्रमा और दूसरे ओर सूर्य होता है तो पूर्ण चन्द्रबिम्ब दिखाई देता है। जब सूर्य और पृथ्वीके बीचमें चन्द्रमा होता है तो चन्द्रबिम्ब नहीं दिखाई पड़ता। पहली स्थितिसे जब चन्द्रमा दूसरी स्थितिके ओर जाता है तो क्रमशः उसका बिम्ब घटता जाता है; इधर जब दूसरी स्थितिसे पहलीकी तरफ जाने लगता है तो क्रमशः वर्द्धमान बिम्ब दिखाई देता है।

इन दो पक्षोंकी गतियोंमें चन्द्रमा एक बार पश्चिमसे आलोकित होता है, दूसरी बार पूरबसे। अतएव जब कला बढ़नेका समय होता है तो चन्द्रमा पश्चिमसे और घटनेके समय पूरबसे आलोकित दिखाई देता है।

## मीठातेलिया

[ ले०—कविराज प्रतापसिंह जी ]

यह मूल-विष प्रायः हिमालयके बर्फीले स्थानोंमें प्राप्त होता है। विलायतमें भी इसकी खेती होती है। वहांके लोग वसन्त ऋतुमें इसकी खेती करके पुनः इसकी जड़को संग्रह करते हैं। यह जड़ दोसे चार इञ्चतक लम्बी और आधसे पौन इञ्चतक मोटी होती है। उसका ऊपरका हिस्सा मोटा और नीचेका क्रमशः पतला होता है। रंग भूरा होता है; तोड़ने पर भीतरसे अधिक भाग चमकदार कांचसा दृष्टि पड़ता है। इसमें किसी प्रकारकी गन्ध नहीं होती। यदि सावधानीसे मुखमें डालकर चबाया जाय तो मुखमें चिर चिराहट तथा जड़ता उत्पन्न हो जाती है। लाइसेन्स वाले पंसारियोंके यहां बाज़ारमें जो मीठातेलिया (वत्सनाभ) मिलता है, वह लकड़ीके कोयले अथवा तेलके साथ पकाया हुआ

होता है। इस भांति पका लेनेसे विष चिरकाल तक रह सकता है, किन्तु उसकी शक्ति कुछ कम हो जाती है। कच्चा मीठातेलिया, जिसको दूधिया विष कहते हैं, इससे कुछ अधिक मूल्यमें मिलता है, पंसारी लोग इसको कम रखते हैं, क्योंकि यह शीघ्र घुन जाता है। मेरी सम्मतिमें कच्चा मीठातेलिया ही प्रयोगमें लाना उचित है; क्योंकि अंग्रेजी औषधियोंमें भी इसीका प्रयोग किया जाता है।

विषैला प्रभाव—यह विष उग्र है तथा हृदयकी गतिका अवरोधक है (अर्थात् हृदयकी गतिको मन्द करता है )।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—चर्म पर या श्लेष्मधरा कला पर लगानेसे सामान्यतया शक्ति उत्पन्न करता है; फिर संज्ञावह वात नाड़ियोंके अन्तिम भागोंका वातिक कम्परोग उत्पन्न करता है, जिससे खिंचाव जड़ता तथा शून्यता उत्पन्न होती है।

महास्रोत—यदि उचित मात्रामें अन्य औषधिके साथ मिलाकर दिया जाय तो मुखमें चिर चिराहट तथा जड़ता उत्पन्न नहीं करता। किन्तु बड़ी मात्रामें देनेसे आमाशय तथा आन्तोंमें दाह उत्पन्न करता है, जिससे उतक्लेद, वमन और विरेचन होने लगते हैं; यह विष शरीरमें शीघ्रतासे शोषित हो जाता है और पुनः लाला तथा आमाशयके रसकी वृद्धि करता है।

हृदय पर प्रभाव—यह सूक्ष्म मात्रामें हृदयकी गति को संयमित करता है, जिससे नाड़ी नियमित और मन्द चलती है। अधिक मात्रामें हृदयका वातिक कम्प उत्पन्न करता है, जिससे नाड़ीकी गति मन्द हो जाती है तथा रक्तका दबाव भी कम हो जाता है। अत्यधिक मात्रा देनेसे, हृदयका स्पन्दन, मन्द, अनियमित और शिथिल होकर अन्तमें हृदय अवरोध हो जाता है। यह प्रभाव हृदयकी गति प्रदान करनेवाली वात नाड़ीके मूल पर प्रभाव होनेसे अथवा हृदयके मांसकी धारियों (Fibers) पर प्रभाव होनेसे होता है। रक्तका दबाव अधिकतर हृदयके स्पन्दकी वातिक विकृति होनेसे गिरता है। और हृदयको आनेवाली वात नाड़ीके केन्द्रकी विकृतिसे आन्तरिक दबाव होता है।

श्वासाशय पर प्रभाव—श्वासाशयको थोड़ीसी शक्ति प्रदान कर, श्वासको अनियमित, मन्द तथा कष्टदायक करता है। इस विषके प्रभावसे श्वासाशयका वात-नाड़ी-केन्द्र उत्कम्पित होता है आंशिक रक्त परिगमनकी न्यूनताके कारण उक्त लक्षण उत्पन्न होते हैं।

शरीरोष्मा—यह ज्वरकी गर्मीको न्यून करता है। हृदय और श्वासाशयकी मन्द गति करनेकी शक्तिके कारण और उपांशिक स्वेदोत्पादक शक्तिके कारण तथा शारीरिक धातुओंकी गति मन्द करनेके कारण भी यह प्रभाव उत्पन्न होता है।

वात संस्थान (Nervous System) पर प्रभाव—मीठेतेलियाको पीसकर बाहर लगावे अथवा खानेको दे तो यह प्रथम वात नाड़ियोंको उत्तेजित करता है; पुनः सामवेदनिक नाड़ियोंके अन्तिम हिस्सोंको अवसन्न कर देता है। किन्तु, मस्तिष्क पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता, नेत्रके कृष्ण भाग प्रथम संकुचित होकर फिर फैल जाते हैं। बड़ी मात्रामें सुषुम्ना, तथा चेष्टावह नाड़ियोंके केन्द्रोंको उत्तेजना देता है, जिससे हाथ पैर पेंठने लगते हैं, मांस दुर्बल हो जाता है और उनकी गति शिथिल हो जाती है।

चर्म पर प्रभाव—चर्म पर लगानेसे पसीना बढ़ता है और कभी कभी फुन्सियां भी निकल आती हैं।

वृक्कों पर प्रभाव—यह विष कभी कभी मूत्रल प्रभाव उत्पन्न करता है।

मात्रा—इसकी जड़के ७ रत्ति चूर्णको खिलानेसे भयंकर लक्षण उत्पन्न होते हैं। और १५ रत्तिकी मात्रा सम्भवतः घातक हो जाती है। विष खिलानेके पश्चात् तीनसे छः घण्टेके अन्दर मनुष्य मर जाता है। कभी कभी बीस मिनटके अन्दर भी मनुष्य मरते हुए देखे गये हैं।

तात्कालिक विष लक्षण—विषात्मक मात्रा खानेसे कुछ ही घण्टोंके बाद, भयंकर स्फुरण, दाहके

साथ मुख और गलेमें शून्यता हो जाती है। उदरमें भयंकर दाह, वमन, ठण्डे पसीने आना, शरीरमें स्पन्द होना, चर्मका स्पर्श ज्ञान नष्ट होना, नाड़ीका दुर्बल और विषम गति वाली होना, नेत्र स्थिर होकर तारकका चौड़ा पड़ जाना, श्वासकी गतिका कठिनता पूर्वक होना, मांसोंकी दुर्बलता शिथिलता तथा मूर्च्छाका होना, कभी कभी सारे बदनमें ऐंठनका होना इत्यादि लक्षण पैदा होकर अन्तमें श्वास अवरोध, मूर्च्छा तथा हृदय अवरोधसे मृत्यु हो जाती है। किन्तु, मृत्यु होने तक न्यूनाधिक ज्ञान बना ही रहता है।

प्रतिविष या चिकित्सा—वामक औषध देना आमाशयको पम्प-द्वारा धोना, गरम पानीकी बोतल अथवा कपड़ा भिगोकर आमाशय या हृदय पर रखना (पानी इतना गरम हो कि हाथ न सह सके) स्नेह पान कराना, दुर्बलता अधिक हो तो मद्यपान कराना, कुचलेके सत्तका उचित मात्रामें इनजक्शन करना और यदि अन्य उपयुक्त औषधियां प्राप्त न हो सकें तो ६ माशे खानेका नमक १० छटांक उबलते हुए जलमें डाल कर वस्ति करना। यदि आवश्यक हो तो वस्ति यंत्रको ठण्डे पानीमें रख कर कुछ ठण्डा कर ले।

---

## चायका प्रतिद्वंदी

जिस प्रकार चायकी पत्तियोंको गरम पानी डालकर चाय तैय्यार की जाती है, उसी प्रकार आजकल कैसिनाकी पत्तियोंका प्रयोग होने लगा है। चायकी नाईं इन पत्तियोंमें भी कहवाइन (caffiene) होती है; किन्तु टैनिन कम होती है। प्रायः कहवाइन १ प्रतिशत होती है; किन्तु १·६५ प्रतिशत तक कहवाइन पायी जाती है। कहवामें कहवाइन १·८ प्रतिशत तक होती है और चायमें ३·५ प्रतिशत तक। अब देखना यह है कि इसका स्वाद भी रुचिकर प्रतीत होता है या नहीं।

---

## टंटलम्

स्वीडिन देशके एकवर्ग (Ekebrg) नामक वैज्ञानिक सं० १८५६ वि० में एक काले खनिजकी परीक्षा कर रहे थे। यह खनिज फिनलैंडके किमिटो नामक स्थानसे आया था; उसका वर्ण काला था, उसमेंकी धातु वंग, टैटेनियम, या टंग्स्टनसे मिलती जुलती प्रतीत होती थी, किन्तु उनसे भिन्न थी, इस अज्ञात धातुकी विशेषता यह थी कि उसपर अम्लोंका अभाव नहीं होता था। उसके अलग करनेकी कठिनाइयोंके कारण ही—खनिजमेंसे निकलनेमें टालमटोल करनेसे ही—उसका नाम टंटलम रखा गया। टंटलसकी कथा यूनानियोंमें प्रचलित है। टंटलस एक नदीमें खड़ा कर दिया गया है, पानी उसकी चिबुक तक पहुँचता है और फलोंसे लदी हुई वृक्षकी शाखा उसके सरका स्पर्श कर रही है, परन्तु जब वह मुंह ऊपरको उठाता है तो डाल सरक जाती है और मुंह नीचेको करता है तो पानी उतर जाता है। इस प्रकार उसे न खानेको मिलता है और न पीनेको।

### टंटलम्‌के खनिज

लगभग ३० प्रकारके खनिजोंमें टंटलम् पाया जाता है, किन्तु इनमेंसे अधिकांश केवल वैज्ञानिक महत्वके हैं और विशेष व्यक्तियों अथवा संस्थाओंके संग्रहोंमें मिलते हैं। यह खनिज ग्रेनैटकी चट्टानोंमें मिलते हैं; किन्तु कामके खनिज गिने चुने तीन या चार हैं। इन तीन या चारमें से भी केवल टंटलैट या मैंगेनोटंटलैट ही धातुके निकालनेके काममें आता है। यद्यपि टंटलम्‌के खनिज कम मिलते हैं परन्तु कहीं कहीं तो यह खूब ही इफ़रातसे मिलते हैं।

दक्षिण अफ्रीकाकी लिटिल नामाकुआलैंडमें कोलम्बैटके आठ आठ सेरके रवे मिले हैं। उत्तरी कैरोलिनाकी वाइज़मेन खानमें समर्स कैटके दस-दस सेरके टुकड़े पाये गये हैं। कभी कभी तो इस खनिजके सवा मन तकके टुकड़े मिले हैं। कोलोरेडोके कैनन नगरसे सातमील पच्छिममें ८,८ मन के टुकड़े कोलम्बैटके मिले हैं। दक्षिणी डकोटाके

बेडलेएडसमें २८ मनके टुकड़े भी मिले हैं। दक्षिणी आस्ट्रेलियाके सोने और टिनकी खदानोंमें टंटलैट भी बहुत है। एंटीपोड्स (भारत आदि) का टंटलैट अमेरिकन टंटलैटसे अच्छा होता है। मडागास्करके खनिजोंमें भी टंटलम् मिलना चाहिये।

परमाद्भुत समानता

१९६६ वि० में रूसके यूरेल पर्वत श्रेणीके सोने के कारखानेमें प्राकृतिक टंटलम्का पता चला। इसमें ९८·५ प्रतिशत टंटलम् और १·५ % कोलम्बियम मिला। १९६७ वि०में अल्टाइ पर्वत श्रेणीमें भी प्राकृतिक टंटलम् मिला, पर इसमें कौलम्बियम्के स्थान पर सोना था। इन दोनों प्रकारों पर विचार करनेसे बड़े बड़े रहस्य दिखाई देते हैं। एक जगह सोना और दूसरी जगह कौलम्बियम् कैसे आया? क्या आरम्भमें केवल टंटलम् था और उसीके विकारसे आधुनिक टंटलम् खनिज पैदा हो गये। अथवा सोना और कौलम्बियम्का कोई नाता है जो अभी अज्ञात है।

पहले पहल बर्ज़िलियसने टंटलम् बनाया था; उनका बनाया टंटलम बहुत अशुद्ध था; उसमें ४० % अन्य चीज़ें मिली हुई थीं; परन्तु उनके प्रयोगोंसे भावीका मार्ग अंकित होगया।

बर्ज़िलियसने पोटालियम-टंटलम्-फ्लोरिद्को पोटासियमके साथ गरम किया था, परन्तु आज कल सस्ता सोडियम काम आता है। एक लोहेकी घरियामें क्रमसे टंटलम्-लवण और सोडियमके छोटे छोटे टुकड़ोंकी तह रखते हैं। अन्तमें सबसे ऊपर साधारण लवण, नमक, की तह रहती है। क्रिया आरम्भ करनेके लिए एक स्थान पर खूब गरम करते हैं; तदनन्तर पूरे द्रव्यमें क्रिया क्रमशः फैल जाती है। क्रियामें उत्पन्न हुआ ताप लवणको गला देता है, यह द्रवित नमक नीचेके मसालेकी रक्षा करता है। ठंडा हो जानेपर घरियामेंका द्रव्य खोदकर निकाल लिया जाता है। उसमें बेंजनी रंगसे रंगे हुए रवे मिलते हैं, पर तुरन्त ही हवा लगते ही उनका रंग उड़ जाता है। इस द्रव्यके भीतर सोडियमके अपरिवर्तित टुकड़े भी रहते हैं, अतएव उन्हें निकालनेके लिए द्रव्यको मद्यसारसे ढक देते हैं। जब गैसका बुदबुदाना बन्द हो जाता है तो द्रव्यको निकाल कर पहले पानीसे खूब धोते हैं, तदनन्तर क्रमसे अम्ल और पानीसे फिर धोते हैं। इस प्रकार लवण तथा अन्य घुलनशील पदार्थ निकल जाते हैं और टंटलम् एक भारी बुकनीके रूपमें रह जाता है।

यद्यपि द्रवित नमक टंटलम्को बचाता है। तथापि टंटलम् ओषिद् और नत्रिद्में अंशतः परिवर्तित हो ही जाता है। आरम्भमें वैज्ञानिकोंने टंटलम्को ओषजन और नत्रजनसे पूर्ण तया अलग रखनेकी आवश्यकता नहीं समझी थी। उन्हें यह मालूम न था कि उत्तप्त टंटलम् या तो इन गैसोंको जज़्ब कर लेता है या उनके साथ यौगिक बना लेता है। आजकल तो वायु शून्य बर्तनोंमें ही टंटलम् बनानेका कार्य किया जाता है। इस विधिसे जो बुकनी मिलती है वह रूपमें पूर्वोक्त बुकनी कीसी ही होती है, किन्तु वस्तुतः उससे बहुत शुद्ध होती है। बुकनीको खूब दबाते हैं और खूब गरम करते हैं और अन्तमें विद्युत् भट्टेके ऊंचे तापक्रम पर वायु शून्य स्थानमें उसे पिघला लेते हैं। इस अंतिम क्रियासे टंटलम्की कठोरता ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उसमेंकी रही सही अशुद्धियां भी निकल जाती हैं। इस प्रकार शुद्ध किये हुए टंटलम्का बारीक तार खींचा जा सकता है। उसके पत्र बनाये जा सकते हैं और उसका पालिश किया जा सकता है।

साइमन्स और हलसके (Siemens and Halske) के कारखानेके डा० वान बोलटनने टंटलम् बनानेकी विधिका शोध १९६२ वि०में किया था, उसी वर्ष यह भी बतलाया गया था कि टंटलम्का प्रयोग बिजलीके लम्पोंमें सफलता पूर्वक हो सकता है। यद्यपि आजकल उसके स्थानपर टंगस्टन काममें आने लगा है, तथापि प्रति बत्तीके प्रकाशके लिए टंटलम् लम्पमें १·५—२·५ वाट ही खर्च होते हैं।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०। ३। ५॥

भाग १८ | मकर, संवत् १९८०। | संख्या ४

## कुचला ( Nuxvomica )

[ ले० कविराज प्रताप सिंह जी ]

यह विष मुष्टि अर्थात् कुचला नामक विष बीजोंके रूपमें प्रयोगमें आता है। यह बीज बटनके आकार के होते हैं और सीलोन, कोचीन, बुंदेलखण्डमें प्रायः मिलते हैं। बीजकी लम्बाई चौड़ाई ३/४ इञ्चसे एक इञ्च तक, और मोटाई १/४ इञ्च तक होती है। कुछ दाने चपटे, बीचमें दबे हुए और पीछेकी ओर उभरे हुए होते हैं। कुछ गोल होते हैं, किनारेके पास कुछ उभरा हुआ भाग होता है। वहांसे एक लकीर सी मध्यकी ओर को जाती है। रंग भूरा होता है और ऊपर मखमली रूआं सा लगा रहता है। स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है। इसके समान अन्य कोई ओषधि नहीं होती; इस कारण इसका रूप बड़ी सरलतासे पहिचाना जा सकता है।

प्रभाव—यह सर्वांग शक्तिप्रद है और सुषुम्ना नाड़ीको उत्तेजित करता है।

मात्रा—इसकी मात्रा आधी रत्तीसे दो रत्ती तक है।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—शरीरके बाहरी भागों पर लगानेसे यह रोग जन्तु नाश करता है, और वेदनाशामक है।

महास्रोत पर प्रभाव—अत्यन्त तिक्त होनेके कारण आमाशय और आन्तोंकी पाचन शक्तिको बढ़ा कर शक्ति प्रदान करता है। आमाशयमें पाचक रसोंको अधिक उत्पन्न करता है। भूखको बढ़ाता है और आन्तोंकी गतिको बढ़ाता है, जिससे विरेचक प्रभाव उत्पन्न होता है

रक्त पर प्रभाव—कुचलेका सत्व श्लेष्म-धरा-कलाके द्वारा अथवा सुईके द्वारा इन्जकशन करनेसे रक्तमें मिल जाता है। परन्तु, अभी तक यह विदित नहीं हुआ कि जीवित रक्त पर इसका क्या

प्रभाव होता है। परीक्षासे यह देखा गया है कि यदि कुचलेका सत्व रक्तके साथ मिला कर हवामें हिलाया जाय तो उसमें शुद्ध वायु अधिक मिलती है और अशुद्ध कम।

हृदय और रक्त परिभ्रमण—यह हृदयकी संचालक नाड़ियोंके केन्द्र और हृदयके मांस पर विशेष प्रभाव कर हृदयको विशेष उत्तेजित करता है। अल्प मात्रामें हृदय-स्पन्दकी गतिको दृढ करता है, रक्तके दबावको बढ़ाता है; श्वास बन्द होने पर भी हृदय स्पन्द करता रहता है। मरनेके बाद भी इसके प्रभाव से हृदय संकुचित दृष्टि पड़ता है।

श्वासाशय पर प्रभाव—यह श्वासाशयके केन्द्र मस्तिष्क और सुषुम्नाको उत्तेजित कर श्वासकी गतिको गम्भीर एवं शीघ्र गामी करता है। श्वासकी गति इतनी बढ़ जाती है कि जो नाड़ियां इसका संचालन करनेके लिए आती हैं यदि वह काट भी दी जांय तो भी गति शीघ्रतासे बन्द नहीं होती; श्वासाशयके मांस शीघ्र शीघ्र ऐंठने लगते हैं और अन्तमें श्वास-घुटनेसे रोगी मर जाता है।

शरीरोष्मा पर प्रभाव—शरीरमें ऐंठन उत्पन्न होनेके समय शरीरका ताप कुछ बढ़ जाता है। जब रोगीका शरीर शिथिल और शीतल होने लगे और नाड़ीकी गति भी दुर्बल हो तब इनजक्शन अथवा मुख द्वारा यदि कुचलेके सत्वका प्रयोग किया जाय, तो शरीरमें गर्मी आ जाती है और नाड़ीकी गति ठीक होने लगती है।

मस्तिष्क पर प्रभाव—मस्तिष्क पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, अन्तिम दशातक मस्तिष्क साफ रहता है। अल्प मात्रामें सेवन करनेसे मस्तिष्ककी शक्तिको बढ़ाता है, जिससे नेत्र तथा नासिकाकी ज्ञान शक्तिकी वृद्धि होती है। इसका कारण सामवेदनिक कणोंकी उत्तेजना हो सकती है।

वात-नाड़ियोंऔर मांसपर प्रभाव—चेष्टावह नाड़ियों तथा मांसों पर इसका कोई प्रभाव होता दृष्टि नहीं पड़ता, किन्तु विषात्मक मात्रामें सेवन करनेसे मरण समयमें चेष्टावह नाड़ियोंकी गति न्यून हो जाती है। साधारण मात्रामें सेवन करनेसे चर्मकी ज्ञानवह और चेष्टावह नड़ियोंको उत्तेजित करता है।

शारीरिक धातुओंपर प्रभाव—इसके प्रभावसे (जब शरीरमें धातु अधिक काम करते है तब) ओषजनीकरण अधिक होनेसे शरीरमें शुद्ध वायु अधिक शोषित होती है और दूषित वायु ( $CO_2$ ) अधिक बाहर निकलती है। धातुओंके विशेष प्रचलित होनेके कारण यह प्रभाव नहीं होता, किन्तु वात संस्थानमें परिवर्तन होनेके कारण होता है। आक्षेप ( खिंचाव ) के समय यकृत और मांसोंमें यकृत शर्करा (Glycogen) का भाग कम हो जाता है। यदि आक्षेप अधिक समय तक रहे तो शकर बिलकुल बन्द हो जाती है। अनुभव करनेसे विदित हुआ है कि परीक्षणीय जन्तुओंके मूत्रमें शकर अधिक निकलती है। कुछ समय पूर्व यह प्रभाव अमोघ समझा जाता था, किन्तु, वर्तमान समयमें यह निश्चित हो गया है कि यह प्रभाव श्वासाशयमें परिवर्त्तन होनेके कारण होता है।

जननेन्द्रियपर प्रभाव—यह साधारण मात्रामें काम इच्छा उत्पन्न करता है; इसकारण कामोद्दीपक समझा जाता है।

संशोधन (शरीरसे बाहर निकलना)—इसका शरीरसे बाहर निकास अत्यन्त मन्द है; क्योंकि यह अवयवोंके अन्दर जमा रहता है। मस्तिष्कमें तो यह बहुत दिनों तक जमा रहता है। यदि अल्प मात्रामें बार बार दिया जाय तो शरीरमें जमा हो जाता है। यह मूत्रके द्वारा अपनी असली दशामें अथवा परिवर्त्तित अम्लके द्वारा बाहर निकलता है।

क्षमता—कुछ मनुष्य दूसरे मनुष्योंकी अपेक्षा इसको अधिक मात्रामें खाकर भी सहन कर सकते हैं। हमारे देशीय लोगोंमें कुछ मनुष्य ऐसे हैं जो एक चावलकी मात्रा पानमें रखकर आरम्भ करते हैं और बढ़ाते बढ़ाते इसका एक बीज तक खाने लगते हैं।

विषात्मक प्रभाव—विषात्मक मात्रा खानेपर आधसे एक घन्टेके अन्दर शरीरमें विषलक्षण उत्पन्न हो जाते हैं:—जैसे सारे शरीरमें बेचैनी, हाथ पैरोंमें हड़फूटन प्रतीत होना, तत्पश्चात् कमरमें उग्रशूल होकर हाथ पैरोंमें जाता हुआ प्रतीत होना। हाथ पैरोंमें ऐंठन शुरू होकर आधसे एक मिनट तक रहती है। उससे पसीना अधिक आकर रोगी श्रमित हो जाता है। यह ऐंठन अधिकाधिक होती जाती है, रोगीका कष्ट और विषलक्षण भयंकर हो जाते हैं। मृत्युसे कुछ देर पहले जबड़ोंके मांसोंपर भी प्रभाव होता है और अन्तमें मृत्यु हो जाती है। इसकी एक चावलकी मात्रा खानेसे भी मृत्यु हो सकती है।

प्रतिविष या चिकित्सा—हाथ पैरोंमें ऐंठन होनेके पूर्व ही स्टमक पम्पसे पेटको धो डालना चाहिये। यदि ऐंठन शुरू होजाय तो क्लोरोफार्म सुंघाकर इस क्रियाको करे। अहिफेनसत्व ( Apomorphine ) चौथाई* चावलकी मात्रासे आधी चावलकी मात्रा तक इन्जकशन करना चाहिये। वमन कारक ओषधिका प्रयोग करना चाहिये। लकड़ीका कोयला तथा माजूफल मिलाकर बड़ी मात्रामें खिलाना चाहिये। यदि मूर्च्छा होने लगे तो मद्यसार (Alcohol) और अहिफेनसत्वका विषात्मक मात्रामें प्रयोग करें।

मारक मात्रा—१५ रत्ती कुचलेका चूर्ण खानेसे मृत्यु हो सकती है। आध घण्टेसे भी कम समयमें मृत्यु हो जाती है, किन्तु ५, ६ घण्टे भी लग जाते हैं। यदि कुचलेका सत्व इन्जकशन द्वारा शरीरमें प्रविष्ट किया जाय तो बहुत शीघ्र मृत्यु हो सकती है।

---

* एक रत्तीमें आठ चावल होते हैं।

# मंगल ग्रह

आज हम मंगलके सम्बन्धमें कुछ बातें लिखेंगे। शुक्रके पथके बाहर पृथ्वीके भ्रमण करनेका रास्ता है। इसके बाद मंगलके भ्रमण करनेका पथ है। ऐसा देखा जाता है कि पृथ्वीकी एक ओर शुक्र है और दूसरी ओर मंगल। अर्थात् शुक्र और मंगल पृथ्वीके दोनों ओर भ्रमण करते हैं। वस्तुतः शुक्र पृथ्वीके बहुत पास और मंगल बहुत दूर है। किन्तु घूमते घूमते जब वह पृथ्वीके बहुत नज़दीक आ जाता है तो उसकी दूरी चंद्रमाकी दूरीसे प्रायः १०० गुनी होती है। मंगल इससे अधिक पृथ्वीके पास नहीं आ सकता।

मंगल को अंग्रेज़ीमें Mars कहते हैं। हमारे देशके पुराने ज्योतिषी इसको अनेक नामोंसे पुकारते थे, जैसे अङ्गारक, लोहिताङ्ग, यम, कुज, सम्वर्त। जो पण्डित ग्रह नक्षत्रों को देखकर मनुष्योंके भाग्यका निपटारा करते हैं वह मंगलको अच्छा ग्रह नहीं बतलाते; वह कहते हैं कि मंगलकी दृष्टि बड़ी क्रूर होती है। जिस पर मंगलकी दृष्टि पड़ती है उसका कल्याण नहीं होता। ग्रह नक्षत्र किस प्रकार आकाशमें रह कर मनुष्योंके भाग्यका निपटारा करते हैं यह समझमें नहीं आता।

मंगल ग्रहके जन्म के सम्बन्धमें हमारे पुराणोंमें एक मनोरंज गल्प है, उसीका यहाँ उद्धरण करते हैं।

सतीके पिता राजा दक्षने एक बार बड़े समारोहके साथ एक यज्ञ किया और साथ ही साथ भोज भी दिया। उन्होंने अपनी सभी लड़कियों और जामाताओंको भी निमंत्रण दिया; किन्तु अपनी सबसे छोटी लड़की सती और उनके पति शिवजीको निमंत्रित न किया। चूंकि शिवजी श्मशानों में घूमते थे, बड़े बड़े सांपोंको गलेमें लटकाये रहते थे, शरीरमें भस्म लपेटे रहते थे इस

लिए दक्षराज शिवजीसे नाराज़ हो गये थे और इस अवसर पर भी उन्होंने शिवजीको निमंत्रित नहीं किया।

जब सतीने यह सुना कि पिताजी एक बड़ा भारी यज्ञ कर रहे हैं, तो वह बड़ी उत्सुक हुई और बिना शिवजीसे कहे सुने पिताके घर चली गईं। पिताने उनका आदर नहीं किया बल्कि वह शिवकी और भी निन्दा करने लगे। पिताके घरमें जा कर उनका इस प्रकार अनादर होगा इस बातको सती पहलेसे न जानती थीं। यदि वह ऐसा जानतीं तो शिवजीको छोड़कर अपने पिताके घर कभी न आतीं। खैर पतिकी निन्दा सुन कर सतीको बड़ा दुःख हुआ। वह वहीं मूर्छित हो कर गिर पड़ीं और फिर न उठ सकीं; वह स्वर्ग सिधार गईं।

शिवजीने जब सतीकी मृत्युका समाचार सुना तो उन्होंने तुरन्त अपने एक सेवकको भूत प्रेतोंके साथ दक्षराजके यज्ञ-स्थानमें भेजा। भूतोंने यज्ञका सभी सामान नष्ट भ्रष्ट कर दिया। पुराणोंमें लिखा है कि उसी समय शिवजीने एक भयानक वीर पुरुष पैदा कर दिया। भूत प्रेतोंने तो यज्ञका सारा सामान नष्ट ही कर दिया था किन्तु जब उन्होंने इस वीर पुरुषको पैदा किया तो उसने वहां जाकर एक मिनटमें ही यज्ञ भूमिको श्मशान भूमि बना दिया; मानों संसारमें प्रलयकालका समय आ गया। शिवजीने उस वीरका नाम वीरभद्र रखा।

वीरभद्र दक्षका यज्ञ नष्ट करके ही चुप न रहा—उसने क्षणमें ही स्वर्ग और क्षण ही में पातालको भी ध्वंस कर दिया। सातों समुद्रोंमें भी आग लगा दी। समुद्रका जल खौलने लगा। स्वर्ग नरक आकाश पातालके सभी मनुष्य वीरभद्र के अत्याचारको देख कर त्राहि त्राहि करने लगे।

जब शिवजीने यह दशा देखी तो वह बड़े चिंतित हुये। उन्होंने यह सोचा कि यदि वीर भद्र संसारमें रह जायगा तो सृष्टिकी समाप्ति हो जायगी। उन्होंने वीर भद्रको बुलाया और समझाया कि "तुम्हारी बहादुरीका परिचय मुझे मिल गया। तुम्हारी वीरताकी मैं क्या प्रशंसा करूँ किन्तु अब ऐसा करनेसे सृष्टि नष्ट हो जायगी।" वीर भद्रने जब शिवकी ऐसी आज्ञा पाई तो वह एक ग्रहका रूप धारण कर आकाशमें बास करने लगा। पुराणोंके मतानुसार यही ग्रह मंगल है।

मंगल आकाशका एक नक्षत्र है। साधारणतः यह लाल रंगका दिखलाई पड़ता है, शायद इसीसे पुराने ज्योतिषियोंने इसका नाम 'अङ्गारक' और "लोहिताङ्ग" रखा था। यह कभी शुक्रकी भांति उज्ज्वल नहीं दिखलाई पड़ता। लाल रंगके और भी कई नक्षत्र आकाशमें हैं इसीसे इसके पहचाननेमें बड़ी कठिनता होती है। किन्तु जब वह पृथ्वीके निकट आ जाता है उस समय इसको पहचाननेमें कठिनता नहीं पड़ती।

किन्तु मंगलको इस प्रकार देखनेकी सुविधा हर वर्ष नहीं होती। दो वर्षके बाद जब वह पृथ्वीके पास आता है तभी वह बड़ा दिखलाई देता है।

आयतनमें मंगल पृथ्वीसे बहुत छोटा होता है। वह शुक्रसे भी छोटा होता है। यदि चार मंगल इकट्ठा कर दिये जांय तो भी पृथ्वीके बराबर न होंगे। यह अधिक भारी नहीं है। एक तराजूके एक पलड़े पर पृथ्वी और दूसरे पर ९ मंगल रखे जांय तब कहीं पलड़ा बराबर होगा। जिस मसालेसे भगवानने मंगलका निर्माण किया है वह पृथ्वीके कंकड़ पत्थरसे भी हलका है।

मंगलमें एक बहुत अच्छा गुण यह है कि उसमें बुध और शुक्रकी भांति एक ओर सर्वदा दिन और दूसरी ओर सर्वदा रात नहीं रहती है। इसमें दिन रात ऋतु सम्वत सब होते हैं। इस हिसाबसे इसे पृथ्वीकी भांतिका ग्रह कह सकते हैं। इसी लिए आज कलके ज्योतिषी कहते हैं कि शायद मंगलमें भी जीव जन्तु, पेड़ और मनुष्योंकी भांति प्राणी बास करते हैं।

पृथ्वी २४ घंटेमें धुरीके चारों ओर लट्टूकी भांति घूम आती है। इसलिए हमारे यहां दिनरात का परिमाण २४ घंटे है। हमारी पृथ्वीको सूर्य्यके चारों ओर घूमनेमें ३६५ दिन लगते हैं, किन्तु मंगल सूर्यके चारों ओर घूमनेमें ६८७ दिन लेता है। मंगल अपनी धुरी पर २४½ घंटेमें एक चक्कर लगाता है। हमारे यहांके दिन रातमें और मंगलके दिन रात में कुछ अधिक फर्क नहीं केवल कुछ मिनटोंका फर्क है।

सूर्य्यके चारों ओर घूमनेके लिए मंगल क्यों समय लेता है! साफ़ प्रकट है कि पृथ्वीसे सूर्य्य जितना अधिक दूर है उससे कहीं अधिक दूर मंगल है। इसीसे मंगलका पथ पृथ्वीके पथसे बड़ा है। इस विषयमें एक बात और है कि पृथ्वी बड़ी तेज़ चालसे सूर्यके चारों ओर घूम आती है। पृथ्वी प्रति सेकेन्ड १८ मील चलती है। किन्तु मंगल इससे कम चलता है। मंगल एक सेकेन्डमें १५ मील चलता है। पहली बात यह है कि मंगलका रास्ता लम्बा है; दूसरी यह है कि वह धीरे धीरे चलता है। इन्हीं दो कारणोंसे मंगल एक वर्ष ११ माससे कम समयमें सूर्य्यके चारों ओर नहीं घूम सकता।

अब यह देखना चाहिये कि मंगलसे क्या लाभ होता है। कितने ही ज्योतिषियोंने मंगलके सम्बन्ध में बड़ा अनुसन्धान किया है। उन्होंने दूरबीनके द्वारा कितनी ही नई बातोंका आविष्कार किया है।

उन्होंने यह बतलाया है कि मंगलमें वायु है। और उस वायुमें जलती हुई वाष्प मिली है। किन्तु पृथ्वीके आकाशकी भांति मंगलका आकाश मेघोंके द्वारा ढका नहीं रहता। इसीसे हम मंगलको दूरबीन द्वारा भली भांति देख सकते हैं।

शीतकालमें पृथ्वीके मेरु प्रदेशमें जिस प्रकार बरफ जम जाती है जो वसन्त और ग्रीष्म काल आनेपर गलने लगती है और कई नदी नदियों बहने लगती हैं, ठीक इसी तरह मंगलमें भी देखा जाता है। पृथ्वीमें कभी वसन्तु ऋतु आती है कभी ग्रीष्म ऋतु; मंगलमें भी ज्योतिषियोंने ऐसा ही बतलाया है।

पृथ्वीमें जितनी नदी और नद हैं वह फावड़ों से खोद कर नहीं बनाई गई। वह स्वयं प्रकट होती हैं और स्वयं नष्ट हो जाती हैं। किन्तु तालाब आदि मनुष्योंके द्वारा खुदवाये जाते हैं। मंगलमें भी इसी प्रकारके कई तालाब देख पड़ते हैं, या तो वह स्वयं प्रकट हुए होंगे या किसी बुद्धिमान प्राणीने उन्हें बनवाया होगा। इस सम्बन्धमें ज्योतिषियोंने अभी कोई निर्णय नहीं किया।

बहुत से ज्योतिषी कहते हैं कि यह मंगलके निवासियोंने अपने हाथसे बनाये हैं; बिना हाथके बनाये हुए तालाब ऐसे सुन्दर नहीं बन सकते।

कुछ ज्योतिषी इसपर विश्वास नहीं करते। वह कहते हैं कि मंगल पर जो रेखा देखी जाती हैं वह सचमुच सीधी नहीं हैं। चूँकि मंगल दूर है इसीलिए वह धुँधला दीखता है और टेढ़ी लाइनोंको हम लोग सीधी लाइन कहते हैं।

अभी दोनों दलोंके ज्योतिषियोंमें झगड़ा हो रहा है; किस दलकी बात सत्य है और किस दलकी झूठ इसे ईश्वर जाने।

किन्तु यदि मान लिया जाय कि मंगलमें मनुष्य हैं भी तो वह हम लोगोंकी भांति सुखी नहीं हैं; क्योंकि मंगलके आकाश मंडलमें बादल नहीं होते, इसीसे वहां पानी नहीं बरसता। इसीलिए हम लोगोंकी भांति यदि वहां कोई प्राणी रहते होंगे तब तो वह पानीके बिना दुखी रहते होंगे। यदि मान लिया जाय कि मंगलमें बर्फ पिघलती है और यह ठीक भी है, तो वहां के रहनेवाले किसान उसी बर्फवाले पानीसे खेती करते होंगे। पर पीते क्या होंगे; क्योंकि खाना खानेके बाद पानीका आवश्यकता होती है। पानी प्रत्येक मिनटके लिए अमृत रूप है क्योंकि यह एक प्रकारका जीवन है। यदि ऐसा विचार किया जाय तब तो मंगलके निवासी गण किसी प्रकारसे भी सुखी नहीं हैं।

इन सभी बातोंको जानते हुए भी ज्योतिषी लोग कहते हैं कि यदि मंगलमें मनुष्य रहते होंगे तो वह बहुत जल्दी जल्दी मरते होंगे। किसी समय मंगलमें पृथ्वीकी भांति घनी वायु भी थी। मंगलमें पूर्ण रूपसे जल पानेका कोई उपाय नहीं है। जिस दिन वायु मंगलको छोड़कर चली जायगी उसी दिन जल भी बजाय जमनेके मिट्टीके अंदर गहरे स्थानपर जाकर स्थित हो जायगा और मंगलमें एक जीवका भी चिन्ह न रह जायगा। तदनन्तर अपना स्थूल शरीर लेकर आकाशमें घूमना ही मंगलका काम रह जायगा।

ज्योतिप्रसाद मिश्र निर्मल।

---

## धूम्रपान

धूम्रपान करना प्रायः सारे संसारमें बड़े प्रबल वेगसे फैला है और बराबर इसका प्रचार होता ही चला जा रहा है। किस देशमें धूम्रपानकी रीति नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता, तो भी यह बात निश्चय से कही जा सकती है कि जिन देशोंका यूरोपियन सभ्यतासे सम्पर्क नहीं हुआ है उन देशोंमें धूम्रपान का सर्वथा अभाव है। धूम्रपानका क्या इतिहास है, इसपर आलोचना करनेसे एक बड़े हास्यजनक रहस्यपर दृष्टि पड़ती है। यूरोप सभ्यताका अभिमान कर रहा था और अब भी बराबर करता है। तिसपर भी इतिहास इस बातका साक्षी है कि तम्बाकूका पीना एक जंगली प्रथा है। १४९२ ईसवीमें कोलम्बसने अमेरिकाके पश्चिम द्वीपोंका पता लगाया; जब वह क्यूबा द्वीपमें गया, तो वहां उसने दो आदमियोंको द्वीपका हाल जाननेके लिए भेजा। उन्होंने लौटकर यही बतलाया कि इस द्वीपके बासी जलती जलती लकड़ियां रखते हैं और मुखों और नाकोंसे धुआं निकालते हैं।

पहले तो उन्होंने यही समझा कि यहांके बासी अपने मुखको सुगन्धित करनेके लिए इस प्रकार धुएंका पान करते हैं। परन्तु बादमें उनको यह ज्ञात हो गया कि वह किसी पौधेके लम्बे लम्बे पत्तोंको लपेटकर नली बनाते हैं और नशेके लिए धुआं पीते हैं। यूरोपके बासियोंको शराबके नशेका आनन्द तो पहलेसे ही मिल चुका था। नशे के व्यसनीको नये नशोंकाभी शौक आ पकड़ता है। वह स्वभावतः इस नये धूम्रपानके शौक पर भी झुक पड़े। यूरोपके हकीमोंने तम्बाकू के पत्तोंका अजब असर देखा। उसका प्रयोग अपने नये नये बीमारों पर भी किया। प्रायः प्रथम दो धनाढ्य बीमारोंको ही यह औषध प्रयोग करनेका अवसर मिला। और इसका व्यसन भी प्रथम यूरोपके धनाढ्योंको ही लगा।

१४९३ में कोलम्बसने अपनी दूसरी यात्रा की। उसमें उसने पता लगाया कि अमेरिकाके मूलवासी तम्बाकूकी सुंघनीका भी प्रयोग करते हैं। वह तम्बाकूके पत्तोंका चूरकरके आध हाथ लम्बी नली द्वारा नाकसे चढ़ाते और छींक लिया करते हैं।

१५०३ में स्पेनके लोगोंने वहांके मूलवासियों पर आक्रमण किया। स्पेन वालोंको डरानेके लिए वहांके वासियोंने तम्बाकू के पत्ते चबा चबा कर उनपर थूकना प्रारम्भ किया। वह समझते थे कि तम्बाकू ऐसा विष है कि उसके आंखों पर पड़नेसे आंख फूट जाती हैं।

वहांके निवासी तम्बाकू पीनेके लिए Y की आकारकी नली बना कर उसका एक सिरा कोयले पर तम्बाकू डालकर उसके उठते हुए धूएंमें रखते थे और दूसरी दोनों फटी नलियां अपनी नाकमें लगाकर खेंचते थे। इन्हीं जंगलियोंकी देखा देखीसे यूरोपने सिगरेट और चुरुटका पीना सीख लिया। क्या तम्बाकूकी आदत सीखनेमें यूरोपने जंगली सभ्यताके सामने अपना सिर नहीं झुकाया। "चौबे बनने गये छब्बे पर रह गये दुबे।" यूरोप सभ्यता सिखाने गया और आप जंगली आदत सीख आया।

तम्बाकूका घातक प्रभाव

वानस्पतिकविज्ञानवादियोंने अब यह खोज निकाला है कि तम्बाकू निःसंदेह कुचले और धतूरेके समान विष वर्गका है। इसमें निकोटीनका विष ही एक पौण्डमें ३८० ग्रेन होता है। यह विष इतना तीक्ष्ण होता है कि $\frac{1}{20}$ ग्रेन भी मनुष्यको आधे मिनटमें यमसदनका यात्री बना देगा। आध सेर तम्बाकूके विषके द्वारा ३०० मनुष्योंका प्राण लिया जा सकता है। निकोटीन विषका प्रयोग प्रायः हत्याकाण्ड करनेका साधन बनता रहा है। तम्बाकूको भपके पर चढ़ाकर उसका तेल निकाला जाता है। वही उसका सारभूत विष है। उसकी एक बूंद भी बड़े महा नागको प्राण शून्य करनेमें समर्थ है। तम्बाकूके विषको छोटे मोटे जन्तु तो सह ही नहीं सकते।

तम्बाकूके पत्ते बगलमें रख कर सो जानेसे ही ज्वरकारी विषका प्रभाव प्रकट हो जाता है।

जो तम्बाकू खाते हैं और पीते हैं उनके शरीरमें विष फेफड़ों या पेट द्वारा शनैः शनैः संचित होने लगता है और क्रमशः सारा देह विषैला हो जाता है। उनको मच्छर और खटमल भी काटना छोड़ देते हैं; यदि भूल कर काट भी लें तो दूसरी बार नहीं काटते।

'Man the masterpiece' के कर्त्ता डा. जे. एच. केलाग M. D. ने अपने ग्रन्थमें तम्बाकू पीनेकी निम्नलिखित हानियां बतलाई हैं।

१. घबराहट, २. रुधिरका पतला और पीला हो जाना, ३. रुधिरके लाल कणोंका मन्द हो जाना, ४. पेटका कमजोर पड़ जाना, ५. वमन होना, ६. हलका हलका ज्वर उत्पन्न होना, ७. हृदय कमजोर हो जाना, ८. आंखकी पुतलीका फैल जाना, ९. इसी कारण ठीक ठीक न दीखना, १०. चकाचौंध या रतौंधा होना, ११. कानोंका बहरा हो जाना और ऊंचा सुनना, १२. कानोंका सन सनाना, १३. दिमागका सड़ना १४. गलेका दुखना १५. टांसलोंका बढ़ जाना, १६. कफका बढ़ना १७. हुक्का पीने वालेको दमा अवश्य हो जाता है। १२. १५ वर्षके बाद दम फूलने और उखड़ने लगता है। इसका घातक प्रभाव सन्तान पर पड़ता है। सन्तान निर्बल और हीन वीर्य उत्पन्न होती है।

इसके अतिरिक्त अब पाठकोंका ध्यान धूम्रपान-के उन गुण दोषों पर खेंचना चाहता हूं जिनका उल्लेख चरकआदि प्राचीन विद्वानोंने अपने चिकित्साग्रन्थोंमें किया है। उनका अनुशीलन करके यदि हम वर्त्तमान धूम्रपानकी प्रचलित अवस्था पर विचार करते हैं तब स्पष्ट प्रतीत हो जाता है कि वर्त्तमान प्रगति किस पुण्य या पापका कारण है।

सूत्र स्थानके पांचवें अध्यायमें चरकने स्नैहिक धूमवर्त्तिका वर्णन किया है।

> वसाघृतमधूच्छिष्टैर्युक्तियुक्तैर्वरौषधैः।
> वर्तिंमधुरकैः कृत्वा स्नैहिकीं धूममाचरेत् ॥

चरक सू०, अ० ५, २२

चर्बी, घी, मोम आदि वस्तुओंके साथ जीवनीय गण की वृष्य बलकारक ओषधियोंसे ऐसी वर्त्ति तैयार करे जो स्नेह न करनेवाली हो अर्थात् जिसके सेवनसे शरीरमें तरोताज़गी और चिकनाईकी वृद्धि हो और उसीसे धूम्रपान करे।

यह 'वर्त्ति' क्या वस्तु है। हमारी सम्मतिमें यह 'वर्त्ति' प्राचीन कालकी चुरट या सिगार कहें तो बहुत उत्तम है। भेद इतना ही है कि इसको बनानेके लिए तम्बाकू ( Tobacco ) जैसा विषैला पदार्थ प्रयोगमें नहीं आता; प्रत्युत इसमें जीवनीय गणके बलकारक वृष्य पदार्थोंका योग होता है। इस प्रकारकी 'धूम्रवर्त्ति' (Smoking pencil) को स्नैहिक धूम्रवर्त्ति कहा गया है।

इसके अतिरिक्त नित्य धूम्रपान करनेके लिए भी विशेष प्रकारकी धूम्रवर्त्तिका प्रयोग होता था 'जिसे प्रायोगिकी धूम्रवर्त्ति' (Smoking Pencil in daily use) कहते थे; जिसके लिए चरकके प्रसिद्ध टीकाकार चक्रपाणि दत्तने धूम्रवर्त्तिको धूम्रपान नलिका (Smoking tube) और 'प्रायोगिकी'को नित्य पेयवर्त्ति (नित्य पीनेकी वर्त्ती) लिखा है। वर्त्ति

शब्दका शुद्ध हिन्दीरूप बत्ती ही है। सिगार सिगरेट आदि शब्द हिन्दीमें पराई भाषासे उधार लिए हुए हैं। 'बीड़ी' शब्द वीटिका शब्दका अपभ्रंश है जिसका मूल शब्द 'वर्त्तिका' ही प्रतीत होता है। हम यहां पर यह कहनेसे कभी नहीं हिचकेंगे कि चरक आदि विद्वानोंने धूम्रपानका पूरा मर्म समझ लिया था। और उसको चिकित्सा शास्त्रमें यथा योग्य स्थान दिया था। उसके लिए विष युक्त पदार्थोंका विधान न करके उन्होंने स्नेह युक्त बलकारक पदार्थोंका विधान किया था।

[ टि०—अंग्रेज़ीके सिगार और चुरट शब्द भी अपने नहीं है। सिगार (Cigar) शब्द स्पेनिष भाषाके 'Cigarro' शब्दका रूपान्तर है। और चुरट तामिल भाषाके 'शुरुत्तू' शब्दका रूपान्तर है, जिसको फ्रेंच भाषामें चेरूट कहते है। सिगार शब्दका कोषोंमें अर्थ लिखा है 'a roll of tobaccoleaves' तम्बाकूके पत्तोंकी बत्ती' और चेरूटके मूल-शब्द 'शु रुत्तु'का अर्थ भी 'Roll' अर्थात् वत्ती है। फलतः बंटकर बनाने योग्य पदार्थ ही वत्ती कहाती है। वही भाव अब तक सब शब्दोंमें ज्योंका त्यों बना है। ]

अब विचार यह करना है कि महर्षि अग्निवेश ने चरकमें धूम्रपान बत्ती बनानेकी क्या विधि लिखी है।

'हरेणुकां प्रियंगुं च पृथ्वीकां केशरं नखम्।'
ह्रीवेरं चन्दनं पत्रं त्वगे लोशीरं पद्मकम्॥
ध्यामकं मधुकं मांसी गुग्गुल्वगुरु शर्करम्।
न्यग्रोधो दुम्बराश्वत्थ प्लक्षलोध्रत्वचः शुभाः॥
वन्यंसर्जरसं मुस्तं शैलेयं कमलोत्पले।
श्रीवेष्टकं शल्लकींच शुकवर्हमथापिच॥
पिष्ट्वालिपेत्छरेषीकां तांवर्त्तिं यवसन्निभाम्।
अंगुष्टसंमितांकुर्यात् अष्टांगुलसमां भिषक्॥
शुष्कां निगर्भां तां वर्त्तिं धूमनेत्रार्पितां नरः।
स्नेहाक्तामग्निसंप्लुष्टां पिबेत्प्रायोगिकीं सुखाम्॥
( सू०, अ० ५, १६-२१ )

हरेणुका (अरहर), प्रियंगु (प्रियंग कूआंधान), पृथ्वीका (कालाजीरा), केसर, नख (हाथीके), ह्रीवेर (हाऊबेर), चन्दन, जातिपत्र, त्वग् (दारचीनीकी छाल)। एला (इलायची), उशीर (खसखस), पद्मक (पद्माख), ध्यामक (गन्धतृण रूंआ घास) मधुक (महुआ), मांसी (जटामांसी), गुग्गुल, अगर, शक्कर, बड़की छाल, गूलरकी छाल, पीपलकी छाल, पिलखनकी छाल, लोध्रकी छाल, नागरमोथा, सर्जका रस (राल) शैलेय (शिलाजीत), कमल (श्वेत) लाल कमल, श्रीवेष्टक (तारपीन चीड़की गोंद), सल्लकी (गन्दाबिरोजा पहाड़ी धूप), शुकवर्ह (तोतेके पंख)–इन सब पदार्थोंको लेकर कूटकर घी, चर्बी या मोम आदि पदार्थोंमें मिलाकर लुगदी बनाले। उसे सरकण्डेकी मूँजनलीके चारों तरफ जौ भर ऊंचाईकी तह लपेट ले और अंगूठेभर मोटी आठ अंगुल बना ले और सुखाले। बीचमेंसे वह खोखली हो। उसके एक मुखपर आग लगाकर धूम्रका पान करे। यह नित्य सेवन करने योग्य उत्तम धूम्रपान वर्त्ति कही गयी है।

इसके अतिरिक्त शिरको साफ करनेके लिए, शिरके रोगोंसे मुक्तिपानेके लिए एक और भी धूम्र-पान वर्त्तिका प्रयोग चरकमें लिखा गया है। यह वर्त्ति 'वैरेचनिक धूम्रवर्त्ति' (Purgative smoking pencil) कहाती है।

श्वेतां ज्योतिष्मती चैव हरितालं मनःशिला।
गन्धाश्चागरु पत्राद्या धूमः शीर्षविरेचनम्॥

श्वेता (सफेदकटेरी), ज्योतिष्मती (नयाफटकी करेली), हरताल, मनसिल, अगर तगर पत्र आदि सुगन्धित पदार्थ, मिलाकर इनके धूएंको नाकसे पान करने पर सिरका विरेचन होजाता है। शिरके सब मल छींकके रास्ते निकल जाते हैं।

धूम्रपानकी नलिकाकी रचना

चरकके ज़मानेमें धूम्रपान नलिकाकी रचना किस प्रकार की थी, इसका जानना बहुत कठिन है। चरकके श्लोकोंमें जो पद रचना या वाक्य रचना है, सबपर टीकाकार तथा अनुवादकारों ने भी विशेष स्पष्टता नहीं की; शब्दोंमें कितनी भी स्पष्टता हो परन्तु किसीने चित्र दर्शा कर नहीं दिखलाया। मैं टीकाकार और अनुवादकोंका आश्रय लेकर

भी उनके समान गोलमोल बात कहकर आगे चलना नहीं चाहता। चरकमें लिखा है—

चतुर्विंशतिकं नेत्रं स्वांगुलैः स्याद्विरेचने।

द्वात्रिंशदङ्गुलं स्नेहे प्रयोगेऽध्यर्धमिष्यते॥

धूम्रपानकी नलीको नेत्र कहते हैं जो बोल चालमें 'नय' या 'नै' कहाती है। धूम्रपान वर्त्तीका परिमाण आठ अंगुल पहले बतला आये हैं। अब पीनेकी 'नय' का वर्णन करते हैं। अर्थात् 'वर्त्ति' को सीधा मुखमें या नाकमें डाल कर पीना नहीं चहिये। धूम्रपान वर्त्ति तीन प्रकारकी है-एक स्नेहनके लिए, दूसरी विरेचनके लिए और तीसरी नित्य प्रयोगके लिए। विरेचनके लिए 'नय' २४ अंगुल की हो, स्नेहनके लिए 'नय' ३२ अंगुल की हो, और नित्य प्रयोगके लिए 'नय' इससे भी ड्योढ़ी अर्थात् ४८ अंगुल हो। या विरेचन नलीसे डेढ़ गुणी हो अर्थात् ३६ अंगुल हो।

प्राचीन विद्वान जतुकर्णने लिखा है।

"सार्द्धत्र्यंशयुतः पूर्णो हस्तः प्रयोगिकादिषु।"

अर्थात् ३०½ अंगुलका पूरा हाथ ही प्रायोगिक आदि धूम्रपानकी नलीकी लम्बाई होनी चाहिये। सबका तात्पर्य यही है कि धूम्रकी लपट अन्य अंगों पर हानिकारक प्रभाव न करे। अब एक प्रश्न यह है कि एक हाथ या डेढ़ हाथ सीधी नलीसे यह काम क्यों न लिया जाय। इसपर चरक कहते हैं—

ऋजुं त्रिकोषा फलितं कोलास्थ्यग्र प्रमाणितम्।

वस्ति नेत्रसमं द्रव्यं धूम्र नेत्रे प्रशस्यते।

वह नली सीधी हो और उसके तीन टुकड़े हों वह एक दूसरे पर चढ़े हों और उसका अग्रभाग कुहनीकी हड्डीके समान हो। वस्ति लेनेके लिए जिन जिन द्रव्योंको लिया जाता है धूम्रपानकी नली भी उन्हीं पदार्थोंकी बनी हो अर्थात् धातु, काठ हड्डी और बांस आदि। नय चरकके मतानुसार त्रिकोषा फलित हो। अर्थात् तीन पोरुओंसे जुड़ी हो अर्थात् चित्रमें दिखाये आकारकी हो। यह तीन भाग चित्रमें दिखाये रूपसे ही जुड़े हों या किसी और प्रकारसे। चरकने 'धूम्रपान नली' को एक स्थान पर 'धूम्र वक्रक' (अर्थात् धूआं पीनेका टेढ़ा यन्त्र) लिखा है। कोई इसका पाठान्तर वक्रक न करके 'वक्त्रक' लिखते हैं, जिसका अर्थ हुआ— धूम्र है मुखमें जिसके ऐसा यन्त्र। इन दोनोंमें पहला पाठ अधिक सुगम सुन्दर तथा उचित प्रतीत होता है। इस कारण धूम्रपान नलीकी रचना नीचे लिखे चित्रोंसे स्पष्ट है।
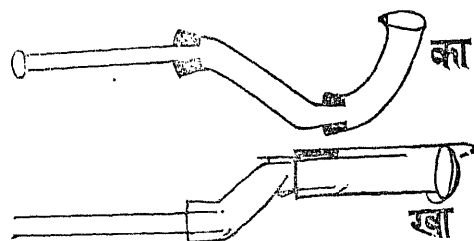
चित्र—११, १२
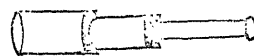
चित्र—१३

पहले जिन पदार्थोंका धुआं पिया जाता था वह पदार्थ अब इस कार्यमें नहीं लाये जाते। अब केवल तम्बाकू, गांजा, चरस, अम्ल, अफ़ीम, धतूरा, कोकीन, आदि पदार्थ रख कर नशेके लिए पिये जाते हैं। उनका बुरा प्रभाव हुए बिना नहीं रहता। इसके अतिरिक्त चरकने सभी प्रकारके धूम्रपानकी अधिकताके दोषोंका वर्णन किया है।

तालु मूर्धा च कण्ठश्च शुष्यते परितप्यते।

तृष्यते मुह्यते जंतुः रक्तं च स्रवतेऽधिकम्॥

शिरश्च भ्रमतेऽत्यर्थं मूर्च्छा त्रास्यो पजायते।

इन्द्रियाण्युपतप्यन्ते धूमेऽत्यर्थं निषेविते॥ (५१-५२)

अधिक धूम्रपान कर लेने पर तालु, सिर और गला सूखने लगता है और गर्मीके कारण तपने लगता है। पीनेवालेको प्यास, सताती है, मूर्छा आने लगती है, मुंहसे रक्त गिरने लगता है, सिर घूमने लगता है। सुध बुध जाती रहती है। सब अंगोंमें जलन उठती है। (अपूर्ण)

## भाँग ( Cannabis Indica )

[ ले०—कविराज प्रतापसिंह जी ]

संस्कृतमें इसको विजया कहते हैं। गांजा, चरस और भाँग यह तीनों ही एक क्षुपके मादक प्रयोग हैं। इस वृक्षके पत्तोंको जो घोट कर पिये जाते हैं भाँग कहते हैं। पुष्प वाला सिरा जिसके ऊपर गोन्द जैसा द्रव्य लगा रहता है गाँजा कहलाता है। इसी जाति का गोन्द जो पत्तों पर लगा रहता है चरसके नामसे प्रचलित है। भाँगके पत्तोंके साथ मिलाकर जो खाण्ड जमा ली जाती है वह माजून कहलाती है। इसका पौदा भारतवर्षमें सर्वत्र उत्पन्न होता है; किन्तु बंगाल प्रान्तमें विशेषतासे उत्पन्न होता है। व्यापारमें इसकी तीन जातियां प्रयुक्त होती हैं। एक चौड़े पत्तों वाली, दूसरी गोल पत्तों वाली, तीसरी चूर्णके रूपमें। जो गाँजा चूर्ण रूपमें आता है यह औषधिके प्रयोगके लिये उत्तम है। बीस वर्ष का पुराना होनेसे गांजा औषधिके उपयोगमें लानेके लायक नहीं रहता।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—भांगको पीस कर शरीरके बाहरी भागों पर लगानेसे वेदनाका कुछ उपशमन होता है। इस कारण अर्श रोगमें इसकी टिकिया बांधी जाती हैं।

आमाशय और आन्तोंपर प्रभाव—थोड़ी मात्रामें प्रयोग करनेसे यह आमाशय और आन्तोंमें उत्तेजक प्रभाव करती है, जिससे भूख अधिक लगती है और वह भूख इतनी बढ़ जाती है कि भोजनसे तृप्ति नहीं होती। इससे पाचन शक्ति भी बढ़ती है। यदि यह अधिक समय तक सेवन की जाय तो भूख बन्द हो जाती है और आमाशयकी क्रिया भी विकृत हो जाती है।

मस्तिष्क और वात संस्थान—मस्तिष्कके ऊपर इसका प्रभाव मद्य या अफ़ीमके समान पड़ता है; किन्तु, वह प्रभाव अनिश्चित है। इसका कारण औषधिकी न्यूनाधिक मात्रा और मनुष्यकी क्षमता पर निर्भर है। यदि अल्प मात्रामें खाई या पी जाय तो शरीरमें सुखदायक आभास (Sensations) होता है; जिसमें प्रसन्नता उत्पादक अनेक व्यर्थ कल्पनाएं होती हैं; चित्तमें स्फूर्ति होती है, विशेष कर मानसिक या शारीरिक परिश्रमके पश्चात् यह स्फूर्ति और भी आनन्द दायक प्रतीत होती है। इसके प्रभावसे समय और व्यक्तिगत ज्ञान लुप्त हो जाता है। यदि यह अधिक मात्रामें बराबर प्रयोग की जाय तो इसका विषात्मक प्रभाव होने लगता है; जिससे मनुष्यकी आत्म संयम करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। इसके मदवाला मनुष्य बातें अधिक करता है, प्रत्येक बात पर हंसता है, उन्मत्त की भांति चलता है। इसके उन्मादीको बेचैनी होती है और वह प्रलाप करता है। साथ ही इसके मांसोंमें बड़ी उत्तेजना होती है, और नीन्द आ जाती है। नीन्दमें बड़े सुन्दर सुन्दर स्वप्न आते हैं, शिरमें बड़ा भारसा प्रतीत होता है, शिर उड़ रहा है एवं उसके टुकड़े टुकड़े हो जायंगे ऐसा भी अनुभव होता है। अधिक मात्रामें प्रयोग करने से शरीरमें जड़ता और मूर्च्छा होकर हृदय स्पन्द-बन्द होनेसे मृत्यु हो जाती है।

चर्म पर प्रभाव—चर्म पर लगानेसे ज्ञान-वह नाड़ियोंके अन्तिम भाग संज्ञा शून्य हो जाते हैं। वहां एक प्रकारका स्फुरण होता है, चर्म ज्ञान शून्य हो जाता है; मांसोंका ज्ञान भी नष्ट हो जाता है और वहां पर होनेवाला दर्द कम हो जाता है या बिलकुल बन्द हो जाता है। इसी कारण इसको वेदनोपशमक कहते हैं।

हृदय और रक्त परिभ्रमण—हृदय पर इसका निश्चित् प्रभाव होता है; जिससे नाड़ीकी गति प्रथम तीव्र और फिर मन्द हो जाती है। पुनः अन्तमें मन्द और फिर तीव्र होती है। मस्तिष्कसे हृदयगामी नाड़ियोंके केन्द्र पर इस औषधका प्रभाव पड़नेसे अथवा हृदयकी मांस पेशियों पर प्रभाव होनेसे, यह कार्य होता है; इसी कारण रक्तका दबाव भी बढ़ता और घटता है।

श्वासाशय—इसके प्रभावसे श्वास प्रथम अधिक वेगसे चलता है और फिर मन्द हो जाता है।

शरीरोष्मा—इसके प्रभावसे शरीरमें उत्तेजनाके समय ताप कुछ बढ़ जाता है और निद्रा कम आती है।

मूत्राशय और वृक्क—इसके प्रयोगसे मूत्र अधिक बनने लगता है और बनी हुई भांग, माजूम या उसका शर्बत पीनेसे मूत्र श्वेत रंगका आने लगता है।

मांस—इसको अल्प मात्रामें सेवन करनेसे चेष्टावह नाड़ियोंकी गति बढ़ जाती है और अधिक मात्रामें सेवन करनेसे यह गति न्यून हो जाती है; मांस भी शिथिल पड़ जाता है।

जननेन्द्रिय—यह अल्प मात्रामें कामोद्दीपक प्रभाव करती है। मध्य मस्तिष्क और जननेन्द्रिय सम्बन्धी नाड़ियोंके केन्द्रोंको शक्तिप्रदान करनेसे कटिके रक्त वह श्रोतोंमें अधिक रक्त प्रवाह करती है, जिससे जननेन्द्रियमें उत्तेजना होती है। बार बार कामोद्दीपक औषधोंके सेवनसे जननेन्द्रियको उत्तेजित करना नपुंसकता उत्पन्न करता है।

क्षमता—अफीम और मद्य की भांति इसे सहन करनेकी शक्ति भी मनुष्यमें शीघ्र ही हो जाती है; नियमसे भांग पीनेवाले मनुष्य सवा तोलेके लगभग भांग एक बार पीकर बर्दाश्त कर सकते हैं।

तात्कालिक विष लक्षण—भांग, गांजा और चरसके प्रभावसे विषात्मक लक्षण बहुत ही कम देखनेमें आते हैं और यदि विषात्मक प्रभाव होता भी है तो वही लक्षण होते हैं जो वात संस्थानके वर्णनमें लिखे गये हैं और उसमें प्रधान लक्षण केवल शरीरकी निस्पन्दता (Catalepsy) ही होती है।

प्रति विष—यदि गलेमें उतर सके तो वामक औषधोंसे स्टमक पम्प द्वारा आमाशयको धो डाले। वानस्पतिक अम्ल ( नीम्बूका रस आदि ) शीतल द्रव्य, शक्तिप्रद औषधें, पानीका मुख पर छिड़कना, कुचलेके सतका प्रयोग करना, गर्दनके पिछले भाग पर प्रदाह शामक औषधियोंका प्रयोग करना अति उत्तम है।

चिरकालिक विषलक्षण—गांजा और भांगका पीना भारतवर्षमें बहुत प्रचलित है। इसका बराबर सेवन करते रहनेसे भूख बन्द हो जाती है, सेवन करने वाला मनुष्य दिनों दिन सूख जाता है, उसके हाथ पैर कांपने लगते हैं, उन्माद हो जाता है, और उसका मस्तिष्क भी दुर्बल हो जाता है।

मध्य प्रान्तके लोग भांगके साथ पाचक औषधियोंको मिलाकर अधिकतया व्यवहार करते हैं किन्तु, उसके सेवनसे विशेष हानि होती हुई दृष्टि नहीं पड़ती।

---

## मक्खी की आदतें

मक्खी जब कोषसे बाहर निकलती है तो बहुत भूकी होती है और पहले उसे पेट भरनेकी फिक्र होती है। परन्तु कोषसे निकलने पर उसके पंख गीले और चिपके होते हैं, इस कारण उसको ही कोष पर बैठ कर अपने पंख सुखाने और फैलाने पड़ते हैं। जब पंख सूख कर कड़े हो जाते हैं और खुलने और बन्द होने लगते हैं तब मक्खी भोजनकी खोजमें उड़ जाती है। बहुधा भोजन सामग्रीकी खोजमें उसको दूर नहीं जाना पड़ता। जिन तरल पदार्थोंको खाकर इल्ली जीवित रही थी उन्हीं पदार्थोंको खाकर मक्खी भी अपना पेट भर सकती है। यदि मक्खीको भोजनकी खोजमें दूर जाना पड़ता है तो भी उसे कोई चिंता नहीं होती, क्योंकि उसकी गंध ग्रहण करनेकी शक्ति बड़ी प्रबल होती है और भोजन सामग्रीकी गंध लेती हुई वह सहज ही उस स्थानपर पहुँच जाती है जहां उसे खाना मिल सकता है। भोजनके लिए उसे किसी विशेष पदार्थकी आवश्यकता नहीं है। उससे निकृष्ट सर्वभक्षक दूसरा कोई जन्तु न होगा। प्रकृति ने उसे भेद करना बताया ही नहीं

है। निकृष्टसे निकृष्ट और स्वादिष्टसे स्वादिष्ट भोजन उसके लिए समान हैं। खीरकी थाली तथा मोहन भोग परसे सहर्ष उठ कर वह वमन पर चली जाती है। और विष्ठा अथवा गोबर परसे उठकर पुलाओ और कूर्मा पर पहुँच कर सब को ही मुदित मन खाती है।

मक्खीको जितनी भूक लगती है उससे अधिक उसे प्यास लगती है। जिस तरह खाद्य पदार्थोंमें भेद करना उसे नहीं आता उसी तरह पीनेकी चीजोंमें भी वह भेद करना नहीं जानती। गर्मियोंमें जब हम लोग दोपहरको लेटते हैं और मक्खी आनकर तंग करती हैं तो केवल इसलिए कि हमारा पसीना पीकर वह अपनी प्यास बुझाती हैं। पसीना ही क्या कोई भी द्रव पदार्थ उसे मिल जाय वह उसीको निस्संकोच पी जाती है। दावातोंमें जो मक्खियां डूबी हुई मिलती हैं वह भी इसी वजहसे कि दावातकी रोशनाईके पानीके लालचमें मक्खी दावातमें घुस जाती है और डूब कर जान दे देती है।

यद्यपि मक्खी सर्व-भक्षक है और स्थूलसे स्थूल चीज़को भी खानेका साहस रखती और उद्योग करती है तो भी उसके मुंह (थूथनी) की बनावट ऐसी है कि तरल पदार्थोंका चूसना उसके लिए सुगम है, इसलिए यह मान लेना पड़ता है कि मक्खी ठोस चीजकी अपेक्षा तरल पदार्थोंको खाना ज्यादा पसन्द करती है। वमन, श्लेष्मा, नासिकाका मल उसको इसीलिए रुचि कर हैं कि खाना पानी वहां दोनों साथ ही मिल जाते हैं। बालकोंकी आंख नाकमें जो मक्खी घुसी रहती हैं वह केवल इन्हीं मैले पदार्थोंकी लालसामें।

मक्खीकी पाचन इन्द्रिय बहुत ही सरल होती है और वह केवल पतली चीज़ों अर्थात् पदार्थोंके घोलोंको ही ग्रहण कर सकती हैं। स्थूल पदार्थ एक तो मक्खी खा ही नहीं सकती दूसरे जो कण घोलोंके चूसनेमें अन्दर चले जाते हैं मक्खी उनको भी हज़म नहीं कर सकती; वह भी ज्योंके त्यों गुदा द्वारा निकल जाते हैं। साधारण कणोंके निकल जानेसे तो कोई हर्ज नहीं भी होता, परन्तु मक्खीका भोजन बहुत ही निकृष्ट होता है। विष्ठा, वमन, श्लेष्मा, पीप, खून इत्यादि उसके आहार हैं और इन सबमें रोगोंके जीवाणु भरे होते हैं। इन जीवाणुओंका मक्खीकी पाचन इन्द्रियमें पाचन नहीं हो पाता और यह जीवाणु ज्योंके त्यों पाखानेमें निकल जाते हैं और रोगोंके प्रसारके हेतु होते हैं।

मक्खी एक अनथक जन्तु है, वह प्रातः काल सूर्योदयके समय उठती है और सायंकालको सूर्यास्तके समय बसेरा लेती है। इस बीचमें वह शायद ही कभी विश्राम करती हो। कारण यह कि जैसा ऊपर कहा गया है उसकी पाचन इन्द्रिय केवल तरल पदार्थोंको ही गृहण कर सकती है। जितना वह खाती है उसका बहुत ही थोड़ा अंश उसके शरीरकी पुष्टिमें काम आता है। इस पौष्टिक अंशके इतनी मात्रामें प्राप्त करनेके लिए कि जिसमें उसका शरीर स्वस्थ रहे उसे दिन भर खाना पड़ता है। इस दिन भर खाने अथवा खानेकी खोजमें रहनेके कारण उसका यह स्वभाव हो गया है कि जहां वह बैठती है अपनी थूथनीको उसमें गाड़ कर देख लेती है कि कुछ भोजन वहां से मिल सकता है या नहीं। यदि मक्खी किसी मेज़ अथवा अन्य किसी स्थान पर बैठी हो और उसे देखा जाय तो पता चलता है कि वह भोजनकी खोज बड़े क्रमसे (Methodically) करती है। वह सोच सोच कर पाओं उठाती है और देख देख कर कदम रखती है। वह जितनी दूर चलती है उतने बीचकी सब जगहको अपनी थूथनीसे विधिवत टटोल कर देख लेती है कि वहां कोई भोजन सामग्री तो मौजूद नहीं है जिसे वह खा सकती है। यदि नहीं मिलती तो वहांसे उड़कर दूसरी जगह जा बैठती है और वहां भी पूर्ववत खोज आरम्भ करती है। उसका यह कार्य अनुचित नहीं है; क्योंकि यह कहना बहुत ही मुश्किल है

कि वह कौनसे पदार्थ हो सकते हैं, जिनसे वह कुछ न कुछ भोजन अपने लिए गृहण न कर लेती हो।

मक्खी जहां तमाम दिन खाती है वहां तमाम दिन हगती भी है। कारण यह कि जितना वह खाती है सब हज़्म तो होता नहीं, पाखाने द्वारा ही निकल जाता है। और जब वह दिन भर खायगी तो दिन भर उसे आप ही हगना पड़ेगा। यही कारण है कि चिकपर्दें, अलगंनी, लम्प, पंखों-की डोरियां सब ही मक्खीकी विष्टासे काली हुई रहती हैं।

यह कहना मुशकिल है कि मक्खी कितनी कितनी देर बाद पाखाना फिरती है। परन्तु ऐसी जगह कम ही होंगी जहां मक्खीको खानेको मिले और उसे बैठकर खाय और वहां हगे नहीं। इसलिए यह ही अनुमान किया जा सकता है कि मक्खी खाती जाती है और हगती जाती है। और यह वास्तवमें ठीक भी है। यदि उसे खानेको मिलता चला जाय तो वह बराबर खाती और हगती चली जायगी। उसे दस्त भले ही लग जायं पर वह खाना नहीं छोड़ेगी। यह उसकी आदत ऐसी निकृष्ट है कि जिसके कारण कोई खाद्य पदार्थ उसकी विष्टासे नहीं बच सकता; क्योंकि वह इतना छोटा सा जन्तु है कि जिस चीज़को उसे खाना होता है उसीके ऊपर वह बैठ जाती है और जब खाते खाते हगती है तो उसी चीज के ऊपर हग देती है। शायद पाठक मेरे इस लेखसे सहमत न हों; परन्तु इसकी सत्यताकी परीक्षा बहुत ही सहज है। किसी खाद्य पदार्थ को दो एक घंटे मक्खियोंके लिए खुला रखा रहने दें और ततपश्चात् उसे ध्यान पूर्वक देखें। अनुमान यह है कि छोटे छोटे पीले काले विन्दुके आकारके मक्खीके विष्टा-कण उसपर रखे हुए उन्हें मिल जायंगे।

मक्खीकी केवल इस आदतका दुष्परिणाम यह होता है कि मक्खी द्वारा फैलने वाले रोग बहुत सहजमें फैल जाते हैं। एक कल्पित उदाहरणसे यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है। कल्पनार्थ हम मान लेते हैं कि किसी मोहल्लेके एक घरमें बालकको अतिसार रोग ने घेर रखा है। उसको पतले पतले दस्त हो रहे हैं। और उसका पतला पतला पानी सा पाखाना जगह जगह घरमें पड़ा है। मक्खियोंको यह घटना बड़े आनन्दका अवसर है; क्योंकि पतली पानीसी विष्टा जिसमें दूधका अंश मौजूद है सहज ही खानेको मिल जाती है। मोहल्ले भरकी मक्खियों-के झुंडके झुंड उसके खानेको चले आते हैं और जो खाया जाता है उसे खाते हैं बाकीको अपनी अपनी थैलियोंमें भर कर ले जाते हैं। जब माता उस पाखानेको उठाकर साफ कर देती है तो मक्खियोंके झुंड भी अपना अपना रास्ता लेते हैं। यह मक्खियां जब दूसरे स्थानों पर पहुँचती हैं तो वहां जो खाने पीनेके पदार्थ मिलते हैं उनपर बैठती हैं, उनको खाती हैं और उन्हीं पर हगती है। उनकी विष्टामें अतिसार रोगके जीवाणु मौजूद होते हैं। इस तरह यह जीवाणु सहज ही में उन खाने पीनेकी चीजोंमें पहुँच जाते हैं और उन चीजों द्वारा रोग फैल जाता है।

मक्खीका जब पेट भर जाता है तब वह भी अटल हो जाती है और दूसरे जानवरोंकी तरह उसको भी उड़ना चलना फिरना अच्छा नहीं लगता। पेट तथा थैली भरे होनेके कारण उससे चला भी नहीं जाता। बहुधा जहां वह खाती है वहीं एक तर्फको बैठ जाती है। यदि किसी बरतनमें कोई खाद्य पदार्थ खुला रखा हो और मक्खियां उसे खा रही हों और उन मक्खियोंको थोड़ी देर तक बैठकर देखा जाय तो पता चलता है कि जो मक्खियां उसे खानेको आती हैं वह पहले तो बड़ी जल्दी जल्दी खाती हैं परन्तु जब उनका पेट भर चलता है तो उनकी खानेकी गति मन्द पड़ जाती है। जिनका पेट खूब भर जाता है वह हटकर उसी बर्तनके किनारे पर

एक तर्फको बैठ जाती हैं और अपने शिर तथा पर, कमर, पीठ इत्यादिको अगले पिछले पैरोंसे साफ किया करती हैं। उनमेंसे कोई कोई एक कौतूहल भी करती कभी कभी दिखाई देती हैं। अर्थात् वह बैठी बैठी भोजनांशको अपने पेटमें से उगला और निगला करती हैं। यह उगलन पहले एक छोटी सी बुन्दके समान होती है परन्तु बढ़ते बढ़ते मक्खीके शिरके बराबर हो जाती है। डाकृर ग्राहम साहबका विचार है कि इस कौतूहलका कारण है पेटका खूब भरा होना। खाते खाते जब उसका पेट तथा थैली इतने भर जाते हैं कि उनमें शेष कोई चीज़ आ नहीं सकती। तब कहीं वह खानेसे हटती है। परिणाम यह होता है कि उस बड़पेटूकी तरह जो ठसाठस खाये चला जाता है यहां तक कि उसका पेट फटने लगता है मक्खीकी भी थैली इतनी तन जाती है कि उसको दुख होने लगता है। थैलीके तनावको कुछ कम करनेके लिए और इस व्यथासे बचनेके लिए वह थैलीमें रखे हुए भोजनके कुछ भागको बाहर निकाल देती है। उस समय उसकी गति विचित्र होती है। पेटमें तो आता नहीं और लालच उसे आज्ञा नहीं देता कि उस निकाले हुए भोजनांशको त्याग दे। इसलिए वह बैठी हुई उसे उगला और निगला करती है। यदि इस समय उसको उड़ा दिया जाय तो वह जल्दीसे उसे निगल कर उड़ जाती है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि निगल नहीं पाती तब मजबूरन छोड़ जाती है। यह उगलन कभी कभी तो वहीं पर सूख जाती है और कभी दूसरी मक्खीको मिल जाती है तो वह उसे चूस जाती है।

यदि किसी कमरेके किवाड़ोंके शीशोंको देखा जाय तो मक्खीके गू तथा उगलनके निशान उस पर सहजमें ही मिल जायंगे और शीशे पर होनेके कारण दीख भी खूब पड़ेंगे। गूके निशान पीले पीले अथवा काले काले होंगे और उनका पहचान लेना कठिन न होगा क्योंकि अलगनियों पंखों, लम्पोंकी डोरियों इत्यादि लटकती हुई चीज़ों पर उसी तरहके गूके निशान बहुत होते हैं और वह सब ही ने देखे होते हैं। हां उगलनके निशानोंकी पहिचान कठिन होती है। उनमें दो प्रकारके निशान मिलते हैं एक वह जिनको मक्खी फिर निगल गई होती है इनका आकार गोल सा होता है परन्तु बीचमें से शीशा दिखाई देता रहता है—मानो शीशे पर किसी चीजसे एक घेरा खींच दिया गया होता है। दूसरे वह जिन परसे उगलनको मक्खी उठा नहीं पाती है; उनके आकार भिन्न भिन्न रूपके होते हैं और ऐसा मालूम होता है कि किसी चीज का पेंटिंग किया होता है। पहला निशान मक्खीकी थूथनीका होता है और दूसरा उगलनके शीशे पर सूख जानेसे बनता है।

यदि रोग प्रसारके विचारको थोड़ी देरके लिए अलग भी कर दिया जाय तो भी यह स्पष्ट ही है कि मक्खीका यह कौतूहल भी बहुत घृणास्पद है। विष्टा खाकर आये और दूध अथवा किसी अन्य खाद्य अथवा पेय पदार्थ पर बैठ कर वमन करे। कैसे बुरा काम है। उसका तो हुआ खेल और हम लोगोंके खाने पीनेकी चीज़ोंमें मिला दी गयी विष्टा। यह ही उदाहरण देकर एक डाकृर साहबने एक सैनाके सैनिकोंको इस बातपर राजी किया था कि मक्खियां मारने दें। मक्खियोंके कम करनेके जो भी उपाय किये जाते थे सिपाही उनका विरोध करते थे। तब उक्त डाकृर साहबने उनको समझाया कि मक्खियोंको न मारना स्वयम् अपनी विष्टा आप खाना है। यह बात यथार्थमें ठीक ही है। ( House-fly—by Dr. Howard ).

मक्खीके पर मज़बूत होते हैं और वह उनपर सारे दिन ही उड़ती फिरा करती है; परन्तु यह कहना कठिन है कि साधारणतया मक्खी कितनी दूर तक उड़ कर जा सकती है। अनुमान यह है कि मक्खी बहुत ही कम अपने घरको छोड़कर कहीं जाती है और वह भी केवल जब कि उसे

खाने पीनेको न मिले, क्योंकि प्राणी मात्रका स्वभाव यह ही है कि जहां रहने खाने पीनेका आराम मिलता है उस स्थानको छोड़कर वह अन्यत्र कहीं और नहीं जाते। उनकी तरह मक्खी-की भी यह ही आदत है कि वह उस समय तक अपना घर नहीं छोड़ती जब तक मजबूर न हो जाय। हां आवश्यकता पड़ने पर मक्खी एक दो मील सहजमें ही जा सकती है। इस बातके जांचने-के लिए कि मक्खी कितनी दूर तक उड़ सकती है बहुतसे प्रयोग जन्तु-विज्ञान वेत्ताओं ने किये हैं। इन प्रयोगोंमें मक्खियोंको पकड़ कर उनके ऊपर लाल काले सफेद चिन्ह बना दिये जाते हैं, जिससे वह सहज में ही पहचानी जा सकती हैं। और फिर उनको बस्तीसे दूर ले जाकर छोड़ दिया जाता है। एक प्रयोगमें तो नौका द्वारा दरया पर ले जाकर छोड़ा गया था। उन सब प्रयोगोंका सारांश यह ही है कि मक्खी मील डेढ़ मील तक उटकर जा सकती है। सम्भव है कि इससे दूर भी चली जा सकती हो परन्तु बहुत करके ऐसी अवस्थामें वह हवाके झोंके अथवा आंधीमें उड़ जाती हैं; उस समय नहीं रुक सकतीं।

यह बात स्वयम् मेरे अनुभवमें भी आई है कि मक्खी मील डेढ़ मील सहज ही चली जाती है। एक मरतबा मैं कटरेसे शिवकोटी जा रहा था कटरेसे जैसे ही मैं निकला मैंने अपनी जांघपर आठ दस मक्खियोंको बैठा पाया। मैंने उनको उड़ा दिया; परन्तु वह फिर आ बैठीं। कई मरतबा उड़ा देने पर भी वह न टलीं; क्योंकि मक्खियोंकी यह आदत होती है कि यदि वह कहीं किसी जगह बैठी हों और उनको वहांसे उड़ाया जाय तो वह उड़ाने पर उड़ जायँगी पर वहांसे टलेंगी नहीं; इधरसे उधर जा बैठेंगी; उधरसे इधर उड़ आयेंगी और उड़ानेमें जहां ज़रा चूक हुई वह झट ही फिर उस जगह आन मौजूद होंगी। अस्तु मेरे साथ भी उन आठ दस मक्खियों ने यह ही हाल किया। जब मैंने देखा कि वह उड़ायेसे नहीं जातीं तो मैंने इस विचारसे कि देखूँ यह कितनी दूर तक एक सांस उड़ कर जा सकती हैं फिर उन्हें बैठने नहीं दिया—बराबर रुमाल हिला हिला उन्हें उड़ाता रहा। वह भी ऐसी ढीट निकलीं कि लगातार एक सांस उड़ती हुई मेरे साथ साथ बराबर शिवकोटी तक चली ही गईं। कटरेसे शिवकोटी कितनी दूर है पाठक इसका अनदाजा स्वयम् आप लगा सकते हैं। मेरी समझमें तो डेढ़ मीलसे कम न होगी।

यद्यपि यह कोई प्रयोग नहीं है और इस अनु-भवको अनुभव कहना भी शायद उचित नहीं है; क्योंकि इसमें बहुत सी त्रुटियां हैं; परन्तु जन्तु विज्ञान वेत्ताओंके मतिके अनुसार होनेके कारण मुझे भी इस बातके लिख देनेका साहस हुआ है। परन्तु इस लेखके लिखते लिखते अभी (April 1923) का Tropical Disease Bulletin जो मैंने देखा तो उससे ज्ञात हुआ कि डा० बिशप और लाके साहब ने यह निश्चय कर दिखाया है कि घरेलू मक्खी १३ मील तक उट कर जा सकती है। और यदि उन्हें पकड़ कर ले जाया जाय तो छोड़े जाने पर वह तुरन्त ही इस बातकी कोशिश नहीं करतीं कि जहां भी जगह मिले बैठ जायं वरन् स्वेच्छानुसार उड़ती उड़ती दूर दूर निकल जाती हैं।

उक्त डाकूर साहबोंके इस निश्चयसे मक्खियोंके उड़नेकी शक्तिके विचारोंमें बहुत बड़ी उलट फेर हो जाती है, क्योंकि अब तक तो यह खयाल था कि मील डेढ़ मील तक ही मक्खी उड़ कर जा सकती है; इससे अधिक नहीं जा सकती और यदि जाती भी है तो आंधी अथवा तेज हवामें उड़ जाती है अर्थात् हवा उसको बहा ले जाती है। हवाके विरुद्ध नहीं जा सकती।

परन्तु व्यवहारिक दृष्टिमें इस निश्चयका फल कुछ भी नहीं है; क्योंकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है मक्खी घरोंमें रहना पसन्द करती है और अपने घरको छोड़ कर अन्यत्र कम जाती है। और यदि जाती है तो अपने परों पर उड़कर नहीं किसी

दूसरे जानवर पर सवार होकर। और वह जानवर जिससे वह बहुधा सवारी लेती है मनुष्य है अर्थात् बहुत करके मक्खी एक जगह से दूसरी जगह आदमीके ऊपर चढ़ कर अथवा चढ़ी चढ़ी चली जाती है।

मक्खियां घूरेमें पैदा होती हैं, और वहीं पलती भी हैं। उसी घूरेमेंसे मलयुक्त पदार्थ खाती और वहीं रहती है और Major Patton I. M. S. के मतानुसार वहां से अंडे रखनेके बाद ही कहीं को जाती हैं, वह भी स्वयम् नहीं मेहतरों द्वारा अर्थात् जब भंगी मैला डालने वहां आते हैं तो उनकी पीठ डलिया अथवा गाड़ी पर सवार होकर उनके साथ साथ बस्तीमें चली आती हैं। उक्त मेजर साहबका कथन है कि स्वयम् उनकी पीठ पर बैठ बैठ कर न जाने कितनी मक्खियां कम्पमें आई होंगी।

मक्खियां जितना परिश्रम करती हैं उतना ही सोती भी हैं। सायंकालसे बसेरा लेती हैं तो रात भर दम नहीं मारतीं; सुबह ही उठती हैं। और जाड़ोंमें तो सूर्य्योदय ही नहीं धूप निकल आने तक सोया करती हैं। वास्तवमें वह सोती नहीं होती; सर्दीके मारे ठिठर जाती हैं और यदि प्रातःकाल उसे उड़ाया जाय तो उड़ नहीं पातीं—वैसे ही गिर पड़ती है। जब धूप निकल आती है धूपकी गर्मीसे उसका ठिठरना दूर होता है तब कहीं हाथ पैर खुलते हैं और वह उड़ने लायक होती है।

सोनेके लिए मक्खीको किसी विशेष प्रबन्धकी जरुरत नहीं है। दीवारपर, कपड़ोंपर, खिड़कियोंपर, किवाड़ोंपर हर जगह सो जाती हैं। परन्तु लटकती हुई रस्सीमें, अलगनी, लम्पों तथा पंखोंकी डोरियां और इसी तरहकी दूसरी लटकती चीज़ें उसे बहुत पसन्द हैं और इन्हींपर वह बसेरा लेती है। यही कारण है कि संझाके समय कीलें अलगनी इत्यादि मक्खियोंसे काले हुए रहते हैं।

यद्यपि मक्खी इन लटकती हुइ डोरियोंपर बसेरा लेना पसन्द करती है तोभी वह सर्दीसे बचनेके लिए इनको भी तिलांजली दे देती है और संझा होते ही घरोंमें घुस बैठती है। मैंने स्वयम् अपने घरमें देखा है कि शामको जहां लम्प जले कि मक्खियां कमरोंमें आन आन कर बसेरा लेने लगीं। गरमियोंमें कमरोंकी अपेक्षा बरामदोंमें सोती हैं; परन्तु बाहर ओसमें कभी नहीं सोतीं।

मक्खियोंको अंधेरा भी पसन्द नहीं है, वह अंधेरे स्थानमें कभी नहीं जायँगी। कमरोंमें रोशनी हुई और वह आन मौजूद हुई। अंधेरा कर दीजिये वह भाग जायँगी। हाँ यदि रोशनी होगी और कुछ भोजन सामग्री भी मौजूद होगी तो वह रातको सोना भी भूल जायंगी। मैंने अपने घरमें रातको दस दस बजे तक रोशनीमें मक्खियोंको बिचरते देखा है। डा० हावर्ड साहब कहते हैं कि रोशनीमें मक्खी तहखानोंमें ज़मीनके नीचे भी जानेसे न डरेगी। केमब्रजमें भोजन भवन (पाकशाला) ज़मीनके नीचे तहखानोंमें हैं। वहाँ आगकी गर्मी खूब रहती है; इस कारण जनवरीकी सर्दीमें भी मक्खी वहां प्रवेश करती हैं और मुदित मन घूमा करती हैं।

मक्खीको सर्दी बहुत सताती है और शरद ऋतु आते आते बहुत सी मक्खी मर जाती हैं। यही कारण है जो शरद ऋतुमें मक्खी इतनी कम हो जाती हैं; क्योंकि बहुत सी तो मर जाती हैं और जा बच रहती हैं वह दिवारोंके छिद्रों, किताबों आलमारियों तसबीरों इत्यादिके पीछे फिरा करती हैं और शरद ऋतु भर इसी तरह दुबकी दुबकाई बैठी रहती हैं। जहां गर्मी आई कि फिर बाहर निकल आती हैं।

परन्तु यह दशा शरद देशोंकी ही है। भारत जैसे गर्म देशमें तो मक्खियां बारहों मास मौज करती हैं। इलाहाबादमें मक्खियां जाड़ोंमें कम ज़रूर हो जाती हैं पर जो रहती है वह इतनी ज्यादह होती हैं कि कोई विशेषता कभी मालूम नहीं होती। जाड़ोंमें मक्खियां दिन भर धूप खाती फिरा करती हैं और उनका हाल उन ही लोगोंको मालूम होता है जो धूप खानेके लिए बाहर लेटते हैं। रातको आदमियोंके साथ साथ मक्खियां गर्म गर्म मकानोंमें

जहां रात भर रोशनी रहती है जाकर आराम करती हैं।

सं० १६१० में जब मैं नैनीमें था तो वहां जाड़ों में मक्खियोंकी इतनी अधिकता थी कि गर्मियोंमें क्या होगी। खाना और सोना मुश्किल था, उस समय मैंने उनके मारनेकी यही सहज तर्कीब निकाली थी कि प्रातःकाल जब वह जाड़ेमें ठिठरी पड़ी होती थीं अलगनी छींके कपड़े सब झाड़ डालता था। मक्खियां झड़ झड़कर सब ज़मीन पर गिर पड़ती थीं। कुछ उनमेंसे उड़ जाती थीं, कुछ रेंगकर भाग जाती थीं। शेषपर मट्टीका तेल डाल दियासलाई दिखा दी जाती थी। परन्तु इससे कोई विशेष कमी मक्खियोंमें न होती थी। इसीलिए मेरा विचार तो यह है कि संयुक्त प्रान्तके इलाहाबाद ज़िले जैसे गर्म हिस्सेमें मक्खियोंके लिए जाड़ेमें जीवित रहना ज़रा भी मुश्किल नहीं है। बरसातमें मक्खियां बहुत होती हैं, जाड़ोंमें कुछ कमी ज़रूर रहती है।

---

## सूर्यसिद्धान्त

[ गताङ्कसे सम्मिलित ]

दक्षिणोत्तरतोऽप्येवं पातो राहुः स्वरंहसा।
विक्षिपत्येष विक्षेपं चन्द्रादीनामपक्रमात् ॥ ६ ॥
उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्यपरार्द्धगः।
ग्रहं प्राग्भगणार्द्धस्थो याम्यायामपकर्षति ॥ ७ ॥

अनुवाद—(६) चन्द्रमा आदि ग्रहोंको इनके उत्तर पात या राहु क्रान्तिवृत्तसे विक्षेपके समान उत्तर या दक्षिण भी अपने वेगसे हटा देते हैं। (७) जब उत्तर पात ग्रहसे पच्छिम परन्तु ६ राशि या १८०° से कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्ति वृत्तसे उत्तर हटा देता है और जब वह ग्रहसे पूरब परन्तु ६ राशिसे कम दूरी पर रहता है तब उसको क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण हटा देता है।

विज्ञान भाष्य—इन दोनों श्लोकोंका साधारण अर्थ यह है कि ग्रह और उसके पातके स्थानोंको देखकर समझना चाहिये कि ग्रह ठीक क्रान्तिवृत्तपर है अथवा उससे कुछ उत्तर या दक्खिन हटा हुआ है। यदि ग्रह और पात दोनों एक ही जगह हों तो समझना चाहिये कि ग्रह क्रान्तिवृत्त पर है। यदि ग्रह पातसे आगे अर्थात् पूरब हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्तसे उत्तर हटा हुआ होगा और यदि ग्रह पातसे पीछे अर्थात् पच्छिम हो परन्तु १८०° से अधिक दूर न हो तो वह क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण हटा हुआ होगा। इसका कारण राहुका आकर्षण या अपकर्षण नहीं है; वरन् यह है कि किसी ग्रहकी कक्षा क्रान्तिवृत्तके समतलमें नहीं है; इसलिए ग्रह सदैव क्रान्तिवृत्तपर नहीं रहता। ग्रहकी कक्षा और क्रान्तिवृत्त जिन दो विन्दुओं पर मिलते हुए जान पड़ते हैं उन्हींको पात कहते हैं। जब ग्रह अपनी कक्षामें इन दो विन्दुओं पर रहता है तब क्रान्तिवृत्त पर देख पड़ता है अन्यथा क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्खिन ऊपर कहे हुए के अनुसार होता है। क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्खिन ग्रहकी जो दूरी होती है उसीको विक्षेप कहते हैं। यह उस वृत्तपर होता है जो क्रान्तिवृत्तसे समकोण बनाता हुआ कदम्ब (क्रान्तिवृत्तीय ध्रुव) से होकर जाता है।

बुधभार्गवयोः शीघ्रात्तद्वत्पातो यदा स्थितः।
तच्छीघ्राकर्षणात्तौ तु विक्षेप्येते यथोक्तवत् ॥ ८ ॥

अनुवाद—(८) बुध और शुक्रके पात जब इनके शीघ्रोच्चोंसे उपर्युक्त (६, ७ श्लोकोंमें लिखे हुए) नियमके अनुसार होते हैं तब शीघ्रोच्चोंमें आकर्षण करके ग्रहोंको क्रान्तिवृत्तसे उत्तर या दक्खिन उसी प्रकार हटा देते हैं।

विज्ञान भाष्य—६, ७ श्लोकोंमें जो नियम बतलाया गया है वह केवल सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, गुरु और शनिके लिए लागू है। बुध और शुक्र दो ग्रहोंके स्थान जाननेके लिए यह देखना चाहिये कि इनके शीघ्रोच्च पातोंसे किधर और कितनी दूर है। यदि शीघ्रोच्च पातसे पूरब परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्तसे उत्तर होगा और

पच्छिम; परन्तु १८०° से कम दूर हो तो ग्रह क्रान्तिवृत्तसे दक्षिण होगा।

महत्वान्मण्डलस्यार्कः स्वल्पमेवापकृष्यते।
मण्डलाल्पतया चन्द्रस्ततो बह्वपकृष्यते ॥ ९ ॥
भौमादयो ऽल्पमूर्तित्वाच्छीघ्रमन्दोच्चसंज्ञकैः।
दैवतैरपकृष्यन्ते सुदूरमतिवेगिताः ॥ १० ॥
अतो धनर्णं सुमहत्तेषां गतिवशाद्भवेत्।
आकृष्यमाणास्तैरेवं व्योम्नि यान्त्यनिलाहताः ॥ ११ ॥

अनुवाद—(९) सूर्यका मण्डल बहुत बड़ा है इसलिए वह अपने उच्च द्वारा बहुत कम खिंचता है। चन्द्रमाका मण्डल छोटा है इसलिए यह बहुत खिंचता है। (१०) मंगल आदि ग्रहोंके मण्डल बहुत छोटे हैं इसलिए इनके शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवता इनको बहुत दूर तक बड़े वेगसे खींच ले जाते हैं। (११) इसलिए इनमें धन और ऋण संस्कार इनकी गतिके कारण बहुत करना पड़ता है। इस प्रकार यह ग्रह अपने शीघ्रोच्च मन्दोच्च देवताओंसे खिंचे हुए और प्रवह वायुका धक्का खाते हुए आकाशमें चलते हैं।

विज्ञान भाष्य—हमारे आचार्यों ने यह देखा कि सूर्यकी अपेक्षा चन्द्रमा अपने मध्यम स्थानसे पूरब या पच्छिम अधिक रहता है और मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि इत्यादि तो अपने मध्यम स्थानसे कहीं अधिक पूरब या पच्छिम देख पड़ते हैं; इसलिए उन्होंने इन ग्रहोंके मण्डलोंको चन्द्रमासे भी छोटा समझा जैसा कि यह प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, और यह निश्चय किया कि इनके मण्डल बहुत छोटे हैं; इसीलिए इनमें शीघ्रोच्चों और मन्दोच्चोंके आकर्षणका प्रभाव बहुत पड़ता है।

परन्तु ग्रहोंके मध्यम स्थानसे कुछ पूरब या पच्छिम देख पड़नेके यथार्थ कारण हैं ग्रहोंकी कक्षाओंके आकार। ग्रहोंकी कक्षाएं दीर्घवृत्तके

| ग्रहों के नाम | विषुवद्वृत्तीय ‡ अर्द्धव्यास | | | मात्रा (mass) जब कि पृथ्वी का १ माना जाय | मध्यम घनत्व जब पानी का १ माना जाय | गुरुत्वाकर्षण पृष्ठपर जब कि पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण १ माना जाय |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | कोणात्मक † | मीलोंमें | जब कि पृथ्वी का १ माना जाय | | | |
| सूर्य | १६′१″·१८ | ४,३२,८६० | १०९·२ | ३,२९,३९० | १·४० | २७·६१ |
| बुध | ३″·३४ | १,५०४ | ०·३८० | ०·०५५? | ५·५६? | ०·३८ |
| शुक्र | ८″·४० | ३,७८३ | ०·९५५ | ०·८०७ | ५·१४ | ०·८९ |
| पृथ्वी | ८″·८० | ३,९६३ | १·००० | १·००० | ५·५६ | १·०० |
| मंगल | ४″·६८ | २,१०८ | ०·५३२ | ०·१०६ | ३·९२ | ०·३८ |
| गुरु | १′३७″·३६ | ४३,८५० | ११·०६ | ३१४·५० | १·३७ | २·५७ |
| शनि | १′२४″·७५ | ३८,१७० | ९·६३ | ९४·०७ | ०·६४ | १·०१ |
| वरुण * uranus | ३४″·२८ | १५,४४० | ३·९० | १४·४० | १·३५ | ०·९५ |
| इन्द्र * Neptune | ३६″·५६ | १६,४७० | ४·१५ | १६·७२ | १·२९ | ०·९७ |

† कोणात्मक अर्द्धव्यास ग्रहके बिम्बार्धका कोणात्मक मान है जब कि द्रष्टा ग्रह से उतनी दूरी पर हो जो सूर्य से पृथ्वी की मध्यम दूरी है। * यह नामकरण केतकरकी ज्योतिर्गणित के अनुसार है। ? जिस संख्या के सामने यह चिन्ह है उसका ठीक ठीक निश्चय अभी तक नहीं हो सका है। ‡ ग्रहोंके आकार भी पूर्ण गोल नहीं है उनमें भी ध्रुवों पर कुछ चपटापन है जैसी हमारी पृथ्वी है इसलिए उनमें भी विषुवद्वृत्त होते हैं।

आकारकी हैं जिनकी च्युति (eccentricity) के परिमाण एकसे नहीं हैं; इसीलिए मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें मुख्यतः अन्तर पड़ता है, ग्रहोंके मण्डलोंके आकारके कारण नहीं। इनके आकारोंका ज्ञान पिछले पृष्ठकी सारिणीसे स्पष्ट होगा जो राबर्ट बालकी स्फेरिकल एस्ट्रानोमी पृष्ठ ४६२ से ली गयी है। चन्द्रमाका अर्द्धव्यास १०७६ मील है।

वक्रानुवक्रा कुटिला मन्दा मन्दतरा समा।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा ग्रहाणामष्टधा गतिः ॥ १२ ॥
तत्रातिशीघ्रा शीघ्राख्या मन्दा मन्दतरा समा।
ऋज्वीति पञ्चधाज्ञेया या वक्रा सानुवक्रगा ॥ १३ ॥

अनुवाद—( १२ ) वक्र, अनुवक्र, कुटिल, मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्रतर और शीघ्र नामक आठ प्रकारकी गतियां ग्रहोंमें होती हैं। ( १३ ) इनमेंसे अतिशीघ्र, शीघ्र, मन्द, मन्दतर और सम गतियां सीधी होती हैं अर्थात् जब ग्रहमें यह गतियां होती हैं तब वह राशि-चक्रमें पच्छिमसे पूरबको जाता हुआ देख पड़ता है और वक्रके साथ जो अनुवक्र और कुटिल गतियां हैं वह वक्र गति कहलाती हैं क्योंकि जब ग्रहमें ऐसी गतियां होती हैं तब वह राशि-चक्रमें पूरबसे पच्छिमको उलटा जाता हुआ देख पड़ता है। जब ग्रहमें सीधी गतियां होती हैं तब वह मार्गी और जब वक्र गतियां होती हैं तब वक्री कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—यह भिन्न भिन्न गतियां ग्रहमें कैसे हो जाती हैं इसका कारण हमारे सिद्धान्तोंमें कहीं नहीं बतलाया गया है; क्योंकि जब तक पृथ्वी अचल समझी जायगी तब तक इसका कारण अच्छी तरह नहीं समझाया जा सकता। हां यदि पृथ्वीको भी अन्य ग्रहोंकी भांति सूर्यकी परिक्रमा करती हुई मान लिया जाय जो कई प्रयोगोंसे सिद्ध भी हो गया है तो यह सहज ही समझा जा सकता है कि किसी ग्रहमें यह आठ गतियां कैसे देख पड़ती हैं; यद्यपि यथार्थमें ग्रह निरंतर पच्छिमसे पूरबको जाता हुआ सूर्यकी परिक्रमा कर रहा है। इस सम्बन्धमें मैंने विज्ञान भाग १३ पृष्ठ २६४-२६६ पर विस्तार लिखा है।

तत्तद्गति वशान्नित्यं यथा दृकतुल्यतां ग्रहाः।
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटीकरणमादरात् ॥ १४॥

अनुवाद—(१४) इन इन गतियोंके वश होकर ग्रह जिस प्रकार दृकतुल्यताको प्राप्त होते हैं अर्थात् वेधके स्थानमें पहुँचकर प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं वही स्पष्ट करनेके (उसीको गणितसे जाननेके) नियम आदरके साथ कहता हूँ।

विज्ञान भाष्य—यह श्लोक बड़े महत्वका है। इससे सिद्ध होता है कि हमारे पुराने आचार्य ग्रहोंके स्पष्ट स्थान इसीलिए निकालते थे जिससे गणित और प्रत्यक्ष वेधमें कोई अंतर न पड़े। इसके लिए स्पष्टाधिकारमें सूक्ष्मसे सूक्ष्म नियम बनाये गये। परन्तु जैसा कि मध्यमाधिकारके ६वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें मैं बतला चुका हूं कि चाहे यंत्र स्थूल हों चाहे सूक्ष्म, इनसे वेध करनेमें कुछ न कुछ प्रयोगात्मक अशुद्धि ( Experimental error) रह ही जाती है इसलिए काल पाकर कुछ भेद पड़ जाता है, जिससे समय समय पर संशोधन करना पड़ता है। इसीको 'बीज' संस्कार कहते हैं। उदाहरणके लिए मान लीजिये कि कोई घड़ी प्रति दिन एक सेकंड मंद होती हो तो ६० दिनमें वह १ मिनट और १ वर्षमें ५ मिनट पीछे हो जायगी। परन्तु व्यवहारमें यही कहा जायगा कि घड़ी बहुत शुद्ध है; क्योंकि ६० दिनमें १ मिनटका अंतर या प्रतिदिन एक सेकंडका अंतर नहींके समान है। यदि यह अंतर सदैव होता जाय और घड़ीमें संशोधन न किया जाय तो कई वर्षोंमें इतना अंतर पड़ जायगा कि उसको भी नहीं के समान समझना असम्भव होगा और संशोधन करना ही पड़ेगा। जैसे घड़ीमें प्रति दिन १ सेकंडका अंतर कुछ कालमें बड़ा भारी रूप धारण कर सकता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहोंके भगण कालोंमें १ पलका भी अंतर सैकड़ों वर्षोंमें बहुत बड़ा हो जाता है। इसीलिए बीज संस्कार करना पड़ता है। बीच बीचमें संशोधन करनेकी

प्रथा हमारे प्राचीन आचार्योंको मान्य थी, जिनके अवतरण मैं नीचे दूंगा; परन्तु कुछ दिनोंसे इस विषय पर मतभेद हो गया है। एक पक्ष कहता है कि आर्ष ग्रन्थों पर किसी प्रकारकी टीका टिप्पणी करनेका अथवा संशोधन करनेका अधिकार नहीं है, उनमें जो कुछ है उसको वैसा ही मानना चाहिये। दूसरा पक्ष कहता है कि संशोधन करना सर्वथा उचित है। नीचे दोनों पक्षोंके तर्क मुझे जहां तक मिले हैं दिये जाते हैं:—

प्रयाग निवासी पंडित इन्द्रनारायण द्विवेदी ज्योतिष भूषण, इसी श्लोकके अनुवादके साथ साथ यह टिप्पणी देते हैं—

"यहां अनेक लोग "दृक्तुल्यतां" से दृश्यगणनाका अर्थ लगाते हैं; किन्तु यह उनका भ्रम है। पूर्वापरके देखनेसे स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि दृक्तुल्यतांका अर्थ यहां जिस गणनाका वर्णन करते हैं उसके अनुसार अदृश्य दृष्टिसे अपने स्पष्ट किये हुए स्थान पर दिखाई देना है अन्यथा इस गणनाके अनुसार कभी भी दृश्य ग्रह सिद्ध नहीं हो सकते थे क्योंकि जितने संस्कार दृश्य ग्रहोंके लिए आज निकाले गये हैं ये ही सदा होने चाहिये थे यह गोल विद्याके जानने वालोंको ज्ञात ही है"*

इस अवतरणका भावार्थ कदाचित यह है कि ग्रहोंका स्पष्ट स्थान निकालनेके लिए जो नियम इस ग्रन्थमें बतलाये गये हैं उनके अनुसार ग्रहोंका स्थान वही नहीं निकलता जो प्रत्यक्ष वेधसे देखा जाता है। इसलिए दृक्तुल्यताका अर्थ प्रत्यक्ष वेध नहीं है वरन् वह अदृश्य वेध है जिसे ऋषियों ने अपने योगबलके द्वारा जाना था।

इस पक्षके ज्योतिषाचार्य पं० गिरिजाप्रसाद जी द्विवेदी जो आजकल लखनऊके नवलकिशोर विद्यालयके प्रधानाध्यापक हैं अपने सिद्धान्त शिरोमणि गोलाध्यायके 'प्रभा भाषा भाष्य'† पृष्ठ ६,७ में बहुत स्पष्ट शब्दोंमें यों लिखते हैं:—

"...दृष्टादृष्टभेदेन गणितस्य द्वैविध्यं तावच्चतुरस्रम्। तत्र 'अदृष्टफलसिद्धयर्थं यथार्कार्युक्तितः कुरु। गणितं यदि दृष्टार्थं तद्दृष्युद्भवतः सदा' ॥ तथा 'अदृष्टफल सिद्धयर्थं निर्बीजार्कोक्तमेवहि ।' इति तत्वविवेकीय कमलाकरोक्त्या महर्षि दर्शित यथानुसारिण एव स्फुटाः खेटाः फलादेशायोपयुज्यन्ते नतु सांप्रतिकोपलब्ध संस्कार संस्कृताः। निर्बीजार्कोक्तमित्युक्त्या तन्निरासात्। फलविषयेऽनार्षगणिताङ्गीकारे बहुत्र श्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानसमयादिषु विप्लवः संजायते। तस्माद्धर्माभिमानिभिः सुधीभिः सकलं परीक्ष्य निष्कण्टकः पन्था अनुसरणीयः। तत्तत्संस्कारोत्पन्नाः खेटास्तु केवलं ग्रहणोदयास्तादि दृष्टगणितएवोपयुज्यन्ते। दृष्टगणिताभिमानिनोऽदृष्टगणितोन्मूल नाय बहुधा विवदन्ते। परमुभयो. स्वीकारेणैव निर्वाहो नत्वन्य तरस्याङ्गीकारेणेत्यन्यत्र विस्तरः।

"दृष्ट और अदृष्टके भेदसे गणित दो प्रकारका है। दृष्ट जो आंखोंसे देखा जाय, जैसे ग्रहण, उदयास्त, युति और शृङ्गोन्नति आदि। और अदृष्ट जो देखनेमें न आवे, जैसे तिथि योग आदि। ग्रहण आदिके देखनेसे ही उसका फल होता है। और व्रत उपवास आदि का फल बिना देखे ही होता है। फलका आदेश केवल ऋषियोंके अनुभव सिद्ध वाक्योंसे होता है। जो कुछ ग्रहोंकी स्थितिके अनुसार फल लिखा उपलब्ध होगा, मनुष्य वही जान सकेगा। इस फलकी कल्पना ऋषियोंके सिवा कोई नहीं कर और जान सकता।

"आर्ष ग्रन्थोंमें जो ग्रह स्पष्ट बनानेकी रीति है उसी रीतिसे स्पष्ट किये ग्रह फलादेशमें उपयुक्त हैं। क्योंकि उन्हीं स्पष्ट ग्रहोंके आधार पर श्रौत और स्मार्त कर्मोंके समय बंटे हैं। इसीलिए उसी गणितसे जो तिथि आदि सिद्ध हों उन्हीं से धर्म व्यवस्था और उसका आचरण करना उचित है।

"सांप्रतमें युरोपके विद्वानोंने सूक्ष्म यन्त्र द्वारा बहुतसे नवीन संस्कार निश्चित किये हैं और उनका ग्रहोंमें उपयोग लाकर सूक्ष्म-स्पष्ट ग्रह सिद्ध करते हैं। इस स्पष्ट विधिको लेकर अंग्रेजी गणित विद्या विशारद आजकल कई एक पञ्चाङ्गोंमें ग्रह स्पष्ट सिद्ध करके उनसे तिथि आदिका साधन करते हैं और उसीके अनुसार

*प्रयागके हिन्दी साहित्य सम्मेलनसे प्रकाशित सूर्य सिद्धान्त पृष्ठ ३५।

†लखनऊके नवलकिशोर प्रेसमें १९११ ई० में प्रकाशित।

**धर्म व्यवस्था करते हैं। परन्तु यह सर्वथा अनुचित** और धर्ममें बाधा डालना है। क्योंकि आर्षगणितके अनुसार जब एकादशी आदिका उपवास आदि सिद्ध होगा उस कालमें इस नवीन सूक्ष्म गणितसे उसका सिद्ध होना असम्भव होगा। इस प्रकार ऋषियोंके बचनमें बाधा डालनेसे धर्मका विप्लव होगा। ऋषियोंके वाक्य उन्हींकी रीतिपर चलनेसे घट सकेंगे। इससे स्पष्ट है कि **धर्म व्यवस्थाके लिए ऋषि प्रोक्त गणितका ही आश्रय उचित है।**

"नवीन वेध सिद्ध संस्कारोंको ही प्राचीन ग्रन्थोंमें 'बीज' नामसे लिखा है। और वेधसे प्राचीनोंने इसका साधन भी किया है। परन्तु इस **बीजको** ग्रहणादि दृष्टगणितके ठीक समय ज्ञानके लिए उपयुक्त किया है। **अदृष्ट गणितमें, आजकलकी तरह नहीं घुसेड़ा।** इसलिए आजकलके युरोपके नये संस्कार केवल दृष्टगणितमें उपयुक्त हैं। उसमें इसका उपयोग लेनेसे कोई बाधा नहीं है। क्योंकि इसकी व्यवस्था ही इसी प्रकारसे आचार्योंने की है।

जैसा:—'अदृष्ट फल सिद्ध्यर्थं निर्वीजार्कोक्तमेवहि।
गणितं यद्धि दृष्टार्थं तद्दृष्ट्युद्भवतः सदा॥'

अर्थात् अदृष्ट गणितके लिए केवल निर्वीज, सूर्योक्त, सूर्यसिद्धान्तके गणितका आश्रय करना चाहिये और दृष्ट गणितके लिए जिससे ठीक आकाश और गणितका संवाद हो उसीसे सदा गणित करना चाहिये।

"इस प्रकार निष्पक्षपात और धर्मबुद्धिसे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक विचारशील पुरुषों को, दृष्ट और अदृष्ट गणित उक्त नियमोंके अनुसार मानना चाहिये। **केवल दृष्टमात्रको ही चार्वाकोंकी तरह सर्वत्र मानना महा अनुचित और सत्यका अपलाप करना है।"**

**इस लम्बे अवतरणमें प्रमाणके लिए संस्कृतका जो श्लोक दिया हुआ है वह आचार्य कमलाकरके सिद्धान्त तत्वविवेकका है जो शक १५८० तथा विक्रमीय १७१५ में लिखा गया था। इस ग्रन्थमें आचार्य कमलाकरजी ने सूर्य सिद्धान्तका कहीं कहीं अनुचित पक्ष किया है। जिसका प्रमाण म० म० सुधाकर द्विवेदीके शब्दोंमें यह है:—**

"अत्र यावच्छक्यं सूर्यसिद्धान्तमत मण्डनं भास्करमुनीश्वरादीनां खंडनं च कृतं ग्रन्थ कृता। बहुत्र परदूषणाभिलाषेणान्यथैव भास्कर कृतोदयान्तर कर्म्मादि खण्डनमस्य गोले गणिते चाद्वितीय पण्डितस्यानेककल्पनाकुशलस्य न शोभते।"*

**इस पक्षमें और भी कोई प्राचीन मत है या नहीं इसका मुझे ज्ञान नहीं। यदि कोई महानुभाव बतलानेकी कृपा करेंगे तो मैं बड़ा अनुगृहीत हूंगा और धन्यवाद पूर्वक स्वीकार करूँगा। इस विषय पर यह भी जाननेकी अभिलाषा है कि आचार्य कमलाकरजीके इस नियमको कि 'निर्वीजार्कोक्त' ग्रह स्पष्ट ही धर्मके कामोंमें व्यवहार करना चाहिये किसी ने स्वीकार भी किया है या नहीं क्योंकि इनके पहलेसे ही सैकड़ों वर्षोंसे मकरंद सारिणी और ग्रहलाघव इत्यादि ज्योतिषके करण ग्रन्थ ही पंचांगादि बनानेके लिए व्यवहारमें आते हैं; जिनमें 'बीज संस्कार' किया गया है। इसके कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते हैं:—**

(१) "ज्योतिषके करण ग्रन्थ कई हैं; परन्तु पठन-पाठनमें जितना ग्रहलाघवका प्रचार है उतना औरोंका नहीं। उसके आधार पर कई देशोंमें पञ्चाङ्ग बनते हैं और उनके अनुसार सब लोग बेखटके श्रौत स्मार्त कर्म करते हैं। यह सौर पक्षीय करण ग्रन्थ है। यद्यपि इसमें ग्रन्थकर्ता ने आर्य पक्ष और ब्रह्मपक्षका भी किसी अंशमें आश्रयण किया है। इस समय ही नहीं बहुत प्रचीन कालसे सौरपक्षका ही प्राधान्य चला आता है। आर्य ब्रह्मपक्षका गणित तो आचार्य वराहमिहिर (शक ४२७) के समयमें ही गड़बड़ हो चुका था। कहीं कहीं ब्रह्मपक्षीय पंचांग भी प्रचलित हैं। जैसे जोधपुरका चंड नामक ज्योतिषीका चलाया 'चंडू' पंचांग परन्तु वह अनार्षमूलक होनेसे मान्य नहीं है।"†

**मकरंद सारिणीमें बीज संस्कारके विषयमें यह अवतरण प्रमाण है।**

(२) "...कलिगतस्य सहस्रांशो १००० शादि ५।४२।४६ शनि बीज धनं॥ एतत्र्यंशे १। ३५। १५ सहितं जातं

---

* गणक तरंगिणी पृष्ठ ६८

† उल्लिखित पं० गिरिजाप्रसाद द्विवेदी द्वारा १९८० वि० के कार्तिककी 'माधुरी' पृष्ठ ५०५ में लिखा गया।

बुधोच्च धनं ६।१७।१ शनिबीज त्र्यंशेन रहितं जातं ३।८।११ ऋणंगुरोः शनिबीजं शुक्रोच्च ऋणं ४। ४२। ४६ बीज संस्कृतं बुधोच्चं..."*

प्रसिद्ध ज्योतिषी शंकर बालकृष्ण दीक्षित अपने मराठी भारतीय ज्योतिः शास्त्र पृष्ठ १८४ तथा २५७ में लिखते हैं :—

(३) "मकरंदग्रंथांत सूर्यसिद्धान्तोक्त ग्रहादिकांस बीज-संस्कार आहे"...;"मकरंदकारानें सूर्यसिद्धांतास बीजसंस्कार दिला आहे, त्या विषयीं पूर्वी लिहिलेंच आहे"

इन अवतरणोंसे सिद्ध है कि सैकड़ों वर्षोंसे मकरंद-सारिणी अथवा ग्रहलाघवके अनुसार जितने पंचांग बनते हैं सबमें बीज संस्कारके अनुसार संशोधन रहता है। इसलिए कमलाकर जीकी उक्ति व्यवहारमें कभी नहीं मानी गयी, ऐसा मेरा विचार है।

कमलाकर जी ने आचार्य वशिष्टके इस श्लोक-को "इत्थं माण्डव्य संक्षेपादुक्तं शास्त्रमयोदितं। विस्रस्ती रविचन्द्राद्यैर्भविष्यति युगे युगे" के 'विस्रस्ती' पदको 'विस्तृती' कहकर श्लोकका अर्थ कुछ और कर दिया है परन्तु यह सर्वथा अवैज्ञानिक, भ्रमजनक तथा प्राचीन वैज्ञानिक पद्धतिके विरुद्ध है और केवल अपने पक्षको पुष्ट करनेके लिए लिखा गया है।

अब मैं दूसरे पक्षके समर्थनमें जो कुछ प्रायः डेढ़ हजार वर्षोंसे कहा गया है वह लिख रहा हूं, जिससे सिद्ध होगा कि हमारे प्राचीन ज्योतिषी ज्योतिषके आर्ष ग्रन्थोंको किस दृष्टिसे देखते रहे हैं और इनको समय समय पर संशोधन करनेके पक्षमें कौन कौन सी युक्तियां लिख गये हैं।

जिस समय सूर्यांश पुरुष मयासुरको सूर्य-सिद्धान्तका उपदेश देने लगे उस समय कहा था,

"शास्त्रमाद्यं तदेवेदं यत्पूर्वं प्राह भास्करः।
युगानां परिवर्तेन कालभेदोत्र केवलं ॥

यह मध्यमाधिकारका ९वां श्लोक है; जिसकी व्याख्या की जा चुकी है।

फिर जब ऋषियोंने मयासुरसे ज्योतिषका उपदेश ग्रहण किया था तब पहले मयासुरने जो कुछ सूर्यांश पुरुषसे सीखा था वह सब कह कर अपने बीजोपनयनाध्यायका उपदेश २१ श्लोकोंमें दिया जिसका कारण यह बतलाया था,

"चक्रानुपातजोमध्यो मध्यष्टतांशजः स्फुटः।
कालेन दृक्समो न स्यात् ततो बीजक्रियोच्यते ॥५॥
बीजं निःशेष सिद्धान्त रहस्यं परमं स्फुटं।
यात्रापाणिग्रहादीनां कार्याणाम् शुभसिद्धिदम् ॥२१॥"

अर्थात् काल पाकर दृक्तुल्यता नहीं होती है इसलिए बीज क्रियाकी रीति बतलायी जाती है। बीज क्रियासे संस्कृत स्फुट ग्रहोंसे ही यात्रा विवाह तथा अन्य शुभ काम फलदायक होते हैं।

परन्तु खेद है कि पहले पक्षके पंडित इस अध्यायको क्षेपक मानते हैं। मेरी समझमें तो यह बात आती है कि सूर्यांश पुरुषने जो कुछ कहा था उसके अनुसार यह अवश्य क्षेपक है। क्योंकि यह मयासुरका बीज संस्कार है न कि सूर्यांश पुरुषका। परंतु यदि यह मान लिया जाय कि मयासुरने ऋषियोंसे जैसा कहा था वैसा ही ऋषियोंका पाया हुआ सूर्यसिद्धान्त इस समय प्रचलित है तब इसको क्षेपक माननेकी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। बात भी यथार्थमें यही है कि प्रचलित सूर्य सिद्धान्त वही है जिसका उपदेश मयासुरने ऋषियोंको दिया था। इसमें बीजोपनयनाध्याय अंतमें इसलिए कहा जिसमें यह स्पष्ट रहे कि मयासुरको सूर्यांश पुरुषसे क्या उपदेश मिला था और मयासुरने स्वयं अपने अनुभव-से क्या बढ़ाया था।

दृक्तुल्यताके सम्बन्धमें ब्रह्मगुप्त जी शक ५५०, संवत ६८५ वि०, में लिखते हैं:—

"प्रतिदिवस विसंवादाद् ग्रहतिथि करणार्चं दिवसमासानाम्।
ग्रहणग्रहयोगादिषु पादंपादेन कः स्पृशति ॥ ५७ ॥

* मकरंद सारिणी पृष्ठ ३६, बंबईकी छपी।

तन्त्रभ्रंशे प्रतिदिनमेवं विज्ञाय धीमता यत्नः।
कार्यस्तस्मिन् यस्मिन् दृग्गणितैक्यं सदा भवति ॥ ६० ॥"

इन दोनों श्लोकोंके तिलकमें म० म० सुधाकर द्विवेदीजी लिखते हैं:—

"ग्रह-तिथि-करण-ऋक्ष-दिवस मासानां तथा ग्रहण-ग्रह योगादिषु च प्रतिदिवस विसंवादात् प्रत्यहं दृग्विरोधात् पादं करणाधमं कः पादेनापि स्पृशति अर्थात्तथाऽङ्घ्रेषु अधोवर्तित्वात् पादोऽधमस्तथा दृग्गणितयोरसाम्यात् पादमधमं यत् करणं तत् पादेनापि स्पर्शानर्हं 'प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनं वरम्'-इतिन्यायात्"

"तन्त्रभ्रंशे सति तदीयतन्त्रगणनया दृग्विरोधे सति एवं पूर्वोक्तं प्रतिदिनं स्पष्टीकरणार्थं वेधादिनाविज्ञाय तस्मिन् तन्त्रे बीजादिना तथा यत्नः कार्यो यथा दृग्गणितैक्यं भवति। एवं यस्मिन् तन्त्रे सदा दृग्गणितैक्यं भवति तदेव तन्त्रमादरणीय-मिति।"*

ऊपरके अवतरणमें ग्रह, युति इत्यादिके साथ साथ तिथि, करण, ऋक्ष (नक्षत्र) शब्द भी आये हैं; जिससे प्रकट है कि जिसको पंडित गिरिजाप्रसाद जीने अदृष्ट कहा है उसके लिए भी दृग्गणितैक्यका विधान है और बीज संस्कार करनेकी आवश्यकता बतलायी गयी है। इसलिए दृकतुल्यताके लिए संस्कार करना ब्रह्मगुप्तजी शास्त्र विरुद्ध या आर्ष वचनोंके विरुद्ध नहीं समझते थे। जिसको इन्होंने शास्त्र विरुद्ध समझा था उसका बड़े जोरोंसे खण्डन किया है।

प्रसिद्ध भास्कराचार्य जी शक १०७२ संवत् १२०७ वि० में लिखते हैं:—

"यात्रा विवाहोत्सवजातकादौ खेटैः स्फुटैरेव फलस्फुटत्वं। स्यात् प्रोच्यते तेन नभश्चराणां स्फुटक्रिया दृग्गणितैक्य कृद्या।"†

जिसका अर्थ यह है कि यात्रा विवाह उत्सव जातक इत्यादि कामोंके लिए ग्रह स्पष्ट करनेसे अधिक फल होता है और ग्रह स्पष्ट करनेकी रीति वही शुद्ध है जिससे दृग्गणितैक्य हो।

ऊपर इस बातका प्रमाण दिया गया है कि आज कल ग्रहलाघव कितना मान्य समझा जाता है। इसी ग्रहलाघवके कर्ता आचार्य गणेश दैवज्ञके पिता आचार्य केशवने प्राचीन ग्रन्थोंमें संशोधन करनेके पक्षमें शक १४१८ संवत् १५५३ वि० में ग्रहकौतुक नामक ग्रन्थमें यों लिखा है:—

"ब्राह्मार्यभट सौराद्येष्वपि ग्रहकरणेषु बुध शुक्रयोर्म-हदंतरं अंकतया दृश्यते। मंदे आकाशे नक्षत्र ग्रहयोगे उदयेऽस्ते च पंच भागा अधिकाः प्रत्यक्षमंतरं दृश्यते।......एवं क्षेपेष्वंतरं वर्ष भोगेष्वपि अंतरमस्ति। एवं बहुकाले बह्वंतरं भविष्यति। यतो ब्राह्माद्येष्वपि भगणानां सावनादीनां च बह्वंतरं दृश्यते एवं बहुकाले बह्वंतरं भवत्येव।......एवं बह्वंतरं भविष्येः सुगणकैः नक्षत्रयोग ग्रहयोगोदयास्ता-दिभि वर्तमान घटनामवलोक्य न्यूनाधिक भगणा-द्यैर्ग्रहगणितानि कार्याणि। यद्वा तत्काल क्षेपक वर्ष भोगान् प्रकल्प्य लघु करणानि कार्याणि।......एवं मया परम फल स्थाने चन्द्र ग्रहण तिथ्यंताद् विलोमवि-धिना मध्यश्चंद्रोज्ञातः तत्र फल ह्रास वृद्ध्यभावात्। केन्द्र गोलादि स्थाने ग्रहण तिथ्यंताद्विलोम विधिना चंद्रोपमा-कलितं। तत्र फलस्य परम ह्रास वृद्धित्वात्। तत्र चंद्रः सूर्यपक्षात्पंचकलोनो दृष्टः। उच्चं ब्रह्मपक्षाश्रितं। सूर्यः सर्वपक्षेपीषदंतरः स सौरो गृहीतः अन्ये ग्रहा नक्षत्र ग्रहयोगास्तोदयादिभिर्वर्तमानघटनामवलोक्य सा-धिताः। तत्रेदानीं भौमेज्यौ ब्राह्मपक्षाश्रितौ घटतः। ब्राह्मो बुधः। ब्रह्मार्यमध्य शुक्र। शनिः पक्षत्रयात्पंचभागाधिको दृष्टः। एवं वर्तमान घटनामवलोक्य लघुकर्मणा ग्रह गणितं कृतं।"*

इस लम्बे अवतरणसे यह अच्छी तरह स्पष्ट होता है कि वर्तमान आकाशीय घटनाओंको किस प्रकार वेध द्वारा देखकर सूर्य चन्द्रमा इत्यादि ग्रहोंके भगण-कालोंका संशोधन करना चाहिये। भविष्यके लिए भी ऐसा करनेको आदेश किया

* तन्त्रपरीक्षाध्याय पृष्ठ १७६-१७०, म० म० सुधाकर द्विवेदी द्वारा सम्पादित ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त।

† सिद्धान्त शिरोमणि गणिताध्याय पृष्ठ ५६।

* मराठी भारतीय ज्योतिःशास्त्र पृष्ठ १५६ में उद्धृत।

गया है। इस अवतरणमें सूर्यसिद्धान्तका भी स्पष्ट उल्लेख है। पिताके इन्हीं वेधों और बीजोंके आधारपर आचार्य गणेश दैवज्ञने ग्रहलाघव बनाया, जिसके मध्यमाधिकारके १६ वें श्लोकमें शक १४-४२ संवत् १५७७ वि० में लिखा है।

"सौरोर्कोऽपि विधूच्चमङ्क कलिकोनाब्जो गुरुस्त्वार्यजो, ऽसृग राहु च कजं ज्ञकेन्द्रकमथार्ये सेषुभागः शनिः। शौक्रं केन्द्रमजार्यमध्यगमितीमे यान्ति दृकतुल्यतां, सिद्धैस्तैरिह पर्व धर्म नय सत्कार्यादिकं त्वादिशेत् ॥" *

जिससे प्रकट है कि गणेशजी पर्व धर्म, उत्सव इत्यादि सभी शुभ काम दृग्गणितैक्यसे ही निश्चय करनेका आदेश करते हैं न कि 'निर्बीज' सूर्यसिद्धान्तसे।

इसकी टीकामें मल्लारिजी शक १५४७ संवत् १६८२ वि० में लिखते हैं, "···इति तेभ्यः पर्वेभ्यः साधिता इमे ग्रहाः दृशितुल्यतां दृग्गणितैक्यं यान्ति······इहास्मिन् ग्रन्थे सिद्धैस्तैर्ग्रहैः पर्व धर्म नयसत्कार्यादिकमादिशेत्। पर्व ग्रहणं धर्म्मो यज्ञानुष्ठानैकादशी व्रतादिकम्। नयो नीतिः। राजनीति दण्डनीत्यादिकः। सत्कार्यं शुभं कार्यं व्रतबन्ध विवाहादिकम्। एभ्यो ग्रन्थेभ्य एतदुत्पन्न तिथ्यादेरेवा दिशेत् अयं भावः। यतो यस्मिन यस्मिन काले यद्यद् दृग्गणितैक्यकृत्तदेवग्राह्यं घटमानत्वात।"†

फिर मल्लारिजी कहते हैं, "अहर्गणात्साधितो यो ग्रहः स मध्यमो यतो यन्त्रवेधेनाकाशे विलोक्यमाने तावान् ग्रहो न दृष्टः किञ्चिदंतरं दृष्टं प्रत्यहं गतेर्विसदृशत्वात्। एवं प्रत्यहं ग्रहान् गोलेन चक्रयन्त्रेण वा विद्ध्वा अहर्गणोत्पन्न मध्यम ग्रह वेवित स्पष्ट ग्रहयोरन्तराणि साधितानि।"*

मल्लारिजी एक जगह और लिखते हैं, "एवं ग्रह भगण भोग पर्यन्तं ग्रहगतीरानीय तासु मध्ये या परमाधिका गतिर्यचि परमाल्पा तयोर्योगार्धं मध्यगतिरेवाङ्गी कृता। सा दुःसाध्या सूक्ष्माणां विकला कोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्। सा स्थूला जाता सैवाङ्गीकृता। एवं कियत्यपि काले जाते वसिष्ठादिभिर्विलोक्यमाने गतेरन्तरं दृष्टम्। एवमन्यैरपि।················अस्मिन्काले एते दृग्गोचराः एवमग्रेऽपि भविष्यन्महागणैर्नलिकाबन्धादिना ग्रहवेधं कृत्वान्तराणि लक्षयित्वा ग्रहकरणानि कार्याणीत्यग्रे ग्रन्थ समाप्तावाचार्यै णाप्युक्तमस्ति।"*

इस अवतरणमें जिस तर्कसे मल्लारि जीने काम लिया है उसको सिद्ध करनेके लिए वराहमिहिर, वशिष्ट, सूर्यसिद्धान्त, ब्रह्मगुप्त सिद्धान्त सभीके अवतरण दिये हैं जो इस जगह छोड़ दिये गये हैं; क्योंकि इनको मैंने पहले ही दे दिये हैं। दृकतुल्यताके लिए वेध करके ही परीक्षा ली जा सकती है इसलिए गणित और वेधमें जब समता हो तभी नियम शुद्ध कहा जा सकता है। मल्लारि जी की यह बात १६ आने पावरत्ती ठीक है कि वेध द्वारा प्राप्त हुई संख्याओंमें कुछ न कुछ स्थूलता 'विकलाकोट्यंशादीनामलक्ष्यत्वात्' रह ही जाती है, जिसके लिए समय समयपर वर्तमान घटनोंको देखकर संशोधन करना चाहिये।

अनेक लम्बे अवतरणोंसे पाठक ऊब गये होंगे; इसलिए मैं आचार्य गणेश दैवज्ञकी पुस्तक बृहत्तिथि चिंतामणिसे अवतरण न दूंगा। यद्यपि इसमें संक्षेपमें ब्रह्माचार्य, वशिष्ठ, कश्यप, मयासुर, आर्यभट, दुर्गसिंह मिहिर, ब्रह्मगुप्त, केशव, इत्यादि सबके अवलोकनोंकी चर्चा करते हुए बतलाया गया है कि इनमें अंतर क्यों पड़ गया और उनको नये ग्रन्थके बनानेकी उस समय क्यों आवश्यकता पड़ी तथा जब आगे आवश्यकता पड़ेगी तब कैसे संशोधन करना चाहिये। फिर भी अन्तका १ श्लोक दिये बना रहा नहीं जाता जो यों है:—

* म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित ग्रहलाघव पृष्ठ ७०।

† वही ग्रहलाघव पृष्ठ ७०।

*वही ग्रहलाघव पृष्ठ ७२।

† वही ग्रहलाघव पृष्ठ ५४-५५।

"कथमपि यदिदं चेद्भूरिकाले श्लथं स्यात्,
मुहुरपि परिलक्ष्येन्दु ग्रहार्क्षयोगम् ।
सदमल गुरुतुल्यप्राप्त बुद्धि प्रकाशैः
कथित सदुपपत्त्या शुद्धिकेन्द्रे प्रचाल्ये ॥"*

इन अवतरणोंको पढ़कर कौन ऐसा होगा जो न मानेगा कि हमारे पुराने आचार्य वैज्ञानिक और युक्तियुक्त तर्कोंसे यह आवश्यकता दिखला गये हैं कि दृग्गणितैक्यके लिए समय समयपर सिद्धान्त ग्रन्थोंमें भी संशोधन करनेकी आवश्यकता है और इसी संशोधनके साथ तिथि, योग, करण, नक्षत्र इत्यादि जानकर सभी लौकिक काम करने चाहियें ? आजकलका कोई "अंग्रेज़ी गणित विद्या विशारद" भी अपने पक्षके समर्थनमें पुराने आचार्य जो कुछ कह गये हैं उससे अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं समझ सकता ।

राशिलिप्ताष्टमोभागः प्रथमं ज्यार्धमुच्यते ।
तत्तद्विभक्त लब्धोनमिश्रितं तद् द्वितीयकम् ॥१५॥
आद्येनैवं क्रमात् पिण्डान्भक्त्वा लब्धोनसंयुता ।
खण्डकाः स्युश्चतुर्विंशज् ज्यार्धपिण्डाः क्रमादमी॥१६॥

अनुवाद—( १५ ) एक राशिमें जितनी कलाएं होती हैं उसके आठवें भागको पहली 'ज्या' कहते हैं । इसको इसीसे भाग देकर लब्धिको इसीमें से घटाकर शेषको इसीमें (पहली ज्यामें) जोड़ देनेसे दूसरी ज्या निकल आती है । ( १६ ) इसी प्रकार आदिसे लेकर सब ज्याओंको पहली ज्यासे भाग देकर भागफलोंको जोड़कर, योगफलको पहली ज्यामेंसे घटाकर शेषको अन्तिम ज्यामें जोड़ दो तो जो योगफल मिलेगा वही अगली ज्या होगी । इस प्रकार क्रमसे २४ ज्याओंके पिंड होंगे ।

विज्ञान भाष्य—ज्या किसको कहते हैं और इसका मान रेखा गणितसे कैसे निकाला जाता है इसका विवेचन मध्यमाधिकारके ६० वें श्लोकके विज्ञान-भाष्यमें किया गया है। उस श्लोकके नीचे जो दूसरा चित्र दिया गया है उसको देखना चाहिये । ऊपर-१५ वें श्लोकमें 'ज्या' के स्थानमें 'ज्यार्ध' शब्दका प्रयोग हुआ है, इससे भ्रममें न पड़ना चाहिये । दोनोंके अर्थ समान माने गये हैं । 'ज्या' के लिए 'ज्यार्ध' इसलिए कहा गया है कि किसी कोण उ अ आ की 'ज्या' जाननेके लिए सबसे सरल रीति यह
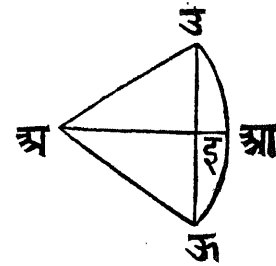
चित्र १८

है कि एक ऐसा वृत्तखंड (Sector) उ अ ऊ बनाओ जिसका केन्द्रीय कोण अ अभीष्ट कोणका दूना हो, फिर इस वृत्तखंडकी जीवा या ज्या उ ऊ खींच लो और उसका आधा कर दो । बस इसी जीवाका आधा ( ज्यार्ध ) उ इ अभीष्ट कोणकी ज्या है । इसी लिए ज्यार्ध और ज्या समानार्थवाची हैं । (चित्र १८)

* म० म० सुधाकर द्विवेदी सम्पादित गणकतरंगणी पृष्ठ ६३ ।

---

## नत्रजनके चमत्कार

[ ले०—श्री० गंगाप्रसाद, बी. एस-सी. ]

कर्बनकी नाईं नत्रजन भी अनेक यौगिक बनाती है । उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उन्हींके विषयमें एक बड़े भारी ग्रन्थकी रचना की जा सकती है । यह यौगिक हैं भी बड़े मारकेके । जीवोंके देहके अवयव, स्फोटक, रंग आदि अनेक जीवनसे संबन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें नत्रजनके यौगिकोंका स्थान बड़ा ऊंचा है । किन्तु इन सबकी चर्चा यहां पर करना असम्भव है । हम केवल दो चार सरल यौगिकोंका ही वर्णन करेंगे, जो हमको रोचक प्रतीत होते हैं । सभ्य संसारके

अम्ल विधायक नत्रजनके दो साधारण यौगिक हैं—जिनका नाम शोरेका तेजाब और अमोनिया है।

इन दोनों पदार्थोंसे हम बाल्यकालसे ही परिचित हैं; किन्तु अबतक हम इनके पूरे रहस्योंसे अपरचित थे। आजकल समस्त वैज्ञानिक संसार इन दोनों यौगिकोंका मनन कर रहा है। इन्हीं दोनोंसे सब स्फोटक प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूपसे बनाये जाते हैं। किसी जातिको इन दोनोंसे वनचित रखिये; फिर देखिये कि उसकी संग्राम शक्ति किस प्रकार कम होते होते अन्तमें लुप्त हो जाती है; क्योंकि जब गोला बारूद ही न रहेगी तो लड़ाई कैसे होगी। इसके अतिरिक्त उस जातिमें खाद्य सामग्रीके भी लाले पड़ने लगेंगे। प्रत्येक फसलके लिए अमोनियाके यौगिक अथवा नत्रेत धरतीमें खादके रूपमें देना परमावश्यक है। बिना खादके, और अच्छे खादके, खेती करना दुस्साहस करना है।

हम भी इन्हीं दो पदार्थों पर विचार करेंगे। इन दोनों में भी शोरेके तेजाबका व्यापारिक महत्व अधिक है। उसीको हम पहिले लेते हैं।

नत्रिकाम्ल या शोरेका तेजाब एक वर्णहीन द्रव है। शुद्ध अम्ल बड़ा भयानक पदार्थ है। कागज़, लकड़ी और चमड़ेको यह अत्यन्त शीघ्रता-से खा जाता है। बहुतसी धातुएं भी इसमें गल जाती हैं और उनके गलनेसे गेरुये रंगके जहरीले अबखरे निकलने लगते हैं। गाढ़ा अम्ल प्रकाशके प्रभावसे भी खराब हो जाता है। उसमेंसे ओषजन गैस निकलने लगती है। अतएव यदि शुद्ध निर्मल अम्लकी एक बोतल डाट लगाकर प्रकाशमय कमरेमें रख दें तो धीरे धीरे उसके अन्दर इतनी ओषजनके इकट्ठे हो जानेकी सम्भावना रहती है कि बोतल फट जाय और तेजाब इधर उधर सब चीज़ों पर जा गिरे। जब कभी ऐसा होता है तो लकड़ीके सामानमें आग लग जाती है और वह बड़े ज़ोरसे जलने लगता है। कई बार प्रयोगशालायें ऐसी घटनासे जल कर खाक हो चुकी हैं। इसी-लिए इस तेजाबको अंधेरे स्थानमें गहरे नीले रंगकी बोतलोंमें भर कर रखते हैं। बहुत दूर तक रेल द्वारा इस तेजाबकी बड़ी मिक़दार भेजनेमें बड़ी जोखिम रहती है। क्योंकि अगर किसी घटना-वश कांचके कंटर जिनमें यह भर कर भेजा जाता है टूट जाते हैं; तो गाड़ीमें आग जरूर ही लग जाती है। अतएव जब कभी इस तेजाबको दूसरी जगह भेजना होता है तो पहिले पानी मिला देते हैं और कंटरोंको काठके बक्सोंमें रखकर ऊपर नीचे आगे पीछे दायें बायेंसे राखसे ढक देते हैं। और तब तखते जड़ते है। राख कन्टरके फूटने पर तेजाबको सोख लेती है और आग लग जाने पर भी बुझानेमें सहायक होती है। इसका कारण यह है कि राखमें पोटाश कर्बनेत रहता है, जिसमें से और अम्ल पड़ते ही कर्बन द्विओषिद निकल पड़ती है, जो आग की शत्रु है।

पानी मिला देनेसे असुविधा होती थी। रंगके कारखानोंमें गाढ़ा तेजाब काम आता है। पानी मिला देनेसे तेजाब इस कामका नहीं रहता। इस-लिए अब यह तरकीब निकाली गई है कि शोरेके तेजाबमें सम भाग गन्धकाम्लका मिला देते हैं और लोहेके कन्टरोंमें भर कर पारसल कर देते हैं। लोहेके कन्टर न तो टूटते ही हैं। और न सच्चे सत्याग्रही होकर तेजाबमें गलते ही हैं।

एक बार जर्मनीके एक रंगके कारखानेमें एक बड़ी अद्भुत घटना हुई। एक बड़े भारी बर्तनमें गाढ़े गन्धकाम्ल और नत्रिकाम्लका मिश्रण खौल रहा था। एक मजदूर जो अपने को सम्हाल न सका उसमें गिर पड़ा। उसके आस पासमें कोई आदमी न था, अतएव बिचारेका करुणक्रन्दन किसीने भी न सुना और वह उसीमें गलकर गायब हो गया। बादमें जब उसकी तलाश हुई तो कुछ भी पता न चला। उसका गायब हो जाना एक ऐसा भेद था जिसके सुलझानेमें लोगोंकी अकल ही काम न करती थी। कुछ लोग कहते थे कि वह देश छोड़-कर भाग गया और अमेरिका चला गया। कुछ यह कहते थे कि अवश्य ही कुछ न कुछ दुर्घटना

हुई है। कारखानेके मैनेजरने कहा कि शायद वह तेजाबमें गिर गया है और कपड़े जूते टोपी समेत उसका गोश्त पोस्त और बाल सब उसीमें गल गये हैं। यह सुनकर उसकी स्त्रीने बीमा कम्पनीको लिखा कि उसके बीमे का रुपया दे दें। कम्पनीके अफसरोंने कहा कि हम रुपया अवश्य देदेंगे, किन्तु पहले यह बात सिद्ध कर दो कि वह सचमुच मर गया है।

निस्सहाय बिधवा इस बात पर बड़ी परेशान हुई; अपने पतिकी मृत्युका क्या प्रमाण दे सकती थी, उसने कारखानेके मैनेजरको सब बातें बतलायीं तो मैनेजरने उसे दम दिलासा देकर रवाना किया और स्वयम् इस प्रश्न पर विचार करने लगा। मैनेजर रसायन शास्त्री था, वह जानता था कि आदमीकी देहमें बहुत सा फास्फोरस होता है। यदि उक्त कुली अम्लोंमें गिरकर गल गया है तो अम्लोंकी परीक्षा करने पर फास्फोरस मिलेगा। उसने जांच कराई तो पता चला कि उस बर्तनके अम्लोंके मिश्रणमें इतना फास्फोरस था जितना कि एक पूरे आदमीकी देहमें होना चाहिये। कचहरीमें मरनेका यही प्रमाण दिया गया और विधवाको रुपया मिल गया। इस प्रकार प्रायोगिक रसायनने एक विधवाके साथ जो अन्याय होनेवाला था, उसे रोक दिया।

रासायनिक औषधोंमें नत्रिकाम्ल सबसे अधिक कामका है। गंधकके तेजाबके बाद शोरेके तेजाबका ही नम्बर है। इसलिए शोरेका तेजाब बनता भी बहुत है। अनुमान लगाया गया है कि हरसाल २८००००० मन अम्ल बनता है। यह तेजाब इतना होता है कि यदि ४० हाथ लम्बा और २० हाथ चौड़ा हौज़ बनावें और उसमें इसे डालें तो लगभग ७ हाथ भर जायगा। यूरोपियन महाभारतके समयमें तो इससे न जानें कितना अधिक अम्ल बनता था।

स्फोटकों और रंगोंके बनानेमें शोरेके तेजाबका प्रयोग अनिवार्य है। एनिलीन रंगोंका व्यवसाय तो एक घड़ी भी बिना शोराम्लके नहीं चल सकता। यही हाल स्फोटकोंके बनानेका है। हरएक स्फोटकके बनानेमें शोराम्ल किसी न किसी क्रियामें काम आता है।

डैनेमैट, कौरडैड, ब्लास्टिंग जिलेटीन* आदि स्फोटक नत्रो-ग्लिसरीनसे बनते हैं, जो स्वयम् शोरेके तेजाब और ग्लिसरीनसे बनाया जाता है।

इसी प्रकार पिकरिक अम्ल, (Picric acid) —जो लिडडैट, मलिनैट, आदि स्फोटकोंके बनानेमें काम आता है—और त्रिनत्रो-टोलूइन (tri-nitro-toluene)—जो गोलोंके फटनेमें काम देता है अर्थात् जिसके रहनेसे ही गोला तोपसे निकलनेके बाद लक्षपर जाकर फटता है—यह दोनों पदार्थ फीनोल (Phenol) और टोलूइन (Toluene)† पर शोराम्लकी क्रियासे बनाये जाते हैं। अमोनियम नत्रेतसे जो नत्रिकाम्ल और अमोनियासे बनता है, कई खानोंमें काम आनेवाले स्फोटक बनते हैं। अब ज़रा सोचिये कि यदि नत्रिकाम्लका बनना बन्द हो जाय तो स्फोटक कैसे बनेंगे और फिर युद्धमें क्या काम आयेंगे।

थोड़े दिन पहले तक नत्रिकाम्ल बनानेके लिए यूरोपमें चिलिदेशसे आया हुआ सोडियम नत्रेत और भारतमें यहांका ही पैदा हुआ शोरा काम आता था। शोरेमें सोडियमके स्थानपर पोटासियम रहता है, उनमें केवल इतना ही भेद है।

युद्ध कालमें यूरोप और इंगलैण्डके हरानेका सहज उपाय यही था कि चिलिसे शोरेकी आमदनी रोक दी जाय। इंगलैण्डकी तो अब भी वही दशा है; परन्तु जर्मनीको अब नत्रिकाम्ल और नत्रेत वायु देवताकी उपासनासे प्राप्त हो जाते हैं। विद्युत् भट्ठा रूपी यज्ञकी अग्नि प्रज्वलित करनेके बाद वायुका प्रवेश कराया जाता है तब घर स्वरूप नत्रिकाम्ल

---

* Dynamite, Cordite, blasting gelatine यह सब स्फोटकोंके नाम हैं।

† यह दोनों पदार्थ कोलटारमें रहते हैं।

मिलता है। वायुमण्डलमें नत्रजनका अनन्त भण्डार है। प्रत्येक वर्गगज़ पर—एक गज़ लम्बे और एक गज़ चौड़े स्थानपर—लगभग १६६ मन नत्रजन रहती है; पर यह होती "स्वतंत्रावस्था"में है; रासायनिक कामोंके लिए इसे "बांधना" पड़ता है; तभी यह हमारे काम आ सकती है। इसका पूरा विवरण अन्यत्र दिया जायगा।

( असमाप्त )

---

## तेल

( गताङ्क से आगे )

तेलका रंग उड़ानेके निमित्त कुछ नियम पहिले दिये जा चुके हैं। यहां पर कुछ और सुगम नियम दिये जायंगे। तेल शोधनमें धूप और पोटासियम परमैंगनेटका प्रयोग तो पिछले लेखोंमें दिया जा चुका है यहां केवल इतना ही उल्लेख कर देना आवश्यक है कि इनके प्रयोगसे तेलका रंग तो तुरन्त उड़ जाता है पर साथ ही साथ स्वाद पर भी प्रभाव पड़ता है। यही दोष पहले दी हुई विधियोंमें से प्रत्येक विधिसे बनाये हुये तेलमें पाया जाता है; अतः इस दोषको मिटानेके लिए निम्नलिखित नियम दिये जाते हैं।

१. तेलमें पानी और गोंद मिला कर तपानेके बाद ठण्डा होने पर उसमें ईथर या पेट्रोलियम स्पिरिट डाल कर हिलानेसे तेल इसमें मिल जाता है; फिर छान कर भभके द्वारा ईथर निकाल लिया जाता है और शुद्ध बिना रंगका तेल तहमें बैठ जाता है। टपकाया हुआ ईथर फिर काममें लाया जा सकता है।

२. अगर किसी प्रकारके तेलमें उचित प्रमाणकी शोरस अम्ल गैस Nitrous acid gas डाली जाय तो तेल बहुत जल्द शुद्ध हो जाता है; उसका रंग तो उड़ ही जाता है; स्वादमें भी बिलकुल अन्तर नहीं पड़ता।

तेलका रंग उड़ानेका मुख्य अभिप्राय यह है कि किसी न किसी उपायसे तेलको रंगनेवाले पदार्थ अम्लजनके द्वारा दूर कर दिये जायँ। ऐसा करनेके लिए उपरोक्त क्रियाओंके अतिरिक्त कभी कभी ऐसा भी होता है कि तेल गन्धस अम्ल अथवा सोडा हैपोसल्फाइट और कोई अम्ल (गंधकाम्ल अथवा लवणाम्ल) का मिश्रण डालनेसे तुरन्त बिना रंगका हो जाता है। पर यह याद रखना चाहिये कि अगर किसी भी प्रयोगमें तेल जल जाय तो फिर आसानीसे शुद्ध नहीं हो सकता।

रंग उड़ानेके पहिले यह निश्चय कर ले कि अमुक तेलका रंग कितना उड़ाना है और उसे किस काममें लाना है, उसीके अनुसार मसाले डाले। यह सदैव प्रयोग द्वारा तै करना पड़ेगा कि किस तेलके लिए किस विधिको काममें लावें। अगर साबुनके लिए किसी तेलको शुद्ध करना हो तो इस बात पर विशेष ध्यान दे कि रंग उड़ाने वाला मसाला अधिक न हो; नहीं तो साबुन निहायत बदरंग हो जायगा।

साबुन बनानेवाले बहुधा नारियलका तेल अथवा टैलो चर्बीको काममें लाते हैं। इन दोनों पदार्थोंको ८२°-९३° शतांश तकके ताप प्रमाण पर रख कर हवा पम्प करनेसे बड़ी ही सुगमतासे रंग उड़ जाता है। चर्बीका रंग उड़ानेकी एक और विधि है। उसमें खटिक हरिद ( Chloride of lime) या पोटासियम हरिद् (Potassuim chloride) डाल कर खौलाया जाय। चर्बी तुरन्त बे-रंग हो जाती है। परन्तु इन दोनों क्रियाओंमें थोड़ासा अम्ल भी पड़ा हो और अगर पोटासियम हरितका प्रयोग हो तो वह ०·१ % से अधिक न हो (यानी प्रत्येक १००० मन तेलके लिए १ मन हरित हो )।

प्रयोगसे सिद्ध हुआ है कि नारियलका तेल केवल गर्म करनेसे ही बिना रंगका हो जाता है इसके लिए तेलको कुछ घंटों तक लगभग १२७°श की आंच देनी चाहिये। अगर ऐसा न हो सके तो तेलको एक बन्द बर्तनमें रख कर आग दी जाय।

इस अवस्थामें २४०°श तक तापक्रम बढ़ानेमें भी कोई हर्ज नहीं। इस दूसरी क्रियामें तेलमेंसे एक प्रकारकी बदबू निकलती है। इसी कारण बन्द बर्तनकी आवश्यकता है। उस बर्तनमें कुछ ऐसा भी प्रबन्ध होना चाहिये; जिससे उस बदबूदार गैसको ठंडा करके द्रव बना लिया जाय।

नारियलका तेल शोधनेकी दूसरी क्रिया—इसका नाम "वाट प्रोसेस" है। इसमें तेल बड़ी ही सरलतासे बिना रंगका हो जाता है। विधि इस प्रकार है—१०० मन तेलमें १ मन पोटासियम क्रोमेटका गाढ़ा घोल बना कर जब तेलमें ४९° से ५४°श तककी गर्मी हो थोड़ा थोड़ा डाला जाय जब। सब घोल तेलमें पड़ जाय तो उसमें इतना उज्जहरिक अम्ल डाला जाय कि जिससे क्रोमेटका क्रोम टूट कर हरिद बन जाय। अम्लकी ठीक ठीक तादाद इस कारण यहां नहीं दी जा सकती कि यह उस अम्ल पर निर्भर है जो काम में लाया जाय।

इस समीकरणके अनुसार प्रत्येक २९५ मन क्रोमेटके लिए इतने घोलकी आवश्यकता पड़ती है कि जितनेमें ५११ सेर शुद्ध अम्ल हो यानी क्रोमेट और अम्लका अनुपात २९५:५११ का है। अगर अम्ल कुछ अधिक हो जाय तो कोई हानि नहीं; क्योंकि इससे तेलमें खराबी कुछ नहीं हो सकती। क्रिया समाप्त होने पर गर्म पानीसे तेल दो या तीन बार धो डालना चाहिये। इस प्रकार बना हुआ तेल साबुनके लिए बहुत ही अच्छा होता है।

कालिकाप्रसाद वर्मा, बी० एस-सी०, एल० टी०

---

# सूर्य्यका छठा मण्डल

आज हम यहाँ पाठकोंको सूर्य्यके छठे मण्डलके विषयमें कुछ बातें बतलावेंगे। यह मण्डल पूर्ण सूर्य्य ग्रहणके समय दिखलाई पड़ता है। सूर्य्यके आलोकसे यह प्रत्येक समय अदृश्य रहता है। जब चन्द्रमा धीरे धीरे आकर सूर्य्यको ढककर काला कर देता है, उसी समय यह छठा मण्डल दीख पड़ता है।

ज्योतिषी लोग इसको छठे मण्डलके (corona) के नामसे पुकारते हैं। किन्तु इसकी गम्भीरता वर्ण मण्डलकी तरह दस हज़ार या बीस हज़ार मील नहीं है। सूर्य्यके बाहर लाखों मील तक यह विद्यमान है। सन् १८७८ ई० में सूर्य्य ग्रहणके समय यह सूर्य्यसे एक करोड़ मीलकी दूरी पर देखा गया था। बीचमें चाँदसे ढका काला सूर्य्य उसके बाद रंगीन वर्ण मंडल और अंतमें यह छठा मंडल, सूर्य्य ग्रहणके समय देखने योग्य होता है। जिन्होंने देखा है उन लोगोंने मोहित हो कर उसका विवरण भी लिख डाला है।

किन किन चीज़ोंके जलने से सूर्य्यके छठे मण्डलने जन्म ग्रहण किया है, इस विषय पर बहुत अनुसन्धान हो चुका है। बड़े बड़े ज्योतिषियोंने सूर्य्य ग्रहणके समय दो ही चार मिनटमें परीक्षा करके अपना मत स्थिर किया है। जिन वस्तुओंको कि हम जानते हैं उनमेंसे उज्जनको उन्होंने देखा है। इसके अतिरिक्त और भी गैस ज्योतिषियोंने देखी हैं। किन्तु वह सारी गैसें हमारी पृथ्वीपर नहीं होतीं। इसलिए उनके विषय में कुछ कहना यहाँ ठीक नहीं है।

क्या कारण है कि बड़े बड़े ज्योतिषी इतना व्यय एवं कष्ट स्वीकार करके बड़ी दूरसे सूर्य्य ग्रहण देखने आते थे। इस प्रकारकी घटना भी घट चुकी है कि बिना समुद्रके बीचमें, वर्फिस्तानमें या मरुदेशमें गये पूर्ण सूर्य्य ग्रहण न दिखलाई पड़ेगा। इसलिए ज्योतिषियोंने बीच समुद्रमें लंगड़ डाल कर सूर्य्य ग्रहण देखा है। सन् १८६८ ई० में भारतवर्षमें एक पूर्ण ग्रास सूर्य्य ग्रहण हुआ था। उस समय यूरोपसे भारतवर्षमें आनेके लिए अबकी तरह सुविधा नहीं थी। ज्योतिषियोंने इस असुविधाको स्वीकार नहीं किया; बल्कि कितने ही ज्योतिषी अमेरिका और यूरोपसे सूर्य ग्रहण देखने-

के लिए भारतवर्षमें आये। सुप्रसिद्ध फ्रांसीसी ज्योतिषी जानसन साहब भी इस दलमें थे। उन्होंने सूर्य्य ग्रहणके समय कई चित्र भी लिये थे। उसी समय से हम आकाश सम्बन्धी बहुत सी नई बातें जानने लगे हैं। अभी बहुत सी बात नहीं मालूम हुई हैं, किन्तु बिना पूर्ण सूर्य्यग्रहणके शायद यह बातें न मालूम हो सकें।

हम यहां पर पाठकोंके सामने फ्रांसीसी ज्योतिषी जानसन साहबके विषयकी एक किम्बदन्ती उद्धृत करते हैं।

सन् १८७० ई० में फ्रांसीसियों और जर्मनवालोंमें एक घोर युद्ध हुआ था। बड़ी लड़ाईके बाद जर्मनवालोंने फ्रांसकी राजधानी पेरिसको घेर लिया। शहरके चारों ओर जर्मन सेना पड़ी थी। शहरका न तो कोई आदमी भीतरसे बाहर आने पाता था और न बाहरका आदमी भीतर जाने पाता था। कोई बाहरी आदमी भीतरवालोंके लिए खाना पीना भी नहीं लेजाने पाता था। दुर्भाग्यवश उसी समय जानसन साहब भी पेरिसमें थे। वह बेचारे भी शहरके भीतर पड़े रहे।

कुछ भी हो उस समय यह सुनाई पड़ा कि एक पूर्ण सूर्य्यग्रहण होनेवाला है। उस ग्रहणको देखनेके लिए जानसन साहब बड़े उत्सुक हुये। उन्होंने सूर्य्यग्रहणके विषयमें कोई नई बात जाननी चाही। ज्यों ज्यों सूर्य्यग्रहणका दिन पास आने लगा, त्यों त्यों जानसन साहब घबराने लगे। किन्तु वह जर्मन सिपाहियोंके हाथसे बचकर बाहर कैसे निकल सकते थे। जानसन साहब बड़े दुखी हुये। वह ग्रहणके दो दिन पूर्व ऐसे उद्विग्न हुये कि किसी प्रकार यहाँसे निकल जायँ तो अच्छा है। उन्होंने यह स्थिर कर लिया कि यहाँसे निकलकर शत्रुओंके हाथसे मरजाना ठीक है किन्तु यहाँ रहना ठीक नहीं।

उसी समय जानसन साहबने सोचा कि उनके पास एक टूटा पुराना वायुयान है। उसी रात्रिको वह अपने वायुयानपर चढ़कर चुपचाप पेरिस शहरके बाहर आगये। यदि जर्मन सैनिक जानसन साहबकी इस करतूतकी ज़रा भी आहट पाते तो वह उन्हें बीचहीमें यमपुरी पहुँचा देते। ज्ञान लाभके लिए जानसनके मनमें जैसी व्याकुलता हुई थी, मृत्युकी आशंका भी उसे दमन न कर सकी।

—ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'।

---

## क्लासकी पढ़ाई

पढ़ाईके काममें आज दिन अनेक परिवर्त्तन हो रहे हैं। ऐसी कोई बात नहीं छूटी है जिसपर विचार न हो रहा हो। स्कूलमें विद्यार्थी कई वर्गमें बटे रहते हैं। यह श्रेणियां विद्यार्थियोंकी योग्यताके अनुसार बनती हैं। प्रश्न यह उपस्थित है कि प्रत्येक विद्यार्थीको व्यक्तिगत योग्यताके विचारसे अलग अलग पढ़ाना अच्छा है अथवा लगभग बराबर योग्यताके विद्यार्थियोंका समूह बनाके अर्थात् क्लास रूपमें पढ़ाना अच्छा है।

इस विषयमें अच्छाईसे दो तात्पर्य हो सकते हैं—(१) व्यक्तिकी उन्नति, (२) प्रबन्धकी सुविधा। आधुनिक विचार प्रवाह यही जान पड़ता है कि विद्यार्थीकी दृष्टिसे समूह रूपकी पढ़ाई बन्द होनी चाहिये। इसका यह अर्थ नहीं है कि विद्यार्थियोंको एक साथ बैठाके कोई भी विषय न पढ़ाया जाय। कुछ विषय ऐसे हैं जिनके पढ़ानेके लिए विद्यार्थियोंके हृदयमें भिन्न भिन्न भावोंको उत्पन्न करना अनिवार्य है; जैसे साहित्य, चित्रकारी, धर्म, इतिहास इत्यादि, इन विषयोंके लिए कभी कभी यह आवश्यक होगा कि लगभग समान योग्यताके विद्यार्थियोंको एकत्र करके व्याख्यान द्वारा पढ़ाया जावे।

वर्गीय पढ़ाईकी त्रुटियोंको हटानेके लिए कुछ अध्यापक एक क्लासका कई प्रकारसे विभाग करते हैं। कुछ लोग बढ़िया घटिया विद्यार्थीके जोड़े बनाते हैं। कुछ ऐसोंके जोड़े बनाते हैं जो एक दूसरेकी समान सहायता करके सहयोग बुद्धिसे

काम करें और कुछ अध्यापक परीक्षामें सफल अथवा निष्फल होनेकी सम्भावनाकी दृष्टिसे एक क्लासको (१) निश्चय सफल (२) सन्दिग्ध (३) निश्चय निष्फल नामक विभागोंमें बांटते हैं। इनमें-से प्रथम प्रबन्ध इस कारणसे ठीक नहीं है कि घटिया विद्यार्थी घटिया रह जाता है। और तीसरा प्रबन्ध इसलिए त्याज्य है कि इसमें शनैः शनैः परीक्षा निकट होने पर निश्चय निष्फल वर्ग पर ध्यान देना बन्द कर दिया जाता है। केवल दूसरा प्रबन्ध श्रेष्ठ समझा जाता है। इसके विषयमें भी पाठकोंको यदि डाल्टन विधिका ध्यान हो तो याद रखना चाहिये कि आधुनिक तम विचारके अनुसार प्रत्येक विद्यार्थीको व्यक्ति गत स्वयम् अध्ययन करनेका अवसर दिया जाना चाहिये। अध्यापक महोदय केवल मार्ग दिखाने तथा मार्गमें कांटे आने पर उन्हें हटानेमें सहायता करके काम करें।

अब प्रबन्धकी सुविधा पर विचार कीजिये। इस दृष्टिसे कुछ लोगोंका विचार है कि क्लास-नियममें व्यय कम होगा। जो लोग ऐसा कहते हैं वह यह समझते हैं कि यदि क्लास-नियम टूट जावेगा तो प्रत्येक विद्यार्थीके लिए एक अध्यापककी आवश्यकता होगी। यह भूल है, नवीन प्रथाके अनुसार क्लास-नियमके तोड़नेमें व्यय कम होना चाहिये। एक विषयके एकसे अधिक अध्यापककी आवश्यकता साधारणतया न होनी चाहिये।

अतएव स्मरण रखिये कि अब प्रत्येक दृष्टिसे देशकी उन्नतिके लिए यही श्रेष्ठ समझा जाता है कि प्रचलित क्लास प्रथा तोड़ी जाय और प्रत्येक विद्यार्थीको स्वयम् अपनी इच्छानुसार जिस समय जो विषय पढ़नेकी रुचि हो पढ़नेका अवसर दिया जाय।

—विश्वेश्वर प्रसाद।

---

# काम और क्रोध

भगवान कृष्णसे गीतामें अर्जुनने प्रश्न किया है।

> अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः॥
> अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः॥

जब यह आदमी पाप नहीं भी करना चाहता तब भी यह ऐसे पाप करता है जैसे किसीने ज़बरदस्ती इससे पाप कराया हो; हे कृष्ण कहो इस पुरुषको पाप करनेके लिए कौन प्रेरित करता है।

इस पर भगवान् कृष्ण उत्तर देते हैं। हे अर्जुन

> काम एष क्रोध एष रजोगुण समुद्भवः॥
> महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

यह काम और क्रोध ही हैं जो रजोगुणसे उत्पन्न होते हैं; यही पुरुषको पापके लिए प्रेरणा करते हैं। इन दोनोंमें से प्रत्येक व्यसन क्या काम और क्या क्रोध हर एक 'महाशन' है अर्थात् अपने पूर्ण कर लेनेमें पुरुषका सर्वस्व खा जाता है। लोभ, काम या इन्द्रिय भोगकी तृष्णामें फंसकर पुरुष अपना कुल, शील, धन, तथा बन्धु जनों तकको बलिकर देता है, इसी प्रकार क्रोधमें आकर अपने प्राणतक दे देता है। इसी कारणसे दोनों बड़े पापी हैं। इनमें फंसकर पुरुष किसी पाप करनेसे नहीं हिचकता। क्रोधमें आकर पुरुष अपने पिता माता बालक और यहां तक कि अपनी भी हत्या कर डालता है। इसी प्रकार कामके वश होकर मातृ गमन तकके महापाप कर सकता है; यह दोनों ही पुरुषके बड़े भारी दुश्मन हैं। इनमें भी काम ही सबसे प्रबल है। यही पुरुषका सदाका जानी दुश्मन है। वह ज्ञानी पुरुषके ज्ञानको भी ढक देता है। कामका पेट कभी नहीं भरता। यह काम (इच्छा, अभिलाषा—लोभ) इन्द्रिय, बुद्धि और मनमें अपना आवास बनाये रहता है। वहां ही वह बैठा बैठा इन इन्द्रियों तथा बुद्धि और मनको अपना हथियार बनाकर ज्ञानका सत्यानाश किया करता है।

इन दोनोंके कारण मनुष्य बहुत से संकटोंमें पड़ता है। यह दोनों ही पुरुषको खेंचकर संकटोंमें फंसा देते हैं। इसी कारण संकटोंको 'व्यसन' कहा गया है। और व्यसन ही संकट है। चस्का या शौक यह तो संकटमें जानेके रास्ते हैं। या दूसरे शब्दोंमें संकटमें जानेके लिए चस्का, शौक, इल्लत यह बँधनेकी रस्सियां हैं। इनमें बंधकर आदमी बुरी विपत्तियोंमें जा पड़ता है।

प्राचीन आचार्योंने पुरुषमें होने वाले व्यसनों की भी शास्त्रीय आलोचना की है। राजधर्म प्रकरण-में भगवान् मनुने कामसे उत्पन्न होनेवाले दश व्यसन और क्रोधसे उत्पन्न होने वाले आठ व्य-सनोंका उल्लेख किया है।

मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः।
तौर्यत्रिकं वृथाऽट्या च कामजो दशको गणः॥

कामसे उत्पन्न होनेवाले दस व्यसन हैं १. मृगया=आखेट=शिकार करना, २. अक्षः=पासे फेंकना, जुआ खेलना, ३, दिवा स्वप्न=दिनमें सोना (कुल्लूक कहते हैं 'सकल कार्य विघातिनी दिवा निद्रा'। दिनके समय सोनेसे सब काम चौपट हो जाते हैं। रात भर जुआ खेले, स्त्री प्रसंग करे तथा नाच गान महफिल आदिमें लगा रहे तो दिनमें नींद सतावेगी ही। और सब काम बिना किये रह जायंगे), ४. परीवादः दूसरोंकी निन्दा करना, ५ स्त्रियः—स्त्रियोंका संभोग करना, ५ मदः—मद्य पान करना, ६,७,८, तौर्य-त्रिकं नाच गान तथा बाजों में लगे रहना, १० वृथाऽट्या=व्यर्थ घूमना, यह दस व्यसन कामसे उत्पन्न होते हैं। सुख पानेकी इच्छा को काम कहते हैं। उसीसे यह १० शौक पैदा होते हैं।

इसी प्रकार क्रोधसे भी आठ व्यसन पैदा होते हैं।

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थ दूषणम्।
वाग्दण्डजंच पारुष्यं क्रोधजोऽपिगणोऽष्टकः॥

१—पैशुन्य, पिशुन, दिलका ओछापन, इससे प्रेरित होकर पुरुष दूसरे व्यक्तिमें दूसरोंके दोष ढूंढा करता है और झूठी चुगलियां किया करता है; २—साहस, भले आदमियोंके साथ बिना प्रयोजनके बदी करना, उनसे लड़ना, उनको मारना, उन्हें कैद करना आदि; ३—द्रोह छल कपटसे अथवा यों ही कारण गढ़कर दूसरेका घात करना; ४—ईर्ष्या दूसरेके गुणोंको सहन न करना; ५—असूया, दूसरेके गुणोंमें से भी दोष निकालना; ६—अर्थ दूषण, लोगोंका धन छीन लेना, छलसे ले लेना, धर्मार्थ धनका भी न देना, ७—वाक्पारुष्य, कठोर वाणीका प्रयोग करना; गाली देना डांटना, डपटना; ८—दण्डपारुष्य-कठोर दण्ड देना, यह आठ दूषण क्रोधसे उत्पन्न होते हैं।

सभी विद्वानोंका मत है कि इन दोनों (काम और क्रोध) का मूल लोभ है। लोभसे दोनों पैदा होते हैं। राजा लोग यदि अपनी प्रजा पर क्रोध करते हैं या क्रोधसे उत्पन्न होने वाले व्यसनोंमें पड़ते हैं तो उसका कारण उनका लोभ ही है। यही बात उनके कर्मचारियोंमें भी देखी जाती है।

मनु कहते हैं कि कामसे उत्पन्न होनेवाले दश-व्यसनोंमें से चार पान, अक्ष, स्त्रियां और मद यह ही अधिक कष्टप्रद और अनर्थकारी हैं। इसी प्रकार क्रोधसे उत्पन्न होनेवाले आठ व्यसनोंमें से दण्डकी कठोरता, वाणीकी कठोरता, और पराये धन हर लेनेकी आदत यह तीन व्यसन बहुत बुरे और अनिष्टकारी हैं। इन सातोंमें भी पहले वाले अपने पिछलेवालोंसे अधिक अनिष्टजनक हैं। अर्थात् सबसे अनिष्टकर मद्यपानका व्यसन है। दसों क्रमसे अनिष्टकी मात्रा घटती जाती है।

कुल्लूक यह लिखते हैं—'जुएसे भी बढ़कर बुरा व्यसन 'मदिरापान' है। मद्य पीकर आदमी जब मत्त हो जाता है तब उसे कुछ भी सुध बुध नहीं रहती, उस समय जो मनमें आता है नशेके जोरमें बिना बिचारे कर डालता है। उस समय उसका प्राण और धन दोनों संकटमें रहते हैं। परन्तु जुआ खेलनेमें यदि एक बार हारखानेसे

हाथसे निकल गया तो दूसरी बार अपने अनुकूल पासा पड़ने पर धन आ भी जाता है। परन्तु जूआ भी और व्यसनोंमें से सबसे बढ़कर अनर्थ करता है। जूएसे बैर कलह आदि ऐसे अनर्थ उठ खड़े होते हैं जिनकी नीतिशास्त्रमें निन्दा की गयी है। यद्यपि स्त्री प्रसंगके व्यसनसे व्याधियां उत्पन्न हो जाती हैं तथापि पुत्र आदिका लाभ भी तो होता है। स्त्री संग तथा मृगयामें स्त्री संग ही अधिक बुरा है; क्योंकि इस व्यसनमें फंस जानेसे राजा अपने राज्यके और कार्यों पर अपनी आंख नहीं रख सकता और काम बिगड़ जाते हैं। स्त्री प्रसंगमें फंसे रहने पर और धर्म कार्य भी सब डूब जाते हैं। इधर मृगया करनेसे शरीरकी कसरत, आरोग्यता आदिका लाभ भी होता है।

इसी प्रकार क्रोधसे उत्पन्न होने वाले व्यसनोंमें दण्डकी कठोरता सबसे बुरी है; क्योंकि यदि कठोरदण्ड देनेसे दण्ड पानेवालेके हाथ आदि कट जांय तो उनका फिर कोई इलाज नहीं। वह सदाका बैरी बन जायगा। परन्तु गाली तथा कठोर बचनसे दुःखी पुरुषको तो फिर भी भेंट पूजा सत्कार करके मना लेना सम्भव होता है। वाणीकी कठोरता भी धन दण्डसे अधिक बुरी है; क्योंकि कठोर बचन जब दिलमें चुभ जाते हैं फिर नहीं निकलते। वह बहुत गहरा घाव करते हैं परन्तु धन दण्डसे दुःखी पुरुषको तो अधिक धन देकर फिर खुश कर सकते हैं।

काम और क्रोधकी उत्तम आलोचना हमने मनु भगवान् और उनके टीकाकार कुल्लूकभट्टके आधार पर कर दी। परन्तु इतने पर ही विचार नहीं समाप्त हो जाता। राजनीति शास्त्रके आचार्यों ने इस विषय पर और भी सूक्ष्म और विस्तृत आलोचना की है।

पुरुषके व्यसनोंका वर्णन करते हुए प्रसिद्ध नीति शास्त्रज्ञ चाणक्य ने अपने अर्थ शास्त्रमें काम और क्रोधकी इस प्रकार आलोचना की है।

"अविद्या और अविनय इन दो कारणोंसे पुरुषोंमें व्यसन उत्पन्न होते हैं।" अर्थात् आदमी अपनी दुष्प्रवृत्तियोंकी हानियां न जाननेके कारण तो व्यसनमें फंसता ही है, परन्तु अविनय अर्थात् अशिक्षा, कुशिक्षा और अशिष्टाचार, जितेन्द्रियताका अनभ्यास और चारित्र शिक्षा न होनेके कारण भी व्यसनोंमें उलझ जाता है। 'उसको व्यसनोंसे उत्पन्न होने वाली हानियां दृष्टिगोचर नहीं होतीं।"

व्यसनोंका ही आगे वर्णन करते हैं। व्यसनोंके तीन वर्ग क्रोध या कोपसे उत्पन्न होते हैं। और चार वर्ग कामसे उत्पन्न होते हैं।

काम और कोप दोनोंमें कोप ही बड़ा अनिष्ट जनक है। कोप सभी जगह दिखाई देता है। प्रायः जब राजा अपने क्रोधके वशमें होकर अन्धे हो जाते हैं वह प्रजाका निष्कारण बध करते हैं; तब प्रजा या अमात्य क्रोधमें आ कर अपने राजाओंका अन्त कर डालते हैं। इतिहासमें बहुत से राजाओंकी मृत्यु इसी प्रकार अपनी प्रजाके हाथोंसे हुई सुनी जाती है। राजा लोग काममें फंसकर प्रायः कष्टसाध्य और असाध्य रोगोंसे मर जाते हैं।

प्राचीन आचार्य भारद्वाजकी सम्मतिमें कोप कामसे अधिक हानिकारक नहीं है। आपकी सम्मतिमें दोनों बराबर हैं। दोनोंमें बराबर लाभ भी विद्यमान हैं। कोप करना तो सत्पुरुषोंका एक आचार है, क्रोधसे बैर निकाला जाता है, क्रोधसे अपमान करनेवालेका नाश किया जाता है, क्रोध करनेसे साधारण लोग डर जाते हैं और आतङ्क बैठ जाता है। पापी लोगोंका दमन करनेके लिए और प्रजामें पापको रोकनेके लिए राजाको सदा क्रोध करना पड़ता है। दूसरी तरफ काममें भी चार लाभ हैं—एक तो यथेष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है, दूसरे भोगादि करनेसे दिलमें बेचैनी नहीं रहती, तीसरे धनका त्याग करनेमें हाथ उदार हो जाता है। चौथे उसके सभी मित्र हो जाते हैं। अपना कार्य सम्पादन करके उसका फलोपभोग करनेके

लिए राजाको सदा ही कामसे काम है। उसका त्याग नहीं हो सकता।

इसके प्रत्युत्तरमें चाणक्य कहते हैं कि क्रोधमें तीन अनर्थ हैं १. द्वेष्यता, २. शत्रुवेदन, ३. दुःख संग। इसी प्रकार कामसे भी तीन अनर्थ उत्पन्न होते हैं, १. परिभव, २. द्रव्य नाश, ३. चोर जुआखोर शिकारी, नाचने गाने और बजाने वाले गुण्डे लबारोंका संग। दोनों पक्षोंके अनर्थोंकी परस्पर तुलना करें तो काम और क्रोध दोनोंकी अनिष्ट-जनकताका विवेचन हो जायगा। पहले द्वेष्यता और परिभवको लेलीजिये। द्वेष्यता अर्थात् दूसरों-के द्वेषका पात्र बनना। किसी पर भी क्रोध करने-से मनुष्य औरोंके द्वेषका पात्र हो जाता है। लोग उससे द्वेष करने लगते हैं। इधर अति अधिक कामासक्त हो जाने पर परिभव अर्थात् तिरस्कार होता है। स्त्रियां तक भी पुरुषको अपने चरणा-घातसे अपमानित करती हैं। और लोकमें सब प्रकारकी निन्दा और अपवाद उठने लगते हैं और समानपदके लोग भी घृणा तथा अपमान करने लगते हैं। मित्र और गुरु जन भी साथ छोड़ देते हैं। इन दोनोंमें परिभव अर्थात् तिरस्कार होने पर दूसरे लोग केवल अपमान ही करते हैं। वह उस अपमानका कारण दूर कर दे तो फिर भी मान पा सकता है। परन्तु द्वेष उठ खड़ा होने पर और खास कर राजाके प्रति उसकी प्रजा, तथा अन्य सहवासी राजगणको द्वेष बुद्धि हो जाने पर सब कोई उसको मिलकर उखाड़नेका प्रयत्न करते हैं। और जबतक उखाड़ नहीं लेते तबतक चैन नहीं लेते। इस कारण तिरस्कार और द्वेष दोनोंमें से द्वेषका पात्र बनना अधिक अनिष्टकारी है।

अब दूसरे दो लीजिये। काम पक्षका द्रव्यनाश और क्रोध पक्षका शत्रु वेदन इनमें से द्रव्यनाश अर्थात् काम विलासमें खुले हाथों रुपया लुटा देने से तो खज़ाना ही ख़ाली होगा। परन्तु क्रोध करनेसे दूसरे सहवासी राजागण तो उसको अपना शत्रु जानेंगे। और सदा शत्रुता निकालनेकी ताकमें रहेंगे। यही शत्रुवेदन कहाता है। इससे प्राण सदा संकटमें रहेंगे। खज़ाना खाली हो जानेपर तो वह फिर भी भरा जा सकता है; परन्तु प्राण हाथसे निकल जानेपर फिर वह इसी जन्ममें लौटाया नहीं जा सकता। इस कारण क्रोध पक्षका 'शत्रुवेदन' ही काम पक्षके 'द्रव्य नाश'से अधिक अनर्थकारी है।

अब दोनों पक्षोंके तीसरे जोड़ेपर विचार कीजिये। कोप पक्षका दुःख संग और काम पक्षका चोर जार गुण्डोंका संग–इन दोनोंमेंसे गुण्डों चोरों और लबारोंका संग तो कोई २४ घण्टे नहीं रह सकता; वह तो थोड़े ही कालके लिए रहता है। और जब राजा चाहे उनका संग छोड़ कर कीचड़ से कमलके समान थोड़े ही प्रयत्नसे अलग हो सकता है; परन्तु क्रोध पक्षके 'दुःख संग' से जल्दी छुटकारा नहीं हो सकता। क्रोधमें आकर की गयी हत्या आदिके पापका दुःख और अन्योंसे जा भिड़नेपर शरीरमें लगी चोटोंका दुःख तथा अन्य नाना प्रकारकी जो हानियाँ—मित्र हानि, द्रव्य-हानि, जनहानि आदि—होती हैं उनका दुःख तो क्षणभरमें दूर नहीं किया जा सकता। इस कारण दुःख संग ही अधिक अनिष्टकारी है। इस विवे-चनासे यही सिद्ध होता है कि कोप ही काम-की अपेक्षा अधिक बुरा है।

क्रोधसे पैदा होनेवाले तीन वर्गों पर विचार

क्रोधसे तीन ही वर्ग उत्पन्न होते हैं १. वाक्पा-रुष्य, क्रोधमें आकर पुरुष कठोर वाणी बोलता है, कठोर वाणी बोलना कठोर वचनोंका प्रयोग करना वाक्-पारुष्य ( वाक्-परुषता=वचनोंकी कठोरता ) कहाता है। २. अर्थदूषण, स्वामी क्रोधमें आकर अपने भृत्य लोगों पर जुर्माना करता है; उनसे धन छीन लेता है यही अर्थ दूषण कहाता है ३. दण्ड पारुष्य, राजा अपनी प्रजा पर तथा अधीन पदा-धिकारियों पर क्रोधमें आकर कठोर दण्ड देता है यही दण्ड पारुष्य कहाता है। इन तीनोंकी तुलना करनेसे और इनकी हानियों पर विचार करनेसे इनकी भी हानिकारकताका निर्णय हो जाता है।

भिन्न भिन्न आचार्योंने इनपर भी भिन्न विचार प्रकट किये हैं। आचार्य विशालाक्ष कहते हैं कि वाक्-पारुष्य और अर्थदूषणमें वाक्पारुष्य ही अधिक अनिष्टका कारण है। क्योंकि कठोर वाणी कह देने पर अपनेसे अधिक बलवान जोषीला प्रतिस्पर्धी अपने बल और जोषसे उसका प्रतिरोध करता है; दुर्वचन रूप शूल जब हृदयमें गड़ता है तब दूसरेके हृदयमें भी जोष उत्पन्न होता है और देह और इन्द्रियां पीड़ा अनुभव करती हैं।

इसके प्रतिवादमें कौटिल्य आचार्य कहते हैं कि यदि किसीके हृदयमें दुर्वचन या कठोर भाषण-के कारण शूल उत्पन्न हो गया है तो उसको भी धन आदि देकर उसकी पूजा सत्कार करके उसके हृदयको शान्त कर सकते हैं; परन्तु अपने अधीन व्यक्तिका धन छीन लेने या अर्थदण्ड देनेसे तो दूसरे की रोजीका नाश हो जाता है। यह उसको बहुत असह्य हो जाता है। इस कारण 'वाक्-पारुष्य' की अपेक्षा 'अर्थदूषण' अधिक हानिकारक है। यह अर्थदूषण चार प्रकारका होता है १. अदान, अपने अधीन व्यक्तिको अपराध आदिसे रुष्ट हो जाने पर उसका वेतन भी उसे न देना। २. आदान, रुष्ट होकर क्रोधसे उसके पाससे उसका धन छीन लेना। ३. विनाश, क्रोधसे उसके गृह पशु धन सम्पत्तिका नाश कर डालना या अधिक व्यय करा देना। ४. परित्याग, उसकी वृत्ति ही छुड़ा देना।

अब विचार कीजिये कि अर्थदण्ड और दण्ड पारुष्य, इन दोनोंमें कौन अधिक हानिकारक है। पराशर आचार्य कहते हैं—अर्थदण्ड और कठोर दण्ड इन दोनोंमें अर्थदण्ड ही अधिक हानिकारक है। धर्म और काम दोनों धनके आश्रय पर ही होते हैं और सब दुनिया ही धनके कारण बंधी रहती है। इस कारण अर्थ दण्ड पाने पर लोग राजाको छोड़कर चले जायंगे। इसके प्रतिवादमें आचार्य कौटिल्य कहते हैं—"नहीं, अर्थदूषणकी अपेक्षा तो दण्डकी कठोरता ही अधिक हानिकारक है। क्योंकि कोई भी पुरुष बहुतसे धनके लिए अपना शरीर बिनाश करना नहीं चाहता। कठोर दण्ड देनेसे राजाको औरोंसे अपने शरीरके प्रति-दूसरोंकी ओरसे कठोरदण्ड पानेकी आशंका उठ खड़ी होती है। इस कारण अर्थदण्डसे कठोर दण्ड ही अधिक बुरा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विशालाक्षकी सम्मतिमें अर्थदण्डसे अधिक वाग्दण्ड और वाग्दण्डसे भी अधिक कठोरदण्ड है। पराशरकी सम्मतिमें वाग्-दण्डसे अधिक कठोरदण्ड और कठोरदण्डसे अधिक अर्थदण्ड है। आचार्य चाण-क्यकी सम्मतिमें वाग्-दण्डसे अधिक अर्थदण्ड और उससे भी अधिक शरीरका कठोरदण्ड है।

| | विशालाक्ष | पराशर | कौटिल्य |
|---|---|---|---|
| १ | अर्थदण्ड | वाग्दण्ड | वाग्दण्ड |
| २ | वाग्दण्ड | कठोरदण्ड | अर्थदण्ड |
| ३ | कठोरदण्ड | अर्थदण्ड | कठोरदण्ड |

इस सारणीसे पाठकगण प्रत्येक आचार्यकी सम्मतिमें क्रोधजवर्गोंकी उत्तरोत्तर हानिकारकता को स्पष्टतासे जान सकेंगे।

( असमाप्त )

---

## हाथी

स्कूलके निम्न-श्रेणीमें पढ़ने वाले विद्यार्थियोंको हाथी पर दर्जनों लेख लिखना पड़ते हैं। मैं भी हाथी पर कई लेख लिख चुका हूं। मुझे खूब ख्याल है कि जब इस विषय पर लेख लिखना होता था तब मैं उसका आरम्भ "एलिफैन्ट इज़ ए क्वाड्रूपेड एनिमेल"से किया करता था। किन्तु इस बार मेरी शामत आई है, इसलिए हिन्दीमें हाथी पर एक निबन्ध लिखने चला हूं। मैं जानता हूं कि यह लेख सभी पाठकोंकी रुचिके अनुसार नहीं होगा; सब कोई इसे पसन्द भी नहीं करेंगे क्योंकि "भिन्न रुचिर्हि लोकः"; तो भी एक बार

चेष्टा करता हूं। इसमें कहां तक सफल होऊंगा यह नहीं कह सकता।

हाथी बहुतोंने देखा होगा; उसकी आकृतिसे वह परिचित भी होंगे किन्तु हाथीकी प्रकृति, लक्षण गुण आदिका ज्ञान बहुत कम ही लोगोंको होगा। ऐसे भी मनुष्य हैं जिन्होंने हाथी अपनी आखों कभी नहीं देखा। ऐसे ही लोगोंको सर्वाभिज्ञताका सबसे अधिक अभिमान होता है। सर्वज्ञ पाठकोंके लिए यह प्रबन्ध नहीं लिखा जाता; वह इस लेखको पढ़कर वृथा अपना अमूल्य समय नष्ट न करें। जो जीव जगतके छोटेसे छोटे कीड़ेसे लेकर मनुष्यका; तुच्छ तृणसे लेकर बड़े बड़े पर्वतोंका, आकाशके एक छोटे नक्षत्रसे आरम्भ कर समूचे सौर-जगत्का गूढ़ तत्व जानना चाहते हैं; जो सब जगह विश्व नियन्ता सृष्टिकर्त्ताके रचना-तत्वका थोड़ासा भी आभास पाकर पुलकित चित्तसे प्रेमानन्दमें लीन हो जाते हैं उनके लिए यह निबन्ध लिखा जा रहा है। जैसे मनुष्य बुद्धिमें सर्वश्रेष्ठ गिना जाता है वैसे ही हाथी शरीरके गठनमें आकार प्रकारमें सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकाण्ड पशुके विषयकी सभी बातें यदि संग्रह कर लिखी जायं तो दूसरा महाभारत तैयार हो सकता है। वास्तवमें, यूरोप अमेरिका आदि देशोंमें हाथी-सम्बन्धी बड़े बड़े ग्रन्थ हैं। मैं भी जहां तक हो सका है सामग्री संग्रह करके यह लेख लिख रहा हूं, किन्तु नहीं कह सकता कि इस कार्य्यमें कहां तक सफल हुआ हूँ।

### साहित्य-सम्बन्ध

साहित्यिक पाठक इस प्रबन्धमें अपने जानने योग्य बहुत सी सामग्री पा सकते हैं। हाथीने साहित्य-संसारमें काव्य-काननके अलंकार क्षेत्रके जितने स्थान पर अधिकार कर रखा है उतना स्थान शायद और किसी पशुको नहीं मिला है। उपमान, उपमेय, उत्प्रेक्षा, उत्कर्ष आदिमें हाथीका बहुत प्रयोग मिलता है। सुना है कि वेदमें भी हाथीका उल्लेख है। वेदके अतिरिक्त, पुराण, तन्त्र, नाटक, उपाख्यान आदिमें जहां तहां अनेक नामोंसे इस जीवका जिक्र आया है।

पुराणके सृष्टि तत्व प्रकरणमें हाथीकी उत्पत्ति तथा जन्मका विवरण मिलता है। हस्ति-राज ऐरावतके उत्पत्ति तत्वसे सभी पुराणके पाठक अवगत हैं। कौन नहीं जानता कि सत्ययुगमें समुद्र मंथन करते करते "श्वेतवर्ण चतुर्दन्त ऐरावत हस्ति" उत्पन्न हुआ था? "गज और ग्राह" के युद्धको महाभारतके पाठकोंने अवश्य पढ़ा होगा। रामायण महाभारत से पूर्ववर्ती ग्रन्थ है। रामायणमें भी हाथीका उल्लेख है। मद-मत्त कामातुर ऐरावत पतितपावनी भागीरथीका गतिरोध करने गया था; किन्तु भागीरथीकी उत्ताल तरंगोंने उसे कई योजन दूर फेंक दिया। प्रह्लादको हाथीके पैरोंके नीचे डाला गया। द्वापरमें बलराम और कृष्णने "कुवलयापीड़" को मारा था। "भगदत्त" का हाथी आज भी जीवितावस्थामें स्थिरवायुके ऊपर वर्त्तमान है। यह तो पुराण आदिकी बातें हुईं; किन्तु उसके बादके साहित्य-काव्यमें भी हाथीका महात्म्य वर्णित है। जान पड़ता है कि हाथी नाटक-उपाख्यानका एक अंग है—हाथीके न रहनेसे शायद नाटक-उपाख्यान पूरे ही नहीं होते। सर वाल्टर स्काटके नावेल पढ़नेसे जैसे स्काटका सारमेय* प्रियताका पता लगता है उसी प्रकार कालिदासके काव्योंको पढ़नेसे उनकी हस्ति प्रियताका। रघुवंशका ऐसा एक भी सर्ग नहीं है, जिसमें किसी न किसी प्रसङ्गमें हाथीका आविर्भाव नहीं हुआ है। हाथीका लक्षण निर्णय, आकृति-प्रकृति, परिचय, भ्रमण विचरणकी अवस्था आधि-व्याधि-व्यवस्था सम्बन्धी थोड़ी बहुत बातें पुराणों तथा उपपुराणोंमें वर्णित हैं। इससे जान पड़ता है कि ब्रह्मविद् ऋषि लोग पशुतत्व-निर्णय करनेमें निश्चेष्ट नहीं थे।

### नाम

भारतवर्षमें बहुत पुराने समयसे हाथीका अस्तित्व है। संस्कृतके ग्रन्थोंमें जितनी चर्चा इस-

* कुत्ता।

की मिलती है उतनी अन्य किसी भाषाके ग्रन्थोंमें नहीं। जिसके हाथ होते हैं उसे हस्ती कहते हैं; यह संस्कृत नाम हुआ। उसीका विकृत रूप हाथी है। इसमें संदेह नहीं कि 'हस्ती' नाम भारतवर्षमें दिया गया—इस नाममें अलंकार है। हाथीकी सूंड़ मनुष्य के हाथका सा काम देती है; इसीसे नाम पड़ा 'हस्ती'। यदि कहा जाय कि हाथ जिसके होते हैं वही हस्ती हुआ तो मनुष्यके भी हाथ हैं; वह हस्ती क्यों नहीं हुआ ? इसका उत्तर देनेके पहले मैं एक प्रश्न पूछता हूं—"जो गमन करता है" वही "वायु" कहलाता है तो मनुष्य भी गमन करता है, मनुष्य वायु क्यों नहीं कहलाता ? इसका उत्तर यही है कि यह शब्द योग रूढ़ी शब्द हैं। सब भाषाओंमें इस प्रकारके योग रूढ़ी शब्द पाये जाते हैं। अंगरेजीमें Comfortor शब्दका अर्थ जो Comfort अर्थात् आराम दे, किन्तु Comfortor कहनेसे 'गुलूबन्द'-का ही बोध होता है। अब पाठकोंने अवश्य समझ लिया होगा कि मनुष्य हस्ती क्यों नहीं कहा जाता। किन्तु हां, कभी कभी मनुष्यके लिए हाथी शब्दका प्रयोग होता है; इसके दो कारण हैं:—(१) उनकी मोटाई और (२) उनका बुद्धि दोष। कोई कोई मनुष्य इतने मोटे होते हैं कि उनकी तुलना हाथीसे की जाती है। हाथीके विषयमें महा कवि कालिदासका मत है कि वह बड़े बेवकूफ़ जानवर होते हैं*। इसलिए बेवकूफ़ मनुष्योंके लिए कभी कभी हाथी शब्दका प्रयोग होता है। हाथ होनेके कारण जैसे हाथीका हस्ति नाम पड़ा उसी प्रकार दांत होनेकी वजहसे उसका दूसरा नाम "दन्ती" है। इसी प्रकार एक एक बाह्य अंग प्रत्यंग, या गुणागुणके द्योतक शब्दोंमें हाथीके अनेक नाम संस्कृत शास्त्रमें पाये जाते हैं। सब शब्दोंकी व्युत्पत्ति देनेका स्थान इस छोटे लेखमें नहीं हो सकता; इसलिए हाथीके संस्कृत नामोंका केवल उल्लेख मात्र यहां कर दिया जायगा। जो साहित्य संसारमें नया नया प्रवेश कर रहे हैं उनका इस नामावलीसे लाभ हो सकता है। कमसे कम हाथी शब्दके भिन्न भिन्न नामोंको देखनेके लिए उन्हें कोषकी शरण नहीं लेनी पड़ेगी। अच्छा, अब नाम सुनियेः—

दन्ती, दन्तावलः' हस्ती, द्विरदः, अनेकपः, द्विपः, मतङ्गजः, गजः, नागः, कुञ्जरः, वारणः, करी, इभः, स्तम्बेरमः, पद्मी (अमरकोष)। मतङ्गः, मातङ्गः, पीलुः, वराङ्गः, पुष्करी, जलकंकः, महामृगः, स्तरमः, शूर्पकर्णः, सिन्दुरः, सामजः, कटी, अन्तःस्वेदः, दीर्घमारुतः,' विलोमजिह्वः, करटी, पिण्डुपादः, महामदः, पेटकी, कटकी, कुम्भी, निर्भरः (शब्द रत्नावली)। सिन्दूरतिलकः, पञ्चनखः, श्रृङ्गारी, करेणुः, कर्णिकी, लिङ्गी, सामयोनिः (जटाधरः)। राजीवः, जलकांदमः, लतालकः, पेकिशः (त्रिकाण्डशेषः)। द्विरदनः, करभी, विषाणी, रदनी, महाबलः, भद्रः, द्रुमारिः, यष्टिहायनः (इति राजनिघन्टुः)।

हाथीका जाति भेद

हाथीके जाति भेदके हिसाबसे चार प्रकार के होते हैं; जैसे—

भद्रो मन्द्रो मृगो मिश्रश्चतस्रो गज जातयः।
(हेमचन्द्रः।)

वराह मिहिर कृत बृहतसंहिता शास्त्रमें इन चार जातिके हाथियोंके लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

१ मध्वाभदन्ताः सुविभक्तदेहा न चोपदिग्धाश्चकृशाःक्षमाश्च।
गात्रैः समैश्चापसमानवंशा वराहतुल्यैर्जघनैश्च भद्राः॥

भद्र हाथीके दोनों दांतोंका रंग मधुका सा होता है; अंग प्रत्यंग सुविभक्त; शरीर न बहुत बड़ा न बहुत छोटा, मोटा भी नहीं और कृश भी नहीं

---

*"दृष्ट्वा यासां नयनसुषमां वंगवारांगनानां।
देशत्यागः परमकृतिभिः कृष्णसारैरकारि॥
तासामेव स्तनयुग जिताः कुम्भिनः सन्ति मत्ताः।
प्रायो मूर्खः परिभवविधौ नाभिमानं तनोति॥"

बुद्धिमान कृष्णसार युवतीकी नयन शोभा देख कर देशत्यागी होता है। किन्तु हाथी ऐसा मूर्ख होता है कि उसी रमणीके पीनोन्नत पयोधरसे परास्त होने पर भी वह कभी कभी मत्त हो जाता है। इसीसे जान पड़ता है कि मूर्खको मानापमानका ज्ञान नहीं होता।

होता। वह भारी बोझा ढो सकता है। देहावयवकी गढ़न सुश्टङ्खलाबद्ध; मेरुदण्ड धनुषके समान और जांघ बराहके सी होती है।

२. वक्षोऽथ कक्षावलयः श्लथाश्च लम्बोदरस्त्वग् बृहतीगलश्च।
स्थूला च कुक्षिः सहपेचकेन सैंहीच दृङ्मन्दमतंगजस्य॥

मन्द्र हाथीका वक्षस्थल और कक्ष (बगल) श्लथ (गुदगुदा) होता है; उदर झूलता हुआ, स्कन्ध और चमड़ा पुष्ट, पेट मोटा, और दोनों आंख उल्लू की सी किन्तु सिंहके समान ज्योतिर्मय होती हैं।

३. मृगास्तु ह्रस्वाधरवालमेढ्रास्तन्वङ्घ्रि कण्ठद्विजहस्तकर्णाः।
स्थूलेक्षणाश्चेति तथोक्तचिह्नैः संकीर्णनागाव्यतिमिश्रचिह्नाः॥

मृग हाथीका अधर, पूंछ और लिङ्ग खर्व्वाकृति का होता है; पैर, गला, दांत, सूंड़ और कान छोटे और आंख दोनों स्थूल होती हैं।

४. पञ्चोन्नतिः सप्तमृगस्य दैर्घ्यमष्टौ च हस्ताः पारिणाहमानम्।
एकद्विवृद्धावथ मन्द्रभद्रौ संकीर्णनागोऽनियत प्रमाणः॥

मिश्र हाथीमें उपरोक्त तीन प्रकारके हाथियोंका कोई न कोई गुण अवश्य प्रकाशित होता है।

मृग हाथीकी ऊंचाई ५ हाथ, लम्बाई ७ हाथ और शरीरका परिणाम ८ हाथ होता है। मन्द्र और भद्र हाथीकी ऊंचाई मृगकी अपेक्षा १ हाथ और लम्बाई दो हाथ अधिक होती है। मिश्र हाथीके परिमाण निश्चय नहीं हैं।

भद्र हाथीका मद* हरा, मन्द्रका पीला, मृगका काला और मिश्रके मदका रंग मिला हुआ होता है।

हाथीपर चढ़नेका फल

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि हाथी चढ़नेके लिए व्यवहृत होता है। हमारे शास्त्रकारोंने सभी जानवरोंपर चढ़नेका फलाफल निर्णय किया है। हाथीपर चढ़नेके फलाफल अनेक हैं। हाथीपर चढ़नेसे वायुकी वृद्धि होती है; शरीर मोटा होता है; बल और भूख बढ़ती है। यथा—

"वातकोपनत्वम्, अंगस्थैर्य्यबलाग्निकारित्वञ्च।"

इति राजवल्लभः।

कामूककी संगति सब जगह बर्जनीय है। कामोन्मत्त हाथीकी पीठपर चढ़ना भी मना है। इससे दोनों काल नष्ट होते हैं; शास्त्रकी यही आज्ञा है।

नारोहेत् कामुकोन्मत्तं गजं राजा कदाचन।
आरुह्य कामुकं तन्तुपरत्रेह विषीदति॥

—इति कालिक पुराणे ८९ अध्याय

हाथीपर चढ़ने तथा देखनेका फलाफल

ऐन्द्र मित्रवरुणानिल पुष्याचन्द्रतोय रविवारिजतारे।
सूर्य्य शुक्र गुरु सोमजवारे श्रेयसे भवति कुञ्जरयानम्॥
लग्नेचरे शुभसमाश्रितवीक्षिते वा।
चन्द्रस्यदृष्टिरभियानविधौविरुद्धा॥
सौम्ये दिने करनिशाटवसुश्रवण्य।
तोयेश मैत्रमदितिश्चशुभग्रहाहः॥
स्यात् कुञ्जर क्रयण-दर्शन दानकालः
शेषेषु दुखःफलमार्कसुतेऽन्हि चैव॥

ज्येष्ठा, अनुराधा, शतभिषा, स्वाती, पुष्पा, मृगशिरा, पूर्व्वाषाढ़ इन नक्षत्रोंमें; रवि, शुक्र, गुरु और बुधवारको हाथीपर यात्रा करना मंगलका चिह्न है।

मेष, कर्कट, तुला, मकर, लग्नमें, शुभ ग्रहके योग या दृष्टि रहनेसे यदि उस शुभ ग्रह युक्त या शुभ ग्रह वीक्षित लग्नमें चन्द्रकी दृष्टि रहे तो हाथी पर चढ़ कर यात्रा करनेसे अमङ्गल होता है!

शुभ दिनमें हस्ता, मुला, धनिष्ठा, श्रवण, शतभिषा, अनुराधा और पुनर्वसु नक्षत्रमें और शुभ ग्रहके दिन हाथी खरीदना, हाथी देखना और हाथी दान देना शुभप्रद है। इन्हें छोड़कर अन्य समय या शनिवारको हाथी खरीदना बुरा है।

हाथीका प्रकार-भेद

हाथी आठ प्रकारके होते हैं; संक्षेपमें उनका वर्णन किया जाता है। (१) ऐरावत (२) पुण्डरीक (३) वामन (४) कुमुद (५) अञ्जन (६) पुष्पदन्त (७) सार्व्वभौम और (८) सुप्रतीक। यह दिग्गज हाथी हैं।

---

* हाथीकी जवानीमें उसके मस्तिष्कसे कभी कभी एक प्रकारका स्राव होता है उसे मद कहते हैं।

१ ऐरावत वंश

जिन हाथियोंका सर्वांग शुभ्र, दांत बड़े या उजले फूलके रंगके होते हैं; जो लोमशून्य, अल्पभोजी, बलवान, बहुत बड़े स्वल्प और पुष्टलिङ्ग युक्त, सभीक अर्थात् लड़ाई के समयमें क्रुद्ध अन्य समयमें नम्र, शीघ्र जल पायी, प्रभूत अथच उग्र दान-वारि सम्पन्न, विस्तीर्ण (अधिक काल स्थायी) मद जल युक्त होते हैं, जिनकी पूंछ छोटी होती हैं वही हाथी ऐरावत वंश जात होते हैं। उन्हीं हाथियोंके मस्तक पर विशुद्ध वर्ण युक्त गोला मुक्ता होता है। राजाओंके अनेक पुण्यके प्रभावसे ऐसे हाथी पृथ्वी पर पैदा होते हैं। युद्धके समयमें इनके दांत टूट जानेसे पुनः उनकी उत्पत्ति होती है।

२ पुण्डरीक वंश

जिन हाथियोंका सर्वांग कोमल होता है, जिनकी पूंछ दण्डाकृतिकी नहीं होती, गण्ड खर* होते हैं, जिनके मस्तिष्कसे हमेशा मद निकलता रहता है जो सर्वदा क्रुद्ध रहते हैं, जो देव-प्रिय और सर्व भक्ष, बलवान् होते हैं और जिनके दांत और जीभ बड़ी तेज़ होती है, वह ही पुण्डरीक नामक दिग्गज वंशके होते हैं। इनका रेत पद्मके ऐसा गन्ध युक्त होता है। यह पानी पीनेके लिए बहुत स्पृहावान् नहीं होते, अधिक परिश्रम करनेपर भी नहीं थकते। इस जातिके हाथी जिसके घर होते हैं वह सारे संसारका राजा होनेके योग्य है।

३ वामन वंश

जिस हाथीका सारा देह कर्कश और खर्ब होता है, जो कदाचित् उन्मत्त होता है, सर्वदा मद स्राव करता है, आहारके मिलनेसे बलवान और वीर्य्यवान् होता है, जो अधिक पानी पीना नहीं चाहता; जिसके गण्डस्थल पर बहुत रोग रहता है, दांत विरूप, पूंछ और कान छोटे होते हैं उन्हें पण्डितोंने वामन-दिग्गजका वंशसम्भूत बतलाया है।

* मज़बूत कनपटी

४ कुमुद वंश

जिनका शरीर दीर्घ, सूंड़ दीर्घ और पतली, दांत विश्रीक (भद्दे), देह सर्वदा मल युक्त, गण्ड देश स्थूल और लड़ाई करनेके लिए जो सर्वदा तैयार रहते हैं वह कुमुद वंशानुभूत हाथी कहलाते हैं। यह दूसरे हाथीको देखते ही उसे मार डालते हैं; मनुष्य भी इनके पास नहीं जा सकते।

५ अञ्जन-वंश

जो हाथी स्निग्ध देहवाले, अत्यन्त जलकामी, सुवृहत् होते हैं; जिनके दांत और सूंड़ छोटी, दांत मोटे होते हैं और जो दुःसह श्रम कर सकते हैं; वह अञ्जन वंशके हाथी होते हैं।

६ पुष्पदन्त वंश

जो हाथी सर्वदा रेत और मद परित्याग करते हैं, जो अनूप ( जलीय ) देशमें पैदा होते हैं, जिनकी पूंछ बहुत छोटी होती है; ऐसे अतिशय वेगविशिष्ट हाथी पुष्पदन्त नामक दिकुञ्जरके वंशमें जन्म लेते हैं।

७ सार्वभौम वंश

जो हाथी दीर्घदन्त, बहुलोमयुक्त, महाप्रमाण, कर्कशदेह होते हैं, जो बहुत दूर चलनेसे भी नहीं थकते; जो खाने और पीनेसे शक्तिशाली होते हैं, जो मरुभूमिमें विचरते हैं जिनका शरीर वृहत् और कर्कश होता है दांत शुभ वर्ण किन्तु अकर्मण्य होता है, जो खाते अधिक हैं किन्तु मल-मूत्र कम त्याग करते हैं, जिनके कान बड़े बड़े, रोम और गण्ड छोटे छोटे होते हैं—वह सार्वभौम नामक दिग्गजके वंशके होते हैं। ऐसे हाथियोंके मस्तिष्कमें मुक्ता मिलता है।

८ सुप्रतीक वंश

जिनकी सूंड़ बड़ी, देह असंहत (बेडौल), वेग अतिशय होता है, जो क्रोधी, विष्टब्धकर्ण (खड़ा कान), सर्वदा भक्षणकारी और हस्तिनी प्रिय होते हैं; जिनकी पूंछ और दांत क्षीण और गण्ड वृहत् होते हैं, जिनके शरीरमें छोटे छोटे लोम अधिक होते हैं वेही सुप्रतीक वंशज होते हैं। काप्यमुनिका कहना

है कि इस जातिके हाथियोंके मस्तकमें महा प्रमाण मुक्ता अधिक पैदा होता है।

किसी एक जाति ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ) से उत्पन्न हाथीको शुद्ध कहते हैं। शास्त्रमें अच्छे हाथियोंके गुणका जो वर्णन लिखा है वह सब शुद्ध हाथीमें पाये जायंगे। शुद्ध ब्राह्मण जातीय हाथीसे जिस हाथीकी उत्पत्ति हुई हो अर्थात् ब्राह्मण जातीय हाथीके से लक्षणयुक्त तथा बलवीर्यवान् हाथीको जारज कहते हैं। दो द्विजातीय हाथियोंसे जिसकी पैदाइश है उसे शूर कहते हैं। ब्राह्मण और जारजसे जो हाथी पैदा होता है उसे उद्दान्त कहते हैं। इस प्रकार एक दूसरेके संयोगसे अनेक प्रकारके हाथी पैदा होते हैं। जो मनुष्य हाथीके जाति भेदको अच्छी तरहसे जानता है वही राजाका मन्त्री हो सकता है।

जो हाथी विशाल देह, पवित्र और अल्पभोजी होते हैं वह ब्राह्मण जातीय हैं।

जो बलिष्ठ, विशाल देह, बहुभोजक और क्रुद्ध होते हैं वह क्षत्रिय जातीय हैं।

गुणवान हाथी

जैसे रत्न, खड्ग, स्त्री, घोड़ा आदि गुण द्वारा परीक्षित होते हैं उसी प्रकार हाथी भी गुण ही द्वारा निर्णीत होता है। अच्छे हाथी बारह प्रकारके होते हैं यथा—रम्य, भीम, ध्वज, अधीर, वीर, शूर, अष्ट मंगल, सुबन्द, सर्वतोभद्र, स्थिर, गम्भीर वेदी, बरारोह।

भोजने कहा है कि—जो हाथी विभक्तदेह (जिनके स्कन्ध, सिर सूंड़ आदि एक समान नहीं) पुष्ट, सुदन्त, वृहत् और तेजस्वी होता है—उसे रम्य कहते हैं; वह धन बढ़ानेवाले होते हैं। जिस हाथीको अंकुशसे मारने पर कष्ट नहीं होता, उसी शुद्ध हाथीको भीम कहते हैं; यह राजाके सर्वार्थ साधक होते हैं।

जिस हाथीके शरीरमें सूंड़से पूंछ तक एक रेखा दिखाई देती है, उसे ध्वज कहते हैं। ऐसे हाथी साम्राज्य और दीर्घजीवन देनेवाले होते हैं।

जिन हाथियोंके दोनों कुम्भ समान होते हैं, जो खराकार आवर्त विशिष्ट होते हैं, और जिनका आवर्त स्थान उन्नत होता है उन्हें अधीर हाथी कहते हैं। यह राजाओंके विनाशके कारण होते हैं।

वीर हाथीका लक्षण यह है कि उसका शरीर पीठसे आरम्भ होकर नाभि तक आवर्त्त रहता है। वह पुष्टदेह और बलशाली होते हैं। ऐसे हाथी राजाओंकी अभिलाषाको पूर्ण करनेवाले होते हैं।

जो हाथी वृहत परिमाणका परिपुष्ट देहका, मनोहर दांत और स्कन्धका होता है, जो अहार करने पर परिश्रम कर सकता है जिसे अतिशय शक्ति होती है उसीको शूर कहते हैं। इससे राजा की लक्ष्मी—वृद्धि होती है।

जिस हाथीके दांत, नख और पूंछ श्वेतवर्ण होते हैं; जिसके शरीरमें उजली रेखा रहती है, जिसका कुम्भ, आंख और लिङ्ग लाल होता है, उसे अष्टमंगल कहते हैं। अष्टमंगल हाथी जिसके घरमें रहता है वह सारे संसारका भोग करता है। यह हाथी जहां रहता है वहां अनीति नहीं होती और वहांसे सौ योजन तक अमंगल दूर रहता है। कलियुगमें थोड़े ही पुण्यसे राजा इसे पाते हैं।

जो हाथी शरीरसे रक्त निकल जाने पर या मांस काट लेने पर भी परवाह नहीं करता उसे गम्भीर भेदी कहते हैं।

दांतमें, सूंड़में, कुम्भमें, देह या गण्डमें आवर्त रहनेवाले हाथीको शुभलक्षण हाथी कहते हैं।

जिस हाथीका गण्ड निरन्तर मदस्रावसे परिप्लुत रहता है, तीक्ष्ण अंकुशसे जिसे वशमें नहीं किया जा सकता, जो दूसरा हाथी देखनेसे क्रोधित हो जाता है, जो नए मेघके समान शब्द करनेवाला तथा गम्भीर होता है; वह ही राजाओंको सुख देने वाला होता है।

बुरे हाथी

बुरे हाथी बीस प्रकारके होते हैं:—यथा १ दीन, २ क्षीण, ३ विषम, ४ विरूप, ५ विकल, ६ खर, ७ विमद, ८ धमापक, ९ काक, १० धूम्र, ११ जटिल,

१२ अजिनी, १३ मण्डली, १४ श्वित्री, १५ हतावर्त्त, १६ महाभय, १७ राष्ट्रहा, १८ मुषली १९ भाली, २० निःसत्व। भोजराजने इनके गुणागुणका वर्णन किया है।

जिसका शरीर अत्यन्त क्षीण और प्रभाशून्य होता है और जिसके दांत अत्यन्त क्षीण और क्षुद्र होते हैं उसी हाथीको दीन कहते हैं। जिस राजाके यहां यह हाथी रहता है वह दरिद्र हो जाता है।

जिसकी सूंड़ खर्व, पूंछ वृहत्, और निश्वास वेगरहित होता है उसी को क्षीण कहते हैं। यह जिसके घरमें रहता है वह धनसम्पत्तिसे भी क्षीण हो जाता है।

जिसके कुम्भ, दांत, आंख, कान या पैर दोनों परस्पर असमान होते हैं उस कुंजरको विषम कहते हैं। यह क्षय करने वाला होता है।

जिनका स्कन्धसे मस्तक तक का भाग क्षीण होता है और पीछेका हिस्सा मोटा होता है उसे विरूप हाथी कहते हैं; इससे राजाका राज्य च्युत और धन क्षय होता है।

अनेक भोग करने पर भी जिसका मदक्षरण नहीं होता; जो युद्ध करना नहीं चाहता उसे विकल हाथी कहते हैं। ऐसे हाथीको छोड़ देने ही में कुशल है।

जिनके शरीरमें स्वाभाविक खरापन रहता है और जिनके दांत और सूंड़ ह्रस्व होते हैं उन्हें खर कहते हैं। इनके रहनेसे कुलक्षय होता है।

जिसका मदस्राव एकदम नहीं होता या बहुत देरसे होता है, जो हाथी अत्यन्त कुरूप और विवश होता है, उसे विमद कहते हैं। उसे परित्याग करना चाहिये।

जो हाथी परिमाणमें छोटा होता है; जिसका सब अंग क्षीण होता है, सूंड़, शिर और उदर ह्रस्व होता है, जो हाथी व्यग्रभावसे अविश्रान्त निश्वास छोड़ता है, जिसकी कमर और पूँछका अग्रभाव आवर्त्तक मण्डलाकार रहता है; जिसका लिङ्ग निश्चेष्टवत् सर्वदा बाहर निकला रहता है उसे भ्मापक हाथी कहते हैं। हाथियोंमें यह निकृष्ट होता है। जो राजा आरोग्य चाहते हैं उन्हें इस हाथीको देखना भी नहीं चाहिये।

जिस हाथीका शंख अर्थात् ललाट्के दोनों अस्थिफलक भग्न, जिसका स्कन्ध बहुत बालवाला होता है वह हाथी काक कहलाता है; यह अपने स्वामीकी मृत्युका कारण होता है।

जिस हाथीके दोनों दांत विषम, ललाट मांस युक्त, सूंड़ विरोधी होते हैं उस गजाधमको धूम्र कहते हैं। इसका प्रभु रोगी होता है।

जिस हाथीके मस्तकके बाल रूखे, कर्कश और जटाके समान होते हैं उसे जटिल हाथी कहते हैं; इससे धन नाश होता है।

जिसका स्कन्ध और शरीर चमड़ेसे सटा हुआ जान पड़ता है उस हाथीको अजिनी कहते हैं। इससे राजाकी पृथ्वी और धन क्षय होता है। जो लक्ष्मी आदिके अभिलाषी होते हैं वह इस हाथीका स्पर्श या दर्शन नहीं करते।

जिस हाथीके शरीरमें एक, दो या अधिक मण्डल* (भंवर) रहते हैं वह मण्डल यदि विरूप या उठा हुआ होता है तो उस हाथीको मण्डली कहते हैं। यह कुलनाशक होते हैं।

उपरोक्त मण्डल यदि श्वेत वर्ण हों तो वह श्वित्री हाथीके लक्षण हैं। यह धननाशक होता है।

जिस हाथीके हृदय, उदर, त्वक्, पुच्छ मूल, गुह्य स्थान, लिङ्ग, या पैरके आवर्त नष्ट हो जाते हैं उसे हतावर्त हाथी कहते हैं। यह राजाओंका धननाशक, नरपतिको योगी, प्रवासी और उपद्रवकारी बनाने वाला होता है।

जिस हाथीके चलते समय उसके दोनों गुल्फ एक दूसरेका संघर्षण करते हैं उसे महाभय कहते हैं। ऐसा हाथी यदि अन्य गुणोंसे युक्त हो तो भी इसे त्याग करना चाहिये। यह हाथी जिस राजाके पास रहता है उसका राज्य, कुल, सेवा, धन,

* मण्डलाकार बालको भंवर कहते हैं। ले०

मित्र, पत्नी, और प्रजाका नाश होता है। यह जिस देशमें रहता है वहांके रहनेवाले नष्ट हो जाते हैं और वहां वज्रभय, व्याधिभय और अग्नि-भय रहता है।

जो हाथी बहुत मार खाने पर भी आगे नहीं बढ़ता जिसकी पीठ और उदरसे होकर एक गोल लाल रेखा खिंची रहती है उसे राष्ट्रहा कहते हैं। सर्व गुण संयुक्त होने पर भी इस हाथीको छोड़ देना चाहिये। ऐश्वर्य्याभिलाषी राजाओंको चाहिये कि वे ऐसे हाथीको अपने राज्यसे खदेड़ दें। यदि अज्ञानतावश अपने राज्यके सीमापर भी रहने दें तो उनके राज्यका विनाश होगा।

जिसके पैर विषम, दांत दोनों असमान, पंजरोंमें एक, दो या सब टूटा हुआ, जिसके दांत हिलते रहते हैं अथवा जिसके दोनों कुम्भ श्वेत-वर्णके होते हैं उन हाथियोंमें नीच हाथीको मुषली कहते हैं। इससे राज्य, दुर्ग सैन्य और मन्त्रियों-का नाश होता है; इसलिए इसे परित्याग करना उचित है।

जिस हाथीके ललाटका चमड़ा बहुत ही रूखा जान पड़े उसे भाली कहते हैं; यह अपने स्वामीका कुल तथा धन क्षय कारक होता है।

जिस हाथीका शरीर पुष्ट और विशाल होता है, जिसके दांत मनोहर होते हैं किन्तु जो युद्ध करनेमें साहसी नहीं होता उसे निःसत्व कहते हैं। हाथियोंके जितने दोष लिखे गये हैं उनमें सबसे यही दोष प्रधान है क्योंकि केवल एक दोषसे हाथीका सब गुण छिप जाता है।

पालकाप्य ने कहा है—दांत, देह और सूँड़की क्षीणता दांतकी विषमता; मस्तककी क्षीणता और अधोभागकी पुष्टी—यही हाथीके दोष हैं।

गर्गाचार्यने कहा है—जिन हाथियोंके दांत, देह, गण्ड और सूंड़ क्षीण होते हैं, जिनका शरीर दुर्बल, पूँछ भारी और लम्बी होती है; ऐसे हाथीको सब काम लायक होने पर भी राजाओंको नहीं देखना चाहिये। राजाओंको ऐसे हाथी भी नहीं देखने चाहियें जो कभी मद-स्राव नहीं करते और बहुत खाने पर भी दुर्बल बने रहते हैं; जिनका मस्तक कृश होता है; और जो नजदीकमें शत्रुको पाकर भी मारना नहीं चाहते।

दोष युक्त हाथीको देखनेसे राजाओंको उसका प्रायश्चित करना चाहिये। प्रायश्चित स्वरूप ब्राह्मणको १०० श्रृङ्गी (गौ) दान दें या मन्त्र द्वारा शुद्ध होकर होम करना चाहिये। यदि किसी राजाके राज्यमें दोष युक्त हाथी पाया जाय तो उसे अपने राज्यसे दूर करा देना चाहिये अथवा शुद्ध ब्राह्मणको दे देना चाहिये।

मनुष्योंको जो बीमारी होती हैं, हाथीको भी वैसे ही रोग होते हैं। उनकी दवा मनुष्यके ही ऐसा करना चाहिये; केवल दवाकी मात्रा अधिक होनी चाहिये।

### वैदेशिक संज्ञा

हाथीके संस्कृत नाम दिये जा चुके हैं, हिन्दीमें प्रायः वह सब प्रयोगमें आ सकते हैं। हाथीके वैदेशिक संज्ञा जान रखना अच्छा है।

ब्रह्म-भाषा—सेन; डच—ओलिफान्ट; ग्रीक—एलिफास; इटालीय-एलिफान्टिस; लैटिन—एलिफास या एलिफानटूस;—मालय—गज या वेराभ; फारसी-फील; पस्तु—पिल; नारवे-स्वेडेन—फ्राइ-वेल; स्पेन—एलिफैन्टी; सिंहली—गलो; तामील-आनी; तैलङ्ग जेनी अथवा जेनुग; अंग्रेजी, फ्रेन्च और जर्म्मन भाषामें हाथीको एलिफेंट कहते हैं।

संस्कृतके 'हस्ति शब्दकी व्युत्पत्तिमें कोई झगड़ा नहीं है किन्तु अंग्रेजीके 'एलिफैन्ट' शब्द की व्युत्पत्तिमें बड़े बड़े बखेड़े हैं। सर जे. ई. टेनेन्टका अनुमान है कि हिब्रु 'पेलफ़' शब्दसे 'एलि-फेन्ट' निकला है। पिकटेक महाशयका कहना है—"ऐरावत अथवा 'ऐरावत' शब्दसे 'एलिफैन्ट'की उत्पत्ति हुई। वर्टन कहते हैं—संस्कृतके पिलु शब्द से यह बना है या पस्तुके पिल—फारसी फील—जो पहले फ़ारसीमें 'फिल' होगा, उसके पहले

अरविक 'पल' उपसर्ग युक्त करनेसे ग्रीकमें 'पलीफास' हुआ।

भाषा तत्वको सुलझानेकी आवश्यकता नहीं दीख पड़ती; क्योंकि इसकी मीमांसा न होनेसे भी काम चल सकता है। हिन्दीके पाठक हिन्दी भाषा समझते हैं; हिन्दीमें पुस्तक लिखी जा रही है, इसलिए हाथी शब्दको समझ लेने से ही झगड़ा मिट जाता है तब व्यर्थ समय तथा स्थान नष्ट करनेकी आवश्यकता ही नहीं।

क्रमशः

श्री रमेशप्रसाद बी. एस-सी.

## बिल्ली और बच्चे

यूरोपमें यह मिथ्या विश्वास फैला हुआ है कि सोते हुए बच्चोंके प्राणोंका पान बिल्ली कर लेती है; अतएव बच्चोंको बिल्लीसे बचाये रखना चाहिये।

## माताओ सावधान

उपरोक्त विश्वासके बारेमें हम तो कुछ नहीं कह सकते हैं; परन्तु एक सच्ची घटनाका हम उल्लेख करते हैं। देहलीके पास एक बहोड़ा कलां नामका गांव है। वहांकी रहनेवाली एक स्त्री एक दिन बच्चेको दूध पिलानेके बाद पानी भरने गई और अपने पतिसे कहती गई कि बच्चा दालानमें सो रहा है, उसको देखते रहना। पति दर्वाज़ेपर ही बैठा बात करता रहा। जब उसकी स्त्री पानी भरकर लौटी और घरमें गई तो घड़ेको चौकमें ही पटक रोती हुई बाहर निकल आई और पतिको बुलाकर फिर घरमें चली गई; वहां दोनोंने देखा कि एक बिल्ली बच्चेका मुंह चाट रही है और चाटते चाटते उसने उसके ओठ, गाल और नाक साफ़ कर दी हैं। यह कहना व्यर्थ है कि बालक थोड़ी देर बाद ही तड़प तड़प कर मर गया।

स्त्रीकी गलती यह थी कि बालकका मुंह धोकर नहीं गई, बालकको दूध पिलानेके बाद सदैव मुंह धो देना चाहिये। पतिने यह गलती की कि बालकको अकेला छोड़ा और उसका रोना सुनकर भी बातें ही करता रहा। बालकोंको अकेला छोड़ना ठीक नहीं है।

## टंटलम

नार्थ शिकागोकी फेंस्टील प्रोडक्ट्स कम्पनीने टंटलमको बड़े पैमाने पर बनानेकी विधि १९७८ वि० में निकाली।

टंटलम देखनेमें अच्छी इस्पात अथवा प्लाटिनम धातुके रंगका प्रतीत होता है। यदि ज़ेवरोंमें प्लाटिनमके स्थान पर टंटलम लगा दिया जाय तो किसीको पता भी न चले, परन्तु मूल्य तथा मिथ्या विचारोंके कारण टंटलमका प्रयोग इस काममें होना मुश्किल है। टंटलम इस्पातके समान कठोर होता है और उसके तार तथा पत्रा भी बनाये जा सकते हैं।

टंटलम व्यापारके काममें आनेवाली समस्त धातुओंसे भारी है। उसका विशिष्ट गुरुत्व १६·६ है; उसकी सतह भी ऋतु परिवर्तनसे खराब नहीं होती, अतएव उसके प्रमाण बांट बनाये जायंगे।

उसका द्रवण विन्दु १०००° श है ४००° श पर वह नीला हो जाता है, ६००° श पर काला पड़ जाता है; और अधिक गरम किये जाने पर जल उठता है।

## ताप संबन्धी प्राचीन कल्पनाएँ

[ ले०—अध्यापक अब्दुलग़नी ]

दो कल्पनाएँ

विज्ञानके ऊषःकालसे वर्तमान शताब्दी तक तापकी प्रकृतिके विषय में दो कल्पनाओंका प्रचार बराबर रहा है, किन्तु इनमेंसे किसीको भी

नींव दृढ़ नहीं थी। ताप तत्ववादके अनुसार ताप एक सूक्ष्म लचीला तरल पदार्थ माना जाता है, जो वस्तुओंके मसामोंमें अर्थात् छिद्रोंमें घुसा हुआ है और द्रव्यके अणुओंके बीचकी खाली जगहोंमें भरा हुआ है। दूसरी कल्पना भी यूनानी सभ्यताके समान ही प्राचीन है और उसमें आधुनिक सिद्धान्तका बीज वर्तमान है। इस कल्पनाके अनुसार ताप वस्तुओंके अणुओंके वेगवान आन्दोलनोंका परिणाम माना जाता है अर्थात् तापको गति-सम्भूत मानते हैं।

### लार्ड बेकन

निरीक्षणोंकी दृढ़ नींव पर कल्पना मन्दिरकी रचना करनेका पहला दार्शनिक प्रयत्न लार्ड बेकनने ही पहले पहल "डी फौरमा केलिडी" नामक ग्रन्थमें किया था। प्राकृतिक दर्शनमें खोजका काम किस प्रकार करना चाहिये, इसका उचित आदर्श लार्ड बेकनने इसी ग्रन्थमें दिखलाया था। ताप अथवा तापोत्पादन सम्बन्धी सभी बातोंका उल्लेख उन्होंने इस ग्रन्थमें किया था। और बड़ी सावधानीसे गहन मननके अनन्तर उनके कारणका न्यायानुकूल निर्णय किया था। घर्षण और दबावसे ताप पैदा करनेके विविध उपायोंपर विचार करनेके बाद, सब तथ्योंसे वह एक ही व्यापक परिणाम निकाल सके कि "ताप गति है।"

लार्ड बेकनका मत सर्वत्र माना जाने लगा था, किन्तु उसके भी दो भेद हो गये। उनके इंगलैण्ड-निवासी अनुयायी यह मानते थे कि जिस गति या स्पन्दसे ताप पैदा होता है वह वस्तुओंके कणोंका ही है; किन्तु यूरोप महाद्वीपवाले अनुयायियोंकी धारणा थी कि वस्तुके कणोंमें गति या स्पन्दन नहीं होता, वरन् एक सूक्ष्म और अत्यन्त स्थितिस्थापक द्रव्यमें होता है जो वस्तुओंके छिद्रोंमें घुसा हुआ है और उनके कणोंके बीच बीचमें विद्यमान है। वह यह भी मानते थे कि उक्त द्रव्य समस्त विश्वमें विद्यमान है; घनेसे घने पदार्थमें भी बड़ी सुगमतासे व्याप्त है। कुछ लोगोंका यह भी विचार था कि यही तरल विशेष विधिसे बदल कर प्रकाश और बिजली पैदा करता है।

### तापतत्ववाद

तथापि उन्नीसवीं शताब्दीके प्रारम्भ तक तापतत्ववादियोंका ज़ोर था। वह यह मानते थे कि तापका कारण गति नहीं हो सकती, वरन् एक अत्यन्त लचीला और आत्म प्रतीकारक तत्व है जो सर्वव्यापी है। पहलेपहल तापतत्वके यही दो गुण माने गये थेः—(१) वह अत्यन्त स्थिति स्थापक है और (२) उसके कण एक दूसरेका निराकरण करते हैं। दूसरे गुणके कारण ही जलते हुए पदार्थ ताप और प्रकाशको मुक्त करते हैं। कुछ दिन बाद डा० क्लेगहार्नने एक और नये गुणकी कल्पना की, जिसका अनुमोदन ब्लेकने भी किया। वह यह थी कि यद्यपि तापतत्वके कण परस्पर निराकरिष्णु (एक दूसरेको ढकेलते हैं और इस प्रकार फैलनेका यत्न करते हैं) हैं तथापि साधारण द्रव्यके कणों द्वारा आकर्षित होते हैं और भिन्न भिन्न शक्तिसे उनको आकर्षित करते हैं। इसलिए यदि कई वस्तु सम्पर्कमें हों तो तापतत्वके कणोंके परस्पर निराकरण और द्रव्य-कणोंके प्रति उनके आकर्षणमें साम्य स्थापित हो जायगा अर्थात् एक वस्तुमेंसे ताप दूसरी वस्तुमें तब तक प्रवेश करता जायगा जब तक कि इन दोनों शक्तियोंमें साम्य स्थापित न हो जायगा।

तापतत्वका मौलिक गुण यह मान ही लिया गया था कि वह अक्षय है और किसी भी साधनसे पैदा नहीं किया जा सकता। ताप तत्वके प्रवेशसे वस्तुएं गरम हो जाती हैं और उनके निकल जानेसे ठंडी। इस बातमें तापतत्वका साधारण द्रव्यकासा व्यवहार था। यह गुण तो शक्तिमें भी माना जाता है, जो दूसरे सिद्धान्तके अनुसार तापका कारण मानी जाती है।

तापतत्वमें भार होता है या नहीं, वह गुरुता सम्पन्न है अथवा गुरुत्व शून्य, इस प्रश्न पर बहुत मतभेद था। कुछ तापतत्व वादी मानते थे कि तापतत्वमें भी गुरुताका गुण है। अन्य कहते थे कि नहीं है। प्रयोगों द्वारा इस बातका निर्णय करना अत्यन्त कठिन था; प्रायः प्रयोगोंके परिणाम विरोधी होते थे। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें विद्वन् मण्डलीमें यह विचार फैल गया था कि तापतत्व भार विहीन होता है; इसी बातमें तापतत्व साधारण द्रव्यसे विभिन्न है। कौण्ट रम्फोर्ड ने इस बातका निर्णय प्रयोगों द्वारा करना निश्चय किया। उन्होंने बड़े बारीक और शिक्षाप्रद प्रयोग करके दिखला दिया कि तापतत्वके भारके जांचनेके विषयमें प्रयत्न करना प्रायः व्यर्थ है।

( असमाप्त )

---

## समालोचना

**ज्योतिषप्रवेशिका**—लेखक, श्रीयुत चेतनदास जैन, बी. ए., हेडमास्टर गवर्नमेंट हाईस्कूल मथुरा, प्रकाशक, साहित्यभवन भंडार, मल्हीपुर पो० सहारनपुर, डबलक्राउन १६ पेजी, पृष्ठ संख्या ६२+१६, सचित्र और जिल्ददार। इसके साथ एक नक्षत्रपट भी अलग है; जिसका आकार ११″×१८″ है।

यह ज्योतिष की एक छोटी सी पुस्तक है, जिसमें गगनमण्डल, नाक्षत्रिक घड़ी, क्रान्तिवृत्त तथा राशिचक्र, गोला, सूर्य, चन्द्रमा, समय या काल विचार, ऋतु, संक्रान्ति, सायन, निरयन, संक्रान्ति, संक्रान्ति समय, पलभा और दिनमान, उदयमान, नवग्रह, उल्का, आकाशगंगा, पंचाङ्ग, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, अधिमास, वार, ग्रहण, लग्न, जन्मपत्रीका बनाना, ज्योतिष सम्बन्धी नामोंकी पौराणिक कथाएं, भारतवर्षके १२१ प्रधान स्थानोंके अक्षांश, पलभा और देशान्तर थल तथा काशी की लग्नसारिणी ( घंटा मिनिटोंमें ) हैं। ज्योतिषकी प्रायः सभी महत्वपूर्ण बातें इतनी छोटी पुस्तकमें भरदी गयी हैं; इसलिए किसी भी विषयका प्रतिपादन ऐसा नहीं हो पाया है जिससे विद्यार्थियोंको कुछ लाभ पहुँचे। नाक्षत्रिक घड़ीका चित्र अच्छा है। यह प्रकरण तथा पलभा और दिनमान वाला प्रकरण उदाहरणोंके साथ प्रबोध हैं; अन्य प्रकरण स्पष्ट नहीं हैं।

इसकी भाषा अच्छी नहीं कही जा सकती। विरामके चिह्नोंके रखनेमें इतनी गड़बड़ है कि अर्थका अनर्थ हो गया है। कहीं कहीं भाव भी अच्छी तरह नहीं प्रकट हो पाया है। विषयकी भी कुछ भूलें हैं; पारिभाषिक शब्दोंके समझानेका प्रयत्न बहुत कम किया गया है इसलिए मुझे संदेह है कि लेखकका यह उद्देश्य "जिस ढंगसे हमने सीखा है उसमें बहुत कठिनाइयां हुईं, ऐसी कठिनाइयां अन्य ज्योतिषके विद्यार्थियोंको न हों और वे सरलतासे इस उपयोगी विषयको ग्रहण कर सकें इस अभिप्रायसे यह पुस्तक लिखी गयी है" नहीं सफल हो सकेगा। त्रुटियोंके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं:—

( १ ) "और महर्षि उस समय सूर्यके सामने होगा, इस तारीखसे पीछे यह सुई जो सप्तर्षिके तीसरे तारे और राजर्षिके पांचवें तारेमें होकर जाती है। ३ मिनट ५६ सिकंड प्रतिदिनके हिसाब से हटती जायगी, एक महीनेमें २ घंटेके करीब और सालभरमें फिर वहीं आजायगी"। [ पृष्ठ १२ ]

इस वाक्यमें 'सुई' का शब्द नहीं मालूम किसके लिए आया है। लेखकने जो भाव प्रकट करना चाहा है वह नहीं प्रकट हुआ है। बीचमें पूर्णविरामका चिह्न छुरीका काम करता है।

(२) "इस नाक्षत्रिक समयसे यह अभिप्राय होता है कि सप्तर्षिका तीसरा तारा इतनी देर पीछे शिरोविन्दु रेखापर होगा वे इसी बातके सूचक हैं"। [ पृ० १३ ]

इसका अर्थ बहुत यत्न करनेपर भी नहीं समझमें आया।

( ३ ) "२० अगस्तका नाक्षत्रिक समय निकालना है" [ पृ० १३ ] यह भ्रमपूर्ण है। इसके

लिए जो उत्तर निकाला गया है उससे सिद्ध होता है कि लेखकने मध्याह्न कालके नाक्षत्रिक समयको ही नाक्षत्रिक समय माना है। इस प्रकार पृष्ठ १३ में जो कुछ लिखा है सब अस्पष्ट है।

(४) "मध्य रेखाको अक्ष भी कहते हैं" [ पृष्ठ १८ ] हमारे ज्योतिषियोंने मध्यरेखाको अक्ष कहीं नहीं लिखा है। हां इसको निरक्षवृत्त अवश्य लिखा है।

(५) "जनवरीमें सूर्य पृथ्वीके पास होता है तो सूर्यकी गति अधिक होती है तब पूरा चक्कर करनेमें कम देर लगती है"। [ पृष्ठ २२ ]

इससे लेखकका भाव तनिक भी नहीं प्रकट होता। इसी सम्बन्धमें २३वें पृष्ठपर जो कुछ लिखा गया है वह मेरी समझ में नहीं आया।

(६) "दिनका छोटा और ऋतुओंका परिवर्तन सूर्यके मार्गपर निर्भर है"। [ पृष्ठ २४ ]

(७) "नक्षत्रोंकी चाल सूर्यकी चालसे कुछ थोड़ी भिन्न होनेके कारण अश्विनी नक्षत्रका आरंभ वसंत सम्पात विन्दुके सामने नहीं है"। [पृष्ठ २४]

इस कारणसे इतना अंतर नहीं पड़ सकता और न सूर्यकी चालके कारण ही यह अंतर हुआ है। इसका कारण यह है कि पृथ्वीके पूर्ण गोल न होनेसे चन्द्रमा सूर्य और ग्रहोंके आकर्षणका प्रभाव ऐसा पड़ता है कि विषुवद्वृत्त और क्रान्ति वृत्त का लग्न विन्दु अर्थात वसंतसम्पातविन्दु प्रति वर्ष ५० विकलाके हिसाब से पच्छिम की ओर खसक रहा है।

(८) "रेलवे स्टेशनों पर जो घड़ियां होती हैं उनमें मद्रासका समय रखा जाता है।" [पृष्ठ ३०]

यह बहुत पुरानी बात है। अब ऐसा नहीं किया जाता। अब तो भारतवर्षका स्टैन्डर्ड टाइम वह समय है जो ग्रीनिचसे साढ़े पांच घंटे आगे होता है। मदरासका समय इससे ६ मिनट पीछे है जैसा कि लेखकने स्वयम् सारिणीके ४ थे पृष्ठ पर भी लिखा है।

अधिक उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं। लेखकसे मेरी प्रार्थना है कि दूसरे संस्करणमें इसकी भाषा शुद्ध कर दी जाय और इतने ही विषयको कमसे २०० पृष्ठोंमें उपपत्तिके सहित लिखा जाय तो इस पुस्तकसे यथार्थ लाभ हो सकता है।

सुगम ज्योतिष—लेखक, कूर्माचलीय पण्डित देवीदत्त जोशी (सन्ध्या दर्पण कार), मुद्रक लौ जर्नल प्रेस इलाहाबाद तथा प्रकाशक स्वयम् जोशीजी। सजिल्द पृष्ठ संख्या ७८ + ८१७ + लीथोके छपे अनेक चित्र; मूल्य ५)।

यह ज्योतिषकी बहुत बड़ी पुस्तक है। ३६ पृष्ठकी भूमिकामें लेखकने ज्योतिषशास्त्र पर एक अच्छी समालोचना लिखी है। फलित ज्योतिष पर विद्वान लेखकके जो विचार हैं वह बहुत ही परिष्कृत और तर्कयुक्त हैं। सायन और निरयन गणना का अंतर प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता है इसलिए संशोधनकी आवश्यकता है, यह जोशीजीको मान्य है। परन्तु इसके लिए आपका मत है कि "भास्कराचार्यके समान किसी आचार्यका जन्म हो तभी यह जीर्णोद्धार हो सकता है अन्यथा कठिन विषय है" [ पृष्ठ ७, भूमिका ] "सूर्य इस सौर जगतका केन्द्र है। इसीके चारों ओर सब ग्रहगण घूमते हैं" [ पृ० ११ भूमिका ] यह भी विद्वान लेखकको मान्य है।

थोड़ी सी संस्कृत व्याकरण सीखकर अशुद्ध संस्कृत लिखने तथा बोलने वाले ज्यतिषियोंके लिए यह सम्मति है कि "जब तक उन्हें व्याकरणका बोध अच्छे प्रकारसे न हो जावे तब तक ज्योतिष सीखनेका दुराग्रह न करें..."। यह जिस उद्देश्यसे लिखा गया है वह विलकुल ठीक है कि जब तक किसी भाषामें शुद्ध शुद्ध लिखना न आवे तब तक यथार्थ भावका प्रकट करना कठिन है जैसा कि मैं इस "सुगम ज्योतिष" में भी कहीं कहीं देखता हूँ। इसमें भी हिन्दी भाषाकी शुद्धता पर वैसा ही ध्यान दिया गया है जैसा संस्कृतके अधिकतर ज्योतिषी करते हैं।

इस पुस्तकमें संस्कृतके ज्योतिष ग्रन्थोंका संग्रह है। परन्तु यह नहीं दिखलाया गया है कि श्लोक कहांसे लिये गये हैं; यह बड़ी भारी त्रुटि है। जोशीजी भी इस त्रुटिको समझते हैं परन्तु इसको दूर न करनेको कारण यह बतलाते हैं-"इस पुस्तक को छपवानेके विषयमें मेरा कोई उद्देश्य नहीं था। इसीलिए मैं यह न लिखता गया कि कौन श्लोक किस ग्रन्थका है। अब इस बातको लिखना प्रायः असम्भव है...अवकाश बहुत कम मिलता, यथोचित स्वास्थ्य न होनेसे अधिक परिश्रम भी नहीं हो सकता है। परन्तु दो एक सज्जनोंने इस पुस्तकके छपवानेके लिए मुझे विवश किया... इत्यादि। ऐसी दशामें मुझे जोशी जीसे कोई शिकायत नहीं, इसीको सौभाग्य मानता हूँ कि उन्होंने इतना कर दिया।

इस पुस्तकमें आठ अध्याय क्रमसे यह हैं:—

(१) संज्ञाध्याय, (२) जातकाध्याय, (३) दशाध्याय, (४) वर्षफलाध्याय, (५) संस्काराध्याय, (६) मुहूर्ताध्याय, (७) प्रश्नाध्याय और (८) संहिताध्याय। अंतमें एक वर्णक्रमानुसार सूची है जो बहुत अच्छी है। हिन्दी पुस्तकोंमें ऐसी सूची बहुत कम देखनेमें आती है।

(१) संज्ञाध्यायमें गणित और फलित ज्योतिष सम्बन्धकी बहुत से पारिभाषिक शब्दोंकी व्याख्या है। मेरी समझमें यह अध्याय उतना स्पष्ट नहीं हुआ है जैसा होना चाहिये। कहीं कहीं विषयकी भी अशुद्धियां हैं। पहले पृष्ठमें तारोंको भी सौर जगत्में माना गया है परन्तु ऐसा नहीं है। दूसरे पृष्ठमें सूर्य पृथ्वीसे ३००० गुना बड़ा माना गया है यह भी अशुद्ध है।

६ वें पृष्ठमें एक श्लोक है जिसमें ज्योतिष शास्त्रके प्रवर्तकोंके नाम हैं। इसके अर्थमें ब्रह्माके लिए ब्रह्म गुप्त, आचार्यके लिए "भास्कराचार्य जिनका बनाया हुआ सूर्य सिद्धान्त है" लिखा है। परन्तु यह अर्थ कोई माननेको तैयार नहीं है। श्लोकमें ब्रह्मा उसको कहा गया है जिसने मूल ब्रह्मसिद्धान्त लिखा है और जिसके आधार पर ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त बनाया है जैसा कि ब्रह्मगुप्त जी ने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तमें * स्वयम् लिखा है:—

ब्रह्मोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत्र शलथी भूतम्।
अभिधीयते स्फुटं तज्जिष्णु सुत ब्रह्म गुप्तेन ॥२॥

आचार्य का अर्थ अधिकतर लोग सूर्य और कुछ लोग बृहस्पति करते हैं। यदि सूर्यके अर्थमें भास्कराचार्य रखा गया है तो भी भ्रमजनक है क्योंकि सूर्यका पर्याय भास्कर अवश्य है, परन्तु भास्कराचार्यके नामसे एक प्रसिद्ध आचार्य दूसरे हो गये हैं जिन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि लिखा है। इसलिए सूर्यके लिए भास्कराचार्य लिखना ठीक नहीं।

१६ वें पृष्ठ पर अहर्गण की परिभाषा अंग्रेज़ी में दी गयी है 'जिससे केवल हिन्दी जाननेवालों को इसका ज्ञान कुछ भी नहीं हो सकता। इतने पर भी परिभाषा पूर्ण नहीं है।

२३ वें पृष्ठमें लिखा है:—

सन् ईस्वी—५८२=सन् हिजरी,

सन् हिजरी—१०=सन् फ़सली,

यह सर्वदाके लिए सत्य नहीं है। आजकल इस सूत्रसे काम निकल सकता है; परन्तु यदि इसी नियमसे भूत या भविष्यकालके किसी हिजरी सन् का ईस्वी या फसली सन् निकालना चाहें तो शुद्ध नहीं है; क्योंकि हिजरी सन् ३५५ या ३५५ दिनोंका होता है और फसली या ईस्वी सन् ३६५। दिनोंका। इसलिए प्रायः ३३ वर्षके बाद हिजरी सन् १ बढ़ जाता है।

४४ वें पृष्ठ पर लिखा है "जब चन्द्रमा सूर्यसे १३१/६ अंश दूरी पर हो तो एक नक्षत्र होता है।" इसका तात्पर्य क्या है सो समझ में नहीं आया।

---

* सुधाकर द्विवेदीका सम्पादित ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त पृष्ठ १।

१४० वें पृष्ठमें लग्न जानने के लिए जो कुछ लिखा गया है उसकी भाषा स्पष्ट नहीं है इसलिए भाव व्यक्त नहीं हुआ है इत्यादि।

लग्न इत्यादि निकालनेके जो नियम दिये गये हैं उनको उदाहरण देकर समझाया भी गया है; परन्तु उपपत्ति न रहनेसे इन नियमोंको बिना रटे काम नहीं चल सकता, इसलिए कठिन हो जाते हैं।

इन सब त्रुटियों के रहते हुए भी संज्ञाध्यायमें बहुत सी बातें इस रीतिसे बतलायी गयी हैं कि वह बहुत जल्द ध्यान में आ जाती हैं। अन्य ७ अध्याय बहुत अच्छे हैं। फलित ज्योतिषमें जिसे रुचि हो और जो यह विद्या सीखना चाहे उसके लिए यह पुस्तक बहुत आवश्यक है।

कुछ त्रुटियोंकी चर्चा इसलिए की गयी कि अगले संस्करणमें इन पर विशेष ध्यान दिया जाय और इस परमोपयोगी पुस्तकसे यह कलंक भी हटा दिया जाय, साथ ही उन सज्जनोंको भी सूचना मिल जाय कि इस पुस्तकमें बहुतसे गुण रहते हुए भी कुछ दोष हैं जिनसे वे निराश न हों और पहला ही अध्याय पढ़कर इसको अलग न रख दें।

---

## प्राप्ति स्वीकार

इन सज्जनोंसे विज्ञान परिषद्का वार्षिक चन्दा प्राप्त हुआ है, जिसके लिए धन्यवाद है:—

प्रोफेसर बी. एस. तम्मा, मेरठ ... १२)
प्रोफेसर एच. आर. दिवेकर, पूना ... १२)
श्रीमान् ए. जी. शिरेफ, सीतापुर ... १२)
" एस. आर. डेनियलस, लखनऊ १२)
" राजा रामपाल सिंह, ... २४)
प्रोफेसर लालजी श्रीवास्तव अजमेर ... २४)
श्री० इकबाल नरायण गुरटू ... १२)
" शारदाप्रसाद, सतना ... १२)

गोपालस्वरूप भार्गव
कोषाध्यक्ष, विज्ञान परिषद

---

## विज्ञान मंदिर

विज्ञान परिषद्का कार्य स्थायी करनेके लिए एक मन्दिरकी परमावश्यकता है। विज्ञान तथा विज्ञान परिषद्के प्रेमियोंसे निवेदन है कि यथा शक्ति इस पवित्र कार्यमें धन देकर सहायक हों। आशा है कि हमारी प्रार्थना सफल होगी।

ब्रजराज, एम. ए., बी. एस-सी.,
एल-एल. बी.

---

## निवेदन

विज्ञान परिषद्के सभ्योंसे विनम्र निवेदन है कि वह चन्देका रुपया शीघ्र भेज दें; बिना धनके परिषद्का कार्य संचालन बड़ा कठिन है। निम्न-लिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, १५ मार्च तक सेवामें भेज दी जायंगी:—

१—मनोरञ्जक रसायन—ले० प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव।

२—वर्षा और वनस्पति—ले० श्री० शंकरराव जोषी।

३—सूर्यसिद्धान्त (मध्यमाधिकार)—विज्ञान भाष्य सहित—ले० श्री० महावीर प्रसाद बी. एस-सी., एल. टी., विशारद

इन पुस्तकोंके अतिरिक्त स्वर्गीय पं० सुधाकर द्विवेदी रचित समीकरण-मीमांसा भी छप रही है। लगभग २५० पृष्ठ छप चुके हैं। जो अध्याय चल रहा है उसके समाप्त होने पर प्रयत्न किया जायगा कि जिल्द बंधवा कर आपकी सेवामें भेज दी जाय।

ब्रजराज, एम. ए., बी. एस-सी.,
एल-एल. बी. मन्त्री

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १८ } कुम्भ, संवत् १९८० । { संख्या ५

## मक्खियों द्वारा रोग कैसे फैलते हैं ?

[ ले०—डा० दयानिधान जी ]

मक्खियों द्वारा रोग कैसे फैलते हैं, इस बातके जाननेके लिए यह मालूम होना ज़रूरी है कि रोग फैलने किस तरह हैं। जितने भी रोग फैलने-वाले कहे जा सकते हैं, उनकी छूत रोगी मनुष्य-से तन्दुरुस्तको लगती है और उसके शरीरमें रोग उत्पन्न कर देती है। छूत लगनेका यह मतलब नहीं है कि केवल स्पर्श मात्रसे रोग उत्पन्न हो जाता है। नहीं, छूत लगना जिसको कहा जाता है उसमें होता यह है कि रोगकी "छूत" अर्थात् उसका कारण विशेष ( Causative factor ) बीज रूपमें मनुष्यके शरीरमें प्रवेश कर जाता है और वहां बीजकी भांति वृद्धि पाकर बढ़ता है और वही रोग विशेष जिसकी छूत लगी होती है उस तन्दु-रुस्त आदमीको भी हो जाता है।

यह "छूत" एक जीवित जीवाणु होता है, जिसको जीवित रहनेके लिए एक नियमित ताप-मान और आर्द्रता (Temperature and moisture) की ज़रूरत होती है और जिसको खानेको जैवांश ( organic matter ) चाहिये। यह तीनों वस्तु उसको उस तन्दुरुस्त आदमीके शरीरसे प्राप्त होती हैं, जिसमें वह प्रवेश कर पाता है।

यह जीवाणु स्वयम् अपनी जगह छोड़कर एक प्राणीसे दूसरेमें नहीं जा सकते। इनकी छूत किसी न किसी वस्तु द्वारा लगती है। अर्थात् वह एक प्राणी से दूसरे प्राणीतक किसी अन्य वस्तु द्वारा ही पहुँच सकते हैं। यह तभी सम्भव है जब उक्त वस्तु रोगी तथा उस आदमीके जिसको छूत लगी है दोनोंके काममें रही हो। उदाहरणके लिए हवा ले लीजिये। इनफिलुएंज़ा रोग विशेषतः इसीके द्वारा फैलता है। इसी तरह हैजा संग्रहणी इत्यादि रोग खाने पीनेको चीज़ों द्वारा फैलती

है। परन्तु इस विषयमें यह बताना भी ज़रूरी है कि हवा पानी इत्यादिमें रोगकी छूत कैसे पहुँचती है। रोगीका शरीर श्लेष्मा, मूत्र, विष्ठा, थूक, खकार पसीने द्वारा इन जीवाणुओंको अपनेसे बाहर निकालनेका उद्योग किया करता है। इनफिलुएंजा निमोनिआ इत्यादि श्वास रोगोंमें थूक खकार श्लेष्मा द्वारा जीवाणु बाहर फेंके जाते हैं। हैज़ा संग्रहणी मोतीझिरा अंत्रों अर्थात् आंतोंके रोग हैं। उनकी छूत वमन, मूत्र तथा विष्ठा द्वारा बाहर निकलती है। अस्तु इन रोगोंकी छूतके तन्दुरुस्त आदमियों तक पहुँचनेमें भी भेद है। इनफिलूएंजा निमोनिया आदिके रोगियोंका श्लेष्मा जब हवामें उड़ता है तब उस हवा द्वारा उन आदमियोंकी श्वासेन्द्रियोंमें पहुँचता है जो उसी हवामें श्वास लेते हैं। अर्थात् रोगीके समीपवर्ती मनुष्यों, पर प्रभाव पड़ता है। परन्तु विसूचिका इत्यादिके रोगियोंके वमन विष्ठा इत्यादिसे छूत इस भांति नहीं लग सकती। क्योंकि इनकी छूतके लिए यह आवश्यक है कि वह किसी खाने पीनेकी वस्तु द्वारा तन्दुरुस्त मनुष्यके शरीरमें पहुँचे; अन्यथा वह आमाशय तथा अंतड़ियोंमें नहीं पहुँच सकती और जब तक यह छूत अर्थात् इन रोगोंके उत्पादक जीवाणु किसी आदमीकी अंतड़ियोंमें पहुँच कर पलते नहीं यह रोग हो नहीं सकते। इसी कारण यह देखा गया है कि बहुत करके इनकी छूत पानी द्वारा फैलती है। ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि रोगी प्यासके वश होकर कुएके पास जा पड़ा है; जिस किसीका भी घड़ा मशक अथवा डोल मिला उसीसे उसने पानी पिया और वमन अथवा शौच से निवृत्त होनेके लिए पानी भी लिया। शक्ति न होनेके कारण वहीं वमन और पाखाना किया; रस्सी डोल इत्यादि द्वारा उनका अंश कुएमें पहुँचा और उस कुएसे पानी लेनेवाले मोहल्लेके मोहल्लेमें रोग फैल गया। घरोंमें रोग उच्छिष्ट द्वारा अथवा रोगीके पात्रोंमें खाने पीनेसे भी फैलते हैं। मक्खियों द्वारा भी यही रोग विशेषतः फैलते हैं।

मक्खियोंके शरीरकी रचनाके विषयमें लिखते समय मैंने बतलाया था कि मक्खीके सारे शरीर पर छोटे छोटे बाल होते हैं। उसके पावों पर भी बालोंके गुच्छे होते हैं; इससे यह बात बहुत सहजमें ही समझमें आ सकती है कि यदि किसी घरमें कोई विसूचिका अथवा संग्रहणी जैसे रोगका रोगी पड़ा हो और उसका वमन अथवा पाखाना मक्खीको खानेको मिल जाय, तो मक्खी उस पर अवश्य बैठेगी और उसे खायगी भी। अस्तु उसके पेट तथा थैलीमें उस रोगकी छूत अर्थात् जीवाणु पहुँच जायगें और उसके पैरों पर भी वह विष्ठा अथवा वमन लग जायगा और इनमें उस रोगके जीवाणु भी मौजूद ही होंगे। अब यदि यह मक्खी किसी खाद्य पदार्थ पर जा बैठे तो इन रोगोंकी छूत सहजमें ही उस खाद्य पदार्थमें पहुंच जायगी; क्योंकि जो वमन अथवा विष्ठा पावोंमें लगी है उसका कुछ अंश पांवों परसे उस पदाथ पर अवश्य ही लग जायगा, जिस पर वह जाकर बैठेगी।

इसी तरह मक्खीकी आदतके विषयमें भी मैं बता आया हूं कि मक्खी जब दत्त चित्त बैठती है तो अपनी सब टांगें उस चीज़ पर रख लेती है और जब वहांसे उड़ती है तो किसी दूसरी जगह बैठ कर अपने अगले पिछले पैरोंसे पर, पीठ और सिरको साफ किया करती है। इस तरह इन सनी हुई टांगों द्वारा उसका सिर, उसके पर तथा पीठ पर छूतका अंश सहजमें ही पहुँच जाता है। अब यदि यह मक्खी घी दूध अथवा पानी पर जाकर बैठे और उसमें गिर पड़े तो भी छूत इस घी दूधमें सहज ही पहुँच जायगी और उसके द्वारा तन्दुरुस्त आदमियोंमें पहुँच कर रोग प्रकट कर देगी।

जो कहीं उसका पेट खूब भरा होनेके कारण उसको कौतूहल की सूझी और किसी खाने पीने की चीज पर बैठ कर वह अपने पेटमें भरे पदार्थ को निकाल निकाल कर उगलने और निगलने लगी अथवा उसी पर बैठ कर हग दिया तब तो

छून तो छूत स्वयं वमन अथवा विष्टांश भी उसमें पहुँच जायगा।

इसी कारण यह कहा जाता है कि विसूचिका, संग्रहणी, अतिसार, मोतीझिरा इत्यादि रोग मक्खियों द्वारा भी फैलते हैं। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध भी हो गया है कि यह केवल कल्पना मात्र ही नहीं है। इन छूत द्वारा फैलनेवाले रोगोंकी छूतका किसी वस्तु द्वारा फैलना तभी सिद्ध हो सकता है जब उस वस्तु पर उक्त छूतके जीवाणु जीवित पाये जायं और वहांसे लेकर वह पाले जा सकें। प्रयोगशाला (Laboratory) में यह जीवाणु जैव पदार्थोंके घोलों (Solutions of organic matter) पर पाले जाते हैं। अर्थात् जीवाणु और जैव पदार्थका घोल नलियों (tubes) अथवा रकाबियों (Plates) में डाल कर ऐसे यंत्रोंमें रख दिये जाते हैं जहां उनको तापमान तथा आर्द्रता नियमित मात्राकी मिल सके। ऐसी अवस्थामें जीवाणु जैवांशको खा खा कर वृद्धि पा जाते हैं और प्रयोगोंके काममें आते हैं। अस्तु मक्खीके शरीरकी रचना तथा उसकी आदतोंसे यह कल्पना तो सहज ही उपस्थित होती है कि मक्खी द्वारा इन रोगोंका प्रसार होना सम्भव है। अब यदि प्रयोगों द्वारा जीवाणु भी जीवित उसके शरीरमें से मिल जायं और पाले जा सकें तो इस बातमें कोई सन्देह नहीं रहता कि यह जीवाणु मक्खीके शरीर द्वारा खाने पीनेकी चीज़ोंमें भी पहुँच जाते हैं। इस बातके सिद्ध करनेके लिए जो प्रयोग किये गये हैं उनमें से कुछ का उल्लेख मैं यहां करता हूं। यह सब प्रयोग डा० हार्वडकी पुस्तक "House fly" अथवा डा० ग्रहम स्मिथकी पुस्तक "Flies & Diseases" से लिये गये हैं।

१—यह सिद्ध करनेके लिए कि मक्खीके पैरों पर चिपक कर जीवाणु एक वस्तुसे दूसरी में पहुँच सकते हैं एक डाक्टर साहबने एक रकाबी में जिलाटीन (gelatin) का घोल भरकर रख दिया और कमरेमें की फिरती हुई एक मक्खीको लाकर उस पर बिठा दिया। मक्खी जैसे जैसे उस जिलाटीन पर घूमी उसके पावोंकी रेखा उसमें बनती गई। उस रकाबीको पालन यंत्रमें रखकर (Incubator) जीवाणुओंको नियमित तापमान तथा आर्द्रता उपस्थित करने से इस रेखाके चारों ओर जीवाणुओंके गुच्छेके गुच्छे पैदा हो गये।

२—मक्खीके शरीर, पंख तथा टांगोंपर जीवाणुओंका मिलना।

मैं यह ऊपर बता आया हूँ कि मक्खीके हाथ मलने और अगली पिछली टांगों द्वारा पंख तथा पीठको साफ करनेकी आदतके कारण उसके शरीर-पर जीवाणु लग जानेकी कल्पना की जाती है। इसी को सिद्ध करनेके लिए डा० फर्थ और हैरक्सने एक मोतीझिरेके रोगीकी विष्टा ली, जिसमें मोतीझिरेके जीवित जीवाणु मौजूद थे और उसको एक रकाबी में फैला कर रख दिया और मक्खियोंको उसपर मुदित मन विचरने दिया। तत्पश्चात् उन्होंने दो रकाबियोंमें जूस (Soup) भरा। और एक चिमटी-को लेकर आगमें गरम कर डाला। आगमें गरम करनेका प्रयोजन यह था कि चिमटी जीवाणु रहित (Sterile) हो जाय अर्थात् उसपर लगे जीवाणु भस्म हो जायं, जिसमें यह सन्देह न हो सके कि यह जीवाणु चिम्टी ही पर लगे होंगे। अब इस चिमटी-से इन्होंने उन मक्खियोंकी टांग पंख इत्यादि उखाड़ उखाड़ कर एक जूसकी रकाबीमें फैला दिये। दूसरीको वैसेही रहने दिया। पालनयंत्रमें रखने पर पंख और टांगोंवाली रकाबीमें पंख और टांगोंके चारों ओर मोतीझिरेके जीवाणु गुच्छेके गुच्छे मौजूद थे। परन्तु दूसरी रकाबीमें जीवाणु मात्रका नाम भी न था।

३—मक्खीकी पाचन इन्द्रियके विषयमें मैं लिख चुका हूं कि—

(अ) वह बहुत सरल होती है; जीवाणु इत्यादि स्थूल पदार्थोंका पाचन नहीं कर सकती। यह पदार्थ शौच द्वारा ज्योंके त्यों निकल जाते हैं।

( ब ) थैलीमें कई कई दिनका भोजन रखा रहता है। जब ज़रूरत पड़ती है उस समय मक्खी थैलीमेंसे निकाल कर उसे खा लेती है।

(३) थूथनीके छिद्र द्वारा जीवाणु मक्खीके पेट तथा थैलीमें पहुँच सकते हैं।

इन तीनों बातोंपर एक साथ विचार करनेसे स्वभावतः यह कल्पना उठती है कि मक्खी जो वमन विष्ठा श्लेष्माको बड़े चावसे खाती है उसके विष्ठा तथा वमनसे भी खाने पीनेकी चीज़ोंमें छूत पहुँच सकती है, अस्तु इन कल्पनाओंकी सत्यता का निर्णय करने को—

(१) डा० फर्थ और हैरक्सने थोड़ीसी मक्खियोंको पकड़कर मोतीझिरेके रोगीकी विष्ठा खिलायी और फिर उन्हें एक बक्समें बन्द कर दिया, इस बक्समें उनके हगनेके लिए सफेद स्वच्छ कागज़ बिछा दिया और खानेको रकाबियोंमें ऐसे ऐसे पदार्थोंके घोल रख दिये जिन्हें मक्खी सहर्ष खायं और जिनमें जीवाणु यदि पहुँच जायं तो पल सकें। कुछ दिन पश्चात् रकाबी हटा ली गई। उनके घोल रखते समय जीवाणु रहित थे परन्तु उठाते समय मोतीझिरेके जीवाणु मौजूद पाये गये। यह जीवाणु केवल मक्खियोंके वमन द्वारा ही वहां पहुँच सकते थे।

कागज़ पर जो मक्खियोंका पैखाना था उसका घोल बनाकर जब पालनयंत्रमें रखा गया तो उसमें भी मोतीझिरेके जीवाणु मौजूद मिले।

(२) कामतीमें जो फौज रहती थी उसमें मोतीझिरा फैल गया। मेजर फैकने मोतीझिरा फैलनेका कारण ढूंढनेको भेजे गये। उन्होंने सब बातोंकी देख भाल कर मक्खियों द्वारा मोतीझिराका फैलना निश्चित किया। उसके सिद्ध करनेके लिए जो प्रयोग उन्होंने किये उनमेंसे एक यह था कि उन्होंने बावरची खानेमें से बारह मक्खी पकड़ीं। फिर सूइयांको लेकर उसको स्पिरिट लम्प पर खूब तपाया जिसमें सूई पर कोई जीवाणु लगा न रह जाय। फिर उन मक्खियोंको एक एक करके सूईमें बींधा। और सूई पर बींधी हुई मक्खियोंको भी फिर अलग अलग स्पिरिट लम्प पर भूंजा। इस भूंजनेका उद्देश्य यह था कि जो जीवाणु मक्खियोंके शरीर टांग अथवा पंखों पर लगे होंगे वह भस्म हो जांय और बाहरसे मक्खी जीवाणु रहित (Sterile) हों। अब उन्होंने उन मक्खियोंको नमकके घोलमें खूब धोया और उस धोवनको एक रकाबीमें रख लिया। फिर एक जीवाणु रहित खरल (mortar) में उसी नमकके घोल द्वारा उन मक्खियोंको रगड़कर उनका भी घोल बना लिया। नमकका पानी, मक्खियांके धोवन वाला नमकका पानी तथा मक्खियोंके घोलवाला नमकका पानी तीनों अलग अलग रकाबियोंमें भर कर जीवाणु पोषक ( Incubator ) में रख दिये गये। पोषण अवधि समाप्त होने पर पहली दोनों रकाबी जीवाणु रहित ( Sterile ) थीं; तीसरी अर्थात् मक्खियोंके घोलवाली रकाबीमें मोतीझिरेके जीवाणुओंके गुच्छे ( Colonies ) मौजूद थे। यह जीवाणु केवल मक्खियोंके पेट तथा थैलीसे आ सकते थे।

( ३ ) डा० ग्रहम स्मिथने जीवाणुओंका घोल बनाया। उसमेंसे आधा तो लेकर उन्होंने रकाबियोंमें जीवाणु पोषणके लिए रख दिया और आधा मक्खियोंको खिला दिया। तत्पश्चात जिन मक्खियोंको उन्होंने घोल खिलाया था उनको मार कर उनकी थैलियां उन्होंने निकाल लीं और दूसरी रकाबियोंमें इन थैलियोंको चीर चीर कर इनके अन्दर भरे हुए भोजनांशको फैला दिया और इन रकाबियोंको भी जीवाणु पोषणके लिए रख दिया। जब दोनों रकाबियोंके जीवाणुओंकी पड़ताल की गई तो दोनोंमें उन्हीं जीवाणुके गुच्छे पाये गये जिनका घोल उक्त डाक्टर साहबने बनाया था। इससे सिद्ध हो गया कि थूथनी द्वारा जीवाणु मक्खीके पेट तथा थैलीमें पहुंच सकते हैं।

वमन और विष्टा द्वारा यह भोजनके साथमें चूसे हुए जीवाणु फिर बाहर निकलते हैं या नहीं, इसकी भी जांच डा० ग्रहम स्मिथ साहबने की तो

उन्हें पता लगा कि अवश्य विष्टामें तो एक दिनके खाये हुये जीवाणु छः छः दिन तक निकलते हैं।

इन उद्धरणोंके पढ़ने से यह सहजमें ही ज्ञात हो जाता है कि मक्खी किस तरह रोग फैलाती है। उसका शरीर उसके बाल उसके पंख उसकी विष्टा उसका वमन सब ही तो जीवाणुओंसे लदे रहते हैं। यही कारण है कि हमारी माताएं घावपर मक्खीका बैठना बहुत ही बुरा समझती हैं। परन्तु अब आवश्यकता है कि उसका घरमें होना बुरा समझा जाय।

इन सब बातोंको देख और जानकर ही तो कैमब्रिजके आचार्य न्यूटल और मि० जपसनने कहा था कि यह सिद्ध हो गया है कि मोतीझिरा और हैज़ा मक्खियों द्वारा फैलते हैं और स्वास्थ्य रक्षा विभागके कर्मचारियोंको अबसे मक्खीकी ओर कड़ी दृष्टि रखनी पड़ेगी। जीवाणु विद्याके अनुवेषणोंसे यह सिद्ध हो गया है कि मक्खी रोग पैदा करनेवाले जीवाणुओंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जाती है।

"यह भी याद रखना आवश्यक है कि मक्खी जिस भोज्य पदार्थ पर भी बैठती है वह उसको बुरी तरह दूषित कर देती है। यदि मक्खी भोज्य पदार्थ तक पहुँचनेसे पहले हैज़ा, मोतीझिरा आदि रोगसे दूषित किसी मलयुक्त वस्तु पर बैठ गई है तो उस भोज्य पदार्थमें उस रोगकी छूत निस्सन्देह पहुँच जायगी। मक्खीका बाहरसे ही शरीर दूषित नहीं होता उसकी आंतोंमें भी दूषित द्रव्य भरा रहता है, जिसमें दोषकी मात्रा बहुत घनी होती है और जिसकी विशेषता यह है कि वह आंतोंसे सीधा उस पदार्थ पर पहुँचता है जिसपर वह जाकर बैठती है।"

"एक मक्खीकी विष्टामें दोषकी मात्रा उससे अधिक होती है जो उतने ही दूषित पानीमें हो सकती है। एक मक्खीकी विष्टा एक बालटी दूषित दूध अथवा पानीसे ज्यादह रोग प्रसारक है।"

---

# अपराधीकी खोज

इसमें सन्देह नहीं कि सभ्यताकी वृद्धि अथवा विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ सुसभ्य पश्चिमीय देशोंमें नाना प्रकारके अपराध और अपराधियोंकी संख्यामें भी उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। इधर अपराधियोंको गिरफ़ार करनेके लिए नित्य नई नई वैज्ञानिक प्रणाली आविष्कृत हो रही हैं, उधर अपराधी भी कानूनकी आंखमें धूल डालकर आत्मरक्षाके लिए नए नए तरीकोंका अनुसन्धान कर रहे हैं। इस सम्बन्धकी बहुत सी बातें समय समय पर छपती भी रहती हैं। कुछ ग्रन्थ भी इस विषयके प्रकाशित हुए हैं। जीवन-संग्रामकी यह कहानियां बड़ी मनोरंजक हैं।

इस प्रबन्धमें हम कुछ पश्चिमीय देशोंके प्राकृत दृष्टान्तोंको दे कर यह दिखलानेकी चेष्टा करेंगे कि उन देशोंमें जासूस किस प्रकार मानव-शिकार किया करते हैं। लण्डन, पेरिस, बर्लिन तथा वियेनाके गुप्तचर गण जिन जिन युक्तियों द्वारा अपराधियोंको गिरफ़ार करते हैं, उनका कौतूहलवर्धक वर्णन भी करेंगे। इंगलैण्ड फ्रांस, जर्मनी तथा आस्ट्रिया इन चार देशोंमें अपराधियोंको गिरफ़ार करनेकी प्रणालियां जो नीचे लिखी जाती हैं, बिल्कुल सत्य हैं।

### लण्डनमें विचित्र हत्या रहस्य

लण्डन शहरके पूर्वीय भागके एक तिमंज़िले मकानमें स्माइथारस नामका एक व्यक्ति निवास करता था। वह मकान एक ऐसी जगह पर था कि सहसा किसीकी भी दृष्टि उस ओर नहीं जाती थी। स्माइथारस प्रायः विगत बीस वर्षोंसे नाना प्रकारकी नई और पुरानी वस्तुओंको खरीद बिक्री कर प्रचुर द्रव्य अर्जन कर रहा था। इस काममें वह सर्वथा निपुण था। लोग बहुधा उसे कोसा करते थे, किन्तु वह प्रसन्न मुखसे उसे सहन

कर लिया करता था। कोसना ही क्यों, कभी कभी लोग उसे मार डालनेका भय भी दिखलाया करते थे। जो लोग उसे कोसते, उनकी बातों पर तो वह उतना ध्यान नहीं देता था, किन्तु जो उसे प्राण भय दिखलाते, उनकी बातोंको वह कभी भूलता भी नहीं था। ऐश्वर्य-वृद्धिके साथ साथ आत्म-रक्षाकी चिन्ता भी उसे प्रबल हो उठी। वह एक साधारण दरिद्रकी नाईं अपना जीवन निर्वाह कर रहा था। वह अपने ऐश्वर्यकी बात कभी किसीसे भूल कर भी अपने काम तथा व्यवहारसे प्रकट होने नहीं देता था। कभी कोई उसकी हत्या न कर डाले वा उसके धनको छीन न ले, इसी दुर्भावनासे अधीर हो उसने इस आडम्बर हीन अट्टालिकाको खरीदा था। उस अट्टालिकाके द्वारकी खिड़कियां अत्यन्त मजबूत तो थीं, किन्तु थीं भद्दी। उसके इस मकानके खरीदनेका विशेष अभिप्राय भी यही था कि सहसा किसी लोभीकी पाप दृष्टि इस ओर नहीं पड़ेगी। मकानमें प्रवेश करनेके सभी रास्तोंमें बड़े बड़े मजबूत लोहेकी छड़ोंको लगा कर उसने उसमें ताले दे रखे थे। उसे यह भली भांति मालूम था कि चोर और डकैत नाना उपायोंसे घर-में घुस जाया करते हैं। इसी कारण उसने अपने घरके चारों ओर बिजलीके तार इस प्रकार लगा रखे थे कि खिड़कीकी छड़ वा दरवाजेके किवाड़-के स्पर्श मात्रसे ही वैद्युतिक घंटा बज उठता था। संयोग वश कोई वैद्युतिक तारके रहस्यका भेद जान कर उसे काट न गिरावे, इसका प्रतिविधान भी उसने पहलेसे ही कर रखा था। तारके साथ उसने शीशा इस प्रकार संलग्न कर रखा था कि कटा हुआ तार शीशेके भारसे नीचे गिर जाय और साथ ही साथ बन्दूककी गोलीकी आवाज़की नाईं वैद्युतिक घंटा बज उठे और गृह स्वामीको सतर्क कर दे। इस प्रकार अपने आवासभवनको सुरक्षित कर स्माइथारस अकेला उस घरमें निवास करता था। वह भूलकर भी किसी व्यक्तिको किसी दिन अपने घरमें प्रवेश करने नहीं देता था।

इस प्रकारकी सावधानतासे रहते हुए भी एक दिन व्यवसायियोंके यह देख कर आश्चर्यका ठिकाना न रहा कि उसके घरके बाहर आर्डर दे कर मंगाया हुआ माल सवेरेसे योंही पड़ा है, कोई उसे भीतर नहीं ले जाता। इस प्रकार एक नई घटना घटती देख कर प्रायः सभी लोगोंके मनमें सन्देह हुआ। पुलिसको इत्तिला दी गई। पुलिस घटना-स्थलपर आई, और दरवाजा तोड़कर उसके घरके भीतर प्रवेश किया। वहाँ क्या देखती है कि स्माइथारस की हत्या करके कोई उसके लोहेके सन्दूकसे उसका सर्वस्व अपहरण कर चला गया है। वैद्युतिक तार टूटा पड़ा है। विस्फोटक गोलीके ऊपर कई तह कपड़ा डाला हुआ है, जिससे गोली-के फट कर आवाज़ करनेका भय बिल्कुल नहीं रहा है। अब पुलिसको इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं रहा कि जिसने यह चोरी की है वह विशेष बुद्धिमान तथा पक्का चोर है। घरमें कहीं पर एक अंगुलीकी छाप मात्र भी नहीं है। चोर कोई ऐसा चिह्न भी नहीं छोड़ गया था, जिससे पुलिस मामलेका कुछ अनुसन्धान लगा सके। केवल लड़कोंके खेलनेकी एक लालटेन वहाँ पड़ी हुई पायी गयी। पुलिसने अनुमानसे यह भी आंक लिया कि चोरने अपने हाथोंमें दस्ताने पहने हुए यह काम किया है।

लण्डनके सुविख्यात गुप्तचर विभाग 'स्काट-लैण्ड यार्ड' की पुलिसने इस हत्या रहस्यका पता लगानेका काम अपने हाथमें लिया, किन्तु किसी प्रकार उनसे इसका पता नहीं लगा। उनके अनुसन्धान करनेका एक मात्र आधार वही छोटी लालटेन बच रही थी। जिन जिन दुकानों पर लड़कोंके खिलौने बिका करते थे, उन सभी दुकानों पर गुप्तचर गण उस लालटेनको हाथमें लेकर घूमने लगे और बराबर इस बातका पता लगाते रहे कि किस दुकानसे कौन आदमी उस लालटेनको ले गया था। किन्तु इससे कुछ लाभ न हुआ। बहुत जांच पड़ताल करने पर सिर्फ

इतना पता लगा कि शहर बाहरकी देहाती स्त्रियां अपने सात आठ वर्षके लड़कोंके खेलनेके लिए इस तरहकी लालटेनें खरीदा करती हैं।

गुप्तचरोंने मिल कर आगेके अनुसन्धानके लिए एक दूसरे उपायके अवलम्बन करनेका निश्चय किया। गुप्तचरोंमें से एकका सात वर्षका एक लड़का था, उसी पर यह भार डाला गया। यही स्थिर हुआ कि वह गुप्तचर अपने पुत्रको इस लालटेनको हाथमें देकर खेलने देगा। नगरके प्रान्त भागमें जहां जहां पर लोग इस प्रकारके खिलौने खरीदा करते हैं, वहां वहां वह अपने पुत्रको साथ लेकर जाया करेगा, और उसका पुत्र उस लालटेनको लेकर इच्छानुसार खेलता फिरेगा। लड़केका बाप छिपे भेषसे अपने लड़के पर नज़र रखा करेगा। काम तो नितान्त कष्टदायक था, किन्तु वह एकाग्र मनसे इस कामको करने लगा। एक सप्ताह तक तो कोई उल्लेखनीय लाभ नहीं हुआ। गुप्तचर विभागके मुखियाने एक और गुप्तचरको इसी प्रकार काममें लगाया, किन्तु फल पहले ही जैसा हुआ। और भी अनेक गुप्तचर इसका पता लगानेके लिए छोड़े गये। क्रम क्रमसे खुफ़िया-पुलिसको यह विश्वास दृढ़ हो गया कि इस हत्याके रहस्यका पता लगाना असम्भव है। अंगरेज जातिमें यह एक विशेषता है कि हताश होकर भी किसी कामको छोड़ नहीं बैठते। अस्तु, स्काटलैण्डके गुप्तचर बार बार विफल मनोरथ होते रहने पर भी अपने लक्ष्यके लिए बराबर उद्योग करते गये। एक दिन उक्त गुप्तचरका पुत्र पूर्ववत् उस लालटेनको हाथमें लेकर रास्ते पर खेल ही रहा था कि एकाएक एक छोटा लड़का वहां आकर खड़ा हो गया और लालटेनको देख कर सहसा बोल उठा, "यह लालटेन मेरी है, मुझे दो"।

गुप्तचरका पुत्र सरोष बोल उठा—वाह! क्या कहना है। यह लालटेन तुम्हारी है? भला बतलाओ तो सही तुमने यह लालटेन कब खरीदी थी?

नवागत बालकने कहा—ना, यह लालटेन मेरी है, मैं इसे पहचानता हूं।

गुप्तचर पास ही खड़ा खड़ा इनके समस्त व्यापारको देख रहा था। वह और नजदीक आ गया और मृदुकण्ठसे बोला—क्या तुम ठीक कहते हो कि यह लालटेन तुम्हारी है? यह तो मेरे लड़केने कितने ही दिन हुए एक जगह पर पड़ी पायी थी।

आगन्तुक बालक बोला—मैं ठीक ही कहता हूं, यह लालटेन मेरी है। मैं इसका प्रमाण भी दे सकता हूं। लालटेनकी बत्ती खराब हो जाने पर मैंने अपनी बहनके फ्लालेनकी पोशाकसे थोड़ा कपड़ा निकाल कर इसकी बत्ती बनायी थी।

गुप्तचरने लालटेनकी बत्ती खोल कर देखा तो उस बालकका कहना बिल्कुल सत्य निकला। तब वह बोला, "अच्छा! चलो, तुम्हारी माके निकट चलता हूं। यदि तुम्हारी बात सत्य होगी तो यह लालटेन मैं तुम्हें लौटा दूंगा।"

तीनों मिलकर उसकी माके पास गये। उसकी मा एक विधवा स्त्री थी। इसका मकान बड़ा था। स्वयं तो वह एक कोठरीमें पड़ी रहती थी और बाकी मकानको भाड़ेपर उठा रखा था। रमणी परिश्रमी थी और ईमान्दारीसे कमाकर अपनी जीविका निर्वाह करती थी। उसकी बातसे यह बात प्रमाणित हुई कि बालकका कहना नितान्त सत्य है। गुप्तचरने लालटेनको बालकके हाथमें दे दिया। पूछने पर उस स्त्रीने कहा कि उसके दो किरायेदार उसके मकानका किराया बिना अदा किये ही न जाने किधरको चल दिये, और ठीक उसी दिनसे वह लालटेन भी ला पता थी। दोनों किरायेदारोंमेंसे एक ने उस स्त्रीसे कहा था कि वह बिजुलीके कारखानेमें काम कर अपना जीवन निर्वाह करता था और दूसरा 'सम्बा' में काम करता था। उनके कामके उपयोगी सभी यन्त्रोंको उस स्त्रीने उनके घर पर ही देखा।

अब खुफ़िया विभागके कामका एक दूसरा ही सिलसिला चला। गुप्तचर बिजली-घर

तथा प्रान्तमें युवकोंकी खोज करने लगे। स्काटलैण्ड यार्डमें जितने अपराधियोंके नाम थे, उन सभोंके ऊपर गुप्तचर छोड़े गये। शहर भरमें जितने किराये पर मकान चलते थे, उन सभों-पर गुप्तचरोंकी कड़ी नज़र रहने लगी। नाच मुज़रेकी जगह, होटल आदि कोई भी स्थान बिना छान बीन किये न छोड़ा गया। स्काटलैण्ड यार्डकी संघटन-शक्ति अतुलनीय है और फिर इतना बड़ा काम किसी एक व्यक्तिसे होना असंभव भी है। निरन्तर कितने ही दिनों तक परिश्रम पूर्वक अनुसन्धान करते रहने पर उस स्त्रीके बताये हुये निशानके दोनों युवक पाये गये। अब इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि यही दोनों युवक उस स्त्रीके घरमें रहते थे।

पुलिस केवल उन युवकोंके विरुद्ध इतना ही प्रमाण संग्रह कर सकी थी कि यह युवक उस घर वाली स्त्रीको मकानका किराया बिना दिये ही चम्पत हो गये हैं। इस भेदको गुप्त रखनेके अभिप्रायसे पुलिसने उनपर कड़ी नज़र रखनेके सिवा और कोई दूसरी व्यवस्था उचित न समझी। क्रम क्रमसे गुप्तचरोंको यह मालूम हुआ कि यह निकटके किसी दिहातके एकान्त स्थानमें जाकर किसी एक वृक्षकी शाखापर पिस्तौलका निशाना लगाना सीखते हैं। उन्होंने उस स्थानको खोजकर उस वृक्षसे कुछ गोलियां निकालीं, जिसे इन युवकों ने अपने सीखनेके लिए निशानेपर लगाया था। फिर उस निहत कृपण मनुष्यके मस्तकसे निकली हुई गोलीसे इस गोलीका मिलान किया गया तो कुछ भी पृथकता दीख नहीं पड़ी। दोनों गोलियां साधारण आकारकी गोलियोंसे कुछ बड़ी थीं।

अब गुप्तचरोंका दल इन युवकोंके अतीत जीवनके इतिहास संग्रह करनेमें संलग्न हुआ। हरएक के अलग अलग संगृहीत विवरणसे कुछ कामकी बातें नहीं निकलती थीं। जब सभी गुप्तचरोंके विवरण एकत्रित किये गये तब यही दोनों युवक स्मीइथारसके हत्याकारी प्रमाणित हुए, और उन्हें अभियुक्त ठहराया गया। और कारागारमें डाल दिया गया। विचार होनेके पूर्व कुछ दिनों तक अपराधियोंको विश्वास था कि वह छोड़ दिये जायंगे। इसी आशासे प्रेरित हो उनमेंसे एकने विचारकसे कहा, "यदि मैं मुक्त कर दिया जाऊं तो सारा भेद खोल दूं" इस पर विचारकने उत्तर दिया, "हमें अब तुम्हारे सहयोग की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे विरुद्ध जितने प्रमाण पाये गये हैं वह तुम्हें दोषी ठहरानेके लिए काफ़ी हैं।

फ़रासीसी—पुलिस

अब हम यह दिखलानेकी चेष्टा करेंगे कि फ़रासीसी पुलिस किस प्रकार अपराधियोंको गिरफ़्तार करती है। पेरिसमें एनोली विभागके अभिजात-सम्प्रदायके कितने ही मनुष्योंके यहांसे अनेक अद्भुत प्रकारकी चोरीकी सूचना स्थानीय पुलिसको मिला करती है। वास्तवमें चोरीका यह ढंग विशेष कौतूहलोत्पादक है। बहुधा अभिजात-सम्प्रदायके घरसे कोई न कोई कला शिल्प विषयक बहुमूल्य पदार्थ छू मंतरकी नाईं गायब हो जाया करता था। पुलिस सोचती थी कि यह काम हो न हो किसी एक ही व्यक्तिका है। चोरी की हुई वस्तु मूल्यवान रहती तो अवश्य थी, किन्तु उसे कहीं बेचने पर कोई सन्देह करे वा घर पकड़की नौबत आ पहुँचे ऐसी कोई बात नहीं थी। वह चोर ऐसे दाव पेचसे रहता था कि पुलिसके हज़ार सिर पटकने पर भी फल कुछ न हुआ। पुलिसको इतना पता तो अवश्य लग गया कि वह व्यक्ति हाथमें दस्ताना पहन कर यह काम करता है। कारण उसकी अंगुलियोंकी छापका कहीं नामोनिशान तक भी नहीं मिलता था।

पेरिसके खुफ़िया विभागके कर्मचारी एकमत हो अपनी अपनी पहुँचके अनुसार चोरकी फ़िराकमें घूमने लगे। किन्तु चोरके गिरफ्तार करनेका उपाय इन्हें नहीं सूझा। 'डर्नें' नामक एक गुप्तचर भी उसी अद्भुत शक्तिशाली चोरको फ़िराक़

में घूम रहा था। वह अपनेको अभिजात सम्प्रदाय के एक धनवान व्यक्तिके नामसे विघोषित किया करता था। साथ ही साथ उसने यह भी मशहूर कर रखा था कि कला शिल्प विषयक अच्छी अच्छी वस्तुओंका संग्रह करना ही उसकी जीविकाका एकमात्र व्यवसाय था। जिन जिन मनुष्योंकी रुचि इस विषयकी ओर थी उन सभी मनुष्योंसे उसने परिचय तथा घनिष्ठता प्राप्त की थी। इन उत्साही व्यक्तियों द्वारा उसे पता लगा कि किस विशेष स्थानमें कला-शिल्प विषयक मूल्यवान वस्तुएं पाई जायंगी। धीरे धीरे एक व्यक्ति जिसका नाम लारूस था, डर्नेका परम मित्र बन गया। डर्ने लारूसको खूब चाहता था। अपने समयका अधिकांश हिस्सा उसीके साथ आमोद प्रमोदमें व्यतीत करने लगा, किन्तु अपनी सौहार्दिताके प्रति उसकी विशेष सहानुभूति न पा कुछ दिनोंके बाद उसका साथ छोड़ दिया।

डर्ने उस समय तक लारूसके विषयमें कोई बात स्थिर नहीं कर सका था। जो चोर कानून की आंखोंमें धूल फेंककर बिना किसी रुकावट के चोरीका व्यवसाय करता चला जा रहा है, उसके साथ लारूससे भी किसी प्रकारका मेल जोल है कि नहीं, इसका सन्देह भी डर्नेको विशेष रूपसे न हुआ। डर्नेके और और साथियोंमें लारूसके गति विधिको समझनेकी शक्ति नहीं थी। यद्यपि डर्ने उसपर विशेष लक्ष्य रखता था, किन्तु लारूस ऐसा चतुर था कि बराबर उसकी आंखोंमें धूल डालकर निकल जाया करता था।

डर्नेने अन्तमें स्थिर किया कि लारूस या तो दोषी ही नहीं हैं या बिल्कुल निर्दोष है। एक दिन की बात है कि डर्ने लारूसकी गति-विधिका लक्ष्य करते करते उसके निवासस्थानमें, जो एक होटलमें था, गया। वहां क्या देखता है कि लारूस सन्ध्याकी पोशाक पहने कहीं जा रहा। उसे बाहर निकलते देख डर्नेने चुपचाप छिपे हुए भेषमें आकर उसकी कोठरीके तालेको अपनी चाबीसे खोला और एक एक चीज़की जांच करने लगा। उसकी नजर वहां एक टेबुल पर रखी तीन वस्तुओंकी ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुई। वह एक कांचकी सुराही एक जोड़ा पुराना दस्ताना और एक कांच का ग्लास था। लारूसने इन वस्तुओंको अपनी शय्याकी बाईं ओर रख छोड़ा था।

बाएं हाथके दस्तानाके जिस स्थान पर अंगूठेका दाग़ रहता है, उस स्थानको डर्ने एक रेतीकी सहायतासे रगड़ने लगा। दस्ताना सामरके चमड़ेका बना था। रगड़ते रगड़ते वहां पर अन्तमें एक सूक्ष्म परदा मात्र रह गया। इस कामको उस जासूसने इस चतुरताके साथ किया था कि खूब ग़ौर करके देखने पर भी शायद ही दिखाई देता। फिर उसने कांचके ग्लास तथा सुराही को भी रगड़ कर साफ़ किया। बाहर आते समय कोई भी वस्तु वह अपने साथ नहीं लाया।

दूसरे दिन प्रातःकाल लारूस ज्योंही होटलसे बाहर हुआ, डर्नेने पूर्ववत् उसके घरमें प्रवेश कर उस सुराही और ग्लासकी जांच करने लगा। एक छोटे ब्रुशके द्वारा सुराही तथा ग्लासके ऊपर एक रासायनिक चूर्ण डाला। अब लारूसकी अंगुलीकी छाप उस पर साफ साफ दीखने लगी। डर्ने अपने साथ उसी ग्लास और सुराहीके अनुरूप दूसरा ग्लास और सुराही अपने साथ लाया था। अपना लाया हुआ ग्लास और सुराही उसी प्रकार रख कर उसका ग्लास और सुराही लेकर चला गया।

उक्त घटनाके तीन सप्ताह बाद पूर्वोक्त प्रकार की चोरीका एक मुक़दमा पुलिसके पास आया। इस बार भी चोर कोई निशान छोड़ नहीं गया था। लेकिन इस बार पुलिसने उसके बाएं हाथके अंगूठेके कुछ अस्पष्ट चिह्नका पता लगाया। डर्ने की स्वाभाविक बुद्धि इस विषयमें काम कर गई। उसे मालूम था कि दस्तानेके सूक्ष्मतम आवरणको फाड़कर अंगूठेकी छाप जहां कहीं पड़ेगी, उसी छाप की रेखासे काम निकल आयगा। यहां पर बात भी ऐसी ही हुई। उस रेखाके साथ ग्लास और

सुराहीकी रेखाका मिलान करने पर वही साक्ष्य और प्रमाणित हुआ।

'स्काटलैंड यार्ड' की प्रणाली और फरासीसी गुप्तचरोंकी अवलम्बित प्रणालीमें भेद सुस्पष्ट है। स्काटलैंडकी बहादुरी संघटन-शक्ति से है और फरासीसी गुप्तचर व्यक्तिगत चेष्टा और बुद्धिका भरोसा रखते हैं। फरासीसी पुलिस इस क्षेत्रमें अपने सहयोगियोंकी सहायता से वञ्चित रखी जाती है।

### जर्मन-प्रणाली

जर्मन गुप्तचर-विभाग अंगरेज़ोंकी तरह संघ शक्तिका भक्त है। लेकिन ऐसा होने पर भी अंगरेज़ और जर्मन प्रणालीमें एक विशेष प्रकारकी भिन्नता है। कितने ही वर्ष हुए, बर्लिन नगरमें एक रहस्यपूर्ण घटना घटी। किसी एक प्रसिद्ध सरकारी कर्मचारीका मृतदेह शहर बाहरकी एक गली में पाया गया। उस गलीसे सटा हुआ उस राज-कर्मचारीका घर था। जांच करने पर पुलिसको सिर्फ़ इतना पता लगा कि उक्त कर्मचारी पीठकी चोटसे आहत हुआ है, और पीतलकी बनी एक छैनीकी चोट से उसकी हत्या हुई है। उसके मृत देहको गलीमें पड़ा छोड़ हत्याकारी उसके पास जो कुछ था, सब लेकर चम्पत हो गया है। मृत शरीर घटनाके ठीक दूसरे ही दिन पाया गया था। पुलिसने अपनी जांचसे यह भी मालूम कर लिया कि उक्त घटनाके समय घटना-स्थलके आस पासमें कोई नहीं था। वास्तवमें हत्याकारीने ऐसी सावधानीसे यह काम किया था कि पुलिसको अनुसन्धान करनेका कोई सूत्र ही नहीं रह गया था।

बर्लिन पुलिस-विभागमें एक ऐसा यन्त्र है, जिसकी सहायतासे इस प्रकारके रहस्यका पता आप ही आप लग जाया करता है। सचमुच जर्मनीकी अवलम्बित प्रणाली अभ्रान्त तथा अमोघ है। सामूहिक-शक्तिके अनुसार कार्य करने पर भी जर्मनीकी अभिनव प्रणाली द्वारा अपराधीके छुटकारेका कोई भी उपाय नहीं। जर्मनीमें प्रत्येक व्यक्तिका—चाहे वह जर्मनका निवासी हो या विदेशी हो—जन्मसे लेकर (और विदेशी होने पर नगर प्रवेशके तारीखसे लगाकर) आज तकके व्यापारका इतिहास पुलिस विभागके प्रधान आफिसमें लिखा रहता है। प्रत्येक व्यक्तिके नाम-का एक एक कार्ड रहता है। यदि पुलिसको किसी समय किसी व्यक्तिके अनुसन्धानकी आवश्यकता हुई, तो केवल तीन मिनटके भीतर प्रधान पुलिस आफिससे उस व्यक्तिकी जन्म-तिथि, अवस्था, शिक्षा प्रभृति सभी विषयोंके संक्षिप्त इतिहास, माता पिताका नाम धाम पर्यन्त सब प्रयोजनीय बातें पुलिस उसी समय जान सकती है। यदि वह व्यक्ति विदेशी न होकर जर्मन हुआ, तब तो भिन्न भिन्न नगरोंकी रिपोर्ट मिला कर उसके जीवनकी सभी घटनाओंका पता अनुसन्धानकारी पुलिस लगा सकती है। निर्दिष्ट व्यक्तिका धर्म-मत, जीवन-यात्रा-प्रणाली, उसकी स्त्री तथा पुत्रका नाम, वयस, कब, कहां पर कितने दिन और किस लिए ठहरा था, आत्मीय जनोंकी कब वा कहां मृत्यु हुई, यही क्यों, उसके नौकरों तकका इतिहास नहीं छोड़ा जाता।

इस विभागका नाम Meldwesen विभाग है। यह जैसा बड़ा है, वैसा ही इसका बृहत् प्रबन्ध भी है। इस समय बर्लिनके इस विभागमें दो करोड़से अधिक व्यक्तियोंके नामोंके कार्ड संग्रह किये गये हैं। प्रधान पुलिस कार्यालयमें इसी कामके लिए १५८ घर हैं। २८० कर्मचारी इस कामके लिए नियुक्त हैं, प्रतिदिन कार्डकी संख्या, इतिहासका परिणाम बढ़ता ही चला जा रहा है। केवल "एच" अक्षरके कार्डोंको रखनेके लिए इस समय दस कमरे हैं, और "एस" अक्षरके लिए उसी प्रकार १७ घरोंकी आवश्यकता जान पड़ी है।

नामकी बात छोड़ कर भी प्रत्येक व्यक्तिकी अंगुलियोंकी छाप, फोटोग्राफ प्रभृति तो रहते ही हैं। यदि कोई मनुष्य जर्मनीमें पहुँच कर अपने नाम

धामका पता न दे वा देनेमें आनाकानी करे तो जर्मन पुलिस अन्य उपायोंसे पता लगा लेती है। इस प्रणालीको Razzia कहते हैं। बर्लिन पुलिस दलबल सहित किसी भी समय, किसी भी स्थान पर बिना वारंटके किसी भी व्यक्तिको गिरफ़ार कर सकती है। साधारण पान्थ-निवास ( सराय ), होटल तथा थियेटरकी तो बात ही अलग है। किसी भी व्यक्तिके घरकी, चाहे उसका अपना हो वा भाड़ेका हो, पुलिसको अधिकार है कि वह बिना रोकटोक तलाशी ले ले। इस प्रकार जिन जिन स्थानोंमें और जिन जिन लोगोंका पुलिस पीछा करती है, उन उन लोगोंको बाध्य हो अपने जीवन-का अबतकका इतिहास पुलिसके आगे बयान करनेको बाध्य होना पड़ता है। Meldwesen विभागके वर्णनको Razzia प्रणालीके वर्णनसे मिलान करने पर यदि किसी व्यक्तिका विवरण असंगत निकला तो उसका पहला अपराध होनेके कारण उसपर केवल जुर्माना किया जाता है, किन्तु यदि एक बारसे अधिक हुआ तो कारागार-दण्ड मिलता है।

अब उपरोक्त घटनाके विषयकी बात सुनिये। बर्लिन-पुलिस ने मामलेकी जांच करते करते एक प्रमोद-भवनकी खाना तलाशी करनी शुरूकी। वहां जितने मनुष्य थे, उनमें तीन सौ मनुष्योंके पूर्व संग्रहीत इतिहासमें भिन्नता पाई गई। पुलिसने उन्हें गिरफ़ार कर लिया। अनुसन्धान करने पर मालूम हुआ कि उन तीन सौ व्यक्तियोंमें साठ व्यक्ति तो ऐसे हैं कि वे भिन्न भिन्न नगरोंमें भिन्न भिन्न अपराधोंके लिए दोषी ठहराये गये थे, और उन लोगोंकी तलाशमें वहां वहांकी पुलिस घूम रही है।

बर्लिन नगरके उक्त निहत कर्मचारीके हत्या रहस्यका पता लगानेके लिए एक स्वतन्त्र पुलिस-समिति संगठित हुई। प्रायः ऐसे ऐसे कामोंमें सात आठ मनुष्योंकी एक समिति बना कर अनुसन्धानका काम किया जाता है। किन्तु आवश्यकता होने पर अधिक मनुष्य भी ले लिये जाते हैं। साधारणतः तीन चार उच्च पदस्थ पुलिस कर्मचारी, एक पुलिस डाक्टर, एक फोटोग्राफ़र तथा एक वा किसी किसी समय दो विशेषज्ञ समितिमें सम्मिलित रहते हैं। पुलिस विभागमें इस समय इस प्रकारके तीस स्वतन्त्र दल हैं। एक एक दल एक एक विषयमें सुदक्ष हैं। वह अपने अपने निर्दिष्ट विषयके अतिरिक्त दूसरी ओर मन नहीं लगाते हैं।

उपरोक्त रहस्यका पता लगानेके लिए राहजनी संक्रान्त विषयमें निपुण दो उच्च पदस्थ पुलिस कर्मचारी नियुक्त किये गये। एक और गुप्तचर जो विशेष कर गलेमें फांसी डालनेकी घटनाओंके अनुसन्धानमें पारदर्शी था, इस काममें रखा गया। अनुसन्धान करते करते इन्हें एक सूत्र मिला। पूर्वोक्त प्रमोद-भवनमें जो स्त्री पुरुष गिरफ़ार किये गये थे, उनमें एक सुन्दरी युवती भी थी। पता लगाने पर मालूम हुआ कि यह युवती किसी एक पुरुषकी रखेली है। बहुत दिन पहले वह पुरुष अन्य नगरोंमें तीन बार राहजनी कर चुका था। जिन जिन व्यक्तियोंको उसने लूटा था, उन उनका श्वास बन्द करके मार डालनेकी चेष्टा भी उसने की थी। यह सम्पूर्ण विवरण उन नगरोंके विभागोंसे पुलिसने मालूम किया था। इसी सूत्रको लक्ष्यकर उस व्यक्तिके अन्यान्य कामोंके निरीक्षण करने पर अन्तमें गुप्तचरोंने उसे ही अपराधी प्रमाणित किया। न्यायाधीशके विचार करते समय उस व्यक्तिने यह साबित करनेका प्रयास किया था कि उक्त घटनाके समय वह किसी दूसरे नगरमें उपस्थित था। किन्तु उस नगरके पुलिस विवरणसे उसकी बात मिथ्या प्रमाणित हुई। इसके अनन्तर अपराधीको अपना अपराध स्वीकार करनेको जर्मन-पुलिसके आगे बाध्य होना पड़ा।

इससे जान पड़ता है कि जर्मन-पुलिस विभाग एक विराट् यन्त्र-स्वरूप है। इसके चंगुलसे अप-

राधीको उद्धार पानेकी आशा करना एक पागल प्रलाप है। 'स्काटलैंडयार्ड' के पुलिस विभागको मानव-बुद्धि सम्पन्न एक दल कह सकते हैं, किन्तु जर्मनीका पुलिस विभाग तो ठीक यन्त्र स्वरूप है। फरासीसी पुलिसमें संघ-शक्ति नहीं, उसके आदमी व्यक्तिगत रूपसे ही काम करनेका अच्छा ढंग जानते हैं।

आष्ट्रियाकी मानव-शिकार-प्रणाली

आष्ट्रियाकी प्रणाली तो बिलकुल स्वतन्त्र है। न तो वियेनाका पुलिस विभाग जर्मनीकी नाईं यन्त्र विशेष ही है और न स्काटलैंड यार्डकी तरह संघ-शक्ति ही उनमें पाई जाती है। फरासीसी गुप्तचरकी तरह उनमें व्यक्तित्वका विकाश भी नहीं देखा जाता। किन्तु ऐसा होते हुए भी यूरोप भरकी श्रेष्ठ 'मानव-शिकार' प्रणालियोंकी तुलना करने पर वियेनाकी अवलम्बित प्रणाली सर्व श्रेष्ठ कही जाने योग्य है। अनुवीक्षण यन्त्र, रासायनिक परीक्षा प्रभृति वैज्ञानिक उपायोंसे ही वियेनाकी पुलिस अपराधियोंको गिरफ़ार कर लेती है।

वियेनाके 'वायड' नामक किसी एक स्थानमें एक करोड़पती मनुष्य अकेला निवास करता था। जिस घरमें वह अन्नादि संचित रखता था, एक दिन उसका मृत देह उसी घरमें पाया गया था। जांच करने पर मालूम हुआ कि किसी भारी द्रव्यके आघातसे किसी मनुष्यने उसके सिरकी खोपड़ीको तोड़ डाला है। पुलिसके हजार सर पटकने पर भी वह यन्त्र नहीं मिला। अनुसन्धान करनेका कोई सूत्र भी नहीं था। केवल साधारण श्रमजीवीके व्यवहारोपयोगी एक टोपी नहीं एक कोनेमें पड़ी पायी गयी थी।

अपराध-तत्त्वके सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक व्याख्याता डाक्टर 'ग्रेस' स्वरचित एक ग्रन्थमें लिखते हैं कि सिरके बाल और धूल ही अपराधियोंके गिरफ़ार करनेके प्रधान सूत्र हैं। उसीके आधार पर वियेनाकी पुलिसने उक्त पाई हुई टोपीकी खूब सतर्कता तथा सावधानीसे जांच की और उसमें दो बाल पाये। निहत व्यक्तिके सिरके बालोंसे मिलान करने-पर मालूम हुआ कि वह बाल उसके नहीं हैं। केश सम्बन्धके विशेषज्ञ लोग अनुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा कर इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि जिसके यह बाल हैं उस व्यक्तिकी उम्र प्रायः ४५ वर्षकी है, शरीरमें अभी ताक़त है, सिरके बाल कुछ कुछ उड़ने लगे हैं और सफ़ेदी भी आ चली है। और उस व्यक्तिने अभी हालमें ही बाल बनवाये हैं।

इसके पश्चात् एक मोटे और कड़े कागजकी थैलीमें उस टोपीको रख कर एक मोटी लाठीसे पीटा गया। ऐसा करने पर उसमें से कुछ थोड़ी सी धूल झड़ गयी। अनुवीक्षण यन्त्र और रासायनिक क्रिया द्वारा परीक्षा करने पर देखा गया तो ज्ञात हुआ कि शस्य गृहकी धूलको अलग करने पर भी उसमें कुछ धूल लकड़ीकी विद्यमान है। बढ़ईके घरमें जिस तरहका काठका चूर पाया जाता है, इस धूलका रूप भी ठीक वैसा ही था। उस धूलमें अत्यन्त सूक्ष्म मात्रामें सरेसका अस्तित्व भी देखा गया। तब तो पुलिसने स्थिर कर लिया कि जो व्यक्ति लकड़ीका काम करता है, यह टोपी उसीकी है।

घटनास्थलसे थोड़ी दूर हट कर एक बढ़ई रहता था। उसके सिरके बालोंसे ये पाये हुए बालोंका मिलान करनेपर एक ही मालूम हुए। वह व्यक्ति अत्यन्त दरिद्र तथा मादक द्रव्य सेवी था। उसके घरकी तालाशी लेने पर एक लोहेकी हथौड़ी पाई गई। जांचसे देखा गया कि निहत व्यक्तिके सिरका आघात उस हथौड़ीका नहीं था। उसके घरमें दो छेनी भी, एक लोहेकी और दूसरी पीतलकी पाई गईं। पुलिसने इनकी परीक्षाकी तो मालूम हुआ कि इनमेंसे एक छेनीके आघातसे ही वह मरा है। लोहेकी छेनीमें मुर्चा लग गया था। रासायनिक परीक्षा द्वारा देखने पर जलके स्पर्शसे मुर्चा पकड़ा हुआ मालूम हुआ। किन्तु जब पीतलकी छेनीको पालिशसे साफ़ किया गया तो कुछ दाग़-सा दीख पड़ा। रसायनिक परीक्षासे वह दाग़ खूनका

सिद्ध हुआ। मृत व्यक्तिके खूनमें जो जो पदार्थ थे, उस छेनीके सूखे हुए खूनमें भी वह सब पदार्थ पाये गये। अन्तमें हत्याकारीने अपना अपराध स्वीकार कर लिया।

वियेना पुलिसको वैज्ञानिक बुद्धिसे तुच्छातितुच्छ बात भी छिप नहीं सकती। पी कर फेंके हुए चुरुटमें दांतके चिह्नके सहारे अपराधीको गिरफ़ार कर लेना वियेना पुलिसका ही काम है। पाकेटकी छोटी छुरीसे धूल निकाल कर आष्ट्रिया पुलिस अपराधीको खोज निकालती है। अध्यापक 'उलेनहट्' ने अपने वैज्ञानिक ग्रन्थमें मनुष्य और पशुके खूनमें जो जो भिन्नता है सभी दिखला दी है। आजकल दुष्काल पड़नेके कारण आष्ट्रियामें पशु हननके विषयमें भी कड़ा कानून बनाया गया है। कितने ही मनुष्योंके विरुद्ध निषिद्ध पशु मार कर खा डालनेका अभियोग पुलिस द्वारा लगाया गया है। उनके वस्त्रोंमें लगे हुए खूनके दागकी परीक्षा कर विज्ञानाध्यापक 'उलेनहट्' ने प्रमाणित कर दिया है कि किस जातिके पशु मारे गये हैं।

जिस प्रकार लोग वैज्ञानिक उपायोंको काममें ला कर अपराधोंकी संख्या बढ़ा रहे हैं, उसी प्रकार उन्हें दण्ड देनेके लिए भी वैज्ञानिक प्रतिषेधक आविष्कार होता जा रहा है। चोरी, डकैती-खून प्रभृतिकी संख्या जिस तरह बढ़ती जा रही है और नाना प्रकारके वैज्ञानिक उपायोंसे दुष्ट लोग अपने अपराधोंके छिपानेकी चेष्टा करते जा रहे हैं, इससे बहुत सम्भव है कि भविष्यमें अन्तर्जातीय-गुप्तचर विभागकी स्थापना हो जाय। ऐसा हो जाने पर उन समाज शत्रुओंके दमन करनेके लिए सम्पूर्ण जातियोंकी मिली हुई प्रतिभा काममें लाई जायगी; ऐसी आशा हो रही है।

—गोपीनाथ वर्मा

---

# धूम्रपान

( गतांकसे आगे )

धूम्रपान करनेकी विधि

आजकल जिस प्रकार व्यसनके फंदेमें फंसे धुएंके पियक्कड़ लोग धुआं फांका करते हैं उनको देखकर शास्त्रज्ञ-के चित्तमें उनसे अधिक अज्ञानी दूसरा नहीं जंचता। वह रात दिन धुआं पीते हैं तो भी उनको धुआं पीने तककी रीतिका ज्ञान नहीं। वह तो धौंकनी की तरह धुआं धधकाया करते हैं। चुरट या सिगार मुंहमें पकड़ कर सुलगाते हैं। और उसको एक बार खेंचकर बहुत सा धूआं छातीमें भर लेते हैं। कुछ मुंहसे छोड़ते हैं। कुछ बोलते बोलते निकल जाता है। कुछ मुंह बंद करके नाकसे छोड़ देते हैं। बहुत से लोग तो इसीसे घण्टों विनोद करते हैं। मानो उन्होंने धूम्रपान करके अपनी नाक और मुंहको खिलौना बनाये रखना ही जीवनका एक उद्देश्य समझा है। परन्तु शास्त्रकार धूम्रपानको स्वच्छन्दतासे विनोद बना लेनेके बड़े विरोधी हैं। पहला तो मन्तव्य यह है कि

"धूमयोग्यः पिबेद्दोषे शिरो घ्राणाक्षि संश्रये"

जब वातपित्त या कफका कोई विकार सिर नाक, और आंखोंमें आ जाय तब वह उसको दूर करनेके लिये धूम्रपान करे। अन्यथा नहीं।

दूसरा मन्तव्य यह है कि

घ्राणेनाश्येन कण्ठस्थे मुखेन घ्राणपो वमेत्।

नाकसे पीये तो गले तक ही धूआंको जाने दे। धुआंको फेफड़ेमें न जाने देकर मुखसे उगल दे। याद रखे—

आस्येन धूमकवलान् पिबन् घ्राणेन नोद्वमेत्।

मुखसे धुएंकी घूंट भर कर नाकसे कभी न छोड़े। क्योंकि—

प्रतिलोमं गतो ह्याशु धूमो हिंस्याद्धि चक्षुषी।

मुखके द्वारसे धुआं पिया जाकर जब नाकमें आता

है तो उसकी प्रति लोमगति होती है। ऐसा करने से धुआं आंखोंको शीघ्र ही सत्यानाश कर देता है।

आंखोंको धुएंसे बचानेके लिए चरक ऋषि मुखसे बलपूर्वक धुआं बाहर फेंकनेकी आज्ञा देते हैं। इस कारण जो लोग एक बार धुआंको मुखमें लेकर बाहर बलपूर्वक नहीं फेंक देते प्रत्युत् नाकसे निकालते हैं या योंही बातें करते करते शनैः शनैः निकलने देते हैं वह अपनी आंखोंके बड़े भारी शत्रु हैं। इसी धुआंसे आंखोंको बचानेके लिए चरकने ३२,३६,२४ अंगुलकी लम्बी नलीका विधान किया है। लिखते हैं—

> दूरा द्विनिर्गतः पर्वच्छिन्नो नाड़ी तनूकृतः।
> नेन्द्रियं बाधते धूमो मात्रा काल निषेवितः॥

परिमित मात्रा और उचित काल तक धूम्रका सेवन करनेसे और नलियोंके पोरु पोरु पर उसका बल टूट जानेके कारण कश नलियोंमेंसे स्वल्प होकर तथा दूरसे निकला हुआ धुआं इन्द्रियोंको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं पहुंचाता।

इसके अतिरिक्त धूम्रपान करनेके लिए भी देहको विशेष स्थितिमें रखना चाहिये। विनोदके भूखे बाल-बुद्धि पुरुष तो लेटते, उठते बैठते, तथा सभी दशाओंमें धूम्रका पान करते हैं। परन्तु चरक कहते हैं—

> ऋज्वङ्ग चक्षुस्तच्चेताः सूपविष्ट त्रिपर्ययम्।
> पिबेच्छिद्रं पिधायैकं नासया धूममात्मवान्॥

सब शरीरको सूधा करके आंखोंको सामने सरल रूपमें रख कर धूम्रपान पर मनोयोग देते हुए नाकके एक छिद्रको बन्द करके बड़े सावधान होकर धूम्रको नाकके दूसरे छिद्रसे पिये, और तीन बार खेंच कर छोड़ दे। आजकल तो तम्बाकूके भूखे धूम्रपान करनेके समय बड़े लालायित चित्तसे ऐसे बेसबरे होकर पीने लगते हैं मानों फिर उनको यह वस्तु दुर्लभ हो जायगी। खैर व्यसनोंका फन्दा ऐसा ही होता है।

धूम्रपान करनेके काल

> प्रयोगपाने तस्याष्टौ कालाः संपरिकीर्तिताः
> स्नात्वा भुक्त्वा समुल्लिख्य क्षुत्वा दन्तान्नि घृष्यच।
> नयनाञ्जन निद्रान्ते चात्मवान् धूमको भवेत॥

प्रायोगिक धूम्रपानका हमने पहले उल्लेख किया था। उस रीतिके धूम्रपानके लिए शास्त्रकारों ने आठ काल कहे हैं।

१. नहानेके बाद, २. भोजनके बाद, ३. वमन करनेके बाद, ४. छींकनेके बाद, ५. दांतन करनेके बाद, ६. नकछिकनी लेनेके बाद, ७. आंखमें अञ्जन लगानेके बाद, ८. निद्रा ले चुकनेपर।

इतनेसे यह न समझ लेना चाहिये कि चरकने धूम्रपानकी आज्ञा दे दी है। इस कारण इन आठों समयोंमें पेट भरकर धूम्रपान कर लेना चाहिये। नहीं; धूम्रपानकी अवधि चरकने स्वयं बहुत परिमित कर दी है। चरक लिखते हैं—

> पेयाः स्युरापानास्त्रिस्त्रयः॥

धूम्रकी तीन तीन घूंटें तीन वार पीनी चाहियें अर्थात् केवल नौ घूंटें ही पीनी चाहियें। और चक्रपाणिके अनुसार तीन तीन घूंटें भर कुछ विश्राम करना चाहिये। इस प्रकार तीन बार विश्राम ले लेकर नौ घूंटें पूरी करे। यदि आठ कालोंमें भी कोई पीवे तो ७२ घूंटें ही एक दिनमें शास्त्रके अनुसार पी सकता है। तिस पर भी चरकने मर्यादा बांधी है

> "परं द्विकालपायीस्या दन्हः कालेषु बुद्धिमान् प्रयोगे।"

बुद्धिमान् पुरुष नित्य पान करता हो तो ऊपर कहे समयोंमें दिन भरमें आठ वार न पी करकेवल दो समय पीवे।

परन्तु वर्त्तमानके व्यसनने तो सब मर्यादाओं पर विजय कर रखी है। जब देखो तभी मुखपर बीड़ी, सिग्रेट, नरियल, चुरट, कली, हुक्का, चिलम कुछ न कुछ मुखपर लगा है और मुखमेंसे धूएं का आवागमन हो रहा है।

चरकने जहां धूम्रपान उपयोगी आठ समयोंका निर्णय किया है वहां धूम्रपानके अयोग्य समयोंका भी निर्देश किया है। जैसे—

न विरिक्तः पिवेद धूम्रं, नकृते वस्तिकर्मणि ।
नरक्ती न विषेणार्त्तो, न शोचन् नच गर्भिणी,
न श्रमे, न मदे, नामे, नपित्ते, न प्रजागरे ।
न मूर्छा भ्रम तृष्णा, न क्षीणे, ना पिचक्षते,
नमद्य दुग्धेपीत्वाच, न स्नेह, नच माक्षिकम् ।
धूम्रं न भुक्त्वा दध्ना च, न रूक्षः क्रुद्धएवच,
न तालुशोषे, तिमिरे शिरस्यभिहतेनच ।
नशङ्खके नरोहिण्यां नमेहे नमदात्यये ।
एषु धूम्र मकालेषु मोहात्पिवति यो नरः ॥
रोगास्तस्य प्रवर्धन्ते दारुणा धूम्रविभ्रमात् ॥

१. नविरिक्तः—जिस पुरुषने विरेचन लिया है वह धूम्रपान न करे।

२. नकृते वस्तिकर्मणि—जिस पुरुषने गुदा द्वारा जल पेटके भीतर लेकर मलाशयको शुद्ध किया है वह भी धूम्रपान न करे।

क्योंकि विरेचनसे कमजोरी बढ़ती है, इसी प्रकार गुदा द्वारा जल खेंचकर मलाशय स्वच्छ करनेमें भी कमजोरी बढ़ती है; ऐसी कमजोरीकी दशामें धूम्रपान करनेसे मूर्छा, सिरमें चक्कर तथा पेटमें वायुके हो जानेकी सम्भावना है।

३. नरक्ती—जिस पुरुषको बवासीरका रोग सताता है या खांसीके साथ रुधिर आता है या रक्तकी उलटियां आती हैं या पाखानेके रास्ते खून के दस्त आते हैं या नाक से नकसीर बहती है; ऐसा पुरुष भी धूम्रपान न करे। धूम्रपान करनेसे शरीरमें इन रागोंकी और भी वृद्धि हो जाती है। बवासीर तथा छातीसे खून और दिमागके सूख जानेसे नाकसे खून बहना और भी बढ़ जाता है।

४. नविषेणार्त्तः—जिस पुरुषने विष खा लिया है और विषके कारण उसको वमन या विरेचन हो रहा है; देह भरमें व्याकुलता छा रही है विषके वेगके कारण मुंह सूख रहा है और प्राण निकलनेको है वह भी धूम्रपान न करे।

५. नशोचन्—शोकसे पीड़ित व्यक्ति भी धूम्रपानका प्रयोग न करे।

६. न च गर्भिणी—गर्भिणी माता जिसके पेटमें बालक है वह भी धूम्रपान न करे। वर्त्तमानके विद्वानोंने इस बातको सर्व सम्मतिसे मान लिया है कि धूम्रपानसे तम्बाकूका विष देहमें फैल जाता है और इसका असर सन्तान पर भी पड़ता है।

७. नश्रमे—थका हुआ व्यक्ति धूम्रपान न करे। थकावटकी दशामें देह पहले ही क्षीण होती है; उसको श्रमसे होनेवाली क्षतिकी पूर्त्ति करनेके लिए किसी गरिष्ठ, घृत आदिसे बनी पुष्टिकारक वस्तुओंका भोजन करना चाहिये। धूम्रपान तो पोषक पदार्थ नहीं है प्रत्युत शोषक है। इस कारण धूम्रपान करनेसे थके हुए पुरुषको शोष, अर्थात् सूखा दमा या तपेदिक, रक्त वमन आदिके रोग हो जानेकी सम्भावना है।

८. नमदे—मदके चढ़े होनेकी दशामें भी धूम्रपान न करे। मद्य तथा अन्य मदकारी पदार्थोंके सेवन करने पर आदमी आपेसे बाहर होता है। ऐसी दशामें वह देश, काल मात्राका कुछ भी विवेक नहीं कर सकता। इस अवस्थामें अधिक पी लेने से रोगादि होनेकी बड़ी भारी संभावना रहती है।

मदकारी विषैले पदार्थोंके सेवनके साथ धूम्रपान करना जलेपर नमक छिड़कना है।

९. नामे—आंवका रोग होने पर भी आदमी धूम्रपान न करे। ऐसी दशामें धूम्रपान निर्बलताको और भी बढ़ा देगा। दूसरा शोषक होनेसे वह पेटकी अंतड़ियोंको सुखा देगा और अंवष्टम्भ हो जानेपर और भी अधिक कष्ट कारण होगा।

१०. न पित्ते—पित्त दोष होने पर भी धूम्रपान न करे। पित्तके कारण माथेमें दर्द, वमन, अपच खट्टी डकारें यह पहले ही विद्यमान हैं। धूम्रपान करना इस समय गर्मी और बढ़ा देगा। उस समय

शीतल उपचारकी आवश्यकता है। अन्यथा वातका प्रकोप भी हो जायगा।

११. न प्रजागरे—यदि रात भर जागरण किया हो तो भी धूम्रपान न करे।

१२. न मूर्छा भ्रम तृष्णासु—मूर्छाके आने पर सिर के घूमने पर, और प्यास अधिक लगे होने पर भी धूम्रपान न करे। धूम्रपान शोषक पदार्थ है। उक्त दशाएं भी शोषके कारण ही हैं। अतः धूम्रपान और भी शोचनीय दशाका कारण होगा।

१३. न क्षीणे—क्षय रोगके कारण अथवा अन्य किसी भी कारणसे शरीरके बहुत दुर्बल हो जानेकी दशामें भी धूम्रपान न करे।

१४. नापि चक्षते—घाव लगनेपर धूम्रपान न करे। डाक्टरोंका मत है कि तम्बाकू आदि पीनेवालोंके शरीरमें घाव आदि शीघ्र अच्छे नहीं होते। घाव लगने पर प्यास लगती और मुँह सूखता है। धूम्रपानकी शोषक क्रिया और भी हानि करेगी।

१५. न मद्यदुग्धे पीत्वाच—मद्यपान करके और दूध पीकर भी धूम्रपान न करे। मद्य स्वयं उत्तेजक है, धूम्रपान भी उत्तेजक है। अतः माथा घूमना उन्माद होना आदि उपद्रव होने सम्भव हैं। दूध पीकर धूम्रपान करने से कुष्ठ हो जानेकी सम्भावना है। जैसे धुआं लगा हुआ दूध पीना हानिकारक है उससे रक्त विकार उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार दूध पीकर धूम्रपान करनेसे भी रक्त विकार उत्पन्न होते हैं। दूध शीघ्र ही पच जाता है; साथ ही धूम्रपानके करनेसे धूम्रका अंश उसके साथ घुल जाता है और रक्तमें उसके विष रूपसे प्रवेश कर जानेकी सम्भावना रहती है।

१६. न स्नेहं न च माक्षिकम्—इसी प्रकार घी खाकर और मधु खाकर भी धूम्रपान न करे।

१७. न भुक्त्वादध्नाच—दहीके साथ भोजन खाकर भी धूम्रपान न करे।

१८. नरूक्षः क्रुद्ध एवच—शरीरमें स्नेहका अंश कम हो जाने पर रूखापन प्रकट हो जाता है, धूम्रपानसे यह रूखापन और बढ़ता है; इस कारण रूखापन प्रकट होनेपर धूम्रपान न करे। क्रोधकी दशामें भी धूम्रपान न करे।

१९. न तालु शोषे तिमिरे—तालु सूखने पर और नेत्रोंमें तिमिर रोग (रतौंधा) होने पर भी धूम्रपान न करे।

२०. शिरस्य भिहते न च—सिर पर चोट लगने पर धूम्रपान न करे। धूम्रपानसे माथा और घूमने लगेगा।

२१. न शङ्खके—पट पड़ी पर चोट लगने पर भी धूम्रपान न करे।

२२. नरोहिण्यां—रोहिणी (मेरुदण्ड) पर आघात लगने पर भी धूम्रपान न करे।

२३. न मेहे—प्रमेह रोग होनेपर धूम्रपान न करे।

२४. न मदात्यये—जब नशेकी प्रबलता हो तब भी धूम्रपान न करे।

इन सब निषिद्ध कालोंमें जो पुरुष मोहमें फंस कर, धूम्रपान करता है उसके रोग धूम्रके संयोगसे बढ़ते हैं और बहुत पीड़ा देने लग जाते हैं।

धूम्रपानके विषयमें हमने २३ निषेध सूत्रोंका क्रमशः उल्लेख किया है। इनपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि अज्ञानी जनता इनमें से एक भी निषेध मर्यादाका पालन नहीं करती। धूम्रपान करनेवालोंके लिए तो बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू, चिलम, हुक्का सदा बगली दोस्त रहता है। जब समय मिला, तभी वही निकलकर सुलगकर मुंहसे मुंह मिलाकर बातें किया करता है। ज़रा किसी प्रकारका कष्ट उठा कि मुंहमें सिगरेट, बीड़ी, नरियल तम्बाकू इनमें से कोई न कोई तुरन्त मुंहमें आ लगता है। व्यसनी लोगोंको प्यासमें जल मिले न मिले, भूख लगने पर भोजन मिले न मिले परन्तु धुआं फांकना अवश्य मिलना चाहिये? शराब पीते हैं; मद करते हैं, साथ ही धूम्रपान भी बेहद किया जाता है। इसी प्रकार अन्य निषेध कालोंमें भी लोग धूम्रपान करनेसे कभी बाज़ नहीं आते।

प्राचीन शास्त्रकारोंको यही आचार ज्ञात था कि पाखाने बैठ कर कोई मुंह नहीं खोलता, बात नहीं करता, फिर खाना पीना तो दूर, परन्तु आजकल धूम्रपान व्यसनियोंने और दिन रातके सब समयोंको छोड़कर पाखानेके समय धूम्रपान करनेका बड़ा अद्भुत समय निकाला है। वह टट्टी या संडासमें बैठकर घण्टों बीड़ी और सिगरेट पिया करते हैं। नारियल, चिलम, कली, हुक्का आदि धूम्रपानके साधन शायद अभी टट्टीमें प्रवेश नहीं पा सके; परन्तु बीड़ी, सिगरेट पाखानेके समय संडासमें भी पीछा नहीं छोड़ते। संडासोंमें ढेरोंके ढेर बीड़ियोंके पी पी कर फेंक देते हैं। कुछ समझमें नहीं आता कि यह मर्यादा कब सुधरेगी। वस्तुतः वह यूरोपियन सभ्यताका भूत है जो पाखानेके समय भी पीछा नहीं छोड़ता। धूम्रपानका क्या, सभी व्यसनोंका यही हाल है। मद्यपान, जलपान, खानपान, रक्तपान—यह चार सवार चले तब धूम्रपान पांचवां सवार कब पीछे रह सकता है। इनमें सबसे आगे धूम्रपान, इसके बाद मद्यपान, तदनन्तर रक्तपान, फिर खानपान और अन्तमें जलपानकी बारी है। अस्तु, पाठक स्वयं विचार करेंगे कि धूम्रपानकी क्या व्यवस्था होनी चाहिये।

—जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार

---

## कपूर ( Camphor )

[ ले०—कविराज प्रतापसिंहजी ]

कपूर फारमोसा ( Formosa ), जापान, ईस्ट इन्डीज़ आदि देशों से आता है। यह एक वृक्षसे निकाला जाता है, जिसे अंग्रेजी में Cinnamomum Camphora कहते हैं। निकालनेपर इसको उड़ा कर शुद्ध कर लेते हैं। कपूरके वृक्षकी लकड़ीके टुकड़ों से इसको मुकत्तर करते हैं ( चुआते हैं )। यही मुकत्तर की हुई वस्तु शीतल होने पर कपूरके रूपमें जम जाती है। बाजारोंमें तीन जातिका कपूर बिकता है। डलीका कपूर (Formosa camphor), बरास कपूर ( Bornea camphor )—जिसे बहुतसे लोग भीमसैनी कपूर भी कहते हैं—और टिकियाका कपूर (Blumea camphor)। भारतवर्षमें भीम सैनी कपूर उच्च कोटिका गिना जाता है और यह बहुत मूल्य पर बिकता भी है। यह स्वभावसे ही कपूर वृक्ष ( Dryobalanops camphor ) के तने में जमा हुआ रहता है। सुमात्रा और डच द्वीपमें यह अधिक उत्पन्न होता है। यह पानीमें डालनेसे डूब जाता है।

कपूरका स्वरूप—इसके कठोर, रंग रहित, पारदर्शक और रवेदार टुकड़े होते हैं। कभी कभी चौकोनी टिकिया या चूर्णके रूपमें भी यह बाज़ारमें आता है। उड़ाये हुए कपूरका आपेक्षिक गुरुत्व ०.९९५ होता है। इसकी गन्ध उग्र, स्वाद तिक्त-कटु, खानेसे जीभपर शीत स्पर्श कारक होता है और जलानेसे जलकर उड़ जाता है।

यह किस किस पदार्थके कितने भागमें घुल जाता है, यह नीचे लिखा जाता है।

कपूर एक भाग सात सौ भाग जलमें घुल जाता है
" " " एक भाग मद्यसार " "
" चार " एक भाग क्लोरोफार्म " "
" एक " चार भाग जैतूनके तेल " "
" एक " डेढ़ भाग तारपीनके तेल " "

कपूरका एक भाग तीन भाग अजवाइनके सत में या पेपरमेन्टमें डालकर घोटा जाय तो द्रव हो जाता है।

प्रभाव—इसका प्रभाव शक्तिप्रद और आध्मानहर है अर्थात् पेट के फूलनेको दूर करता है।

मात्रा—इसकी मात्रा एक रत्तीसे दो रत्ती तक है।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—चर्मपर उड़नशील तेलोंके समान प्रभाव करता है, मृदु-पाचन-निवारक और स्थानीय मांसोत्तेजक प्रभाव भी करता है; जिससे चर्मपर लालिमा और उष्णता

भी उत्पन्न होती है, इस कारण इसको मृदु चर्म प्रदाहक ( Rubefacient ) भी मानते हैं। यह चर्मकी वातिक नाड़ियोंको प्रथम उत्तेजित कर, बादमें अवसन्न कर देता है; अतः अल्प स्पर्श-लोपकारक ( Anæsthesia ) है।

मुख और शीत—यह मुखके अन्दर विशेष प्रकार का तिक्त स्वाद और शीतलता उत्पन्न करता है। थोड़े ही कालके पश्चात् उष्णता उत्पन्न कर और स्थानीय रक्त परिगमनको उत्तेजित कर, लाला और श्लेष्माको भी उत्तेजित करता है। आमाशय के अन्दर ऊष्मा उत्पन्न करता है, रक्तवाही स्रोतोंको विकसित करता है, आमाशयिक रसके प्रवाह को अधिक बढ़ाता है, एवं आमाशयिक गतिको उत्तेजित करता है; इस कारण इसको आमाशयिक उत्तेजक और आध्मानहर मानते हैं। यह मृदु पाचन निवारक है मस्तिष्क और हृदयके केन्द्रोंको उत्तेजित करता है। आंतों पर भी इसका उक्त विधिके समान ही प्रभाव होता है।

हृदय और रक्त परिगमन—यह बिना परिवर्त्तनके ही रक्तके अन्दर चर्म और श्लेष्मधराकला द्वारा प्रवेश कर जाता है, रक्तके श्वेत कणोंको बढ़ाता है, हृदयको उत्तेजित करता है, जिससे नाड़ीकी गति बलवती हो जाती है, किन्तु हृदयका स्पन्द अधिक नहीं बढ़ता, और अधिक मात्रामें नाड़ीकी गति दुर्बल और शीघ्रगामी कर देता है।

श्वासाशय—यह श्वसाशयको कुछ उत्तेजित करता है जिसमें श्वासाशयका द्रव अधिक बढ़ता है इस कारण इसको मृदु कफ़ निस्सारक मानते हैं।

वात संस्थान ( Nervous System )—वात संस्थानपर कपूरका मुख्य प्रभाव होता है, किन्तु औषधका व्यक्तिगत प्रकृतिके अनुसार परिवर्त्तन भी होता है कुछ मनुष्योंमें यह प्रफुल्लितता उत्पन्न करता है जिससे उनमें कविकारक हास्य, नृत्यादि करनेकी अभिलाषा होती है और कुछ मनुष्यों पर मादक प्रभाव करता है जिससे अवसन्नता उत्पन्न होती है। यह पहिले नाड़ियोंको उत्तेजना देकर फिर अवसन्न करता है; इस कारण यह आक्षेप निवारक औषध समझी जाती है।

चर्म—यह स्वेद द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है, स्थानीय स्वेद ग्रन्थि और स्वेदोत्पादक वातिक केन्द्रों पर प्रभाव करके स्वेद को बढ़ाता है।

शरीरके अवयवोंपर प्रभाव—शरीरकी धातुओं पर इसका क्या क्या प्रभाव होता है यह अभी पूर्ण रूपसे विदित नहीं हुआ; किन्तु यह देखा गया है कि ज्वरमें अथवा स्वस्थ दशामें यदि यह खिलाया जाय तो शरीर का तापक्रम कम हो जाता है; शरीरके अन्दर इससे Campho-glycuronic acid amido derivatives बनता है और यह मूत्र द्वारा शरीर से बाहर भी निकलता है।

जननेन्द्रिय—यह साधारण मात्रामें कामोद्दीपक ( Aphrodisiac ) है, किन्तु दीर्घ मात्रामें अवृष्य ( Anaphrodisiac ) प्रभाव करता है।

संशोधन—बिना किसी परिवर्त्तनके यह श्वासाशय और श्लेष्म धरा कला द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है। किन्तु चर्म, वृक्क और मल द्वारा रूपान्तरित दशामें बाहर निकलता है।

तात्कालिक विष लक्षण:—कपूरके विषके रोगी बहुत कम मिलते हैं; लेखकको केवल एक ही रोगी देखनेका अवसर मिला। इसमें प्रायः यह लक्षण देखे यथा उदरशूल, उत्क्लेद, कभी कभी वमन, घुमेर ( चक्कर ), नेत्र ज्योति की मन्दता, प्रलाप, उन्माद, अपस्मारके समान हाथ पैरोंका खिंचाव, शरीरका नीला होना, (Cyanosis), लकवा, ठण्डे पसीने आना, मूत्रकृच्छ्र या मूत्रावरोध, मूर्छाके अनंतर मृत्यु होना।

चिकित्सा—इसके विषमें वमन कारक औषधोंका प्रयोग, आमाशयको पम्प द्वारा धोना क्षारीय विरेचन देना, शीत और उष्ण वस्तिका प्रयोग ( Douches ), राईका लेप करना, कभी कभी उत्तेजक औषधोंका प्रयोग, और आवश्यकता होनेपर स्ट्रिकनिया (Strychnine) का इन्जकशन करना उपयोगी है।

चिरकालिक विष लक्षण:—प्राय: युवतियाँ अपने सौन्दर्यको बढ़ानेके लिये इसको खानेकी आदत डाल लिया करती हैं। एक बार पड़ जाने पर यह आदत छोड़नी कठिन हो जाती है। यह पहिले थोड़ी सी प्रफुल्लितता उत्पन्न करता है किन्तु बादमें अत्यंत दौर्बल्य और अचेतनता उत्पन्न करके शरीरको पीला कर देता है।

---

## ताप सम्बन्धी प्राचीन कल्पनाएं

तापतत्व वादसे भी प्राय: ताप सम्बन्धी सभी बातोंकी व्याख्या हो जाती थी। उदाहरणके लिए विशिष्ट ताप लीजिये। क्लेगहार्नके मतानुसार भिन्न भिन्न पदार्थ तापतत्वका भिन्न भिन्न शक्तियोंसे आकर्षण करते हैं, अतएव यदि कई पदार्थोंकी समान मात्राएं लेकर एक समान गरम किया जाय तो उन्हें तापकी भिन्न भिन्न मात्राओंकी ज़रूरत पड़ेगी। मान लीजिये कि आपके पास एक एक छटांकके पीतल, सीसा, जस्ता, लोहा और चांदीके टुकड़े मौजूद हैं। वह मेज़ पर बहुत देरसे रखे हैं, उनका तापक्रम समान है। उन टुकड़ेको खौलते पानीमें १५ मिनट तक डुबो रखें तो उनमेंसे प्रत्येकका तापक्रम खौलते पानीके तापक्रमके बराबर हो जायगा। परन्तु उन्होंने भिन्न भिन्न मात्राएं तापकी ग्रहण कर ली हैं, उनका तापके प्रति आकर्षण भिन्न भिन्न है। अब यदि पांच बीकर लेकर उनमें सौ सौ ग्राम पानी डाल दें और तब इन टुकड़ोंको भी खौलते हुए पानीमेंसे निकाल कर एक एक बीकरमें एक एक टुकड़ा डाल दें तो देखेंगे कि प्रत्येक बीकरके पानीका तापक्रम जुदा है।

जब वस्तुओंका तापक्रम बढ़ाया जाता है अर्थात् उन्हें गरम किया जाता है तो उनका आयतन बढ़ जाता है। तापतत्वके प्रवेश करनेपर तापतत्व और वस्तुके द्रव्यका मिलकर आयतन अधिक होना स्वाभाविक ही है। किन्तु दो पदार्थोंके मिलनेसे सर्वदा आयतन बढ़ता ही नहीं है। कभी कभी घट भी जाता है, जैसा कि शराब और पानीके मिलानेसे होता है। इसी प्रकार यदि गरम करनेसे अर्थात् तापतत्वका प्रवेश करनेसे किसी वस्तुका आयतन घट जाय तो आश्चर्य नहीं है। वस्तुतः कुछ ऐसे पदार्थ ज्ञात हैं जिनका आयतन गरमी देने पर घट जाता है। इस प्रकार तापतत्वका अस्तित्व माननेसे ही गरमीसे वस्तुओंके प्रसारकी व्याख्या हो सकती है।

एक और भौतिक गुण लीजिये। जब पदार्थकी अवस्था बदलती है अर्थात् ठोससे द्रव और द्रवसे गैस बनती है तो बहुत सा ताप गुप्त हो जाता है। मान लीजिये कि दो गिलासोंमें बरफके समान ठंडा पानी और बरफ समान मात्रामें लेकर तपायें तो ठंडे पानीका तापक्रम बराबर बढ़ता चला जायगा, किन्तु बरफवाले गिलासका तापक्रम उतना ही बना रहेगा जब तक कि कुल बरफ गल न जायगी। बरफके गलनेमें इतना ताप लुप्त या गुप्त हो गया; इसीलिए इसे गुप्त ताप कहते हैं। यदि पानीको गरम करते जायं तो क्रमशः तापक्रम लगभग १००°श तक बढ़ता जायगा, किन्तु तदनन्तर तापक्रमका बढ़ना रुक जायगा, पानी खौलता रहेगा। यद्यपि पानीमें गरमी पूर्ववत पहुँच रही है, तथापि तापक्रम नहीं बदलता। यहां भी दशा परिवर्तन हो रहा है, इसीलिए ताप गुप्त-तापमें परिणत हो रहा है।

ब्लेकका मत था कि तापतत्व पदार्थोंमें दो दशाओंमें पाया जाता है—एक तो केवल मिश्रणकी अवस्थामें और दूसरी संयुक्तावस्थामें। पहली अवस्थामें तो ताप द्वारा तापक्रम बढ़ता है, दूसरी अवस्थामें ताप गुप्त रूपसे रहता है, उसके कारण तापक्रममें वृद्धि नहीं होती। इस मतके अनुसार:-

पानी = बरफ + तापतत्व

और भाप = पानी + तापतत्व

परन्तु ब्लेकका मत सबको मान्य नहीं था। कुछ लोगोंका विचार था कि द्रवण तापके कारण नहीं

होता। जैसे पानीको लीजिये; पानीका द्रव होना उसके गोलाकार कणों पर निर्भर है। जब उसकी बरफ बनती है तो उसमें ठण्डके कण घुस जाते हैं, जिसका प्रमाण पानीकी आयतन-वृद्धि है; क्योंकि बरफमें बदलते ही पानीका आयतन बढ़ जाता है।

तापतत्व वादके अनुसार ताप परिवाहनकी व्याख्या ही सहजमें हो सकती है। तापतत्व ऊंचे तापक्रमसे नीचे तापक्रमकी ओर सदैव बहता है।

इस प्रकार हमने देखा कि तापतत्व वादके अनुसार सभी ताप सम्बन्धी घटनाओंकी व्याख्या-की जा सकती है, तथापि उसके माननेमें बड़ी बड़ी कठिनाइयां उपस्थित होती थीं, जिनके कारण उसे त्याग ही देना पड़ा। हां हम इतना अवश्य कहेंगे कि यदि तापतत्व वादी अपने सिद्धान्तोंमें थोड़ा सा हेर फेर कर लेते तो इस सिद्धान्तकी नींव अत्यन्त दृढ हो जाती और उसको उखाड़ना खेल न होता।

---

## पुरानी फैल्ट केप

फैल्ट केप जब पुरानी हो जाती है तो प्रायः फेंक दी जाती हैं; किन्तु उनको भी काममें ला सकते हैं। एक तो फैल्टको काट कर लम्पोंकी बत्ती बनायी जा सकती है; दूसरे उसके छोटे छोटे टुकड़े काट कर चार पाइयों, मेजों और कुर-सियोंके पायोंके नीचे सरेससे लगाये जा सकते हैं। ऐसा करनेसे यदि पालिश किया हुआ कमरों-का फर्श हो तो खराब न होगा।

---

## दूध खट्टा न हो

प्रायः थोड़ी देर तक कच्चा दूध रखे रहनेपर खट्टा हो जाता है; इससे बचाये रखनेका सहज उपाय यह है कि दूध निकालने के बाद ही एक चुटकी सोडा उसमें डाल दीजिये। दूध के स्वाद-में भी इससे अन्तर न आयगा।

## पेटका दर्द होने पर आंखकी दवा

एक बार एक आदमी ने एक वैद्यके पास जाकर कहा कि मेरे पेटमें दर्द है। वैद्य ने पूछा "आपने कल क्या खाया था"। रोगी बोला, "मैंने कल अध पकी रोटियां खाई थीं।" वैद्यने उसकी आंखोंमें सुरमा लगा दिया और उससे कहा 'जाओ'। मरीज़ बड़ा परेशान हुआ और कहने लगा 'वैद्यजी पेटमें तो दर्द है पर आप दवा आंखोंकी करते हैं'। वैद्य ने उत्तर दिया, "महाशय, यदि आंखें दुरुस्त होतीं तो कच्ची रोटियां न खा जाते।"

यह तो एक पुराना लतीफ़ा है, किन्तु हालमें ही एक विशेषज्ञ ने बतलाया है कि अजीर्णका और आंखोंका भी सम्बन्ध है। उनका कहना है कि यदि आंखोंपर किसी कारण वश बेजा ज़ोर पड़ता है तो वात संस्थानमें दुर्व्यय होने लगता है और यदि पहलेसे ही वात-संस्थान दुर्बल हुआ तो पाचन शक्ति पर बड़ा प्रभाव पड़ता है; पाचन यंत्रमें किण्व क्रिया (Fermentation) होने लगती है और अजीर्णके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। ऐसी दशामें आंखका इलाज करनेसे पेटकी सब शिका-यतें दूर हो जाती हैं। योग्य चिकित्सक तब तो आंखोंकी दवा करके पेटका दर्द दफा कर देता है।

---

## खदानों की गहराई

खदानोंमें तीसों दिन खुदाई जारी रहती है: इस निरन्तर खुदाईसे वह कितनी गहरी हो जाती हैं, इस बात पर शायद पाठकों ने कभी विचार न किया होगा। ब्राज़िलमें सें. जोन डेल रे (St. John del Ray) नामकी खानकी गहराई प्रति वर्ष १५० फुट के हिसाब से बढ़ रही है। इसकी वर्त-मान गहराई ६७२६ फुट है। भारतमें कोलारकी सोनेकी खान ६१४२ फुट गहरी है।

यदि समुद्र-तलके हिसाबसे गहराई पर विचार किया जाय तो संयुक्त राज्य अमेरिकाकी

तामरक (Tamarack) नामकी खान सबसे ज्यादा गहरी है। यह समुद्र तलसे ४१०० फुट नीची है; सें. जान डेल रेकी खान तो केवल ३९८२ फुट ही नीची है। समुद्र तलसे सबसे ज्यादा नीची जगह कालूमट और हकलाकी खदानोंकी तलैटी हैं, जो ४६०० फुट नीची हैं। सें. जान डेल रेकी खानमेंसे निकाली हुई कच्ची धातु गहराईके अनुपातमें अधिक उत्तम कोटिकी मिलती है।

## औजारोंको साफ रखनेकी तरकीब

जो औजार लगातार काममें नहीं आते रहते उनमें मुरचा लग जाता है। उनको साफ और चमकदार बनाये रखनेके लिए मरक्यूरियल मलहम उनपर लगानी चाहिये। किन्तु मरक्यूरियल मरहम ज़हरीली होती है, अतएव उसका उपयोग सावधानता से करना चाहिये।

पोपूलर मिकेनिक्स नामक पत्रमें एक और मसालेका नुसखा लिखा है। छः भाग चर्बी और एक भाग राल (Lard and resin) लेकर तपाइये,—यहां तक कि राल गल जाय; तदनन्तर यदि यह मिश्रण पाव भर हो तो एक पिंट बेंज़ीन मिला देना चाहिये। ठंडा होने पर इस मिश्रणको लोहेकी चीज़ों पर चुपड़ दीजिये, फिर तो नमकका घोल भी उनको खराब न कर सकेगा।

## काडलिवर तेल

इसके बनानेकी तीन विधि प्रचलित हैं:—

(१) काड मछलियोंके जिगरको बर्तनोंमें रख कर सड़ने देते हैं। सड़ने पर तेल ऊपर उतराने लगता है।

(२) जिगरको एक नलिकामें रखकर नलिकाको दूसरी चौड़ी नलिकाके अन्दर रख देते हैं और दोनोंके बीचमें भापका प्रवेश कराते हैं।

(३) जिगरको एक बर्तनमें रखकर भाप छोड़ते हैं। इस विधिका प्रयोग न्यूफौण्डलेण्डमें होता है।

भिषग्वरोंका मत है कि "विटेमीन्स" (जैत्रामीन) की दृष्टिसे काडलिवर औयल मक्खनकी अपेक्षा २५० गुना गुणकारी है।

## लकड़ी सुखानेकी नई विधि

लकड़ी मुद्दतोंमें सूख पाती है, इसका कारण यह है कि अन्दरकी सेल्यूल बहुत दिन तक जीवित रहती हैं। जब तक वह मर नहीं जातीं तबतक उनका पानी निकलना असम्भव है। हालमें ही एक नई तरकोब निकाली गयी है, जिससे लकड़ी बहुत जल्द सूख जाती है। पहले एक बन्द जगह में लकड़ीको बेंज़ीनकी भाप देते हैं, इस भाप के प्रभावसे सेल्यूल मर जाते हैं। इनके मर जाने पर गरम हवाके प्रयोगसे लकड़ी सहज ही सुखाई जा सकती है।

## कामजवर्गोंका वर्णन

मृगया, द्यूत, स्त्रियां, और पान यह चार व्यसनोंके वर्ग कामसे उत्पन्न होते हैं। मृगया, आखेट अथवा शिकारका शौक प्रायः क्षत्रियोंको रहा है। यह व्यसन भी बहुत से अवसरोंपर संकटका कारण बन जाता है। लोगोंका विचार है कि मृगया या आखेट करनेसे क्षत्रियोंमें वीरता बनी रहती है। परन्तु यहां यह बात विचारने योग्य है कि क्या मृगयामें वीरताकी वृद्धि होनी सम्भव भी है। यदि उसमें वीरताका विचार है तो उसे क्रोधज वर्गमें क्यों नहीं रखा। जो लोग समझते हैं कि आखेट या मृगयासे वीरताकी वृद्धि होती है वह वीरताका लक्षण नहीं जानते। दूसरेका प्राण नाश करना कोई वीरता नहीं—तिसपर भी उसका जो

अपनेसे निर्बल हो, जिसने अपना न कुछ बिगाड़ा हो और न जिससे कुछ दुश्मनी हो। वीरता वस्तुतः निर्बलोंकी रक्षा करनेमें है। रक्षा करनेके लिए अत्याचारी क्रूर, प्राणीका दमन करना आवश्यक है, तभी निर्बल-रक्षा हो सकती है।

उक्त कार्यके लिए साहस, धीरता और पराक्रमसे अपने सामनेके शत्रुका मुकाबला करना वीरता है। यह युद्धमें अपने शत्रुके साथ प्रतिस्पर्द्धा करनेसे प्रकट होती है। परन्तु निष्कारण शस्त्र और अस्त्रोंसे बनमें जाकर निरपराध प्राणियोंकी हत्या करनेमें कोई वीरता नहीं। सच्ची वीरताके लिए न्याय परायणता, सत्यके साथ प्रेम, निर्बलोंकी रक्षा और लोकोपकारके लिए प्रबलभाव हृदयमें होना आवश्यक है। मृगयामें उक्त बातोंका लव लेश भी नहीं होता। क्योंकि मृगयामें जो नाना प्रकारके छोटे बड़े जीवोंको प्राण दण्ड दिया जाता है वह उनको किसी विशेष अपराधके बदलेमें नहीं दिया जाता।

राजा अपने राज्यकार्य और राजाज्ञाके विरुद्ध जब किसीको चलता देख कर क्रोधमें आ जाता है तब उसे दण्ड देता है। वाग् दण्ड, अर्थदण्ड, और कायदण्ड तीनों प्रकारके दण्डोंका समावेश क्रोधज व्यसनमें हो जाता है। मृगयामें यद्यपि जीवोंको प्राण दण्ड अवश्य होता है; परन्तु अपराध नहीं होनेके कारण मृगया करनेवालेके हृदयमें प्राणीके प्रति किसी प्रकार क्रोध नहीं होता। फिर वह क्यों मारता है? इस प्रश्नके उत्तरमें यही कह सकते हैं कि शिकारी आदमी, अपने पेटके लिए मृगयाके द्वारा मांस कमाता है; वह चमड़ा प्राप्त करनेके लिए, दांत और हड्डी प्राप्त करनेके लिए तथा हिंसाका व्यसन पूरा करनेके लिए मृगया करता है। हिंसा करते हुए कामांगोंमें विक्षोभ पैदा होता है। काम शास्त्रियोंका सिद्धान्त है कि बहुत वार केवल हिंसा कृत्योंसे भी कामांगोंमें ऐसा विक्षोभ उत्पन्न होता है और ऐसा काम सुख प्राप्त होता है कि जिसको प्राप्त करके हिंसा व्यसनी स्त्री संभोग आदि अन्य व्यसनोंको बहुत तुच्छ गिनते हैं। इसी कारण मनु आदि प्राचीन धर्म शास्त्रकारोंने मृगयाको कामज व्यसन वर्गमें गिना है।

प्राणि-हिंसा करनेवाले मनुष्यसे इतर प्राणियोंमें दो भाव अधिक प्रबल पाये जाते हैं—एक भोजन दूसरा शाश्वतिक विरोध। शाश्वतिक विरोध एक ऐसा भाव है जो प्रायः तृणचारी पशुओंमें तथा मूल-फलाहारी पक्षियोंमें भी देखा जाता है। पशु पक्षियोंमें परस्पर अधिक हत्या प्रायः भोजनके लिए ही होती है। उनका नैसर्गिक स्वभाव ही उदर पूर्ति करनेके लिए उन्हें जीव हिंसा करनेके लिए बाध्य करता है। जिसको शाश्वतिक विरोध कहा जाता है प्रायः वह भी उदरपूर्त्तिके लिए ही होता है। जैसे गौ और व्याघ्रका, चूहा और बिल्लीका, कौवे और उल्लूका—इनमें हिंसक प्राणीके लिए दूसरा आहार मात्र है। ऐसी दशामें हम देखते हैं कि हिंसक जन्तु अपने आहारके निमित्त निर्वल प्राणीका शिकार करते हैं और वह भी केवल क्षुधाकी शान्तिके लिए अर्थात यह मृगया भी क्रोधज न होकर कामज ही है। क्योंकि आहार प्राप्त करनेके लिए क्रोधकी आवश्यकता नहीं प्रत्युत काम (सुख पानेकी इच्छा) की है। क्षत्रिय लोगोंके लिए भी यदि मांस खानेका विधान शास्त्रकारोंने किया है तो आखेट या शिकारका मांस खानेके लिये ही किया है, न कि घरमें पले जन्तुको मार कर खानेके लिए। आखेट या शिकार करनेको दशामें आखेटकारी पुरुष उस जंगली पशुके समान ही है जो जंगलमें रहकर अपनेसे निर्बल प्राणियोंका आहार करता है। जैसे पशुको धर्माधर्मका विचार नहीं होता वैसे ही आखेट या मृगयाके व्यसनीको भी नहीं रहता। अज्ञान दशामें किया अपराध जैसे अपराध नहीं गिना जाता उसी प्रकार पशु दशामें गिर कर मृगया द्वारा की हुई प्राणि हिंसा भी पाप नहीं गिनी जाती।

परन्तु यदि मृगयाका उद्देश्य आहार न होकर केवल प्राणि हिंसाका व्यसन मात्र पूरा करना है

तब यह पापमें गिनी गयी है। ऐसी दशामें ही इसको त्यागने योग्य लिखा है। क्योंकि बिना आहारकी इच्छाके पशु भी मृगया नहीं करते; फिर बिना प्रयोजन मनुष्य प्राणि हिंसा करे तो यह उसकी पशुसे भी गिरी हुई दशाका नमूना है। अतएव यह पाप है। पाप वही है जो उसको अपनी दशासे नीचे ले जाय।

यह भी कोई शोभा जनक नहीं कि क्षत्रिय राजा जन समाजमें प्रतिष्ठा पाकर व्यर्थ ही प्राणियोंके वधका पाप कमावे, तथा रक्षक न होकर भक्षक बन जावे। इस कारण शास्त्रकारों ने क्षत्रियको शस्त्र मय आजीविकाके साथ साथ रक्षा धर्मका भी उपदेश दिया है। यदि दुष्ट बनचारी जीव प्रजाको सताते हैं तब उनका दमन करना क्षत्रियका धर्म है। किसानोंके खेतोंको मृग जन नाश कर देते हैं। सब फली फलाई खेती चर जाते हैं; शशक खेतोंको खोद डालते हैं। अन्नागारोंको नष्टभ्रष्ट कर डालते हैं; मूसे खेतोंको उजाड़ डालते हैं। सांप क्षेत्रपालका काम करके भी प्रजागणके लिए संकट बने रहते हैं। इसी प्रकार गोह, सेही आदि जीव भी किसानोंके लिए संकटका कारण रहते हैं, बड़े बनचारी पशु जैसे हाथी, अरने भैंसे तथा शेर चीता व्याघ्र आदि जानवर भी पशु और खेतोंका नाश करते हैं और साथ ही प्रजाके जीवन-पर संकट रूप बने रहते हैं। इन सबसे प्रजाकी रक्षा करना क्षत्रिय राजाका परम कर्त्तव्य है। इन सबका दमन करनेके लिए मृगया, शिकार या आखेटका नियम बनाया गया है, जिससे क्षत्रिय बनोंमें विचरण करते हुए शूर, निरालसी, पराक्रमी और निर्भय वीर भी बने रहें और उनके आहार विहार शस्त्राभ्यास का आनन्द भी लुप्त न हो— साथ ही प्रजागणकी रक्षा और हिंसक दुःखदायी जानवरोंका दमन भी होता रहे।

राजनीतिकी दृष्टिसे उचित देश, उचित काल, और उचित मात्रामें बनोंमें मृगया करना, सर्वथा उपयुक्त है; परन्तु इसको व्यसन बनाकर उसमें ही लिपटे रहना तथा उसमें निमग्न रहकर अन्य संकटोंमें पड़ना बड़ा हानिकारक है। मृगया क्या सभी कामज और क्रोधज व्यसनोंकी यही दशा है। व्यसनोंमें निमग्न हो जानेपर अन्तः शत्रु और बाह्य शत्रु राजा पर प्रहार करते हैं और राज्य धन और प्राणका विनाश करनेका प्रयत्न करते हैं। इसी हेतु राजनीतिके आचार्य मृगया व्यसनको छोड़ देनेका उपदेश करते हैं।

### कामज व्यसनोंकी तुलना

अब यह विचार कीजिये कि मृगया, जूआ, स्त्री विलास तथा मदिरा पान इन चारोंमें कौन अधिक अनर्थकारी और कौन किससे कम अनर्थकारी है। प्रत्येक व्यक्तिको चाहिये कि अपने छोटे बड़े सब कामोंके हानि लाभ पर विचार कर लिया करे।

पिशुन आचार्य कहते हैं—मृगया और जूआ इन दोनोंमें से मृगया अधिक हानिकारक है; क्योंकि मृगयामें चोर, डाकू, शत्रु और जंगली हिंसक जन्तुओंके कारण प्राण सदा संकटमें रहते हैं। इसी प्रकार कभी किसी अपरिचित जंगलमें जा निकले तो वहां ही भटक भटक कर मर जाना होता है। कहीं ऊंची नीची भूमिमें फिसल पड़े तो भी प्राण जाते हैं। दिशाएं भूल कर कहींके कहीं निकल गये तो भी क्षेम नहीं। मृगया करते करते भूख प्यासके कष्टसे भी जान जानेका भय है। दूसरी तरफ जूएमें तो जो पासा फेंकनेमें चतुर होगा वह जीत ही लेगा; जैसे जयत्सेन और दुर्योधन राजा पासा फेंकनेमें चतुर होनेके कारण बाज़ी जीत गये और किसी संकटमें नहीं पड़े।

इसके प्रतिवादमें आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि जूएमें चतुर व्यक्ति जीत जाता है तो यह हेतु जुएकी अनर्थताको न्यून नहीं कर सकता; क्योंकि जूआ खेलनेवालोंमें कोई एक अवश्य ही हारता है; जैसे जयत्सेनसे नल हार गया, दुर्योधनसे युधिष्ठिर हार गया। इन हारने वालों पर जितने संकट पड़े उन सबका कारण जूआ ही था। जूएमें जीतने-

वाला पुरुष जिस धन सम्पत्तिको बाज़ी जीत कर हथिया लेता है वह वास्तवमें दोनों जूआ खेलनेवालोंके बीच एक प्रलोभनका विषय रहता है। उसको ले लेनेके लिए दोनोंके चित्त लालायित रहते हैं। दोनोंकी दृष्टि उसीपर लगी रहती है। एक बार एकके जीत लेनेपर दूसरा जो हार गया है उसकी आकांक्षा पूरी नहीं होती। वह दूसरी बार उसके लेनेकी चेष्टा करेगा। जिस प्रकार दो चीलें एक मांसके टुकड़ेके लिए लड़ा करती हैं उसी प्रकार वह दोना भी शर्त पर रखे हुए धनके लिए लड़ेंगे। दोनोंमें आपसका चिरकालिक बैर बैठ जायगा। आपसमें सदाका बैर बैठ जाने से प्राणोंपर सदा संकट आनेका भय बना रहता है।

इसके अतिरिक्त जूएकी और भी बहुत सी हानियां हैं; जैसे अपने पास जो धन होता भी है वह जूए पर लग जानेसे अपने हाथसे निकल जाता है। दूसरे जो धन अपने पास नहीं होता वह आ जाता है। जो धन अपने हाथसे निकल जाता है वह एक प्रकारसे बिना भोग किये ही नाश हो जाता है। तीसरे जूआ खेलते खेलते और बाज़ी लगाते लगाते पेशाब पाखाना सब पेटमें ही रुका रहता है; भूख और प्यासकी भी सुध नहीं रहती; इन कारणोंसे जुआखोर अन्य बहुत सी बीमारियोंका शिकार हो जाता है। यह सब अनर्थ जूएके साथ जुड़े हैं। दूसरी तरफ मृगयाको लीजिये। मृगया करनेमें खूब शरीरका व्यायाम हो जाता है। शरीरको चर्बी और पित्तका नाश हो कर शरीर हलका हो जाता है; भागते हुए या खड़े हुए भी निशाना लगानेका खूब अभ्यास हो जाता है। अपनी प्रतिस्पर्धामें खड़े हुए क्रुद्ध या भयभीत जन्तुओंके चाल चलन और मनो विकारोंका अच्छा परिचय हो जाता है और मौके बे मौके चढ़ाई करनेकी सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। फलतः मृगया और जूआ इनमें जूआ ही अधिक हानिकारक है।

अब जुआ और स्त्री व्यसन पर विचार कीजिये। आचार्य कौणप्य दन्त ( भीष्म पितामह ) कहते हैं कि जूआ और स्त्री व्यसन इन दोनोंमें जूएका व्यसन अधिक हानिकारक और अनिष्ट जनक है। क्योंकि जूआखोर रातको भी दीप जला जला कर खेला करता है। चाहे घरमें उसकी मां भी मर जाय तो भी रात दिन लगातार जूआ खेला करता है। जब जुएके कारण हार जाता है और खाने पीनेके लिए भी लाचार हो जाता है तब तो बात बातमें क्रोध करने लग जाता है। दूसरी तरफ स्त्री विलासका व्यसन लग जाने पर भी पुरुष नहानेके समय, पूजा पाठ और भोजन आदिके समय अपने धर्म और अर्थ सम्बन्धी बातों पर विचार किया करता है। दूसरे, उस औरतको जिससे राजा फंस गया है गुप्त दण्डका भय दिला कर राजाके हित कार्यमें लगाया जा सकता है या अधिक संभोगसे पैदा होने वाले महाभयंकर रोगोंका भय दिखा कर उस स्त्रीको अलग किया जा सकता है या उस स्त्रीको ही गुप्त रूपसे राजासे अलग किया जा सकता है।

इसके प्रतिवादमें आचार्य कौटिल्य कहते हैं कि जूएमें जो कुछ हारा जाता है वह तो प्रकारान्तरसे फिर लौटाया जा सकता है; परन्तु स्त्री व्यसनमें पड़कर जिस वस्तुको खो बैठते हैं वह फिर प्राप्त नहीं की जा सकती। राजा प्रायः स्त्री व्यसनमें पड़कर राज दरबारमें मुख भी नहीं दिखाता। इस कारण जो कार्य उसकी रेख देखमें होने चाहिये वह ठीक ठीक प्रकारसे नहीं होते। राज कार्योंकी उपेक्षा कर देनेसे राज्य और राजा दोनों पर अनर्थकारी संकट आ उपस्थित होते हैं और धर्मका सत्यानाश हो जाता है। शरीर दुर्बल पड़ जाता है और मद्यपानका व्यसन साथ लग जाता है।

अब दृष्टिके सामने स्त्री व्यसन और मद्यपानका व्यसन दोनों आ जाते हैं। इनकी तुलना करते हुए वात व्याधि आचार्य (उद्धव महाराज) कहते हैं कि इन दोनोंमें स्त्री व्यसन अधिक अनर्थकारी ही है। स्त्रियोंमें अनेक प्रकारके कपट और मूर्खताएं

देखी जाती हैं, जिनके कारण राजा निरन्तर संकटमें पड़ा करता है। राजा भद्रसेनको उसके भाई ने रातमें उसकी स्त्रीका वेश बना कर अन्तःपुरमें ही मार डाला। राजा कारूषको उसके लड़के ने अपनी मांके बिस्तरेमें छिप कर मार डाला। काशी राजको उसकी स्त्रीने मूर्खतासे धानकी खिली हुई खीलोंको मधुके स्थान पर विषसे मिला कर खिला दिया और मार दिया। राजा वैरन्त्यको उसकी स्त्री ने जहरसे बुझे पैरके बिछुएसे मार डाला। राजा सौ वीरको उसकी स्त्री ने कटिमें पहननेकी मेखला (तगड़ी) में लगी मणियोंसे ही मार डाला। राजा जालूथको उसकी स्त्री ने दर्पणमें लगे शीशेसे घात कर दिया। राजा विदूरथकी स्त्री अपने केश पाशमें गुप्ती छिपाकर ले गयी; उसने अपने पति-का प्राण उसीसे ले लिया। यह सब अनर्थकारी बातें स्त्रियां प्रायः किया करती हैं। मद्यपानमें तो रूप रस गन्ध स्पर्श शब्द आदि इन्द्रियोंके विषयोंका उत्तम उपभोग प्राप्त होता है; नाचगान आदिमें उत्सुकता बढ़ती है, अमीरी सुख भोग प्राप्त होते हैं; मद्यका प्याला देकर दूसरोंके प्रेमको खींचा जाता है और दूसरोंके प्रति प्रेम दर्शाया जाता है। अपने परिजन नौकर चाकर और भाई बन्धु और मेली जोली आदिका सत्कार भी मद्यसे किया जाता है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि परिश्रम करनेसे उत्पन्न हुई थकावटका नाश हो जाता है।

इसके प्रतिवादमें आचार्य कौटिल्य कहते हैं—स्त्री प्रसंगसे तो सन्तति उत्पन्न होती है। जब राजा पर बाहरसे कोई विपत्ति आती है और बचनेका कोई उपाय नहीं सूझता तब औरतोंके लंहगेमें छिप कर भी रक्षा हो जाती है। अपने अन्तःपुर पर आसक्त रहनेसे बाहरकी सब अगम्या औरतों पर उसका मन नहीं जाता। परन्तु मद्य-पानका व्यसन लग जाने पर सब इससे विपरीत होता है। राजा अगम्या स्त्रियोंका भी भोग करने लगता है और बाहरकी स्त्रियों पर भी हाथ लगा बैठता है; ऐसी दशामें शत्रुको राजाके शरीर पर आघात करनेका उत्तम अवसर मिलता है। मद्यपान करनेकी जो हानियां होती हैं वह तो होकर ही रहती हैं जैसे—सुध बुध भूल जाती है, उन्माद रहित पुरुष भी पागल हो जाता है, न भी मरा हो तो भी मर जाता है, बे-शर्म होकर नंगा हो जाता है, पढ़ा लिखा भूल जाता है, अकल मारी जाती है, शरीरकी शक्तिका अधिक व्यय होता है, धन लुट जाता है, भले आदमी मद्य व्यसनीका संग छोड़ देते हैं और गुण्डे बदमाश उसके साथ चिपट जाते हैं, नाचना गाना और बजाना आदि अधिक व्यय कराने वाले अन्य व्यसन भी साथ ही लग जाते हैं।

कुछ एक आचार्योंका मत है कि जूए और मद्यपानमें जूआ अधिक हनिकारक है। जूएमें शर्त रखकर उसके लिए हारजीत चलती है; यही शर्त या बाजी चेतन प्राणियों पर भी लगती है। दो राजाओंको इस प्रकार हारजीतकी शर्त पर प्रति स्पर्द्धा करते देखकर राजाओंके अमात्योंमें, दर्बार-में तथा प्रजामें भी दो दल खड़े हो जाते हैं और उनमें भी परस्पर विद्वेष उठ खड़ा होता है। और खासकर वह राजकुल जिनका पक्ष पोषण करनेके लिए उनके वंशके लोग उनके संग संघ बनाकर रहते हैं उनमें तो आपसमें प्रायः जूए के कारण ही फूट पड़ा करती है। इसीके कारण संघ बना कर रहनेवाले राजकुलोंका विनाश भी हुआ करता है। इन कारणोंसे स्पष्ट है कि जूआ खेलना गुण्डे लोगोंका काम है। सब व्यसनोंमें यह सबसे अधिक पापिष्ठ है। इसके सेवनसे राज्य का कारबार एक दम कमज़ोर पड़ जाता है।

इसी प्रसङ्गपर हमें मनु महाराजका यह बचन स्मरण आता है—

> द्यूतं समाह्वयं चैव राजा राष्ट्रान्निवारयेत ॥
> राज्यान्तकरणा वेतौ द्वौ दोषौ पृथिवीक्षिताम् ॥
>
> ( मनु ६ । २२१ )

राजा अपने राष्ट्रमें द्यूत और समाह्वय इन दोनोंको दूर कर दे, क्योंकि राजाओंके यह ही दोनों व्यसन (दोष) राज्यका अन्त (सत्यानाश) कर

देते हैं। द्यूत और समाह्वय यह दो दोष राजाओं-में प्रायः उत्पन्न हो जाते हैं। जूएको द्यूत कहते हैं; शर्त लगाकर जड़ पदार्थोंसे क्रीड़ा करना द्यूत कहाता है और शर्त लगाकर चेतन प्राणियोंका खेल करना समाह्वय कहाता है।

यूरोपियन लोगोंने पासे और कौड़ियोंके खेलोंके अतिरिक्त और भी बहुतसे जूएके प्रकारों का आविष्कार किया है, जिनमें सूईका घूमना, छल्लोंका निशानेपर फेंकना आदि बहुत से प्रकार हैं। यह सब जूए के नामसे कहाने योग्य हैं। परन्तु मेढ़ोंकी लड़ाई, भैंसोंकी लड़ाई, मुर्गे, बटेर तथा बाजोंकी लड़ाई, घुड़ दौड़ आदि चेतन प्राणियोंकी परस्पर स्पर्धापर बाजियां लगाना और शर्त बांधना समाह्वय कहाता है। इन दोनों प्रकारोंके जूओंको महाराज मनुने राष्ट्रमें सर्वथा रोक देनेकी आज्ञा दी है। क्योंकि—

प्रकाशमेतत्तास्कर्यं यद्देवन समाह्वयौ

जूआ खेलना, और चेतनप्राणियों पर शर्त्त लगाना यह दोनों दिनकी चोरी हैं। इसलिए

"तयोर्नित्यं प्रतीघाते नृपतिर्यत्नवान् भवेत्।"

राज इन दोनों प्रकारकी शर्त्तबाजियोंका विनाश करनेमें यत्नवान् रहे। और

द्यूतं समाह्वयं चैव यः कुर्यात् कारयेत वा।
तान् सर्वान् घातयेद्राजा शूद्रांश्चद्विज लिंगिनः॥

जो पुरुष जूआ या समाह्वय करें या करवायें राजाको चाहिये कि वह उन सबको प्राण दण्ड दे। इसी प्रकार उन शूद्रोंको भी प्राण दण्ड दे जो द्विजातियोंका भूठ मूठ स्वांग भरें। और

द्यूतमेतत् पुरा कल्पे दृष्टं बैरकरं महत्।
तस्माद् द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान्।

पुराने ज़मानेमें भी देखा गया है कि जूआ ही बहुत लड़ाइयोंका कारण हुआ है; इस कारण बुद्धिमान पुरुष कभी हाथमें भी जूएका पासा न ले।

इतनी विवेचना धर्मशास्त्र तथा राजनीति शास्त्रोंने काम और क्रोध की है। इससे अधिक हम स्वयं क्या लिखें।

# सूर्यसिद्धान्त

( गतांकसे सम्बद्ध )

इस श्लोकसे यह भी पता चलता है कि आचार्यने एक राशिके ८वें भाग अर्थात् ३$\frac{3}{4}$ अंश या २२५ कलाके धनु (arc) और ज्या (line) में कोई अन्तर नहीं समझा है। इसके बाद ३$\frac{3}{4}$ अंशके दूने, तिगुने, चौगुने, इत्यादि अंशोंकी ज्याएं कैसे ज्ञातकी जाती हैं इसकी रीति बतलायी गयी है। संक्षेपमें, बीज गणितकी भाषामें, रीति यों लिखी जा सकती है:—

यदि प=३$\frac{3}{4}$ अंश=२२५′

तो ज्या प=२२५′

$$\text{ज्या } ७\tfrac{1}{2} \text{ अंश} = \text{ज्या २ प} = \text{ज्या प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प}}{\text{ज्या प}}$$

$$= २२५' + २२५' - १' = ४४९';$$

$$\text{ज्या } ११\tfrac{1}{4} \text{ अंश} = \text{ज्या ३ प} = \text{ज्या २ प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या २ प}}{\text{ज्या प}}$$

$$= ४४९' + २२५' - ३ = ६७१';$$

$$\text{ज्या } १५^\circ = \text{ज्या ४ प} = \text{ज्या ३ प} + \text{ज्या प} - \frac{\text{ज्या प} + \text{ज्या २ प} + \text{ज्या ३ प}}{\text{ज्या प}}$$

$$= ६७१' + २२५ - (१ + १ + ३) = ८९०';$$

इसी प्रकार ज्या (स + १) प

$$= \text{ज्या (स प)} + \text{ज्या} - \text{प} \frac{\text{या प} + \text{ज्या २ प} + \cdots \text{ज्या (स प)}}{\text{ज्याप}}$$

इसकी उपपत्ति महामहोपाध्याय बापूदेव शास्त्रीजीके अनुसार* यह है:—

मना करो, ज्या प − ज्या० = $त_1$,

ज्या२प − ज्या प = $त_2$,

ज्या३प − ज्या २ प = $त_3$,

ज्या नप − ज्या (न−१)प=त

* देखो सूर्य सिद्धान्तका बापूदेवजी शास्त्री द्वारा अंग्रेजी अनुवाद।

और　ज्या (न + १) प − ज्या न प = त$_{न+१}$

तब, त$_१$ − त$_२$ = २ ज्या प — ज्या २प

= २ ज्या प — २ ज्याप कोज्या प *

= २ ज्या प ( १ — कोज्या प )

= २ ज्या प × उज्या प † …………(१)

त$_२$ − त$_३$ = २ ज्या २ प — ज्या प — ज्या ३ प

= २ ज्या २ प — ज्याप — (३ ज्या प — ४ ज्या$^३$ प)

= २ ज्या २ प — ४ ज्या प + ४ ज्या$^३$ प

= २ ज्या २ प — ४ ज्या प(१ − ज्या$^२$प)

= २ ज्या २ प − ४ ज्या प × कोज्या$^२$प

= २ ज्या २ प − २ ज्या प × कोज्या प × २ कोज्या प

= २ ज्या २ प − २ ज्या २ प × कोज्या प

= २ ज्या २ प(१ − कोज्या प)

= २ ज्या २ प × उज्या प………　　(२)

त$_३$ − त$_४$ = २ ज्या ३ प − ज्या २ प − ज्या ४ प

= २ ज्या ३ प − (ज्या २ प + ज्या ४ प)

= २ ज्या ३ प − २ ज्या ३ प × कोज्या प ‡

= २ ज्या ३ प(१ − कोज्या प)

= २ ज्या ३ प × उज्या प………　　(३)

इसी प्रकार त$_न$ − त$_{न+१}$ = २ ज्या नप − ज्या (न − १)प − ज्या (न + १)प

= २ ज्या नप − {ज्या (न — १) प + ज्या (न + १)प }

= २ ज्या नप − २ ज्या नप कोज्या प

= २ ज्या नप (१ — कोज्या प)

= २ ज्या नप × उज्या प…………(न)

अब (१), (२), (३)…(न) समीकरणोंके सम पक्षोंको जोड़नेसे

त$_१$ − त$_{न+१}$ = २ उज्या प (ज्या प + ज्या २ प + ज्या ३ प + …ज्या नप)

* कोज्या = कोटिज्या = cosine

† उज्या = उत्क्रमज्या = versed sine = (1-cosine) = १-कोज्या

‡ देखो Hall and Knight's Trigonometry page 113.

परन्तु त$_१$ − त$_{न+१}$ = ज्या प + ज्या नप — ज्या (न + १)प

∴ ज्या प + ज्या नप — ज्या (न + १)प = २ उज्या प × (ज्या प + ज्या २ प + …ज्या नप)

∴ ज्या (न + १)प = ज्या नप + ज्या प − २ उज्या प (ज्या प + ज्या २प + …ज्या नप)

यहां प = ३°४५′ = २२५′

∴ २ उज्या प = २ उज्या २२५′ = २ (१ — कोज्या २२५′)

$$= २\ (१ - \cdot ९९७८) = २ \times \cdot ००२२ = \frac{४४}{१००००} = \frac{१}{२२७}$$

$$= \frac{१}{२२५}\ \text{स्थूलरूपान्तरसे}$$

$$\therefore \text{ज्या}\ (न + १)प = \text{ज्या नप} + \text{ज्या प} - \frac{१}{२२५} \times$$

( ज्या प + ज्या २प + …ज्या नप )

तत्राश्विनो ऽङ्काब्धिकृता रूपभूमिधरर्तवः ।
खाङ्काष्टौ पञ्चशून्येशा बाणरूपगुणेन्दवः ॥ १७ ॥
शून्यलोचनपञ्चैकाश्छिद्ररूपमुनीन्दवः
वियच्चन्द्रातिधृतयो गुणरन्ध्राम्बराश्विनः ॥ १८ ॥
मुनिषड्यमनेत्राणि चन्द्राग्निकृतदस्रकाः ।
पञ्चाष्टविषयाक्षीणि कुञ्जराश्विनगाश्विनः ॥ १९ ॥
रन्ध्रपञ्चाष्टकयमा वस्वद्र्यङ्कयमास्तथा ।
कृताष्टशून्यज्वलना नगाद्रिशशिवह्नयः ॥ २० ॥
षट्पञ्चलोचन गुणाश्चन्द्रनेत्राग्नि वह्नयः ।
यमाद्रिवह्निज्वलना रन्ध्रशून्यार्णवाग्नयः ॥ २१ ॥
रूपाग्निसागरगुणा वस्वग्निकृतवह्नयः ।
प्रोज्झ्योत्क्रमेण व्यासार्धादुत्क्रमज्यार्धपिण्डकाः ॥ २२ ॥

अनुवाद—(१७) २२५, ४४९, ६७१, ८९०, ११०५, १३१५; (१८) १५२०, १७१९, १९१०, २०९३; ( १९ ) २२६७, २४३१, २५८५, २७२८; (२०) २८५९, २९७८, ३०८४, ३१७७; (२१) ३२५६, ३३२१, ३३७२, ३४०९; (२२) ३४३१, ३४३८ कलाएं क्रम से ३¾ अंश, ७½ अंश, ११¼ अंश, १५ अंश इत्यादि एक समकोण के २४ पिंडोंकी ज्याएं हैं। यदि इनको उलटे क्रम से (उत्क्रम से) एक त्रिज्या की कलाओं से अर्थात् ३४३८ से घटा दो तो एक समकोणके २४ पिंडोंकी

क्रमसे उत्क्रमज्याएं ज्ञात हो जायंगी। इनके मान भी आगेके पांच श्लोकोंमें दिये हुए हैं।

विज्ञान भाष्य—इस सम्बन्धमें अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती है। अगले पांच श्लोकोंके बाद इन ज्याओं और उत्क्रमज्याओंके मानोंकी तुलना आजकलकी रीतिसे निकाले हुए मानोंसे की जायगी।

उत्क्रमज्याके मान जाननेके लिए जो नियम लिखा गया है वह बहुत ही सरल और मौलिक है। यदि ३४३८ मेंसे अंतिम संख्या ३४३८ घटायी जाय तो शून्य बचेगा, जो शून्य अंशकी उत्क्रमज्या है और यदि ३४३१ घटाया जाय तो ७ बचेगा जो २२५ कलाकी उत्क्रमज्या है। इसको रेखा गणितके आधार पर इस प्रकार जान सकते हैं—चित्र १८ में यदि उ अ आ २२५' कलाका कोण हो तो उ आ का मान २२५', उ इ का २२५' (स्वल्पान्तर से) अ इ का ३४३१' और इ आ का ७' है। यही इ आ का मान उ अ इ कोणकी उत्क्रमज्या है। इसी प्रकार अन्य पिण्डोंकी ज्याएं और उत्क्रमज्याएं जानी जा सकती हैं।

मुनयो रन्ध्रयमला रसषट्का मुनीश्वराः ।
द्व्यष्टैका रूपषड्दस्राः सागरार्थहुताशनाः ॥२३॥
खर्तुवेदा नवाद्यर्था दिङ्नगास्त्र्यर्थ कुञ्जराः ।
नगाम्बरवियच्चन्द्रा रूपभूधर शङ्कराः ॥२४॥
शरार्णवहुताशैका भुजङ्गाक्षि शरेन्दवः ।
नवरूप महीध्रैका गजैकाङ्कनिशाकराः ॥२५॥
गुणाश्विरूपनेत्राग्नि पावकाग्नि गुणाश्विनः ।
वस्वर्णवार्थ यमलास्तुरङ्गर्तु नगाश्विनः ॥२६॥
नवाष्टनवनेत्राग्नि पावकैकयमाग्नयः ।
गजाग्नि सागर गुणा उत्क्रमज्यार्थ पिण्डकाः ॥ २७ ॥

अनुवाद—(२३) ७, २९, ६६, ११७, १८२. २६१, ३५४; (२४) ४६०, ५७९, ७१०, ८५३, १००७, ११७१; (२५) १३४५, १५२८, १७१९, १९१८; (२६) २१२३, २३३३, २५४८, २७६७; (२७) २९८९, ३२१३, और ३४३८ कलाएं क्रमसे उत्क्रम आ के पिंड हैं।

नीचे एक सारिणी दी जाती है जिसमें ऊपरके ग्यारह श्लोकोंका सार है:—

| पिंडों का क्रम | धनु अथवा कोण | भारतीय रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या = ३४३८ | आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या = ३४३८ | आजकल की रीति से ज्या के मान जब त्रिज्या = १ | भारतीय रीति से उत्क्रमज्या के मान जब त्रिज्या = ३४३८ | आजकल की रीति से उत्क्रमज्या के मान जब त्रिज्या = १ |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | ३°४५' | २२५ | २२४·८५ | ·०६५४ | ७ | ·००२२ |
| २ | ७°३०' | ४४९ | ४४८·९५ | ·१३०५ | २९ | ·००८६ |
| ३ | ११°१५' | ६७१ | ६७०·७२ | ·१९५१ | ६६ | ·०१९२ |
| ४ | १५° | ८९० | ८८९·८२ | ·२५८८ | ११७ | ·०३४१ |
| ५ | १८°४५' | ११०५ | ११०५·०१ | ·३२१४ | १८२ | ·०५३१ |
| ६ | २२°३०' | १३१५ | १३१५·०५ | ·३८२७ | २६१ | ·०७६१ |
| ७ | २६°१५' | १५२० | १५२०·५८ | ·४४२३ | ३५४ | ·१०३१ |
| ८ | ३०°' | १७१९ | १७१९·०० | ·५००० | ४६० | ·१३४० |
| ९ | ३३°४५' | १९१० | १९१०·०५ | ·५५५५ | ५७९ | ·१६८५ |
| १० | ३७°३०' | २०९३ | २०९२·०९ | ·६०८८ | ७१० | ·२०६६ |

* देखिये चित्र १८ पृष्ठ १९९ विज्ञान भाग १८ संख्या ४

चित्र १९ चित्र २०

चित्र २१

| | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|
| ११ | ४१°१५′ | २२६७ | २२६६·०८ | ·६५९४ | ८५३ | ·२४८१ |
| १२ | ४५°० | २४३१ | २४३१·०१ | ·७०७१ | १००७ | ·२९२९ |
| १३ | ४८°४५′ | २५८५ | २५८४·७०८ | ·७५१९ | ११७१ | ·३४०६ |
| १४ | ५२°३०′ | २७२८ | २७२७·५५ | ·७९३४ | १३४५ | ·३९१२ |
| १५ | ५६°१५′ | २८५९ | २८५८·५५ | ·८३१५ | १५२८ | ·४४४५ |
| १६ | ६०°० | २९७८ | २९७७·०४ | ·८६६० | १७१९ | ·५००० |
| १७ | ६३°४५′ | ३०८४ | ३०८३·४५ | ·८९६९ | १९१८ | ·५५७७ |
| १८ | ६७°३०′ | ३१७७ | ३१७६·०६ | ·९२३८ | २१२३ | ·६१७३ |
| १९ | ७१°१५′ | ३२५६ | ३२५५·७५ | ·९४६९ | २३३३ | ·६७८६ |
| २० | ७५°० | ३३२१ | ३३२०·८५ | ·९६५९ | २५८४ | ·७४१२ |
| २१ | ७८°४५′ | ३३७२ | ३३७१·९५ | ·९८०८ | २७६७ | ·८०४९ |
| २२ | ८२°३०′ | ३४०९ | ३४०८·७५ | ·९९१४ | २९८९ | ·८६९५ |
| २३ | ८६°१५′ | ३४३१ | ३४३०·८५ | ·९९७८ | ३२१३ | ·९३४६ |
| २४ | ९०°०′ | ३४३८ | ३४३८·०० | १·०००० | ३४३८ | १·०००० |

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्तमें त्रिकोणमितिके इतने ही सम्बन्ध (ratios) दिये हुए हैं। इनसे कोटिज्या (cosine) जाननेके लिए यह नियम व्यवहारमें लाया गया है कि यदि किसी कोणकी ज्या दी हुई हो तो उस कोणको ९०°मेंसे घटाने पर जो कोण होता है उसकी कोटिज्याका मान भी वही होता है अर्थात् किसी कोणकी ज्या उसके पूरक कोणकी कोटिज्याके समान होती है। किसी कोणकी स्पर्श रेखा (tangent) का मान आजकलकी तरह नहीं दिया मिलता है, परन्तु इसका व्यवहार अप्रत्यक्ष रूपसे कोणकी ज्याको उसकी कोटिज्यासे भाग देकर किया गया है।

यदि कोणका मान ऐसा है कि ऊपर दिये हुए दो पिंडोंके बीचमें पड़ता है तो उसकी ज्या, कोटिज्या या उत्क्रमज्या त्रैराशिक (proportional parts) से जाननेकी विधि अगले ३१-३४ श्लोकोंमें बतलायी गयी है। इसी प्रकार यदि ज्याका मान ज्ञात हो तो उससे धनु (कोण) भी निकालनेकी रीति भी इन्हीं श्लोकोंमें है।

भास्कराचार्य जी ने ज्या, कोटिज्या जाननेकी रीति और सूक्ष्म रीतिसे बतलायी है।

ज्याके पर्याय क्रमज्या, भुजज्या, बाहुज्या, अर्द्धज्या इत्यादि तथा कोटिज्याके लम्बज्या भी प्रयोग किये गये हैं।

परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्र गुणेन्दवः।
तद्गुणाज्या त्रिजीवाप्ता तच्चापं क्रान्तिरुच्यते ॥ २८॥

अनुवाद—(२८) परमक्रान्ति ज्याका मान १३९७ कला है। इसको (भोगांशकी) ज्यासे गुणा करके, फलको त्रिज्यासे भाग देने पर जो आवे वह जिस धनु (कोण) की ज्या हो वही क्रान्तिका मान होता है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकमें दिखलाया गया है कि 'ज्या' का व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। साथ ही साथ यह नियम भी बतलाया गया है कि किसी समकोण गोलीय त्रिभुज (Right angled Spherical triangle) के भुजों और कोणोंमें परस्पर सम्बन्ध क्या होता है। परमक्रान्ति ज्याका मान १३९७ कला बतलाया गया है; जिससे जान पड़ता है कि परम क्रान्तिका मान २४° है; क्योंकि २४° की ज्याका मान ही उपर्युक्त रीतिसे १३९७ कला होता है; यद्यपि शुद्ध गणनासे वह २३°५८′३१″ की ज्या है।

दिये हुए चित्र १६में ब वसंत सम्पात ब स क्रान्तिवृत्तका खंड और ब प विषुवद्वृत्तका खंड है। स प ध्रुवप्रोत वृत्तका खंड है अर्थात् उस वृत्तका खंड है जो ध्रुवसे होकर जाता है और विषुवद्वृत्तके विन्दु प पर समकोण बनाता है। स ब प कोण क्रान्ति-वृत्त और विषुवद्वृत्तके बीचका कोण (obliquity of the ecliptic) है जो उपर्युक्त श्लोकके अनुसार २४° है। वसंत संपातसे सकी दूरी ब स क्रान्तिवृत्तके 'स' विन्दुका भोगांश और विषुवद्वृत्तिसे सकी दूरी जब कि स प ब कोण समकोण हो, अर्थात स प, स विन्दुकी क्रान्ति कहलाती है। इसीको अपक्रम भी कहते हैं। दिये हुए नियमके अनुसार,

$$\frac{\text{ज्या (ब स)} \times १३९७}{३४३८} = \text{ज्या (सप)}$$

$$\text{अथवा ज्या (बस)} \times \frac{\text{ज्या (स ब प)}}{\text{त्रिज्या}} = \text{ज्या (सप)}$$

यदि त्रिज्याको ३४३८की जगह १ मान लिया जाय, जैसी कि आजकलकी प्रथा है तो १३९७ कला-की जगह ·४०६७ रखना होगा। इससे गुणा भाग-में कुछ सरलता हो जायगी और तब इस सूत्रका रूप केवल यह होगा

$$\text{ज्या (ब स)} \times \text{ज्या (स ब प)} = \text{ज्या (सप)}$$

यही कुछ भेदके साथ आजकल नेपियरके एक नियमसे प्रसिद्ध है, जिसे नेपियर* नामक गणितज्ञ ने एडिनबरासे १६१४ ई० अथवा १६७१ वि०में अपने ग्रन्थ 'मिरिफिसी लागेरिथमोरम कैनोनिस डेसक्रिपशिओ' mirifici Logarithmorum Canonis Descriptio में प्रकाशित किया था। नेपियरके नियम याद रखनेके लिए यह युक्ति है:-

किसी समकोण गोलीय त्रिभुजके समकोणको छोड़कर, समकोण बनाने वाली दो भुजों, कर्णके पूरक, तथा अन्य दो कोणोंके पूरकोंको त्रिभुजके गोल खंड (circular parts) कहते हैं। इस प्रकार किसी समकोण गोलीय त्रिभुजके ५ गोलखंड होते हैं। यह पांचों खंड एक वृत्तके चारों ओर उसी क्रम से रखे जाते हैं जिस क्रमसे यह त्रिभुजमें रहते हैं। मानलो अ इ उ एक गोलीय त्रिभुज है। अ, उ, इ, वह विन्दु हैं जिनपर त्रिभुजकी भुजें इ अ, उ अ; अ इ, उ ई; और अ उ, इ उ मिलती हैं, उ अ इ, अ इ उ और अ उ इ कोणोंको संक्षेपमें अ, इ, उ अक्षरों से प्रकट करते हैं। इसी तरह अ कोणके सामने वाले भुज इउ को 'आ' से, इ कोणके सामने वाले भुज अ उ को ई से और उ कोणके सामने वाले भुज अ इ को ऊ से प्रकट करते हैं। साधारण नियम यह है कि त्रिभुजके कोणोंको ह्रस्व स्वरों से और उनके सामनेके भुजोंको उसी प्रकारके दीर्घ स्वरोंसे प्रकट किया जाता है। गोलीय त्रिभुज के भुजोंको भी कोणात्मक मानोंसे ही नापते हैं। यदि इ समकोण हो तो यह त्रिभुज समकोण गोलीय त्रिभुज कहा जाता है। तब इसके सामनेके भुज ई को कर्ण कहते हैं। [ देखिये चित्र २० ]

नेपियरके नियममें समकोण गोलीय त्रिभुजके समकोणको छोड़कर इसके पास वाले दो भुज आ, ऊ, अ कोणका पूरक $\frac{\pi}{2}$ − अ, ई कर्णका पूरक $\frac{\pi}{2}$ − ई, उ कोणका पूरक $\frac{\pi}{2}$ − उ गोलीय खंडोंको चित्र द्वारा इस प्रकार लिखते हैं। [ देखिये चित्र २१ ]

इन पांचोंमेंसे किसी एकको चुन लो और उसका नाम मध्य खंड रख लो। जिसको मध्य खंड मानो उसके बगलके दो खंडोंको आसन्न खंड कहो; शेष जो दो खंड रह जाते हैं उनको सन्मुख खंड कहो। अब नेपियर के नियमोंको इस प्रकार लिख सकते हैं:

(१) मध्य खंडकी ज्या = आसन्न खंडोंकी स्पर्श रेखाओंका गुणन फल।

(२) मध्य खंडकी ज्या = संमुख खंडोंकी कोटि-ज्याओंका गुणनफल। यही दूसरा नियम उपर्युक्त

*देखो टाडहंटर और लेथेमकी गोलीय त्रिभुज (spherical Trigonometry) १९११ की छपी पृष्ठ ५०

श्लोकमें नेपियरसे कमसे कम एक हजार वर्ष पहले प्रयोग किया गया है।

ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चात् तथा शीघ्राद्विशोध्य च ।
शेषं केन्द्र पदं तस्माद्भुजज्याकोटिरेव च ॥ २९ ॥
गताद्भुजज्या विषमे गम्यात्कोटिः पदे भवेत् ।
युग्मे तु गम्याद् बाहुज्या कोटिज्या तु गताद्भवेत् ॥ ३० ॥

अनुवाद—( २९ ) किसी ग्रहके मन्दोच्च और शीघ्रोच्चके स्थानोंमें से उसके मध्यम स्थानको घटा देनेसे जो शेष होते हैं उन्हें क्रमसे मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र कहते हैं। इनसे पद बनावे और पद जानकर भुजज्या और कोटिज्या बनावे। ( ३० ) विषम पदमें जो भाग गत रहता है उसकी ज्याको भुजज्या और जो भाग गम्य होता है उसकी ज्या को कोटिज्या कहते हैं; परन्तु समपदमें गम्य भागकी ज्या को भुजज्या और गत भागकी ज्याको कोटिज्या कहते हैं।

विज्ञानभाष्य—इसी अध्यायके चौथे और पांचवें श्लोकोंमें बतलाया गया है कि १८०° तक पूर्वमें स्थित मन्दोच्च या शीघ्रोच्च अपने ग्रहको मध्यम स्थानसे अपनी ओर अर्थात् पूर्वकी ओर आसन्नता के अनुसार खींच लेता है, जिससे मध्यम ग्रहमें धन संस्कार करनेसे स्पष्ट ग्रहका स्थान जाना जा सकता है, इत्यादि। ऊपरके २९वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि मन्दोच्च या शीघ्रोच्चसे मध्यम ग्रहकी दूरी कैसे निकालनी चाहिये। किसी परिधिके दो विन्दुओं का अन्तर दो प्रकारसे प्रकट किया जा सकता है। यदि चित्र ५ में उ से तीरकी दिशामें चलते हुए म, मा, मि और मी विन्दुओंके अन्तर नापे जायँ तो यह क्रमसे उम, उमा, उमि, और उमी होंगे। परन्तु यदि उ से उलटी दिशामें चलकर इन विन्दुओंके अन्तर नापे जायँ तो उ से म का अन्तर ३६०°—उम, मा का अन्तर ३६०°—उमा, मि का अन्तर ३६०°—उमि और मी का अन्तर ३६०°—उमी होंगे। चित्रमें जो दिशा तीरके अग्रसे सूचित होती है उसे संस्कृत ग्रन्थोंमें अनुलोम या अपसव्य दिशा कहते हैं, आजकल इसको 'धनात्मक' या 'घड़ीकी विरुद्ध दिशा' कहते हैं। विषुवत् रेखासे उत्तरमें रहनेवाले मनुष्योंको सूर्य, चन्द्रमा और ग्रह इत्यादि अपनी कक्षामें इसी दिशामें चलते हुए देख पड़ते हैं। इसके प्रतिकूल दिशाको संस्कृतमें विलोम, प्रतिलोम, सव्य तथा आजकल 'ऋणात्मक' या 'घड़ीकी दिशा' कहते हैं पृथ्वीकी दैनिक गतिके कारण सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, तारे इत्यादि उत्तर गोलमें रहनेवाले मनुष्योंको इसी दिशामें चलते हुए जान पड़ते हैं। सूर्यसिद्धान्तमें शीघ्रोच्च या मदोच्चसे ग्रहोंका अन्तर जिसे क्रमसे शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र कहते हैं विलोम या ऋणात्मक दिशामें ही नाप कर जाननेकी रीति बतलाई गई। इसीलिए कहा गया है कि शीघ्रोच्च या मन्दोच्चमेंसे मध्यम ग्रहको घटाना चाहिये। परन्तु ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य इत्यादि कई अन्य आचार्योंने मन्दोच्चसे मध्यम ग्रहका अन्तर अनुलोम दिशामें और शीघ्रोच्चसे मध्यम ग्रहका अन्तर विलोम दिशामें नापनेको लिखा है। इसका कारण यह है कि मध्यम ग्रह मन्दोच्चसे तीव्रगामी होनेके कारण अनुलोम दिशामें ही आगे बढ़ता है और शीघ्रोच्च मध्यम ग्रहसे तीव्रगामी होनेके कारण अनुलोम दिशामें बढ़ता है; इसलिए मध्यम ग्रह शीघ्रोच्चसे विलोम दिशा में जाता है। चाहे जिस तरह मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र नापा जाय दोनोंका अर्थ एक ही होता है। भास्कराचार्यकी रीति स्वाभाविक है और सूर्यसिद्धान्तकी कुछ भ्रमजनक।

जब ग्रहका मन्द केन्द्र और शीघ्र केन्द्र मालूम हो गया तब यह जाननेकी आवश्यकता पड़ती है कि इनकी ज्या और कोटिज्या क्या हैं; क्योंकि इनकी आगे आवश्यकता पड़ती है। जो लोग आजकलकी त्रिकोणमितिसे परिचित हैं वह सीधे ही जान सकते हैं क्योंकि उनको मालूम है कि शून्यसे ३६०° तककी ज्या, कोटिज्या इत्यादि कैसे जानी जा सकती हैं। परन्तु प्राचीन कालमें शून्यसे ३६०° तकके किसी कोणकी ज्या निकालनेके लिए पहले

यह देखते थे कि वह किस पद ( Quadrant ) में है। यदि मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्र शून्य और ९०° के भीतर हो तो विषम पदमें, ९०° के ऊपर परन्तु १८०° से कम होतो समपद में, १८०° से ऊपर और २७०° से कम हो तो विषम पदमें और २७०° से अधिक हो तो समपदमें होता है। संक्षेपमें पहले और तीसरे पदोंको विषमपद तथा दूसरे और चौथे पदोंको समपद कहते हैं।

यह जाननेके लिए कि ग्रह किस पदमें है, मन्द केन्द्र या शीघ्र केन्द्रको ९०° से भाग देना चाहिये। यदि लब्धि शून्य या २ आवे तो विषमपद और यदि १ या ३ आवे तो समपद समझना चाहिये। जो शेष बचे वही गत भाग कहलाता है। इस शेष-को ९०° में घटा देनेसे जो आता है उसे गम्य भाग कहते हैं। विषमपद हो तो गत भागकी और सम-पद हो तो गम्य भागकी ज्या निकाले। इसीको भुज-ज्या कहते हैं। परन्तु विषमपद हो तो गम्य भाग-की और समपद हो तो गत भागकी ज्या को कोटि-ज्या कहते हैं।
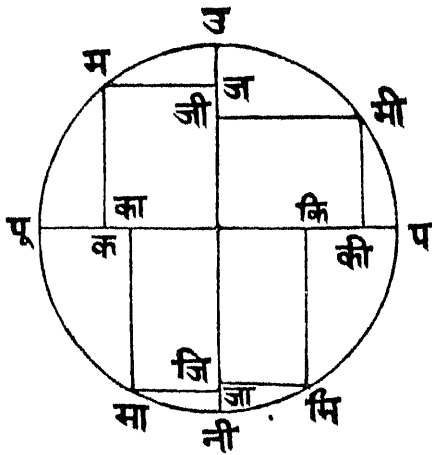
चित्र २२

यह बात चित्र २२से सुगमतापूर्वक समझमें आ सकती है। दिया हुआ वृत्त किसी ग्रहका कक्षावृत्त है। 'उ' शीघ्रोच्च या मन्दोच्चकी दिशा है। मी, मि, मा, म किसी ग्रहके मध्यम स्थान हैं। इसलिए विलोम दिशामें चलते हुए उमी, उमि, उमा और उम ग्रहके मन्द केन्द्रहुए जो क्रमसे पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे पदोंमें अथवा विषम, सम, विषम और सम पदोंमें है। पहले पदमें उमी गत है और मीप गम्य हैं; इस लिए उमीकी ज्या अर्थात् मीजीको भुजज्या और मीपकी ज्या अर्थात् मीकीको कोटिज्या कहते हैं। दूसरे पदमें पमि गत है और मिनी गम्य, इसलिए पमिकी ज्या अर्थात् मिकिको कोटिज्या और मिनीकी ज्या अर्थात् मिजिको भुजज्या कहेंगे। तीसरे पदमें 'नीमा' गत और 'मापू' गम्य है इसलिए नीमाको ज्या अर्थात् माजाको भुजज्या और मापूकी ज्या अर्थात् माकाको कोटिज्या कहेंगे। इसी प्रकार चौथे पदमें पूम गत है और मउ गम्य, इसलिए पूमकी ज्या 'मक' को कोटिज्या और मउ की ज्या 'मज' को भुजज्या कहते हैं।

इसको संक्षेपमें यों कहना चाहिये कि उच्चसे जो रेखा मध्य विन्दुपर होती हुई खींची जाती है उस रेखासे अर्थात् नीचोच्च रेखासे मध्यम ग्रहके अन्तरको भुजज्या कहते हैं। इस रेखासे सम-कोण बनाती हुई जो रेखा मध्य विन्दु पर होती हुई जाती है उससे मध्यमग्रहका जो अन्तर होता है उसे कोटिज्या कहते हैं। यदि त्रिज्या ३४३८ इका-इयोंके समान हो तो इन्हीं इकाइयोंमें मीजी, मिजि, माजा और मजकी नाप होगी उन्हें भुजज्या और मीकी मिकि माका और मककी जो नाप होगी उन्हें कोटिज्या कहेंगे।

आगेके दो श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि अंशकी ज्या कैसे निकालनी चाहिये।

> लिप्तास्तत्त्वयमैर्भक्ता लब्धं ज्यापिण्डकं गतम्।
> गतगम्यान्तराभ्यस्तं विभजेत्तत्त्वलोचनैः ॥३१॥
> तदवाप्तफलं योज्यं ज्यापिण्डे गतसंज्ञके।
> स्यात्क्रमज्याविधिरयमुत्क्रमज्या स्वपि स्मृतः ॥३२॥

अनुवाद—( ३१ ) जिस अंशकी ज्या जानना हो उसकी कला बनाकर २२५ से भाग दे दे, जो लब्धि आवे वही गत ज्यापिण्ड है; जो शेष बचे उसे गत ज्यापिण्ड और गम्य ( अगले ) ज्यापिण्ड की ज्याओं के अंतरसे गुणा करदे और गुणनफल

को २२५ से भाग दे दे। ( ३२ ) जो लब्धि आवे उसे गत ज्यापिंडकी ज्या में जोड़ देनेसे जो आवेगा वही इष्ट अंश की ज्या होगी। इसी प्रकार उत्क्रमज्या भी निकालनी चाहिये।

विज्ञान भाष्य—इस अध्यायके १७—२२ श्लोकों में २४ ज्यापिंडों की ज्याएं बतला दी गयी हैं। इनके अतिरिक्त यदि किसी बीच वाले कोण की ज्या जानना हो तो ३१—३२ श्लोकोंसे जानना चाहिये। मानलो ६६° की ज्या जानना है। पहले यह देखना चाहिये कि ६६° किस पिंड में है। २२५' कला या ३°४५' या ३¾ अंश के अन्तर पर पिंड बांधे गये हैं, इसलिए ६६° की कला बनाकर २२५ से भाग देना चाहिये अथवा ६६° को ३¾ से भाग देना चाहिये। श्लोक में कला बनाने की ही रीति बतलायी गयी है, इसलिये

$६६° = ६६ \times ६०' = ३९६०'$

$३९६०' \div २२५ = १७\frac{१३५}{२२५}$

इसलिए गत पिंड १७ और गम्यपिंड १८ है।

१८ वें पिंड की ज्या=३१७७'

१७ वें पिंड की ज्या=३०८४'

∴ गत गम्यान्तर=९३'

अब त्रैराशिकसे यह जानना चाहिये कि जब गत और गम्य पिंडों का अंतर २२५' होता है तब इनकी ज्याओं में ९३' का अंतर होता है, इसलिए जब गत पिंड से इष्ट अंश १३५' अधिक है तो गत पिंड की ज्या से इष्ट अंश की ज्या में क्या अंतर होगा। अर्थात्

२२५ : १३५ : : ९३ : अभीष्ट अंतर

$$\therefore \text{अभीष्ट अंतर} = \frac{३ \times ९३}{५}$$

$$= \frac{२७९}{५}$$

=५६' स्वल्पान्तरसे।

इसीको गतपिंडकी ज्यामें अर्थात् ३०८४' में जोड़ देनेसे ३१४०' हुई। यही ६६° की ज्या है।

यदि कोण का मान पूर्ण अंशों में हो तो बिना कला बनाये ही ज्या बनानेमें सुभीता होगा, जैसे उपर्युक्त उदाहरण में ६६° की ज्या यों निकाली जा सकती है:—

$$६६° \div ३\tfrac{३}{४} = २२ \times \frac{४}{५} = \frac{८८}{५} = १७\frac{३}{५}$$

१७ वें और १८ वें पिंडोंकी ज्याओंका अन्तर = ९३'

$$\therefore ९३ \times \frac{३}{५} = \frac{२७९}{५} = ५६'$$

१७ वें पिंड की ज्या = ३०८४'

∴ ६६° की ज्या=३१४०'

अगले श्लोक में यह बतलाया गया है कि यदि ज्या दी हुई हो तो कोण कैसे जाना जा सकता है।

ज्यां प्रोज्झ्य शेषं तत्वाश्विहतं तद्विवरोद्धृतम्।
संख्यातत्वाश्वि संवर्गे संयोज्य धनुरुच्यते ॥३३॥

अनुवाद—( ३३ ) यदि यह जानना हो कि दी हुई ज्या किस अंश ( धनु ) की है तो पहले देखो कि २४ पिंडों की ज्याओं में से सबसे बड़ी कौन है जो दी हुई ज्या में से घटाई जा सकती है। इसीको घटाकर जो शेष आवे उसको २२५ से गुणा करो और गुणनफल को गत और गम्य ज्याओंके अंतर से भाग दे दो, जो लब्धि आवे उसे उस गुणनफलमें जोड़ दो जो उस पिंड को २२५ से गुणा करने पर आता है जिस पिंड की ज्या घटायी गयी है।

विज्ञान भाष्य—इस श्लोकमें ज्या ज्ञात हो तो कोण जानने की रीति बतलायी गयी है। यह एक उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी। मान लो किसी कोण की ज्या ३१४२' है, अब यह जानना है कि कोण क्या है।

१७—२२ श्लोकोंके अनुसार १७ वें पिंडकी ज्या ३०८४' और १८ वें पिंड की ज्या ३१७७' है। इसलिए ३१४०' में से ३०८४' घटाया तो शेष बचा ५६'। गत, गम्य पिंडोंकी ज्याओंका अंतर ९३' है,

९३' : ५६' : : २२५' : इष्टकला

$$\therefore \text{इष्टकला} = \frac{५६ \times २२५}{९३} = \frac{४२००}{३१} = १३५' \text{ स्वल्पान्तरसे}$$

१७ वें पिंडकी कला=१७ × २२५= ३८२५'
∴ दोनोंका योग फल= ३८६०'
∴ जिस कोणकी ज्या ३१४०' है वह ३८६० अथवा ६६° है।

रवेर्मन्दपरिध्यंशा मनवः शीतगो रदाः।
युग्मान्ते विषमान्ते च नखलिप्तोनितास्तयोः॥३४॥
युग्मान्तेऽर्थाद्रयः खाग्नी सुराः सूर्या नवार्णवाः।
ओजेद्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धयः॥३५॥
कुजादीनमतः शैघ्र्या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रकाः।
गुणाग्नि चन्द्राः खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नयः॥३६॥
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वताः।
खर्तुदस्रा वियद्वेदाः शीघ्रकर्मणि कीर्तिताः॥३७॥

अनुवाद—(३४) सम पदोंके अंतमें सूर्यकी मंदपरिधि १४° और चन्द्रमाकी ३२° होती है। विषम पदोंके अंतमें प्रत्येककी मंदपरिधि २० कला कम होती है। (३५) मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिकी मन्दपरिधियां समपदोंके अंतमें क्रमसे ७५°, ३०°, ३३°, १२° और ४८° तथा विषमपदोंके अंतमें क्रमसे ७२°, २८°, ३२°, ११° और ४८° होती हैं। (३६) इन पांच ग्रहोंकी शीघ्र परिधियां समपदोंके अंतमें क्रमसे २३५°, १३३°, ७०°, २६२°, और ३६° तथा (३७) विषमपदोंके अंतमें २३२°, १३२°, ७२°, २६०° और ४०° होती हैं जो शीघ्र कर्मके लिए कही गयी हैं।

विज्ञान भाष्य—मन्दोच्चके कारण ग्रहके मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें जो अंतर होता है वह मन्दफल और शीघ्रोच्चके कारण मध्यम और स्पष्ट स्थानोंमें जो अंतर होता है वह शीघ्रफल कहलाता है। यह मन्दोच्च या शीघ्रोच्चकी दूरीके अनुसार घटता बढ़ता है। मध्यम और स्पष्ट ग्रहोंमें जो सबसे अधिक अंतर होता है वह मंदोच्चके कारण हुआ तो परम मन्दफल और शीघ्रोच्चके कारण हुआ तो परम शीघ्रफल कहलाता है। यह वेधसे अर्थात् नलिका यंत्र द्वारा देखनेसे जाना जाता है। परम मन्दफलकी ज्याको अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे मन्दपरिधि कहते हैं। इसी तरह परम शीघ्रफलकी ज्याको अर्द्धव्यास मानकर जो परिधि खींची जाती है उसे शीघ्रपरिधि या चल परिधि भी कहते हैं। यदि एक वृत्त खींचकर
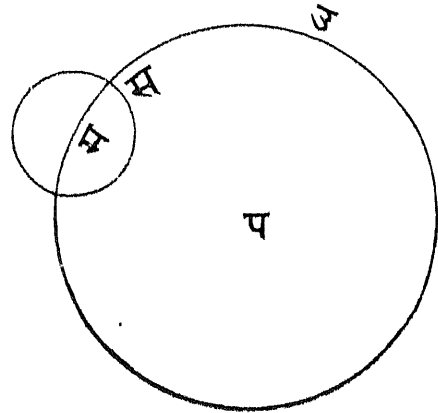
चित्र २३

उसके मध्यमें पृथ्वी मान ली जाय और परिधि पर मध्यम ग्रह भ्रमण करता हुआ माना जाय तो परिधिको ग्रहका कक्षावृत्त या कक्षामण्डल कहते हैं। यदि इस कक्षावृत्तके ३६० समान भाग किये जांय तो ऐसे १४ भागोंके समान सूर्यकी मंदपरिधिका विस्तार, समपदोंके अंतमें होगा। ऐसे ही अन्य ग्रहोंकी मन्द और शीघ्रपरिधियोंके परिमाणके बारेमें समझना चाहिये, इसे यों भी लिख सकते हैं कि सूर्यकी मन्दपरिधि कक्षावृत्तका $\frac{१४}{३६०}$ होती है। चित्र २३ में यदि प पृथ्वीका स्थान, उ म स किसी ग्रहका कक्षावृत्त तथा म और स उसके मध्यम और स्पष्ट स्थान हों जब कि मसका मान परम हो तो मस धनुको ग्रहका परम मन्दफल तथा इसकी ज्याको जो मसके बीचकी रेखात्मक दूरी है परम मन्दफल ज्या कहते हैं। मसको अर्द्धव्यास और मको मध्य मान कर जो छोटी परिधि खींची गयी है वह मन्दपरिधि है। यदि कक्षावृत्तका विस्तार ३६० भाग माना जाय तो ऐसे जितने भागके समान मंदपरिधिका विस्तार होता है उतने ही अंशकी वह परिधि कहलाती है। इसी प्रकार शीघ्रपरिधिकी लम्बाईके बारेमें समझना चाहिये।

यह परिमाण भी भिन्न भिन्न आचार्योंके मतसे भिन्न भिन्न हैं। इसका कारण यह है कि परम मंदफलका मान सर्वदा एकसा नहीं रहता, शनैः शनैः बदलता जा रहा है। सूर्यका परम मन्दफल एक हजार वर्षमें ३ कला घटता जा रहा है। इस समय सूर्यका परम मंदफल १°५५′ है। सूर्य सिद्धान्तमें सूर्यका परम मंदफल २°१३′४१″ है। इसमें वेधकी स्थूलताके कारण भी अशुद्धि है।

ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता।
युग्मवृत्ते धनर्णं स्यादोजादूनाधिके स्फुटम् ॥३८॥

अनुवाद—(३८) विषम और समपदोंके अंतकी मन्द या शीघ्रपरिधियोंके अंतरको मंदकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्रकी भुजज्यासे गुणा करके त्रिज्यासे भाग दे दो। यदि मन्दकेन्द्र या शीघ्रकेन्द्र समपदमें हो और विषमपदके अंतकी मंद या शीघ्रपरिधिसे समपदके अंतकी मंद या शीघ्रपरिधि कम हो तो उस लब्धिको समपदान्त परिधिमें जोड़ दो तो इष्ट केन्द्रकी स्फुट मंद या शीघ्रपरिधि होगी। परन्तु यदि विषमपदके अंतकी परिधिसे समपदके अंतकी परिधि अधिक हो तो उस लब्धिको सम पदान्त परिधि में घटा देनेसे स्फुट परिधि निकल आवेगी।

विज्ञान भाष्य—सूर्य सिद्धान्तका मत है कि मन्द-परिधि या शीघ्रपरिधिका मान मन्दकेन्द्र या शीघ्र-केन्द्रकी भुजज्याके अनुसार बदलता रहता है। किस जगह इसका परिमाण क्या है यह त्रैराशिकसे निकालना चाहिए। क्योंकि यह दिया हुआ है कि सम और विषमपदोंके अंतमें इसके मान क्या हैं। बीचके किसी स्थानके मानको जाननेके लिए यह तर्क करना चाहिए कि जब त्रिज्या (भुजज्याका परम मान) के अंतर पर परिधियोंका अंतर दिया हुआ है तो इष्ट केन्द्रकी भुजज्याके अंतर पर कितना होगा। इस नियमको संक्षेपमें यों लिख सकते हैं—

$$\text{स्फुट मंदपरिधि} = \text{मंदपरिधि} \pm \text{विषम और समपदोंके अंतरकी परिधियोंका अंतर} \times \frac{\text{इष्ट केन्द्रकी भुजज्या}}{\text{त्रिज्या}}$$

जैसे सूर्यकी समपदान्त मन्दपरिधि ८४०′, विषम और समपदोंके मंदपरिधियोंका अन्तर २०′ है, इसलिए यदि अभीष्ट मन्दकेन्द्र 'अ' हो तो स्फुट मन्दपरिधि होगी $८४०' - २०' \times \frac{\text{अ की भुजज्या}}{३४३८'}$ क्योंकि समपदान्त मन्दपरिधि अधिक है।

इसी तरह अन्य ग्रहोंकी स्फुट मन्दपरिधि तथा शीघ्र परिधि निकालनी चाहिए।

तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणांश विभाजिते।
तद्भुजज्याफलधनुर्मान्दं लिप्तादिकं फलम् ॥ ३९ ॥

अनुवाद—(३९) स्फुट मन्द परिधिको क्रमसे भुजज्या और कोटिज्या से गुणा करके ३६० से (यदि स्फुट मन्दपरिधि अंशोंमें हो) या २१६००-से (यदि स्फुट मन्द परिधि कलाओंमें हो) भाग दे दो। लब्धि क्रमसे भुजफल और कोटिफल (कलाओंमें) होंगी। भुजफल जिस धनु (कोण) की ज्या होगी उसे ही मंदफल कहते हैं।

विज्ञान भाष्य—इस नियमको संक्षेपमें यों लिख सकते हैं:—

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{भुजज्या}}{३६०}$$

$$\text{कोटिफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{कोटिज्या}}{३६०}$$

भुजफल जिस अंश (धनु) की ज्या हो वही मन्दफल कहलाता है। उपर्युक्त समीकरणोंमें ३६० उसी समय होगा जब कि मन्दपरिधि अंशोंमें हो। यदि मन्दपरिधि कलाओंमें हो तो ३६०की जगह २१६०० रखना होगा।

इसकी उपपत्ति यों है:—ग्रहके मध्य और स्पष्ट स्थानोंका अंतर क्या होता है यह जाननेके लिए हमारे आचार्यों ने यह कल्पना की थी कि मध्यम ग्रह तो सदैव समान गतिसे अनुलोम दिशामें पृथ्वीकी परिक्रमा करता रहता है और स्पष्टग्रह मन्दपरिधि पर जिसके मध्यमें मध्यमग्रह रहता है, विलोम दिशामें इस प्रकार चल रहा है

कि जितने समयमें मध्यम ग्रह अपनी कक्षामें (कक्षावृत्तमें) पूरा चक्कर कर लेता है, उतने ही समयमें स्पष्टग्रह मन्दपरिधि पर अपना चक्कर कर लेता है। मन्दपरिधि पर चक्कर लगाते हुए स्पष्टग्रह कक्षावृत्तमें जहां देख पड़ता है उसी विन्दुको स्पष्ट ग्रहका स्थान कहते हैं। यह बात नीचेके चित्रसे भली भांति समझमें आजायगी। इसमें प पृथ्वीका केन्द्र है। प को केन्द्र मान कर पम त्रिज्यासे बड़ा वृत खींचा गया है वह कक्षावृत्त कहलाता है। इसी कक्षावृत्त पर मध्यमग्रह अनु-

अर्थात् इसी दिशामें ग्रहका मन्दोच्च होता है। कक्षावृत्तमें इसी जगह १ लिखा हुआ है और स भी लिखा हुआ है जिससे प्रकट होता है कि यही मध्यम और स्पष्ट ग्रह एक साथ होते हैं और इसी जगहसे आरम्भ करके कक्षावृत्त अनुलोम दिशामें तीन तीन राशिके अंतर पर चार पदोंमें बांटा गया है। इसीलिए पहले पदके अंतमें ४, दूसरे पदके अंतमें ७ और तीसरे पदके अंतमें १०के अंक लिखे गये है। म, मा, मि, इत्यादि मध्यम ग्रहके स्थानोंको मध्यमानकर ग्रहकी मन्दपरिधिके मानानुसार जो छोटे छोटे वृत्त खींचे गये हैं वही स्फुटमन्द परिधि है। चित्र को स्पष्ट करनेकेलिए स्फुट मन्द परिधि और कक्षावृत्तके विस्तार उसी अनुपातमें नहीं दिखाये गये हैं, जिस अनुपातमें यह प्रत्यक्ष देखे जाते हैं अथवा ग्रन्थोंमें दिये है। मंदपरिधि कुछ बढ़ाकर खींची गयी है। सूर्य सिद्धान्तके अनुसार इस स्फुट मन्द परिधियोंके मान भी सर्वत्र समान नहीं होते। प म, प मा, प मि इत्यादि रेखाएं मंदपरिधि के दूर वाले विन्दुपर जहां पहुँचती है वहां भी मंद परिधिपर १ के अंक लिखे हुए
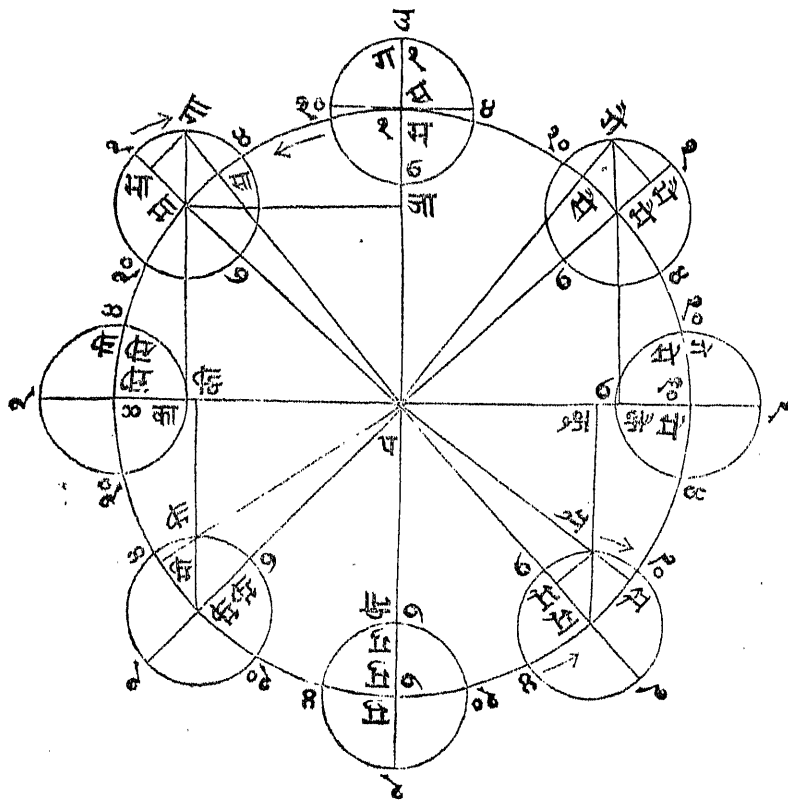
चित्र २४

लोम दिशामें मध्यम गतिसे भ्रमण करता हुआ माना गया है। म, मा, मि, मी, मु, मू, मे, मै, मध्यम ग्रहके आठ स्थान हैं म वह स्थान है जहां मध्यम और स्पष्ट ग्रहोंका अंतर शून्य होता है

हैं। यहांसे आरंभ करके मंद परिधि पर तीन तीन राशि या नब्बे नब्बे अंशके अंतर पर विलोम दिशा में ४, ७, १० के अंक लिखे गये हैं। जिस समय मध्यम ग्रह म पर होता है उस समय स्पष्टग्रह मंद-

परिधिके उस विन्दु पर रहता है जहां १ लिखा हुआ है। यही ग्रहके मन्दोच्चका स्थान है; इसलिए वहां उ भी लिखा हुआ है। जितने समयमें मध्यम ग्रह कक्षावृत्त पर म से मा तक जाता है उतने समय में स्पष्ट ग्रह मंदपरिधि पर १ से गा तक जाता है; क्योंकि मध्यमग्रहका कक्षावृत्तपर और स्पष्टग्रहका मंदवृत्त ( मंदपरिधिको मंदवृत्त भी कहते हैं ) पर कोणीय वेग समान होता है, इसलिए मागा रेखा पम रेखाके जिसको नीचोच्च रेखा कहते हैं समानान्तर होती है। गा और प को मिलानेवाली रेखाको मंदकर्ण कहते हैं। यही पृथ्वीके मध्यसे स्पष्टग्रह की दूरी होती है। यह मंदकर्ण कक्षावृत्तको सा विन्दु पर काटता है, इस लिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्तमें सा विन्दुपर ही देख पड़ता है। इसी बिन्दुको स्पष्ट ग्रहका स्थान कहते हैं। सामा धनु अथवा सापामा कोणको मंदफल कहते हैं। म मा धनु अथवा म प मा कोणको मन्द केन्द्र, म सा धनु अथवा म प सा को स्पष्ट केन्द्र कहते हैं; इस लिए स्पष्ट केन्द्र और मन्द केन्द्रका अंतर मंदफल कह लाता है। मासे नीचोच्च रेखा पम पर माजा लम्ब है यही ममा मन्द्रकेन्द्र भुज ज्या है। मासे माका लम्ब को ममाकी कोटिज्या कहते हैं। यह उस रेखा पर लम्ब है जो प म से समकोण बनाती हुई प बिन्दु पर खींची गयी है। गा से पमा पर जो लम्ब गा भा डाला गया है उसे भुजफल और मा भा को कोटिफल कहते हैं।

इसी प्रकार जब मध्यम ग्रह मि, मी, मु, मू, इत्यादि कक्षावृत्त विन्दुओंपर रहता है तब स्पष्ट ग्रह क्रम से गि, गी, गु, गू, इत्यादि मन्दवृत्तके विन्दुओंपर रहता है। ऐसी दशा मेंस्पष्टग्रह कक्षा वृत्तके सि, सी, सु, सू, विन्दुओं पर देख पड़ता है। इन विन्दुओं पर भी भुजज्या, कोटिज्या, भुजफल, कोटिफल, इत्यादिके लिए वैसा ही समझना चाहिये जैसा पहले कह गया है।

जब मन्दकेन्द्र तीन राशि या ९०के समान होता है तब मध्यम ग्रह मि पर होता है ऐसी दशामें स्पष्ट
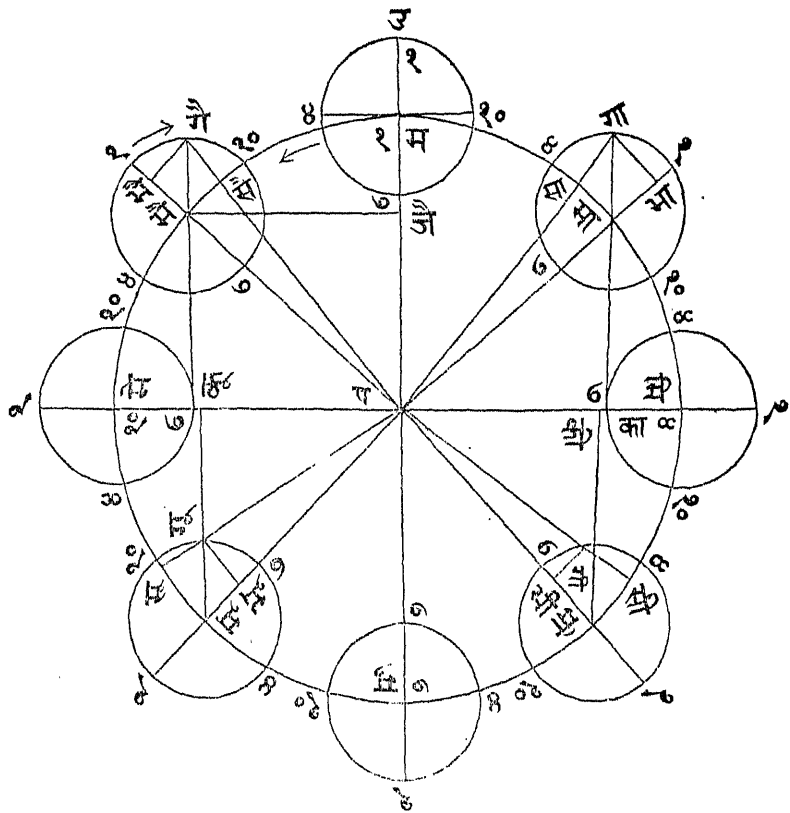
चित्र २५

ग्रहसे परम अंतर मिसि पर होता है। यही परम मंदफल कहलाता है। जब मन्दकेन्द्र ६ राशि १८०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मु पर और स्पष्टग्रह

गु पर होता है; इसलिए स्पष्ट ग्रह कक्षावृत्तके सु विन्दु पर देख पड़ता है। इस जगह मन्दफल शून्य तथा मन्दकर्ण प गु सबसे छोटा होता है। जब ग्रह गु पर होता है, तब पृथ्वीसे अत्यन्त निकट होता है। इसी स्थानको ग्रहका नीच कहते हैं।

जब मंदकेन्द्र ६ राशि या २७०° के समान होता है तब मध्यम ग्रह मे पर और स्पष्ट ग्रह गे पर होते हैं। इस जगह भी मध्यम और स्पष्ट ग्रहोंका अंतर परम होता है। चित्रमें, मे से परम मन्द फल है।

सूर्य सिद्धान्तके अनुसार मन्द केन्द्र विलोम दिशामें नापा जाता है; इसलिए इस पद्धतिके अनुसार कक्षावृत्त और मंदवृत्त पर १,४,७,१० के अंक इस प्रकार लिखे जाने चाहियें जैसे इस चित्रमें हैं। इसमें शीघ्रकेन्द्रके सम्बन्धकी सब बातें भी जानी जा सकती हैं। इसी लिए सूर्य सिद्धान्तमें दोनों बातोंको एक ही चित्र द्वारा समझाया गया है। परन्तु इससे समझनेमें कुछ कठिनता पड़ती है। भास्कराचार्य ने इस चित्रको केवल शीघ्रकेन्द्र और इसीके सम्बन्धकी सब बातें जैसे शीघ्रफल शीघ्रकर्ण इत्यादिको जाननेके लिए प्रयोग किया है। दो चित्रोंसे भ्रम नहीं होता। इन दो चित्रोंकी सहायतासे ३९,४०,४१,४२ और ४५ वें श्लोकोंकी उपपत्ति सहज ही समझमें आ सकती है।

३९ वें श्लोकमें बतलाया गया है कि

$$\text{भुजफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{भुजज्या}}{३६०}$$

$$\text{और कोटिफल} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि} \times \text{कोटिज्या}}{३६०}$$

क्योंकि जब मध्यम ग्रह मा पर रहता है तब माजा भुजज्या, माका कोटिज्या, गाभा भुजफल और भामा कोटिफल कहलाते हैं। ऊपर यह समझाया गया है कि $\angle$ गामाभा $= \angle$ मापजा

और $\angle$ गाभामा $= \angle$ माजाप, क्योंकि दोनों समकोण हैं।

इसलिए $\triangle$ गा भा मा और $\triangle$ मा जा प सजातीय ( Similar ) हैं।

$\therefore$ गाभा : गामा :: म जा : माप

$$\therefore \frac{\text{गाभा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{माजा}}{\text{माप}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}}$$

परन्तु गा मा स्फुट मंदपरिधिकी त्रिज्या है और मा प कक्षा वृत्तकी त्रिज्या है, और दो वृत्तोंकी त्रिज्याओंमें परस्पर वही सम्बन्ध होता है जो उनकी परिधियोंमें होता है, इसलिए।

$$\frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{मन्द परिधि (स्फुट)}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\therefore \frac{\text{गाभा}}{\text{माजा}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{भुजफल}}{\text{भुजज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{या भुजफल} = \frac{\text{भुजज्या} \times \text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}} \quad \cdots(१)$$

यदि स्फुटपरिधि अंशोंमें हो तो कक्षावृत्तका मान ३६० होगा और यदि कलाओंमें हो तो कक्षा वृत्तका मान २१६०० होगा।

इसी तरह भामा : गामा :: पजा : माप

$$\therefore \frac{\text{भामा}}{\text{गामा}} = \frac{\text{पजा}}{\text{माप}}$$

$$\text{अथवा } \frac{\text{भामा}}{\text{पजा}} = \frac{\text{गामा}}{\text{माप}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{वा } \frac{\text{कोटिफल}}{\text{कोटिज्या}} = \frac{\text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}}$$

$$\text{वा कोटिफल} = \frac{\text{कोटिज्या} \times \text{स्फुट मन्दपरिधि}}{\text{कक्षा वृत्त}} \quad \cdots\cdots(२)$$

इस प्रकार ३९वें श्लोकके नियमकी उपपत्ति सिद्ध हो गयी। इस प्रकार जो भुजफल निकलता है वह जिस कोणकी ज्या होता है उस कोणको मन्दफल कहते हैं। चित्र २४ में गाभा भुजफलका कोण गापभा है, इसलिए गापभा कोण

ही मंद फल है। इस कोणका मान भारतीय रीतिसे जनने के लिए त्रैराशिकसे पहले यह जानना चाहिये कि सामा जावाका मान क्या है। △ पभागा और △ पमासा सजातीय हैं।

$$\text{इसलिए}\ \frac{\text{सामा}}{\text{साप}} = \frac{\text{गाभ}}{\text{गापा}}$$

$$\text{अथवा सामा} = \frac{\text{साप} \times \text{गाभा}}{\text{गाय}}$$

$$= \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भजफल}}{\text{मंदकर्ण}} \qquad (३)$$

इस समीकरणसे जो कुछ आवे वह सामा मन्दफलकी ज्या है, जिससे ज्याओंका सारिणीसे मंदफल जाना जा सकता है। परंतु श्लोकमें गाभा के धनुको ही मन्दफल मान लिया गया है और समीकरण ( ३ ) की आवश्यकता नहीं बतलायी गयी है, इसका कारण यह है कि किसी ग्रहकी मन्द परिधिका मान इतना कम होता है कि मंद कर्ण गाप और त्रिज्या सापमें बहुत कम अंतर होता है जिसके कारण स्थूल रूपसे भुजफलके धनुको ही मंदफल मान लिया गया है। यदि सूक्ष्म गणना करना चाहे तो समीकरण (३) में जो कुछ बतलाया गया है वह संस्कार भी करना होगा; जैसा कि अगले ४०-४२ श्लोकोंमें शीघ्रफलके लिए नियम है; क्योंकि शीघ्रपरिधिके बड़े होनेसे शीघ्र कर्ण और त्रिज्याका अन्तर बहुत अधिक होता है; जिससे शीघ्र भुजफल और शीघ्रफलके मानोंमें बहुत अंतर होता है। इसलिए ३९ वें श्लोकके अनुसार शीघ्र भुजफलको ही शीघ्रफल मान लेनेमें बहुत अशुद्धि रह जाती है।

शैघ्र्यं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्।
संशोध्यं तु त्रिजीवायां कर्कादौ कोटिजं फलम् ॥४०॥
तद्बाहुफल वर्गैक्यान्मूलं कर्णश्चलाभिधः।
त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चलकर्ण विभाजितम् ॥४१॥
लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम्।
एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि ॥४२॥

अनुवाद—(४०) यदि शीघ्र केन्द्र ९ राशि (२७०°) के ऊपर और ३ राशि (९०°) के भीतर हो तो कोटिफलको त्रिज्यामें जोड़े, परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र ३ राशिके ऊपर और ९ राशिके भीतर हो तो कोटिफलको त्रिज्यामेंसे घटावे; (४१) जो कुछ आवे उसका वर्ग करके भुजफलके वर्गमें जोड़ दे और योगफलका वर्गमूल निकाले, जो आवे वही शीघ्रकर्ण या चलकर्ण होता है। त्रिज्याको भुजफलसे गुणा करके चलकर्णसे भाग दे दे, (४२) लब्धि जिस धनु (कोण) की ज्या होगी वही शीघ्रफल कहलाता है। यह शीघ्रफल मंगल आदि पांच ग्रहोंके पहले और चौथे संस्कारके लिए काम में आता है।

विज्ञान भाष्य—३९ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यके अंतमें जिस समीकरण (३) की चर्चा है वह शीघ्रफल जाननेके लिए बड़ा आवश्यक है। शीघ्रफलके लिए इस समीकरण का रूप यह होगा:—

$$\text{सामा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{भुजफल}}{\text{शीघ्रकर्ण}}$$ में जो भुजफल आया है

वह तो ३९ वें श्लोक से ही जाना जा सकता है, त्रिज्याका मान पहलेसे नियत है, केवल शीघ्रकर्ण का मान जानना रह गया जिसका नियम ४० वें और ४१ वें श्लोकके पूर्वार्द्धमें बतलाया गया है। चित्र २५ से प्रकट है कि गाप, गीप, गूप और गैप चलकर्ण हैं। इनमेंसे

$$\text{गाप} = \sqrt{(\text{भाप})^2 + (\text{गाभा})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{भाना} + \text{माप})^2 + (\text{गा भा})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

$$\text{इसी तरह गैप} = \sqrt{(\text{भैमै} + \text{मैप})^2 + (\text{गैभै})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{कोटिफल} + \text{त्रिज्या})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

$$\text{परन्तु गीप} = \sqrt{(\text{भीप})^2 + (\text{गी भी})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{मीप} - \text{मी भी})^2 + (\text{गी भी})^2}$$

$$= \sqrt{(\text{त्रिज्या}-\text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

और गूप= $\sqrt{(\text{मूप-मू भू})^2 + (\text{गू भू})^2}$

$$= \sqrt{(\text{त्रिज्या}-\text{कोटिफल})^2 + (\text{भुजफल})^2}$$

इस प्रकार यह प्रकट है कि यदि शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदोंमें अर्थात् ३ राशिके भीतर और ९ राशिके ऊपर हो तो त्रिज्यामें कोटिफलको जोड़ना चाहिये परन्तु यदि शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदोंमें अर्थात् ३ राशिसे ऊपर और ९ राशिके भीतर हो तो त्रिज्यामें कोटिफलको घटाना चाहिये, फिर जो कुछ आवे उसके वर्गको भुजफलके वर्गमें जोड़कर वर्ग मूल निकालना चाहिये तो चलकर्ण ज्ञात हो जायगा। इन चारों समीकरणोंको एक समीकरणमें यों लिखा जा सकता है:—

चलकर्ण= $\sqrt{(\text{त्रिज्या} \pm \text{कोटिफल})^2 + \text{भुजफल})^2}$

इसमें धनात्मक चिह्न तब प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र पहले और चौथे पदोंमें हो और ऋणात्मक चिह्न उस समय प्रयोग करना चाहिये जब शीघ्र केन्द्र दूसरे और तीसरे पदोंमें हो।

कर्क चौथी राशि है और मकर १०वीं, इसलिए 'कर्का दौ' का अर्थ है चौथी राशिसे ९वीं राशि और 'मकरा दौ' का अर्थ है १०वीं राशिसे ३री राशि तकका मकरादि और कर्कादि शब्दोंसे यह भ्रम हो सकता है कि जब ग्रह इन राशियोंमें हो तो उपर्युक्त धन या ऋण चिह्न प्रयोग करना चाहिये। इसलिए मैंने अनुवादमें राशिकी जगह पदोंका व्यवहार किया है जो मेरी समझमें अधिक स्पष्ट है।

जब चलकर्ण ज्ञात हो गया तब शीघ्रफल जाननेके लिए ३९वें श्लोकके समीकरण (३) का रूप यह होगा:—

$$\text{सामा} = \frac{\text{त्रिज्या} \times \text{शीघ्र भुजफल}}{\text{चलकर्ण}}$$

सामा जिस धनु (कोण) की ज्या है वही शीघ्रफल कहलाता है। (क्रमशः)

# सर्प विष (Snake venoms)

[ ले० कविराज श्रीप्रतापसिंहजी ]

प्रति वर्ष भारतवर्षमें पन्द्रहसे बीस हजार तक मृत्यु सर्प विषसे होनेकी रिपोर्ट होती हैं। किन्तु इस मृत्यु संख्यामें सबही मृत्यु विष धारी सर्पोंके द्वारा नहीं होतीं। इसमें ऐसी मृत्यु भी सम्मिलित कर दी जाती हैं कि जिनके होनेका कारण ज्ञात नहीं होता; सर्पका विष खाकर मनुष्योंके आत्मघात करनेकी रिपोर्ट अब नहीं आती; किन्तु सर्प विष खिला कर पशुओंको मारा गया है, इसकी रिपोर्ट बहुत आती है। कुछ वैद्य औषधमें प्रयोग करनेके लिए भी सर्प विषका संग्रह करके अपने पास रखते हैं। सम्भव है कि उसमेंसे कोई मनुष्य आत्म हत्या करनेके लिए प्रयोग कर ले। हिन्दू और मुसलमानोंके धर्म ग्रन्थोंमें सर्पके द्वारा नर हत्या करनेके अपराधमें दण्ड विधान लिखा हुआ है। साधारणतया सर्प दो प्रकारके होते हैं—एक सविष; दूसरे निर्विष। सविष सर्पोंकी इस समय भारतवर्षमें २९ जातियां विदित हैं। सविष और निर्विष सर्पोंमें यह अन्तर होता है कि सविष सर्पोंके विष ग्रन्थियाँ होती हैं और निर्विष सांपोंके नहीं होतीं। यह विष ग्रन्थियां सविष सर्पोंमें उनके ऊपरके जबड़ेमें आंखोंके पीछे इधर उधर होती हैं। और एक एक नली द्वारा वह छेदवाले दांतोंमें लगी रहती हैं। यह दांत नलीकी शकलके या बीचमें छेदवाले होते हैं। अभी तक ऐसा कोई मार्ग निश्चित नहीं हुआ, जिसके द्वारा सविष सर्प निर्विष सर्पोंसे केवल वाह्य आकृति देखकर ही पहिचाने जा सकें। बस एक यही उपाय है कि उनके दांत देखे जायँ। जिनके दांत बीचसे नली जैसे पोले हैं वह अवश्य ही विषवाले होंगे। वाह्य आकृतिकी पहिचान के लिए जन्तु शास्त्र (Zoology) का अधिक अध्यय करना उचित है। विष वाले मुख्य मुख्य

साँपोंके नाम संक्षेपसे लिखे जाते हैं। काला साँप ( Cobra )—यह भारतवर्षमें सर्वत्र पाया जाता है और हिमालयमें भी आठ हज़ार फुट की उंचाई तक पाया जाता है। राज सर्प ( King cobra )—हिन्दीमें इसको संकर चोर करते हैं। यह बंगाल मदरास, आसाम, बर्मामें अधिक पाया जाता है। इसकी लम्बाई १५ फुट तक होती है। इसकी एक और जाति होती है जो केवल ४½ फुट ही लम्बी होती है। सकनी ( Bungarus fasciatus ) नामक सर्प भी इसी जातिका होता है। यह छः फुट-से अधिक लम्बा होता है। बोरा नामक सर्प ५½ फुट लम्बा होता है। फरसा या कायर (Keel scaled, viper ) नामक सर्प केवल दो फुट लम्बा होता है। केरा काला ( Hypnale nepa ) नामक सर्प बम्बई प्रान्त और हिमालयमें मिलता है।

सबसे भयंकर विष काले सर्पमें होता है। उससे नीचे दूसरी श्रेणीमें बोरा नामक सर्पका विष होता है। शेष सर्प साधारण विषवाले होते हैं; जिनके काटनेसे युवा मनुष्यों और बड़े पशुओंकी मृत्यु नहीं होती। सर्पोंके विषोंका स्वरूप उनकी भिन्न भिन्न जातियोंके अनुसार बदला हुआ होता है। यहाँ पर केवल काले सर्पके विषका कुछ वर्णन लिखा जाता है। काले सर्पका ताजा निकाला हुआ विष हलका अम्बर रंगका द्रव पतली वारनिश जैसा होता है, जिसका अपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) १.०४६ होता है। यह हलका तथा खट्टे प्रभाववाला होता है। हवामें रखनेपर शीघ्रतासे सूख कर गोन्दके समान पतली सी पपड़ीके रूपमें जम जाता है; यदि फिर इसको निकाला जाय तो इसके छोटे छोटे टुकड़े अथवा दाने से बन जाते हैं; जिनमें तिक्त गन्ध होती है, और श्लेष्म धरा कला ( Mucous membranes ) पर लगानेसे उत्तेजना ( Irritation ) करता है। सूखा हुआ सर्प विष पानीमें घुल जाता है और इस प्रकार यह जलीय घोल तीव्र विष हो जाता है। यह सूखा हुआ विष बिना विकृतिके चिरकाल तक रह सकता है। उबालने पर भी इस विषके प्रभाव-में कुछ कमी नहीं होती।

सर्प विषका प्रभाव और लक्षण—शरीरके ऊपर इस विषका प्रभाव भिन्न भिन्न जातिके साँपोंके काटनेसे भिन्न भिन्न प्रकारसे होता है। इस विषके प्रभावको जाननेके लिए अनेक प्रकारके उपाय किये गये हैं। सबसे प्रथम लोग जानवरोंको साँपसे कटवाकर उनके लक्षणोंका ज्ञान प्राप्त करते थे। दूसरा उपाय यह था कि सर्प विषको एकत्रित करके उसमेंसे नियत मात्रा पिचकारी द्वारा पशुओंके शरीरमें प्रवेश कराकर उनकी दशाओंका ज्ञान प्राप्त करते थे। यह दूसरी विधि अच्छी मानी जाती थी। सर्प विष शरीरमें स्थानीय तथा व्यापक दोनों प्रकारका प्रभाव उत्पन्न करता है। किसी विशेष स्थानके व्रण पर लगानेसे तुरन्त ही भयंकर दाह उत्पन्न हो जाता है और तदनन्तर शोथ हो जाता है। यदि इसको आंख इत्यादिकी श्लेष्म धरा कलापर लगाया जाय तो उत्तेजना उत्पन्न करता है।

दूरवर्ति प्रभाव—इसका प्रभाव वात संस्थान और रक्त या दोनों पर एक ही वार पड़ता है; यह व्रण द्वारा अथवा आमाशयकी श्लेष्म धरा कला द्वारा रक्तमें मिलता है।

दीर्घकालिक प्रभाव—काले साँप और समुद्री साँपों ( Seasnakes ) के विषका प्रभाव विशेष कर वात संस्थान पर ही पड़ता है। हिन्दुस्तानी फण धर साँपोंके विषका प्रभाव विशेषतया रक्त पर पड़ता है। इससे यह सिद्ध होता है कि साँपोंके विषमें दो मुख्य प्रकारके सत्व भिन्न भिन्न कार्य करने वाले होते हैं, जिनमेंसे पेपटोन ( Peptone ) नामक विष-सत्व शरीरके धातुओं पर प्रभाव करता है, जिससे शोथ तथा रक्त विकृति हो जाती है। दूसरा Globulin नामक सत्व वात संस्थान पर प्रभाव करता है, जिससे हृदय और श्वासाशयको लकवा मार जाता है।

वात संस्थान पर प्रभाव—सर्पके काटनेसे कुछ देर पश्चात् वात नाड़ियों पर विष लक्षण प्रकट

होते हैं। काले साँपके काटनेके पश्चात् प्रायः मनुष्यपर १५ मिनटसे आधे घन्टेके अन्दर विषका प्रभाव हो जाता है; यदि किसी कारणसे विष न्यून हुआ तो इस समयमें कुछ अधिकता भी हो जाती है। काले सर्पके काटनेके पश्चात् मनुष्यके वात संस्थान पर इस भांतिका प्रभाव आरम्भ होता है कि प्रथम उसको नशासा प्रतीत होता है; फिर पैरोंकी शक्ति नष्ट होने लगती है, जिसके कारण रोगी खड़ा होना चाहे तो गिर पड़ता है। शक्ति नाश होनेकी क्रिया अन्य मांसोंपर भी प्रभाव करती है; विशेष कर जीभ और गलेके मांस शीघ्र बेकार हो जाते हैं, जिससे बोलना और निगलना बन्द हो जाता है। मुखसे लाला टपकने लगती है; थूकनेकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है। फिर सारे बदन पर लकवा मार जाता है; श्वास क्रिया मन्द होने लगती है और धीरे धीरे श्वास घुट कर दम निकल जाता है; किन्तु श्वास क्रिया रुकनेके बाद भी कुछ देर तक हृदयकी गति होती रहती है। साँपके काटने पर कभी कभी उत्क्लेद और वमन सबसे प्रथम दृष्टिगोचर होते हैं। आँखके तारकों पर भी कुछ प्रभाव पड़ता है। यदि सर्प विष बड़ी मात्रामें शरीरके अन्दर प्रवेश हो जाय तो २० से ३० मिनटके अन्दर मनुष्य मर जाता है। वात संस्थान पर इस प्रकारके लक्षण अन्य जातीय साँपोंके काटनेसे भी होते हैं; किन्तु उनमें विष कम होनेके कारण यह लक्षण चिरकालके बाद दृष्टि पड़ते हैं।

रक्त पर प्रभाव—रक्तकी विकृतिके लक्षण सर्प विषकी मात्राके ऊपर निर्भर हैं। यदि रक्तमें सर्प विष प्रवेश करा दिया जाय तो शीघ्र ही श्वासकी गति तीव्र हो जाती है और हाथ पैरोंमें बहुत ऐंठन होकर कभी कभी मनुष्य शीघ्र ही मर भी जाता है। साँपका विष जब रक्तमें मिल जाता है तब रक्तका जमाव बन्द हो जाता है और सर्प दंशके स्थानसे बराबर रक्त जारी रहता है। मुख नासा, नेत्र और कानकी श्लेष्म धरा कलासे भी रक्त प्रवाह होने लगता है। शरीर सूज कर काले काले चिकत्ते पड़ जाते हैं। काले सर्पका विष भयंकर रक्त पित्त उत्पन्न करता है और चिरकालके लिए रक्तकी जमनेकी शक्तिको नष्ट कर देता है। रक्तके लाल कणोंसे हीमोग्लोबिन ( Heamoglobin ) नामक वस्तुको विष नष्ट कर देता है किन्तु उसका घातात्मक प्रभाव वात संस्थान परसे कम हो जाता है। वात संस्थानके विष लक्षण समाप्त होने पर भी रक्तपर विषका प्रभाव रहता है, जिससे क्षीण होकर मनुष्य मर जाता है। यदि किसी मनुष्यके शरीरमें सर्प विषसे मरे हुए मनुष्यका रक्त प्रवेश करा दिया जाय तो वह उसको मार देगा। किन्तु साँपके काटे हुए जीवधारीका मांस खानेसे कुछ हानि नहीं होती। परन्तु यदि किसी माताको सर्प काट खाय और फिर उसका बालक उसका दूध पीवे तो बालक मर जाता है।

फणधर ( Cobra ) सर्पके काटे हुए रोगीके लक्षण एक कुलीके बाहु पर आधी रातके समय सर्पने काटा। काटनेपर तुरन्त ही उसको कटे हुए स्थान पर शूल और दाह प्रतीत होने लगा और यह बढ़ता ही गया। १५ मिनटके पश्चात् उसको नशा सा प्रतीत होने लगा, किन्तु बातें पूछने पर प्रश्नोंका उत्तर बराबर देता रहा। नेत्रके तारक नाड़ी और श्वासकी गति स्वाभाविक थी। उसके बादमें पैरोंकी शक्ति नष्ट होने लगी और वह काँपने लगा; तीस मिनटके बाद उसके नीचेका जबड़ा लटक आया और मुखसे झागदार चिकना थूक निकलने लगा। वह उस समय तक साफ बोलता रहा। किन्तु उसके पैरोंका फालिज बढ़ता ही गया। सर्पके काटनेके ४० मिनटके पश्चात् शिरको इधर उधर पटकने लगा। श्वास और नाड़ीकी गति कुछ अधिक बढ़ गई; किन्तु वैसे वह बराबर होशमें रहा और प्रश्नोंका उत्तर भी देता था; हाथोंमें लकवेका प्रभाव नहीं हुआ था। श्वासकी गति क्रमशः मन्द होती चली गई; काटनेसे १ घन्टा १० मिनटके पश्चात् श्वास बन्द हो गया

परन्तु हृदयकी गति श्वास बन्द होनेसे १ मिनट बाद तक होती रही।

दूसरा उदाहरण—एक बार एक ४० वर्षकी आयुके मुसलमानकी हाथकी अंगुलीमें Russells viper नामक सर्पने काटा। कटे हुए भागको उसी समय बांध दिया गया। शक्तिप्रद ओषधियोंका प्रयोग आरम्भ कर दिया, हाथ और सारी बांह बहुत सूज गई, उसी दिन उसके मल द्वार और मूत्र द्वारसे रक्त बहने लगा। दूसरे दिन वह अधिक रोगी प्रतीत होने लगा और रक्त दोनों मार्गोंसे बराबर आता रहा। इसी प्रकार आठ दिन तक बराबर रक्त जारी रहा और नवें दिन मर गया।

शव परीक्षा—सर्प विषसे मरे हुए मुरदेके शरीर पर सांपके दांतोंके चिन्ह सावधानीसे देखने चाहियें। यदि वह मिल जायं तो उस स्थानको तथा उसके आसपासके स्थानको खूब अच्छी तरहसे देख लेना चाहिये। जिस स्थानमें विष प्रवेश हुआ होगा वहां रक्तका सीरम (Bloody Serum) निकला दृष्टि पड़े तो अवश्य ही सर्पका विष प्रवेश होनेका प्रमाण है; दांत लगे हुए स्थानके आसपासके धातु कुछ बैजनी रंगके हो जाते हैं। आन्तरिक अवयवोंका केवल यही परिवर्तन प्रतीत होता है कि शरीरका रक्त अस्वाभाविकतासे तरल हो जाता है। वृक्क, फुस्फुस और यकृत स्वाभाविक अथवा अधिक रक्त युक्त दिखाई पड़ते हैं।

प्रतिविष और चिकित्सा—इसके कारण अधिक संख्यामें भयंकर मृत्यु होनेसे और इस विषके शीघ्र मारक होनेके कारण लोगोंने इसके प्रतिविष ढूंढनेमें बहुत परिश्रम किया है; इस कारण सर्प विषकी अनेक औषधें प्रचलित हैं। परन्तु उनमेंसे पोटासियम परमेंगनेटके सिवाय और कोई औषध अधिक फलप्रद सिद्ध नहीं हुई। यह औषध भी वस्तुतः उत्तम प्रति विष नहीं है। यह जब विषके साथ मिल जाती है तो उस विषको नष्ट कर सकती है, अन्यथा जब सर्प विष रक्तमें प्रविष्ट हो जाय तब यह औषध उसको नाश करनेमें समर्थ नहीं होती। डाक्टर बैडल तथा अन्य विद्वानोंने चिरकाल तक परिश्रम करके यह जाना है कि विषधर सर्प जब किसी वस्तुको काटता है तो उसकी विष ग्रन्थियोंसे निकला हुआ विष उसके शरीर और कटी हुई वस्तु दोनोंके शरीरमें प्रवेश करता है। कटा हुआ जीव उस विषके प्रभावसे मर जाता है; किन्तु सर्प नहीं मरता। इस बात पर विचार करनेसे यह निर्णय हुआ कि सर्पके अन्दर थोड़ा थोड़ा विष जाते रहनेके कारण उसको क्षमता (Immunity) प्राप्त हो जाती है। यदि मनुष्यके शरीरमें भी सीरमके द्वारा यही क्षमता उत्पन्न कर दी जाय तो उस पर भी सर्प विषका प्रभाव न हो सकेगा। इस कार्यके लिये अधिकतर घोड़ोंके शरीरमें कई बार इन्जक्शन द्वारा, अल्प मात्रामें सर्प विष प्रवेश कर उनमें विष क्षमता उत्पन्न की जाती है; तदनन्तर उनके रक्तका सीरम निकाल कर प्रयोग करते हैं उसको Anti-venene कहते हैं। इसका प्रयोग करनेसे यह अनुभव हुआ है कि Cobra विषधर सर्पके विषसे उक्त विधि द्वारा तैय्यार किया हुआ सीरम दूसरे विष वाले सांपके विष पर प्रभाव नहीं करता है। इस कारण विशेष शोधके पश्चात् यह उपाय निकाला गया है कि ८०% अस्सी हिस्सा कोबरे (Cobra) के विषके सीरमके साथ बीस हिस्सा अन्य विषधारी सांपोंके प्रतिविष सीरम मिला कर प्रयोग किया जाय। यह प्रयोग अन्य प्रयोगोंकी अपेक्षा उत्तम सिद्ध होनेके कारण अब सरकारी सदर अस्पतालोंमें सर्प विषकी चिकित्साके लिए किया जाता है। किन्तु यह भी अति शीघ्र विकृत हो जाता है।

स्थानीय चिकित्सा—इसके विषमें किसी दशामें भी स्थानीय चिकित्साकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। सर्प दंशको चूसना, दंशके ऊपर खूब मज़बूत बन्द लगाकर बांधना, पोटासियम परमेंगनेटके द्रव द्वारा घावको खूब अच्छी तरह धोना या कपड़ा भिगोकर उस पर रख देना, दंश पर चीरा

लगाकर घावके खूनको बहने देना—यह उपाय सबसे उत्तम और मुख्य है। यदि लक्षण अधिक उग्र हो जायं तो कृत्रिम श्वास प्रश्वास क्रिया प्रारम्भ कर दें और बिजलीका प्रयोग करें।

सर्प विषसे पशुओंकी हत्या—जो मनुष्य चमड़ेका काम करते हैं वह सर्प विषके प्रयोगसे चमड़ेके लिए पशुओंको मारते हैं। भारतवर्षके वैद्य और हकीम औषधिके लिए सर्प विषको अपने यहां रखते हैं। पशु मारनेवाले उनसे चुराकर इस कामके लिए इसका प्रयोग करते हैं। अथवा सांपको एक मिट्टीके घड़ेमें बन्द करके उसमें एक केलेकी फली डाल देते हैं। फिर उस घड़ेको आगपर गरम करते हैं जिससे दुखी होकर सांप केलेकी फलीको कई बार काटता है। उसी विषको निकालकर फिर सुखा कर कपड़ेमें लगाकर पशुओंके मल द्वारमें प्रवेश कराते हैं। कई स्थान पर मरे हुए पशुओंके मल द्वारसे निकाले हुए कपड़ेकी निम्नलिखित विधिसे परीक्षा कर सांपके विषका पता लगा है—कभी कभी ग्रामीण लोग सर्प विषके स्थानमें आकके दूधका भी उक्त विधिसे प्रयोग कर पशुओंकी हत्या करते हैं।

सर्प विषकी परीक्षा—अल्प मात्रामें सर्प-विषका जलीय घोल अथवा सर्प विष सन्देहवाले कपड़े का निचोड़, मारक मात्रामें दो मुर्गोंके शरीरमें अथवा दो ख़रगोशोंके शरीरमें भिन्न भिन्न मात्राओं-में इन्जकशन द्वारा प्रवेश करा दिया जाय और फिर एन्टीवीनन सीरम ( Antivinene serum ) की समान मात्रासे प्रयोग किया जाय तो मुरगे या खरगोश पर विषका कुछ प्रभाव नहीं पड़ेगा।

## मद्यसार (Absolute alcohol)

[ले०—कविराज श्रीप्रतापसिंहजी ]

इसमें एक भाग जल और शेष इथिल मद्य-सार रहता है। यह स्रवन (Distillation) क्रिया द्वारा जलीय भाग पृथक करके तैय्यार किया जाता है। यह रंग रहित उड़नशील द्रव होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व ०·७९४ से ०·७९६९ तक होता है।

प्रभाव—इसका प्रभाव मादक तथा उग्रदाहक, पानीके समान धर्म रखनेवाला होता है, किन्तु जलके स्थानमें इसका प्रयोग नहीं होता।

मद्य ( Rectified spirit )

यह द्रव नव्वे भाग मद्य और दश भाग जल मिला हुआ होता है। इसको मीठे द्रव्योंके लाहन ( Fermented saccharine liquids ) से स्रवन क्रिया द्वारा प्राप्त करते हैं। यह द्रव पारदर्शक, रंग रहित, दहनशील, विशेष गन्धशाली और ग्राह्य, मद्य सदृश ज्वालोत्पादक तथा स्वादयुक्त होता है। इसका अपेक्षिक गुरुत्व ·८३४० होता है। इसकी विशेष गन्ध ही अन्य मद्यके प्रयोगोंके पहिचाननेमें सहायता देती है। इस कारण इसके और प्रयोग भी आते हैं; जिनमें ७० फी सदी से २० फी सदी तक मद्य और शेष मुकत्तर जल (Distilled water) होता है। इसी मद्यकी शक्तिके अनुसार उनका प्रयोग किया जाता है।

स्पिरिट लैम्पमें जलानेका मद्य ( Methylated spirit ) अशुद्ध मद्यसार होता है। इसमें दश फी सदी लकड़ीका तेल, ( Wood naphtha ) और ½ पेटरोलियम ( Petroleum oil ) मिला रहता है। इस कारण यह पीनेके सर्वथा अयोग्य है। यह वारनिश, अंग्रेज़ी लिनिमेन्ट या टिन्चर आयोडी-नके रूपमें बाहर लगानेके काममें आता है।

ब्रान्डी ( Brandy )

यह मद्य मुनक्का (अंगूर) आदिके लाहनसे खींच कर बनाया जाता है और चिरकाल तक रखनेके

बाद इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें साढ़े छत्तीस फी सदी इथिल मद्य सार ( Ethyl hydroxide ) होता है।

नारंगीकी मद्य ( Orange wine )

इसको मीठी चीज़ोंके लाहनसे खींच कर (जिसमें नारंगीके छिलके भी मिलाते हैं) बनाते हैं। इसमें दशसे बारह फी सदी तक इथिल मद्यसार होता है।

शेरी मद्य ( Sherry )

यह एक प्रकारकी मद्य स्पेन देशसे बनी हुई यहां आती है। इसके अन्दर सोलह फ़ीसदी इथिल मद्यसार होता है।

निम्न लिखित सूचीसे विदित होगा कि विदेशी मद्य जो बाजारोंमें आकर बिकते हैं और उनका प्रयोग प्रायः चिकित्सक लोग करते भी हैं, उनमें कितना इथिल मद्यसार रहता है। यदि उनके प्रयोगसे कभी विषात्मक लक्षण प्रकट हों तो पाठक मद्यसारकी मात्रा आसानीसे जान सकेंगे।

ह्विसकी (Whisky) में इक्यावनसे उनसठ फी सदी तक इथिल मद्यसार होता है। ब्रान्डीमें ३६$\frac{1}{10}$%, रममें ५१%, और जिनमें ५$\frac{1}{10}$% होता है।

अन्य मद्योंमें भी इसी प्रकार मद्यसार रहता है। शेरी ( Sherry ), पोर्ट ( Port ), मडियरा ( Madeira ), इन तीनों मद्योंमें लगभग १६ से २२ फ़ी सदी तक इथिल मद्यसार रहता है।

शेम्पेन ( Champagne ) में दससे तेरह फ़ी सदी तक मद्यसार रहता है।

होक्स ( Hocks ), बरगन्डी ( Burgundy ), इनमें नौसे तेरह फ़ी सदी तक मद्यसार होता है। स्पिरिट्स वाइन रूबरी (Spiritus Vine Rubri port) में १४ से १६ फ़ी सदी तक मद्यसार होता है।

क्लेरेट (Claret) में आठसे बारह तक फ़ी सदी मद्यसार होता है।

एल और पोर्टर (Ale and Porter) में तीनसे पांच फ़ी सदी तक या कुछ अधिक मद्यसार होता है।

काइडर (Cider) में पांचसे नौ फ़ी सदी तक मद्यसार होता है।

कोमिस ( Koumiss ), जिन्जर ( Ginger ), बियर ( Beer ), में एकसे तीन फ़ी सदी तक मद्यसार होता है।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—यह क्लोरोफोर्म और ईथरकी अपेक्षा अल्प पचन निवारक (Antiseptic) होता है। किन्तु ग्लेसरीन (Glycerine) की अपेक्षा अधिक तीव्र होता है। चर्म पर लगानेके बाद जब यह उड़ने लगता है, तब शरीरकी ऊष्माको खींचता है; चर्मपर रहनेवाली रक्तकी नलियोंको संकुचित करता है। पसीनेको रोकता है और स्थानीय ज्ञान वह नाड़ियोंको अवसन्न करता है। इस कारण यह स्थानीय सुन्नकारक, रक्त नाली संकोचक, जल शोषक, और संज्ञा नाशक ( Anæsthetic ) माना जाता है।

प्रयुक्त होनेपर शरीरके जलीय अंशका शोषण करके यह चर्म पर रक्तता, रूक्षता और कठिनता उत्पन्न करता है। शरीरमें शोषण होनेके अनन्तर रक्त नालियों और वात नाड़ियोंको उत्तेजित करता है जिससे रक्तता, ऊष्मा और शूल उत्पन्न होता है। इसको स्थानीय उत्तेजक और चर्म प्रदाहक ( Rubefacient ) भी कहते हैं। यह धातुओंके अलब्युमेन नामक द्रवको जमा देता है; किन्तु वह जमा हुआ भाग फिर शीघ्र ही घुल जाता है।

महास्रोत ( मुखसे गुदा पर्यन्त जो नाली जाती है) पर प्रभाव—बिना जल मिला हुआ मद्यसार जब मुखके अन्दर जाता है तो चर्मके सदृश ही प्रभाव करता है। वहां अलब्युमेन नामक द्रवके जमनेसे हलके गुलाबीसे उभार उत्पन्न हो जाते हैं। यह उभार धातुओंके द्रवमें शीघ्र ही घुल जाते हैं। मद्यसार लाला स्राव और हृदयकी गतिको उत्तेजित करता है।

आमाशय पर प्रभाव—बिना जल मिला हुआ मद्यसार आमाशयमें पहुँच कर, शूल, दाह और उष्णता उत्पन्न करता है। यदि जल मिलाकर

थोड़ी मात्रामें पिया जाय तो आमाशयकी संकोच और प्रसरण क्रियाको बढ़ाता है, उसके रस और उसकी ग्रहण शक्तिको भी उत्तेजित करता है; इस कारण इसका प्रभाव क्षुधा वर्धक है अर्थात् पाचन शक्तिको बढ़ाता है और यदि आमाशयमें कोई दूषित वायु ( Gas ) उत्पन्न हुई हो तो उसे बाहर निकाल देता है। अतः यह आमाशयिक उत्तेजक और आध्मान नाशक ( Carminative ) माना जाता है। आमाशयिक नाड़ियोंको अवसन्न करनेके कारण यह शूल नाशक प्रभाव रखता है। मद्यसार जब आमाशयके रसके साथ मिलता है तो यह ( Aldehyde ) और एसेटिक एसिड (सिरकेका तेज़ाब) के रूपमें बदला जाता है। यह पेपसीन ( Pepsin ), पेपटोन्स ( Peptones ) और प्रोटीड ( Proteids ) नामक द्रव्योंके साथ मिलकर तलछट बैठाता है, किन्तु यह क्रिया इतनी उग्र नहीं होती कि जिससे आमाशयिक पाचन शक्ति दुर्बल हो जाय। दीर्घ और पुनरावर्तित (repeated) मात्राके प्रयोग करनेसे यह आमाशयकी श्लेष्म धराकलामें प्रदाह उत्पन्न करता है; आमाशयिक श्लेष्म धरा कलाके रसको बढ़ाता है और आमाशयिक रसको भी परिवर्तित करता है। यदि श्लेष्म धराकलाका प्रदाह बराबर जारी रहे तो आमाशयिक रसोत्पादक ग्रन्थियां खराब हो जाती हैं और अग्निमन्द रोग हो जाता है जैसा कि नियमित रूपसे मद्यपान करनेवाले मनुष्योंमें देखा जाता है। तेज़ मद्य ब्रान्डी व्हिसकी आदिकी साधारण मात्रा आमाशयमें पहुँच कर, तत्क्षण हृदयको उत्तेजित करती है, शरीरके रक्त वह स्रोतोंको और विशेष कर चर्मके रक्त वह स्रोतोंको प्रसरित करती है। यह और अवयवोंके कार्य करनेकी शक्तिको बढ़ाता है; अतः यह उग्र व्यापक उत्तेजक माना जाता है। इनसे रक्तमें परिशोषित होने पर्यन्त यह प्रभाव लगातार जारी रहता है।

आंतों पर प्रभाव—आंतोंकी श्लेष्म धराकला पर यह कुछ संकोचक प्रभाव करता है।

रक्त पर प्रभाव—यह रक्तके अन्दर बिना किसी परिवर्तनके एलडीहाइड ( Aldehyde ) नामक पदार्थके रूपमें स्नेहवाही स्रोतों ( Lacteals ) की अपेक्षा, शिरा द्वारा शीघ्रतासे प्रवेश करता है। यह रक्तके ओक्सी हीमोग्लोबिन ( Oxyhæmoglobin ) नामक द्रव्यके ओषजनको ऐसा बांध देता है कि जिससे न तो ओक्सी हीमोग्लोबिन ओक्सीजनको शीघ्रतासे ग्रहण कर सकता है और न उसका त्याग ही कर सकता है। इसका फल यह होता है कि रक्तके लाल कणोंकी ओषजनी करण शक्ति कम हो जाती है, जिससे धातुओंमें ओषजनी करण कम होता है। इसके कम होनेसे यह प्रभाव होता है कि शरीरमें श्वेत सार ( Carbohydrates ) का पाचन अल्प होता है, और धातुओंमें चर्बी अधिक संचित हो जाती है, जिससे मेद रोग (Obesity) हो जाता है। अधिक मद्य पीनेवाले लोगोंमें यह रोग प्रायः देखा जाता है। मद्य प्रथम तो रक्तके धवल कणों ( White blood corpuscles ) की गतिको बढ़ाता है, परन्तु बादमें न्यून कर देता है।

रक्त परि गमन—मद्य रक्तमें पविष्ट होनेके अनन्तर रक्त परिगमन और हृदय पर विशेष प्रभाव करता है। हृदयकी गति बढ़ जानेके कारण नाड़ीकी गति भी शीघ्रगामी और बलवान हो जाती है। चर्मके रक्त वह स्रोत प्रसरित हो जाते हैं; शरीरमें रक्तका दबाव बढ़ जाता है; मन प्रसन्न और प्रफुल्लित होता है, मांसकी गति बढ़ती है, मूत्र अधिक होता है और चर्म पर खूब पसीना आता है। यह उत्तेजक प्रभाव चिर काल तक नहीं रहता, कुछ देर पश्चात् अवसन्नता हो जाती है; और यह चिरकाल तक रहती है। कुछ मनुष्योंका यह विचार गलत है कि मद्य पीकर मनुष्य बिना थकानके चिरकाल तक शारीरिक परिश्रम कर सकता है।

श्वास क्रिया (Respiration)—मद्य पान करने-

के बाद ही श्वास क्रियाको उत्तेजित करता है और बादमें इसकी गतिको मन्द कर देता है।

शरीरोष्मा (Temperature)—मद्य मृदु ज्वरघ्न शक्ति रखता है। इसके पीनेसे चर्मके रक्त वाही श्रोत प्रसरित हो जाते हैं, जिससे स्वेद अधिक आता है और रक्तकी सब नालियोंकी गरमी कम हो जाती है और धातुओंकी ओषजनी करण शक्ति न्यून हो जाती है। इसी प्रकार अधिक मात्राके पीनेसे, सर्वांग व्यापक अवसन्नता उत्पन्न हो जाती है।

मांस संस्थान—इसके सेवनसे मांस संस्थानमें रक्त परिगमन अधिक बढ़नेके कारण प्रथम दशामें मांसकी शक्ति बढ़ती है। दीर्घ मात्राके सेवनसे माँसकी गति कम्प युक्त होती है। विषात्मक मात्रा के सेवनसे मांस गति शून्य हो जाती है।

वात संस्थान—सामान्य मात्रामें सेवन करनेसे इसका मस्तिष्क पर उत्तेजक प्रभाव होता है। हृदयकी गतिकी अभिवृद्धि, रक्तवह श्रोतोंकी उत्तेजना और वात सेलों पर होनेवाला प्रभाव ही इसका कारण है। दीर्घ मात्रासे थोड़े समयके लिए अति अधिक उत्तेजना प्रतीत होती है, किन्तु शीघ्र ही अवसन्नता हो जाती है। उत्तेजना और अवसन्नता, मस्तिष्कके उत्तम विचारोंसे निम्न विचारों तक लगातार होती रहती है। जैसे मस्तिष्ककी उत्तेजनाके समय, विचार शक्तिका बढ़ना बुद्धिकी गम्भीरता, चित्त शक्तिका संयम, धारणा शक्तिकी प्रखरता, शरीरके कार्य करनेकी शक्तिकी प्रबलता, और काम शक्तिकी उत्तेजना होती है। इसी प्रकार अवसन्नता भी अपना प्रभाव करती है; जैसे अनुमान विचार और वाक शक्तिके होते हुए भी निर्णयात्मक शक्ति (Judgement) का नाश होना, उसके पश्चात् अनुमान और विचार शक्तिका नाश होना, बहुत बोलना, हंसना, गाना, बेरोक चिल्लाना आदि। किन्तु, धीरे धीरे यह शक्ति क्रमशः नष्ट हो जाती है और वाक शक्तिकी गद्गदता, अस्पष्टता, और अवसन्नता हो जाती है। तदनन्तर मांसपर प्रभाव पड़ता है, जिससे बारीक काम करनेकी शक्ति (लिखना, पढ़ना, बाजा बजाना, हरमोनियमके साथ गाना आदि) नष्ट हो जाती है। इसके बाद अन्य कार्य करनेकी शक्ति भी शिथिल हो जाती है। तदुपरान्त सुषुम्ना काण्ड पर प्रभाव पड़ता है; जिससे रोगी अचेतन दशामें ही मल मूत्र विसर्जित कर देता है। अन्तमें श्वासाशय और हृदयके केन्द्रोंको लकवा मारनेसे मनुष्यकी मृत्यु हो जाती है।

चर्मपर प्रभाव—मद्य मृदु स्वेदोत्पादक है। इसका कारण चर्मके रक्त वाही श्रोतोंका प्रसरित होना और स्वेद ग्रन्थियोंके ऊपरका प्रभाव मात्र है। इससे रक्त धमनियोंका प्रसरण इतना अधिक बढ़ जाता है कि हृदयका फैलाव अधिक होकर मनुष्य मर जाता है। मद्य पीनेवाला ऐसी दशामें भी शरीरमें कुछ ऊष्णाका अनुभव करता है, जब कि उसके चर्मके रक्त वह श्रोत शीत वायुमें संकुचित हों।

वृक्कोंपर प्रभाव—मद्य मृदु मूत्रल है; इसके प्रभावसे वृक्कके रक्त श्रोत प्रसरित हो जाते हैं। अन्य मद्योंकी अपेक्षा जिन नामक मद्य अधिक मूत्रल प्रभाव करता है; यदि यह अधिक पिया जाय तो इसका कुछ भाग बिना परिवर्तित हुए ही, मूत्रके साथ निकल जाता है।

संशोधन—मद्यका अधिक भाग शरीरमें ओषजनी करण द्वारा कारबोनिक एसिड और जलके रूपमें परिणित हो जाता है। उसका तीन प्रतिशत भाग बिना ओषजनीकरणके ही फुप्फुसों द्वारा और अल्पांश वृक्क द्वारा एवं अत्यन्त अल्पांश भाग चर्मके द्वारा बाहर निकलता है।

तात्कालिक विषलक्षण—दीर्घ मात्रामें मद्यपीने से हृदयकी गति बन्द होकर मृत्यु हो जाती है, या कुछ समयके बाद हृदय और श्वासाशय के केन्द्रोंको लकवा हो कर मृत्यु हो जाती है। आसन्न मरणके समय अचेतनता, नेत्रोंकी स्थिरता, नेत्र तारकका संकुचित या विकसित होना, नाड़ीकी दुर्बलता,

चर्मका शीतल होना, या पसीना आना श्वास खिंचाव दार होना, कभी कभी प्रलाप और ऐंठन आदि लक्षण भी होते हैं।

प्रतिविष ( Antidotes )—इसके विषमें वमन कारक औषधसे पम्प द्वारा आमाशयको धोवे, रोगीको नौसादर मिलाकर काफ़ी पिलावे। यदि वह नौसादर मिली हुई काफ़ी न पीसके तो पम्प द्वारा आमाशयको धोकर, उसीके द्वारा आमाशयमें काफ़ीका इन्जकशन कर दे। राईका प्लास्टर लगावे; ठण्डा जल मुखपर छिड़के, हाथ पैरोंमें बिजली लगावे, ( Amylnitrite ) एमिल नत्रित सुँघावे। कुचलेका सत्व (स्ट्रिकनिया) $\frac{1}{60}$ रत्तीसे $\frac{1}{30}$ रत्ती तक चर्म द्वारा इन्जकशन करे।

दीर्घ कालिक् विष लक्षण—मदात्यय रोग ( Alcoholism ) यह चिरकाल तक मद्य पीनेके कारण उत्पन्न होता है। निद्रानाश, मांसोंका कम्प और अग्नि मान्द्य आदि इसके पूर्वलक्षण होते हैं; इसके अतिरिक्त पाकस्थली प्रदाह, यकृतका घनत्व ( Cirrhosis of the liver ) हो जाता है, जिसके कारण जलोदर रोग हो जाता है। आँतोंकी नाड़ियोंका प्रदाह होकर सर्वाङ्गीन शोथ हो जाता है। हृदयका प्रसारण (Dilatation of the heart) सन्धिवात (Gout) और मस्तिष्क विकृति होजाती है, जिससे भ्रम, कम्प, अपस्मार, ( Epilepsy ), लकवा (Paralysis), उन्माद ( Insanity) आदि रोग उत्पन्न होते हैं। नित्य मद्य पीनेवाले लोग साधारणतया दुर्बल होते हैं; किन्तु बियर नामक मद्य पीने वाले लोग मोटे हो जाते हैं। मद्य पीने वाले मनुष्य किसी कठिन रोग ( निमोनिया आदि ) को सहन नहीं कर सकते और उनको शीघ्रही क्षय आदि रोग होनेकी सम्भावना रहती है। जिन ( Gin ) नामक मद्य पीनेवाले मनुष्य प्रायः यकृत और वृक्कके घनत्व नामक रोगसे पीड़ित रहते हैं।

## क्या मिठाई सबको अच्छी लगती है ?

जिन लोगोंने ध्रुव प्रदेशोंमें यात्रा की है, उनका कहना है कि एस्कीमो लोगोंको मीठी चीज़ें बड़ी अरुचिकर लगती हैं। नमकीन चीज़ोंसे भी उन्हें घृणा होती है, किन्तु उतनी नहीं जितनी कि मिठाईसे होती है। मिठाई तो ज़बानपर रखते ही वह फेंक देते हैं, नमकीन चीज़ें कुछ जब्र करके खा भी लेते हैं।

शरीरकी वृद्धि और पोषणके लिए शर्करा बहुत आवश्यक है। प्रायः श्वेतसार मय चीज़ें पेटमें पहुँच कर शर्करमें बदल जाती हैं। जिगरका तो काम ही यह है। जब शरीरको श्वेतमय पदार्थ नहीं मिलते तो वह नत्रजनीय पदार्थोंसे ही शर्करा निर्माण कर अपना काम चला लेता है।

## चीरा लगे पर रुधिर न बहे

काली डामरसे एड्रेनेलीन बनायी जा सकती है। इस पदार्थका यह गुण है कि यदि त्वक् भेद द्वारा इसका प्रवेश कराया जाय तो ब्लडवेसिल्समें अत्यन्त संकोच पैदा कर देता है, यहांतक कि जिस स्थान पर इसका इन्जेकशन किया जाता है, उसके आसपासके मांसमेंसे बिलकुल रुधिर निकल जाता है। उस समय यदि चीरा लगाया जाय तो बिल्कुल खून न निकलेगा। जिन लोगोंकी नाक सुर्ख रहती है वह भी इस पदार्थका पतला घोल लगाकर सुर्खी दूर कर सकते हैं; किन्तु थोड़ी देर के लिए ही।

## आयोनोन

यह सिट्राल ( citral ), एसीटोन और क्षारकी परस्पर क्रियासे बनाया जाता है। इसमें गुलबनफशाकी सी गन्ध होती है। इसके प्रयोगसे बनफशा के गन्ध वाले इत्र, तेल, आदि बनते हैं। इसकी एक छोटी सी शीशी प्रयागको खुशबूसे भर देनेके लिए पर्याप्त होगी।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग १८ } मीन, संवत् १९८० । { संख्या ६

## बरसनेवाले पदार्थ

[ ले०—पं० जयदेव शर्मा विद्यालङ्कार ]

प्रति वर्ष वर्षा आती है और सावन भादोंकी मूसलाधार झड़ियां प्रति-वर्ष लगती हैं और उनमें सम्पूर्ण पृथ्वीके जीव प्रकृतिका मनोहर दृश्य देखते हैं। हमें इस विषयका विशेष विवरण लिखकर पाठकोंके समयकी हत्या नहीं करनी। इस प्रसङ्गमें साधारण जलकी वर्षासे अति-रिक्त अन्य विशेष पदार्थोंकी वर्षा कैसे और कब कब होती है इसी पर कुछ प्रकाश डालना है। यह विषय निःसंदेह बड़ा रोचक और विस्मय-जनक है। असाधारण घटनाओंका उल्लेख कर देना तो सहज है परन्तु उनका प्रमाणित करना और कारणान्वेषण करना ही कठिन होता है।

इस प्रकृतिमय संसारमें जब जब विशेष घटना उपस्थित हुई हैं तब तब मानवचक्षुओंने प्रकृति मय संसार को केवल विस्मयसे देखकर नहीं छोड़ दिया परन्तु उसके कारणान्वेषणकी चेष्टा की है। बड़ी बड़ी फिलासफियां और दर्शन शास्त्र और वैज्ञानिक अनुशीलन सब उसी असा-धारण घटनाओंके कारणान्वेषण का ही फल है। अब हम प्रकृत विषय पर आते हैं।

असाधारण घटनाओं को प्राचीन संस्कृत सा-हित्य में 'उत्पात' का नाम दिया गया है। बराह मिहिर कहते हैं—

प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः ( बृ. सं० ४६, १ )

स्वभावसे विपरीत होना ही उत्पात कहाता है। इन उत्पातोंका कारण बराह कहते हैं।

अपचारेण नराणामुपसर्गः पाप संचायाद् भवति ।

मनुष्य जब घोर पाप करता है तब उसके पापोंका संचय होने लगता है और उसी कारण से यह ( ईश्वरीय कोपके रूप में ) उत्पात प्रकट होते हैं।

प्राचीन आचार्यों ने उत्पातोंको तीन प्रकारोंमें बांट दिया है। दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम। इन उत्पातोंको लानेवाले देव लोगोंकी कल्पना की गयी है। देव लोग मनुष्योंका पाप देखकर उनको दण्ड देनेके लिए उपद्रव और उत्पातोंको किया करते हैं।

मनुजानामपचारादपरक्ताः देवताः सृजन्त्येतान् ॥
( बराह अं० ४६ )

चर और अचर पदार्थोंसे होनेवाले उपद्रव भौम उत्पात कहाते हैं। अन्तरिक्षसे उत्पन्न होनेवाले उत्पात आन्तरिक्ष और दिव्य लोकसे होनेवाले उत्पात दिव्य कहाते हैं। वृष्टिके उत्पात आन्तरिक्ष हैं। हमें इसी प्रकारके उत्पातोंकी आलोचना करनी है।

पुराने ग्रन्थकारों ने मेघोंसे जलके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंका वर्षण होना भी लिखा है। जैसे बराह मिहिर लिखते हैं:—

अनृतौ सप्ताहं प्रबन्ध वर्षे प्रधान नृपमरणम् ।
रक्ते शस्त्रोद्योगः मांसास्थिवसादिभिर्मरकः ॥

बेमौसम यदि लगातार वर्षा हो तो प्रधान राजाकी मृत्यु होती है। रक्तकी वर्षा हो तो राष्ट्रोंमें आपसमें खूब शस्त्रोंकी खटाखट होती है। मांस-हड्डी, चर्बी आदिकी वर्षा होनेसे महामारी आदि होनेकी सूचना हो जाती है।

"धान्य हिरण्य त्वक् फलकुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विद्यात् ।
अङ्गारपांशुवर्षे विनाशमायाति तन्नगरम् ॥
उपला बिना जलधरै विकृता वा प्राणिनो यदाष्टाः ।
छिद्रं वाप्यति वृष्टौ सस्यानामीति सञ्जननम् ॥
क्षीर घृत क्षौद्राणां दघ्नो रुधिरोष्णवारिणां वर्षे ।
देश विनाशो ज्ञेयो ऽसृग्वर्षे चापि नृप युद्धम् ॥

धान्योंकी वर्षा, सोनेकी वर्षा, वृक्षोंकी छालकी वर्षा, फलोंकी वर्षा, फूलोंकी वर्षा, यह भी राष्ट्रके लिए भयके सूचक हैं। तिसपर भी कोयले और धूलकी वर्षा होनेसे तो नगर बसा बसाया उजड़ जाता है।

बिना बादलोंके यदि ओले बरसें या यदि विकृत रूपके प्राणियोंकी वर्षा हो, बहुत वर्षा होने पर भी कहीं पानी पड़े और कहीं न पड़े तो खेती नष्ट हो जाती है।

दूध, घी, शहद, दही, रुधिर और गरम पानीकी वर्षा हो तब भी देशका नाश हो जाता है और रुधिरकी वर्षा होने पर राजाओंमें बहुत युद्ध होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि बराहकी सम्मतिमें जलसे अतिरिक्त बहुत सी वस्तुओंकी वर्षा होना सम्भव है।

अब पाठक गण इनके कारणों पर विचार करें।

१. रक्ते शस्त्रोद्योगः।

रक्तकी वर्षा होने पर शस्त्र उठते हैं। क्या रक्त की वर्षा हो सकती है। इसी प्रकार "मांसास्थि वसादिभिर्मरकः" मांस, हड्डियों, और और चर्बी की वर्षा होनेसे महामारी होती है। यह भी एक अद्भुत समस्या है।

मनुने लिखा है—"नाकृत्वा प्राणिनांहिंसां मांसमुत्पद्यते कचित्।"

प्राणियोंकी हिंसा किये बिना मांस कभी पैदा नहीं हो सकता। फिर लहू चर्बी हड्डी आदिका पैदा होना भी तो बिना प्राणि बध किये सम्भव नहीं है।

फिर यदि आकाशसे इस प्रकार मांस रुधिर हड्डियां और चर्बी बरसें तो क्या बिना प्राणियों की हिंसा के ही बरस जाँयगी।

यह तो तर्क है। वास्तविकता को किसी ने भी नहीं देखा। समाचार पत्रोंमें कई बार प्रकाशित हुआ है कि अमुक स्थान पर मांसकी वर्षा हुई; परन्तु किसी भी विद्वान्ने घटना स्थल पर जाकर परीक्षा करनेका कष्ट न उठाया और न किसी प्रामाणिक पुरुष ने उसे अपनी आँखों देखा
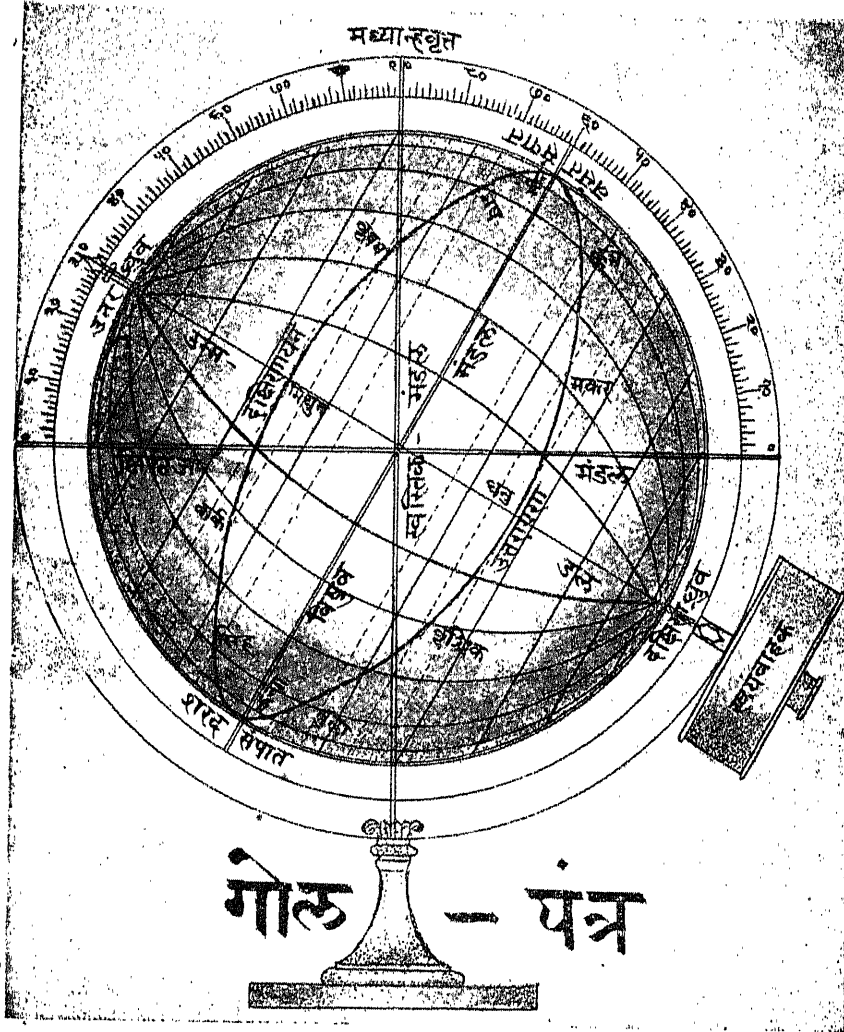
चित्र १

या प्रमाणित किया। प्रतीत ऐसा होता है कि पत्रों में भी कोरी गप्प ही कर्ण परम्परासे उड़ती हुई सत्यका रूप धारण कर लेती है।

हमें इस प्रकारकी वर्षाओं के वर्णनोंका तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि इन वस्तुओं की वर्षा जलके सदृश नहीं होती प्रत्युत थोड़े परिमाणमें छींटा पड़ना ही हो सकता है।

कल्पना कीजिये किसी देशमें युद्ध हो रहा है। वहां के घोड़े हाथी मनुष्य आदि खूब कट कट कर गिर रहे हैं। यदि गिद्ध कौवे वहाँसे मांस हड्डियों को उठाकर समीपके नगरों और ग्रामोंमें गिरादें तो उनका इस प्रकार गिरना भी उल्कापातके समान वर्षा ही कहा सकता है। बहुत सम्भव है कि समीपकी लड़ाईमें आस पास ग्रामों और नगरों को भी अपने युवक कटाने पड़ें। इसी बातसे सचेत होकर उन नगरोंके राजा लोग अपनी तय्यारी करें। तब वराहका यह कथन कि 'रक्ते शस्त्रोद्योगः' चरितार्थ हो।

> कामतो रूपधारित्वं शस्त्राग्न्यस्य तु वर्षणम्।
> तमोऽनिलचला मेघाः इतिमाया ह्यमानुषी ॥
> मेघान्धकार दृष्ट्यग्नि पवर्ताद्भुत दर्शनम्।
> इतीन्द्र जालं द्विषतां भीत्यर्थमुपकल्पयेत् ॥

यथेच्छ रूप धारण कर लेना, शस्त्र अस्त्र, और पत्थरोंका जलके समान बर्सा देना, अन्धकार कर देना और मेघोंको उमड़ा देना, यह सब अमानुषी माया है। अर्थात् इन मायाओं को करना साधारण मनुष्यकी शक्तिसे बाहर है, विशेष सामर्थ्यवाला पुरुष ही यह कार्य कर सकता है।

मेघोंको उमड़ाना, अन्धकार कर देना, जलवृष्टि और अग्नि वृष्टिका अद्भुत चमत्कार कर देना इत्यादि नाना इन्द्रजाल भी राजा अपने शत्रुको डरानेके प्रयोजनसे किया करे।

फलतः यह सब राज नीतिक क्षेत्रकी माया ही है, जिसको समय समय पर प्रतिपक्षके मायावी लोग किया करते हैं। घटना छोटी भी हो तो भी अद्भुत वस्तुके विषयमें तिलका ताल अवश्य बना करता है, जिसका प्रत्यक्ष नमूना मैं स्वयं देख चुका हूं।

जब मैं विद्यार्थी अवस्थामें गुरुकुल कांगड़ीमें महा विद्यालय विभागके तृतीय वर्षमें पढ़ता था तब एक घटना सुनी कि गुरुकुलसे २५ कोस दूर कालसी नामक ग्राममें भूत पत्थर बरसाते हैं। हम लगभग १५ विद्यार्थियोंका एक बैच इस घटनाकी सत्यता परखनेके लिए उस स्थान पर गया। जब उस ग्राममें पहुँचे तब वहांके लोगों ने ढेरोंके ढेर पत्थरोंको दिखलाया और उनको भूत का फेंका हुआ बतलाया। परन्तु जब घटना स्थल पर हम सब ने पहरा दिया तो मालूम हुआ कि एक डोमकी औरतकी यह सब माया थी। अपने पतिको काबूमें करनेके लिए उसने आस पासके छोकरोंको ऐसा मिला रखा था कि वह बड़ी चतुरतासे डोमके घर पर पत्थर फेंकते थे। और अवसर पा कर आप भी वैसा ही करती थी और भूतका बहाना बनाती थी। महीना भर हो चुका था। उसका पति परेशान था। उसने उपद्रवको शान्त करनेके लिए बहुत से रुपये केवल सूअरके बच्चे, बकरे और मेमने खरीद कर बलि करनेमें व्यय कर दिये; परन्तु फिर भी उपद्रव शान्त न हुआ।

इस उत्पातकी चर्चा कर्ण परम्परासे बहुत दूर तक फैल गयी थी।

ठीक इसी प्रकार बराह प्रोक्त मांस रुधिर बसा और हड्डियोंकी वर्षा होना प्रतीत होता है। कौटिलीय अर्थ शास्त्रमें चाणक्य ने ऐसी और बहुत सी मायाओंका उल्लेख किया है जिनको हम कभी अन्यत्र विज्ञानके पाठकोंकी भेंट करेंगे।

इसी प्रकार घी तेल, दूध शहद की वर्षाको भी समझना चाहिये। इनमें भी वैसी ही माया होनी सम्भव है। आकाशसे दूध, दही, शहद आदिका बरसना तो सर्वथा असम्भव है।

टिड्डीदलका पड़ना तो प्रत्यक्ष है; परन्तु आकाशसे शस्त्रास्त्रोंका बरसना मांसके लोथड़े बरसना, आदि सब मायाके कार्य हैं।

हम इतना और कहेंगे कि धूलिका बरसना भी प्राकृतिक है। जब आकाशमें आंधी आदिके कारण धूलि बहुत चढ़ जाती है उस अवसर पर धूलि बहुत बरसती है। रेगिस्तानमें कंकर रेता आदिका बरसना भी देखा गया है। परन्तु अग्निके धधकते हुए अंगारे बरस जांय यह असम्भव है।

बराह मिहिर आदिके लिखनेका भी यही तात्पर्य प्रतीत होता है कि यह घटनाएं होती हैं इसमें सन्देह नहीं। परन्तु प्राकृतिक कारणोंसे ही हों यह कोई नियम नहीं। मायासे भी ऐसी घटनाओंका होना अनर्थका सूचक है।

जिस राजाके राज्यमें शत्रु लोगोंकी इस प्रकार की माया चलने लगे निश्चय उस देश पर संकट पड़ने लगते हैं। वह देश अपने शत्रुओंके शीघ्र ही वशमें आ जाता है। पाखण्डी लोग भोले आदमियोंको ऐसे अवसरों पर खूब ठगते हैं और शान्ति पुरश्चरण आदिके व्याजसे खूब लूटते हैं।

बराह मिहिर आदिके लेखन प्रकारमें एक यही दोष है कि उन्होंने उत्पातोंकी गणना करते हुए माया मय उपद्रवों और प्राकृतिक उपद्रवोंको समान रूपसे मिलाकर लिख दिया है। यदि वह इसकी भी विवेचना कर जाते तो ऐसा अनर्थ कभी न होता।

वर्तमानकी वैज्ञानिक उन्नतिने तो और भी बहुत सी आश्चर्य जनक बातोंका आविष्कार कर दिया है; जिनको देखकर पुरानी मायाएं तो बहुत ही तुच्छ जान पड़ती हैं।

यह एक रिवाज सा रहा है कि जिस राष्ट्रमें भी यह मन्त्र कौशल आदि विद्या रही वह राष्ट्र असुर यक्ष गन्धर्व किन्नर दैत्य राक्षसोंके राष्ट्र समझे जाते थे। इनको मनुष्य सीमासे बाहर कर दिया जाता था। जैसे महाभारत कालमें घटोत्कच और अलम्बुष आदि मायावी राक्षसोंका अद्भुत वर्णन किया गया है। इसी प्रकार मगधराज जरासन्ध कृष्णका सम्बन्धी होकर भी दैत्य कहाता था। इनकी मायाओंका वर्णन पढ़नेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि महाभारत कालमें निःसंदेह इन सब प्रकारकी अद्भुत मायाओंका बड़े विशाल रूपमें आविष्कार हो चुका था।

(असमाप्त)

---

## मनुष्य-भक्षी पेड़।

ईश्वरकी सृष्टिकी अभी तक किसीने थाह नहीं पायी है, वह बड़ी अद्भुत है, बड़ी भयानक है और बड़ी सुहावनी है। हे ईश्वर! तेरी मायाको कोई नहीं जानता। तू ही सुधारनेवाला है, तू ही बिगाड़नेवाला है, तू ही जिलानेवाला है और तू ही मारनेवाला है। इस संसार में जहां एक ओर मनुष्यकी जीवन रक्षाके लिए सामग्री मिलती है तहां दूसरी ओर ऐसी भी सामग्री मिलती है जिसके द्वारा मनुष्यका जीवन समाप्त हो जाता है। जो लोग खोज करनेके लिए जंगल नदी, पहाड़ आदिमें घूमा करते हैं वह ऐसी अद्भुत वस्तुओंका हाल बतलाते हैं जिन्हें सुनकर मनुष्य आश्चर्यमें पड़ जाता है और उसे एक दम विश्वास नहीं होता।

डाक्टर कार्ल लिची नामक एक प्रसिद्ध जर्मन विज्ञानवेत्ता अपने कुछ साथियोंके साथ दक्षिण अफ्रीकाके भयानक घोर जंगलोंमें होकर आये हैं। वह बतलाते हैं कि अफ्रीकाके दक्षिणमें एक मदगास्कर द्वीप है जिसमें कि एक कोडोस नामकी एक जंगली जातिके लोग रहते हैं। यह लोग मनुष्य-भक्षी पेड़की पूजा करते हैं और उत्सव मनानेके बाद एक लड़कीका बलिदान करते हैं। जब डाक्टर साहब मनुष्य-भक्षी पेड़ोंको देखने जंगलमें निकले तब पेड़ोंकी संख्या बहुत घट गई थी, क्योंकि कोडोस लोगों ने इस विचारसे अनेक पेड़ जला डाले थे कि लड़कियों का बलिदान करते रहनेसे किसी दिन एक भी लड़की जातिमें न बचेगी।

बहुत खोज करनेके पश्चात् डाकूर साहबको एक पेड़ देखनेको मिला। देखनेमें यह बहुत ही अद्भुत मालूम हुआ। इसकी ऊंचाई ज़मीनसे लगभग १५ फुटके थी। इसके ऊपरी भागमें आठ दस पत्ते लटके हुए थे। इन पत्तोंको देखते ही मनुष्य कांपने लगता था; क्योंकि यह मामूली आकार के नहीं थे। प्रत्येक पत्ता १०, १२ फुट लम्बा और पेड़ में जहां लगा था वहां एक फुट, बीच में २½ फुटके लगभग था चौड़ा और फिर पतला होते हुए अंतमें सुईकी नोकके समान नुकीला था। इन पत्तोंकी मोटाई १५ इंचके लगभग थी। पत्तों पर जहां तहां खूब नुकीले कांटे लगे थे। यह पत्ते नीचे लटकते हुए जमीनको छूते थे। इनके ऊपर खूब लम्बी किन्तु पतली सूड़ें लटकती थीं। इन सूड़ों पर पतली पतली कोमल लम्बी तन्तुओंके गुच्छे लगे थे। इन गुच्छोंमें एक प्रकार का रस रहता है।

पाठको, यदि आप इनका उत्सव देखना चाहते हैं तो सम्हल कर बैठ जाइये, हृदयको कड़ा कर लीजिये। डाकूर साहब ने यहांके एक ज़मींदारको कुछ दम दिलासा देकर उत्सव देखनेकी इच्छा प्रगट की। जमींदार अपनी मंडलीको रात्रि के समय लेकर एक पेड़के पास पहुँचा। उन्होंने पेड़के आस पास १२ अंगीठी जलाईं जिससे खूब उजाला हो गया; फिर उन सबों ने कुछ खाया पिया; वहां मदिरा देवी जी ने विशेषतः अपना पूरा राज्य स्थापित कर लिया। फिर क्या था एक एक पर तीन तीन होने लगे, ठुमकने लगे, गाने और चिल्लाने लगे। केवल एक लड़की ने कुछ भी नहीं खाया-पिया और वह एक तरफ खड़ी हुई भय से थर थर कांप रही थी। डाकूर साहब को कुछ दया आ गई और उन्होंने अपने साथी से उस लड़की के बारे में पूँछा। उन्हें यह मालूम हुआ कि इस बिचारी लड़की का बलिदान होगा। अचानक थोड़ी देर में गाना बन्द हो गया। फिर एक दम सब मनुष्य उस लड़कीको पेड़ पर चढ़नेके लिए कहने लगे। पर जब वह न गई तब वह हत्यारे उस लड़कीको भाला मार कर कोंचने लगे पहले तो लड़की दया भिक्षा मांगती रही; पर जब वह लोग न माने तब वह बन्दरके समान एक दम कूद कर पेड़ पर चढ़ गई और वहां पहुँच कर उसने पेड़ के गुच्छों में से पवित्र रस का पान किया। इतना कर वह नीचे कूद पड़ी और लोगों ने समझा कि देवता प्रसन्न हो गये; इसलिए उन्होंने लड़कीको छोड़ दिया, किन्तु उसी क्षण पेड़ एक दम हिलने लगा और उसकी सूंड़ें लड़की के शरीर पर सांप के समान लिपटने लगीं। वह बड़े बड़े विकाल पत्ते उस लड़की के चारों ओर चिपट गये और इस बे रहमी से उसे दबाया जैसे कोई प्रेसिङ्ग मशीन में दबाया जाता है, फिर उस लड़की का पता न चला।

—मनोहर लाल भार्गव

---

## गन्नेके छिलकोंका एक नया प्रयोग

हमारे देशमें साधारणतः किसान गन्ने या ऊखमें से रस निकालनेके पश्चात् रसको गाढ़ा करने के लिए ईन्धनके स्थान पर छिलकोंको काममें लाते हैं। परन्तु जावा, अमेरिका इत्यादि देशोंमें बहुत दिनोंसे यह प्रयत्न किया जा रहा है कि इनको अधिक उपयोगी काममें लावें। कहीं कहीं अब लोग छिलकोंसे मोम और कागज बनाते हैं। अब एक और रीतिके अनुसार इन छिलकोंका बारीक चूरा करके इनमें कई प्रकारके रासायनिक द्रव्य मिलाते हैं और बेलकर इनके तख्ते बना लिये जाते हैं। यह प्रायः चौथाई इञ्चसे आधी इञ्च तक मोटे होते हैं और चार फुट चौड़े और आठ फुट तक लम्बे होते हैं। परन्तु बनानेवालोंका दावा है कि सौ फुट तक लम्बे तख्ते बनाये जा सकते हैं। इन पर न तो पानीका असर होता है; न घुन इत्यादि कीड़े ही इन्हें हानि पहुँचाते हैं। सबसे अधिक अनोखा गुण तो यह है कि इनको आवाज भेद

नहीं सकती। इन गुणोंके कारण यह मकान आदि बनानेके लिए बड़े उपयोगी हैं।

—मनोहर लाल भार्गव

---

## नारंगी पर धुएँका अद्भुत प्रभाव

[ ले०—पं० जगपति चतुर्वेदी विशारद ]

नारंगीके व्यवसाइयोंको नारंगीके रंग-के कारण सदा कठिनाई उठानी पड़ती है। जब नारंगीको पेड़ परसे पका हुआ तोड़ते हैं तो वह दूर दूरके बाजारमें ग्राहकोंके हाथ पहुँचते पहुँचते बिलकुल नर्म हो जाती हैं। नारंगी तो सभी देशोंमें होती नहीं किन्तु खाने वाले सभी स्थानों पर अधिक संख्यामें हैं; अतएव व्यवसाइयोंके लिए दूर दूर स्थानोंमें बढ़िया नारंगी पहुँचानेकी कठिनाई सदा खटकती रहती है। नारंगीमें दूसरी कठिनाई यह है कि जब तक इसकी हरियाली बिलकुल दूर न हो जाय पेड़ परसे तोड़ नहीं सकते। ऐसी नारंगी जो कुछ कच्ची है यदि तोड़ ली जाती है तो किसी कामकी नहीं होती।

एक अनुसन्धानसे अब यह सम्भव हो गया है कि नारंगियां भली भांति पकी हुई अवस्थाके से रंगकी ही ग्राहकों के हाथ सभी स्थानों पर पहुंच सकें, यही लोग चाहते भी हैं। इसका प्रयोग अन्य फलों पर भी किया जा रहा है।

अभी कुछ मास पूर्व केलिफोर्नियामें कुछ नारंगी के व्यवसायी अपने फलोंके गोदामको गर्म करनेके लिए तेलवाला चूल्हा जला रहे थे। वहां पर उन लोगों ने इस बात पर ध्यान दिया कि नारंगियों-का रंग नियमित तिथिसे पहले ही पक्के फलोंका सा हो गया। इसी घटनाकी परीक्षा करनेके लिए इस साधनमें अधिक उन्नतिकी आशा से खुली हवामें तेलके चूल्हे जला कर उनके धुएँका प्रभाव नारंगियों पर डाला गया। इन परीक्षणोंसे सिद्ध हो गया कि तेलके धुएँसे नारंगीके हरे रंगको दूर करनेमें बहुत सहायता मिल सकती है। नये ढंगसे उन नारंगियोंको छः दिनमें रंग बदलते देखा गया है, जो छः सप्ताहमें हुआ करता था।

नारंगियोंके हरे रंगको दूर करनेकी इस विचित्र विधिको अनुसन्धानकर्ताने अपने सभी साथियोंको बतला देनेमें तनिक भी संकोच नहीं किया।

प्रयोगों द्वारा इस बातका पता लगाया है कि साधारण तेलके धुएँमें नारंगीके रंग बदलनेकी जो शक्ति है वही पेट्रोल द्वारा चलनेवाले इंजिनके धुएँमें भी है। अब समीपके कारखानोंसे पेट्रोलके इञ्जिनका धुआं नलों द्वारा नारङ्गीके गोदाममें लाया जा रहा है, जिससे नारङ्गियोंका रंग सहज ही बदला जा सकता है; कैसी अद्भुत करामात है! आमके आम गुठलियोंके दाम। इञ्जिन द्वारा भिन्न भिन्न वस्तुएँ तो बनती ही जा रही हैं, इधर उसके धुएँसे ईंधन (पेट्रोल) का व्यय निकलता जा रहा है।

नींबू बोनेवालोंने भी इस साधनसे सफलता प्राप्त करनेका प्रयत्न किया है। पेट्रोल के ही धुएँसे नारङ्गियोंकी भांति नीबूका रङ्ग भी सहज ही बदल जाता है। इस अनुसन्धानमें यह भी देख लिया गया है कि जिनका रङ्ग पेट्रोल द्वारा बदला जाता है उन फलोंपर किसी प्रकारका पेट्रोलका बुरा प्रभाव नहीं पड़ता और उनके स्वादमें भी किसी प्रकारका अन्तर नहीं होता है।

---

## पुष्ट दांत उत्पन्न करनेके साधन

दांतों पर भोजनका प्रभाव बहुत पड़ता है। बच्चोंके दांतोंका बढ़ना माताके भोजन पर ही निर्भर है यदि उसके भोजनमें खनिज पदार्थों तथा विटेमाइन्स vitamines की न्यूनता हुई तो बच्चे के दांत ठीक प्रकार न बन सकेंगे। बारह वर्षकी अवस्था तक अस्थायी दांतोंमें रुचक (दांतोंकी सफेदी) का बनना समाप्त हो जाता है। जन्म-

से उस समय तक एक निश्चित परिमाणसे बराबर बढ़ती रहती है। बच्चोंके मुखका भीतरी आवरण ( श्लेष्मिक कला ) बहुत कोमल होता है और थोड़ी क्षति पहुँचनेसे उसमें रोग उत्पन्न होने का डर रहता है; अतएव दांत विहीन मुखको कभी स्वच्छ न करना चाहिये। उष्ण भोजन भी क्षति पहुँचाता है। केवल दांतोंको स्वच्छ रखनेके विचारसे भांति भांतिका भोजन अत्यन्त आवश्यक है। मोटे झोटे भोजन करनेवालोंके दांत जो कभी ब्रुशका प्रयोग नहीं करते अधिक पुष्ट होते हैं। दांतों और मसूढ़ेके बीचमें ही पहले पहल सड़न पैदा होती है। यदि पहले ही दाँत हों और उनमें सड़न पैदा हो तो उन्हें निकलवा देना चाहिये, बच्चोंके दांत पर पाठशालामें पहुँचनेकी अवस्थासे पूर्व विशेष ध्यान देना चाहिये; क्योंकि इसी समय स्थायी दांत उत्पन्न होते हैं; दांतोंमें यथोचित उन्नति प्राप्त करनेके लिए भोजनमें इन वस्तुओंका होना आवश्यक है।

१—पर्याप्त मात्रामें कालसियम और स्फुर।

२—विटेमाइन्सकी अधिकता। मनुष्यके सौभाग्यसे ऐसे पदार्थ बहुत होते हैं जिनमें प्रायः विटेमाइन्स के साथ ऊपरकी दोनों वस्तुएं मिली होती हैं।

३—ऐसे भोजन जिनको अच्छी तरह चबाना पड़े।

४—राल ( थूक ) उत्पन्न करनेवाले पदार्थ।

शाक उबालनेके पश्चात् जो जल बच रहता है उसमें बहुत से लवण पदार्थ घुले रहते हैं उसे फेंकना न चाहिये। भोजनके पदार्थोंमें ही मिला कर खाना चाहिये। गेहूंकी मोटी रोटी खानी चाहिये। चीनीके स्थान पर मधु और गुड़ का ही प्रयोग करना चाहिये। भोजनके पदार्थोंसे जितना ही अधिक लाला उत्पन्न हो उतना ही अच्छा है। सूखी रोटीसे अधिक लाला उत्पन्न होता है। जब फल और शाक खा लेते हैं तब भी लालाका बहना बन्द नहीं होता।

—जगपति चतुर्वेदी

---

## सुहागा ( Borax )

[ ले०—कविराज श्री प्रताप सिंहजी ]

सुहागा नेपालसे अधिक मात्रामें इस प्रान्तमें आता है। यह नमककी पपड़ीके समान श्वेत, गन्धरहित क्षारीय द्रव्य होता है। इसका एक भाग २५ भाग शीतल जलमें घुल जाता है। यदि इसको प्रकाशहीन दीपककी लौपर जलाया जाय तो लौका रंग पीला पड़ जाता है।

इसके साथ खनिजाम्ल ( Mineral acids ), धातुओंके क्षार (Matallic salts), बबूलके गोन्द्का चूर्ण और कोकेन आदि वस्तुएं मिलानेसे यह तलछटके रूपमें नीचे बैठ जाता है।

प्रभाव ( Action )—इसका प्रभाव पचन निवारक ( Antiseptic ), रजः प्रवर्त्तक ( Emmenagogue ) और मूत्रल ( Diuretic ) होता है।

मात्रा—इसकी मात्रा दोसे दस रत्ती तक है। बोरिक एसिड भी सुहागेकी ही बनती है; बोरिक एसिड और सुहागा औषधिके रूपमें प्रयोग किये जाते हैं।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—यह शरीरके ऊपर लगानेसे पचन निवारक, पूयनाशक और संक्रम निवारक प्रभाव करता है। स्थानीय कृमियोंको भी मारता है। कुछ मनुष्यों के चर्म पर यह विशेष प्रभाव करता है, जिससे कष्टदायक विसर्प ( Herpes ) उत्पन्न हो जाता है।

महा श्रोत (Gastro-intestinal tract)—कुछ लेखकोंका मत है कि यह लालाके श्वेतसार परिवर्त्तक गुणको कम करता है; और कुछ लेखकोंकी सम्मति इसके विपरीत है। इस मत भेदके अति-

रिक्त यह निश्चित है कि यह आमाशयिक (Gastric) और क्लोम ( Pancreatic ) रसोंको कुछ उत्तेजित करता है।

यह बड़ी मात्रामें उक्त क्रियाओंको अवसन्न कर महास्रोतमें प्रदाह उत्पन्न करता है।

मूत्र प्रणाली (Urinary tract)—बोरिक एसिड् शीघ्र ही मूत्र द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है; और इस प्रकार मूत्र प्रणाली पर इसका विशेष प्रभाव होने के कारण यूरिया ( Urea ) और जल, अधिक मात्रामें शरीरसे बाहर निकलते हैं। अल्प मात्राके प्रयोगसे मूत्रमें अम्लता ( Acidity ) बढ़ जाती है और दीर्घ मात्रामें यह घट जाती है। कुछ मात्राओंके खानेसे ही यह दुर्गन्ध युक्त क्षारीय मूत्रको निर्मल और शुद्ध कर देता है। यह मल स्वेद और लालाके द्वारा भी शरीरसे बाहर निकलता है।

वात संस्थान ( Nervous system )—सुहागा और बोरिक एसिड दोनों वातसंस्थान पर अवसादक ( Sedative ) प्रभाव करते हैं।

जननेन्द्रिय ( Generative organs )—सुहागा ऋतुस्रावको बढ़ाता है और गर्भाशयको भी संकुचित करता है; इस कारण इसको रजः प्रवर्त्तक, और गर्भाशय संकोचक, ( Ecbolic ) मानते हैं।

विष लक्षण—शरीरमें प्रवेश होनेके अनन्तर यह दुर्बलता, चर्मपर रूक्षता, उतक्लेद (Nausea) वमन अग्निमान्द्य, श्लेष्म धरा कलाका शोथ, विसर्प, क्षारमेह (Albumen in the urine) आदि विष लक्षण उत्पन्न करता है।

चिकित्सा—इसकी चिकित्सा यह है कि स्नेह पान और दूधका विशेष सेवन करावे। इसी प्रकार लक्षणानुसार चिकित्सा करें।

---

## मिट्टीके तेलकी वर्षा

अमेरिका और रशियामें तेल निकालनेके लिए ट्यूबवेल्स बनाये जाते हैं। जैसे ट्यूबवेलसमें से पानी आसानी से निकाल सकते हैं उसी प्रकार इनमेंसे तेल निकाला जा सकता है। किन्तु कभी कभी दुर्घटना भी हो जाती है। ऐसा तभी होता है जब बर्मा छेद करते करते एक ऐसी तहको छेद देता है जिसके नीचे मिट्टीके तेलकी अनन्तराशि बड़े भारी दबावके नीचे भरी रहती है। ऊपरी दबावके हटते ही यह तेल बड़े वेगसे निकल भागनेका प्रयत्न करता है। ऐसी दुर्घटनाओंमें जितना तेल निकल निकल कर खराब हो चुका है, मिट्टीमें मिल चुका है या पानीमें मिल कर बह चुका है, उसका अनुमान करना कठिन है। ऐसी एक दुर्घटनाका संक्षिप्त विवरण हम देते हैं। सं० १९४० वि० में बाकू प्रांतान्तर्गत डुजवा स्थान पर एक ट्यूबवेल खोदा जा रहा था। तेल और गैस सहसा असीम शक्तिसे ट्यूबमें से निकलने लगे। छेद करनेके यन्त्र जिनका भार कई सौ मन था उड़ कर बहुत दूर जा पड़े। इन्हीं यन्त्रोंकी चोट खा कर डैरिक भी तहस नहस हो गया। यह तेलका फव्वारा १८ इञ्च व्यासका था और ३०० फुट ऊँचाई तक जा कर बौछारके रूपमें चारो ओर गिरता था। यह फव्वारा तीन महीने तक रात दिन चलता रहा। लोग बाग इसे दूरसे देखते थे। यह एक बड़े भारी गुम्बद सा दिखाई पड़ता था। जब हवा वेगसे चलती थी तो तेलकी फौहारें कोसों तक पहुँचतीं थीं। ट्यूबवेल खोदने वाले इञ्जिनियर इस दुर्घटनाके लिए तैयार न थे। लाखों रुपयेका तेल उनकी आँखोंके सामने खराब हो गया। आस पासमें तेलके तालाब, नाले और छोटी छोटी नदियां बन गई थीं। इन नदी नालोंका तेल उसी प्रान्तस्थ एक बड़े नदमें गिर कर समुद्र तक पहुँच जाता था। अनुमान लगाया गया है कि एक करोड़ ४० लाख मन तेल इस प्रकार नष्ट हो गया। प्रति दिन अनुमानतः १ लाख ६५ हजार रु० का तेल खराब हो जाता था।

---

# सूर्य-सिद्धान्त

( गतांकसे सम्बद्ध )

४२वें श्लोकके उत्तरार्द्धमें यह बतलाया गया है कि शीघ्रफलकी आवश्यकता केवल मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि पांच ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जानने के लिए पड़ती है, सूर्य और चन्द्रमाके लिए नहीं। सूर्य और चन्द्रमाके स्पष्ट स्थान तो केवल मंद फलके संस्कारसे आ जाते हैं जैसा कि अगले (४३वें) श्लोकमें बतलाया गया है।

यदि ३९-४१ श्लोकोंको बीज गणितके अनुसार एक ही समीकरणसे प्रकट करना चाहें तो उसका रूप यह होगाः—

चलकर्ण =

$$\left\{ \left( ३४३८ \pm \frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{कोटिज्या}}{२१६००} \right)^{२} + \left( \frac{\text{शीघ्र स्फुट परिधि} \times \text{भुजज्या}}{२१६००} \right)^{२} \right\}^{\frac{१}{२}}$$

इसमें शीघ्रकेन्द्रकी ज्या और कोटिज्या भारतीय रीतिसे निकाल कर उपर्युक्त ग्र..के 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' के लिए लिखना चाहिये। शीघ्र स्फुट परिधि ३८वें श्लोकके अनुसार जानना चाहिये और इसे कलाओंमें लिखना चाहिये।

मान्दं कमकमर्केन्दो भौमादीनामथोच्यते।
शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात ॥४३॥

अनुवाद—(४३) सूर्य और चन्द्रमा मन्दफलके केवल एक संस्कारसे स्पष्ट होते हैं; परन्तु मंगल आदि पांच ग्रहोंमें शीघ्रफलका एक संस्कार करनेके पीछे मंदफलके दो बार संस्कार करने पड़ते हैं जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्रफलका संस्कार करना होता है।

विज्ञान भाष्य—हमारे प्राचीन आचार्यों ने चंद्रमाका स्पष्ट स्थान जाननेके लिए केवल मंदफलका संस्कार करनेकी रीति बतायी है। परन्तु इससे वास्तवमें चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान नहीं निकलता। चन्द्रमा इतना छोटा पिंड है कि इस पर सभी ग्रहोंका प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण इसकी गतिमें बहुत सी भिन्नताएं उत्पन्न हो जाती हैं। इस लिए आजकल छोटे छोटे कोई ४० संस्कार करनेसे चन्द्रमाका स्पष्ट स्थान शुद्धता पूर्वक जाना जा सकता है। इन चालीस संस्कारोंमें पांच संस्कार बहुत बड़े हैं जो अवश्य करने चाहियें। इनकी चर्चा संक्षेपमें आगे उस स्थान परकी जायगी जहां आजकलकी पद्धतिसे ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जाननेकी रीति बतलायी जायगी।

मंगल आदि पांच ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जाननेके लिए जिन चार संस्कारोंकी इस श्लोकमें चर्चा है उनकी रीति अगले ४४वें श्लोकमें बतलायी गयी है।

मध्ये शीघ्रफलस्यार्धं मान्दमर्धफलं तथा।
मध्यग्रहे मन्दफलं सकलं शैघ्र्यमेव च ॥४४॥

अनुवाद—(४४) मध्यम ग्रहको शीघ्रोच्चमेंसे घटा कर शीघ्रकेन्द्र और इससे शीघ्रफल निकाले। इस शीघ्रफलका आधा मध्यम ग्रहमें जोड़े ( यदि शीघ्रकेन्द्र ६ राशिसे कम हो ) और घटावे ( यदि शीघ्रकेन्द्र ६ राशिसे अधिक हो ); जोड़ने या घटानेसे जो आता है वही प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह कहलाता है। इस प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रहको मन्दोच्चमेंसे घटावे, शेषको मन्दकेन्द्र समझ कर, मंदफल बनावे। इस मंदफलका आधा, प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रहमें जोड़ने या घटानेसे जो आता है वही द्वितीय संस्कार युक्त मध्यम ग्रह है। दूसरे संस्कार युक्त मध्यम ग्रहको मन्दोच्चमेंसे फिर घटावे और शेषको दूसरा मन्दकेन्द्र मान कर दूसरा मंदफल बनावे। इस मंदफलको मध्यम ग्रहमें जोड़ने या घटानेसे जो आता है वही मन्द स्पष्ट ग्रह कहलाता है। मन्द स्पष्ट ग्रहको शीघ्रोच्चमेंसे घटाकर शीघ्रकेन्द्र और शीघ्रफल बनावे और इस शीघ्रफलको मन्द स्पष्ट ग्रहमें जोड़ने या घटानेसे जो कुछ आवे वही स्पष्ट ग्रह कहलाता है।

विज्ञान भाष्य—इस नियमको बीज गणितकी रीतिसे यों लिख सकते हैं:—

शीघ्रोच्च – मध्यम ग्रह = शीघ्र केन्द्र, जिसका शीघ्रफल पहला शीघ्रफल कहलाता है।

पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{शीघ्रफल (पहला)}}{२}$$

मन्दोच्च – पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = संस्कृत मन्द केन्द्र, जिसका मंदफल प्रथम संस्कृत मंदफल है।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह =

पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$\pm \frac{\text{मंदफल (प्रथम संस्कृत)}}{२}$$

$$= \text{मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{(पहला) शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{(पहला) मंदफल}}{२}$$

मन्दोच्च – दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = दूसरा संस्कृत मन्दकेन्द्र जिसका मंदफल दूसरा संस्कृत मन्दफल है।

मंद स्पष्ट ग्रह = मध्यम ग्रह ± दूसरा (संस्कृत) मंदफल।

शीघ्रोच्च – मंद स्पष्ट ग्रह = दूसरा शीघ्रकेन्द्र जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

स्पष्ट ग्रह = मंद स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल
= मध्यम ग्रह ± दूसरा मंदफल
± दूसरा शीघ्रफल

यह तो सूर्य सिद्धान्तके शब्दोंमें स्पष्ट ग्रह जाननेकी रीति हुई। परन्तु व्यवहारमें इससे बहुत झंझट करना पड़ता है, इसलिए इसीके सहारे सरल नियम इस प्रकार बनाया जा सकता है।

नीचे लिखी परिभाषाएं याद रखनी चाहिये:—

१ ली परिभाषा मंदोच्च – मध्यमग्रह = मंदकेन्द्र
२ री " शीघ्रोच्च – मध्यमग्रह = शीघ्रकेन्द्र

शीघ्रकेन्द्रसे जो शीघ्रफल निकलता है वह पहला शीघ्रफल है।......(१)

प्रथम संस्कार युक्त मध्यम ग्रह = मध्यम ग्रह

$$\pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \quad ......(२)$$

प्रथम संस्कृत मंद केन्द्र

= मन्दोच्च – प्रथम संस्कार युक्त मध्यमग्रह

$$= (\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यमग्रह}) \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}$$

$$= (\text{मन्दोच्च} - \text{मध्यमग्रह}) \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}$$

$$= \text{मंदकेन्द्र} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \quad ..............(३)$$

इससे प्रकट है कि प्रथम संस्कृत मन्दकेन्द्र जाननेके लिए समीकरण (२) की आवश्यकता नहीं, वरन् मन्दकेन्द्रमें पहले शीघ्रफलका आधा चिन्ह उलट कर (बीज गणितके अनुसार*) जोड़ देनेसे ही काम चल जायगा। इससे जो मंदफल बनाया जायगा वही पहला मंदफल या प्रथम संस्कृत मंदफल होगा।

दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{पहला संस्कार युक्त मध्यम ग्रह} \pm \frac{\text{पहला मंदफल}}{२}$$

= मध्यम ग्रह

$$\pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मंदफल}}{२} \quad ......(४)$$

दूसरा संस्कृत मंद केन्द्र

= मन्दोच्च – दूसरा संस्कार युक्त मध्यम ग्रह

$$= \text{मन्दोच्च} - \left(\text{मध्यमग्रह} \pm \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \pm \frac{\text{पहला मंदफल}}{२}\right)$$

*बीज गणितके अनुसार जोड़नेका अर्थ यह है कि यदि एक संख्या धनात्मक हो और दूसरी ऋणात्मक तो ऋणात्मक संख्याको धनात्मक संख्यासे घटाने पर जो कुछ आता है वह भी ऋणात्मक और धनात्मक संख्याओंका योगफल ही कहलाता है, यद्यपि अंकगणितमें इस योगफलको दोनोंका अंतर ही कहेंगे।

= (मन्दोच्च − मध्यमग्रह)

$$\mp \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२} \mp \frac{\text{पहला मन्दफल}}{२}$$

$$= (\text{मंद केन्द्र} \mp \frac{\text{पहला शीघ्रफल}}{२}) \mp \frac{\text{पहला मन्दफल}}{२}$$

$$= \text{प्रथम संस्कृत मंद केन्द्र} \mp \frac{\text{पहला मन्दफल}}{२} \cdots\cdots (५)$$

जिससे सिद्ध हुआ कि दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र जाननेके लिए प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्रमें पहले मंदफलका आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (४) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे संस्कृत मंदकेन्द्रसे जो मंदफल बनाया जायगा वही दूसरा मंदफल है।

मंद स्पष्ट ग्रह = मध्यमग्रह ± दूसरा मंदफल ······(६)

दूसरा शीघ्रकेन्द्र = शीघ्रोच्च − मंद स्पष्ट ग्रह

= शीघ्रोच्च − (मध्यम ग्रह ± दूसरा मंदफल)

= (शीघ्रोच्च − मध्यम ग्रह) ± दूसरा मंदफल

= शीघ्रकेन्द्र ± दूसरा मंदफल ···(७)

इससे सिद्ध हुआ कि दूसरा शीघ्रकेन्द्र जाननेके लिए, शीघ्रकेन्द्रमें दूसरा मंदफल चिह्न उलट कर जोड़ दो। इसलिए समीकरण (६) की भी आवश्यकता नहीं है। दूसरे शीघ्रकेन्द्रसे जो शीघफल बनेगा वही दूसरा शीघ्रफल है।

स्पष्ट ग्रह = मंद स्पष्ट ग्रह ± दूसरा शीघ्रफल

= मध्यम ग्रह ± दूसरा मंदफल ± दूसरा शीघ्रफल ······(८)

जिससे सिद्ध होता है कि मध्यम ग्रहमें दूसरे मंदफलको और दूसरे शीघ्रफलको बीज गणितके अनुसार जोड़ दो अर्थात् जो धनात्मक हो उसको जोड़ो और जो ऋणात्मक हो उसको घटाओ। दूसरा मंदफल और दूसरा शीघ्रफल समीकरण (५) और (७) से जानना चाहिए।

संक्षेपमें नियम यह हुआ:—

(१) शीघ्रफलका आधा चिह्न उलट कर मंदकेन्द्रमें (बीज गणितके अनुसार) जोड़ दो तो प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्र आ जावेगा। इसीका मन्दफल प्रथम संस्कृत मन्दफल या पहला मंदफल है।

(२) प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्रमें पहले मंदफलका आधा चिह्न उलट कर जोड़ दो तो दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र आ जावेगा। इसीका मंदफल दूसरा संस्कृत मंदफल या दूसरा मन्दफल है।

(३) शीघ्रकेन्द्रमें दूसरा मंदफल चिह्न उलट कर जोड़ दो तो संस्कृत शीघ्रकेन्द्र आवेगा, जिसका शीघ्रफल दूसरा शीघ्रफल है।

(४) मध्यम ग्रहमें दूसरा मंदफल और दूसरा शीघ्रफल बिना चिह्न उलटे जोड़ दो तो स्पष्ट ग्रह आ जावेगा।

सूर्य सिद्धान्तमें स्पष्ट ग्रह जाननेका यही नियम है। अन्य आचार्यों ने इससे कुछ भिन्न रीतिसे काम लिया है, जिनकी तुलना करनेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। ऐसे पेंचदार नियम केवल इसलिए बनाये गये थे कि स्पष्ट ग्रहका स्थान ठीक ठीक ज्ञात हो जाय। इसलिए जिस जिस नवीन संस्कारसे स्पष्ट ग्रहका स्थान प्रायः ठीक ठीक जाना जा सकता था वह सब काममें लाये जाते थे। इसी लिए आचार्योंके मतोंमें भिन्नता है। केवल इतने ही नियमोंसे यथार्थ स्थान नहीं जाना जा सकता है, इसकी परीक्षा आजकल कोई भी कर सकता है; इसलिए मेरा विचार है कि जिन जिन संस्कारोंसे यह बात ठीक हो सकती है उनका प्रयोग करना अत्यन्त आवश्यक है। इसी दृष्टिसे मैं उन नवीन रीतियोंको भी विज्ञान भाष्यमें लिखूंगा जिनसे वेध और गणितमें समानता आ सकती है। परन्तु पहले कुछ उदाहरण दे देना चाहिये, जिनसे यह सहज ही जाना जा सके कि इन नियमोंसे स्पष्ट ग्रह कैसे जाना जा सकता है। इसके लिए मैं सूर्य, बुध और गुरु तीन ग्रहोंके उदाहरण दूंगा।

उदाहरण १—१६७६ वि०की वसंत पंचमीकी अर्द्ध रात्रिको उज्जैनमें सूर्य, बुध और गुरुके स्पष्ट स्थान क्या थे ?

पहले इनके मन्दोच्चके स्थान जानना है—

सृष्टिके आरंभसे १६७६ वि०की मेष संक्रान्ति तक १,६५,५८,८५,०२३ सौर वर्ष बीते (देखो विज्ञान भाग १६ पृ० २६१)। एक कल्पमें सूर्यके मन्दोच्चके ३८७ भगण होते हैं; इसलिए १६७६ वि० की मेष संक्राति तक

$$\frac{१,६५,५८,८५,०२३ \times ४३}{४८,००,००,०००}$$

$$= \frac{८४१०\cdot३०५५६८६}{४८}$$

= १७५ भगण २ राशि १७ अंश १७′३१″१७०३

अर्थात् १६७६ वि०की मेष संक्रान्तिके दिन सूर्यके मन्दोच्चका स्थान था $२^{रा}१७^{०}१७'३१''\cdot१७०३$ मन्दोच्चकी गति इतनी कम (सूर्य सिद्धान्तके अनुसार) होती है कि मन्दोच्चका यह स्थान कई वर्ष तक यही माना जा सकता है।

इसी तरह बुधके मन्दोच्चका स्थान है

$$= \frac{१,६५,५८,८५,०२३ \times ३६८}{४३२ \times १०^{७}} \text{ भगण}$$

$$= \frac{४४६८\cdot५३५५५२६}{२७} \text{ भगण}$$

$= १६६^{भ}७^{रा}१०^{०}२८'२६\cdot''५४$

∴ १६७६ वि०में बुधके मन्दोच्चका स्थान $७^{रा}१०^{०}२८'२६\cdot''५४$ है।

इस समय गुरुके मन्दोच्चका स्थान

$$= \frac{१,६५,५८,८५,०२३ \times ६००}{४३२ \times १०^{७}}$$

$$= \frac{१६५५८\cdot८५०२३}{४८}$$

$= ४०७^{भ}५\ २१^{०}२२'३६\cdot''२१$

∴ १६७६ वि०में गुरुके मन्दोच्चका स्थान $५^{रा}२१^{०}२२'३६\cdot''२१$ है।

इन ग्रहोंके मध्यम स्थान जाननेके लिए कलियुगके आदिसे अहर्गण निकाल कर गणना करनी चाहिये, जैसा कि मध्यमाधिकारके ५६ वें श्लोकमें बतलाया गया है।

कलियुगके आदिसे १६७६ वि०की वसंत पंचमीकी अर्द्ध रात्रि तकके अहर्गण (विज्ञान भाग १६ पृष्ठ २६१-२६२ के अनुसार) निकाला तो १८,३४,६७७ हुए।

जब एक महायुगीय सावन दिनमें अर्थात् १५,७७,६१७,८२८ सावन दिनमें सूर्यके ४३,२०,००० भगण होते हैं तब १८,३४,६७७ सावन दिनमें भगण

$$= \frac{१८,३४,६७७ \times ४३२ \times १०^{४}}{१५७७६१७८२८}$$

$= ५०२३^{भ}६^{रा}८^{०}१२'६''$

∴ सूर्यका मध्यम स्थान $= ६^{रा}८^{०}१२'६''$

इसी तरह गुरुका मध्यम स्थान

$$= \frac{१८३४६७७ \times ३६४२२०}{१५७७६१७८२८}$$

$= ४२३^{भ}६^{रा}१६^{०}५२'३७''$

$= ६^{रा}१६^{०}५२'३७''$

और बुधके शीघ्रोच्चका स्थान

$$= \frac{१८,३४,६७७ \times १७,६,३७,०६०}{१,५७,७६,१७,८२८}$$

$= १०८५६^{भ}२^{रा}६^{०}२६'१७''$

$= २^{रा}६^{०}२६'१७''$

अब पहले सूर्यका स्पष्ट स्थान जानना चाहियेः—इस अध्यायके श्लोक २६ के अनुसार, सूर्यका मन्दकेन्द्र=सूर्यके मन्दोच्चका स्थान — सूर्यका मध्यम स्थान

$= २^{रा}१७^{०}१७'३१'' - ६^{रा}८^{०}१२'६''$

$= ५^{रा}६^{०}५'२२''$

$= १५६^{०}५'२२''$

यहां २ राशि ६ राशिसे कम है इसलिए २ में १२ राशि (१ भगण) जोड़कर योगफलमें से ६ राशि घटायी गयी हैं। ऐसी ही क्रिया जहां कहीं आवश्यकता पड़े करनी चाहिये।

मन्दकेन्द्र ३ राशिसे अधिक और ६ राशिसे कम है इसलिए दूसरे पदमें है और गत भाग ६६°५'२२" तथा गम्य भाग (९०° मेंसे गत भाग घटानेपर) २०°५४'३८" है। इसलिए ३०वें श्लोकके अनुसार गम्यकी ज्या अर्थात् २०°५४'३८" की ज्या भुजज्या होगी और ६६°५'२२" की ज्या कोटिज्या होगी।

२०°५४'३८" = २०°५५' स्वल्पान्तरसे
= २० × ६० + ५५ कला
= १२५५'

३१वें श्लोकके अनुसार १२५५' को २२५ से भाग देनेपर गतपिंड ५ और ६ठें पिंडमें १३०' आया।

५वें पिंडकी ज्या = ११०५'
६ठें " " = १३१५'
दोनों ज्याओंका अन्तर २१०'

अब २२५ : १३०' :: २१० : अभीष्ट

∴ अभीष्ट ज्या का अन्तर = $\frac{१३० \times २१०}{२२५}$

= $\frac{३६४}{३}$

= १२१'

इसलिए ३२ वें श्लोकके अनुसार जब १२१' का ५ वें पिंड की ज्या अर्थात् ११०५' में जोड़ा तो आया १२२६'; यही इष्ट भुजज्या है।

३४ वें श्लोकके अनुसार सूर्यकी मन्द परिधि समपदके अन्तमें १४° और विषमपदके अंतमें २०' कम होता है, इसलिए जब भुजज्या १२२५' होगी तब ३८वें श्लोकके अनुसार मंद परिधि $\frac{२०' \times १२२६'}{३४३८'}$ अर्थात् स्वल्पान्तरसे ७' कम होगी,

∴ स्फुट मन्द परिधि = १४°—७'
= १४ × ६० – ७ कला
= ८३३'

इसलिए ३९ वें श्लोकके अनुसार

भुजफल = $\frac{८३३ \times १२२६}{२१६००}$ कला

= $\frac{१०२१२५८}{२१६००}$

= ४७' स्वल्पान्तर से

इसी भुजफलको मन्दफल मान लिया जाता है। यदि और सूक्ष्म गणना करनी होतो ४० – ४२ श्लोकोंकी क्रिया भी करनी चाहिये जैसा कि ३९ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यके समीकरण (३) में दिखलाया गया है। परन्तु ऐसा करने में गणित बहुत करना पड़ता है और अन्तर बहुत कम होता है, इसलिए मन्दफलके लिए ४० – ४२ श्लोकोंकी क्रिया करनेकी आवश्यकता नहीं है।

यही मन्दफल सूर्यके मध्यम स्थान में जोड़ना चाहिये क्योंकि मंदकेन्द्र पहले दो पदोंमें है, जैसा कि ५वें और आगे आनेवाले ४५ वें श्लोकमें बतलाया गया है। इसलिए सूर्यका स्पष्टस्थान उज्जैनमें वसंत पंचमीकी मध्यम अर्द्धरात्रिको ९रा ८° १२' ९" + ४७' अर्थात् ९रा ८° ५९' ९" होगा।

गुरुका स्पष्टस्थान जानने के लिए—

गुरुका मन्दकेन्द्र = गुरुका मन्दोच्च – गुरुका मध्यम स्थान
= ५रा २१° २२' ३६" – ६रा १९° ५२' ३७"
= ११रा १° ३०' स्वल्पान्तरसे

गुरुका शीघ्रकेन्द्र = गुरुका शीघ्रोच्च – गुरुका मध्यम स्थान
= सूर्यका मध्यम स्थान – गुरुका मध्यम स्थान
= ९रा ८° १२' ९" – ६रा १९° ५२'३७"
= २रा १८° १९' ३२"
= २रा १८° २०' स्वल्पान्तरसे
= ७८° २०'

शीघ्रकेन्द्र ३ राशिसे कम है; इसलिए विषमपदमें है; इसलिए ७८° २०' की ज्या शीघ्र भुजज्या और ११° ४०' की ज्या शीघ्र कोटिज्या हुई।

$७८^\circ २०' = ७८ \times ६० + २०$ कला

$= ४७००$ कला

$\frac{४७००}{२२५} = २०$ पिंड $+ २००$ कला

२० वें पिंड की ज्या = ३३२१'

२१ वें पिंड की ज्या = ३३७२'

दोनोंकी ज्याओंका अन्तर = ५१'

२२५ : २०० :: ५१ : अभीष्ट अन्तर

$\therefore$ अभीष्ट अन्तर $= \frac{२०० \times ५१}{२२५} = \frac{१३६}{३} = ४५'$

$\therefore$ शीघ्र भुजज्या $= ३३२१' + ४५' = ३३६६'$

$११^\circ ४० = ११ \times ६० \times ४० = ७००'$

$\frac{७००}{२२५} = ३$ पिंड $+ २५'$

३ के पिंडकी ज्या = ६७१'

४ थे पिंडकी ज्या = ८९०'

दोनोंका अंतर = २१६

२२५ : २५ :: २१६ : अभीष्ट अंतर

$\therefore$ अभीष्ट अंतर $= \frac{२५ \times २१६}{२२५} = २४'$

$\therefore$ शीघ्र कोटिज्या $= ६७१' + २४' = ६९५'$

गुरुकी शीघ्र परिधि विषम पदान्तमें ७२° और सम पदान्त में ७०° और इसलिए दोनों का अंतर २° है और ३८ वें श्लोक के अनुसार

स्फुट शीघ्र परिधि $= ७०^\circ + \frac{२^\circ \times ३३१६}{३४३८}$

$= ७०^\circ + २^\circ$ स्वल्पान्तरसे

$= ७२^\circ$

$\therefore$ शीघ्र भुजफल $= \frac{७२ \times ३३६६}{३६०}$ [श्लोक ३९।

$= ६७३'$

और शीघ्र कोटिफल $= \frac{७२ \times ६९५}{३६०}$

$= १३९'$

शीघ्र केन्द्र पहले पदमें है इसलिए शीघ्र कोटिफल ४० वें श्लोकके अनुसार त्रिज्या में जोड़ना चाहिये, इसलिए शीघ्रकर्ण

$= \sqrt{(३४३८ + १३९)^२ + ६७३^२}$ [श्लोक ४१ उत्तरार्ध

$= \sqrt{३५७७^२ + ६७३^२}$

$= \sqrt{१,२७,९४,९२९ + ४,५२,९२९}$

$= \sqrt{१,३२,४७,८५८}$

$= ३६४०'$ स्वल्पान्तरसे

शीघ्रफल $= \frac{३४३८ \times ६७३}{३६४०}$ कला [श्लोक ४१ का उत्तरार्द्ध, ४२का पूर्वार्द्ध ]

$= ६३६$ कला

यह पहला शीघ्रफल हुआ। यह धनात्मक है, क्योंकि शीघ्र केन्द्र पहले पदमें हैं। यदि सूर्य सिद्धान्त के अनुसार आगे की क्रियाएं करनी हों तो ४४ वें श्लोकके अनुवादमें जो कुछ लिखा गया है उसके अनुसार करना चाहिये। परन्तु यह बहुत लम्बी रीति है इसलिए इस श्लोकके विज्ञान भाष्यके अंतमें जो संक्षिप्त नियम लिखे गये हैं उन्हीं के अनुसार क्रिया करता हूँ:—

नियम (१) के अनुसार $+६३६'$ का आधा, चिह्न उलटने से $-३१८'$ अर्थात् $-५^\circ १८'$ हुआ। इसको गुरुके मंदकेन्द्र $११^{रा} १^\circ ३०'$ में बीज गणित के अनुसार जोड़ा तो आया $१०^{रा} २६^\circ १२'$। यही प्रथम संस्कृत मंदकेन्द्र हुआ। इसका मन्द फल प्रथम संस्कृत मंदफल हुआ।

$१०^{रा} २६^\circ १२'$ नव राशिसे अधिक है इसलिए चौथे पदमें है, जिसका $१^{रा} २६^\circ १२'$ अर्थात् $५६^\circ १२'$ गत और $३३^\circ ४८'$ गम्य है।

$३३^\circ ४८' = ३३ \times ६० + ४८$ कला

$= २०२८$ कला

$= ९$ पिंड $+ ६'$

९ वें पिंडकी ज्या = १९१०'

१० वें " " = २०९३'

$\therefore$ दोनों ज्याओंका अंतर १८३'

२२५ : ३' :: १८३' : अभीष्ट अंतर

∴ अभीष्ट अंतर = $\frac{३ \times १८३}{२२५}$ = २'

∴ मंद भुजज्या = १९१०' + २' = १९१२'

बृहस्पति की मन्द परिधियों का अंतर १° है इसलिये ३८ वें श्लोकके अनुसार,

मन्द स्फुट परिधि = ३३° − $\frac{१° \times १९१२}{३४३८}$

= ३३° − ३३'

= १९४७'

∴ प्रथम संस्कृत मंदफल = $\frac{१९४७ \times १९१२}{२१६००}$

(श्लोक ३९)

= १७२'

यह ऋणात्मक है, क्योंकि मंदकेन्द्र चौथे पदमें है; इसका आधा, चिह्न उलटनेसे +८६' होगा। नियम (२) के अनुसार

दूसरा संस्कृत मंदकेन्द्र = १०रा २६°१२' + ८६'

= १०रा२७° ३८'

इसका मंदफल दूसरा संस्कृत मंदफल होगा।

अब १०रा२७°३८' चौथे पदमें है, जिसका १रा २७°३८' गत और १रा२°२२' गम्य है।

१रा२°२२' = ३२°२२' = ३२ × ६० + २२ कला

= १९४२' = ८ पिंड + १४२'

८ वें पिंडकी ज्या = १७१९

९ वें पिंडकी ज्या = १९१०

अंतर १९१'

२२५' : १४२' :: १९१ : अभीष्ट अंतर

∴ अभीष्ट अंतर = $\frac{१४२ \times १९१}{२२५}$ = १२१'

∴ मंद भुजज्या = १७१९ + १२१ = १८४०'

∴ मंद स्फुट परिधि = ३३° − $\frac{१° \times १८४०}{३४३८}$

= ३३° − ३२'

= १९४८'

∴ दूसरा संस्कृत मंदफल = $\frac{१९४८ \times १८४०}{२१६००}$

= १६६' = २°४६' ... (१)

यह भी ऋणात्मक है। इसलिए इसका चिह्न उलट कर, नियम (३) के अनुसार शीघ्र केन्द्रमें जोड़ देनेसे संस्कृत शीघ्रकेन्द्र आवेगा।

इसलिए संस्कृत शीघ्रकेन्द्र = ७८°२०' + २°४६'

= ८१°६'

यह प्रथम पदमें है, इसलिए इसकी ज्या शीघ्र भुजज्या और ८°५४' की ज्या शीघ्र कोटिज्या होगी।

८१°६' = ८१ × ६० + ६ कला

= ४८६६ कला

= २१ पिंड १४१'

२१ वें पिंडकी ज्या = ३३७२'

२२ वें पिंडकी ज्या = ३४०९'

दोनोंका अंतर ३७'

२२५ : १४१ :: ३७ अभीष्ट अंतर

∴ अभीष्ट अंतर = $\frac{१४१ \times ३७}{२२५}$ = २३'

∴ शीघ्र भुजज्या = ३३७२' + २३'

= ३३९५'

८°५४' = ८ × ६० + ५४ कला

= ५३४ कला = २ पिंड ८४'

२रे पिंडकी ज्या = ४४९

३रे पिंडकी ज्या = ६७१

अंतर = २२२'

∴ २२५ : ८४ :: २२२ : अभीष्ट अन्तर

∴ अभीष्ट अन्तर = $\frac{८४ \times २२२}{२२५}$ = ८३'

∴ शीघ्रकोटिज्या = ४४९ + ८३'

= ५३२'

गुरुकी शीघ्रपरिधि विषम पदान्तमें ७२° है, इसलिए पहलेकी तरह इस बार भी स्फुट शीघ्र परिधि ७२° ही होगी।

शीघ्र भुजफल = $\frac{७२ \times ३३९५}{३६०}$ कला

$$= ६७९'$$

और शीघ्र कोटिफल $= \frac{७२ \times ५३२}{३६०}$

$$= १०६'$$

यह शीघ्रकोटिफल त्रिज्यामें जोड़ा जायगा। इसलिए, शीघ्रकर्ण $= \sqrt{(३४३८ + १०६)^२ + ६७९^२}$

$$= \sqrt{३५४४^२ + ६७९^२}$$

$$= ३६०८'$$

$\therefore$ दूसरा शीघ्रफल $= \frac{३४३८ \times ६७९}{३६०८}$ [श्लोक ४१,४२

$$= ६४७ \text{ कला}$$

$$= +१०^\circ ४७' \cdots\cdots\cdots (२)$$

$\therefore$ नियम (४) के अनुसार,

स्पष्ट गुरु = मध्यम गुरु + दूसरा मंदफल + दूसरा शीघ्रफल।

$$= ६^{रा} १९^\circ ५२' ४७'' - २^\circ ४६' + १०^\circ ४७'$$

$$= ६^{रा} २७^\circ ५३' ३७''$$

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि प्रत्येक ग्रहको स्पष्ट करनेके लिए दो बार शीघ्रफल और दो बार मन्दफल निकालना पड़ता है और प्रत्येकके लिए भुजज्या, कोटिज्या, स्फुट परिधि भुजफल, कोटिफल शीघ्रकर्ण तथा शीघ्रफल निकालना होता है। यदि शून्यसे ९०° तकके एक एक अंश या आधे आधे अंश की ज्या और कोटिज्या की सारिणी दी हुई होतो भुजज्या और कोटिज्या सारिणी देखकर जानी जा सकती है। यह सारिणी सब ग्रहोंके लिए काममें आ सकती है। इसी प्रकार प्रत्येक ग्रहके मन्दफल और शीघ्रफल की भी सारिणी बनायी जा सकती है जिससे स्पष्ट करने की लम्बी क्रिया बहुत संक्षिप्त हो जायगी और गुणा भाग करनेका भी झंझट मिट जायगा। व्यवहारमें ऐसा होता भी है। आजकल मकरंद सारिणी अधिक काममें आती है।

इसी प्रकार बुधका भी स्पष्ट स्थान जाना जा सकता है। मध्यम बुधका स्थान वही होता है, जो सूर्य का, शीघ्रोच्चका स्थान जानना होता है। और बातें सब उसी प्रकार करनी पड़ती हैं जैसी ग्रहके लिए की गयी हैं। उदाहरण देकर पुस्तकका आकार बढ़ानेकी कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

अजादि केन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्मणि।
धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृणमेव च ॥४५॥

अनुवाद—(४५) जब शीघ्रकेन्द्र या मन्दकेन्द्र ६ राशिसे कम होतो शीघ्रफल या मन्दफल धनात्मक होता है, इसलिए सब कामोंमें जोड़ा जाता है और जब शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र ६ राशिसे अधिक होता है तब घटाया जाता है।

विज्ञान भाष्य—अज या मेष पहली राशिका नाम है इस लिए अजादि केन्द्रका अर्थ है पहली राशिसे ६ राशि तकका केन्द्र और तुलादि केन्द्रका अर्थ है सातवीं राशिसे १२वीं राशि तकका केन्द्र; जैसा कि ४० वें श्लोकमें कर्कादि और मकरादिके लिए समझाया गया है। जोड़ने और घटानेका कारण ५ वें श्लोकके विज्ञान भाष्यमें तथा और कई स्थानोंमें बतलाया गया है (देखो चित्र १५)।

अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्तिर्विभाजिता।
भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ताः कार्या ग्रहेऽर्कवत् ॥४६॥

अनुवाद—(४६) सूर्यके भुजफल (मंदफल) को ग्रहकी दैनिक स्पष्टगतिसे गुणा करके गुणनफलको १२ राशिकी कलाओंसे अर्थात् २१६०० कलाओंसे भाग देनेपर जो आवे उसको ग्रहके स्पष्टमें जोड़ो (यदि सूर्यका मन्दफल धनात्मक हो) और घटाओ (यदि सूर्यका मंदफल ऋणात्मक हो) ऐसा करनेसे स्पष्ट अर्द्धरात्रि कालका ग्रह स्पष्ट होगा।

विज्ञानभाष्य—जिस समय मध्यम सूर्य याम्योत्तर पर आता है उस समय मध्यम मध्यान्ह और जिस समय स्पष्ट सूर्य याम्योत्तर पर आता है उस समय स्पष्ट मध्यान्ह होता है। इसी प्रकार जिस समय मध्यम सूर्य पातालमें (याम्योत्तर वृत्तके उस भागमें जो क्षितिजके नीचे होता है) होता है उस समय मध्यम अर्द्धरात्रि और जिस समय स्पष्ट सूर्य

पातालमें होता है उस समय स्पष्ट अर्द्धरात्रि होती है। इससे यह प्रकट है कि स्पष्ट सूर्य मध्यम सूर्यमे जितना पहले या पीछे यामोत्तर वृत या पाताल आवेगा उतना ही पहले या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी। परन्तु स्पष्ट और मध्यम सूर्यके अंतरको मंदफल कहते हैं; इसलिए जितने समयमें मंदफलके समान क्रान्तिवृत्तका खंड यामोत्तर उल्लंघन करेगा उतने ही समय आगे या पीछे स्पष्ट अर्द्धरात्रि होगी।

इतने समय में ग्रह जितना चलेगा उतना जानकर मध्यम अर्द्धरात्रि कालिक स्पष्ट ग्रहमें जोड़ने या घटाने से स्पष्ट अर्द्धरात्रि कालक स्पष्ट ग्रह होगा। सूक्ष्म गणना करनेके लिए पहले यह जानना चाहिये कि मंदफलके समान क्रान्तिवृतका खंड यामोत्तरवृतका उल्लंघन कितनी देरमें करेगा परन्तु ऐसा न करनेसे भी अशुद्धि बहुत कम होती है। इसलिए संक्षेपमें इतना ही करना बस है कि जितने समयमें पूरा भूचक्र यामोत्तर वृतका उल्लंघन करता है उतने समयमें ग्रह अपनी दैनिक गति के समान आगे बढ़ता है इसलिए जितने समयमें मंदफलके समान क्रान्तिवृत यामोत्तर वृत्तका उल्लंघन करता है उतने समयमें ग्रहकी गति क्या होगी।

इस सम्बन्धमें कुछ विशेष चर्चा आगेकी जब 'काल समीकरण, पर लिखा जायगा।

स्वमन्दभुक्ति संशुद्धा मध्यभुक्तिर्निशापतेः।
दोर्ज्यान्तरादिकं कृत्वा भुक्तावृणधनं भवेत् ॥४७॥
ग्रहभुक्तेः फलं कार्यं ग्रहवन्मन्द कर्मणी।
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्ति स्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुनः ॥४॥
स्वमन्द परिधिक्षुराणा भगणांशोद्धृता कलः।
कर्कादौतु धनं तत्र मकरादावृणं स्मृतम् ॥४६॥

अनुवाद—(४७) चन्द्रमाकी मध्यम दैनिक गतिसे इसके मंदोच्चकी दैनिक गति घटा कर आगे (४८-४६ श्लोकोंमें) बतलायी जाने वाली क्रियासे चन्द्रमाका मंद गत फल निकाल कर दैनिक मध्यम गतिमें घटानेया जोड़नेसे चन्द्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति निकलती है। (४८) अन्य ग्रहोंकी मध्यम दैनिक गति से ही मंदगतिफल जाननेकी क्रियाकी तरह जानना चाहिए जिसकी रीति यह यह है—मध्यम दैनिक गतिको गत और गम्य भुजज्याओंके अन्तरसे गुणा करके गुणनफलको २२५ से भाग दे दो; (४६) लब्धिको मन्दपरिधिसे गुणा करके भगणांशसे यदि मंदपरिधि अंशों में हो तो ३६० से और यदि कलोंओमें हो तो (६०२ से) भाग दे दो, लब्धि कलाओंमें होगी यदि मदकेंद्र दूसरे और तीसरे पदोंमें (कर्कादि पदों में) हो तो जोड़ो और पहलेया चौथे पदोंम (मकरादि पदोंमें) होतो घटाओ। ऐसा करनेसे सूर्य और चंद्रमाकी स्पष्ट दैनिक गति तथा अन्य ग्रहोंकी मन्द स्पष्ट दैनिक गति ज्ञात होती है।

विज्ञान भाष्य—किसी ग्रहकी मध्यम दैनिक गति में से उसके मन्दोच्चकी दैनिक गदि घटा देनेसे उसके मन्दकेन्द्रकी दैनिक गति ज्ञात होती है। इसेही ग्रहकी केन्द्र गति कहते हैं। परंतु चन्द्रमाके सिवा अन्य ग्रहोंके मंदोच्चकी गति इतनी कम होती है कि उसके छोड़ देनेसे कोई अशुद्धि नहींहो सकती इस लिए अन्यग्रहोंकी मध्यम दैनिक गति ही केन्द्र गति समझली गयी है, केवल चन्द्रमाके लिए केन्द्रगति जाननेका विधान है। जैसे मध्यम ग्रहमें मन्दफलका संस्कार देनेसे मन्दस्पष्ट ग्रह निकलता है वैसे ही मध्यम दैनिक गतिमें गतिके मन्दफल अथवा मन्दफलका संस्कार देनेसे मन्द स्पष्ट गति ज्ञात होती है। सूर्य चन्द्रमाके लिए यही स्पष्ट दैनिक गतिहो जाती है तथा अन्य ग्रहोंके लिए अगले ५०—५२ श्लोकोंमें बतलायी जाने वाली क्रिया भी करनी चाहिए। मन्दगति कैसे निकलते हैं इस नियमकी उपपत्तियों हैः—

एक दिनमें स्पष्ट ग्रह जितना चलता है वही ग्रहकी स्पष्ट दैनिक गति है। इस लिए स्पष्ट दैनिक गति जाननेके लिए केवल यह जान लेना पर्याप्त है कि किसी दिनके आरंभ और अंतमें स्पष्ट ग्रहवाले स्थान क्या थे; फिर इन्हींका

अंतर स्पष्ट दैनिक गति है। परन्तु दिनके आरंभ और अंत में स्पष्ट ग्रहोंके स्थान जाननेमें बहुत गुणा भाग करना पड़ेगा इस लिए उससे सरल क्रिया भी हो सकती है जिसकी उपपत्ति यह है:—

दैनिक स्पष्ट गति

= ( दिनके ) अंतका स्पष्ट ग्रह—( दिनके ) आरंभ का स्पष्ट ग्रह

= ( अंतका मध्यम ग्रह + अंतका मन्दफल ) —( आरंभका मध्यम + आरंभका मन्दफल )

= ( अंतका मध्यम ग्रह—आरंभका मध्यम ग्रह ) ( अंतका मन्दफल—आरंभका मन्दफल )

= मध्यम दैनिक गति ± ( अंतका मन्दफल – आरम्भका मंदफल )……(१)

परन्तु ( दिनके ) अंतका मंदफल

$= \frac{\text{मंद परिधि} \times \text{अंतके केन्द्रकी भुजज्या}}{३६०}$ का धनु [श्लोक ३९

और ( दिनके ) आरम्भका मंदफल

$= \frac{\text{मंद परिधि} \times \text{आरम्भके केन्द्रकी भुजज्या}}{३६०}$ का धनु

इसलिए इनदोनोंका अन्तर ( स्थूल रीतिसे )

$= \frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०} \left\{ \text{अंतके केन्द्रकी भुजज्या} - \text{आरम्भके केन्द्रकी भुजज्या} \right\}$………(२)

परन्तु (दिनके) अंतके केन्द्रकी भुजज्या=(दिनके आरम्भका केन्द्र + केन्द्रकी दैनिक गति) की भुजज्या

= दिनके आरम्भके केन्द्रकी भुजज्या

$+ \frac{\text{गत और गम्य पिंडोंकी ज्याओंका अंतर} \times \text{दैनिक केन्द्र गति}}{२२५}$

[ श्लो ३१-३२

इसको समीकरण (२) में उत्थापन करनेसे तथा समान धन और ऋण पदोंको छोड़ देनेसे,

अंतका मन्दफल – आरम्भ का मंदफल

$= \frac{\text{मन्द परिधि}}{३६०} \times \frac{\text{गत और गम्य पिंडोंका ज्याओंका अन्तर} \times \text{दैनिक गति}}{२२५}$………(३)

यही समीकरण (३), ४८वें श्लोकके उत्तरार्द्ध और ४९वें श्लोकके पूर्वार्द्धका रूप है, जिसमें 'गत और गम्य पिंडोंकी ज्याओंके अंतर' की जगह संक्षेपमें 'दोर्ज्यान्तर' कहा गया है।

समीकरण (३) को समीकरण (१) में उत्थापन करने से

दैनिक स्पष्ट गति = मध्यम दैनिक गति

$\pm \frac{\text{मंद परिधि}}{३६०} \times \frac{\text{गत गम्य ज्या पिण्डोंका अन्तर} \times \text{मध्यम दैनिक गति}}{२२५}$…………(४)

कर्कादि केन्द्रमें धन और मकरादिमें ऋण करनेका कारण यह है कि जब मन्दकेन्द्र ३ राशिसे अधिक और ९ राशिसे कम होता है तब स्पष्ट दैनिक गति मध्यम दैनिक गतिसे अधिक अन्यथा कम होती है। (देखो चित्र २९ और ३०)। मध्यम ग्रह जितने समयमें मि से मु अथवा मु से मे तक पहुँचता है उतने समयमें स्पष्ट ग्रह ति से सु अथवा सु से 'से' तक पहुँचता है अर्थात् समान कालमें स्पष्ट ग्रह मध्यम ग्रहसे अधिक जाता है; इसलिए स्पष्ट ग्रह दैनिक गति भी मध्यम ग्रहकी दैनिक गतिसे अधिक होगी। इत्यादि।

> मन्दस्फुटीकृतां भुक्तिं प्रोज्झ्य शीघ्रोच्च भुक्तितः।
> तच्छेषं विवरेणाथ हन्यात्त्रिज्यान्त्यकर्णयोः ॥५०॥
> चलकर्णहृतं भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम्।
> ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेषं वक्रगतिर्भवेत् ॥५१॥

अनुवाद—( मन्द ) मन्द स्पष्ट दैनिक गति को शीघ्रोच्चकी दैनिक गतिसे घटाकर शेषको त्रिज्या और शीघ्र कर्ण के अंतर से गुणा कर दो, गुणनफल को शीघ्र कर्ण से भाग दे दो, लब्धि को मंद स्पष्ट गतिमें जोड़ दो यदि त्रिज्यासे कर्ण अधिक हो और यदि कम हो तो घटा दो। यदि लब्धि

ऋणात्मक हो और मंद स्पष्ट गतिसे अधिक हो तो शेष भी ऋणात्मक होगा । यह दैनिक वक्रगति होगी ।

विज्ञान भाष्य—इस नियमको बीज गणितके अनुसार यों लिख सकते हैं:—

स्पष्ट दैनिक गति = मंद स्पष्ट गति

$\pm$(शीघ्रोच्च गति-मन्दस्पष्टगति) (शीघ्रकर्ण ∽ त्रिज्या)* (५)

शीघ्रकर्ण

उदाहरण—सूर्य और गुरुका स्पष्ट दैनिक गति (१६७९ वि० को वसंत पंचमी की अर्द्धरात्रिको) निकालना ।

सूर्य की मध्यम दैनिक गति ५६′ ८″ है । इस लिए समीकरण (क) में अनुसार [ देखो उदा० १, सूर्यकी स्पष्ट दैनिक गति

$$= ५९'८'' \pm \frac{८३३}{२१६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५९'८''$$

( यहां मंद केन्द्र दूसरे पदमें है इसलिए धन चिह्न लिया )

$$= ५९'८'' + \frac{८३३}{२१६००} \times \frac{२१०}{२२५} \times ५९'८'$$

७ / ७५

$= ५९'८'' + २'७''.७$

$= ६१'१६''$ स्वल्पान्तर से

गुरु की मध्यम दैनिक गति

$= ४'५९''$

गुरुकी मन्द स्पष्ट गति

$$= ४'५९'' \pm \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times ४'५९''$$

यहां मंदकेन्द्र चौथे पदमें है इसलिए ऋण चिह्न लेना चाहिए ।

∴ गुरुकी मंद स्पष्ट गति

$$= ४'५९' - \frac{१९४८}{२१६००} \times \frac{१९१}{२२५} \times \frac{१}{५'}$$

$= ४'५९'' - २५''$

$= ४'३४''$

गुरुके शीघ्रोच्चकी गति = सूर्यकी मध्यमगति = ५९′८′

शीघ्रकर्ण = ३६०८

इसलिए इन सब मानोंको समीकरण (५) में उत्थापन करनेसे और धनात्मक चिह्न लेनेसे क्यों-कि शीघ्रकर्ण त्रिज्यासे अधिक है ।

गुरुकी स्पष्ट गति

$$= ४'३४'' + \frac{(५९'८'' - ४'३४'')(३६०८ - ३४३८)}{३६०८}$$

$$= ४'३४'' + \frac{५४'३४'' \times १७०}{३६०८}$$

$= ४'३४'' + '२३४''$

$= ७'८''$

दूरस्थितः स्वशीघ्रोच्चाद्ग्रहः शिथिलरश्मिभिः ।
सव्येतराकृष्टतनुर्भवेद्वक्र गतिस्तदा ॥५२॥
कृततु र्चन्द्रैर्वेदन्द्रैः शून्यत्र्येकैगु णाष्टिभिः ।
शररुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भू सुतादयः ॥५३॥
भवन्ति वक्रिणस्तैस्तु स्वैः स्वैश्चक्राद्विशोधितैः ।
अवशिष्टांश तुल्यैः स्वैः केन्द्रैरुज्भन्ति वक्रताम् ॥५४॥
महत्वाच्छीघ्रपरिधेः सप्तमे भृगुभूसुतो ।
अष्टमे जीव शशिजो नवमे तु शनैश्चरः ॥५५॥

अनुवाद—(५२) जब ग्रह अपने शीघ्रोच्चसे दूर (तीन राशिसे अधिक अंतर पर) हो जाता है तब शीघ्रोच्च जिन रस्सियोंसे उसको खींचता है वह ढीली पड़ जाती है । इसका कारण ग्रह विलोम दिशामें खिंच जाता है और गति वक्र हो जाती है अर्थात् उलट जाती है । (५३) जब मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिके अंतिम शीघ्रकेन्द्र (दूसरा जिससे शीघ्रफल निकाला जाता है । क्रमसे १६४, १४४, १३०, १६३, और ११५ अंश होते हैं (५४) तब इनकी वक्रगतिका आरम्भ होता है और जब शीघ्-

---

* यह चिह्न ∽ अंतर प्रकट करने का चिह्न है । जिन दो संख्याओं के बीचमें यह चिह्न हो उनमें से जो बड़ी हो उसमेंसे छोटी संख्याको घटानी चाहिये ।

केन्द्र क्रमसे वह होते हैं जो उपर्युक्त शीघ्रकेन्द्रोंको ३६०° से घटाने पर आते हैं (अर्थात् १६६, २१६, २३०, १६७ और २४५ अंश) तब वक्रगतिका अंत होता है अर्थात् तब ग्रह फिर मार्गी होते हैं। (५५) शीघ्रपरिधिके बड़ी होनेसे शुक्र और मङ्गलकी वक्रगति उसी समय रुक जाती है जब शीघ्रकेन्द्र सातवीं राशिमें होता है, बुध और गुरुकी उस समय जब शीघ्रकेन्द्र आठवीं राशिमें होता है और शनिकी उस समय जब शीघ्रकेन्द्र ६ वीं राशिमें होता है।

विज्ञान भाष्य—ग्रहोंकी वक्र गतिका यथार्थ कारण १२-१३ श्लोकोंके विज्ञान भाष्यमें विस्तारके साथ बतलाया गया है। यहां इतना और बतलाया गया है कि वक्रगतिका आरम्भ और अन्त कब होता है और गणितसे कैसे जाना जा सकता है। शीघ्र केन्द्रके जो अङ्क ऊपर दिये गये हैं वह मध्यम मानके अनुसार हैं इसलिए यथार्थ में कुछ भिन्नता देख पड़ती है। ५५वें श्लोकमें यह बतलाया गया है कि शीघ्र परिधिके विस्तारके अनुसार जब शीघ्रकेन्द्र सातवीं, आठवीं या ६वीं राशिमें होता है तब वक्रगतिका अन्त होता है। यह बात चित्र ३० के देखनेसे स्पष्ट हो जाती है। स्पष्ट ग्रह शीघ्र परिधि पर भ्रमण करते हुए ऐसे दो स्थानोंपर भी पहुँचता है जहां शीघ्रकर्ण शीघ्र परिधिको स्पर्श करता है। ऐसी दशामें शीघ्रकर्ण, शीघ्रवृत्तकी त्रिज्या और कक्षावृत्तकी त्रिज्या, इन तीन रेखाओंसे समकोण त्रिभुज बन जाता है। इस त्रिभुजका वह कोण जो शीघ्रवृत्तके मध्य विन्दुपर बनता है शीघ्र परिधिकी त्रिज्याके अनुसार छोटा बड़ा होता है। इसी तरह वक्रगतिके आरम्भ और अन्तके लिए भी शीघ्रकेन्द्रका मान घटता बढ़ता है।

यहां तक तो भारतीय रीतिसे ग्रहोंके स्पष्ट स्थान जाननेकी रीति बतलायी गयी। भास्कराचार्य तथा अन्य कई आचार्योंने एक और रीति भी बतलायी है जिससे ग्रहोंका स्पष्ट स्थान ठीक इसी प्रकार निकलता है परन्तु वह विस्तारके भयसे नहीं लिखी गयी है। अब संक्षेपमें यह बतलाया जायगा कि नवीन पद्धतिके अनुसार पाश्चात्य देशोंके ज्योतिषी ग्रहोंके स्पष्ट स्थान कैसे निकालते हैं।

क्रमशः

—महावीर प्रसाद श्रीवास्तव,
बी. एस.—सी; एल. टी. 'विशारद'

---

# पाश्चात्य दार्शनिकोंके वैज्ञानिक विचार

[ ०—श्री० सत्य प्रकाश 'विशारद' ]

वैज्ञानिकोंकी सृष्टि जहां निराली होती है वहीं दार्शनिक भी अपनी अलग ही सृष्टि रचते हैं। दार्शनिक अदृष्ट पदार्थोंकी विवेचना ही अधिक करते हैं। अतः उनके विचारोंमें मतभेदका आधिक्य होना अधिक स्वाभाविक है। उनके विचारलोकमें अनुमान प्रमाणका ही प्रवेश हो सकता है।

भारतके प्राचीन दार्शनिक संसारके मुकुट हैं ही पर यहांकी सभ्यताके समीपस्थ ही यूनानकी सभ्यता है। इस देशके परिश्रमी विद्वानोंने भी विषयोंमें गम्भीर गवेषणा की है। सुकरात, अरस्तू, तथा अफ़लातूनका नाम जगद्विख्यात् है। इसके अतिरिक्त रोम, फ्रान्स, जर्मनी, इंगलैण्ड आदि देशोंके तत्ववेत्ता भी अपनी कल्पनाओंके कारण अमर हो गये हैं। आज हमें इनके विविध वैज्ञानिक विचारोंकी विवेचना करनी है।

### प्लैटो या अफ़लातून

प्लैटोका जन्म सन् ३५१ सं० पूर्व हुआ था। यह ३५१ सं० पूर्वमें सुकरातका शिष्य होगया था और गणित, संगीत, दर्शन आदिका अगाध विद्वान था। यह २६१ सं० पू० मर गया। इसके मतके अनुसार मात्रा ( matter ) जो सृष्टिका मूल कारण है नष्टवती, वास्तविकता रहिता, तथा अपूर्ण है। विचारके प्रभावसे ही इसका अस्तित्व दृष्टिगत

होता है। जिस प्रकार सूर्यकी रश्मि त्रिपार्श्व (prism) में होकर निकलनेके कारण सप्तरंगोंमें विभक्त हो जाती है उसी प्रकार विचार भी मात्रामें प्रवेश पानेके कारण भिन्न भिन्न रूप धारण कर लेते हैं। विषयकी सुगमताके लिए प्लैटोने मात्राको चार तत्व, पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्निमें विभक्त किया है, साथ ही साथ इनको आत्मासे भी संयुक्त कर दिया है। पूर्वसे ही यह आत्मा गतिवान है। इस कारण यह गति ही सांसारिक गतिका कारण है।

अरस्तू

यह तत्ववेत्ता निकोमेकसका पुत्र था जिसका जन्म स्टेगिरा नगरमें ३२८ सं० पूर्व हुआ था तथा इसकी मृत्यु २६२ सं० पू० हुई थी। इसकी विवेचनाके अनुसार मात्रा (matter) सदा गुण सहित रहती है। न तो गुण इस मात्रासे पृथक रह सकते हैं और न मात्रा कभी गुणोंसे रहित हो सकती है। स्वरूप आदि मात्राके गुण ही हैं। कोई गुण परिवर्त्तित नहीं हो सकता है। हां यह अवश्य हो सकता है कि एक गुणके स्थानको दूसरा गुण आकर ले ले, प्रत्येक गुण पृथक पृथक अपने स्वरूपमें अजर अमर हैं। मात्राके अन्दर प्रत्येक स्वरूप विद्यमान है, बाहर नहीं।* उदाहरण के लिए कागज़में प्रत्येक चित्र विद्यमान हैं, चित्रकार केवल अपनी रुचिके अनुसार उनको प्रकट कर देता है।

अरस्तूके मतानुसार कई वस्तुओंके बीचमें घिरे हुए रिक्तस्थानका नाम ही आकाश है। तारोंके आगे फिर आकाश नहीं है क्योंकि उस अवकाशकी कोई सीमा नहीं है। इसका सिद्धान्त है कि मात्रामें गति है। गतिके अर्थके अन्तर्गत सम्पूर्ण परिवर्त्तन आ जाते हैं। गति (Motion) चार प्रकारकी होती है—१. पारिमाणिक (जिसके अन्तर्गत परिमाणके परिवर्त्तन हैं), २. तात्विक (उत्पत्ति तथा विनाश इसके अन्तर्गत है), ३. गौण (गुण सम्बन्धी परिवर्त्तन-एक वस्तुका दूसरी वस्तुमें रूपान्तर होना), ४. स्थानीय (एक स्थानका दूसरे स्थानमें परिवर्त्तन)। पृथ्वी, वायु, अग्नि, जल ये चारो तत्त्व एक दूसरेमें परिवर्त्तित हो सकते हैं। विविध वस्तुओंके सम्मेलनसे दूसरे प्रकारकी वस्तु उपलब्ध हो सकती है। किसी पदार्थके गुणोंमें परिवर्त्तन होना केवल अणुओंके विन्यास (arrangement) में परिवर्त्तन होना ही नहीं है, ऐसी अवस्थामें मात्रा पर अनेक शक्तियोंके प्रभावके कारण पूर्ण परिवर्त्तन होता है। अरस्तू संसारको अनन्त मानता है, जिसका न तो उत्पत्ति स्थान है और न नाश ही होता है। पृथ्वी संसार चक्रके बीचमें है और इसके चारो ओर समवृत्ताकार जल, वायु तथा अग्नि हैं और तत्पश्चात् नक्षत्रोंका स्थान है। सबसे परे नक्षत्रोंको परमात्मा गति देता है जिससे प्रभावित होकर अन्य भी गतिवान होते हैं।

एपिक्यूरस

यह सेमस द्वीपमें २८५ सं० पू० उत्पन्न हुआ था। २१४ सं० पू० इसकी मृत्यु हो गई। यह कहता है कि प्राकृतिक वस्तुएं ही केवल दृष्टिगत हो रही हैं अतः इन्हींकी सत्ता प्रामाणिक है। पर इन वस्तुओंके आधारके हेतु कोई ऐसी अदृष्ट वस्तु होनी चाहिये जिसमें गमन, प्रवेश आदि हो सके। अतः यहां पर आकाशका उद्घाटन होता है। एपिक्यूरस कहता है कि कोई वस्तु न तो बनाई जा सकती है और न किसीका नाश ही हो सकता है। अतः तत्वोंके सम्मेलनको ही उत्पत्ति तथा वियोगको नाश कहना उचित है। ये तत्त्व अदृष्ट, सूक्ष्म, अविभाज्य, विनाश रहित तथा परिवर्त्तन रहित हैं। निजी शक्तिके कारण ही उनका अस्तित्व है। तत्त्व ठोस हैं अर्थात् उनके अन्दर आकाश नहीं है। अणुओंके भार, स्वरूप तथा परिमाण होते हैं पर एक प्रकारके अणु दूसरे प्रकारके अणुओंसे इन अवस्थाओंमें भिन्न होते हैं। वस्तुओंके भेदका कारण यही है। ये अणु अपने बोझके

* 'Instead of being outside of matter, it is in matter'.

कारण ठीक नीचेकी ओर सम-गतिसे दौड़ते हैं, कभी कभी टकराते हैं जिससे सृष्टिकी उत्पत्ति होती है क्योंकि टकरानेसे परस्पर मिल जाते हैं।

ज़ीनो

ज़ीनो २८० सं० पू० सीटियम ( Citium ) साइप्रेसमें पैदा हुआ था। २०८ सं० पू० में इसकी मृत्यु हो गई, इसके सिद्धान्त स्टोइसिज़्म ( Stoicsim ) नामसे प्रसिद्ध हैं । इसने स्टोआपोइकील नामक एक विद्यालय खोला था। इसका कथन है कि संसारके जन्मसे पूर्व महती अग्नि विद्यमान थी जिसकी ही परिवर्तित आर्द्र ( condensed ) अवस्थाका नाम पृथ्वी तथा जल है । तात्पर्य्य यह है कि भू, जल, तथा वायुकी उत्पत्ति अग्निमें ही हुई और उसीसे सम्पूर्ण ब्रह्मांड रचा गया। अग्निमें जब शक्ति ( force ) न रही तभी उसकी मात्रा बन गई। समय पर फिर सब अग्निमें ही परिवर्त्तित हो जायँगे। ज़ीनो ब्रह्मांडको गोलाकार मानता है जिसकी गति अग्निकी चेतन्यताके ही कारण है।

पैरासेलसस

यह १५४८ सं० में उत्पन्न हुआ और १५८७ में इसकी मृत्यु हुई। इसके अनुसार चार तत्व हैं— पृथ्वी, जल, वायु तथा अग्नि-जिनके मूल कारण तीन पदार्थ हैं—१. साल ( ठोस पदार्थ ) २. पारा ( द्रव पदार्थ ) ३. गन्धक ( दाह्य पदार्थ )। चारो तत्व इनके सम्मेलनसे बने हैं। ये सब चार दैत्योंके शासनमें हैं। पृथ्वी नोमीज़ ( gnomes ) के आधीन है, जल अन्डाइन्स ( undins ) के आश्रित है। वायुका अधिपति सिल्फ़्स ( sylphs ) हैं तथा सेलामेन्डर्स ( salamanders ) का राज्य अग्निपर है।

गिरोलेमो कार्डन

यह १५६६ से १६३२ सं० तक जीवित रहा। कार्डन अच्छा वैद्य, गणितज्ञ, तथा वैज्ञानिक था। इसका कहना है कि तत्व चार नहीं हैं, तीन ही हैं- पृथ्वी, जल, तथा वायु। अग्नि तो कोई तत्व है ही नहीं, यह केवल तापसे जनित गुण ( accident or property ) है। इस संसारमें भी एक जीव है, यह जीव जो प्रकाश तथा तापसे अभिन्न ( identical ) है।

बरनारडिनो टेलीसिओ

इसका जीवन काल सं० १५६४ से सं० १६४४ तक है। इसका सिद्धान्त यह है कि मात्राको परमात्माने उत्पन्न किया है पर यह परिमाणमें सदा एक समान रहती है। तापके कारण मात्रामें प्रसार (expansion) तथा सूक्ष्मीभूत अवस्था (rarefaction) आती है। ताप ही पदार्थोंका जीवन है और चेतनताका कारण है। शीतलतासे पदार्थ सिकुड़ते हैं और द्रवीभूत हो जाते हैं। स्थिरता शीतलताके ही कारण है । टेलीसिओके अनुसार आत्मा भी मात्राका रूपान्तर है। यह आत्माको अग्निमें संयुक्त एक पदार्थ मानता है जो मस्तिष्कमें विद्यमान है, शरीर भरमें नसोंके द्वारा फैला हुआ है।

टॉमस होबीज़

होबीज़ सं० १६४४ में पैदा हुआ और सं० १७३५ में मर गया। इसने आक्सफ़ोर्डमें अरस्तूके सिद्धान्तोंका अध्ययन किया था। डेकार्टे आदि विख्यात् तत्ववेत्ताओंसे इसने पेरिसमें मित्रताकी थी । होबीजका मत है कि यह वास्तविक सृष्टि, आकाशमें स्थिर है । आकाश दो प्रकारका है— वास्तविक तथा काल्पनिक। बिना स्वरूप तथा विस्तार गुणके कोई वस्तु पहिचानी नहीं जा सकती। स्थिरता, गति, रंग, कठोरता, आदि गुण एक दूसरेके बाद नष्ट होते जाते हैं और उनका स्थान अन्य गुण ले लेते हैं; इस प्रकार वस्तु नष्ट नहीं होने पाती। बराबर एक स्थानको छोड़ते जाना और दूसरे स्थानको ग्रहण करना ही गति है। गतिका कारण गति ही है अर्थात् एक पदार्थकी गति अन्य पदार्थमें गति उत्पन्न करती है। जब एक गति दूसरेमें गति उत्पन्न करती है तब एक पदार्थका गुण दूसरे पदार्थमें नहीं चला जाता प्रत्युत एक गुण नष्ट हो जाता है और दूसरा

उत्पन्न हो जाता है। एक पदार्थकी क्रियाका प्रभाव दूसरे पदार्थ पर तब पड़ा हुआ कहा जाता है जब उस दूसरे पदार्थके या तो कुछ गुण नष्ट हो जाते हैं या कुछ और पैदा हो जाते हैं। कारण और कार्य्यमें यही सम्बन्ध है। सम्पूर्ण गति तथा परिवर्त्तनोंका कारण एक मात्र गति ही है। शक्ति या बल (power) कोई गुण नहीं है जो सब क्रियाओंसे भिन्न हो। यह बल तो इसलिये कहा जाता है कि अन्य कार्य्य इससे भविष्यमें सम्पादित होने वाला है। गतिका आरम्भ कहांसे हुआ है इसकी विवेचना तो कठिन है पर यही कहा जा सकता है कि इसका मूल परमात्मा ही है।

डेकार्टे

रेनी डेकार्टे सं० १६५२ में ला-हेमें पैदा हुआ था। गणित और दर्शनका इसने मुख्यतः अध्ययन किया था। सं० १७०६ में इसका स्वर्गवास हो गया। इसने विज्ञानका मनोरञ्जक विभाग किया है। विज्ञान अथवा दर्शन शास्त्रकी इसने एक वृक्षसे कल्पनाकी है जिसका मूल अध्यात्म विद्या ( metaphysics ) माना है। इस विज्ञान विटपका तना पदार्थ विज्ञान है, और जो दूसरी विज्ञान सम्बन्धी शाखायें हैं वे इस पेड़की शाखायें हैं। अस्तु, हमारे पदार्थ विज्ञान (physics) को इसने उच्च स्थान दिया है।

डेकार्टेका कथन है कि हमारे सामने वाह्य जगत है। पर प्रश्न यह है कि हमारे पास क्या प्रमाण है कि वाह्य जगत भ्रम नहीं है, वास्तविक है। इसका ज्ञान केवल ज्ञानेन्द्रियोंसे ही हो सकता है पर ये इन्द्रियां धोखा भी दे सकती हैं। हम स्वयं भी इस भ्रममय ज्ञानके कारण नहीं हो सकते तो यह अवस्था या तो परमात्मा द्वारा उत्पन्न होती है या उन वस्तुओं ही द्वारा जिनका हम अनुभव करते हैं। परमात्मा धोखा नहीं दे सकता क्योंकि वह सत्य शक्ति है अतः वे वस्तुएँ ही यह ज्ञान उत्पन्न कराती हैं। इससे यह सिद्ध है कि उनका अस्तित्व है। उनके अस्तित्वके हेतु हमारे भावोंकी आवश्यकता नहीं है। वस्तु वह पदार्थ है जिसका अस्तित्व स्वयं हो, किसीके आधीन न हो। वस्तुका गुण वह है जिसके बिना उस वस्तुका न भान हो सके और न जिसके बिना वह रह सके।

जो गुण हमको बाहुमें स्पष्टतया भेदक प्रतीत होता है वही मुख्य गुण है, शब्द, रंग, रस, गन्ध, ताप, शीत आदि वस्तुके वास्तविक गुण नहीं हैं क्योंकि वह भ्रमोत्पादक हैं। वस्तु का मुख्य गुण केवल आकार-प्रस्तार ( extension ) ही है, अन्य नहीं। वस्तु तथा प्रस्तार अभिन्न हैं। प्रस्तार लम्बाई, चौड़ाई और मोटाईमें होता है अतः अवकाश ( spce ) और प्रस्तार भी अभिन्न हैं। प्रत्येक वस्तुकी सीमित इयत्ता ( spatial magnitude ) होती है अतः कोई रिक्त अवकाश अर्थात् आकाश नहीं है अवकाशके असंख्य विभाग हो सकते हैं। इसके परमाणु नहीं है। पदार्थोंके सूक्ष्मतम भाग भी विभाजित हो सकते हैं पर वह परमाणु ( atoms ) नहीं हैं वरन् अणु ( corpuscles or molecules ) हैं।

मात्राका परिवर्तन अथवा इसके रूप में भेद गतिके आश्रित है। गति वह क्रिया है जिसके द्वारा एक पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है। संसारकी प्रथम गतिका कारण परमात्मा ही है। डेकार्टेका विश्वास है कि जिस समय परमात्माने सृष्टि रची थी उस समय उसने सृष्टिको कुछ गति ( motion ) और कुछ विश्राम ( rest ) दे दिया था। इन दोनोंकी मात्रा सदा पूर्ववत् ही रहेगी। गेलिलो और न्यूटन भी इस पर विश्वास करते थे। शक्तिका संरक्षण नियम ( law of conservation of energies ) भी इस बातका प्रतिपादन करता है वस्तुएँ स्वयं न गतिवान हो सकती हैं और न रुक सकती हैं अतः वह गतिको न बढ़ा सकती हैं और न कमकर सकतीं। गति और विश्रामकी मात्रा सदा एक सी रहेगी। परमात्माके सम्पूर्ण कार्य्य नियमपूर्वक होते हैं अतः सांसारिक परिवर्त्तन भी नियमित हैं।

वह पदार्थ ठोस हैं जिनके अणु परस्परमें अधिक मिले हुए तथा स्थिर हैं। द्रव पदार्थ वह हैं जिनके अणु गतिवान हैं।

जान लाक

इसका जन्म सं० १६८८में हुआ और सं० १७६०में इसकी मृत्यु हो गई। इसने आक्सफोर्डमें दर्शन, विज्ञान तथा वैद्यककी शिक्षा प्राप्त की थी। यह पदार्थके गुणोंको दो भागोंमें विभाजित करता है। १ मुख्य गुण—यह वह गुण हैं जो पदार्थोंसे पृथक किये ही नहीं जा सकते। जैसे ठोसपन, प्रस्तार, आकार, संख्या तथा गति। २ गौण—जो गुण और कुछ नहीं हैं केवल मुख्य गुणोंके कारण ही हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर प्रभाव डालते हैं, जैसे रंग, शब्द, रस आदि।

लाक कहता है कि संसार वस्तुओंका बना हुआ है। वस्तु दो प्रकारकी होती है। एक पदार्थ और दूसरे आत्मा ( जड़ और चेतन )। पदार्थके गुण प्रस्तार, ठोसपन, तथा गति हैं। यह तो मुख्य गुण हैं। बिना वस्तुओंके तो आकाश अथवा अवकाश हो सकता है। बिना ठोसपनके भी आकाश कल्पना की जा सकती है। वस्तुओंकी गति आकाशके अस्तित्वका प्रमाण है।

जार्ज बर्कले

आयर्लेंडमें सं० १७४१ ई० में बर्कलेने जन्म लिया। सं० १८०६ में उसकी मृत्यु हो गई। दार्शनिकों में इसका स्थान बहुत ही ऊँचा और विलक्षण है। लाक और इसके सिद्धान्तोंमें बहुत भेद है। इसका कथन है कि अस्तित्व होनेका तात्पर्य 'ज्ञात' होने से है अर्थात् मस्तिष्कमें होनेसे है।* बर्कले लाकके मुख्य और गौण गुणोंका ही खंडन करते हुए कहता है कि लाक जिनका मुख्य गुण कहता है वह भी उसने ही गौण हैं जितने अन्य। ठोसपनका तथा प्रस्तारका विचार स्पर्श द्वारा प्रतीत होता है और यह विचार मस्तिष्कमें है। इसी प्रकार रंग आदिके भी विचार मस्तिष्कमें हैं। ये दोनों विचार अलग नहीं किये जा सकते। मुख्य गुण और गौण दोनों घनिष्ट रूपेण मस्तिष्कमें सम्बन्धित हैं अतः दोनों पृथक नहीं किये जा सकते। बर्कले कहता है कि संसार मानसिक कल्पना मात्र ही है। अगर रूपादि कुछ होता भी तो मन बिना कैसे जाना जा सकता है। इसके अतिरिक्त प्रस्तार, आकार, रूप, रंग आदि तो जड़ पदार्थ हैं, वह भला इन्द्रियोंको कैसे प्रभावित कर सकते हैं। अतः मन ही सम्पूर्ण भ्रमजालका रचयिता है।

यह आशंका करते हैं कि हम वस्तुकी वास्तविकता नहीं जानते। जलके बिन्दु अथवा बालूके कणोंके भीतर कुछ वस्तु अवश्य है जिसे जाना असम्भव है। उत्तरमें बर्कले कहता है कि यह आशंका निर्मूल है। वस्तुओंके आन्तरिक गुण कुछ भी नहीं हैं जिनसे यह वाह्य गुण दृष्ट होते हैं। यह अनावश्यक ही है, कि रूप, शब्द, रंग आदि गुणोंकी विवेचना करनेमें परिश्रम किया जाय। यह सब दैवी शक्ति है।

आकर्षण शक्ति आदिके विषयमें बर्कले कहता है कि यह तो कार्य्यावस्था ( effect ) में हैं सो इनसे क्या तात्पर्य। ढूढ़ना तो कारण है लोग कहते हैं कि प्रत्येक परमाणुमें आकर्षण शक्ति है पर यह भी ठीक नहीं यह तो दैवी इच्छा पर निर्भय है।

डेविड ह्यूम

डेविड ह्यूम सं० १७६७ में एडिनबरामें उत्पन्न हुआ था और सं० १८२२में इसकी मृत्यु हो गई। ह्यूमका सिद्धान्त है कि वाह्य वस्तुके ज्ञानोपलब्धि के हेतु हमें अपनी इन्द्रियों पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिये, युक्तियोंसे भी इसका निर्णय करना चाहिये। हम बिना युक्तिके पूर्वमें ही वाह्य जगत की सत्ता पर विश्वास करने लगते हैं पर थोड़ी सी ही युक्ति पूर्ण विवेचना इन विश्वासों का खंडन कर सकती हैं। मनमें केवल इन्द्रिय-जन्य

* 'To exist means to be perceived, to be in the mind.'

अनुभवों ( perceptions ) की आकृति ही आ सकती है। हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है कि ये अनुभव वाह्य-जगत द्वारा ही जनित हैं क्योंकि अनुभव वस्तुओंसे सर्वथा भिन्न हैं। कदाचित दोनोंमें कुछ समानता हो। दो अनुभवों-में तो सम्बन्ध हो सकता है पर वस्तु और अनुभवमें कोइ सम्बन्ध नहीं है। अतः यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वस्तुओं द्वारा ही ये अनुभव उत्पन्न हुए हैं। इस कारणसे लाक द्वारा निर्दिष्ट मुख्य तथा गौण गुण वस्तुओंके हैं, यह नहीं कहा जा सकता। अगर ये दोनों प्रकारके गुण छोड़ दिये जायँ तो फिर अज्ञेय वस्तु ही शेष रह जाती है जिस पर विवाद करना व्यर्थ है। जो कुछ हमें ज्ञात है वह केवल हमारे विचारोंका फल है।

### लाइनीज़

लाइनीज़ सं० १७०२ में लीपज़िग नगरमें पैदा हुआ था और सं० १७५२ में इसकी मृत्यु हो गई। डेस्कार्टीज़के विषयमें जा चुका है कि उसके अनुसार परमात्मा ने कुछ मात्रा गतिकी और कुछ विश्रामकी इस जगतको प्रदान की थी, जो सदा एक सी रहेगी। लाइनीज़का कथन है कि वस्तुओं-का चलना और रुकना देखकर यह परिणाम निकलता है कि गति उत्पन्न तथा नष्ट होती है।

वस्तुओंका अस्तित्व प्रस्तारके कारण नहीं है। प्रस्तार स्वयं वस्तुओंके आश्रित हैं। बिना शक्ति ( force ) के प्रस्तार नहीं रह सकता। शक्ति ही यान्त्रिक जगत (pnechanical world) का स्रोत है। यह जगत शक्तिका ही रूपान्तर है। वस्तुमें शक्ति प्रस्तारके पूर्वसे ही विद्यमान रहती है। वस्तुमें एक विरोधक शक्ति (force of resistance) होती है जिसके कारण वह सीमित होकर मात्रा-का स्वरूप धारण करती है। अवकाश की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है, यह केवल अन्य पदार्थों-के सम्बन्धसे ही उत्पन्न तथा नाश होता है। शक्तियां अवकाश ( आकाश ) पर निर्भर नहीं हैं, आकाश ही उन पर निर्भर है। जब ये शक्तियां शिथिल हो जाती हैं तभी प्रलय हो जाता है।

### इम्मेनुअल काण्ट

कीनिग्सबर्गमें सं० १७८० में काण्टका जन्म हुआ। सं०१८६०में इसकी मृत्यु हो गई। इसका सिद्धान्त है कि वाह्य परिवर्त्तन होते समय तत्त्वमें परिवर्त्तन नहीं होता, वस्तुकी मात्रा उतनी ही रहती है। उसमें न घटी होती है न बढ़ती। जिनसे वस्तुओंका ज्ञान हो वे गुण हैं। जो वस्तुएं परि-वर्तित होती हैं वह स्थायी हैं, परिवर्त्तन केवल उनकी अवस्थामें ही होता है। सम्पूर्ण परिवर्त्तन कारण और उनके कार्य्यके नियमोंको दृष्टिमें रखते हुए होते हैं, अर्थात् कारण (cause) और कार्य्य ( effect ) में जो सम्बन्ध है उसका कभी उल्लङ्घन नहीं होता है। सब पदार्थ जो आकाशमें सहवर्त्ती (co-exist) प्रतीत होते हैं उनमें घनिष्ट सम्बन्ध है।

### हर्बर्ट

इसका जीवनकाल सं० १८३२ से सं० १८९७ तक है। हर्बर्टका विचार है कि देखनेमें यह सृष्टि विरोधात्मक सृष्टि है जिसमें अनेक परिवर्त्तन होते रहते हैं, प्रत्येक वस्तुके अनेक गुण होते हैं और ये गुण परिवर्त्तनशील हैं। पर यह कैसे सम्भव है कि एक वस्तु कई वस्तु हो जाय ? यह कैसे हो सकता है कि एक वस्तु सफ़ेद भी हो और कठोर भी, उसमें मिठास भी हो और गन्ध भी ? यह कैसे हो सकता है कि कोई अभी तो एक वस्तु है और फिर दूसरी हो जाय ? ऐसा नहीं हो सकता है क्योंकि दोनों परस्पर विरोधी हैं। वस्तु एक-रस, अविभाज्य, परिवर्त्तन रहित, स्थिर पदार्थ है जिसको समय तथा स्थानकी अपेक्षा नहीं है।

# *स्फोटक पदार्थ और उनका उपयोग

[ ले०—श्री 'चक्रवर्ती' ]

स्फोटक पदार्थों ( Explosives ) का ज्ञान आधुनिक सभ्य संसारको कब से हुआ इस विषयमें नाना प्रकारके सन्देह किए जा सकते हैं, किन्तु यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि आर्यावर्तके प्राचीन निवासियोंको इस विषयका तथा इ.के उपयोगका ज्ञान पूर्वकालसे ही था। इस विषयके एक नहीं किन्तु अनेकों प्रमाण ऐसे दिये जा सकते हैं जिनसे यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि मध्यकालीन युग तक भी इन स्फोटक पदार्थोंका ज्ञान तथा उपयोग भारतमें यथाविधि प्रचलित रहा है। इस बातसे आधुनिक ऐतिहासिक भी सहमत हैं कि अरब निवासियोंको स्फोटक पदार्थोंका ज्ञान तेरहवीं शताब्दीसे भी पूर्वका था। अरबवालोंसे ही यह ज्ञान परम्परासे आधुनिक सभ्य संसारमें फैला।

पश्चिमके प्राचीन निवासी रोमन लोग उस समय तक स्फोटक पदार्थोंकी सत्ता वा उपयोगसे सर्वथा अपरिचित थे। यही कारण था कि तात्कालिक सड़कें और नहरें आदि यातायातके लिए इतनी सुखप्रद और निष्कंटक न होती थीं। "हैनिबाल" को ऐल्पस पहाड़परसे इटलीमें प्रवेश करने के लिए सड़क बनवानेमें जिन कठिनाईयोंका सामना करना पड़ा था उनसे सभी विज्ञ लोग खूब परिचित हैं। इसी प्रकार कहते हैं कि जब राजकुमार क्लौडियसने झील फ्यूसिनस ( Fucinus ) को भरवाना चाहा तो कुल ३ मील लम्बी नहर खुदवानेके लिये उसे ३० हज़ार मजदूर लगाने पड़े और तब भी कार्य्य ११ वर्षोंके बाद समाप्त हुआ। एवं 'खान' आदि खोदनेका काम भी स्फोटक विद्यासे सर्वथा अपरिचित होनेके कारण बहुत पीछे पड़ा हुआ था।

अब हमें इन पदार्थोंकी वर्तमान उन्नतिके इतिहास और क्रम पर एक दृष्टि डालनी है। इंगलैंडमें सबसे पूर्व बारूदका प्रवेश सं० १३२६ वि० में एक जर्मन वैज्ञानिक द्वारा हुआ। 'आवश्यकता आविष्कारोंकी जननी है' इस उक्तिके अनुसार जब वहां रेलकी पटरियोंके बिछानेका कार्य प्रारम्भ हुआ तो इस विद्यामें धीरे धीरे उन्नति भी प्रारम्भ हो गई। परन्तु ४६ वर्ष पर्यन्त तो 'गनपाउडर' ही सबसे प्रबलतम और सुरक्षित शक्ति मानी जाती रही। इसके अतिरिक्त सं० १८८२ में ब्रैकनट (Braconnot), पैलौज (Pelouse) और ड्यूमास (Deumas ) ने और भी कई प्रकारके स्फोटक पदार्थ तैय्यार किये, किन्तु यह सब अत्यन्त स्फोटक होनेसे अभी तक प्रयोगमें नहीं लाए जाते थे। सं० १६०३ में सोब्रीरो ( Sobriro ) नामक इटलीके एक विज्ञानवेत्ता ने ग्लिसरीनको नत्रिकाम्लसे मिलाकर 'नाइट्रोग्लिसरीन' नामक एक स्फोटक तैल ( blasting oil ) तैय्यार किया, किन्तु यह थोड़ी भी गर्मी पाकर असमय भड़क उठानेके कारण अत्यन्त भयंकर होनेसे निष्प्रयोजन ही था। ऐसी ऐसी कई घटनाएं हुईं जिनसे कि बाधित होकर इसका प्रयोग एक दम बन्द कर देना पड़ा। एकबार 'चिली' प्रदेशको जानेवाला 'नाइट्रोग्लिसरीन' से भरा हुआ एक बड़ा जहाज़ एकाएक भड़क उठा और सब कुछ क्षण भरमें स्वाहा हो गया। इस घटना ने पुरातन घावों पर नमकका काम किया और सारे वैज्ञानिक जगत्में इससे तहलका मच गया। कुछ कालके लिए ऐसा मालूम होने लगा कि आगेसे नाइट्रोग्लिसरीनका सभ्य संसारसे सर्वथा बहिष्कार कर दिया जायगा। परन्तु यह सब बातें निर्मूल सिद्ध हुईं जबकि 'नोबल' नामक स्वीडनके एक वैज्ञानिक ने इस असमय भड़कने के प्रश्नको हल कर दिया। इसने नाइट्रोग्लिसरीनको एक ऐसी सछिद्र ( porous )

* "Harmsworth Popular Science" के एक लेखके आधार पर।

मिट्टीसे मिलाया जिससे कि यह एक ठोस सा पदार्थ बन गया और साथ ही इसकी भयङ्करता भी दूर हो गई। यह नया पदार्थ जहां गनपौडरसे अधिक स्फोटक था वहां साथ ही अधिक सुरक्षित भी था। इस नए पदार्थका नाम उसने "डायनामाइट" रखा। इसके अविष्कारसे वैज्ञानिक जगत् में बड़ी ही प्रसन्नता हुई और पहिलेका सारा भय एक दम जाता रहा। वस्तुतः यह डाइनामाइट ही था जिसने कि तात्कालिक निराशा और भयको दूर करके भावी उन्नतिके कण्टकाकीर्ण मार्गको साफ़ कर दिया।

पाठकोंको यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि डायनामाइट, गन कौटन, नाइट्रोजिलैटीन, और थोड़ी मात्रामें नाइट्रोग्लिसरीन आदि स्फोटक पदार्थ स्वतः स्फोटक नहीं हैं जब तक कि इनके साथ पारदका एक विशेष समास ( fulminate of mercury ) न मिलाया जाय। इसके मिलाए बिना साधारणावस्थामें ही यदि हम उन्हें जलावें तो यह सामान्य लकड़ी वा तैलके समान ही जलते हैं और किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते। इन्हें स्फोटावस्थामें लानेके लिए इनके साथ उपरोक्त पारदका समास मिलाना होता है। यह समास वहां गैसीयअवस्थामें एक विशेष प्रकारका दबाव डालता है और यही विशेष प्रकारका गैसीयदबाव ही स्फोटकका मूल कारण है।

डायनामाइट में ¼ भाग सछिद्र मिट्टीका होनेके कारण यह अच्छा स्फोटक नहीं था। इस कठिनाईको दूर करनेका भी 'नोबेल' ने ही प्रयत्न आरम्भ किया जिसमें कि उसे परीक्षण करते करते अचानक ही सफलता प्राप्त हो गई। इस परीक्षण ने सफलताकी प्रसन्नतासे अब उसने नाइट्रोग्लिसरीन और 'गन कौटन' दोनों पर पृथक् पृथक् परीक्षण करने आरम्भ किए। एक ओर जहां 'गन कौटन' में ओषजनकी मात्रा बहुत थोड़ा होती है वहां दूसरी ओर नाइट्रोग्लिसरीनमें इसकी मात्रा बहुत अधिक होती है। जब 'नोबल' ने इन दोनों पदार्थोंको एक विशेष अनुपातमें मिलाया तो मेलसे एक नया पदार्थ बना जिसमें कि ओषजनकी मात्रा ठीक ठीक थी। शुद्धावस्थामें यह पदार्थ बड़ी कठोरसे कठोर छट्टानोंको तोड़ने तथा उनमें छिद्र करनेके काम आता है। इस नए पदार्थका नाम उसने "ब्लास्टिंग जिलैटीन" रखा। यह नया पदार्थ अधिक स्फोटक होनेके कारण बन्दूक आदिमें भरकर नहीं चलाया जा सकता था। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए नोबल ने इस पदार्थके साथ शोरा, और लकड़ीका बुरादा (woodmeal) को मिला दिया जिससे इसकी स्फोटक शक्ति घट गई और यह बन्दूक आदिमें भरकर चलानेके काम भी आने लगा।

आजकलके आग्नेयास्त्रोंमें जितने भी स्फोटक पदार्थ प्रयुक्त किए जाते हैं वह प्रायः सभी नाइट्रोग्लसरीन और नत्रजनित ( nitrated ) रुई, ऊन, जूट और घास आदिके सूक्ष्म तन्तुओंके मेलसे तैय्यार किये जाते हैं।

सबसे प्रथम साधारण रुईको नत्रिकाम्ल और गंधकाम्ल× के मिश्रणमें डालकर बड़े बड़े लौहदंडोंसे खूब हिलाते हैं। अच्छी प्रकार भीग जाने पर बाहर निकाल कर इसे जोरसे दबाते हैं। यहां यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि जब तक पीछेका भार आदिम भारसे दस गुणा न हो जाय तब तक भीगी रुई को बाहर नहीं निकालना चाहिये। अर्थात् यदि एक पौंड रूई डाली है तो उसका भार जब तक १० पौंड न हो जाय तब तक उसे बाहर नहीं निकालना चाहिये। अब इसे मिट्टीके बर्तनोंमें डालकर एक फुट नीचे गढ़ा खोदकर पृथ्वीमें गाड़ देते हैं। इनके नीचे जलकी एक धारा निरन्तर बहती रहती है, जिसका तात्पर्य यह है कि इन बर्तनोंको गर्मीसे जैसे भी हो सके बचा कर खूब ठंडकमें रखा जाय। अब, यदि रासायनिक

× गंधकाम्लका प्रयोजन केवल सम्मेलनमें पैदा हुई जलकी मात्राको दूर कर देना है।

क्रिया सर्वांशमें ठीक और पूरी हुई है तो दो दिन बाद हमें एक नया पदार्थ प्राप्त होगा जिसका नाम 'नाइट्रोसैल्यूलोज़' है।

'गन कौटन'को तैयार करनेमें भी इसी प्रकार की क्रिया है और उसमें किसी विशेष प्रकारकी कठिनाई नहीं होती। किन्तु 'नाइट्रोग्लिसरीन' को ठीक ठीक तैयार करना बड़ी कठिनाई और अत्यन्त सावधानी का काम है। इसे तैयार करने के लिए सर्वथा पृथक् एक विशेष क्षेत्रमें ऐसे मकान खड़े किये जाते हैं जो चारों ओरसे घास फूस आदि युक्त मिट्टीसे भली भांति ढके हुए होते हैं। मकान सभी लकड़ी के तैय्यार किए जाते हैं और उनमें ईंट या लोहे आदिका कुछ भी भाग नहीं होता। ऐसे मकानोंके नीचे उनकी तह-में एक मकानसे दूसरे मकान तक लकड़ीके ऐसे नल लगे रहते हैं जिनमें पानीकी अनवरत धारा बहती है। इन सब उपकरणोंका उद्देश्य यही है कि मकान सब प्रकारसे सुरक्षित तथा ठंडे रहें। मकानोंको चारों ओरसे छतों तक घास फूस युक्त मिट्टीसे ढांप रखनेका भी यही तात्पर्य है कि स्फो-टनके समय उसका प्रभाव दूर दूर तक न जाकर वहीं मिट्टी, घास फूस, और लकड़ी जैसी दबदबी सतहमें ही समाप्त हो जाय और उससे दूर दूर तक हानि न पहुँचे।

इसके अतिरिक्त वहां काम करने वालोंको दो बातें सदा ध्यानमें रखनी चाहियें। प्रथम तो यह कि उन्हें कारखानेमें कभी भूलकर भी नंगे पांव नहीं प्रवेश करना चाहिये चूं कि उनके नाखून ही स्फोटकके अत्यन्त प्रबल कारण बन सकते हैं। और दूसरी बात यह कि कारख़ानेसे बाहर निक-लते ही उन्हे अपने सारे वस्त्र बदल लेने चाहियें। यदि वस्त्र न बदले जायँ तो यह अत्यंत हानिकारक सिद्ध होंगे। नाइट्रोग्लिसरीनसे युक्त वस्त्रों वाले एक मनुष्यकी उपमा हम एक चलते फिरते टार-पीडो से दे सकते हैं जो न जाने कब भड़क सकता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि नाइट्रो-ग्लिसरीनको धोनेके लिए बने हुए पानीके भरे पात्र ( buckets ) केवल सूर्यकी ही गर्मी पाकर स्वतः भड़क उठते हैं और उस समय बड़ी हानि पहुँचती है। तात्पर्य, नाइट्रोग्लिसरीनके कारख़ानेमें काम करने वालोंका जीवन बड़ी ही आपत्ति और हर समय भयकी अवस्थामें पड़ा रहता है अतः उन्हें सदा सावधानीसे काम करना चाहिये।

उपर्युक्त स्फोटकको तैय्यार करनेके लिए पहिला काम ग्लिसरीनको नत्रजनित ( nitrated ) करनेका है। इसके लिए एक नत्रजनीकरणगृह ( nitrating house ) बना होता है जिसमें कि एक सीसेका बड़ा चौड़ा, गहरा तालाब सा बना होता है। इसमें नत्रिकाम्ल और गंधकाम्लका मेल पहिलेसे ही पड़ा रहता है और इसमें ग्लिसरीन-की एक अनवरत धारा गिरती रहती है। इस प्रकारसे उस एक सीसेके बड़े तालाबमें तीनोंका मिश्रण होता रहता है। इस तालाबके पास कुछ दूरी पर एक निरीक्षक इस प्रयोजनसे लिए बिठाया जाता है कि वह आदिसे अन्त तक वहां तापमानको बढ़नेसे रोकता रहे। यदि तापमानके बढ़नेकी सम्भावना भी हो तो दबी हुई वायु ( compressed air ) के उपकरणों द्वारा उसे कम कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त, उस बड़े तालाबके चारों ओर ठंडे पानीकी एक धारा निर-न्तर बहती रहती है। इस प्रकार लगभग आधे घंटेमें नत्रजनीभवनकी क्रिया समाप्त हो जाती है और कच्चा ( raw ) नाइट्रोग्लिसरीन तैय्यार हो जाती है। अब इसे पृथक्करणभवन ( sepaiting house ) में लाकर इसमेंसे अम्लीय भागको पृथक् कर लेते हैं। इस पृथक्की हुई नाइट्रोग्लिस-रिनको सीसेके नलों द्वारा छानने वाले घर ( filter house ) में से लेजा कर थिराने वाले घर ( set-tling honce ) में ले जाते हैं जहां कि एक दिन पड़े रहनेके बाद इसका पानी वाला भाग इससे पृथक् हो जाता है और शुद्ध, नाइट्रोग्लिसरिन प्राप्त हो जाती है।

अब इससे डायनामाइट, कार्डाइट, तथा अन्य स्फोटक पदार्थ तैय्यार किये जाते हैं। 'कार्डाइट' लम्बी रस्सीके आकारका स्फोटक पदार्थ होता है। यह नाइट्रोग्लिसरिन और गनकाटनको ( अम्ल द्वारा ) मिलानेसे प्राप्त कर सकते हैं।

इनके अतिरिक्त 'पिक्रिक ऐसिड' नामका एक और भी भयंकर स्फोटक पदार्थ है जिसे 'कोलटार' द्वारा तैय्यार करते हैं। सं० १६४३ से पहिले जब इसको स्फोटक शक्तिका ज्ञान नहीं हुआ था। इसे पीला रंग देनेके लिए ही प्रयुक्त किया जाता था। किन्तु सं० १६४३ में एक दिन मांचिस्टरकी रंगकी प्रयोगशालामें इसे उपयोग करते समय एकाएक स्फोट हुआ तबसे वैज्ञानिकोंका ध्यान इसकी स्फोटक शक्तिकी ओर भी हुआ। पिघलाने पर इसका रंग शुद्ध शहदकी भांति हो जाता है। पिघली अवस्थामें ही इसमें अलकोहल वा ऐसिटोनमें घुली हुई गनकाटनको डाल देनेसे आधुनिक गोलोंके लिए एक बड़ा उत्तम स्फोटक तैय्यार हो जाता है। आजकल खान खोदने और सुरंगादि खोदनेके लिए जितने भी स्फोटक तैय्यार किये जाते हैं प्रायः उन सभीमें 'पिक्रिक ऐसिड' किसी न किसी अनुपातमें विद्यमान रहता है।

---

# फूल वाले पौदोंमें उत्पत्ति-प्रकार

[ ले०—श्री बेनीचरण ]

[ नोट—इस लेखके लिखनेमें Lowsons' Text-book of Botany" नामक पुस्तक से विशेष सहायता मिली है ]

वसन्त ऋतुमें भांति भांतिके रङ्ग बिरङ्गे फूल देखनेमें आते हैं। कोई चटकीला लाल, कोई बिल्कुल सुफ़ेद, कोई बैजनी, कोई ऊदा, तात्पर्य यह कि हज़ारों रङ्गके, अनेक आकार वाले, सुगन्धमय और निर्गन्ध फूल सब कहीं दीख पड़े होंगे। परन्तु क्या कभी यह जाननेकी इच्छा भी हुई कि फूलों का प्रयोजन (function) क्या है और वह उसे किस प्रकार सिद्ध करते हैं? यदि यह बातें जानने की इच्छा हो, तो आइये आज फूलोंकी रचना पर विचार करें और यह पता चलाएँ कि प्रकृति-माता के अनुपम अभिनयमें उनका भाग कौन सा है और वह उसे कैसे पूर्ण करते हैं।

यद्यपि फूलोंके आकार विविध और अनेक हैं, तो भी उनमें पाये जानेवाले अवयव-विशेष (parts) बहुधा चार ही प्रकारके होते हैं—प्रथम, चटकीली सुन्दर पँखड़ियाँ वा दल (petals), द्वितीय पँखड़ियोंसे बाहिरकी ओर छोटे छोटे हरे बाह्य-पत्र (sepals), तृतीय पुंकेसर (stamens) और चतुर्थ स्त्री केसर-पत्र (corpels), स्त्री केसर-पत्रोंके मिलनेसे स्त्री केसर (pistil) बनता है, जिसके ऊपर वाले भागको रज पात्र (stigma) बीच वाले भागको गर्भनाल (style) और नीचे वाले भागको गर्भाशय (ovary) कहते हैं। गर्भाशयके भीतर एक व अधिक कलल (ovules) रहते हैं, जिनका साधारण-स्वरूप (general structure) आगे बताया जायगा। पुंकेसरका आकार डोरे जैसा होता है परन्तु उसके ऊपरके भागमें दो आपसमें चिपटी हुई कोथलियाँ ( anther lobes ) होती हैं जिनका एकत्र नाम रेत-पात्र ( anthers ) है। पुंकेसरके नीचेके लम्बे भागको सूत्र (filament) और दोनों कोथलियोंको जोड़ने वाले भागको संयोजक ( connective ) कहते हैं। ( इन भागों-को समझनेके लिये देखो, चित्र २६ व २७ )

बाह्य पत्र किन्हीं फूलोंमें जुड़े हुए पाये जाते हैं और उस दशामें उन्हें संयुक्त बाह्यपत्र ( gamssepalous calyx ) कहते हैं। यदि आपसमें जुड़े हुए न हों—अलग अलग हों, तो बाह्यपत्रोंको असंयुक्त ( polysepalous ) कहते हैं। इस ही प्रकार अनेक फूलोंमें संयुक्त और औरोंमें असंयुक्त पँखड़ियाँ मिलती हैं।
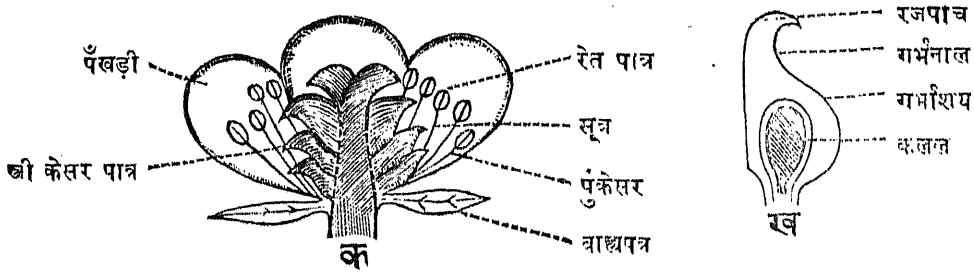
चित्र २६—क, बटर कप ( Butter-cup ) का फूल । ख, बटर कपके फूलका एक स्त्रीकेसर
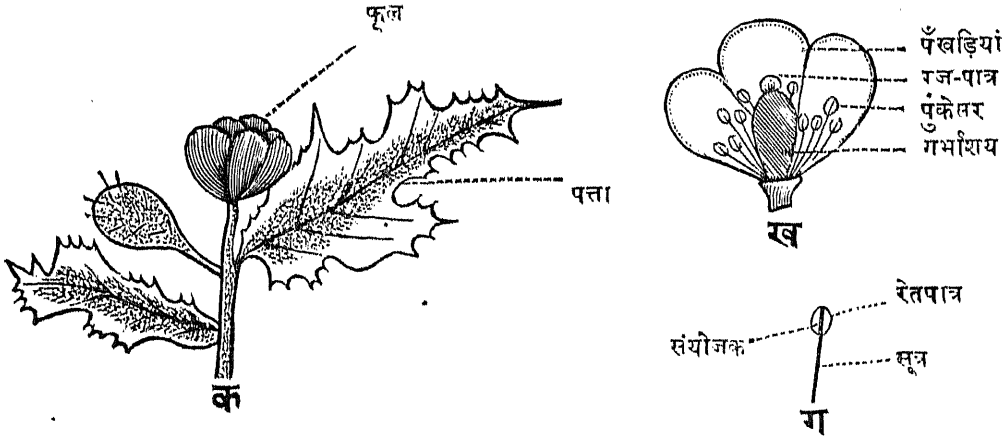
चित्र २७—क, आर्गिमोनि मेक्सिकाना ( Argemone Mexicana ) की एक शाखा । ख, आर्गिमोनि का एक फूल । ग, एक पुंकेसर ।

रेत-पात्रका सूत्रसे कई भाँतिका सम्बन्ध (attachment) हो सकता है । ( देखो चित्र २८ ) कभी रेतपात्र सूत्रके बिल्कुल ऊपर लगा होता है (Innate or basifixed attachmet) । कभी संयोजक और सूत्र आपसमें जुड़े होनेके कारण ऐसा ज्ञात होता है कि सूत्र रेत-पात्रके पीछे पीछे ऊपर तक चला गया है ( adnate ) । कभी सूत्र रेतपात्रके पृष्ठ भागसे इस प्रकार संयुक्त होता है कि रेतपात्र हिलजुल नहीं सकता ( dorsifixed ); तथा कभी जुड़ा तो पृष्ठ भागसे ही होता है, परन्तु इस प्रकार कि रेतपात्र तुलाके समान हिलजुल भी सकता है ( versatile ) । किसी किसी फूलमें
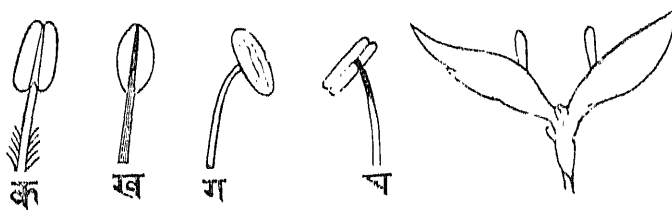
चित्र २८—सूत्र और रेत-पात्रके संयोगकी रीतियाँ—क, Innate; ख, adnate; ग, dorsifixed; घ, versatile.

बन्ध्य पुंकेसर ( staminodes ) भी होते हैं; और कहीं कहीं पुंकेसर पँखड़ियों पर उगे हुए भी पाये जाते हैं ( epipetalous stamens ) ।

स्त्रीकेसर यदि एक पत्रसे बना हो तो एक पत्रवान् (monocorpellary), और अधिक पत्रोंसे बना हो तो अनेक पत्रवान् (Polycarpellary) कहलाता है । यदि स्त्रीकेसर पत्रों द्वारा अलग अलग अनेक गर्भाशय इस प्रकार बने हों कि एक गर्भाशय रचनामें केवल एक पत्र प्रयुक्त हो तो स्त्रीकेसरको बहु-गर्भाशयवान् ( apocarpous pistil ) कहते हैं । इस ही प्रकार, यदि कई पत्रोंके मिलने से एक गर्भाशय बना हो, तो स्त्रीकेसरको अल्प गर्भाशयवान् कहते हैं ।

गर्भाशयमें कललके लगे रहनेके अनेक प्रकार हैं । कभी यह पत्र वा पत्रोंके संयोग-स्थानमें एक भाँतिके गद्देसे ( ( placenta ) पर लगे रहते हैं । कभी गर्भाशयके नीचेके भागसे और कभी ऊपरके भागसे जुड़े रहते हैं । कभी एक दण्ड-विशेष पर भी लगे रहते हैं ।

कोथलियोंके प्रायः दो खण्ड—पराग-पुट ( pollen-sac ) होते हैं । उनके भीतर पराग भरा रहता है जो छोटे छोटे दानोंके आकारका होता है । परागके दानोंके दो आवरण होते हैं—बाहरका आवरण, बाह्य-पटल ( exine ); अन्दरका आवरण, अन्तर्पटल ( intine ) । देखो चित्र २६ ।
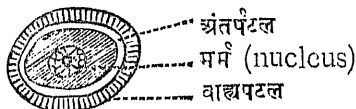
चित्र २६—परागका एक दाना ( pollen grain )

कललके विविध भागोंके समझनेके लिए चित्र ३० को देखिये । वह एक क्षुद्ररज्जु ( funicle ) के द्वारा गर्भाशयसे जुड़ा है । उसका अधिकतर भाग एक प्रकारके कोष* विशेषों (Parenchymatous) का बना है, जिसे 'न्यूसेलस्' ( nucellus ) कहते हैं और जिसके ऊपर एक वा दो आवरण ( integuments ) चिपटे होते हैं । आवरण कललको 'न्यूसेलस्'के निम्नभाग ( base ) से लगा कर ऊपर तक ढाँपे रहते हैं; परन्तु ऊपरका थोड़ासा भाग आवरणसे ढका न होनेके कारण छिद्र-मय ज्ञात होता है । इस छिद्रको सूक्ष्म रन्ध्र (micropyle) कहते हैं । 'न्यूसेलस्'के उस भागको, जिसमेंसे आवरण निकलते दीख पड़ते हैं आवरणोद्भव ( chalaza ) कहते हैं । कललके जिस भागमें क्षुद्र रज्जु जुड़ा रहता है उसे 'हाइलम' (hylum) कहते हैं ।

'न्यूसेलस्' के क्षुद्र-रन्ध्रकी ओर वाले भागमें एक बड़ा कोष होता है, जिसे गर्भकोष (embryo-sac) कहते हैं । इस कोषका आकार चित्र ३० ख में दिखाया गया है । इसके दोनों किनारों पर तीन तीन छोटे कोष होते हैं । रन्ध्रकी ओर वाले किनारे पर जो तीनोंमें बड़ा कोष होता है उसे अण्ड ( oosphere ) कहते हैं । पासके दोनों छोटे कोष सहायक कोष ( synergidoe ) हैं । दूसरी ओरके तीनों कोष प्रतिमुख-कोष (antipodal cells) कहलाते हैं । प्रतिमुख कोष शेष तीनों कोषोंसे इस बातमें भिन्न हैं कि इनके बाहिरकी ओर कोष-पटल (cell-wall) होता है; परन्तु अण्ड तथा सहायक कोष कोष-पटल न होनेके कारण नग्न कहे जा सकते हैं । गर्भकोषके बीचमें एक बड़ा सा मर्म ( nucleus ) होता है; उसे प्रायः निर्णायक मर्म (definitive nucleus) कहते हैं ।

साधारणतया कललका आकार उपरोक्त जैसा ही होता है; परन्तु कललके मुख्य भागके मुड़े वा

*पशु तथा वृक्ष—दोनोंका शरीर छोटे छोटे कोषोंसे वैसे ही बना होता है, जैसे ईंटोंसे कोई मकान; परन्तु कोष ( cell ) बिना सूक्ष्म दर्शक यंत्र ( microscope ) के दीख नहीं पड़ते ।

सीधे होनेके कारण कई भाँतिकी आकृतिके कलल मिल सकते हैं।

प्रायः फूल वाले पौदोंमें जब एक फूलका पराग उस ही वा अन्य फूलके रजपात्र पर गिरता और वहाँसे गर्भनालकी राह गर्भाशयमें पहुँच कललसे संयोग करता है तब बीज-उत्पत्ति होती है तथा बीजसे अन्य पौदे उपजते हैं।

रजपात्र पर पराग गिरनेकी क्रियाको परागोत्पतन (pollination) कहते हैं। यह क्रिया प्रकृतिमें कई भाँतिसे हुआ करती है। कभी पराग वायुमें उड़ता उड़ता रजपात्र पर जा गिरता है (anemophilous flowers), कभी पानीमें बहता हुआ रजपात्र तक जा पहुँचता (hydrophilous) और कभी मक्खियों, तितलियों आदिके द्वारा पहुंचाया जाता है (entomophilous, or zoophilous)
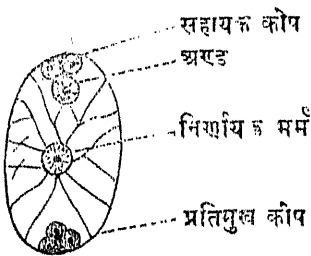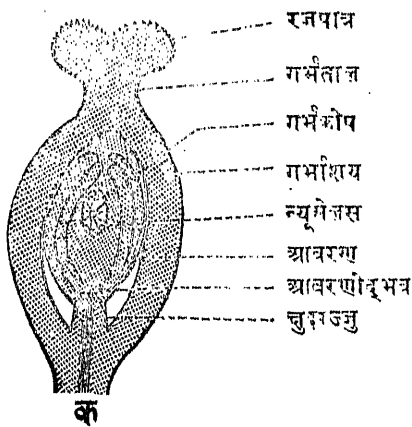
चित्र ३०—कललकी आकृति। क—गर्भाशय एक कलल सहित; ख—गर्भ-कोष।

पहिले पहिल परागके दाने एक कोष वाले होते हैं, परन्तु शीघ्र ही पराग कोषको छोड़नेसे थोड़ा पहिले दो कोषोंमें विभक्त हो जाते हैं। इनमेंसे उत्पत्ति कोष (generative cell) दूसरे अर्थात् हरितक कोष (vegetative cell) से छोटा होता है और उसके भीतर पड़ा रहता है। वह विभक्त होकर दो पुंकोषों (male cells or gametes) की उत्पत्ति करता है, जो दोनों संयोग-क्रिया (fertilisation) में काम आते हैं (देखो चित्र ३१ क)। रजपात्र पर पहुँचनेपर हरितक कोष एक ओरसे फट जाता है। और इस प्रकार एक पतली नली (pollen tube) बन जाती है। यह नली गर्भनालमें होकर, कललके निकट पहुंच, सूक्ष्मरन्ध्रकी राह उसमें धँस जाती है। सहायक-कोषोंमें से इस ही समय कुछ द्रव (sap) निकल कर परागकी नलीमें सोख जाता है, तथा उसके मुँहको फुला कर पुंकोषोंके बाहर आने और अण्डसे संयुक्त होनेमें सहायता देता है। एक पुंकोष तो इस प्रकार अण्डसे संयोग होनेके काममें आता है; दूसरा निर्णायक मर्मसे मिल कर वीर्यान्न-मर्म (endosperm necleus) बना देता है, जिसके विभक्त होनेसे वीर्यान्न (endospern) बनता है।

संयोग-क्रिया (fertilsation) से गर्भकोष आदिको नये परिवर्तनोंके लिए प्रेरणा (stimulus) मिलती है। सबसे पहिले संयोगाण्ड (oospore) के दो भाग—ऊपर तथा नीचेके कोष—हो जाते हैं। ऊपरके कोषके विभक्त होनेसे 'सस्पेन्सर' (suspensor) और नीचेके कोषके विभक्त होनेसे 'एम्ब्रियोनल मास' (embrynal mass) बनता है। नीचे और ऊपरके कोषोंके विभागमें भेद यह है कि ऊपरका कोष समानान्तर (parallel) कोष-पटलों (cell-walls) से और नीचेका कोष तीन, कोण (right angle) बनाने वाले कोष-पटलोंसे विभक्त होता है (देखो चित्र ३२)। नीचेके कोषके विभागसे बने हुए आठ कोष पुनर्विभक्त होकर बीजमें पाये जाने वाले विविध भाग बना

देते हैं। इन भागोंको समझनेके लिए मटर तथा अरण्डके बीजोंका अध्ययन उचित और आवश्यक प्रतीत होता है।
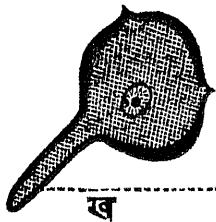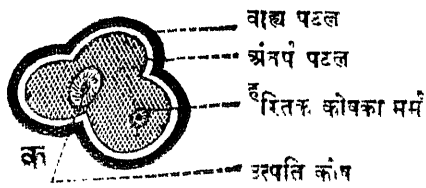
चित्र ३१—क, परागका दाना परागोत्पतनके कुछ पहिले
ख, परागकी नली

**मटरका बीज वा दाना** ( seed of pea ) मटरकी फली ( pod ) में लगा रहता है। उसके एक ओर पतला, लम्बा, सुफ़ेद दाग़ सा होता है जिसे हाइलम् (hilum) कहते हैं (देखो चित्र ३३ क) हाइलम्की ही तरफ़से बीज फलीमें लगा था। इसके एक ओर बारीक छेद होता है, जिसे सूक्ष्म-रन्ध्र ( micropyle ) कहते हैं। यदि बीजके छिलके को उतार दें तो अन्दर दो बड़े बड़े वीर्य-पत्र ( cotyledons ) मिलेंगे, जिनके बीचमें छोटीसी वीर्य शाखा ( plumule ) मिलेगी। वीर्य-शाखाकी दूसरी ओर जो नुकीली आकृति वाला भाग है उसे वीर्य-मूल ( radicle ) कहते हैं (देखो चित्र ३३)

अरण्डके बीजको पानीमें रखनेसे उसका एक ओरका भाग परिल ( aril ) फूल जाता है।
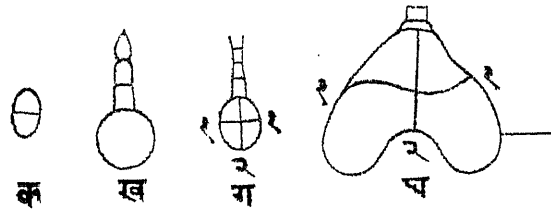
चित्र ३२ संयोगाण्डका विभाग
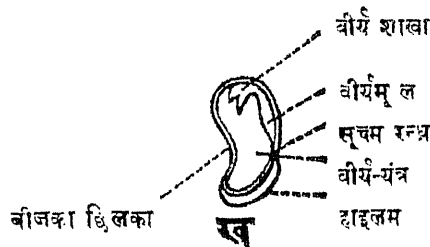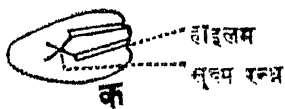
चित्र ३३ मटरका बीज और अंकुर
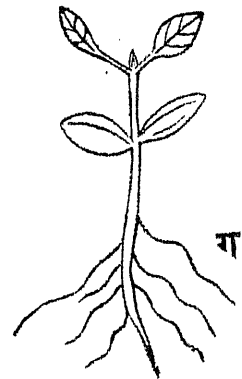
बीजके छिलकेके भीतर सुफ़ेद वीर्यान्न रहता है, जो बीजके उपजनेके समय काममें आता है। वीर्यान्नके अन्दर वीर्य पत्र आदि भाग पूर्ववत् ही रहते हैं। (देखो चित्र ३४)
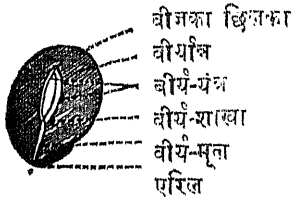
चित्र ३४—अरण्डका बीज

'एम्ब्रियोनलमास'के पिछले अर्थात् सस्पेन्सरसे दूर वाले चारों कोषोंसे वीर्य पत्र तथा वीर्य शाखा बनते हैं। एवं सस्पेन्सरके निकट जो शेष चार कोष होते हैं उनसे वीर्य शाखाका वीर्य पत्रोंसे नीचे वाला भाग ( hypocotyl ) तथा सस्पेन्सरका अन्तिम ( terminal ) सेलसे वीर्य मूलका पिछला भाग बनता है।

यहाँ पर यह बतलाना आवश्यक ज्ञात पड़ता है कि कललसे संयोगोपरान्त विविध परिवर्तन होने पर जो बीज बनता है वह प्रायः गर्भकोष तथा पासके भागोंके सूखे हुए अवशेषोंसे घिरा रहता है। कुलको फल ( fruit ) कहते हैं। फल बीजकी रक्षा करनेके अतिरिक्त, प्रवास ( seed-dispersal ) अर्थात् अनुकूल भूमिमें बोये जानेकी प्राकृतिक क्रियामें भी सहायता देता है।

बीजके पक जाने पर उसके अनुकूल धरतीमें गिरनेकी आवश्यकता होती है, अन्यथा बीज बंजर वा अनुपजाऊ पृथ्वीमें गिर कर सड़ गल जायगा, उपजेगा नहीं। यदि बहुतसे बीज पास पास अच्छी पृथ्वीमें पड़े हों तो वह उपजेंगे तो सही, परन्तु बनस्पति-भोजनके थोड़ा होनेके कारण, उन नन्हे नन्हे पौदोंमें जीवनके लिए युद्ध ( struggle for life ) आरम्भ हो जायगा और बलिष्ठ पौदोंको छोड़ कर शेषको भूखों मरना होगा। इस ही कारणोंसे पौदोंमें प्रवास-क्रिया ( dispersal of seeds ) हुआ करती है। यह क्रिया पौदोंमें विविध भाँतिसे सम्पादित होती है। उदाहरणार्थ कभी वायुके द्वारा कभी पानीके द्वारा, कभी जीवों द्वारा। इस क्रियाकी तुलना कृषकके बीज बखेरने से कर सकते हैं। विज्ञानके भाग ४ की संख्या ५ में, इस क्रियाका वर्णन बीजोंका प्रवास नामसे छप चुका है। अतएव यहाँ पर इसका विवेचन करनेकी आवश्यकता ज्ञात नहीं होती।

यदि बीज अच्छी ज़मीनमें गिरता है तो अन्य अवस्थाओंके अनुकूल होने पर कुछ समय पश्चात् उग आता है। बीज उगनेके लिये प्रायः जल, वायु, तथा गर्मीकी आवश्यकता होती है। पानी सोख जानेसे बीज फूल जाता है और वीर्यान्न वा वीर्य पत्रोंमें भरे हुए भोजनका प्रयोग कर कुछ ही समयमें अङ्कुरके रूपसे उग आता है। वीर्य-पत्र प्रायः अङ्कुरके पहिले पत्ते वीर्य शाखा तना, और वीर्य-मूल जड़ बन जाते हैं। (देखो चित्र ३३ ग)

ऊपर कही गई सब क्रियाओंका सार यह है:—पहिले, परागका दाना दो पुंकोषों तथा हरितक-कोषमें विभक्त हो जाता है और रजपात्र पर गिर कर हरितक-कोषकी एक नलकी बनाता है जो गर्भनालकी राह कललके पास पहुँचती तथा द्रवको सोख कर फूल जाती है। नलकोमेंसे होकर एक पुंकोष अण्डसे और दूसरा निर्णायक मर्मसे संयुक्त हो जाता है। अण्ड और पुंकोषके संयोगसे संयोगाण्ड, तथा निर्णायक मर्म और पुंकोषके संयोगसे वीर्यान्न मर्म बन जाता है। इन दोनोंकी वृद्धि ( development ) से बीजके आन्तरिक भाग तथा वीर्यान्न बनते हैं। इस प्रकार बना हुआ बीज प्रवास-क्रिया द्वारा अनुकूल भूमिमें गिर कर उग खड़ा होता है।*

* उपरोक्त लेख वस्तुतः वनस्पति-शास्त्रके इस भागका स्थूल-वर्णन मात्र है। जो पाठक अधिक जानना चाहें इस विषयकी किसी अच्छी पुस्तकके सहारे प्रकृतिका अध्ययन करें—लेखक

# भोजन ही विष और अमृत है

[ ले०—पं० जगपति चतुर्वेदी ]

आज कलके सभ्य समाजके पुरुषोंमें कोई भी ऐसा न मिलेगा जो स्वयं अपने शरीरमें व्याधि उत्पन्न करने की उपाय न रखता हो। हाँ यह है कि किसीमें यह दोष कम मात्रामें होता है किन्तु उतने हीसे सवेरे शाम सिर भारी रहना, शरीरमें सुस्ती आना, जुकाम होना, पाचन शक्तिका दुर्बल होना साधारण बात है, इसी प्रकारके अनेक छोटे मोटे रोग जब तब घेरे ही रहते हैं। इन सब व्याधियों का एक मात्र कारण भोजन का दुष्प्रयोग है। इनसे रक्षा पाने की औषधि भी भोजनका उचित रीतिसे काममें लाना ही है। यह बात निश्चित है और चिकित्सक लोग भी इसको मानने पर तैयार हैं। बहुधा खाद्य पदार्थ जो हम भोजन करते हैं अनावश्यक होते हैं और शरीर पोषण में पूर्णतया सहायता नहीं पहुंचा सकते हम जब अनियमित भोजन करनेका स्वभाव नहीं छोड़ते तो रोग ग्रस्त हो जाते हैं। मनुष्य नित्य का आहार जिससे स्वास्थ्यका सुधार और आनन्द प्राप्त होता है कितनी असावधानीसे करते हैं?

यह बड़े दुःख की बात है कि अभी तक सभ्य कहाने वाले मनुष्योंने अपने आहारादिके नियम बनानेमें अपना ध्यान आकर्षित नहीं किया है जो सब दुःखों की जड़ है। परन्तु इसी मनुष्यने पशुपालनमें कितनी दक्षता प्राप्त कर ली है? जो कुछ पशुओंके स्वास्थ्यवर्द्धनसे द्रव्य प्राप्त होता है वह रोग की औषधि के लिये साधारण व्यक्ति के घर से वैद्यों के भंडारमें चला जाता है हमारा शरीर अनेक मौलिकों से बना है और हम जब परिश्रम करते हैं तो इनमें से कुछ का ह्रास होजाता है। इन्हींकी पूर्ति के लिए भोजन की आवश्यकता होती है। यह ह्रास भी भिन्न भिन्न प्रकार के परिश्रम से भिन्न२ प्रकार का होता है। इस लिये भिन्न भिन्न व्यावसाय वालों को भिन्न २ भोजन की आवश्यकता होती है। जैसे एक मल्लाह को अपने शरीर के परिश्रम के लिए कर्बन और केलसियमकी अधिक आवश्यकता होगी परन्तु एक लेखक को अपने मानसिक परिश्रमके लिए फासफोरसकी अधिक आवश्यता होगी। थाल सुसज्जित करनेके लिए भोजन को सुस्वादु करते करते बहुत से ऐसे पदार्थ मिश्रित कर देते हैं जिनकी मनुष्यको शरीर पोषणमें बिलकुल आवश्यकता नहीं। इन भोजनों को देखनेसे ही झूठमूठ भूख उत्पन्न हो जाती है और अनावश्यक स्टार्च, शर्करा इत्यादि मिले पदार्थोंका ही भूख शान्त करने के लिए व्यवहार करते हैं।

नित्य परिश्रमसे विनष्ट मौलिकों की पूर्तिके लिए किसी प्रकार की औषधि उपयुक्त नहीं हो सकती उसके लिए भोजन काउचित मात्रामें ठीक ठीक प्रयोग ही आवश्यक है। हम लोग सभ्यता तथा कला कौशलको एक उच्च स्थल पर पहुंचा चुके हैं अतएव सभी सामान भी सुसज्जित रखने लगे हैं भोजन में बनावट की इतनी अधिक मात्रा हो रही है कि देख कर आश्चर्य होता है। लोग हानिप्रद पदार्थों, भाँति भाँति की मिठाइयों तथा अनेक व्यंजनों को दिन में तीन चार बार ठूस २ कर खाते हैं। वे यह नहीं सोचते कि कि उन्हें भोजन की यथार्थ में आवश्यकता है या नहीं और समझते हैं कि वे स्वास्थ्यके लिए बहुत अच्छी उपाय कर रहे हैं। यह उनकी सदा शिकायत रहती है कि वे खाते तो इतने बढ़िया बढ़िया पदार्थ हैं किन्तु सदा सिरमें, पेटमें और शरीरके अन्य २ अंगोंमें दर्द हुआ करता है। उनका रोग महाराज पीछा नहीं छोड़ते। वे लोग घड़ी देख कर ठीक समय पर भोजन करेंगे किन्तु भूख न मालूम पड़ने पर भी समय का ध्यान रख आमाशयमें दुबारा भोजन ठूस लेंगे। इस प्रकारके नियमित समयके भोजनसे तो लाभके स्थान पर हानि ही अधिक होती है।

हमारे शरीरको सर्वदा कुछ समय पर विश्राम की आवश्यकता होती है किन्तु पेट महानुभाव की पूजा करनेसे भी कभी कोई चूकता है ? उनको जब व्याकुलता होती है तो पित्त रोग वा वमनके बहाने बल पूर्वक विश्राम कर लेते हैं। यहां पर एक कहानी याद आ रही है। एक धन-सम्पन्न व्यक्ति को सूझी कि किसी प्रकार से स्वास्थ्य लाभ करना चाहिये। इसी विचारमें उसने सारा भूमंडल छान डाला किन्तु उसे कहीं किसी बड़े भोजनालय वा अन्य सुसज्जित भोजन-भवनोंमें भी कुछ लाभ नहीं प्रतीत हुआ। उसके स्वरूपसे मालूम होता था कि उसे बहुत बढ़िया और उत्तम भोजन उपलब्ध है परन्तु जिस फल की वह इच्छा करता था वह नहीं प्राप्त हुआ है।

वह बड़े बड़े उद्भट चिकित्सकों का परामर्श लेते २ थक गया किन्तु संयोग से उसे प्रकृति का आश्रय लेना पड़ा। एक बार जब वह जहाजमें भ्रमण कर रहा था एक बड़ा भयंकर तुफान आ जाने के कारण उसका जहाज समुद्रमें डूब गया। संयोगसे वह तैरता तैरता एक मूंगेके टापूसे जा लगा। उसे वहां पर भूखों मरने की आशंका हुई। वहां पर अकेले रहनेके कारण उसे जंगली फलों पर अपना जीवन निर्वाह करना पड़ा। इस भोजनसे उसने अपने स्वास्थ्यमें अद्भुत परिवर्तन देखा तो बड़े आश्चर्य में पड़ गया, प्रकृति ने वहां जो भोजन दिया उससे धनवान व्यक्तिके शरीर में जो विषाक्त अम्ल प्रविष्ट हो गया था उसका सर्वथा नाश हो गया और उसके स्थान पर उपयुक्त पदार्थ आमिले जिससे शरीर पुष्ट होगया। इस प्रकार प्रकृतिके प्रभाव ने मनुष्यके दूषित भोजनोंको शुद्ध कर हम लोगों को कैसा अद्भुत चमत्कार दिखाया ? वह महाजन प्राकृतिक पदार्थोंके खानेपर वाध्य हो कर अपने रक्त संस्थानका संशोधन कर बिलकुल स्वस्थ होगया जो कितनी ही सम्पत्ति व्यय कर किसी औषधि तथा सुस्वादु भोजनसे कभी स्वप्नमें भी सम्भव न था। कुछ समय बाद एक जहाज वहां पर आया और उसे अपने देश को ले गया किन्तु वह अच्छी तरह पाठ पढ़ चुका था, सबक सीख चुका था चिकित्सकों को देख चुका था अतएव देश को लौटने पर भी उसने अपना साधारण द्वीपवाला फलाहार का स्वभाव न छोड़ा और सभी लोगों को आयु बढ़ा कर आनन्द पूर्वक रहने की शिक्षा देता हुआ १०३ वर्ष तक जीवित रहा।

---

## विचित्र-महल

### टस्केनीकी मीनार

इटलीमें टस्केनी एक प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ बहुतसे प्रसिद्ध चित्रकार हुए हैं। यहाँ पर एक तिर्छी मीनार है। १२०६ सं० के निकट एक जर्मन शिलाकार विल्हेलम नामक व्यक्ति ने गिरजाके निकट घंटा घरके रूपमें इस वृत्ताकार मीनारका निर्माण किया था। इसका व्यास ५० फीट है और १८८ फीट ऊँची बनी है। यह आठ महला है और प्रत्येक की समाप्ति पर बाहर की ओर बार्जे बने हुए हैं। हर एक भाग धीरे धीरे ऊपरकी ओर पतला होता गया है।

इस स्तम्भमें केवल श्वेत संगमरमर लगा हुआ है। ऊपरकी छत बहुत चौड़ी है और ऊपरसे छाई हुई है। यहांसे बहुत दूर तककी सुन्दर भूमिका भव्य दृश्य दिखाई पड़ता है।

इस स्तम्भका टेढ़ापन देख कर आश्चर्य होता है। यदि इसका टेढ़ापन नापनेके लिए इसके शिखरपरसे साहुल (एक रस्सी) लटकाई जाय तो वह नीचे आधारसे १५ फीटकी दूरी पर पहुंचेगी। सभी देखने वालोंको यही समझ पड़ता है कि वह गिर जायेगा किन्तु यह अनेक शताब्दियों तक इसी प्रकार खड़ा रहेगा क्योंकि यह प्रकृतिके नियमका उल्लंघन नहीं करता यद्यपि थोड़ेसे और अधिक

झुकावसे होता तो गिर पड़ता। यह पृथ्वीके आकर्षणके नियमका अनुसरण करता है इसीलिए इतना बोझा सँभाल सका है।

इसके टेढ़ेपनके कारणके विषयमें लोगोंकी भिन्न भिन्न सम्मतियां हैं। केपन वेसिनने हालमें बहुत सी जांच करके यह विचारा है कि शिल्पज्ञ ने जान बूझकर इसे टेढ़ा बनाया था और इससे उसकी अत्यंत कुशलताका परिचय मिलता है। सर्व साधारण अब इस परिणाम पर पहुँचा है कि मीनार बनते समय एक ओर नींव धसती गई और निर्माण कालमें मीनार इतनी टेढ़ी हो गई।

नीरोका स्वर्ण महल

सम्राट नीरोका स्वर्ण-महल उसके शासन काल में अपरिमित व्ययके लिए प्रसिद्ध था। जब आग लगाने वालोंके कारण रोमका बहुत सा अंश जल कर राख हो गया तो लोग यह समझने लगे यह कांड उनके सम्राटकी आज्ञासे ही रचा गया है। इसके पश्चात स्वर्ण-महल निर्मित हुआ। लोगोंके दुखित हृदयके मनोरंजनके लिए उसने जलते हुए क्रिश्चियनों को जलते मसाल सा रखा और अपने लिए एक आदर्श स्वर्ग रचनेका प्रयत्न करने लगा। जल भुनकर राख हुए एक मील चौड़े भूमिभागको बृहद उपवन बनाया गया और उसमें कृत्रिम जलाशय, फुलवाड़ी तथा हरी हरी घासोंका मैदान तथा अनेक कुंज निर्मित किये गये। जलाशयके किनारे विशाल भवनोंकी श्रेणी बन गई। इस प्रकार एक मील तक बालखानोंकी श्रेणी बँध गई।

मध्यवर्ती भवनकी छत सोनेकी खपरैलसे बनी थी और श्वेत संगमरमरकी दीवालोंमें भी बहुमूल्य मोती और सोना जड़ा था। हाथी दांत, सोने और मणियोंसे छत और चौखटे भी सुशोभित थे। स्वर्गीय दृश्यसे ज्योनार-भवन सुशोभित था और धरातल घूमता हुआ बनाया गया था। आगन्तुक तारा अच्छादित आकाश में बैठे जान पड़ते थे। उनपर स्वर्ण निर्मित पात्रोंसे बहुमूल्य सुगंधि छिड़की जाती और हाथी दांत युक्त छतके छिद्रोंसे पुष्पोंकी वर्षा होती। जब राजकीय सेनाके राजद्रोह करनेके पश्चात् नीरोने अपने हाथों आत्मघात कर लिया तो उसके विशाल भवनोंका सौंदर्य अधिक दिनों न रह सका। एक पराक्रमी योद्धा वेस्पासियन ने सम्राट नीरोके सुरम्य भवनका विध्वंस कर दिया, जलाशयको सुखा डाला और इन्हीं भवनोंकी भूमिपर फिरसे रोम नगरका निर्माण किया।

कोलिजियम

कोलिज़ियम एक बड़ा भारी नाचघर था यहां पर तलवार चलाने वालों और जंगली जन्तुओंका युद्ध दिखाया जाता था। भवन अंडाकर बना हुआ था और चारों ओर दर्शकोंके बैठनेके स्थान बने हुए थे। इसकी सबसे अधिक लम्बाई ६१२ फीट और सबसे कम चौड़ाई ५१५ फीट थी। भवन १६० फीटसे भी ऊंचा था। इसमें चार कोठे थे और प्रत्येकमें ८० खंड तथा स्तम्भ बने थे। सम्पूर्ण भवनमें ८७,००० दर्शकोंके बैठनेका स्थान था और इनके अतिरिक्त १५००० दर्शक बीचके स्थानोंमें खड़े भी हो सकते थे। इतने विशाल भवन पर छत बनाना बहुत कठिन था अतएव सूर्यकी किरणोंसे दर्शकोंकी रक्षाके लिए शामियाना टांग देते थे। आधी उचाई यों ही छोड़ दी जाती जिससे वायु आ जा सके। इसके अतिरिक्त वायुके लिये दीवालोंमें भी छिद्र बने थे और उन्हीं छिद्रोंसे दर्शकों पर सुगंधित पदार्थ छिड़के जाते थे। रंग भूमिके नीचे जंगली जानवरों और युद्ध करने वाले मनुष्योंको सुख पहुंचानेके लिए सुन्दर स्थान बने हुए थे। वहीं पर बन्दी क्रिश्चियनोंके लिए जेल भी बने थे। जलका भी बड़ा अच्छा प्रबन्ध रखा गया था। समय पर रंग स्थलको सुरम्य जलाशयमें परिणत कर सकते थे। टिटस ने जरूसलमको विनष्ट करनेके पश्चात् ही इस भवनको पूरा किया। लोग कहते हैं कि उसने तीस हजार यहूदियोंको बन्दी बनाया था और उन्हीं दासोंकी सहायतासे कोलिज़ियमका

निर्माण हुआ। इस विजयी ने नाच गृहको उस मूर्खता पूर्ण कांडके राजकीय नगरसे भी अधिक अपूर्व कौतुकसे बड़े धूम धामसे खोला।

५००० जंगली पशु मल्लभूमिमें छोड़ दिये गये और निरस्त्र ईसाइयोंका एक समूह इन जंगली सिंह, शेर और चीतोंके सम्मुख बलि स्वरूप कर दिया गया। इन भयानक कृत्योंके पश्चात् भीतरका स्थान पानीसे भर दिया गया और छद्मभावसे जलयुद्धका स्थान बन गया। जब एक इसाई सम्राट ने इस अधर्मका मूलोच्छेद किया तब उस नाचघरके रक्त सिंचित कृत्यका अंत हुआ। वह सुदृढ़ भवन अब भी खड़ा है किन्तु भग्नावस्थ और विषाद पूर्ण दशामें, अनेक शताब्दियों तक यह भवन यथार्थमें पाषाणस्थली सा रहा और पोप, प्रधान पुरुष तथा युवराज अपने भवनके लिए यहाँसे प्रस्तर-खंड उठा ले जाते रहे। इसके भीतरकी भूमि आज कल पवित्र स्थान है और यहाँ प्रायः पूजा होती रहती है जहाँ इतने पुरुषों तथा महिलाओं ने सत्यकी बलि न कर अपना प्राण त्याग करनेमें तनिक भी संकोच नहीं किया।

प्राचीन खोह

भारतवर्षमें हजारों मन्दिर ऐसे हैं जो बौद्धोंके बनाये हैं उन्होंने बहुतसे पर्वतोंको खोद कर गुफा बनाया था।

एलोरामें सबसे अधिक आश्चर्य जनक गुफाएं हैं। बहुत सी गुफाएं तो ३ मील तक पहाड़ के अन्दर तक चली गई हैं और वे अनेक खंडोंमें विभक्त हैं जिनके छत विचित्र खुदे हुए बड़े बड़े खंभों पर अवलम्बित हैं। इन खंडोंमें कुछ ऊपरसे खुले हैं। इनमें जो सबसे बृहद मंडप है उसकी गहराई २७० फीट और चौड़ाई १५० फ़ीट है। इसकी छत चट्टानोंसे बनी है जो खंभों वा दीवालोंके सहारे खड़ी है। इस मंडपके चारों ओर खाली जगह है और सबको घेरता हुआ एक बारजा बना है।

एलीफेंटा की खोह

एलीफेंटाकी खोह बम्बई के निकट एक द्वीप पर है।

किन्तु अब उस मंदिरका आकार और उसकी दिखावट वर्षा और वायुसे विकृत हो गयी है। यहांका मंदिर बिल्कुल पहाड़में खुदी हुई एक गुफा है इसकी चौड़ाई २५० फीट और उंचाई केवल १५ फ़ीट है। प्रवेश द्वार चार बड़े पत्थरके स्तम्भोंसे बना है और भीतरके मार्गमें कई प्रकारके चित्र खुदे हुए हैं।

मंदिरकी प्रधान मूर्ति में ब्रह्मा, विष्णु और महेशके मुख बने हैं। एक हाथमें सर्प और खोपड़ी है और दूसरे हाथसे मनुष्योंको उपहार स्वरूप पुष्प और फल वितरण करते हैं। उस मंदिरके अंधकार और शान्तिसे वहांका दृश्य अत्यंत सुहावना लगता है जिसको फिर दुबारा देखनेकी अभिलाषा रहती है।

अलहम्बराका दुर्ग

अलहम्बराका प्राचीन मूरोंका दुर्ग जिसकी बाहरकी दीवाल लाल ईटोंसे बनी है कोई मुख्य स्थान नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसके अंतः भागमें अलहम्बराका भवन है जो उनके कला कौशलका आदर्श उस समय तक था जब स्पेन निवासियों ने ग्रेनाडा नगरसे मूरोंको भगाकर इस कोटकी सुन्दरताको विनष्ट करने और शत्रुका ध्वंस करनेके लिए यहां पदार्पण किया। अब भी श्वेत संगमरमरके स्तम्भोंसे निर्मित मंडप और सुन्दर शिल्पालङ्कारके नमूने जो पर्याप्त रूपसे नीले, लाल और सुनहले पीले रंगों से रंगे हैं, मूरोंकी दक्षता भली भाँति प्रदर्शित करते हैं।

# जातिका प्रादुर्भाव ।

[ ले० श्री० जे० एन० तिवारी ]

वनस्पति शास्त्रके ज्ञाता इस विषयको अच्छी रीतिसे जानते हैं कि नीच कोटिके पौधे ( thalloid ) जिनमें डाल पात इत्यादिकी कुछ विभिन्नता नहीं रहती है उनकेकोष्ठों ( cells ) में उतना अधिक अन्तर नहीं है जितना कि एक बृहद् विशाल डाल पात वाले पौधेके कोष्ठोंमें है। डाल-पात-विहीन या युक्त, नीच कोटिके पौधे अधिक विशाल या बड़े नहीं होते और इसी कारण उनके कोष्ठों को अनेक भागोंमें विभक्त होकर पृथक् पृथक् कार्य्य नहीं करना पड़ता है क्योंकि पौधेको जिन जिन पदार्थोंकी आवश्यकता होती है कार्य्य विभाग के बिना ही उसके कोष्ठ सब पूरे कर डालते हैं; परन्तु एक ऊंच कोटिके पौधे ( cornius body ) के कोष्ठोंकी विभिन्नता और श्रम-विभागके बिना काम नहीं चल सकता। उसके अनेक अङ्ग प्रत्यङ्ग हो जाते हैं जिनका काम भी पृथक् पृथक् है, अतएव उन अङ्गोंके अन्तर्गत कोष्ठोंका भी कार्य्य पृथक् पृथक् हो जाता है अर्थात् उस वृक्षका बड़ापन ही कार्य्य-पृथकता या श्रम-विभाग ( division of lobour ) का कारण होता है।

मनुष्य-जातिमें जातिकी विभिन्नताकी नीव भी यही कार्य्य-पृथकता या श्रम विभाग है। मनुष्यकी सृष्टि चाहे जैसे हुई हो—जीवन-विकाश ( Evolution ) से, ब्रह्माके चतुराङ्गसे, आदम और हव्वासे या और किसी अन्य रीतिसे—यह स्पष्ट है कि आदि कालसे—जबसे मनुष्यका अस्तित्व है—जाति विभाग नहीं था।

जाति शब्द यहां दो अर्थमें लिया गया है, (१) नेशन् ( nation ) और (२) कास्ट ( caste ), किन्तु जाति-वितरण अधिकतर भारतवर्षमें ही है इससे यहींकी बातको लक्ष्यमें रख कर यह लेख लिखा गया है। परन्तु स्थान स्थान पर नेशनके अर्थमें भी जाति शब्दका प्रयोग हुआ है।

इतिहास इस बातकी साक्षी इस प्रकार देत है कि जिस समय आर्य्य लोग भारतवर्षमें आए उस समय उनमें जातिका भाव नहीं था। जातिकी उत्पत्ति उन लोगोंके गंगा नदीके प्रदेश ( gangetic plain ) में आनेसे हुई है। इसके सिवा ऋग्वेदमें जो ऐतिहासिक दृष्टिसे सब वेदोंमें प्राचीन गिना जाता है जातिकी विभिन्नता पहले कई भागोंमें नहीं पायी जाती है। ऋग्वेदके १० वां भागके ६० वां ऋचामें जातिका प्रसंग आया है परन्तु इतिहास कारोंकी रायमें १० वें भागकी भाषा उसके पूर्व भागोंसे नहीं मिलती है इससे ज्ञात होता है कि वह ऋचा जिसमें जातिका प्रसंग आया है पीछेसे मिलायी गई है। अस्तु। यह प्रगट हो गया कि जाति विभिन्नता वैदिक कालमें नहीं थी।

तर्क शास्त्र ( Logic ) का सहारा लेकर यदि इस विषय पर मनन किया जाय तो उससे भी यही सिद्ध होता है कि पुराकालमें जाति नहीं थी जाति ( caste ) मनुष्यके कर्तव्य-कर्म्म पर स्थित है और यही कर्तव्य कर्म्म उसके माता पिता थे तथा हैं। आधुनिक असंख्य जातियोंमेंसे कुछका नाम लीजिये तो यह आप ही आप समझमें आ जायगा कि कर्तव्य-कर्म्म और कहीं कहीं देशके नामने किस प्रकार जाति उत्पन्न की है। ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी उपजातियां केवल देशके नाम पर निर्धारितकी गई हैं। वैश्य और शूद्रकी उपजातियां अपने अपने कामके अनुसार हुई हैं। ब्राह्मणोंमें कान्यकुब्ज, शाकद्वीपी, गौड़, सरयूपारी, सारस्वत, मैथिल इत्यादि; क्षत्रियोंमें चंदेल, बुंदेल, राठौर, चौहान, इत्यादि, वैश्योंमें बनिया, कायस्थ इत्यादि और शूद्रोंमें चमार, लोहार, सोनार, गोप इत्यादि उपजातियां वर्त्तमान हैं। ब्राह्मण और क्षत्रीके उपजातियोंको देखनेसे ज्ञात होता है कि ये उपजातियां केवल देशके नाम मात्र हैं। उस देशमें जो ब्राह्मण या क्षत्री रह गये जिस ब्राह्मण या क्षत्रीके जातिका नाम भी उसी देशके नामानुसार पड़ा और उसी देशवासी ब्राह्मण या क्षत्रीके साथ आप-

समें विवाह-शादी, खान-पान, होनेके कारण तद्देश-वाली ब्राह्मण या क्षत्री अन्यप्रदेशवासी ब्राह्मण या क्षत्रीसे पृथक रहने लगे और इसी प्रकार वह एक नवीन जाति ही बन गई। वैश्य और शूद्र-में कामके अनुसार उन लोगोंकी जाति हुई; वाणिज्यका काम करनेवाला बनिया, चामका काम करने वाला चमार, सोनाका काम करने वाला सोनार, गौरा पालने वाला गोप इत्यादि। इसके बाद इसपेशा करने वालोंने आपसमें शादी-विवाह आरम्भ किया और एक कामका करनेवाली एक जाति ही बन गई। ऐसा होना भी स्वाभाविक था क्योंकि प्रत्येक मनुष्य अपने काममें उन्नति पानेके लिए अपने ही मेलका आदमी चाहता है और ऐसा ही होनेके कारण आज असंख्य जाति दृष्टि गोचर हो रही है। सम्पत्तिशास्त्र (Economics) में इस प्रकारके श्रम-विभागकी महत्ता बहुत दिखलायी गई है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन की प्रत्येक आवश्यक पदार्थोंको अपनेसे पैदा नहीं कर सकता है और यदि करे भी तो इससे उसको कुछ भी लाभ नहीं होगा। अब यह अनुमान किया जाता है कि जिस प्रकार पुरा कालकी चार जातियोंसे आधुनिक असंख्य जातियोंकी उत्पत्ति हुई है उसी प्रकार पहलेकी भी चार जातियां किसी एक वा ततोधिक जातिसे उत्पन्न हुई होगी और यदि इस विषयमें पीछेकी ओर आलोचनाकी जाय तो अन्तमें केवल एक ही जाति मिलेगी जिससे संसारके असंख्य जातियोंकी उत्पत्ति हुई है।

हिन्दू-धर्म्म-शास्त्रानुसार यदि यह मान लिया जाय कि ब्रह्माके चतुराङ्गसे ही चारों जातियोंकी सृष्टि हुई है तो इससे भी वही सिद्धान्त निकलेगा। ब्रह्मा तो केवल एक ही है और उसी एकसे उत्पन्न चार लड़के या लड़कियां किस तरहसे पृथक् पृथक् जातिकी हो सकती हैं? इन चार जातियोंके आदि पुरुष जिन्हें ब्रह्माने सृष्टिकी जब उत्पन्न हुए होंगे तो उस समय उनमें कुछ पृथकता तो रही ही नहीं होगी सबके स्वरूप, अङ्ग प्रत्यङ्ग, अर्थात् हाथ पर इत्यादि, क्रिया कर्म इत्यादि सब एक जैसे रहे होंगे, किसीमें कुछ न्यूनाधिक्य रही ही नहीं होगा, जन्मके साथ ही कर्म निर्दिष्ट भी नहीं रहा होगा तो फिर एकने कैसे जाना कि मैं ब्राह्मण हूं, दूसरा क्षत्री, तीसरा वैश्य और चौथा शूद्र है! यदि कोई कहे कि अङ्गकी उत्कृष्टता और निकृष्टता पर चतुर्वर्णोंकी उत्कृष्टता और निकृष्टता तो है उसके प्रत्युत्तरमें नीचे लिखे हुए वाक्य मौजूद हैं। यदि ब्राह्मण ब्रह्माके मुखसे, क्षत्री बाहुसे, वैश्य उदर से और शूद्र पैरसे उत्पन्न हुए तो इसमें अङ्ग विशेष-को लेकर एक कैसे उत्कृष्ट और दूसरा निकृष्ट हो सकता है? प्रत्येक अङ्ग दूसरे पर अवलम्बित (Interdependent) है। यदि हाथ न हो, पैर न हो तो मुख क्या कर सकता है। मुख जिसमें थूक और लार—जिससे हिन्दू अपवित्र समझते हैं—भरा रहता है किस प्रकार सब अङ्गोंसे उत्तम हो सकता है! यदि कोई कहे कि ईश्वराराधनाके लिए वाणीकी आवश्यकता है और बिना मुखके वाणी नहीं आ सकती है इसीलिए मुख श्रेष्ठ है तो वहां यह कहना है कि हाथ पैरके बिना कोई युद्धमें लाभ भी नहीं हो सकता। दूसरी बात—हाथ देव सेवा कर सकता है पैर तीर्थ भ्रमण कर सकता है अतएव प्रत्येक अङ्ग अपने अपने कर्मको लेकर ही उत्कृष्ट हैं। उससे यह स्पष्ट हुआ कि किसी जातिकी उत्कृष्टता और निकृष्टता ब्रह्माकी उत्कृष्टता और निकृष्टता पर नहीं है वरन् अंगकी अपने कर्म पर है।

बुद्धि इस बातका निर्णय करती है कि चाहे ब्रह्मासे सृष्टि हुई हो, चाहे जीवन विकासके द्वारा हुई हो, चाहे आदम और हव्वासे हुई हो, चाहे और किसी अन्य प्रकारसे हुई हो जब मनुष्य-जातिकी सृष्टि इस भूतलमें हो चुकी और जब वह संख्यामें अगिणित होगई तो जीवन-संग्राम (Struggle for life or existence) आरम्भ हुआ अपने अपने जीवन-निर्वाहके लिए, जिस स्थानमें सृष्टि हुई उस स्थानसे लोग तितर बितर होने लगे और अपने

मनके अनुसार जगह ढूँढ़ ढूंढ़ कर अपना अपना घर बना लिया और रहने लगे। इसमें जो जन समूह हिन्दुस्तानमें आया (यदि हिन्दुस्तानसे भिन्न किसी अन्य जगह सृष्टि हुई थी तो) या जो जन-समूह हिन्दुस्तानमें रह गया (यदि हिन्दुस्तानमें सृष्टि हुई थी तो) उसने अपने आपको चार भागोंमें बांट लिया। यह बांट कृत्रिम नहीं वरन् स्वाभाविक हुई। लोग आप ही आप चार भागोंमें विभक्त हो गये। इस बातकी गवाही धर्म्मशास्त्र भी देता है और मनो विज्ञान ( Psychology ) के पाठक भी इस बातको अच्छी तरह जानते होंगे। श्रीमद्भागवत गीताके अट्ठारहवें अध्यायके ४१-४४ श्लोकोंमें लिखा हैः—

"ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्म कर्म्म स्वभावजम्॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥
कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥"

अर्थात् हे परन्तप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका कर्म उन लोगोंके स्वभावके प्रभावसे उत्पन्न अर्थात् स्वभावज गुणके अनुसार विभक्त किया गया है। जिनमें शम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य इत्यादि कर्म्म स्वभाव से हों वह ब्राह्मण हैं। जिनमें शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्धमें निर्भयता, दान, ईश्वर भाव इत्यादि कर्म्म स्वभावसे हों वह क्षत्रिय हैं। जिनमें कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य इत्यादि कर्म्म स्वभावसे हों वह वैश्य हैं और जिनमें सेवा करना कर्म्म स्वभावसे हो वह शूद्र हैं। इसमें अब अणु-मात्र भी सन्देह नहीं रह गया कि जाति जन्मसे नहीं वरन् स्वभावज कर्म्मसे है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिके स्वभावके अनुसार कर्म्म और कर्म्मके अनुसार जाति हो सकती है; चाहे कोई ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हो और उसका स्वभाव सेवा करनेका ही है तो उसे ब्राह्मण न कह कर शूद्र कहना चाहिये। पद्मपुराणमें वैष्णव धर्म्मकी महिमा गाते हुए कहा है कि यदि ब्राह्मण निज धर्म्म कर्म्म-से रहित हो और एक श्वपच अपने धर्म्ममें अनु-रक्त रह कर श्रीविष्णु भगवानका भजन करे तो उस ब्राह्मणसे वह श्वपच पूज्य है। नारद दासीके पुत्र थे, व्यास मल्लाहिनके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, परन्तु अपने कर्म्मके कारण देवताओंसे भी पूजेजाते थे अपनी जातिके कारण नहीं। इसलिए यह कोई नहीं कह सकता कि अमुक मनुष्य अमुक जातिका है जब तक कि उसके स्वभावज कर्म्मका पूरा पता न चले; उसके माता पिता चाहे किसी जातिके भी हों। और मनु जी भी इस सिद्धान्तका समर्थन "जन्मना जायते शूद्र कर्म्मणा ब्राह्मणमुच्यते" के द्वारा करते हैं। इसको सरल भाषामें इस प्रकार रख सकते हैं कि जिन लोगोंकी इच्छा हुई कि हम पूजा पाठ करें, अध्यात्मिक उन्नति करें वह ब्राह्मण हो गये; जिन लोगों की इच्छा हुई कि हम कुश्ती बाज़ी करें, शारीरिक उन्नति करें, लड़ाई लड़ें वह क्षत्रिय हो गये; जिन लोगोंकी इच्छा हुई कि हम कृषि करें वाणिज्य करें वह वैश्य हो गये; और जिन लोगों-की इच्छा हुई कि हम सेवा करें वह शूद्र हो गये।

इस स्वाभाविक विभाग में राजनीतिका भी बड़ा भारी गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। इसी चार विभाग द्वारा वह बड़े सुख और धार्मिक भाव-से अपने दिन विताते थे। जिन लोगों ने शारीरिक उन्नति की वह तो राज काजका काम ले शत्रुओंको दमन करने और अपने अधीनस्थ जनोंको सुखसे रखनेका भार लिया। भारतवर्ष ने कभी भी किसी अवस्थामें किसी काममें अपने धार्मिक विचारोंको नहीं छोड़ा है और इसीलिए जिन्होंने आध्यात्मिक उन्नति की वह लोग लड़ाई झगड़ा, कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, सेवा आदि काममें फँसे हुए लोगोंको ईश्वरोपासनाका उपदेश देने और सन्मार्ग बतलाने-का भार अपने ऊपर लिया जो लोग कृषि वाणिज्य

इत्यादि करते थे उन्होंने और अन्य लोगोंका पालन करनेका भार उठाया और शूद्रोंने इन सबोंकी सेवा करनेका भार लिया। अर्थात् एक ही परिवारके अनेक लोग अपने अपने कामको बांट कर सुखसे रहने लगे। भारतवर्ष तब ही उन्नति कर सकेगा जब असंख्य जातियोंका भेद भाव छोड़ वर्णाश्रम धर्म्मका सहारा लेगा और असंख्य जातियोंका भेद भाव छोड़ना धार्मिक दृष्टिसे भी अन्याय नहीं है, ऐसा ही प्रतीत होता है।

## चन्द्रलोककी यात्राकी योजना

[ ले०—पं० जगपति चतुर्वेदी विशारद ]

चालीस वर्षसे कम हुए होंगे कि जूल्स वर्नने अपनी "अट्ठासी दिनमें सम्पूर्ण संसारकी सैर" नामक पुस्तक लिखी थी, सब लोग इसको असम्भव समझते थे; परन्तु जो लोग ऐसा कहा करते थे उन्हींमेंसे कुछ लोगोंने आज एक माससे भी कम में सम्पूर्ण संसारका भ्रमण किया है।

इस पुस्तकके कुछ वर्ष बाद वर्नने एक पुस्तक वायुयानों द्वारा लम्बी यात्रा तथा खोजके विषयमें लिखी, इस बार मनुष्योंने इसे नितान्त मूर्खता समझा, परन्तु आज तो वायुयानने बड़े बड़े समुद्र पार कर लिये हैं और वायुमें यात्रा करना एक साधारण बात हो गई है।

तीसरी बार उसने जलडुब्बियोंके बारेमें एक कहानी लिखी। मनुष्योंने इस बार उसे पागल समझा। परन्तु आज प्रत्येक समुद्री जाति इन जलडुब्बियोंका बेड़ा रखती है; जो समुद्रके अन्दर हज़ारों कोसोंका भ्रमण करती हैं।

जूल्स वर्नकी मृत्युके पहिले ही १६६१ सं० में संसार इस बातका अनुभव करने लगा था कि वह केवल एक गाथा रचयिता ही न था बल्कि एक वैज्ञानिक भविष्य वक्ता भी था।

उसने एक भविष्य की बात कही थी जिसकी सत्यता अभी तक प्रकट न हो पाई थी, वह थी "पृथ्वीसे चन्द्र लोककी यात्रा" परन्तु वह भी आज सत्य सिद्ध होने जा रही है।

एक प्रसिद्ध इंजिनियर 'हर आबर्थ' एक अमेरिकन वैज्ञानिक प्रो० रोबर्ट. एच. गोडर्डकी योजनाके आधार पर अत्यन्त कठिन परिश्रमसे एक ऐसा गोला निर्माण कर रहा है जो तीन चार मनुष्योंको नक्षत्रोंके मध्यान्तरमें ले जानेमें समर्थ हो सकेगा।

जूल्स वर्नका वह काल्पनिक गोला जो कि तीन मनुष्योंको ले जानेमें समर्थ हो सका था एक शून्य गर्भ गोला था जो एक बहुत बड़ी तोपसे छोड़ा गया था। हर ओबर्थके गोलेकी संचालन शक्ति उसके अन्दर ही रहेगी, इसकी संचालन क्रियाका सिद्धान्त वही रहेगा जो साधारण सुर्रीमें रहता है अर्थात् इसके पेंदेमें ही धड़ाके होंगे और संचालन शक्ति उद्जन वा अलकोहल-को ओषजनके साथ जलानेसे उत्पन्न होगी।

यद्यपि यह सन्देहजनक है कि गोला चन्द्र-लोक तक पहुँच सकेगा वा नहीं तथापि इतना तो वैज्ञानिक अनुसन्धानसे निश्चित है कि यह गोला आकाशमें ऐसे स्थानोंमें भी होकर जा सकेगा जहाँ वायुका नाम नहीं है।

इन बातोंसे हमें पता चल सकता है कि यह सम्पूर्ण विचार एक पागल व्यक्तिका विचार नहीं हो सकता। पहिले पाठकोंको यही सुन कर आश्चर्य होगा कि पृथ्वी चन्द्रलोकसे बहुत दूर नहीं है, जिससे यात्रा करनेमें असुविधा हो सके। अन्य तारा गण करोड़ों मीलकी दूरी पर हैं और कितने ऐसे हैं जो दिखाई नहीं पड़ते किन्तु चन्द्रमा तो केवल २३८००० मील दूर है।

चन्द्रलोक इतना निकट है कि वह दूरबीनसे देखा जा सकता है। उसके धरातलके फोटो तथा चित्र वैसे ही शुद्ध हैं जैसे पृथ्वीके धरातलके हैं। ज्वालामुखी पर्वत, पर्वत श्रेणी, घाटियां और

अलग अलग पहाड़ोंकी चोटियाँ तक दिखाई गई हैं। यदि लंडन ऐसा बड़ा नगर वहां पर होता तो वह भी बड़े दूर दर्शक यंत्रसे दिखलाई पड़ता। बहुत से लोग साधारणतया रेलगाड़ी पर भ्रमण कर पृथ्वीसे चन्द्रमाकी जो दूरी है उससे भी अधिक घूम चुके हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि यदि एक शक्तिशाली साधारण वायुयान पृथ्वीसे उड़ाया जाय तो वह ५० दिनमें चन्द्रलोक तक पहुँच सकेगा। हर ओबर्थ का वैज्ञानिक यन्त्र १०० घन्टे में ही वहां पहुँच सकेगा। बहुतोंका विश्वास है कि चन्द्रलोक एक विनष्ट लोक है और वहां पर पौदों वा वायुका नाम नहीं किन्तु अब यह बात संदिग्ध हो गई है क्योंकि प्रो० पिकरिंग ने जो अभी फोटो खींचा है उससे पता लगता है कि चन्द्रलोककी घाटियोंमें पौदे तथा हरियाली उगी हुई है और जहां पर पौदे हैं वहां वायु अवश्य ही होगी। अतएव अब यह नितान्त असम्भव नहीं कि यदि किसी समय मनुष्य वहां पहुँच सका तो उसको उदरपोषणके लिए भोजन मिल सकेगा। इस अनुसन्धान का महत्व उस समय जान पड़ता है जब इस बात का अनुभव होता है कि केवल ऐसे ही गोलेकी सहायतासे वायुविहीन स्थानोंमें यात्रा की जा सकती है।

एक कठिन समस्या जो सामने आती है वह यह है कि मान लें वह गोला यात्रियोंके साथ पृथ्वीके आकर्षणवृत्तको पार करता हुआ पृथ्वी और चन्द्रकी मध्यस्थ दूरीको पार करनेमें सफल हो गया और ऐसे स्थानोंसे होकर जहां बिलकुल आकर्षण नहीं है चन्द्रमासे २० मीलकी दूरी पर पहुँच उसके आकर्षण वृत्तमें पहुँचा। इस दशामें चन्द्रमाके आकर्षणके बलसे गोला चन्द्रतल पर बड़े ज़ोरसे गिर कर अपने साथियोंको भी ध्वंस कर डालेगा। इस कठिनाईको दूर करनेके लिए दो युक्ति सोची गई हैं। एक तो यह है कि उलटी दिशामें गतिपैदा करने वाले धड़ाके तैयार रखेंगे जिनसे गोला शान्ति पूर्वक धरातल पर उतर सकेगा। दूसरा उपाय छत्राकार यन्त्र है जिसके सहारे यात्री चन्द्रतल पर उतर सकेंगे। यह उपाय उस समय काममें आवेंगे जब कि चन्द्रलोकमें वायु होगी।

यदि इस प्रकार किसी समय ऐसा गोला जैसा हर ओबर्थ ने बनाया है चन्द्रलोक तक पहुँचनेमें समर्थ हो सका तो यह विज्ञानका अत्यन्त आवश्यक तथा बहुत बड़ा काम होगा। यद्यपि हर ओबर्थ साफ साफ नहीं कहते कि वह चन्द्रलोक तक यात्रियोंको भेजनेका विचार कर रहे हैं तथापि वह जिस आविष्कारकी कल्पना कर रहे हैं वह इस कामको सम्भव कर सकता है और इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उनकी योजनाका वस्तुतः यही उद्देश्य है। यात्रियोंके बैठनेके लिए उचित स्थानका प्रबन्ध सोच लिया गया है और वायु परिवर्तनके लिए भी गोलेमें ही पर्याप्त स्थान रखा जायगा। इसकी रक्षाके लिए स्टीलकी दुहरी चादर लगी होगी। यन्त्रके अन्दर ही एक कुंड द्वारा ओषजन उत्पन्न की जावेगी जैसा पनडुब्बियोंमें होता है और यदि गोलेके यात्री चन्द्रलोक तक जीवित पहुँच सके तो वह ओषजनके थैलोंको साथ लेकर चारों ओर घूम सकेंगे।

यह तो निश्चित हो चुका है कि गोडर्ड होवर्थ निर्मित गोले जैसे गोले ओषजन और उज्जन-के धड़ाकोंकी सहायतासे सचमुच बहुत दूरी तक जा सकते हैं।

गत महायुद्धके समयमें इस प्रकारका गोला काममें लानेकी बात सोची जा रही थी और यदि लड़ाई और अधिक दिनों तक होती तो इसका प्रयोग भी हो जाता। उस समय जो छोटा गोला बनाया जा रहा था वह सौ मील तककी उड़ानमें हवामें ठहर सकता था।

यदि प्रारम्भमें एक गोला बिना यात्रियोंके चन्द्रलोक तक भेजा जाय तो बड़े आनन्दकी बात हो, क्योंकि तब चन्द्रलोक तक मनुष्य भेजना सम्भव तो समझा जा सकेगा। इस गोलेकी पहुँचका पता

लगाना कठिन नहीं होगा, क्योंकि बहुत बड़े दूर दर्शक यन्त्रसे तो इतना निकट दिखाई पड़ेगा जितना ५०० फुटकी दूरीकी चीजें दिखाई पड़ती हैं।

चन्द्रलोक पहुँचने पर यहां तक समाचार संकेत द्वारा पहुँचाना कठिन न होगा। यदि गोला बिना मनुष्यके गया तो इससे चन्द्रमाके धरातलसे टक्कर लगने पर खूब काला धुआँ उठेगा, जिसका फोटो यन्त्रों द्वारा सहज ही लिया जा सकेगा। यदि कहीं वहां मनुष्योंकी पहुंच हुई तो वह अपना समाचार धुएंसे भेज सकेंगे।

---

## रोगी पशुके मांसका विष

[ ले०—कविराज श्री प्रतापसिंहजी ]

रोगी पशुओंके मांसमें यह बात आवश्यक नहीं कि मांसमें कृमि प्रथमसे ही हों क्योंकि बादमें भी वह उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु जब मांसमें कृमि उत्पन्न हो जाते हैं तो वे भयंकर रोगके कारण हो जाते हैं। इनमें विशेषतः तीन जातिके कृमि होते हैं। इनमें से प्रथम जातिके Trichina spiralis नामक जीवाणु मांसके रेशोंके साथ मिल कर गोल दानेकी शकलमें लगे रहते हैं। कभी कभी यह इतने अधिक हो जाते हैं कि गोश्तके रेशोंमें श्वेत दागसे नजर आते हैं। इनके मेलसे दूषित मांस यदि अधिक मात्रामें बिना पकाये खाया जाय तो अनेक प्रकारके भयंकर लक्षण उत्पन्न करता है। इनकी आकृति इतनी छोटी होती है कि आठ रत्ती मांसमें यह छः हज़ारके लगभग रहते हैं। संक्षेपतः आमाशय और आंतोंके अन्दर प्रवेश करनेके बाद यह अपने आवरणसे बाहर निकल आते हैं; और सन्तान उत्पन्न करना आरम्भ करते हैं। शरीरमें प्रवेश होनेके सात आठ दिन बाद अपने उत्पन्न किये हुए बच्चोंको छोड़कर यह आंतोंकी दीवारके सहारे भीतर रेंगने लगते हैं और वहांके मांसके रेशों पर अपना निर्वाह करते हैं। कृमियोंके पहुँचनेसे समयके अनुसार लक्षणोंमें भी न्यूनाधिकता होती है। इनके विषका लक्षण भी किसी अंशमें वानस्पतिक विषके समान होता है। विशेषता यह होती है कि इसमें उदरमें भयंकर शूल होता है; किन्तु वमन विरेचन उग्र नहीं होते, शूल क्रमशः सारे शरीरमें फैलता जाता है। निमोनिया भी अवश्य हो जाता है और मांसोंको लकवा भी मार जाता है। इस विषका उपद्रव जर्मनी आदि देशोंमें अधिक मिलता है। यह विष विशेष कर सुअरके मांसमें अधिक पाया जाता है। मांसको अच्छी तरह उबाल लेनेके बाद इनका जीवन नहीं रह सकता। लोगोंका विश्वास है कि रोगी पशुओंके नेत्रोंमें इनका विशेष स्थान होता है। दूसरे प्रकारके कृमि (Cysticeri) नामक होते हैं, जिनको गेंडुए आदिके बच्चे समझना चाहिये। यह सब पशुओंके मांसोंमें प्रायः मिलते हैं। यह मांसके अन्दर छोटेसे अण्डेकी शकलमें होते हैं। इनके अन्दर एक द्रव भरा रहता है। इस कोषके भीतरी भागमें गर्दन शिर और शिरके ऊपर इन कीड़ोंका हुक दिखाई पड़ता है। इनकी लम्बाई मटरके समान होती है और क्रमशः बढ़कर छसे बारह फुट तक लम्बे हो जाते हैं। बैलोंके मांसमें यह बहुत सूक्ष्म रूपमें रहते हैं; किन्तु बढ़कर १५ से २० फुटसे भी अधिक लम्बे हो जाते हैं। यह दोनों जातियोंके जीव मनुष्योंके ऊपर बहुत शीघ्र प्रभाव करते हैं। अन्य जातिके और भी कृमि हैं जो कुत्ते और भेड़ियोंके ऊपर विशेष प्रभाव करते हैं। एक प्रकारका कृमि भेड़के ऊपर उत्पन्न होता है जो उनके मस्तिष्कको खराब करता है और यदि मनुष्यके ऊपर भी उसका प्रभाव हो तो स्थूल कोष ( Hydatid tumours ) नामक रोग उत्पन्न करता है इसके अतिरिक्त अन्य रोगोंसे पीड़ित जन्तुओंका मांस खानेसे भी अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं; जिनमें विशेष लक्षण दौर्बल्य

और अतीसार होता है। यह लक्षण रुग्ण मांसके खानेसे १०, १२ घण्टे बाद होते हैं। विकृत मांसके सन्देह होने पर अणुवीक्षण द्वारा कृमियोंकी परीक्षा कर लेनी आवश्यक है।

मांस भक्षी सावधान रहें।

---

## एसबेस्टसका महत्व

खनिज पदार्थोंमें 'एसबेस्टस' भी एक विचित्र पदार्थ है। देखनेमें तो ऐसा फुसफुसा जान पड़ता है कि वह हाथ की गर्मीसे ही पिघल जायगा। परन्तु वास्तवमें वह १५०० अंश फा० की गर्मी तकमें नहीं पिघलता। यह लोहा ऐसा कड़ा और रूई ऐसा मुलायम बनाया जा सकता है। आधी छटांक 'एसबेस्टस' से २०० हाथ सूत काता जा सकता है।

यह एक ऐसा आवश्यक पदार्थ है कि इसके बिना रेल, जहाज़, स्टीमर, कल कारखाने सभी बेकाम हो सकते हैं। थियेटर और सिनेमा तकमें इसका प्रवेश है, जिससे आग लगनेका डर नहीं रहता। होटलों तथा अन्य भवनोंमें गर्मी पहुँचानेमें भी इससे अधिक सहायता मिलती है।

एसबेस्टस देखनेमें खाद्य पदार्थ ऐसा जान पड़ता है। इसके रेशे बारीक और चमकीले होते हैं; परन्तु जब इसके रेशे मिले रहते हैं तो यह पत्थरकी भांति कड़ा रहता है। बहुतों ने इसका स्वाभाविक रूप देखा भी न होगा और बहुत से यह भी न जानते होंगे कि इसका वाणिज्य और शिल्पकलामें कहां तक हाथ है।

बहुतोंका विचार है कि यह पदार्थ कृत्रिम है, किन्तु यथार्थमें जिस समय पृथ्वीकी सृष्टि हुई उसी समय यह भी बना था। जब पृथ्वी अपने प्रज्वलित स्वरूपको शीतलता प्राप्त कर परिवर्तित कर रही थी तो चट्टानोंमें उसीके दबावसे 'एसबेस्टस' की उत्पत्ति हुई।

यह पत्थरकी तरह पृथ्वीमेंसे खोद कर निकाला जाता है। गहरे खदानोंमें डैनामाइड और बारूदके धड़ाकेसे पत्थर तोड़ लिया जाता है जिनमें मनुष्य एक हथौड़ा लेकर नीचे उतर कर इस खनिजको चट्टानों परसे तोड़ते हैं। यदि यह किसी चट्टानके भीतर हुआ तो उस टुकड़ेको खदानके ऊपर पृथ्वीकी सतह पर उठा लाते हैं और यन्त्रों द्वारा पीस देते हैं, जिससे इसके कण चट्टानसे अलग हो जाते हैं। ५० मन पत्थरके टुकड़ेसे १ मन 'एसबेस्टस' निकलता है। सबसे अच्छा 'एसबेस्टस' कनाडासे आता है।

यह किम्बदन्ती है कि एक मुगल राजा इसीसे बने हुए रूमालसे मुंह पोंछा करता था। इसको उस ज़मानेमें "सलमन्दर" कहते थे। एक बार एक व्यक्ति ने अपनी चादरको धधकती आगमें डाल कर अपने यहांके आगन्तुकोंको अत्यन्त आश्चर्यमें डाल दिया था। वह वस्त्र इसी पदार्थका बना था।

जब इसका प्रयोग कम था तब सिनेमा और थियेटर हालके परदोंमें बहुधा आग लग जाया करती थी। परन्तु एसबेस्टस महानुभावकी कृपासे आग लगनेका भय छूमन्तर हो गया। सिनेमा देखनेवालोंको मालूम होगा कि सामनेके पर्दे पर पीछेसे प्रकाशकी धारा बहाते हैं जो सामने आकर चित्र स्वरूपमें प्रकट होती है। जिस छिद्रमें से प्रकाश आता है वहां ऊंचे तापक्रम होनेके कारण आग लग जाया करती है, परन्तु अब उस जगह दीवालों पर एसबेस्टस मढ़ देते हैं जो कि अदाह्य होनेके कारण उस भवनकी आगसे रक्षा करता है।

पहले पहले भाप वाले इंजिनके संचालनमें पटसनकी सहायता लेते थे, परन्तु अब काल चक्रके पलटने पर पटसनका प्रतिनिधि एसबेस्टस बनाया गया है। इसके कारण रेलगाड़ियाँ ३०, ४० कोस तक एक ही घंटेमें दौड़ने लगी है।

यदि आज संसारमें एसबेस्टस न होता तो कदाचित् स्टीमर और बड़े बड़े जलयान भी समुद्र यात्रा करानेमें सफल न हो सकते और न रेलें ही

इतनी तीव्रतासे दौड़ती दीख पड़तीं। कल कारखानोंको रोते ही दिवस व्यतीत करना पड़ता। इनमें जहां कहीं तापको अपने वाष्पमन्दिरकी छोटे मोटे छिद्रोंसे रक्षा करनेकी आवश्यकता पड़ती है तो एक मात्र भगवान एसबेस्टस ही आकर सहानुभूति पूर्वक पूर्ण सहायता पहुँचाते हैं। संसारमें इन्होंने भी अपना आसन बड़ी दृढ़तासे जमा लिया है।

---

## फासफोरस वा स्फुर ( Phosphorus )

[ ले० कविराज प्रतापसिंह ]

फासफोरस जन्तुओंकी कठिन अस्थियोंसे एकत्रित किया जाता है। यह शकल में पारदर्शक, मोम जैसा कठिन, रंगमें सफेद, धुआं देने वाला, अन्धकारमें चमकने वाला और हवाके सम्पर्कसे जल उठने वाला होता है।

प्रभाव—यह सर्वांग उत्तेजक और वात नाड़ी शक्ति प्रद। यह १०० ग्रनसे ३ ग्रेन तककी मात्रामें गोली या द्रवके रूपमें दिया जाता है।

शरीरके अवयवों पर प्रभाव—यदि यह बिना जलके मिलाये चर्म पर लगाया जाय तो अत्यन्त तीव्र उद्दीपक और दाहक होता है। यदि घन रूपमें प्रयोग किया जाय तो आन्तरिक अवयवों पर भी वही प्रभाव करता है जैसा ऊपरी चर्म पर लगानेसे करता है।

रक्त—यह रक्तमें बिना किसी परिवर्तनके शोषित हो जाता है, यदि परिवर्तित भी होता है तो शरीरके ओषजनके साथ मिलकर फासफारस या फासफोरिक एसिडके रूपमें परिणित होकर शोषित हो जाता है।

आमाशय और यकृत—यह अल्प मात्रामें पाचन शक्तिका अभिवर्द्धन करता है और मध्यम मात्रामें आमाशय तथा यकृतके संयोजक धातुको बढ़ाता है और इन्हीं अवयवोंका दीर्घ कालिक शोथ भी उत्पन्न करता है। इस कारण यकृतका घनत्व ( cirrhosis ) हो जाता है। यकृतमें ग्लाइकोजिन ( glycogen ) बनानेकी शक्ति भी यह कम कर देता है और वसाकी वृद्धि करता है। यह विषात्मक मात्रामें आमाशय तथा आंतोंमें अत्यन्त दाह उत्पन्न करता है, जिससे वमन और विरेचन होने में वमन किये हुए द्रवमें लहसुनके समान दुर्गन्ध आती है; यह लक्षण इसके खानेके उपरान्त तुरन्त नहीं होते किन्तु कई घन्टे या दिनके बाद होते हैं।

अस्थी—यदि इसका अल्प मात्रामें चिरकाल तक प्रयोग किया जाय कि जिससे यकृत और आमाशयपर दुष्प्रभाव न पड़े तो अस्थिकी वृद्धि करता है, जिससे अस्थिका स्नायु संघान (cancellous tissue) कठिन सुघांशु (compact tisue) भागमें परिणत हो जाता है।

वात संस्थान—यह मस्तिष्क और वात नाड़ियोंमें उत्तेजक और जीवनीय शक्ति उत्पन्न करता है। यह बतलाना कठिन है कि वात संस्थानपर इसका प्रभाव किस प्रकार होता है। बहुत लोगोंका ख्याल है कि यह जननेन्द्रियोंकी नाड़ियोंके केन्द्रों को सुषुम्ना काण्डमें उत्तेजित करता है, इस कारण कुछ मनुष्य इसको कामोद्दीपक मानते हैं। किन्तु विशेष निर्णय करने वाले विद्वान् इस प्रभावको अब स्वीकार नहीं करते।

शरीरकी परिणत धातुओं पर प्रभाव—यह बड़ी मात्रामें शरीरमें यूरिया ( urea ) आदि वस्तुओं को अधिक बनाता है, शरीरके तापको बढ़ाता है, वसाकी भी वृद्धि करता है। यूरिया आदि घुलनशील होनके कारण मूत्रमें घुलकर वृक्कों द्वारा बाहर निकल जाते हैं किन्तु घृत तैल आदि अनघुल द्रव्य वसा रूपमें शरीरके अवयवोंमें स्थिर हो जाते हैं।

तात्कालिक विषलक्षण—दियासलाईके सिरेपर लगे हुए मसालेके चाटने या चूहे मारनेकी दवा ( Rat Paste ) के खानेसे यह लक्षण उत्पन्न होते हैं:—आमाशय और आंतोंमें दाह होनेके कारण

वमन विरेचन होते हैं। शरीर अवसन्न हो जाता है। कभी कभी मूर्च्छा और मृत्यु भी हो जाती है। साधारणतया यह लक्षण मन्द रूपमें प्रकट होते हैं, जिससे रोगी कुछ दिन तक भली प्रकार रह सकता है। कुछ दिन पश्चात् कामला रोग हो जाता है, यकृत बढ़ जाता है, कामला रोग बढ़कर कुम्भ कामलाके रूपमें परिणत हो जाता है; तदनन्तर वमन विरेचन तथा काले रंगके खूनके दस्त आरंभ हो जाते हैं, प्रथम अवस्थामें शरीरका ताप बढ़ता है, किन्तु फिर कम हो जाता है, नाड़ीकी गति दुर्बल और तीव्र हो जाती है। चर्म शीतल होकर ठण्डे पसीने आने लगते हैं। मूत्र अल्प गहरे रंग का अलब्युमेन मिश्रित होता है मांसोंमें कम्प ऐंठन या मूर्च्छा हो जाती है, यकृतमें वसाकी वृद्धि हो जाती है, जिसका अन्त मृत्यु में होता है।

प्रतिविष—आमाशयको पम्प द्वारा धोवें, इसके विषमें नीला तूतिया (Copper sulphate) उत्तम वमन कारक औषधि है। वमन कराने के लिए १½ रत्तीसे २½ रत्तीकी मात्रामें तूतिया वमन प्रारंभ होने तक प्रयोग करें तदनन्तर आधी रत्तीकी मात्रामें प्रति १५ मिनट में प्रतिविषके रूपमें प्रयोग करते रहे। यदि यह न पचे तो इसकी मारफियाके द्रवके साथ मिला कर १० बून्दकी मात्रा देनी चाहिये। पेञ्चका तारपीनका तेल प्रति आध घन्टेमें ३० बून्दकी मात्रामें सेवन कराना भी उत्तम है। तारपीनके नये तेलका प्रयोग कराना हानि कारक है। विरेचन करानेके लिए सामुद्र विरेचक ( Mag. sulph. ) १½ की मात्रामें देना उचित है। स्नेह कारक द्रव पिलावे चर्बी मक्खन और तेलका प्रयोग करना उचित नहीं क्योंकि इनसे फासफोरस शरीरमें घुल जाता है।

दीर्घ कालिक विषलक्षण—इस प्रकारका विष बहुत कम होता दीख पड़ता है और यदि होता भी है तो उन्हीं लोगोंको जो प्रायः फासफोरसके कारखानोंमें काम करते हैं। उक्त कारखानोंमें काम करने वाले मनुष्योंके आमाशय और आंतोमें वसा की वृद्धि हो जाती है और जबड़ेकी हड्डीका नाश होने लगता है; सारे शरीरमें तपेदिकके लक्षण आरम्भ हो जाते हैं। कुछ विद्वानोंका विश्वास है कि पोले दांतों या ढीले मसूड़ोंके द्वारा फासफोरसका धुआं हड्डीपर नुकसान पहुँचाता है; किन्तु खिलानेसे यह प्रभाव शरीरमें नहीं देखा जाता। तारपीनका तेल फासफोरसके विषका अच्छा प्रति विष है।

---

## रबर

रबर भी एक विचित्र वस्तु है इसकी समानताका पदार्थ मिलना कठिन है। इसके द्वारा ऐसे ऐसे कार्य होते हैं जो किसी भी अन्य पदार्थ द्वारा नहीं हो सकते। यह इतना अधिक आवश्यक पदार्थ है कि किसी समय इसकी मांग के अनुसार इसका पूरा पड़ना बहुत कठिन हो जायेगा। डा० W. C. Geer की राय में सारे संसारको १९२८ ई० में ४८०००० टन और ५५०,०० टनके बीचमें रबड़ आवश्यक होगा। इस समय ३०००० प्रकारकी वस्तुओंमें रबड़ काम में लाया जाता है। प्रत्येक वर्ष केवल मोटरोंमें ही ३००००० टन रबड़ काममें आता है। पहली जनवरी १९२३ को संसार भरमें मोटरों और लारियों की संख्या १४५०७००० थी, जिसमें ८४ प्रतिशत अमेरिका निवासियोंकी ही थीं, जिनकी जनसंख्या संसारकी आबादीकी ६ प्रतिशत है। एक मोटरमें ५ टायरके हिसाबसे टायरोंकी संख्या ७ करोड़ २२ लाख पहुँचती है। यदि प्रतिवर्ष पुराने टायरोंकी जगह नये बदले जाने वाले टायरोंका अनुमान करते हैं तो वह भी ४ करोड़ ८० लाख तक होता है, अब इन बातों को ध्यान में लाना आवश्यक होगया है कि इतनी अधिक बढ़ती मांगके

लिए इस समय जितना रबड़ प्राप्त है पूरा नहीं पड़ सकता। अभी तक कोई नया आविष्कार भी नहीं हुआ जिससे रबड़के स्थान पर काम आने वाला पदार्थ मिला सके। जर्मनी ने जो कृत्रिम पदार्थ बनानेका उद्योग किया था वह भी असफल सिद्ध हुआ।

## केशोंको सुरक्षित रखनेकी ओषधि

सिरका बाल उड़ जाना स्वाभाविक नहीं है और जो बात स्वाभाविक नहीं वह कभी हितकर नहीं हो सकती। कभी कभी बाल विहीन पुरुषों को स्वस्थ देखा जाता है, किन्तु इससे क्या? यदि वे पूर्वकी दशामें ही रहते और बाल न उड़ने पाते तो और भी अधिक स्वस्थ रहते। सिर पर बाल उगे होते हैं। शरीरमें जहां जहां पर मांसकी कमी है बाल उगे होते हैं और सिर ही शरीरका एक ऐसा अंग है जहां बिलकुल मांस नहीं होता है। सिरके बाल उड़ जाने या बालोंके भूरे पड़ जाने पर लोगोंकी दूसरी दृष्टि हो जाती है। लोग इसे दुर्भाग्यशाली होने का चिन्ह समझते हैं। लोगोंको बालोंके कारण कोई व्यक्ति वृद्ध ज्ञात होने लगता है तो उसका सभी बाजारका व्यवहार वन्द सा होजाता है। इसीलिए बालोंका उड़ना वा भूरा होना स्त्री और पुरुष दोनोंके लिए विपत्ति लानेवाला कहा जाता है। सांसारिक जीवन एक संग्राम है, जिसमें बखेड़े रूप छोटी मोटी वा भयंकर लड़ाइयां हुआ करती हैं। श्वेतबाल पराजयकी पताकाका काम देते हैं।

जिस प्रकार सेनाको पराजित देखकर मित्र दलको दुख होता है उसी प्रकार श्वेत बालोंके साथ जीवन संग्राम भी समाप्त होता देख हमें दुख होता है। जब हम किसी मित्र वा समीपीके बालोंको भूरे रंगकी विपत्तिमें पड़ा पाते हैं तो हमें उस पर खेद होता है।

इस प्रकारके बुरे प्रभाव हमको भुला देने चाहियें। अभी एक फैकटेटिव नामक ओषधि निकली है जिसकी सभी लोग प्रशंसा करते हैं। हां यह है कि जहां बालों का सर्वनाश हो गया और उनकी जड़ बिलकुल सूख गई है वहां यह ओषधि अपना चमत्कार नहीं दिखा सकती। यह केवल बालोंकी रक्षा कर सकती है। इससे बाल अधिक उन्नति प्राप्त करते हैं और श्वेत तथा भूरे बालोंको अपना सुन्दर स्वाभाविक रंग फिर प्राप्त हो जाता है।

बालोंका रंग परिवर्तन विशुद्ध भौतिक परिवर्तन है। एक प्रसिद्ध आविष्कारकने इसका अनुसन्धान किया है और कहता है कि बालों के मूल में वायु रन्ध्र बढ़कर अधिक हो जाते हैं इसीलिए बाल भूरे और श्वेत पड़ने लगते हैं। फैकटेटिव इन वायु स्थानोंको सूक्ष्म कर पूर्ववत् बना देता है; जिससे केशोंका रंग स्वाभाविक हो जाता है। यह ओषधि अत्यंत उपयोगी है और बड़े काम की है। प्रत्येक मनुष्य इससे लाभ उठा सकता है। इसका अनुसन्धान बड़े महत्वका है।

---

## पौदोंको बढ़ानेकी नवीन विधि

प्रो० डेविड लन्सडन ने एक ऐसी वस्तुका अनुसन्धान किया है जिससे मनुष्य जिस समय इच्छा हो पौधोंको बढ़ा सकता है। उनका कहना है कि ईथर पौदोंके लिए अत्यंत पुष्ट भोजन है। जिन पौदोंमें ईथर अंतःप्रविष्ट किया जाता है तुरंत ही बढ़ने लगते हैं और प्रत्येक सुप्त कलियां बाहर निकल आती हैं। इससे आलू के व्यवसाइयों को बहुत लाभ होगा। जिन गुलाबके पौधोंमें ईथरका प्रयोग होता है उनके फूल उनकी जातिके साधारण रोगोंसे विमुक्त हो जाते हैं। पौदोंमें बहुत थोड़े परिमाणमें ईथरकी आवश्यकता होती है। गुलाबके पौदेकी जड़में बारह बूंद ईथरका अंतः प्रवेश ही पर्याप्त होगा। ईथरको एक पिचकारी द्वारा पौदोंके मूलमें अंतः प्रविष्ट करते हैं।